मुद्रक
जगदीशप्रसाद अग्रवाल, बी० कॉम०,
दी एज्यूकेशनल प्रेस, आगरा।

लेखक का निवेदन

हमारी वर्तमान शिक्षा में जहाँ बहुत-से गुण हैं वहाँ कुछ दोष भी हैं। उसमें सबसे बड़ी कमी यह है कि विद्यार्थियों को नीति और जीवन सम्बन्धी समस्याओं से अछूता-सा रक्खा जाता है। जहाँ हमारी शिक्षा हमारे विद्यार्थियों के मस्तिष्क को (उन्नत और विकसित तो मैं न कहूँगा) अपक्व ज्ञान का भण्डार बनाती है वहाँ उनके सदाचार-सम्बन्धी संस्कारों तथा सामाजिक और राष्ट्रीय भावनाओं के परिपोषण और परिमार्जन की ओर से वह उदासीन-सी रहती है।

प्रस्तुत पुस्तक इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर लिखी गई है कि हमारे विद्यार्थी ऐसे संस्कार बना लें कि जो उनके भावी जीवन-संग्राम में सहायक हों। मनुष्य को भौतिक सफलता प्राप्त करना इतना कठिन नहीं है जितना कि नैतिक उच्चता और उदारता को अपने जीवन का अङ्ग बनाना। इस पुस्तक में सांसारिक सफलता की उपेक्षा तो नहीं की गई है; किन्तु उच्च आशयता और सज्जनोचित व्यवहार की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। भाषा में साहित्यिकता लाने और भारतीय संस्कृति की अनुकूलता प्राप्त करने के साथ इस बात का पूरा ध्यान रक्खा गया है कि भाषा दुरूह न हो जाय जिससे कि हमारे विद्यार्थी इसके लाभ से वञ्चित रहे।

मुझे आशा है कि हमारे नवयुवक इस पुस्तक के आलोक में अपने संस्कार और अभ्यास निर्माण करने का उद्योग करेंगे और मुझे इस बात की प्रसन्नता और गौरव देंगे कि मेरी यह पुस्तक हमारे भावी राष्ट्र-निर्माताओं के जीवन निर्माण में किसी स्वल्प मात्रा मे भी सहायक हुई।

यद्यपि यह उपदेश ऐसे व्यक्ति से आने चाहिए थे जिसका जीवन सफल और आदर्शमय हो तथापि हमारे पाठक इसके वक्तव्य का मूल्य उसकी नैतिकता और उपयोगिता के आधार पर आंक कर इसको हंस-बुद्धि से अपनायेंगे।

परो अपावन ठौर में कञ्चन तजै न कोय।

गोमती-निवास
दिल्ली-दरवाज़ा
आगरा।

विनीत
गुलाबराय

विषय-सूची

जीवन-पथ

हारिए न हिम्मत विसारिए न राम

अब जागो जीवन के प्रभात !
रजनी की लाज समेटो ता,
कलरव से उठकर भेंटो तो।
अरुणाचल में चल रही बात,
जागो अब जीवन के प्रभात !

—प्रसाद

यह संसार गुण-दोषमय है। इसमे पाप-पुण्य, दिन-रात हास और रुदन सब कुछ है। इस लहलहाते सागर में रत्न, जवाहर और मोती भी हैं और मनुष्य को साबित निगल जाने वाले मगर और घड़ियाल भी। इसमें प्रेमालाप, मधुर मिलन, हास-परिहास के साथ कलह और संघर्ष भी है। ऐसे संसार में हमारा क्या कर्त्तव्य है ? क्या इससे मुँह छिपा कर भाग जाने और किसी सौरभमय कोने में अवनी के कोलाहल से दूर चादर तान कर सो जाने में हमारा त्राण है या संघर्ष में कूद पड़ने में ? संसार से भागने में हम अगर रुदन और विलाप से बचते हैं तो

हास-विलास से भी वञ्चित रहते है। संघर्ष से यदि हम भाग जाते हैं तो दुनिया में बुराई की शक्तियॉ और भी प्रबल होकर हमारे सामने आयँगी और हमको आराम-बाग़ मे सोने न देंगी। इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि दुनिया के सागर में तिनके के समान भॅवरो और लहरो के घात-प्रतिघात मे बेवश होकर अपने जीवन को परिस्थितियो के हाथ मे न सौंप दें; वरन् परिस्थितियो से लड़कर सच्चे तैराक की भॉति लहरों पर विजय पाते हुए अपने को कठिनाइयों के सागर से पार ले जायँ।

जो मनुष्य प्रसन्न चित्त होकर संसार के लहलहाते सागर मे प्रवेश करता है उसको रत्न और घोंघे दोनो ही हाथ लगते हैं; लेकिन उनमें से कुछ रत्न बहुमूल्य होते हैं।

जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी ढूँड़न गई रही किनारे बैठ॥

इस दुनिया मे देखने और खोजने वाले के लिए पद-पद पर सौन्दर्य-सुषमा है। पक्षियो के कल कूजन मे, हिरनों की चंचल चौकड़ी में, विहगो की ऊँची उड़ान में, मछलियों के गतिमय संतरण मे सरिताओं के कल-कल निनादमय वारि-विलोडित प्रवाह मे, घूम-घुॅआरे काजर-कारे बादलों में, अरुणोदय के सुनहले वैभव मे, बालकों की तुतली भाषा, किलकारी और करतल की ताल पर थिरकने वाले नृत्य मे, श्रमिक के परिश्रम में, चक्की पीसने वाली के मर्मभेदी राग में, विद्यार्थियों के हासोल्लास भरे खेलो मे, साहसी लोगों की शैल-शिखरो की चढ़ाई में, यात्रियों के गंगा-स्नान में, जहॉ देखो तहॉ सौन्दर्य की झलक है। इस सौन्दर्य के सागर को छोड़कर आराम बाग़ में, निष्क्रियता की सुखनिद्रा मे सोना कायरता ही नहीं वरन् मृत्यु ही है।

इस धरनी के रोम-रोम में
भरी सहज सुन्दरता
इसके रज को छू आकाश-
बन मधुर विनम्र निखरता।
पीले पत्ते टूटी टहनी,
छिलके, ककड़, पत्थर,
कूड़ा करकट सब कुछ भू पर
लगता सार्थक सुन्दर।

—पंत

महाकवि शेक्सपीयर की विशाल दृष्टि ने वृक्षों में वाणी, पत्थरों में पोथियाँ, नालो में नीति और प्रत्येक वस्तु में कुछ सद्-गुण देखे थे। देखने के लिए सहृदयता चाहिए।

दुनिया मे दुख और संघर्ष अधिक है; किन्तु उसके साथ सुख और शान्ति का अभाव नहीं। अस्पतालों की अपेक्षा होटलों की संख्या अधिक है। जेलो की अपेक्षा क्लब और सिनेमा घरो की बहुतायत है। दुनिया मे सुख की मात्रा अधिक है, यदि न भी हो तो दुनिया को सुखमय बनाना हमारा कर्त्तव्य है। हम संसार के प्राणियो में सर्वश्रेष्ठ गिने जाते हैं। हमारी सर्व-श्रेष्ठता इसी मे है कि संसार को जैसा हमने पाया है उससे अधिक सुखमय बनायें। इसके लिए परिश्रम और संयम की आवश्यकता होगी।

विना सेवा के मेवा नहीं मिलती। वैज्ञानिकों ने प्रकृति की सेवा कर ही उसके रहस्य जाने है और उसको वश में किया है। तभी उनके इशारे पर संसार की शक्तियाँ क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर और विद्युत भी नाचने को तैयार रहती हैं।

हमको संसार को समझ कर उसमें हमें अपना कर्त्तव्य निश्चित करने की आवश्यकता है। संसार को समझ लेने पर

वह हमारा बन जाता है। उसके समझने के प्रयत्न करने मे ही उसकी शक्ति और दुर्बलता का रहस्य मालूम होता है। अज्ञान और न समझने में ही कुरूपता और भयङ्करता दिखाई पड़ती है। जिस मनुष्य को हम समझ लेते हैं वही मित्र बन जाता है और जिसको नहीं समझ पाते वही शत्रु बना रहता है। समझने के लिए हमको अपने अभिमान को तिलाञ्जलि देनी होगी। शत्रु के पास जाकर उसके साथ रहना होगा तथा उसको अपना बनाना होगा। जो बात प्राकृतिक शक्तियो के लिए है वही मानवी शक्तियों के लिए भी है। प्रयत्न से पत्थर भी मोम हो जाता है। प्रयत्न में सौन्दर्य है, आनन्द है, जीवन है। प्रयत्न की कुञ्जी से ही संसार के खजाने का द्वार खुलेगा, उसका सौन्दर्य दिखाई देगा और उसमे हम अपना कर्त्तव्य निश्चय कर सकेंगे। हृदय में आशा और विश्वास रखकर हमको सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए।

'हारिए न हिम्मत विसारिए न राम।'

समाज और व्यक्ति का लेन-देन

मनु ने कुछ-कुछ मुसका कर
कैलाश ओर दिखलाया,
बोले देखो कि यहाँ पर
कोई भी नहीं पराया।
हम अन्य न और कुटुम्बी
हम केवल एक हमी हैं,
तुम सब मेरे अवयव हो
जिसमें कुछ नहीं कमी है।

—प्रसाद

मनुष्य का जन्म समाज में हुआ है और समाज से ही वह अपनी जीवन शक्ति प्राप्त करता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि वृक्ष और पौधे पृथ्वी से उत्पन्न होकर उसी से अपनी खाद्य-सामग्री ग्रहण कर बढ़ते रहते है। यद्यपि व्यक्तियों से समाज बनता है तथापि व्यक्ति भी समाज से बनता है। हम अपनी समाज से उऋण नहीं हो सकते है। हमारा शरीर, भाषा, भेष व खान-पान आहार-विहार आमोद-प्रमोद सब समाज के ही ऊपर निर्भर है। मनुष्य अकेला कमरे में बैठा हुआ मन-मोदक से अपनी भूख बुझाता रहे किन्तु वह हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ नहीं वन सकता। स्वस्थ जीवन के लिए उसे समाज के मुक्त वाता-वरण में आना पड़ेगा जहाँ संघर्ष मे आकर वह शक्ति ग्रहण करेग अँधेरे में जमने वाले पौधे कुछ देर के लिए वहुत जल्दी व

दिखाई देते हैं किन्तु शीघ्र ही मुर्झा जाते हैं। उसी प्रकार समाज से अलग रहने वाला मनुष्य चाहे बढ़ जाय किन्तु फल-फूल नहीं सकता है। फलने और फूलने के लिए पानी के अतिरिक्त धूप और स्वच्छ वायु चाहिए। समाज के सम्पर्क और संघर्ष से बचना अपने को कमजोर बनाना है। संघर्ष का यह अर्थ नहीं है कि समय-कुसमय लड़ाई झगड़ा ही मोल लेते रहें वरन् यह कि हम समाज और व्यक्ति तथा व्यक्ति-व्यक्ति में साम्य स्थापित करने का प्रयत्न करते रहें। सत्प्रयत्न ही संघर्ष का सराहनीय रूप है।

समाज से हमारा चाहे संघर्ष रहे फिर भी हम उसके ऋणी हैं। हम उससे स्वतन्त्र नहीं हो सकते है। समाज और व्यक्ति का अवयवी और अवयव का-सा सम्बन्ध है; जिस प्रकार शरीर का एक अवयव सारे शरीर से अलग रह कर बढ़ नहीं सकता न वह हृष्ट-पुष्ट हो सकता है उसी प्रकार व्यक्ति समाज से अलग रहकर हृष्ट-पुष्ट नहीं हो सकता। समाज के ही वातावरण में उसकी शक्तियों का विकास होगा। एक आदमी कमरे में बन्द रहकर न बुद्धिमान बन सकता है और न सदाचारी। सदाचार और दुराचार समाज की ही अपेक्षा करते हैं।

जिस प्रकार व्यक्ति समाज पर निर्भर रहता है। उसी प्रकार समाज व्यक्तियों पर आश्रित रहता है एक मछली सारे तालाब को गंदा कर देती है; इसलिए हमारा बड़ा उत्तरदायित्व है। यदि हम बुरे बनते है तो सारी समाज को बुरा बनाते हैं। यदि हम भले बनते हैं तो स्वयं अपना ही लाभ नहीं करते हैं वरन् सारी समाज का उद्धार करते हैं।

समाज का सुख-दुख हम पर प्रतिफलित होता है। यदि हम दूसरों को सुखी बनाते हैं तो हमारे लिए अनुकूल परिस्थितियाँ

बन जाती हैं। दुखी समाज में हम सुखी नहीं रह सकते हैं। वातावरण का मनुष्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। वातावरण का बनाना हमारे ही हाथ मे है। यदि हम अच्छे विचारों, सद्भावनाओं और प्रेम के साथ संसार में प्रवेश करते हैं तो संसार हमारे लिए क्रमशः अनुकूल बनता जायगा। यदि हम घृणा और द्वेष से संसार को देखेंगे तो वे भाव प्रतिध्वनित होकर हमारे पास आयेंगे। संसार एक शीश-महल है जिसमें मनुष्य को अपने ही सैकड़ों प्रतिरूप दिखाई देते हैं। हम यदि उस शीश-महल मे गुर्राते और ताल ठोंकते हुए प्रवेश करेंगे तो सब गुर्राते और ताल ठोकते हुए दिखाई देंगे और यदि हम आलिङ्गन को हाथ बढ़ाये मुस्कराते हुए प्रवेश करेगे तो संसार हमको इसी प्रकार का दिखाई पड़ेगा। हमारे विचारो का प्रभाव दूसरो पर पड़ता है। पूर्ण अहिंसावादी के आगे हिंसक जन्तु भी अपनी हिंसावृत्ति छोड़ देते हैं। कहा जाता है कि मजनू के पास शेर आकर प्रेम भाव से बैठ जाता था।

इसलिए विश्व के प्रति सद्भावना के साथ और समाज का अपने ऊपर ऋण स्वीकार करते हुए हमको अपना कर्तव्य निश्चित करना चाहिए। हमको पत्थर की न बनकर लकड़ी की नाव बनना चाहिए।

आप तरै तारै अवर, काठ नाव 'चितचाव।
बूड़ै बोरै अवर को, ज्यों पाथर की नाव ॥

हमारा कर्तव्य-पथ

'मार्गस्थो न सीदति'

मारग चलते जो गिरै ताको नाहीं दोस।
कह कबीर बैठा रहै ता सिर करड़े कोस॥

—कबीर

चलो सदा चलना ही तुमको श्रेय है।
खड़े रहो मत कभी मार्ग विस्तीर्ण है॥

—प्रसाद

इस धूप-छांह मय संसार में भेद-अभेद आकर्षण-विकर्षण संयोग-वियोग जीवन और मरण सभी का संयोग है। मनुष्य नयनाभिराम और मनोनुकूल दृश्य देखकर पुलक-मुकलित होता और प्रतिकूल घटनाओं का सामना होने पर दुख से आर्त्त-नाद और करुणा-क्रन्दन करता है। लेकिन कार्यार्थी मनुष्य जीवन की उत्ताल तरंगो के आलोडन-विलोडन और संघर्ष से विचलित नहीं होता है। उसके सामने एक लक्ष्य होता है, उस लक्ष्य को दृष्टि मे रख वह अविरल गति से अग्रसर होता रहता है।

इस संसार में अनेक प्रकार की लहरें उठती हैं—कुछ तो सागर के सुलभ सन्तरण में योग देती है और कुछ तैराक की गति का अवरोध करती हैं। वे कुशल तैराक को पार जाने से रोक तो नहीं सकतीं किन्तु उसकी गति को मन्द अवश्य कर देती हैं। तैराक भी शक्ति का केन्द्र होने के कारण स्वयं भी लहर का एक रूप होता है। वह तिनके के समान लहर की गति पर निर्भर नहीं रहता वरन् वह भी और लहरो की गति-विधि निश्चित करने मे योग देता है।

हमारा कर्तव्य क्या है ? भेद और संघर्ष के रहते हुए भी अनुकूलता और सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न करते रहना। संसार में व्यवस्था है किन्तु वह सहज में दिखाई नहीं देती है। कर्तव्यशील मनुष्य विघ्न-बाधाओ को हटाकर उनको प्रकाश में ले आता है। संसार सामञ्जस्य चाहता है और वह सहज में ही स्थापित हो सकता है यदि हम स्वयं उसे बिगाड़ न दें। संसार के सामञ्जस्य पूर्ण लक्ष्य को समझकर भेद मे अभेद के राम-राज्य के स्थापित करने मे योग देना ही हमारा कर्तव्य है।

जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना॥

सामञ्जस्य स्थापित करने की इच्छा ही सुमति है। सामञ्जस्य ही धर्म है और ईश्वर की इच्छा है। कुमति भेद बुद्धि का पर्याय है। दूसरो की तथा अपनी क्रियाओ को हम ईश्वर की इच्छा के अनुकूल बनाकर इस संसार को ही स्वर्ग बना सकते हैं। उसी को हम राम-राज्य कहेगे। वही ईसामसीह के शब्दो में पृथ्वी पर खुदा की बादशाहत की स्थापना होगी। सामञ्जस्य के लिए यह जरूरी नहीं कि भेदो का अभाव हो जाय और सब एक मत हो जायॅ वरन् यह कि भेद रहते हुए भी पारस्परिक विरोध न रहे, लोग एक दूसरे के मत का आदर करें और यथासम्भव संघर्ष को न्यूनातिन्यून कर दें।

संसार मे सामञ्जस्य स्थापित करने वाली बुद्धि का स्थान प्रेम के अथाह-सागर मे है जो प्रत्येक मनुष्य के हृदय मे नैसर्गिक रूप से वर्तमान रहता है। प्रेम के इस स्रोत के प्रवाहित होने में हमारा स्वार्थ बाधक होता है। हमारी संकुचित दृष्टि का ही स्वार्थ हमारे प्रेम-मार्ग मे बाधक होता है। उदार दृष्टि से स्वार्थ भी परार्थ बन जाता है। हमको अपनी दृष्टि व्यापक बनाकर सारी मानवता के स्वार्थ से अपने स्वार्थ का सामञ्जस्य करना ही

हमारा धर्म है। चोरी करना चोर का स्वार्थ अवश्य है किन्तु वह जिसके घर चोरी की जाती है उसके स्वार्थ से टकराता है। मेहनत करके रुपया पैदा करने में हमारे स्वार्थ की भी सिद्धि होती है और दूसरे के भी।

संकुचित स्वार्थ से बचने के लिए ही हमको प्रेम और ममता में भेद करना पड़ता है। ममता अपने को ही देखती है। प्रेम दूसरे का भी स्वार्थ देखता है। इतना ही नहीं वह अपने स्वार्थ को विश्व के स्वार्थ के लिए बलिदान भी कर देता है।

अपने पराये का भाव ही ममतामय स्वार्थ का मूल है। अर्जुन को इसी ममता ने कर्तव्य-पथ से विचलित कर दिया था तभी उसने अपना गाण्डीव धनुष रख दिया था और कहने लगा था।

सीदन्ति मम गात्राणि मुख च परिशुष्यति
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव
न च श्रेयोनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे॥

अर्थात् मेरे अंग शिथिल हो रहे और मुँह सूख रहा है। मेरे शरीर मे कपकपी चढ़ रही है और रोमांच खड़े हो गये हैं हे केशव! मैं अपने सामने विपरीत लक्षणों को पाता हूँ अपने स्वजनो को युद्ध मे मारकर श्रेय को नहीं देख रहा हूँ।

भगवान् कृष्ण ने उसको व्यापक धर्म और कर्तव्य का मार्ग बतलाया। कर्तव्य मे ममता बाधक नहीं हो सकती है। कर्म करने वाला नीति-निपुणो की निन्दा-स्तुति की परवाह नहीं करता। उसको इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि उसके पास धन बना रहे या चला जाय, वह आज ही मर जाय या युगान्तर तक जीवित रहे, वह धीर पुरुष न्याय-पथ से एक कदम भी नहीं हटता है, देखिए :—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदिवा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पद न धीराः॥

इस न्याय-पथ के अनुसरण मे पग-पग पर बाधाओ का सामना करना पड़ता है। कर्तव्य का मार्ग कंटकाकीर्ण मार्ग है। कर्तव्य स्वयं सुन्दर है किन्तु उसके मार्ग में भीषणता और असुन्दरता भी रहती है। संसार विहार का उद्यान नहीं है जिसमें सब सुन्दर ही सुन्दर दिखाई पड़ता है इसमे फूल भी हैं और कॉटे भी। मनोमुग्धकारिणी सुरम्य मूर्तियॉ भी है और मरघट के मसान भी। किन्तु सुन्दर और असुन्दर मन का खेल है— 'समै-समै सुन्दर सबै रूप कुरूप न कोय, जाकी रुचि जेती जितै ताकी तेती होय' रुचि और प्रेम कुरूप को भी सुन्दर बना देता है। कर्तव्यशील मनुष्य के लिए सारा संसार पुष्पोद्यान बन जाता है।

कर्तव्य-पथ मे विफलता का भी सामना करना पड़ता है किन्तु वे विफलताएँ ऊँचे चढ़ने के सोपान का काम देती हैं। उनसे हमारा बल बढ़ता है। विशाल शिलाओ और पर्वतों से समुद्र का वेग घटता नहीं वरन् बढ़ता ही है। कठिनाइयों के विना विजयश्री का सुख और सौभाग्य कहॉ? साहसी कर्मवीर के आगे विघ्न-बाधाएँ नहीं ठहरतीं, देखिए :—

देख उत्ताल तरगों को
कर्म-रत कब घबराता है।
शक्ति कुम्भज-सी धारण कर
पयोनिधि को पी जाता है।

—हरिऔध

आदर्श-जीवन

"वैराग्य साधने मुक्ति, से आमार नय,
असंख्य बन्धन माझे महानन्दमय लभिव मुक्तिर स्वाद"

—कवीन्द्र रवीन्द्र।

विश्व-प्रेम के बन्धन में ही मुझको मिला मुक्ति का द्वार।

—गोपालशरणसिंह।

हमारा जीवन किस प्रकार सार्थक वन सकता है? इस प्रश्न के उत्तर के पूर्व हमको जीवन का लक्ष्य समझने की आवश्यकता है। यहाँ पर विवाद खड़ा हो जाता है; कोई कुछ कहता है और कोई कुछ—'अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग'। किन्हीं शास्त्रों का सिद्धान्त है कि 'मुक्ति निरादर भगति लुभाने' के आदर्श के लिए मानव-जीवन को सयत्न होना चाहिए लेकिन दूसरे कहते है कि इतने महान् विद्वान् और योगियों से जो विन्ध्याटवी की किसी गहन-गुफा मे पड़े रहते हैं संसार को क्या लाभ? हमारी समझ मे मानव-जीवन का ध्येय ईश्वरप्रदत्त शक्तियों का पूर्ण विकास और समाज को हर प्रकार से उन्नत बनाने में योग देना ही है। इस लक्ष्य की प्राप्ति मे आवश्यक है—शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति।

भारतवर्ष मे मनीषियों ने इस ओर भी अपनी दृष्टि फेरी थी। उन्होंने अपने धर्म-ग्रन्थो मे वन्धन और मुक्ति के वीच का मार्ग खोज निकाला था। उन्होंने मनुष्य जीवन को चार भागों में विभक्त कर दिया था। ये आश्रमो के नाम से प्रख्यात हैं। ये चार

आश्रम इस प्रकार हैं—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। इन चारों आश्रमों को यथाविधि पालन करने पर मनुष्य आदर्श जीवन व्यतीत कर सकता है।

ब्रह्मचर्य मनुष्य जीवन का पहला आश्रम है। इसमें मनुष्य अपने भावी जीवन की तैयारी करता है ब्रह्मचर्य पालन कर वह अपने शरीर मे शक्ति-संचय करता है जो भावी-संघर्ष में काम दे सके और शिक्षा को विधिवत प्राप्त करता है जिससे भावी-आपद्-विपत्तियों का निदान हो सके। शिक्षा द्वारा वह शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति के साधनों को प्राप्त करता है। इस आश्रम मे किशोर दूसरों के प्रति सद्व्यवहार, आज्ञा-पालन सहनशीलता, सेवा तथा आदर भाव आदि सद्गुणों का अभ्यास कर लेता है। इस आश्रम के किये हुए अभ्यास जीवन पर्यन्त काम आते हैं। कुम्हार अपनी मिट्टी को जितना ही अधिक बनाता है उससे उतने ही सुन्दर भाण्ड बनते है। इस जीवन मे जितने ही सद्गुणों का अभ्यास किया जाता है भावी जीवन उतना ही सरल एवं सरस हो जाता है। यह जीवन सम्पूर्ण मानव जीवन का प्रवेश-द्वार है। इसके नष्ट हो जाने पर जीवन का निर्वाह तक कठिन हो जाता है! हमको संसार में ऐसे बहुत से लोगो से भेंट हो जाती है जो इस जीवन से निराश हो गये हैं। वे कहते है कि जिन्दगी अब तो भार होगई है, जेठ की दुपहरी के समान काटे नहीं कटती। जब उनके पिछले जीवन पर दृष्टिपात किया जाता है तो ज्ञात होता है कि ये तो दिवालिए हैं। इन्होने अपने ब्रह्मचर्य जीवन मे सञ्चय तो कुछ नहीं किया उल्टे सोते ही रहे हैं।

शारीरिक-गठन के लिए उपयुक्त समय ब्रह्मचर्य आश्रम ही है। स्वास्थ्य के खो जाने पर आदमी कुछ कर पाता है, यह

विवादग्रस्त विषय है। व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक एवं धार्मिक कर्तव्यों का पूर्णतया पालन स्वास्थ्य पर ही निर्भर है। स्वास्थ्य के लिए नियम पालन और आत्म संयम की विशेष आवश्यकता है। आहार-व्यवहार का भी किसी अंश तक सराहनीय योग है। हमको अपने समय का ऐसा विभाजन करना चाहिए कि जिसमें धनोपार्जन, सामाजिक एवं पारिवारिक कर्तव्य पालन, आमोद-प्रमोद, स्वास्थ्य रक्षा और धार्मिक कृत्यों के लिए स्थान रहे, और फिर उसके अनुकूल चलना चाहिए।

निद्रा स्वास्थ्य के लिए परम आवश्यक है तथापि उसको प्रातः पर्यटन से लाभ उठाने में बाधक न होना चाहिए। इसी प्रकार आहार-व्यवहार भी नियमित होने चाहिए।

दूसरा आश्रम गृहस्थ आश्रम है। यह सब आश्रमों में श्रेष्ठ है क्योंकि इसके द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि हो सकती है और अन्य सब आश्रमों का पालन भी हो सकता है। मनु महाराज ने गृहस्थाश्रम की प्रशंसा में साफ़-साफ़ कह दिया है कि सब आश्रम गृहस्थ आश्रम के उसी प्रकार अधीन हैं जिस प्रकार समस्त जीवधारी वायु के आधीन हैं।

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्व जन्तवः
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः

गृहस्थाश्रम का समारम्भ विवाह से होता है। हिन्दुओं में विवाह एक धार्मिक संस्कार माना गया है। आदर्श जीवन के व्यतीत करने के लिए पति-पत्नी सहयोग की परम-आवश्यकता है। पुरुष के लिए स्त्री की और स्त्री के लिए पुरुष की आवश्यकता केवल काम-वासना की तृप्ति के लिए ही नहीं होती वरन् मानसिक और आध्यात्मिक सहयोग के लिए होती है। सीता के

निर्वासित कर देने पर राम ने अश्वमेध यज्ञ में उनकी स्वर्ण-प्रतिमा की स्थापना की थी क्योंकि हमारे धर्म-शास्त्रों का भी यही मत है कि पुरुष का स्त्री के विना कोई भी धर्म कार्य्य पूर्ण नहीं होता। राम को राज्य देने के पूर्व दशरथ ने कैकेयी से परामर्श नहीं लिया उसका परिणाम क्या हुआ ? दशरथ को प्राण त्यागने पड़े ; राम को वनवास में बीहड़ वनों की खाक छाननी पड़ी, परमसनेही भरत को त्यागी का जीवन व्यतीत करना पड़ा और कैकेयी को पश्चाताप की अग्नि मे जलना पड़ा। इस कारण पति-पत्नी का सहयोग आवश्यक है क्योंकि स्त्री पुरुष की शक्ति है और उसका अधिकार पुरुष के वामभाग पर है। सीताराम, राधेश्याम, पार्वती-परमेश्वर ही कहते हैं। राम-सीता कहकर कोई नहीं स्मरण करता इसीलिए तो भारतेन्दु को लिखना पड़ा 'सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के'। इतनी बड़ी महान् शक्ति को भी लोग उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं और कभी-कभी अपनी ताकत की आजमाइश भी कर बैठते हैं। लेकिन उनको मालूम होना चाहिए कि पति-पत्नी परस्पर अनुकूल होने से एक दूसरे के कार्य्यों में सहायता ही नहीं मिलती वरन् अपने-अपने प्रेममय व्यवहार से एक दूसरे का जीवन भार भी हलका होता रहता है। गान्धी को गान्धी बनाने मे कस्तूरबा का भी कुछ हाथ है।

गृहस्थाश्रम ही मानसिक उन्नति के लिए उपयुक्त काल है। इस काल में धनोपार्जन की प्रवृत्ति जाग उठती है। हमको अपनी आजीविका इस प्रकार की रखनी चाहिए जो धर्म के विरुद्ध न हो और जिससे देश और समाज को हानि न पहुँचे। धनोपार्जन हम इसलिए नहीं करते कि हमारा एकमात्र ध्येय ही धनोपार्जन है। धनोपार्जन हम इसलिए करते हैं कि हम अपने कर्तव्यों

पूर्णतया पालन कर सके। जीविका उपार्जन मे बहुत से लोग आलस्य और प्रमाद से काम लेते हैं क्योंकि उनका कथन है कि रुपया तो हमको मिल ही जावेगा। तब फिर क्यों परिश्रम किया जाय। आफत की भांति उसे टालते रहते है। एक अध्यापक थे। वे कहा करते थे कि मै तो भाई कुछ पढ़ाता-लिखाता नहीं हूँ क्योंकि मै जानता हूँ मेरा पढ़ाया-लिखाया कलक्टर नहीं होता परन्तु वे कर्तव्य-पालन की अपूर्व प्रसन्नता को नहीं जानते थे।

कर्तव्य-पालन में बेईमानी का सहारा नहीं लेना चाहिए क्योंकि बेईमानी से अर्जित धन स्थायी नहीं होता और उससे उतनी प्रसन्नता भी नहीं होती जितनी कि ईमानदारी से कमाये हुए धन से होती है। दूसरे बेईमानी से कमाया हुआ धन सदैव दुर्गुणों की वृद्धि से व्यतीत होता है क्योंकि बेईमान की आँख सदैव नीची ही रहती है। बेईमान मनुष्य सदैव आशंकित रहता है और वह डर से अपना भीतर भी खोखला कर लेता है।

गृहस्थाश्रम मे व्यसनो के लिए भी स्थान है लेकिन ये व्यसन ऐसे न हो जिनसे शारीरिक, नैतिक और आर्थिक हानि की सम्भावना हो। संगीत, चित्रकारी आदि कला सम्बन्धी व्यसन मनुष्य जीवन मे एक अपूर्व सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं। जीवन के भारी क्षण भी उनके कारण हलके हो जाते है क्योंकि उनसे मानसिक तुष्टि मिलती है। अगर इस प्रकार ललित कलाओं के अनुशीलन मे घर के सब ही आदमी योग देना आरम्भ कर दें तो घर क्या स्वर्ग हो जावे। मनुष्य का मन कभी शान्त नहीं होता क्योंकि 'जन-मन मौन नहीं रहता' वह 'आप आपसे है कहता' और 'आप आपकी है सुनता।' ऐसे समय इन सद्-व्यसनो मे समय जाय तो बुरे विचार नहीं उठ पाते और आत्म-संयम का पथ यद्यपि असिधार पर चलना है तब भी वे

उसके मार्ग मे बाधक नहीं होते हैं। मनुष्य निराशाजन्य विचारों से भी मुक्ति पा जाता है। लेकिन हमारे ये सद्व्यसन हमारी आजोविका मे किसी तरह की बाधा न उपस्थित करें, नहीं तो सङ्गठित जीवन मे अस्त-व्यस्तता का स्वच्छन्द राज्य हो जावेगा।

गृहस्थाश्रम मे हमको केवल अपनी ही चिन्ता नहीं रहती वरन् सारे परिवार का ध्यान रखना पड़ता है। हमारा कोई कार्य या वचन ऐसा न होना चाहिए जिससे अभिमान की गन्ध आने लगे और दूसरे के चित्त को आघात लगे। दूसरो के मन को आघात पहुँचाना भी हिंसा करना है। पारिवारिक जीवन में हमको इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हम एक दुसरे के दुख के लिए उत्तरदायी है क्योंकि पारिवारिक प्रसन्नता के नष्ट होने पर हम अपनी प्रसन्नता की खिचड़ी अलग नहीं पका सकते। इस कारण जीवन मे ऐसे अवसर ही न आवें जिनसे गृह-कलह उत्पन्न होने की आशंका हो। हमको ऐसा जीवन व्यतीत करना चाहिए जिससे हम प्रसन्नता, सुख और शान्ति के केन्द्र बन जावें। श्री जयशंकरप्रसादजी ने पारिवारिक जीवन का कितना सुन्दर आदर्श उपस्थित किया है:—

बच्चे बच्चों से खेलें हों मोद बढा उनके मन मे,
कुल लक्ष्मी हों मुदित, भरा हो मंगल उनके जीवन में।
बन्धुवर्ग हों सम्मानित, हों सेवक सुखी प्रणत अनुचर
शांति पूर्ण हो स्वामी का मन तो स्पृहणीय न हो क्यों घर॥

अन्तिम दो आश्रम धर्म और मोक्ष के साधन हैं। वानप्रस्था मे मनुष्य को गृहस्थी का त्याग नहीं करना पड़ता। उसको धनोपार्जन से विराग लेना होता है और अपना समय समाज-सेव और आध्यात्मिक उन्नति के कार्य्यों मे लगा देना पड़ता है

संन्यास मे मनुष्य गृहस्थी का भी त्याग कर देता है और मोक्ष प्राप्ति में लग जाता है।

वानप्रस्थ-आश्रम ही आध्यात्मिक उन्नति के लिए उपयुक्त काल है। दूसरों की सेवा के लिए बहुत अधिक समय और अवसर मिलता है जो मानव जाति के प्रति सहानुभूति का जागरण करता है। सेवा द्वारा कोमल भावनाओं का उदय होता है। सहन-शीलता बढ़ती जाती है और जिनकी हम सेवा करते हैं उनके प्रति हमारा रागात्मक सम्बन्ध दृढ़ होता जाता है।

सेवा भाव के अतिरिक्त इस आश्रम मे ईश्वराराधन के लिए भी समय मिलता है। इसमे ईश्वर सम्बन्धी तत्त्वाध्ययन का काम करना चाहिए जिससे संन्यास मे मोक्ष प्राप्ति मे उन गुणों का विकास हो सके और मोक्ष प्राप्ति का मार्ग सरल हो जावे।

संन्यास के सम्बन्ध मे कुछ लोगो का ऐसा मत है कि मनुष्य को हर चीज़ से संन्यास लेकर ईश्वराराधन मे तल्लीन हो जाना चाहिए। लेकिन कुछ लोग इसे आवश्यक नहीं मानते उनका कहना है कि संन्यास का अर्थ संन्यास या बिलकुल त्याग नहीं है। संन्यास का अर्थ हमको अपने व्यक्तिगत लाभ, सुख और दुख के विचारो का त्याग कर परोपकार के कार्य्य मे लग जाना है। समाज सेवा भी एक प्रकार की ईश्वर सेवा है क्योंकि ईश्वर और ईश्वर की सृष्टि मे भेद नहीं है।

संक्षेप मे वह जीवन आदर्श जीवन है जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सबका एक-सा समन्वित साधन होसके और जो व्यक्ति और समाज के सामंजस्य सम्बन्ध को दृढ़ कर सके। आदर्श जीवन में मनुष्य की आन्तरिक वृत्तियों का, इच्छा, ज्ञान और क्रिया का सामंजस्य के साथ व्यक्ति-व्यक्ति का भी सामजस्य रहता है।

सन्तुलनमय जीवन ही सात्विक और आदर्श जीवन है। मनुष्य की इच्छाएँ कर्म को बल देती हैं ज्ञान इच्छाओं को परिमार्जित करता है और कर्म इच्छा और ज्ञान की अभिव्यक्ति कर ज्ञान को सार्थकता प्रदान करता है। इच्छा, ज्ञान, क्रिया का सामंजस्य ही प्रसाद जी की कामायनी का आदर्श है। इनके पार्थक्य में ही जीवन की विफलता है।

ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की;
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की।

कामायनी में बतलाया गया है श्रद्धा (भावना) और तर्क (बुद्धि) के संयोग में मानव का कल्याण है। मनुष्य को बुद्धि से काम लेना आवश्यक है किन्तु श्रद्धा को भी न खोना चाहिए।

यह तर्कमयी तू श्रद्धामय,
तू मननशील कर कर्म अभय;
इसका तू सब संताप निचय,
हर ले, हो मानव भाग्य उदय।

आत्मोन्नति

'उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।'

अर्थात् आत्मा का उद्धार आत्मा द्वारा ही होता है, इसलिए आत्मा को नीचा मत बनाओ ।

नहीं झिझकती है दीपावलि अघ-प्रभा में आने से
गिरकर पंकिल भी ओ घन-जल किसे नहीं तू भाता है ?

हम इस संसार में खान से निकले हुए मिट्टी-धूल भरे सोने के समान आते हैं। सोने को दूसरे लोग तपा-गला कर शुद्ध करते हैं और उसको मूल्यवान कंचन का रूप देते हैं। हम सोने की भाँति जड़ नहीं हैं। हम सचेतन और क्रियाशील हैं। हमको अपना उद्धार और सुधार आप ही करना चाहिए। हमारे मित्र हमको सलाह दे सकते हैं, गुरु हमको शिक्षा दे सकते हैं किन्तु उस सलाह और शिक्षा पर चलना हमारा काम है। अँग्रेजी में एक मसला है कि एक आदमी घोड़े को पानी तक ले जा सकता है किन्तु दस आदमी उसे पानी पिला नहीं सकते हैं। (अगर वह न पीना चाहे) इसी प्रकार हम यदि मूर्ख और हठी हैं तो यदि ब्रह्मा भी गुरु मिलते हैं तो हम सुधर नहीं सकते हैं। तुलसीदासजी ने कहा है:—

फूलहिं फलहिं न बेत जदपि सुधा बर्षहिं जलधि ।
मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलहिं विरंच सम ॥

आज-कल का मनोविज्ञान ऐसा तो नहीं मानता कि बुरे

लड़के का सुधार नहीं हो सकता फिर भी सुधार में सुधारे जाने वाले की सहकारिता अत्यन्त आवश्यक है। विना संकल्प और अभ्यास के सुधार नहीं हो सकता है। उसमे दृढ़ता की भी जरूरत है। जहाँ जरा फिसले, जहाँ जरा लालच मे आये और आरामतलवी की ओर झुके वहाँ वर्षों की साधना धूल में मिल जाती है। मकान को बनाने की अपेक्षा उसका ढा देना सहज है।

उन्नति का मार्ग दुर्गम है। वह ऊँचे पहाड़ की चढ़ाई के समान है। आकर्षण, लालच और आलस्य का हमको पद-पद पर सामना करना पड़ेगा। इन सब से बचकर हम यदि आगे बढ़ गये तो हमारी उन्नति और हमारा उत्थान निश्चित है। अगर हम आलस्य में आगये तो खरगोश की भाँति तेज होते हुए भी कछुए से बाजी हार जायँगे।

हमको अपनी उन्नति को सर्वाङ्गी बनाना है। जैसा कि हम आदर्श जीवन के प्रसङ्ग में कह चुके हैं हमको भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार को उन्नति करना आवश्यक है। भौतिक उन्नति के साथ मानसिक उन्नति भी अनिवार्य है। हमारी उन्नति का रूप ऐसा होना चाहिए कि उसमे भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति का सन्तुलन रहे। मेघनाद या कुम्भ-करण की भाँति भौतिक उन्नति कर ले और चाहे रावण की भाँति मानसिक उन्नति भी कर लें तो विना शील और चरित्र के साक्षर होकर राक्षस ही बने रहेंगे। चरित्र भ्रष्ट होकर मानसिक उन्नति भी कोई मूल्य नहीं रखती है।

हमारी आधुनिक शिक्षा मे केवल मानसिक उन्नति पर ही ध्यान दिया जाता है, सो भी पूरी तौर से नहीं। उससे विचारों को सजीव और उपजाऊ बनाने की अपेक्षा ज्ञान को अल्मारी की पुस्तकों की भाँति ठूँस-ठाँस कर भर देने की ओर अधिक

प्रवृत्ति रहती है। हमारा ज्ञान गुलदस्ते के फूलों की भाँति चार दिन की चटक और शोभा दिखाकर परीक्षा के बाद परिम्लान हो जाता है। भौतिक उन्नति भी जो हमारे शिक्षालयों में कराई जाती है वह स्फूर्ति और साहस नहीं उत्पन्न करती। आध्यात्मिक उन्नति शील और चरित्र की ओर तो ध्यान ही नहीं दिया जाता। हमको स्कूली शिक्षा के अतिरिक्त अपनी उन्नति का बीड़ा आप ही उठाने की जरूरत है। यह उन्नति का क्रम आजीवन चलता रहेगा। आत्मशिक्षण का स्कूल कभी बन्द नहीं होता है किन्तु जितना आत्मशिक्षण विद्यार्थी अवस्था में हो जाता है उतना उमर भर काम देता है। बुनियाद मजबूत हो जाने से इमारत चाहे जितनी ऊँची उठाई जा सकती है। बालकपन मे पड़े हुए संस्कार और अभ्यास उमर भर काम देते है।

बालकपन में हमारा स्नायु-संस्थान (Nervous system) अधिक सम्वेदनशील और प्रभावों को ग्रहण करने के लिए मोम की भाँति मुलायम होता है। बड़े हो जाने पर जो संस्कार बन जाते है वे सहज मे मिटते नहीं हैं। नये संस्कार बनाने के लिए हमको पहले संस्कारो और अभ्यासों से लड़ना पड़ता है। अगर पहले संस्कार प्रबल हुए तो पीछे का सदुपदेश और सत्संकल्प भी काम नहीं देता है, इसलिए हमको चाहिए कि बाल्यावस्था में ही अपने उन्नति-क्रम को आरम्भ करके एक निश्चित दिशा में ले जायें। इससे हमको अपने स्नायु संस्थान की सम्वेदनशीलता और ग्राहकता का पूरा लाभ मिल सकेगा। छोटे वृक्ष की टहनी को जिधर झुका दो उधर झुक जायगी किन्तु वृक्ष के बड़े हो जाने पर उसको रूप और आकार देना कठिन हो जाता है।

आत्मोन्नति के लिए आत्मविश्वास भी आवश्यक है। हमको कभी अपने मे हीनता-भाव को न आने देना चाहिए। अपने को

नीचा और गिरा हुआ समझना ही आत्मा को दुखी बनाना है। जिसे अपनी शक्तियों में विश्वास है वह सब कुछ कर सकता है और जो पहले से ही कंधा डाल देने की प्रवृत्ति रखता है वह रोता हुआ जाता है और मरे की खबर लाता है। ऐसा मनुष्य जो अपने में विश्वास नहीं रखता, जिसके हृदय में बल और साहस नहीं है वह कभी सफल नहीं बन सकता है।

जीवन को उन्नत बनाने के लिए न तो मनुष्य को आत्म-विश्वास को खोना चाहिए (हृदयदौर्बल्य भौतिकदौर्बल्य से भी अधिक घातक है) और न उसे अहंमन्य हो जाना चाहिए। अहंमन्यता आत्मविश्वास का दूषित छोर है। जो लोग यह समझते हैं कि हम सब कुछ जानते हैं, हम पूर्ण सदाचारी और न्यायी हैं और हमारे लिए कुछ जानना और करना शेष नहीं है वे अपनी उन्नति का द्वार बन्द कर चुके हैं।

उन्नति के लिए आत्मविश्वास के साथ सदा अग्रसर होते रहने की जरूरत है। हमको अजर और अमर समझ कर विद्या और अर्थ की चिन्ता करना चाहिए 'अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्' और 'गृहीत इव केशेषु मृत्युनाधर्ममाचरेत' की बात याद रखते हुए धर्म का आचरण करना चाहिए।

"गया वक्त फिर हाथ आता नहीं"। अवसर चूका सो चूका। अपने समय का सदुपयोग करते हुए आत्मविश्वास के साथ उन्नति के मार्ग में आगे बढ़ना हमारा कर्तव्य है। हमको ऐसा विचार कभी पास भी न आने देना चाहिए कि हम मूर्ख हैं, पापी हैं, पतित हैं हमारा उद्धार होना कठिन है। अभ्यास के आगे सब सुलभ हो जाता है। अभ्यास ही मूक को वाचाल बना देता है। हकले आदमी भी बड़े भारी वक्ता हो गये हैं। यूनान में एक बड़ा भारी वक्ता (शायद उसका नाम केटो) था शुरू में हकलाता

था। फिर वह अपने मुँह में कंकड़ डालकर समुद्र के किनारे चला जाता और लहरों के गरजने की प्रतिस्पर्धा करता हुआ गरजता और वक्तृता देता था। इस प्रकार वह बड़ा भारी वक्ता बन गया। संसार में जो बड़े आदमी हुए हैं आरम्भ से ही प्रतिभावान न थे, होनहार बिरवान के होत चीकने पात की बात बहुत अंश में ठीक है किन्तु बाँध बाँधने से छोटी नदी में भी जलका आधिक्य दिखाई देने लगता है और उससे नहर निकाली जा सकती है। अभ्यास से मूर्ख भी विद्वान् हो सकता है, वृन्द कवि ने कहा है :—

करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें, सिल पर होत निसान॥

सफ़ाई और व्यायाम

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'

अर्थात् शरीर रक्षा धर्म का पहला साधन है ।

'A Sound mind in a sound body'

'तन्दुरुस्ती हजार नियामत'

शरीर रक्षा को धर्म का पहला साधन बतलाया गया है । इस संसार मे हम जो कुछ करते हैं वह शरीर द्वारा ही करते हैं । शरीर आत्मा का मन्दिर है । उसको भी स्वच्छ पवित्र और दृढ़ रखने की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि किसी देव मन्दिर की ।

शरीर रक्षा के लिए सफाई और स्वास्थ्य अत्यन्त आवश्यक है । सफ़ाई के लिए अंग्रेज़ी मे कहा गया है कि सफ़ाई ईश्वरता से दूसरा दर्जा है । सफाई मे शरीर की सफाई के साथ वस्त्रों और घर की भी स्वच्छता आती है । शरीर की सफाई के लिए स्नान सब से आवश्यक है । जहाँ तक स्वास्थ्य सहारा दे ठंडे पानी से नहाने का अभ्यास डालना चाहिए और प्रातःकाल ही स्नान कर लेना वाञ्छनीय है । उससे सारे दिन स्फूर्ति रहती है । हाँ इतना ध्यान रखना आवश्यक है कि हम स्नान के समय अपने को ठंडी हवा से बचावें और भोजनादि के बाद स्नान न करें । इसीलिए स्नान करके भोजन करने का आदेश दिया जाता है ।

स्नान से पूर्व हमको अपने पेट, दाँतों, जिह्वा आदि को स्वच्छ बना लेना आवश्यक है। अँग्रेजी ढंग के बुरुश शुद्ध नहीं रह सकते हैं। और साफ न रहने के कारण वे रोग के उत्पादक बन जाते हैं। दातुन विशेष कर नीम या बबूल या मौलसिरी की विशेष लाभदायक होती है। आजकल की प्रथा के अनुसार कुछ लोग बिस्तरों पर ही चाय पीने का अभ्यास डाल लेते हैं। चाय तो वैसे भी हानिकारक है किन्तु बिना दन्तधावन किये चाय पीना रात भर की गंदगी को पेट मे ले जाना है।

कपड़ो के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे रेशमी ही हों। बहुत से लोग रेशमी कपड़े इसलिए पहनते है कि वे जल्दी मैले नहीं होते। वास्तव मे वे मैले तो होते ही है, शरीर का पसीना और मल उनमे भिद जाता है किन्तु वे सहज मे मैले दिखाई नहीं देते। वस्त्रों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे मैले दिखाई न दें वरन् उनको मैला होना भी न चाहिए। कपड़े स्वयं धो लेने का अभ्यास हो जाय तो सर्वोत्तम है। उसमे नित्य की सफाई के साथ थोड़ा व्यायाम भी हो जाता है और हाथ से काम करने का अभ्यास भी बढ़ जाता है।

वस्त्रों की सफाई के पश्चात् मकान की सफाई आती है। जिस प्रकार आत्मा के लिए शरीर की शुद्धता आवश्यक है उसी प्रकार शरीर के लिए मकान की सफाई आवश्यक है। मकान के लिए हवादार होना अनिवार्य है। लोग चोरो के भय से मकान को सन्दूक बनाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु चोर हमारी इतनी हानि नहीं करते जितनी कि बन्द मकान। बन्द मकानो मे सूर्य का प्रवेश न होने के कारण सील बनी रहती है और उनमे रोग के कीटाणु भी ख़ूब पनपते है।

मकान के हवादार होने के साथ ही उसकी झाड़-पोंछ भी आवश्यक

है क्योंकि बिना झाड़-पोंछ के वस्तुओं पर धूल जम जाती है और वे गन्दी दिखाई देती हैं। उनसे अरुचि उत्पन्न होती है और धूल में रोग के कीटाणु पालित-पोषित होते रहते हैं। झाड़-पोंछ से कीटाणु एक स्थान में आनन्द से बैठने नहीं पाते और उनकी मृत्यु भी हो जाती है। मकान पर सफेदी और अगर फर्श पक्के न हो तो गोबर-मिट्टी से लीपना रोग के कीटाणुओं का शमन करता है।

मकान को साफ रखकर उसको सुरुचि के साथ सुव्यवस्थित और अलंकृत रखना भी आवश्यक है किन्तु मकान के अलङ्करण तसवीरें गुलदस्ते आदि इतने अधिक न होने चाहिए कि वे धूल और गन्दगी के अड्डे बन जायँ। सुव्यवस्थित घर से हमको प्रसन्नता मिलती है और हमारे कार्यों मे कुशलता और सुलभता प्राप्त होती है। वातावरण का मन पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है।

शरीर-रक्षा के लिए नियमित आहार-विहार, समय पर सोना और जागना संयत और सात्विक भोजन के साथ व्यायाम भी अत्यन्त आवश्यक है। जो लोग साल भर कुछ नहीं पढ़ते और इम्तहान के दिनों मे रात-रात भर जगते है वे अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ लेते है। आलस्यवश देर तक चारपाई पर पड़ा रहना भी उतना ही हानिकारक है जितना कि रात का न सोना। Early to bed and early to rise makes a man healthy, wealthy and wise. समय पर सोना और जागना मनुष्य को स्वस्थ, धनवान और बुद्धिमान बनाता है।

भोजन हमको उतना ही करना चाहिए जितना कि हम पचा सके। हमको जीने के लिए खाना चाहिए न कि खाने के लिए जीना चाहिए—We should eat to live and not

live to eat. महात्मा गाँधी कितना कम खाते है और फिर भी भारत की राजनीति के सूत्रधार बने हुए हैं। स्वाद के लिए भोजन को अधिक गरिष्ट या चटपटा बना लेना हानिकारक सिद्ध होता है। अधिक मसाले भी पाचन शक्ति को कम कर देते हैं। भोजन मे शाक-पात और फलों का अधिक प्रयोग वाञ्छनीय है। उन देशो की दूसरी बात है जहाँ अन्न कम पैदा होता है किन्तु मॉसाहार स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक लाभदायक नहीं है वरन् हानिकारक ही है। उससे स्वभाव मे तामसवृत्ति जाग्रत हो जाती है और क्रोध तथा आलस्य की मात्रा बढ़ जाती है।

व्यायाम नियमित होना चाहिए। उसमे भी अति सर्वत्र वर्जयेत का नियम लागू होता है। व्यायाम मे हमको यह जरूरी नहीं है कि किसी विशेष प्रकार का ही व्यायाम किया जाय। विदेशी खेल अधिक व्यय-साध्य हैं किन्तु उनमे सामाजिकता अधिक आती है। यह सामाजिकता देशी खेलों में भी लाई जा सकती है। व्यायाम शरीर को पुष्ट और बलिष्ट रखने का साधन मात्र है, वह जीवन का साध्य नहीं है। हमारा व्यायाम यदि हममे से आलस्य को दूर नहीं कर सकता तो निरर्थक है। बहुत से बड़े-बड़े खिलाड़ी चाहे एक मील की दौड़ मे बाजी ले जायँ, लेकिन चारपाई से उठकर अपने आप पानी पी लेने मे भी आलस्य करते हैं। यह प्रवृत्ति उनके खिलाड़ीपन की विडम्बना है, सच्चे खिलाड़ी को आलस्य के त्याग के साथ विफलता से न विचलित होना, दूसरो के साथ उदारता का व्यवहार आदि मानसिक गुणों का भी अपने मे अनुशीलन करना चाहिए।

अपने हाथ से कुछ काम करना जैसे पानी भरना, बोझा उठाना, मकान की सफाई करना, कपड़े धोना भी व्यायाम का एक उपयोगी प्रकार है। हममें हाथ से काम करने का गौरव आना

चाहिए। इसीको अंग्रेजी में Dignity of manual labour कहते हैं। अपने हाथ से काम करने में हममें समता का भाव बढ़ता है और हम जनता के साथ सम्पर्क मे आते हैं। कर्मण्य के लिए कोई काम नीचा नहीं है। काम मनुष्य को ऊँचा उठाता है, उसको गौरव प्रदान करता है। काम करना एक प्रकार की पूजा है 'Work is worship' जो आदमी हाथ से काम करते है उनमे आत्म-निर्भरता आती है। उनका जीवन संतुलित और सौन्दर्यमय बन जाता है। लोग उनका अनुकरण करने को तैयार रहते हैं। जो लोग काम से दूर भागते है उनके अनुयायी और नौकर-चाकर बेगार टालते हैं। हमको अपने नौकर से यह कहना कि जाओ अमुक काम कर लाओ यह अधिक श्रेयस्कर है कि आओ हमारे साथ यह काम करो।

मानसिक उन्नति

'मन के हारे हार है मन के जीते जीत'

मनुष्य की सारी क्रियाओं का मूल स्रोत मन मे है। इसीलिए शास्त्रों मे कहा गया है कि 'मनः पूतं समाचरेत्' मन को पवित्र बनाओ। मन को पवित्र बनाने से आध्यात्मिक उन्नति भी होती है। आध्यात्मिक उन्नति से पूर्व हमारे लिए यह प्रश्न है कि मन को किस प्रकार सुसम्पन्न और सुसंस्कृत बनाया जाय, जिससे कि हम अपने जीवन यापन मे सफल हो सकें ? हमको संसार मे व्यवहार-कुशल होने के लिए संसार के ज्ञान की आवश्यकता है। वह ज्ञान हमको निरीक्षण, गुरु की शिक्षा और अध्ययन एवं मनन से प्राप्त होता है।

ज्ञानोपार्जन तो सारी आयु भर होता है। अनुभव की पाठ-शाला में कभी छुट्टी नहीं होती किन्तु विद्यार्थी जीवन उसके लिए विशेष उपयुक्त है। प्राचीनकाल और आजकल के विद्यार्थी जीवन मे दो बातों का विशेष अन्तर है। पहली बात तो यह कि प्राचीनकाल मे विद्यार्थी शहर से अलग गुरुकुल मे रहते थे और समावर्तन संस्कार होने पर ही घर पर लौटकर गार्हस्थ जीवन के चक्कर मे पड़ते थे। आजकल का विद्यार्थी घर पर रहकर भी विद्योपार्जन कर सकता है और यदि वह छात्रावास मे भी रहता है तो यातायात की सुविधाओं के कारण घर के सम्पर्क मे अधिक रह सकता है। आजकल का विद्यार्थी गृहस्थ बनकर पिता होने का भी सौभाग्य या दुर्भाग्य प्राप्त कर लेता है। आधुनिक काल के

विद्यार्थी को वह निर्द्वन्द्वता नहीं जो पहले के विद्यार्थियो को थी। पहले जमाने के विद्यार्थियो का शहरी वातावरण से अलग रहने के कारण प्रकृति से भी सीधा सम्पर्क अधिक रहता था।

दूसरा अन्तर इस बात का है कि प्राचीनकाल का विद्यार्थी सेवा से विद्योपार्जन करता था आजकल का विद्यार्थी धन से। प्राचीन शिक्षा की झॉकी देते हुए गुप्त जी लिखते है।

पढते सहस्रों शिष्य है, पर फीस ली जाती नहीं।
वह उच्च शिक्षा तुच्छ धन, पर बेच दी जाती नहीं॥
दे वस्त्र भोजन भी स्वय, कुल पति पढाते हैं उन्हें।
बस भक्ति से संतुष्ट हो, दिन-दिन बढाते हैं उन्हें॥

पहले जमाने मे गुरु और शिष्य का आध्यात्मिक और निजी सम्बन्ध होता था, तभी तो, कबीर ने गुरु को गोविन्द से भी अधिक महत्ता दी है और तुलसी ने गुरु-पद पद्म पराग को ऑखो का अञ्जन बनाया है। आजकल के विद्यार्थी गुरुओ को अपना क्रीत दास समझते हैं, यहॉ तक कि कवि सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने संस्मरणो मे प्रारम्भिक शिक्षाकाल की गुलाम राज्य से तुलना की है। पहला विद्यार्थी अपने को गुरु का दास समझता था। भगवान् श्रीकृष्ण को भी सुदामा के साथ लकडी बीनने जाना पड़ता था। पहले गुरुकुलों मे इस सेवावृत्ति के कारण जो साम्यभाव था वह आजकल नहीं है। गुरु सेवा के कारण प्राचीनकाल मे गुरु के साथ निजी सम्पर्क का भी प्राचुर्यमय प्रसार था। विद्यार्थी गुरु के परिवार का एक व्यक्ति बन जाता था और गुरु कुलपति कहलाते थे। आजकल तो गुरु शिष्य का सम्बन्ध कुछ-कुछ यान्त्रिक-सा हो गया है, विशेप कर ऊॅचे दर्जों मे जहॉ पर कि विद्यार्थी गुरु के लिखाए हुए नोटो पर निर्भर रहता है।

हम यह नहीं कहते कि प्राचीन प्रथा की ही पुनरावृत्ति हो उसमे थोड़ा दोष भी था वह यह कि विद्यार्थियों को संसार का अपेक्षाकृत ज्ञान कम होता था। लेकिन हम अपने विद्यार्थी जीवन मे प्राचीनकाल की बहुत-सी बातो को अपना सकते हैं। (१) हम प्रकृति से अधिक सम्पर्क बढ़ावें। (२) गुरु शिष्य के साथ निजो सम्बन्ध स्थापित हो। (३) हमारे विद्यार्थियों मे गुरु के प्रति आदर और विनय की भावना बढ़े।

ज्ञानोपार्जन की सबसे पहला सोपान निजी निरीक्षण है। संसार मे हमको आँखें खोलकर चलना चाहिए और जो नई बात देखे उसकी व्याख्या के लिए अपने मस्तिष्क को कष्ट दें और यदि समझ मे न आये तो गुरुजनो से पूछें। हम मे अपने में कौतूहलवृत्ति को जाग्रत करना आवश्यक है। कौतूहल ही ज्ञान का जनक है। कौतूहल द्वारा जाग्रत हुए संसार की व्याख्या के प्रयत्न मे विज्ञान और दर्शन शास्त्र का उदय हुआ। न्यूटन ने सेव का जमीन पर गिरते देखकर ही गुरुत्वाकर्षण का नियम बनाया था। जेम्स वाट ने रसाई घर मे भाप शक्ति से पतीली के ढक्कन को उठते और गिरते देखकर स्टीम एञ्जिन बनाने का श्रीगणेश किया था। सर जगदीशचन्द्र बसु गॉव के मछुओ के लड़कों के साथ नदी मे जल-जन्तुओ का देखा करते थे तभी वे जीव-विज्ञान के सम्बन्ध मे कुछ नवीन बातें बता सके। हमारा आरम्भिक निरीक्षण तो निरुद्देश्य ही होगा किन्तु पीछे हम किसी विशेष समस्या को लेकर अपने निरीक्षण को सोद्देश्य बना सकते हैं। उस समय हमको पक्ष और विपक्ष दोनो के ही उदाहरणों को निष्पक्षता पूर्वक सग्रह करना चाहिए। हमको अपने सिद्धान्त की पुष्टि के उत्साह मे विपक्ष की बातो की उपेक्षा करना अपनी अवैज्ञानिकता का परिचय देना होगा। पीछे वे ही विपक्ष की

बातें हमारी हार और पराजय का कारण बन जाती हैं। विपक्ष की बातों का यथावत ध्यान रखना ही तो वैज्ञानिक मनोवृत्ति है। वैज्ञानिक मनोवृत्ति केवल प्रयोगशाला में ही अपेक्षित नहीं होती है वरन् जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसकी आवश्यकता रहती है। निष्पक्षता का ही दूसरा नाम वैज्ञानिक मनोवृत्ति है।

शिक्षा और अध्ययन मानसिक उन्नति का दूसरा सोपान है। शिक्षा का अर्थ मस्तिष्क को ज्ञान से भर लेना नहीं है वरन् गुरुओं और पुस्तकों द्वारा प्राप्त ज्ञान को अपने मानसिक संस्थान का अंग बनाना और उसके सहारे अपनी ईश्वरदत्त शक्तियों का विकास करना। पुस्तकों द्वारा प्राप्त ज्ञान हमारे निरीक्षण को सहारा देता है और उसके द्वारा शास्त्रीय ज्ञान परिपक्व होता है। अपने गुरु के प्रति श्रद्धा और विश्वास रखते हुए हमको यथासम्भव प्रत्येक ज्ञान को अपने निजी अनुभव का विषय बनाना चाहिए।

यह बात हमको सखेद स्वीकार करनी पड़ेगी कि प्रत्येक ज्ञान हमारे निजी अनुभव का विषय नहीं बन सकता है। भूगोल का ही निजी ज्ञान प्राप्त करने के लिए पूरे जीवन का पर्यटन पर्याप्त न होगा। इतिहास के लिए भी कोई ऐसा दूरवीक्षण यन्त्र नहीं बना है जो उसे हमारे लिए हस्तामलक बना दे फिर भी हम इन विषयों का ज्ञान अन्य पुस्तकों से प्राप्त कर सकते हैं। भूगोल के लिए यात्रा की पुस्तकें पढ़ना वाञ्छनीय है। इतिहास के लिए युद्धों आदि के साहित्यिक वर्णन, जीवन चरित्र आदि सम्बन्धी पुस्तकों का अध्ययन हितकर होगा।

हमारे विद्यार्थी जीवन में शिक्षा के तीन साधन रहते हैं। पाठ्य-क्रम की पुस्तकें, गुरु का उपदेश और सहकारी अध्ययन।

पाठ्य पुस्तको को भी हमे परीक्षा पास करने की दृष्टि से नहीं वरन् तत्त्वदर्शन की दृष्टि से पढ़ना चाहिए। उन पुस्तको द्वारा विचार और भाषा पर प्रभुत्व प्राप्त करना अपना ध्येय बनाया जा सकता है। जो पाठ हम पढ़े उसमे हम यह देख लें कि हमको कौन-सा नया विचार मिला या उसके द्वारा किस पुराने विचार का संशोधन या पुष्टिकरण हुआ। उसी विचार को हमें अन्य पुस्तको मे भी खोजने की चाह और प्रवृत्ति होना अपेक्षित है।

अध्ययन के साथ मनन भी आवश्यक है। मनन से ही ज्ञान परिपक्व होता है। मनन को ही गुनना कहते हैं। अपने अधीन ज्ञान का और ज्ञान के साथ तारतम्य स्थापित करना तथा उसको व्यवहार मे लाने के अवसर और उपाय सोचना ही मनन है। ज्ञान का लक्ष्य क्रिया है। ज्ञान को उपयोगी बनाना प्रत्येक शिक्षार्थी का पुनीत कर्तव्य है।

हमारी पुस्तकें भाषा के नये-नये प्रयोग सिखाने मे सहायक हो सकती हैं। हमको उनसे अपने विचारों की अभिव्यक्ति के साधन खोजना चाहिए। पाठ्य पुस्तको मे विचारो की अभिव्यक्ति ही तो है। हमको जो नया शब्द या वाक्यांश मिले उसका कोष से और गुरुओं से अर्थ स्पष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए। शब्दो के अर्थ के चलते ज्ञान को जरूरत नहीं वरन् निश्चित ज्ञान अपेक्षित है। विद्यार्थियों के ज्ञान में निश्चयता और यथार्थता आना अत्यन्त आवश्यक है।

शब्दो के अर्थ का ज्ञान ही नहीं वरन् उनका ठीक प्रयोग जानने मे ही भाषा सम्बन्धी ज्ञान की सार्थकता है। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है और यथार्थ अभिव्यक्ति बिना प्रयोग के नहीं आती। पढ़ना-लिखना युग्म अर्थात् जोड़े के शब्द हैं

किन्तु हमारे विद्यार्थी पढ़ते अधिक हैं लिखते कम हैं। पढ़ना-लिखना बराबर की मात्रा में होना चाहिए। लिखने से ज्ञान में निश्चयता आती है। लेकिन लिखना अनर्गल भाषण-सा न होना चाहिए। उसके नीचे अध्ययन और मनन की दृढ़ आधार शिलाएँ होना आवश्यक हैं।

अध्ययन का क्रियात्मक प्रयोग और परीक्षा भी वाञ्छनीय है। मस्तिष्क और हाथ का पारस्परिक सहयोग होना चाहिए। हमको अपने ज्ञान को मनसा, वाचा और कर्मणा चरितार्थ करना जीवन के साफल्य में सहायक होगा। जिन लोगों ने बड़े-बड़े आविष्कार किये हैं वे सब हाथ से काम करने वाले थे। राइट बन्धु जिन्होंने हवाई जहाज बनाया, साइकिल मरम्मत करनेवाले दूकानदार थे।

विद्यार्थी जीवन समाप्त होने पर भी हमको विद्यार्थियों का-सा कौतूहल और उनकी जिज्ञासा-वृत्ति की आवश्यकता रहेगी। हमको शिक्षा नीच-से-नीच और छोटे-से-छोटे से मिल सकती है। भगवान् दत्तात्रेय ने चौबीस गुरु बनाये थे। संसार के कण-कण में शिक्षा और मनन की सामग्री है। हमको आँखें और मस्तिष्क चाहिए।

चरित्र-निर्माण

Good name in man and woman dear my Lord, is the immediate jewel of their souls ;

Who steals my purse, steals trash; 'tis something nothing'

'Twas mine, 'tis his and has been slave to thousands,

But he that filches from me my good name,

Robs me of that which not enriches him, but makes me poor indeed,

—*Shakespear*

मनुष्य की विशेषता उसके चारु-चरित्र मे है। मनुष्य का आदर पद, धन वा आभिजात्य के कारण भी होता है किन्तु कुछ ही समय तक और वह भयजन्य होने के कारण श्लाघनीय नहीं समझा जाता। धनी का आदर भी स्वार्थ वश ही होता है। विद्या का आदर हाँ ! अपने ही कारण से होता है लेकिन वह भी विनय और चरित्र के विना चिरस्थायी नहीं होता। रावण पण्डित-पुङ्गव था। इन्द्र और कुवेर उसके द्वार पर खड़े रहते थे। उसके बल-वैभव पर आज भी लोग आश्चर्य कर उठते है लेकिन उसको आदर नहीं मिल सका क्योंकि उसमे चरित्र का अभाव था। इस कारण मनुष्य की महत्ता चरित्र मे है। मनुष्य की आत्मा के खरे-खोटे का निर्णय चरित्र की कसौटी के सहारे ही किया जा सकता है।

संसार में जितने प्रकार के यश हैं वे अवश्यमेव ईर्ष्याजन्य भावनाएँ पैदा करते हैं। विद्वान को सम्मानित देखकर सब किसी की इच्छा होती है कि मैं भी यह आदर प्राप्त कर संसार को विस्मय-विमुग्ध कर दूँ। लेकिन शान्ति के एकमात्र आधार चारु-चरित्र वाले में इस स्पृहा को नहीं देखा जाता। वह यह कभी नहीं चाहता है कि चरित्र के मूल्यांकन एवं चरित्र-पालन में कोई उससे आगे न निकल सके। उसकी हृदयकली तो सब में चरित्र-पालन की इच्छा देखकर खिल उठती है।

मनुष्य का मन उद्यान-भूमि की भाँति है। अगर उसकी पूरी तरह चौकसी नहीं की जावेगी तो लम्बी-लम्बी घास और कटीले पेड़ आपसे-आप उग आने की सम्भावना रहती है। इसी प्रकार अगर चरित्र-पालन का ध्यान नहीं रक्खा जावेगा तो उसके बिगड़ जाने में कुछ भी समय नहीं लगेगा। टीले पर चढ़ने में कठिनाई मालूम होती है लेकिन उतरने में कोई कठिनाई सामने नहीं आती। चरित्र के अभाव में 'अक्षीणो: वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतोहतः' अर्थात् धन से हीन निर्धन नहीं है बल्कि सद्वृत्त के ही अभाव में मनुष्य मरा हुआ है।

अब यह जान लेना आवश्यक है कि यह चरित्र है क्या वस्तु जो इतना महत्त्व रखती है। चरित्र उन गुणों का समूह है जो हमारे व्यवहारिक जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। विनय, उदारता, धैर्य, ईमानदारी, सचाई, दृढ़ता आदि सब गुण चरित्र में आते हैं। यद्यपि चरित्र के बनाने में और अनेक गुण स्पृहणीय हैं तथापि इन गुणों का विशेष महत्त्व है।

विनय विद्या का भूषण है। विनयाभाव में विद्या अपनी शोभा खो बैठती है। श्रीमद्भगवत्गीता में ब्राह्मण का 'विद्या विनय सम्पन्ने' विशेषण देकर श्रीकृष्ण भगवान् ने विद्या का विनय के

साथ आवश्यक सम्बन्ध बतलाया है। विनय से केवल विद्या की शोभा नहीं है। वह धन और बल की भी शोभा बढ़ाती है। विनय के आजाने पर अभिमान का अन्त हो जाता है। अभिमान के अभाव मे व्यक्तित्व की परिमितता मिटने लगती है और मनुष्य मे जाति के प्रति आदर एवं सहानुभूति के भाव उत्पन्न होने लगते है। सहनशीलता आदि अनेक सद्भाव भी विनय से लगे हुए हैं। इस कारण इसके अभ्यास से इसके सहचर अनेक मुख्य-मुख्य गुणो का भी अभ्यास हो जाता है।

उदारता के अन्तर्गत वे भाव आते हैं जिनमें अपने क्षुद्र आत्मभाव का परित्याग करना पड़ता है। दूसरो के प्रति समता भाव रखना, दूसरो के विचारो का आदर करना, स्वयं श्रेय न लेकर दूसरो को श्रेय देना आदि गुण उदारता की सीमा मे आते हैं। उदारता का अर्थ धनराशि को 'दोनों हाथ उलीचिये जो घर मे बाढ़ै दाम' के आदर्श के अनुसार बिना उद्देश्य के नष्ट करना नहीं है वरन् पात्र को ही देना चाहिए है। उपकृत पुरुष तक के साथ आदर का भाव रखना चाहिए। अपने से छोटे लोगों के अपराधो को स्वयं ही व्याख्या करके क्षमा कर देने में उदारता है। जो लोग दूसरो की छोटी से छोटी बात को भी महत्त्व देने को तैयार रहते हैं वे ही उदार कहलाने के भागी हैं।

मानव जीवन कण्टकाकीर्ण है। इसमे पद-पद पर कठिनाइयों के जाल बिछे हुए हैं। कठिनाइयो के रहते हुए भी स्थिरचित्त मे चंचलता उत्पन्न न होना ही धीर का गुण है। वैभवविलास मे हँसना-खेलना कोई महत्त्व की बात नहीं है क्योंकि उस परिस्थिति में तो सभी ऐसा कर सकते हैं लेकिन आपत्तिकाल मे हँसना प्रसन्न रहना सच्चा महत्त्व रखता है। कठिन से कठिन स्थिति में प्रसन्न रहना आत्मा की उच्चता का सूचक है। राजा

हरिश्चन्द्र पुत्र-शव को देखकर भी धैर्य से नहीं विचलित हुए और अपना कर्तव्य करते गये। मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी को राज्य के स्थान पर वनवास मिला लेकिन उनके मुख पर दुख की सिकुड़न नहीं पड़ी। इसी कारण ये लोग जगद्वन्दनीय हुए।

सत्य तो चरित्र की सच्ची कसौटी है। मनुष्य मे अपने कुछ वास्तविक विश्वास होते हैं; उन्हे प्रकट करने में वह हिचकता है लेकिन उन विश्वासो को व्यक्त करने का साहस ही तो सत्य का निर्वाह है। लोग ख़ुशामद से झूठ बोला करते है। जब किसी की आत्मा को आघात पहुँचाना हिंसा है तो अपनी आत्मा का गला घोटना भी तो हिंसा ही है और लोग झूठ बोलकर ऐसा करते रहते हैं जिसके कारण अनेकानेक दुर्गुणो के लिए मन का द्वार खुल जाता है। इसीलिए कहा गया है 'साँच बरोबर तप नहीं झूँठ बरोबर पाप'। सत्य बोलने वाला ही संसार मे आदर पाता है। उपनिषदों मे सत्यकाम जाबाली की कथा आती है। वह गुरुकुल मे पढ़ने गया। वहाँ उससे उसका गोत्र और पिता का नाम पूछा गया। उसने अपनी माता से अपना गोत्र पूछा। मा ने कहा कि मैंने चाकर वृत्ति करते हुए तुझे प्राप्त किया था। इसलिए तेरे कुल-गोत्र का मुझे पता नहीं। बालक ने वैसा ही अपने गुरु से कह दिया। गुरु ने बड़े हर्ष के साथ कहा कि ऐसा सत्य ब्राह्मण ही बोल सकता है। तू अवश्य ब्राह्मण का बालक होगा। गुरु ने उसका संस्कार कर उसे गुरुकुल में पढ़ाया।

लोग लालच में पड़कर अपना सर्वस्व नष्ट कर डालते हैं। बड़े-बड़े मनीषी भी इसी लालच में पड़कर अपने त्याग-तपस्या को खो बैठे और जैसे आये थे वैसे ही चले गये। आजकल 'पण्डित सोई जो गाल बजावा' लेकिन सच्चा असर उसी की बात का होता है जो लालच में नहीं फँसता। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे'

लेकिन 'जे आचरहिं ते नर न घनेरे'। संसार मे सुन्दर-सुन्दर उपदेश तो बहुत कर लेते है लेकिन कर्तव्य परायणो की संख्या अँगुली पर गिनने लायक ही है। इसी कारण संसार की सुन्दर से सुन्दर योजनाएँ निष्फल हो जाती है। जो लोग आपत्ति आने पर विचलित नहीं होते, प्रलोभनो के जाल मे नहीं फँसते और अपने ध्येय की पूर्ति के लिए अपने हानि-लाभ का विचार नहीं करते वे ही सच्चे कर्तव्य-परायण कहे जाते है, उन्हीं का समाज मे आदर होता है और वे ही आत्म-सन्तोष के हकदार है। 'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः' विकार के कारण उत्पन्न होने पर जिनके चित्त विचलित नहीं होते है वे ही धीर है।

आत्मनिर्भरता निम्न अवगुणो का संहार करती है। आत्म-निर्भर मनुष्य को दूसरे के पैरो के तलवे नहीं चाटने पड़ते और न चापलूसी-चाटुकारी मे ही उसे समय व्यतीत करना पड़ता है। उसकी सैद्धान्तिक दृढ़ता बढ़ती जाती है। उसको गौरव और महत्त्व स्वतः ही प्राप्त होता है। 'दैव दैव आलसी पुकारा' न कि दृढ़ कर्तव्य। ईश्वर भी उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता कर लेते हैं,—'God helps those who help themselves'।

चरित्र से शील और आत्म-गौरव का भी विशेष सम्बन्ध है। चरित्रवान् शीलवान् हो सकता है लेकिन स्यात् शीलवान् चरित्रवान् नहीं हो सकता। तो भी शील की चरित्र-निर्माण में विशेष आवश्यकता है। आत्म-गौरव भी मनुष्य को निम्न कार्य करने से रोकता है।

चरित्रवान् पुरुष को छल-कपट हीन और ईमानदार होने की भी आवश्यकता है। उसमें अविकत्थना का भाव अवश्य रहना

चाहिए। अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने से भावी उन्नति का द्वार बन्द हो जाता है।

ये सब गुण अभ्यास से प्राप्त हो सकते हैं। बाल्यावस्था चरित्र-निर्माण के लिए उपयुक्त समय है। इस समय जो सद्-भ्यास बन जाते हैं वे सारी उम्र काम देते हैं। बालकपन में सीखा हुआ तैरना मनुष्य उम्र भर नहीं भूलता है। स्वनाम धन्य गोखले के सच बोलने के संस्कार बालकपन से ही बन गये थे। एक बार उन्होने किसी लड़के की सहायता से एक सवाल निकाल लिया था उसके कारण उनको उनके मास्टर ने दर्जे मे अव्वल बैठाया। वे रो पड़े और कहने लगे कि वे अव्वल बैठने के अधिकारी नहीं। अव्वल बैठने का वही लड़का अधिकारी है। ऐसे ही संस्कार आदमी को बड़ा और चरित्रवान् बनाते हैं। यदि हमको अपना जीवन सार्थक करना है तो हमको सद्भ्यास द्वारा चरित्रवान् बनने का प्रयत्न करना चाहिए। भारत का भविष्य भारत के नवयुवक समाज के चरित्रवान् बनने पर ही निर्भर है। चरित्रवान् पुरुष ही देश को उन्नति का पथ दिखला सकते है, नव-जागरण का शंख फूँक सकते है और जाति के सुधारने मे समर्थ होते है। चरित्रवान् पुरुष ही देश का गौरव हैं। चरित्रहीन मनुष्य देश के कलंक हैं और वे दिन-प्रति-दिन उसी प्रकार बिगड़ते जाते हैं जिस प्रकार मैले कपड़े वाला मनुष्य हर स्थान पर बैठ जाता है।

यथाहि मलिनैर्वस्त्रैर्यत्रतत्रोपविश्यते
एवं चलितवृत्तस्तु वृत्तशेषं न रक्षति।

मित्रता

जब कोई युवा पुरुष अपने घर से बाहर निकल कर बाहरी संसार में अपनी स्थिति जमाता है, तब पहली कठिनता उसे मित्र चुनने मे पड़ती है। यदि उसकी स्थिति बिलकुल एकांत और निराली नहीं रहती है तो उसकी पहचान के लोग धड़ाधड़ बढ़ते जाते हैं और थोड़े ही दिनों मे कुछ लोगों से उसका हेल-मेल हो जाता है। यही हेल-मेल बढ़ते-बढ़ते मित्रता के रूप में परिणत हो जाता है। मित्रों के चुनाव की उपयुक्तता पर उसके जीवन की सफलता निर्भर हो जाती है; क्योंकि संगत का गुप्त प्रभाव हमारे आचरण पर बड़ा भारी पड़ता है। हम लोग ऐसे समय मे समाज में प्रवेश करके अपना कार्य आरम्भ करते हैं जब कि हमारा चित्त कोमल और हर तरह का संस्कार ग्रहण करने योग्य रहता है, हमारे भाव अपरिमार्जित और हमारी प्रवृत्ति अपरिपक्व रहती है। हम लोग कच्ची मिट्टी की मूर्त्ति के समान रहते हैं जिसे जो जिस रूप का चाहे, उस रूप का करे—चाहे राक्षस बनावे, चाहे देवता। ऐसे लोगों का साथ करना हमारे लिए बुरा है जो हमसे अधिक दृढ़संकल्प के हैं; क्योंकि हमें उनकी हर एक बात बिना विरोध के मान लेनी पड़ती है। पर ऐसे लोगों का साथ करना और भी बुरा है जो हमारी ही बात को ऊपर रखते हैं; क्योंकि ऐसी दशा मे न तो हमारे ऊपर कोई दाब रहती है और न हमारे लिए कोई सहारा रहता है। दोनों अवस्थाओं में जिस बात का भय रहता है, उसका पता युवा

पुरुषों को प्राय: बहुत कम रहता है। यदि विवेक से काम लिया जाय तो यह भय नहीं रहता; पर युवा पुरुष प्राय: विवेक से काम कम लेते हैं। कैसे आश्चर्य की बात है कि लोग एक घोड़ा लेते हैं तो उसके गुण-दोष को कितना परख कर लेते हैं, पर किसी को मित्र बनाने में उसके पूर्व आचरण और प्रकृति आदि का कुछ भी विचार और अनुसंधान नहीं करते। वे उसमें सब बातें अच्छी ही मान कर उस पर अपना पूरा विश्वास जमा देते हैं। हँसमुख चेहरा, बातचीत का ढब, थोड़ी चतुराई वा साहस—ये ही दो-चार बातें किसी में देखकर लोग चटपट उसे अपना बना लेते हैं। हम लोग यह नहीं सोचते कि मैत्री का उद्देश्य क्या है, तथा जीवन के व्यवहार में उसका कुछ मूल्य भी है। यह बातें हमें नहीं सूझतीं कि यह एक ऐसा साधन है जिससे आत्मशिक्षा का कार्य बहुत सुगम हो जाता है। एक प्राचीन विद्वान् का वचन है—"विश्वासपात्र मित्र से बड़ी भारी रक्षा रहती है। जिसे ऐसा मित्र मिल जाय उसे समझना चाहिए कि ख़जाना मिल गया।" विश्वासपात्र मित्र जीवन की एक औषधि है। हमें अपने मित्रों से यह आशा रखनी चाहिए कि वे उत्तम संकल्पों में हमें दृढ़ करेंगे, दोषों और त्रुटियों से हमें बचावेंगे, हमारे सत्य, पवित्रता और मर्यादा के प्रेम को पुष्ट करेंगे, जब हम कुमार्ग पर पैर रखेंगे, तब वे हमें सचेत करेंगे, जब हम हतोत्साह होंगे, तब हमें उत्साहित करेंगे; सारांश यह है कि वे हमें उत्तमतापूर्वक जीवन-निर्वाह करने में हर तरह से सहायता देंगे। सच्ची मित्रता में उत्तम से उत्तम वैद्य की-सी निपुणता और परख होती है, अच्छी से अच्छी माता का-सा धैर्य और कोमलता होती है। ऐसी ही मित्रता करने का प्रयत्न प्रत्येक पुरुष को करना चाहिए।

छात्रावस्था में तो मित्रता की धुन सवार रहती है। मित्रता

हृदय से उमड़ी पड़ती है। पीछे के जो स्नेह-बंधन होते है, उनमे न तो उतनी उमंग रहती है न उतनी खिन्नता। बाल-मैत्री मे जो मग्न करनेवाला आनन्द होता है, जो हृदय को बेधने वाली ईर्ष्या और खिन्नता होती है, वह और कहाँ ? कैसी मधुरता और कैसी अनुरक्ति होती है; कैसा अपार विश्वास होता है ! हृदय के कैसे कैसे उद्गार निकलते है ! वर्तमान कैसा आनंदमय दिखाई पड़ता है और भविष्य के सम्बन्ध मे कैसी लुभानेवाली कल्पनाएँ मन में रहती है। कितनी जल्दी बातें लगती है और कितनी जल्दी मानना-मनाना होता है। 'सहपाठी की मित्रता' इस उक्ति मे हृदय के कितने भारी उथल-पुथल का भाव भरा हुआ है ! किन्तु जिस प्रकार युवा पुरुष की मित्रता स्कूल के बालक की मित्रता से दृढ़, शांत और गंभीर होती है, उसी प्रकार हमारी युवावस्था के मित्र बाल्यावस्था के मित्रो से कई बातो मे भिन्न होते हैं। मै समझता हूँ कि मित्र चाहते हुए बहुत से लोग मित्र के आदर्श की कल्पना मन मे करते होंगे, पर इस कल्पित आदर्श से तो हमारा काम जीवन की झंझटो में चलता नहीं। सुन्दर प्रतिभा, मनभावनी चाल और स्वच्छन्द प्रकृति ये ही दो-चार बातें देखकर मित्रता की जाती है, पर जीवन-संग्राम मे साथ देनेवाले मित्रो मे इनसे कुछ अधिक बातें चाहिएँ। मित्र केवल उसे नहीं कहते जिसके गुणो की तो हम प्रशंसा करें, पर जिससे हम स्नेह न कर सकें, जिससे अपने छोटे-मोटे काम तो हम निकालते जायँ, पर भीतर ही भीतर घृणा करते रहें। मित्र सच्चे पथप्रदर्शक के समान होना चाहिए जिस पर हम पूरा विश्वास कर सकें, भाई के समान होना चाहिए जिसे हम अपना प्रीति-पात्र बना सकें। हमारे और हमारे मित्र के बीच सच्ची सहानुभूति होनी चाहिए—ऐसी सहानुभूति जिससे दोनो मित्र एक दूसरे की बराबर खोज-खबर लिया करें, ऐसी सहानुभूति जिससे एक के हानि-लाभ को

दूसरा अपना हानि-लाभ समझे। मित्रता के लिए यह आवश्यक नहीं है कि दो मित्र एक ही प्रकार का कार्य करते हों वा एक ही रुचि के हों। इसी प्रकार प्रकृति और आचरण की समानता भी आवश्यक वा वांछनीय नहीं है। दो भिन्न प्रकृति के मनुष्यों में बराबर प्रीति और मित्रता रही है। राम धीर और शांत प्रकृति के थे, लक्ष्मण उग्र और उद्धत स्वभाव के थे, पर दोनों भाइयो मे अत्यन्त प्रगाढ़ स्नेह था। उदार तथा उच्चाशय कर्ण और लोभी दुर्योधन के स्वभावों मे कुछ विशेष समानता न थी, पर उन दोनों की मित्रता ख़ूब निभी। यह कोई बात नहीं है कि एक ही स्वभाव और रुचि के लोगों ही में मित्रता हो सकती है। समाज मे विभिन्नता देखकर लोग एक दूसरे की ओर आकर्षित होते है। जो गुण हम मे नहीं हैं, हम चाहते है कि कोई ऐसा मित्र मिले जिसमे वह गुण हो। चिंताशील मनुष्य प्रफुल्ल-चित्त मनुष्य का साथ ढूँढ़ता है, निर्बल बली का, धीर उत्साही का। उच्च आकांक्षावाला चन्द्रगुप्त युक्ति और उपाय के लिए चाणक्य का मुँह ताकता था। नीति-विशारद अकबर मन बहलाने के लिए बीरबल की ओर देखता था।

मित्र का कर्त्तव्य इस प्रकार बताया गया है—"उच्च और महाकार्यों मे इस प्रकार सहायता देना, मन बढ़ाना और साहस दिलाना कि तुम अपनी निज की सामर्थ्य से बाहर काम कर जाओ।" यह कर्त्तव्य उसी से पूरा होगा जो दृढ़चित्त और सत्य संकल्प का हो। इससे हमे ऐसे ही मित्रो की खोज मे रहना चाहिए जिनमें हमसे अधिक आत्मबल हो। हमें उनका पल्ला उसी तरह पकड़ना चाहिए जिस तरह सुग्रीव ने राम का पल्ला पकड़ा था। मित्र हो तो प्रतिष्ठित और शुद्ध हृदय के हो, मृदुल और पुरुषार्थी हों, शिष्ट और सत्यनिष्ठ हो, जिसमे हम अपने को उनके

भरोसे पर छोड़ सके और यह विश्वास कर सकें कि उनसे किसी प्रकार का धोखा न होगा।

जो बात ऊपर मित्रों के सम्बन्ध में कही गई है, वही जान-पहचानवालो के सम्बन्ध में भी ठीक है। जान-पहचान के लोग ऐसे हो जिनसे हम कुछ लाभ उठा सकते हो, जो हमारे जीवन को उत्तम और आनन्दमय करने में कुछ सहायता दे सकते हो, यद्यपि उतनी नहीं जितनी गहरे मित्र दे सकते है। मनुष्य का जीवन थोड़ा है; उसमे खोने के लिए समय नहीं। यदि क, ख, और ग हमारे लिए कुछ नहीं कर सकते हैं, न कोई बुद्धिमानी वा विनोद की बात-चीत कर सकते हैं, न कोई अच्छी बात बतला सकते है, न अपनी सहानुभूति द्वारा हमे ढाढस बँधा सकते हैं, न हमारे आनन्द मे सम्मिलित हो सकते है, न हमे कर्तव्य का ध्यान दिला सकते हैं, तो ईश्वर हमे उनसे दूर ही रखे। हमें अपने चारो ओर जड़-मूर्त्तियाँ सजाना नहीं है। आजकल जान-पहचान बढ़ाना कोई बड़ी बात नहीं है। कोई भी युवा पुरुष ऐसे अनेक युवा पुरुषो को पा सकता है जो उसके साथ थियेटर देखने जायँगे, नाच-रंग में जायँगे, सैर-सपाटे मे जायँगे, भोजन का निमंत्रण स्वीकार करेंगे। यदि ऐसे जान-पहचान के लोगो से कुछ हानि न होगी तो लाभ भी न होगा। पर यदि हानि होगी तो बड़ी भारी होगी। सोचो तो, तुम्हारा जीवन कितना नष्ट होगा, यदि ये जान-पहचान के लोग उन मनचले युवको मे से निकलें जिनकी संख्या दुर्भाग्यवश आजकल बहुत बढ़ रही है, यदि शोहदो मे से निकलें जो अमीरों की बुराइयों और मूर्खताओं की नकल किया करते हैं, दिन-रात बनाव-सिंगार मे रहा करते हैं, महफिलो मे, 'ओ हो हो' 'वाह' 'वाह' किया करते हैं, गलियों में ठट्ठा मारते हैं और सिगरेट का धुआँ उड़ाते चलते

है। ऐसे नवयुवकों से बढ़कर शून्य, निसार और शोचनीय जीवन और किसका है? वे अच्छी बातों के सच्चे आनंद से कोसों दूर हैं। उनके लिए न तो संसार मे सुन्दर और मनोहर उक्तिवाले कवि हुए हैं और न सुन्दर आचरण वाले महात्मा हुए हैं। उनके लिए न तो बड़े-बड़े वीर अद्भुत कर्म कर गये है और न बड़े-बड़े ग्रन्थकार ऐसे विचार छोड़ गये हैं जिनसे मनुष्य जाति के हृदय मे सात्विकता की उमंगें उठती हैं। उनके लिए फूल पत्तियो में कोई सौन्दर्य्य नहीं, झरनो के कलकल में मधुर संगीत नहीं, अनंत सागर-तरंगो मे गम्भीर रहस्यो का आभास नहीं, उनके भाग्य मे सच्चे प्रयत्न और पुरुषार्थ का आनन्द नहीं, उनके भाग्य मे सच्ची प्रीति का सुख और कोमल हृदय की शान्ति नहीं। जिनकी आत्मा अपने इन्द्रिय-विषयो मे ही लिप्त है, जिनका हृदय नीच आशयो और कुत्सित विचारो से कलुषित है, ऐसे नाशोन्मुख प्राणियों का दिन-दिन अंधकार मे पतित होते देख कौन ऐसा होगा जो तरस न खायगा? जिसने स्वसंस्कार का विचार अपने मन मे ठान लिया हो, उसे ऐसे प्राणियो का साथ न करना चाहिए।

मकदूनिया का बादशाह डेमेट्रियस कभी-कभी राज्य का सब काम छोड़ अपने ही मेल के दस-पाँच साथियो को लेकर विषय-वासना मे लिप्त रहा करता था। एक बार बीमारी का बहाना करके इसी प्रकार वह अपने दिन काट रहा था। इसी बीच उसका पिता उससे मिलने के लिए गया और उसने एक हँसमुख जवान को कोठरी से बाहर निकलते देखा। जब पिता कोठरी के भीतर पहुँचा, तब डेमेट्रियस ने कहा—"ज्वर ने मुझे अभी छोड़ा है।" पिता ने कहा—"हाँ! ठीक है, वह दरवाजे पर मुझे मिला था।"

कुसंग का ज्वर सबसे भयानक होता है। यह केवल नीति और सद्वृत्ति का ही नाश नहीं करता, बल्कि बुद्धि का भी क्षय करता है। किसी युवा पुरुष की संगत यदि बुरी होगी, तो वह उसके पैरों मे बॅधी चक्की के समान होगी जो उसे दिन-दिन अवनति के गढ़े में गिराती जायगी; और यदि अच्छी होगी तो सहारा देने वाली बाहु के समान होगी जो उसे निरन्तर उन्नति की ओर उठाती जायगी।

इंगलैंड के एक विद्वान् को युवावस्था मे राजा के दरबारियों में जगह नहीं मिली। इस पर जिन्दगी भर वह अपने भाग्य को सराहता रहा। बहुत से लोग तो इसे अपना बड़ा भारी दुर्भाग्य समझते, पर वह अच्छी तरह जानता था कि वहॉ वह बुरे लोगों की सगत में पड़ता जो उसकी आध्यात्मिक उन्नति मे बाधक होते। बहुत से लोग ऐसे होते हैं जिनके घड़ी भर के साथ से भी बुद्धि भ्रष्ट होती है, क्योंकि उतने ही बीच मे ऐसी-ऐसी बातें कही जाती हैं जो कानों मे न पड़नी चाहिएँ, चित्त पर ऐसे-ऐसे प्रभाव पड़ते हैं जिनसे उसकी पवित्रता का नाश होता है। बुराई अटल भाव धारण करके बैठती है। बुरी बातें हमारी धारणा मे बहुत दिन तक टिकती है। इस बात को प्रायः सब लोग जानते है कि भद्दी दिल्लगी वा फूहड़ गीत जितनी जल्दी ध्यान पर चढ़ते हैं, उतनी जल्दी कोई गम्भीर वा अच्छी बात नहीं। एक बार एक मित्र ने मुझ से कहा कि उसने लड़कपन मे कहीं से एक बुरी कहावत सुन पाई थी, जिसका ध्यान वह लाख चेष्टा करता है कि न आवे, पर बार-बार आता है। जिन भावनाओं को हम दूर रखना चाहते है, जिन बातों को हम याद नहीं करना चाहते, वे बार-बार हृदय मे उठती हैं और बेधती हैं अतः तुम पूरी चौकसी रखो, ऐसे लोगों को कभी साथी न बनाओ जो अश्लील, अपवित्र और

फूहड़ बातों से तुम्हें हँसाना चाहें। सावधान रहो। ऐसा न हो कि पहले-पहल तुम इसे बहुत सामान्य बात समझो और सोचो कि एक बार ऐसा हुआ, फिर ऐसा न होगा; अथवा तुम्हारे चरित्र-बल का ऐसा प्रभाव पड़ेगा कि ऐसी बातें बकनेवाले आगे चलकर आप सुधर जायँगे। नहीं, ऐसा नहीं होगा। जब एक बार मनुष्य अपना पैर कीचड़ में डाल देता है, तब फिर यह नहीं देखता कि वह कहाँ और कैसी जगह पैर रखता है। धीरे-धीरे उन बुरी बातों से अभ्यस्त होते-होते तुम्हारी घृणा कम हो जायगी। पीछे तुम्हे उनसे चिढ़ न मालूम होगी, क्योंकि तुम यह सोचने लगोगे कि चिढ़ने की बात ही क्या है। तुम्हारा विवेक कुंठित हो जायगा और तुम्हें भले-बुरे की पहचान न रह जायगी। अन्त मे होते-होते तुम भी बुराई के भक्त बन जाओगे। अतः हृदय को उज्ज्वल और निष्कलंक रखने का सब से अच्छा उपाय यही है कि बुरी संगत की छूत से बचो। यह पुरानी कहावत है कि—

"काजल की कोठरी में कैसोहू सयानो जाय
एक लीक काजर की लागि है पै लागि है।"

समाज के प्रति हमारा कर्तव्य

थी दूसरों की आपदा हरणार्थ अपनी सम्पदा,
कहते नहीं थे किन्तु हम करके दिखाते थे सदा
नीचे गिरे को प्रेम से ऊँचा चढाते थे हमीं,
पीछे रहे को घूमकर आगे बढाते थे हमीं –

—मैथिलीशरण गुप्त

यद्यपि आत्मा मन और बुद्धि से परे है तथापि आध्यात्मिक उन्नति मन और बुद्धि द्वारा ही होती है। मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति के बीच की श्रेणी सामाजिक या कर्तव्य सम्बन्धी उन्नति है। मनुष्य इस संसार में अकेला नहीं है, वह समाज का अङ्ग है। वैयक्तिक उन्नति सामाजिक उन्नति की अपेक्षा रखती है। जिस प्रकार व्यक्ति को अपने को उन्नत बनाना आवश्यक है उसी प्रकार समाज को भी उन्नत बनाना उसका कर्तव्य हो जाता है।

मनुष्य का दूसरों के साथ जो सम्बन्ध है उसमें न्याय, सहृदयता और उदारता की आवश्यकता है। जो मनुष्य दूसरों के साथ न्याय नहीं कर सकता है वह दूसरों से भी न्याय की आशा नहीं रख सकता है। न्याय तो सामाजिक जीवन की न्यूनतम आवश्यकता है। दूसरों को अपने अधिकार सुरक्षित रखने में सहायक होना ही न्याय है। जो जिसका प्राप्य है वह उसको बिना कष्ट और आपत्ति के मिलना चाहिए, यही न्याय का मूल मंत्र है।

न्याय की दूसरी माँग यह है कि हम अपने उचित कार्यों के करने में स्वतन्त्र रहें और दूसरों की उचित स्वतन्त्रता में बाधक न हों। स्वतन्त्रता अच्छी चीज़ है किन्तु उसकी सीमाएँ हैं, उसको स्वेच्छाचार में न परिणत होना चाहिए। हमको अपनी स्वतन्त्रता के साथ दूसरे की स्वतन्त्रता में बाधक न होने के लिए आत्मसंयम और नियंत्रण की आवश्यकता है। स्वतन्त्रता और संयम का चोली-दामन का साथ है। वे एक दूसरे के पूरक हैं।

दूसरो की स्वतन्त्रता मे बाधक न होने के लिए हमको सहृदयता की भी आवश्यकता है। विना सहृदयता के हम दूसरे का दृष्टिकोण नहीं समझ सकते हैं और विना दूसरे के दृष्टिकोण के समझे उनकी स्वतन्त्रता की रक्षा नहीं हो सकती है।

सुख और दुख के सम्बन्ध में हमको दूसरो को आत्मौपम्य दृष्टि से देखना चाहिए—जो वस्तु हमको दुख देती है वह दूसरों को भी दुख देगी और जो हमको सुख देती है वह दूसरो को भी सुख देगी। दूसरों के सम्बन्ध में हमको अपने प्रतिकूल न आचरण करना चाहिए:—

श्रूयता धर्म सर्वस्व श्रुत्वा चोप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्॥

अपनी उन्नति के साथ दूसरो की भी उन्नति हो, इसके लिए सबको समान अवसर देने और उनकी रक्षा भरण-पोषण आमोद-प्रमोद और आत्मोन्नति के समान अधिकार होना आवश्यक है। ससार में पूर्ण साम्यवाद तो एक स्वप्न की वस्तु है किन्तु किसीको अपनी जीविका उपार्जन शिक्षा और अन्य आत्मोन्नति के साधनो मे रुकावट न होना चाहिए। हमारे जो अधिकार हैं उनका हम उन लोगो के पक्ष मे जिनके पास कम

अधिकार हैं बलिदान करना सीखें। यदि हमारे पास कुलीनता का अधिकार है कि दूसरे हमारा आदर करें तो हमको चाहिए कि हम उस अधिकार को छोड़ कर स्वयं उनका आदर करें; कम से कम अबे-तबे तो न बोलें। रवि बाबू ने कहा है कि शूद्रो का जन्म भगवान् के चरणों से हुआ है 'शूद्रो पद्भ्यामजायत' भगवान् के चरणों के समान वे भी पूज्य हैं। इसी भाव को मैथिलीशरणजी ने कुछ और बलवान बनाकर लिखा है:—

रक्खो न व्यर्थ घृणा कभी न निज वर्ण से या नाम से,
मत नीच समझो आपको, ऊँचे बनो कुछ काम से।
उत्पन्न हो प्रभु पदों से जो सभी को ध्येय हैं,
तुम हो सहोदर सुरसरी के चरित जिसके गेय हैं॥

यदि हम धनवान हैं तो निर्धनों की आवश्यकताओं के लिए अपने धन का उत्सर्ग करें ताकि उनकी उन्नति में जो बाधाएँ हैं वे दूर हो जायँ। हम यदि स्वामी हैं और सेवक पर उसकी सेवा का अधिकार रखते है तो अपने अधिकार का थोड़ा परित्याग कर उसके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार द्वारा उसके बोझ को हलका करें।

सहृदयता और उदारता दैवी गुण हैं। उदारता किसी का विना माँगे उपकार करने का कहते हैं। यदि माँगने वाले को हाथ पसारना पड़ा तो उसका स्वाभिमान नष्ट हो जाता है। हाथ पसारने के बाद जो होते हुए नाहीं कर देते है वे मनुष्यता से गिरे हुए कहे जायँगे। रहीम ने कहा है:—

रहिमन वे नर मर चुके, जे कछु माँगन जाहिं।
उनसे पहिले वे मरे, जिन मुख निकसत नाहिं॥

उदारता में देश, काल और पात्र का हमेशा ध्यान रक्खा जाना चाहिए किन्तु जिसके प्रति उदारता की जाय उसके स्वाभिमान

को नष्ट न होने देना चाहिए। रामचन्द्रजी ने याचकों का दान और मान दोनों से सन्तोष किया था।

सेवा उदारता का ही अंग है। मनुष्य की सेवा भगवान् की सेवा का अङ्ग है। भगवान् के विराट रूप में सारी चराचर सृष्टि आ जाती है। अबू बिन आदम को मानव सेवा के कारण ही स्वर्ग के फरिश्ते ने भगवान् के भक्तों में सब से पहला स्थान दिया था। दरिद्र नारायण का सेवक स्वयं ही नारायण बन जाता है क्योंकि भगवान् भी तो दीनबन्धु ही हैं। अपने हित-चिन्तन के साथ दूसरे का हितचिन्तन मनुष्य को देवत्व के पद पर प्रतिष्ठित कर देता है।

बास उसी मे है त्रिभुवर का, है बस सच्चा साधु वही,
जिसने दुखियों को अपनाया, बढकर उनकी बाँह गही।
आत्म स्थिति जानी उसने ही, परहित जिसने व्यथा सही,
परहितार्थ जिनका वैभव है, है उनसे यह धन्य मही॥

सेवा का सेव्य पर भारी असर पड़ता है। सेवा की भाषा सार्वजनिक है। हृदय हृदय की भाषा जानता है। सेवा की आग में पत्थर भी मोम हो जाता है। महात्मा गाँधी नोआखाली में सेवा के ही द्वारा मुसलमानों में सद्भावना उत्पन्न कर रहे हैं। महात्मा गाँधी नागपुर विश्वविद्यालय के डाक्टर तो हैं ही वे चिकित्सा के भी विशेषज्ञ डाक्टर हैं। रोगी चिकित्सा उनके सेवा-मार्ग का अंग है। उनकी रोगी सेवा के सम्बन्ध मे श्रीमन्नारायण अग्रवाल अपने जुगनू नामक निबन्ध संग्रह में लिखते हैं:—

"गाँधीजी दुनिया के सामने महात्मा के रूप में ही पूजे जाते हैं। किन्तु 'महात्मा गाँधी' के बजाय उन्हें 'मानव गाँधी' कहना ज्यादा ठीक होगा। बापूजी 'महात्मा' शब्द की बातचीत

में प्राय: हँसी उड़ाया करते हैं । गांधीजी की मानवता रोगियों की सेवा के रूप मे विशेषकर प्रकट होती है। रोगियों की देख-भाल मे उनका कितना समय जाता है, इसकी कल्पना बहुत कम लोगो को होगी। सुबह-शाम टहलने के समय तो वे बीमारों की ओर चक्कर लगाते ही हैं; किन्तु कभी-कभी तो ये दिन मे भी सेवा-सुश्रूषा में कई घंटे बिता देते हैं। सारे हिन्दुस्तान की बाग-डोर उनके हाथ मे होने पर भी वे अपना डाकृरी विभाग में इतना समय दे सकते है, यह आश्चर्य की बात अवश्य है। किन्तु जो लोग गॉधीजी के निकट रहते हैं, उन्हे इसका रहस्य मालूम हो जाता है।

बापूजी ने तो सेवा को ही अपना धर्म बनाया है। गरीबों तथा दुखियों की भूख तथा दर्द मे ही उन्हे परमेश्वर के दर्शन की झलक मिलती है, इसीलिये उनके इष्टदेव 'दरिद्रनारायण' व 'रोगी नारायण' है। इनकी सेवा करने मे गॉधीजी को सच्चा संतोष और आनन्द मिलता है, उनके दैनिक कार्य में कोई बाधा नहीं आती। राजनीतिक कार्यों की झंझटो के बाद जब बापूजी रोगियो की ओर जाते है तो उनका दिमाग़ फिर ताज़ा और प्रफुल्लित हो जाता है, उन्हें आन्तरिक शान्ति मिल जाती है, क्योंकि उन्हे प्रत्यक्ष सेवा का मौक़ा मिलता है।

जब आश्रम का कोई कार्यकर्ता मामूली से मामूली व्यक्ति-अधिक बीमार हो जाता है, तो बापूजी ही डाकृर, नर्स, नौकर और मालिश करने वाले बन जाते हैं। वे ही रोगी के भोजन सम्बन्धी विस्तृत हिदायतें देते हैं। यदि उनसे कोई कहे—'बापूजी, आपके पास बहुत काम है, रहने दीजिये, तो तुरन्त उत्तर मिल जाता है—"क्या मैं आदमी नहीं हूँ? जब मेरा पड़ोसी और मित्र पीड़ित है, तो मैं उसकी परवाह न करके क्या

सेवा करूँ ? सचमुच पड़ोसी धर्म ही सच्चा धर्म है। अपने नजदीक रहने वाले लोगों की सेवा न करके देश और संसार की सेवा करने की योजनायें बनाना निरर्थक है।"

यह भावना मनुष्य को मनुष्य बनाती है। ऐसे समाज सेवा के अवसर केवल रोगियों की सहायता में सीमित नहीं है। दुर्भिक्ष, बाढ़, भूकम्प और साम्प्रदायिक झगड़े सब कर्मण्य के लिए कर्तव्य की पुकार करते हैं। समाज में साम्प्रदायिकता के विष को फैलने से रोकना प्रत्येक देशहितैषी का कर्तव्य है। साम्प्रदायिक झगड़े देश के लिए कलङ्क हैं। समाज सेवक जहाँ किसी को पीड़ित देखता है वहाँ पर वह यह नहीं सोचता कि पीड़ित हिन्दू है या मुसलमान अथवा हरिजन है वा सवर्ण हिन्दू। मानवता इन संकुचित भेदों को नहीं स्वीकार करती। यह हमारी कमजोरी है कि हम अपने से भिन्न साम्प्रदाय के लोगों के मरने या मिटने पर प्रसन्न होते हैं। हमको उनके भी बाल-बच्चों का ख्याल करना चाहिए और अपनी सेवा और संरक्षणता से किसी सम्प्रदाय के लोगों को वञ्चित न करना चाहिए।

महात्मा तुलसीदासजी ने सन्त उसी को कहा है जो स्वयं कष्ट उठाकर दूसरे के कष्ट का निवारण करता है दूसरों के लिए जो कष्ट उठाया जाता है वह कर्तव्य की प्रसन्नता में परिणत हो जाता है।

साधु चरित शुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुणमय फल जासू।
जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा वन्दनीय जेहि जग यश पावा॥

स्वावलम्बन

'स्वयदासाः तपस्विनः'

'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं'

दूसरों के आश्रित न रहकर अपने भरोसे और सहारे काम करने को स्वावलंबन कहते हैं। इस संकुलतामय संसार में मनुष्य को दूसरों के संपर्क में आना पड़ता है और ये दूसरे कभी अपने अनुकूल होते हैं और कभी प्रतिकूल। अनुकूल मनुष्यों से सहायता मिलने की आशा रहती है, प्रतिकूल से नहीं। अनुकूल भी प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक समय सहायता नहीं दे सकते। इसीलिए संसार में स्वावलम्बन की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य को केवल एक ही बार एक काम नहीं करना पड़ता, वरन् बहुत से काम ऐसे हैं जो नित्य-प्रति करने पड़ते हैं। जब तक हम इन कामों को करने का स्वयं अभ्यास नहीं डालते तब तक हम उन्हें नहीं कर सकते।

प्रायः ऐसे अवसर भी आजाते हैं जब सहायक के उपस्थित न होने के कारण बड़ी आपत्ति का सामना करना पड़ता है। लखनऊ के किसी नवाब के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जब तक कोई दूसरा आदमी उनके जूतों को दरवाजे की ओर न कर देता, तब तक वे बाहर न जाते थे। एक बार उनको अपनी जान बचा कर भागने का अवसर आया। किन्तु उनके जूते दरवाजे की ओर न थे और उस समय कोई नौकर भी न था, इसलिए वे घर से बाहर जाने में असमर्थ रहे और कैद कर लिये गये। ऐसे कोमल, कायर पुरुष तो कदाचित् भागकर भी अपने को नहीं बचा सकते।

उपर्युक्त घटना चाहे कल्पित हो; किन्तु बहुत से लोग ऐसे होते अवश्य हैं, जिनका विना नौकरों के काम ही नहीं चल सकता; ऐसे लोगों का जीवन दुखमय हो जाता है। यदि मनुष्य अपने जीवन में उन्नति करना चाहता है, तो उसको परावलम्बन छोड़कर—परमुखापेक्षी न होकर—स्वावलम्बन सीखना चाहिए।

सब मनुष्यों की परिस्थितियाँ एक-सी नहीं होती हैं। कोई तो लाड़-प्यार में पलते हैं और कनक कटोरों में दूध पीते हैं। उनको सभी सहायता देने के लिए लालायित-से रहते हैं। किन्तु बहुत-से लोग गरीब घरों में उत्पन्न होकर गोस्वामी तुलसीदासजी की भाँति जननी-जनक के परिताप स्वरूप बन जाते हैं और उनके लिए भी नीचे के वाक्य सार्थक होते हैं।

बारे ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हों चारिफल चारि ही चनक को।

ऐसे गरीब लोगों को तो अपना ही सहारा लेना पड़ता है। वे अपने भरोसे दुनिया की विषम परिस्थितियों से लड़ते हैं। महाभारत में एकलव्य की कथा आती है। निषाध का बालक होने के कारण वह कौरवकुल के राजकुमारों के गुरुदेव से शिक्षा नहीं ग्रहण कर सका था। उसने गुरु द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति बनाकर उसकी उपस्थिति में बाण चलाने का अभ्यास किया और राजकुमारों-सा ही धनुर्विद्या-विशारद बन गया।

अमरीका में ऐसे उदाहरण हैं कि अखबार बेचने वाले लड़के अपने अध्यवसाय से राष्ट्रपति बन गये हैं। बहुत-से आदमी सड़क की लालटेनों के आलोक में पढ़कर बड़े बने हैं। महामना मालवीय, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद प्रभृति देश के नेता अपने ही परिश्रम और अध्यवसाय से इतने ऊँचे उठे हैं।

यदि हृदय में लगन और उत्साह हो तो गरीबी किसी की उन्नति में बाधक नहीं हो सकती है। स्वामी सत्यदेवजी ने अमरीका के होटलों में बर्तन मॉजकर विद्याभ्यास किया था। एडीसन जिसने तार, टेलीफोन, ग्रामोफोन आदि का आविष्कार किया था मामूली ही आदमी का लड़का था। नेपोलियन, हिटलर आदि भी मामूली स्थिति से ही ऊँचे उठे थे।

यद्यपि संसार के बहुत से कार्य दूसरों के हाथ में होते हैं तथापि स्वावलम्बी के लिए सब सहज हो जाते है। अन्य लोग स्वावलम्बी का आदर करने लगते है और उन्हें उसका थोड़ा-बहुत भय भी होता है। वे जानते है कि स्वावलम्बी मनुष्य अपने सहारे स्वयं खड़ा हो सकता है और उसे उनकी इतनी आवश्यकता नहीं कि वह उनके बिना कोई कार्य कर ही न सके; उनसे जो कुछ सहायता ली जाती है, वह सद्भावना के कारण ही ली जाती है, आवश्यकतावश नहीं। इसलिए उनकी सद्भावना बनाये रखना आवश्यक है।

स्वावलम्बी मनुष्य अपना बहुत-सा धन अपव्यय से बचाकर अन्य उपयोगी कार्यों में उसका सदुपयोग कर सकता है। उसे अपने समय का अपव्यय नहीं करना पड़ता। वह समय पर अपना काम करने में समर्थ होता है। उसे काम के अधूरा पड़ा रहने से झुँझलाना नहीं पड़ता और वह कर्त्तव्य-पालन के प्रयत्न में प्रसन्न रहता है।

स्वावलम्बी मनुष्य सदा हृष्ट-पुष्ट रहता है, क्योंकि उसके अवयव आलस्य-जन्य निष्क्रियता-वश शिथिल नहीं हो जाते। अतएव कहा है—"स्वावलम्बी सदा सुखी।" उसके हृदय में उत्साह और शरीर में स्फूर्ति की मात्रा अधिकता से विद्यमान

रहती है। उसके आगे आपत्तियाँ और कठिनाइयाँ सिर झुका लेती हैं और सफलता उसकी दासी होती है।

जो दशा व्यक्ति की है वही देश और जाति की भी है। जिस प्रकार व्यक्ति के लिए स्वावलम्बन आवश्यक है, उसी प्रकार देश और जाति के लिए भी वह जरूरी है। कोई जाति उन्नत तभी हो सकती है, जब वह अपनी आवश्यकताओं के लिए दूसरों पर निर्भर न हो।

व्यक्ति और जाति अपने भाग्य के आप ही विधायक होते हैं। हम दूसरो की सहायता की जितनी ही अपेक्षा करते हैं, उतना ही हम अपने को अयोग्य बनाते हैं, उतना ही हम पराधीनता की बेड़ियो मे जकड़े जाते हैं। ईश्वर भी उसी समय हमारी मदद करता है जब हम स्वयं अपनी सहायता करने को तैयार होते हैं। इसलिए मनुष्य को सदा स्वावलम्बी बनने का प्रयत्न करना चाहिए।

पुरुषार्थ और संलग्नता

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः
दैवेन देयमिति कापुरुषाः वदन्ति ।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः ।*

कादर मन कहँ एक अधारा । दैव-दैव आलसी पुकारा ॥

हमारे भारतवर्ष मे भाग्यवाद और कर्मवाद की प्रधानता होने के कारण पुरुषार्थ का कुछ ह्रास-सा दिखाई देता है ।

खानखाना रहीम का नीचे का दोहा इसी विचार धारा का फल है :—

जो पुरुषारथ ते कहूँ, सम्पति मिलत रहीम ।
पेट लागि वैराट घर, तपत रसोई भीम ॥

भीम ने विराट राजा के यहाँ नौकरी अवश्य की थी किन्तु अन्त में उन लोगों के पुरुषार्थ ने ही उनको विजयी बनाया था । हमारा भाग्य भी तो पिछले जन्म के पुरुषार्थ से ही बन जाता है । जिस प्रकार कल का कुपच आज के उपवास से ठीक हो जाता है उसी प्रकार आज का पुरुषार्थ पिछले जन्म के भाग्य

---

* उद्योगी पुरुष-सिंह को ही लक्ष्मी मिलती है । लक्ष्मी भाग्य से मिलती है— ऐसा कायर लोग कहते हैं । दैव का सहारा छोड़कर अपनी शक्ति से पौरुष करो फिर यदि यत्न करने पर सिद्धि न प्राप्त हो तो किसका दोष है ? अर्थात तुम दोषी नहीं कहे जाओगे ।

पर विजय पा लेता है। यदि पुरुषार्थ की महत्ता न होती तो शास्त्रों का उपदेश ही वृथा होता। योगवशिष्ठ में लिखा है कि जिस प्रकार एक बलवान् मेढ़ा कमजोर मेढ़े पर विजय पा लेता है उसी प्रकार आज का प्रबल पुरुषार्थ कल के संस्कारों को दबाकर मनुष्य को विजयी बनाता है।

पुरुषार्थ का अर्थ है संकल्प को दृढ़ बनाकर कार्य में संलग्न हो जाना और आपत्तियों से विचलित न होना। विघ्नों के भय से नीच आदमी ही पुरुषार्थ हीन बैठे रहते हैं। मध्यम लोग काम को आरम्भ तो कर देते हैं किन्तु विघ्न आने पर उसे बीच में छोड़ देते हैं। श्रेष्ठ लोग विघ्नों के बार-बार आने पर भी जो काम शुरू किया है उसको जब तक वह अन्त तक न पहुँच जावे छोड़ते नहीं हैं।

प्रारम्भ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः।
प्रारम्भ विघ्नविहिता विरमन्ति मध्याः॥
विघ्नै पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः।
प्रारब्धमुत्तमजनाः न परित्यजन्ति॥

पुरुषार्थी मनुष्य दुख और सुख को नहीं गिनता। गर्मी जाड़े और बरसात उसकी गति में बाधक नहीं हो सकते हैं। उसके संकल्प में एक निष्ठता और ध्रुव की-सी अचलता रहती है। उसकी दृढ़ प्रतिज्ञा पार्वती की-सी होती है 'कोटि जनम लगि रगरि हमारी बरौं संभु न तो रहौं कुँआरी' 'त्रिया तेल हम्मीर हठ चढ़े न दूजी बार' का उसका संकल्प अटल रहता है।

पुरुषार्थी मनुष्य के लिए लक्ष्य की निश्चयता के साथ आत्म विश्वास और उत्साह चाहिए। लक्ष्यहीन मनुष्य कभी सफल नहीं हो सकता है। उसकी शक्तियाँ केन्द्रस्थ नहीं रहती हैं। वह

चाहे जितने हाथ-पैर पीटे किन्तु उसको सफलता के दर्शन नहीं होते हैं। इसीलिए मनुष्य को बहुधन्धी होना ठीक नहीं। मनुष्य को उतना ही काम हाथ में लेना चाहिए जितना कि वह सफलता पूर्वक कर सके और फिर अपने ध्यान को उसी लक्ष्य पर जमा दे। सच्चा पुरुषार्थी वीरवर अर्जुन की भाँति चिड़िया की आँख के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखता। एकबार गुरु द्रोणाचार्य से अन्य राजकुमारों ने शिकायत की कि वे अर्जुन के ऊपर अधिक कृपा करते है। उन्होंने एक दिन शिक्षा के समय राजकुमारों से चिड़िया की आँख पर निशाना लगाने को कहा। एक-एक शिष्य से पूछा कि वह क्या देखता है? किसी ने कहा कि व्यायामशाला मे खड़ा हुआ पेड़ और उस पर बैठी हुई चिड़िया। किसी ने कहा मैं पेड़ पर बैठी चिड़िया देखता हूँ तो एक तीसरे ने कहा कि मै चिड़िया देखता हूँ; किन्तु अर्जुन ने कहा कि मै केवल चिड़िया की आँख को देखता हूँ। लक्ष्यमात्र पर एकाग्रता के साथ दृष्टि रखने के लिए ही उनके गुरु-देव उन पर प्रसन्न थे।

आत्म-विश्वास के विना उत्साह नहीं आता! जो मनुष्य रोता हुआ जाता है मरे की खबर लाता है। विजेता सीजर के मन का आत्म-विश्वास ही उसे रुपीकन नदी के पार ले गया। 'जाके मन मे अटक है सोई अटक रहा'। मन की अटक को दूर करके ही अटक नदी को पार किया गया था। आलसी लोग ही आत्म-विश्वास को खो बैठते हैं। उत्साह ही मनुष्य को वीर बना देता हैं। वही वीर-रस का स्थायी-भाव है।

पुरुषार्थी मनुष्य धीर और वीर होता है। उसमे वह धैर्य होता है जोकि कठिनाइयों, आपत्तियों और विफलताओं से विच-लित नहीं होने देता है। उसके मुख पर सदा मुस्कराहट रहती है कर्त्तव्य की प्रसन्नता मे वह मग्न रहता है। हानि-लाभ, यश-

अपयश को विधि के हाथ की बात समझ कर वह 'कर्मण्येवाधि-कारस्ते मा फलेषु कदाचन' अर्थात् कर्म करने का ही तेरा अधिकार है फल का नहीं, श्रीमद्भगवद्गीता के इन अमर वचनों को अपना आदर्श वाक्य बनाये रखता है। उसको न किसी पर खीझ होती है और न किसी पर झुँझलाहट आती है। विफलता से वह हार नहीं मानता। प्रत्येक विफलता उसमें नया उत्साह और नई स्फूर्ति को उत्पन्न करती है। राबर्ट ब्रूनो के लिए कहा गया है कि उसने देखा कि एक मकड़ी को एक तार को इस पार से उस पार ले जाने में असफलताओं का सामना करते-करते बत्तीसवीं बार सफलता मिली। वह भी शायद उतनी ही बार हार गया था। फिर उसने युद्ध किया और उसे सफलता मिली।

नुकसान से पुरुषार्थी मनुष्य विचलित होकर अपने मन की शान्ति को भङ्ग नहीं कर देता है। न्यूटन के लिए कहा जाता है कि वह एक यन्त्र द्वारा कुछ निरीक्षण किया करता था और उस यन्त्र के पास एक बड़ा चार्ट रक्खा रहता था, जिस पर दिन-प्रति-दिन वह अपने निरीक्षणों का फल लिखता जाता था। उस कागज पर बरसों के परिश्रम पूर्ण निरीक्षण का फल अंकित था किन्तु वह कागज जीर्ण-शीर्ण हो गया था और उस पर कहीं-कहीं धब्बे भी पड़ गये थे। उसका एक नया नौकर आया। उसको यह वृत्तान्त मालूम न था। वह समझता था कि ऐसे जीर्ण-शीर्ण कागज से कमरे की सफाई और शोभा में कमी आती है। उसने मालिक की अनुपस्थिति में कागज को फाड़ कर रद्दी की टोकरी में डाल दिया और एक नया कागज यन्त्र के पास लगा दिया।

न्यूटन जब शाम को लौटा उसने पुराने कागज के स्थान में नया कागज पाया। उसने नौकर से पूछा। बेचारे ने साफ-साफ कह दिया कि उसने समझा था कि कागज पुराना हो गया और

मालिक को नये कागज़ की ज़रूरत है; इसीलिए उसने उसको फाड़कर फेंक दिया। न्यूटन जानता था कि नौकर ने जो कुछ किया नेकनियती से किया किन्तु बेचारे मे इतनी अक़्ल न थी कि वह उस कागज़ का महत्व समझ सके। न्यूटन सावधानी के साथ फिर उस यन्त्र पर परिश्रम करके अपने निरीक्षण और प्रयोगों को अंकित करने लग गया।

न्यूटन के सम्बन्ध मे एक और किम्बदन्ती है कि एक बार उसके कुत्ते ने उसकी एक पुस्तक की पाण्डुलिपि पर लेम्प गिरा दिया और वह जल गई। न्यूटन ने केवल इतना ही कहा कि तू नहीं जानता तैंने कितना नुक़सान किया और फिर वह उस कार्य में संलग्न हो गया।

कार्लायल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक जो उसने फ्रांस की राज-क्रान्ति पर लिखी थी मिल साहब को पढ़ने को दी थी। मिल साहब के यहाँ बहुत दिनों लापरवाही के साथ मेज़ पर रक्खी रही। एक बार वह मेज़ से गिर पड़ी और उनकी नौकरानी या नौकर ने उसको रद्दी समझ कर उससे अँगीठी जलाने का काम लिया। कार्लायल को यह बात मालूम हुई तो तनिक भी विचलित न हुए और फिर लिखना शुरू कर दिया। दूसरी पुस्तक जो लिखी पहले से अच्छी बनी।

पुरुषार्थी मनुष्य न दैव को दोष देता है, न समय को और परिस्थितियों को वह स्वयं अपने अनुकूल बना लेता है। जो लोग केवल मनसूबे बनाना जानते हैं या प्रारम्भशूर होते हैं वे ही अपना दोष दूसरे के सिर मढ़ते हैं और नाच न जाने आँगन टेढ़े की बात को चरितार्थ किया करते है।

पुरुषार्थी मनुष्य अपने में आत्म-विश्वास रखता हुआ भी

अपनी कठिनाइयों की उपेक्षा नहीं करता। वह अपने काम को पूरी तैयारी के साथ करता है। चूहे की शिकार के लिए शेर की शिकार का सामान जुटाता है किन्तु उपयुक्त साधनों से ही काम लेता है। जहाँ छुरी से काम चलता है वहाँ तलवार का प्रयोग नहीं करेगा।

पुरुषार्थी मनुष्य दूसरे के साथ सहयोग करेगा किन्तु भरोसा अपने ही ऊपर रक्खेगा। दुनिया में जिन लोगों ने कुछ किया है वह पुरुषार्थ और संलग्नता के ही बल पर किया है। बहुत से लोगों का तो कहना है कि प्रतिभा भी संलग्नता का ही रूपान्तर है। दुनिया में जितने आविष्कार हुए हैं देखने में चाहे वे आकस्मिक मालूम हों किन्तु वे संलग्नता के ही फल स्वरूप संसार को मिले हैं। जिस आदमी ने इनेमिल (लोहे, ताम्बे वग़ैरह पर चीनी करने) का आविष्कार किया था उसने घर का फर्नीचर और किवाड़ तक जला दिये। पुरुषार्थी के लिए विराम को स्थान नहीं। न्यूटन को खाना खाने की भी याद नहीं रहती थी। सर जगदीशचन्द्र वसु और प्रफुल्लराय संलग्नता के कारण ही इतने ऊँचे उठ सके। सर जगदीशचन्द्र वसु के पिता उनको वलायत आई० सी० एस० के लिए भेजना चाहते थे किन्तु उनका ध्येय था विज्ञान। वे अपने पिता के कोपभाजन बने और जब विदेश गये तो विज्ञान के लिए ही गये।

पुरुषार्थी अपनी संलग्नता में दूसरों के उपहास की भी परवाह नहीं करता है। चेचक के टीके के आविष्कार कर्त्ता का काफ़ी मज़ाक उड़ाया गया। उससे कहा गया कि तुम गाय के थनों का वेक्सीन मनुष्य के शरीर में प्रवेश कराकर क्या मनुष्य से बैल बनाना चाहते हो? हवाई जहाज के आविष्कारक राइट ब्रादर्स का मज़ाक स्वयं उनके पिता ने उड़ाया था। उन्होंने कहा

था कि मनुष्य के लिए हवा में उड़ना असम्भव है और सम्भव भी हो तो ओहिओ का (अमरीका का वह नगर जहाँ वे रहते थे) कोई आदमी नहीं बना सकता। फिर ओहिओ के ही उन्हीं लड़कों ने पहला हवाई जहाज बनाकर हवा की विजय का श्रेय लिया।

पुरुषार्थी की जितनी महिमा गाई जाय उतनी थोड़ी है। पुरुषार्थ के बल पर ही शिवाजी और छत्रसाल इतने बड़े बने पुरुषार्थ के ही कारण महात्मा गांधी जगद्विख्यात बने।

वीरता

वीरत्व संसार मे एक अमूल्य रत्न है। इसका आविर्भाव उत्साह से होता है। साहित्य-शास्त्र में उत्साह ही इसका स्थायी भाव माना गया है, अर्थात् विना उत्साह के यह कभी स्थिर नहीं हो सकता। जिस पुरुष में किसी प्रकार का उत्साह नहीं है, वह किसी भी बात में कभी वीरता नहीं दिखला सकता। यह एक ऐसा गुण है कि जिसे न केवल वीर, वरन् कादर भी सम्मान की दृष्टि से देखता है। वीर से बढ़कर सर्वप्रिय कोई भी नहीं होता और संसार पर वीरता का जितना प्रभाव पड़ता है उतना प्रायः और किसी गुण का नहीं पड़ता। सत्य आदि भी बड़े अनमोल गुण हैं किन्तु जितना आकस्मिक और रोमांचकारी प्रभाव वीरत्व का पड़ेगा उतना सत्य आदि का कभी नहीं पड़ेगा। इसीलिये वीरत्व में जगन्मोहिनी शक्ति सभी अन्य गुणों से श्रेष्ठतर है और यह कीर्त्ति का सबसे बड़ा वर्धक है। कादरता और भय से इसका सहज विरोध है। कादरता में तिलमात्र आकर्षण शक्ति तथा भय में कुछ भी प्रीति-योग्य नहीं है। कादरता का कोई भी अंश किसी का चित्त अपनी ओर आकृष्ट नहीं करेगा और भय मे कोई भी ऐसा अंश नहीं है जो किसी का प्रीतिभाजन हो सके।

वीरत्व को वहुत लोगो ने सामर्थ्य मे मिला रक्खा है, किन्तु इन दोनो मे कोई मुख्य सम्वन्ध नहीं है। सामर्थ्य केवल इतना करता है कि वीरत्व की महिमा वढ़ा देता है। यदि वीर पुरुष

बलहीन हुआ तो उसकी वीरता वैसी नहीं जगमगाती जैसी कि बलवान वीर की। यदि हनुमान जी समुद्र न फलाँग गए होते तो भी उतने ही बड़े वीर होते जैसे कि अब माने जाते हैं, किन्तु उनके महावीरत्व को चमकानेवाले उदधि-उल्लङ्घन और द्रोणाचल-आनयन के ही कार्य्य हुए। वीरत्व और पराक्रम में इतना ही भेद है। वास्तविक वीरत्व का मुख्य आधार शारीरिक बल न होकर मानसिक बल है, जिसे इच्छा-शक्ति (Will-power) कहते हैं। इस शक्ति का वेग कोई भी नहीं रोक सकता। एक पुरुष की उद्दाम इच्छाशक्ति से पूरी सेना मे पुरुषत्व आ सकता है और एक कादर कभी-कभी पूरे (सैन्य) बल की कादरता का कारण हो जाता है। शरीर का वास्तविक राजा मन ही है। इसी की आज्ञा से शरीर तिल-तिल कट जाने से मुँह नहीं मोड़ता और इसी की आज्ञा से एक पत्ते के खड़कने से भाग खड़ा होता है। बुद्धि, अनुभव आदि इसके शिक्षक हैं। ये ही सब मिलकर इसे जैसा बनाते हैं वैसा ही यह बनता है। इच्छा इसी शिक्षित अथवा अशिक्षित मन की आज्ञा है। मन जितना ही दृढ़ अथवा डावाँडोल होगा, उसकी आज्ञा, इच्छा वैसी ही पुष्ट अथवा शिथिल होगी। जिसका मन पूर्णतया शिक्षित और स्ववश है, उसी की इच्छा मे वज्रवत् दृढ़ता होगी। विना ऐसी इच्छा-शक्ति के कोई पुरुष पूरा वीर नहीं हो सकता। इसलिये दृढ़ता वीरत्व की सबसे बड़ी पोषिका है। जिसका मन उचित काम करने से तिलमात्र चलायमान होता ही नहीं और जो अनुचित कार्य्य देख कर विना उसे शुद्ध किए नहीं रह सकता, वह सच्चा वीर कहलावेगा।

वीरत्व का द्वितीय पोषक न्याय है। विना इसके वीरत्व शुद्ध एवम् प्रशंसास्पद नहीं होता। न्याय के सच्चा होने को बुद्धि

की आवश्यकता है और साधारण न्याय को उदारता से अच्छी कांति प्राप्त होती है। अतः वीरता के लिए न्यायशीलता, उदारता और बुद्धि की सदैव आवश्यकता रहती है। सच्चे वीर को अन्याय कभी सह्य नहीं होगा। हमारे यहाँ वीरता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण भगवान् रामचन्द्र का है। इन्हीं को महाकवि भवभूति ने महावीर की उपाधि से भूषित करके महावीरचरित्र के नाम से इनकी जीवनी एक नाटक में लिखी है। दंडकारण्य में जिस काल आपने निश्चरों द्वारा भक्षित ब्राह्मणों की अस्थि का समूह निरीक्षण किया तो तुरन्त "निश्चर हीन करौं महि, भुज उठाय पण कीन्ह।" यही उत्साह का परमोज्ज्वल उदाहरण था, जो आपने निशाचरो से विना किसी वैर हुए भी दिखलाया। समय पर आपने यह उद्दंड पण सत्य करके दिखला दिया। इनकी इच्छा लोहे के समान पुष्ट थी, जो एक बार जाग्रत होने से फिर दब नहीं सकती थी। इच्छा और कर्म में कारण कार्य्य का सम्बन्ध है, सो कारण शिथिल होने से कार्य्य का होना कठिन होता है। कहते ही हैं कि विना दृढ़ेच्छा के सदसद्विवेकिनी बुद्धि की आज्ञा अरण्य-रोदन हो जाती है। शुभ कार्य्यारंभ के विषय मे कहा है कि विघ्नभय से अधम पुरुष कोई शुभ कार्य आरम्भ ही नहीं करते और मध्यम श्रेणी के लोग आरम्भ करके भी विघ्न पड़ने पर उसे छोड़ बैठते है, किन्तु उत्तम प्रकृतिवाले हजार विघ्नों को दबा कर एक बार का प्रारम्भ किया हुआ शुभ कार्य्य पूरा करके ही छोड़ते हैं।

सत्यनिष्ठा भी शौर्य्य के लिए एक आवश्यक गुण है। वीर पुरुष लोभ को सदैव रोकेगा, ईमानदारी का आदर करेगा, असत्य भाषण से बचेगा, और अपना वास्तविक रूप छोड़कर कोई भी कल्पित भाव अथवा गुण प्रकट करने की स्वप्न में भी

चेष्टा नहीं करेगा। संसार में साधारण पुरुष लोकमान्यता के लालच में सिद्धान्तों को भंग करते हुए बहुधा देखे गये हैं। सिद्धान्तप्रिय पुरुष माने जाने की इच्छा लोगो की ऐसी बलवती देखी गई है कि लोगो द्वारा सिद्धान्ती माने जाने ही के लिये वे सबसे बड़े सिद्धान्तो को हॅसते हुए चकनाचूर कर देवेंगे। जो लोकमान्यता के लोभ से सिद्धान्त भंग करने को तैयार नहीं है वह पुरुष सच्चा वीर कहलाने के योग्य है। इस विषय का परमोत्कृष्ट उदाहरण हमारे उपनिषदो में सत्यकाम जबाला का मिलता है। जिस काल यह पुरुषरत्न अपने गुरु के पास विद्याध्ययनार्थ उपस्थित हुआ तो उन्होंने इसके माता-पिता का नाम पूछा। सत्यकाम ने माता का नाम तो जबाला बतला दिया किन्तु पिता विषयक प्रश्न का यही सीधा उत्तर दिया कि मेरा पिता अज्ञात है क्योंकि एक बार मेरे पूछने पर मेरी माता ने कहा था कि, जिस काल तेरा गर्भाधान हुआ था उस मास मेरे पास कई पुरुष आये थे सो मैं नहीं कह सकती कि तू उनमे से किसका पुत्र है। इस उत्तर को सुन कर सत्यकाम का गुरु अवाक् रह गया, किन्तु भावी शिष्य की सत्यप्रियता से परम संतुष्ट होकर उसने आज्ञा दी कि तू ही सत्यप्रियता के कारण अध्यात्म विद्या का सर्वोत्कृष्ट अधिकारी है। इतना कह कर गुरु ने उसे शिष्य किया और सत्यकाम का जबाला नाम रख उसे अपने सब शिष्यो से श्रेष्ठतर माना। समय पर यही सत्यवादी पुरुष ब्रह्मविद्या का सर्वोत्कृष्ट पंडित हुआ। इस पुरुषरत्न का घर सत्य का अवतार था, इसका मन निर्मल था, और इसका बर्त्ताव उच्च था। इन्हीं बातों से एक जारज पुरुष होकर भी यह ब्रह्मविद्या का सबसे ऊँचा अधिकारी हुआ। इसीलिये कहा गया है कि मन, बर्त्ताव और गृह मिल कर मनुष्य का चरित्र बनाते हैं।

वीरत्व का सर्वश्रेष्ठ समय बाल वय है। जितना उत्साह

मनुष्य में इस अमूल्य काल में होता है उतना और किसी समय नहीं होता। श्लाघ्य चरित्रवान् मनुष्यों को एक बालक जितना बड़ा मान सकता है उतना कोई दूसरा कभी न मानेगा। बाल वय में मन सफेद कागज़ की भाँति होता है। इस पर सुगमतापूर्वक चाहे जो लिख सकते हैं। उदार चरित्रवालो मे वीरपूजन की मात्रा अधिकता से होती है और ऐसा प्रति पुरुष किसी न किसी को श्लाघ्य एवं महावीर अवश्य मानता है। केवल महा नीचो को ही संसार मे कोई भी श्लाघ्य नहीं समझ पड़ता। जिसमे श्लाघ्य चरित्र पूजन की कामना बलवती होती है उसमे वीरता कम से कम बीज रूप से तो रहती ही है। स्यात् इन्हीं विचारो से हमारे यहाँ वीरपूजन की रीति चलाई गई हो। विना दूसरो के गुण ग्रहण किए लोग प्रायः उदारचेता नहीं होते। इसीलिए वीरो मे कोमलता और उदारता प्रायः साथ ही साथ पाई जाती है। प्रसन्नचित्तता भी इन्हीं बातों का एक अंग है। कहा गया है कि बुराई रोकने का पहला उपाय मानसिक प्रसन्नता है, दूसरा उपाय भी मानसिक प्रसन्नता है और तीसरा उपाय भी मानसिक प्रसन्नता ही है। विना इसके बुराई रुक ही नहीं सकती। मानसिक प्रसन्नता का प्रादुर्भाव प्रेमभाव से होता है। जिस व्यक्ति से हम प्रेम करेंगे, वह लौट कर हमसे भी प्रेम करेगा। इसलिये जो संसार-प्रेमी होता है उससे सारा संसार प्रेम करता है, जिससे वह सदैव प्रसन्न रहता है। ऐसी दशा मे वह बुराई किसके साथ करेगा? प्रायः देखा गया है कि अपने साथ किसी की खोटाई का मूल कल्पना मात्र होती है। हम स्वयं असभ्यता कर बैठते हैं और जब दूसरा उसके प्रतिफल में हमारे साथ असभ्यता करता है तब हम आत्मप्रेम से अंध होकर समझ बैठते हैं कि वह निष्कारण हमारे साथ खोटाई करता है। इसलिये संभावित पुरुष को बुराई से सदैव बचना उचित है और

क्षमा से अवश्य काम लेना चाहिए, क्योंकि वेजाने हुए भी हमारे द्वारा क्षमापात्र का अपकार हो जाना सम्भव है। खोटाई और निष्फलता का पहले ही से भय कभी न करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से कोई इनको नहीं जीत सकता। इनके जीतने का सबसे सुगम उपाय आशा ही है। इसीलिये कहा गया है कि आशा न छोड़नेवाला स्वभाव भी बहुत ही मूल्यवान है।

स्वार्थ-त्याग वीरता का सबसे बड़ा भूषण है। दास भाव ग्रहण करके यदि कोई विवाह-बंधन में पड़े तो उसके इस कर्तव्य में कुछ न कुछ क्षति अवश्य पहुँचेगी। वीरवर हनुमान ने जब भगवान् का दासत्व ग्रहण किया तब आत्मत्याग का ऐसा अटल उदाहरण दिखलाया कि जीवन पर्य्यंत कभी विवाह ही न किया। इधर भगवान् ने जिस काल यह देखा कि इनकी प्रजा इनके द्वारा सीताग्रहण के कारण इन्हें उच्चातिउच्च आदर्श से गिरा हुआ समझती है, तब इन्होंने प्राणोपम अर्द्धांगिनी सती सीता तक का त्याग करके अपने प्रजारञ्जनवाले ऊँचे कर्तव्य को हाथ से नहीं जाने दिया। बालवय में भी अपने पिता की वेमन की आज्ञा मानने तक से इन्होंने तिल मात्र संकोच नहीं किया। आपने यावज्जीवन स्वार्थत्याग और कर्तव्य-पालन का ऊँचा आदर्श दिखलाया, मानो ये सदेह कर्तव्य होकर पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे।

कार्य्य-साफल्य साधारण दृष्टि से तो वीरता का पोषक है, किंतु दार्शनिक दृष्टि से इसका शौर्य्य से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। दार्शनिक शुद्धता प्रति वास्तविक वीर कर्म में आ जाती है चाहे वह तिल मात्र भी सफल न हुआ हो और साधारण से साधारण पुरुष द्वारा सम्पादित हुआ हो। एक साधारण सैनिक

जो अपने सेनापति की आज्ञा से मोर्चे पर शरीर त्याग देता है, दार्शनिक दृष्टि से बड़े से बड़े विजयी के बराबर है। वीरता के मूल मात्र कर्तव्य-पालन और स्वार्थत्याग हैं। विना इनके कोई मनुष्य वास्तविक वीर नहीं हो सकता। एक बार दो रेलों के लड़ जाने से एक एंजिन हाँकनेवाला अपने एंजिन में दबकर बायलर में चिपक रहा। वह मृतकप्राय था किन्तु उसके होश हवास नहीं गए थे। इसलिये वह जानता था कि बायलर जल्द फट कर उड़ेगा, सो जब और लोग उसे छुड़ाने के लिये प्रयत्न करने लगे तब उसने उन सबको वहाँ से यह कह कर खदेड़ दिया कि मैं तो मरा ही हूँ, तुम सब यहाँ प्राण देने क्यो आए हो, क्योंकि भाप के बल से बायलर अभी फटना चाहता है, जिससे सबके प्राण जायँगे। मरणावस्था मे भी दूसरो के लिये इतना ध्यान रखना वीरता का बड़ा लक्षण है।

वीरत्व के लिए भय का देखना तक ठीक नहीं कहा गया है। इसीलिये हमारे यहाँ वीर को शूर कहते हैं कि अंधे की भाँति वह भय को देख ही न सके। बालक, स्त्री, दीन, दुखिया आदि के उद्धार में वीर पुरुष अपना जीवन तृण के समान दे देवेगा। सच्चा वीर निर्बल, भीत, कातर और स्त्री पर कभी किसी प्रकार का अत्याचार न करेगा। संसार में जिसकी पदवी जितनी ही ऊँची है, उसे उतनी ही अधिक वीरता दिखलानी चाहिए, क्योंकि उसकी वीरता से संसार का बहुत अधिक लाभ हो सकता है। इन्हीं कारणो से राजा को सबसे अधिक वीर होना चाहिए। कहा भी है कि "वीरभोग्या वसुन्धरा।" फिर भी छोटे से छोटे पुरुष को भी उच्च सिद्धान्तो से तिलमात्र नहीं हटना चाहिए, क्योंकि थोड़ी-सी बुराई भी संसार में अपना फल दिखलाए विना नहीं रहती। इसीसे कहा गया है कि अनुभवी पुरुष को से

अवगुण की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, नहीं तो थोड़ा-सा अवगुण उसमें अवश्य आ जायगा।

—मिश्र बन्धु

नोट—आजकल वीरता का आदर्श कुछ बदल गया है। महात्मा गाँधी के प्रभाव से वीरता दूसरे के मारने में इतनी नहीं है जितनी कि निर्भयतापूर्वक अत्याचारों का सामना करने में और उस पर प्रत्याक्रमण किये बिना उसके आगे सर न झुकाने में। महात्मा गाँधी हिंसा का बदला प्रतिहिंसा में नहीं बतलाते। प्रतिहिंसा का कभी अन्त नहीं होता। सच्चा वीर कष्ट सह कर अपने सद्व्यवहार और प्रेम से विपक्षी का हृदय परिवर्तन करता है।

यह आदर्श कठिन है इसके लिए दूसरों को मारने से भी अधिक वीरता चाहिए। क्षमा का अर्थ निर्बलता नहीं महात्मा गाँधी निर्बल की क्षमा नहीं चाहते वरन् वे सबल की क्षमा के पक्षपाती हैं।

साहित्य में वीरता का आदर्श बहुत व्यापक है। युद्धवीर के साथ दानवीर, दयावीर, धर्मवीर आदि को समान आदर मिला है। कार्लायल ने प्रत्येक महापुरुष को चाहे वह योद्धा हो या लेखक, वीर माना है।

—संपादक

मिष्ट भाषण और शिष्टाचार

ऐसी बानी बोलिये मन का आपा खोय ।
औरन को सीतल करै, आपहुँ सीतल होय ॥
आवत गारी एक है उलटत होय अनेक ।
कह कबीर नहिं उलटिये वही एक की एक ॥
मधुर बचन है औषधी कटुक बचन है तीर ।
स्रवन द्वार ह्वै सचरै सालै सकल सरीर ॥

— कबीर

तृणानि भूमि रुदक वाक् चतुर्थी च सूनृता
एता सता गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ।

अर्थात् आसन भूमि जल और सत्य और मीठी वाणी की सज्जनो के घर में कभी कमी नहीं रहती है ।

भाषा मनुष्य का विशेष अधिकार है भाषा के कारण ही मनुष्य इतनी उन्नति कर सका है। जानवर हजारों वर्ष से जहाँ के तहाँ बने हुए हैं; किन्तु मनुष्य उत्तरोत्तर उन्नति करता चला आया है। अन्य जानवरो की अपेक्षा मनुष्य भौतिक बल में न्यून होता हुआ भी अपनी बुद्धि और भाषा के सहारे सब से अधिक सबल हो गया है। उसने पंचमहाभूतों को अपने वश में कर लिया है; यह सब भाषा द्वारा प्राप्त सहकारिता के बल पर ही हो सका है। भाषा द्वारा हमारे ज्ञान और अनुभव की रक्षा होती है।

भाषा ही द्वारा मनुष्य की सामाजिकता कायम है; किन्तु भाषा का दुरुपयोग ही उसे छिन्न-भिन्न भी कर देती है। एक मधुर

शब्द दो रूठों को मिला देता है और एक ही कटु शब्द दो मित्रों के मन में वैमनस्य उत्पन्न कर देता है।

अब प्रश्न यह होता है कि मधुर या मिष्ट भाषण किसे कहते हैं। साधारणतया जो वस्तु मनोनुकूल होती है, जिससे चित्त द्रवित होता है, वही मधुर कहलाती है। माधुर्य भाषा का भी गुण है। साहित्य-दर्पणकार ने कहा है कि चित्त को पिघलाने वाला जो आनन्द होता है उसे माधुर्य कहते हैं। 'चित्रद्रवीभावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते'।

वचनों का माधुर्य हृदय-द्वार के खोलने की कुंजी है। मधुर वचनों का आकर्षण न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण और चुम्बक के आकर्षण से भी बढ़कर है। तभी तो तुलसीदास ने कहा है:—

कोयल का को देत है कागा का सों लेत।
तुलसी मीठे वचन ते जग अपनो करि लेत॥

एक ही बात को हम कर्ण-कटु शब्दों में कहते हैं और उसी को हम मधुर बना सकते हैं। बाणभट्ट जब मरने वाला था तो यह प्रश्न हुआ कि उसकी अधूरी कादम्बरी को कौन पूरा करेगा। उसने अपने दोनों लड़कों को बुलाया और उनसे बुलाकर पूछा कि सामने जो सूखा वृक्ष पड़ा है उसको तुम किस प्रकार अपनी भाषा में व्यक्त करोगे? बड़े लड़के ने कहा 'शुष्कं काष्ठं तिष्ठत्यग्रे' दूसरे ने कहा 'नीरस तरुवर विलसति पुरतः' बात एक ही थी कहने कहने में फरक था। बाणभट्ट ने अपने छोटे लड़के को ही पुस्तक पूरी करने का भार सौंपा।

यह तो रही साहित्य के शब्द संयोजन की बात! साधारण बोल-चाल में भी बड़ा अन्तर हो जाता है। भाव का प्रभावशाली भाषा में व्यक्त कर देना ही साहित्य है। जो मनुष्य एक किसी

गलतफहमी को दूर करे। जो रूठे हुए मित्र को मना लेता है वह सच्चा साहित्यिक है।

वार्तालाप की शिष्टता मनुष्य को आदर का भाजन बनाती है और समाज में उसकी सफलता के लिए रास्ता साफ कर देती है। मनुष्य का जो समाज में प्रभाव पड़ता है वह बहुत अंश में पोशाक और चाल-ढाल पर निर्भर रहता है; किन्तु विष भरे कनक घटों की संसार में कमी नहीं है। यह प्रभाव ऊपरी ही होता है और पोशाक का मान जब तक भाषण से पुष्ट नहीं होता है तब तक स्थायी नहीं होता। मधुर भाषी के लिए करनी और कथनी का साम्य आवश्यक है; किन्तु कर्म के लिए वचन पहली सीढ़ी है। मधुर वचन ही विश्वास उत्पन्न कर भय और आतङ्क का परिमार्जन कर देते हैं। कटु भाषी लोगों से लोग हृदय खोलकर बात करने में डरते हैं। सामाजिक व्यवहार के लिए विचारों का आदान-प्रदान आवश्यक है और वह भाषा की शुद्धता और स्पष्टता के विना प्राप्त नहीं होता है। भाषा की सार्थकता इसी में है कि वह दूसरो पर यथेष्ट प्रभाव डाल सके। जब बुरे वचन आदमी को रुष्ट कर सकते हैं तो मधुर वचन दूसरे को प्रसन्न भी कर सकते हैं। शब्दो का जादू बड़ा जबरदस्त होता है।

मधुर वचनो के साथ यह भी आवश्यक है कि उनके पीछे टकसाली भाव भी हों नहीं तो मुलम्मे के सिक्कों की भाँति बेकार रहेंगे। हृदय की मलिनता और मधुर वचनों का योग नहीं हो सकता है। वचन के अनुकूल जब कर्म भी होते हैं तभी मनुष्य वन्द्य बनता है।

मनुष्य के चरित्र के असली परिचायक उसके कर्म होते हैं; किन्तु विना मधुर वचनो के लोग दूसरों के सद्व्यवहार का भी लाभ

नहीं उठाना चाहते हैं। 'मानोहिमहतां धनम्' मान ही बड़े आदमियों का धन होता है। जो लोग बिना मान के दान देते हैं उनका दान स्वीकार नहीं होता है। मान का पान भी बहुत होता है और रहीम के शब्दों में 'अमी पियावै मान बिनु सो नर हमें न सुहाय' शिष्ट भाषण समाज सेवक का एक आवश्यक गुण हो जाता है। नीति में कहा है कि जिन मनुष्यों के मुख प्रसन्नता के घर हैं, हृदय दया से परिपूर्ण हैं, वचन अमृतमय और काम परोपकार की भावना से प्रेरित हों वे किसके वन्दनायोग्य नहीं होते हैं अर्थात् वे सभी के आदर भाजन बन जाते हैं।

वदनं प्रसादसदन सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः।
करणं परोपकरणं एषां केषां न ते वन्द्याः॥

ये गुण जन्म से तो प्राप्त होते ही हैं; किन्तु शिक्षा द्वारा भी ऐसे शुभ अभ्यास और संस्कार बनाये जा सकते हैं। मन वाणी और कर्म का सामंजस्य ही मनुष्य को श्रेष्ठता के पद पर पहुँचाता है। फिर भी वचनों का विशेष महत्व है क्योंकि एक कटु वचन सारे किये-धरे पर पानी फेर सकता है। यद्यपि यह ठीक है कि दुधार गाय की दो लातें भी सहन की जाती हैं फिर भी दूसरे के स्वाभिमान का हनन कर उसके साथ उपकार करना कोई महत्व नहीं रखता। वाणी की मधुरता के साथ विनयपूर्ण व्यवहार की भी आवश्यकता है। विनयपूर्ण व्यवहार ही शिष्टाचार है। शिष्टाचार का अर्थ लोग दिखावा या तकुल्लुफ करते हैं, लेकिन वास्तव में उसका अर्थ है सज्जनोचित व्यवहार। मधुर भाषण के साथ इसका भी मूल्य है। इसके द्वारा मनुष्य की शिक्षा-दीक्षा और कुल की परम्परा और मर्यादा का परिचय मिलता है।

शिष्टाचार वाणी का भी होता है और व्यवहार का भी। वाणी के शिष्टाचार में अपनों से बड़े से आप कहना, आप क्या

कहते हैं के स्थान में आपकी क्या आज्ञा होती है आदि वाक्य अधिक वाञ्छनीय समझे जाते हैं। किसी काम को कराने के लिए कृपया शब्द का प्रयोग शिष्टता का परिचायक होता है। काम हो जाने के पश्चात् धन्यवाद कहना भी जरूरी है। जो अपने से नीचे हैं उनसे कोई ऐसी बात न कही जावे कि उससे यह प्रकट हो कि हम उनको नीच समझते हैं। अपने से कम स्थिति के लोगों के स्वाभिमान की रक्षा करना सज्जन का पहला कर्त्तव्य है।

जो काम करना है उसको प्रसन्नता से करना चाहिए और उसके सम्बन्ध मे कोई ऐसे शब्द भी न कहना चाहिए जिनसे प्रकट हो कि यह काम नाखुशी से किया जा रहा है या उस काम के करने से दूसरे के साथ अहसान किया जा रहा है। या तो दे न और कोई चीज दे तो पूर्ण उदारता से और प्रसन्नता के साथ। कम-से-कम जहाँ क्रिया मे उदारता हो वहाँ 'वचने दरिद्रता' न आने देना चाहिए।

यदि इन्कार ही करना पड़े तो उसमे अधिकार और अभिमान की गन्ध न आना चाहिए। इन्कार मजबूरी के ही कारण होना चाहिए चाहे वह सैद्धान्तिक मजबूरी हो या आर्थिक। इन्कार अशिष्टता के साथ भी हो सकता है और शिष्टता के साथ भी। प्रायः लोग अशिष्टता से यह कह देते है जाओ! अमुक वस्तु यहाँ कहाँ से आई; तुम्हारा कोई देना आता है? घरवालो को तो जुड़ता ही नहीं तुम्हारे लिए कहाँ से लायें? इन्कार करने मे जो बातें कही जायँ उनमें परायेपन का भाव न आने देना चाहिए। इन्कार करते समय खेद प्रकट करना शिष्टाचार की मांग है। कहना चाहिए कि मुझे बड़ा खेद है कि आपके लिए इन्कार करना पड़ता है। आपने यहाँ आने का या माँगने का कष्ट किया और मै इस विषय मे आपकी सेवा न कर सका।

वार्तालाप में हमको व्यापारिक या जाब्ते की बातचीत और निजी बातचीत में थोड़ा अन्तर करना होगा। व्यापारिक बातचीत भी अशिष्ट न होना चाहिए किन्तु वह नपी-तुली हो सकती है। निजी सम्बन्ध की बातचीत में आत्मीयता का अभाव न रखना चाहिए और थोड़ा-सा कष्ट उठाकर बात को पूरे तौर से समझा देना अपना कर्तव्य हो जाता है। कुछ लोग सबके साथ निजी सम्बन्ध की-सी ही वार्तालाप करते हैं यह भी बुरा नहीं है किन्तु बात उतनी ही कही जाय जितनी निभाई जा सके।

बातचीत के सम्बन्ध में नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना वाञ्छनीय है।

१—बातचीत पात्रानुकूल तो होना ही चाहिए किन्तु वह न इतनी भावुकता पूर्ण हो कि उसकी सचाई में सन्देह होने लगे और न इतनी शुष्क हो कि वक्ता में अभिमान की गन्ध आय।

२—बात उतनी ही कही जाय जितनी का निर्वाह हो सके। झूठे वायदे न किये जायँ और न पृथ्वी पर स्वर्ग उतार कर रख दिया जाय।

३—बात करने में विनय और शिष्टाचार का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। जिससे बात कही जाय उसके पद और गौरव के अनुकूल होना आवश्यक है।

४—बात आवश्यकता, अवसर और अवकाश के अनुकूल होना चाहिए। सुनने वाले के समय का ध्यान रखना आवश्यक है।

५—बातचीत का पूरा सूत्र अपने हाथ में रखना उचित नहीं है। सुनने वाले को भी बात करने का मौक़ा दिया जाना सामाजिकता का तक़ाज़ा है।

६—बातचीत मे यथासम्भव अविश्वास प्रकट न होने देना चाहिए।

७—बातचीत में 'सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यम प्रियं' का ध्यान रखना आवश्यक है। जहाँ अप्रिय या विरुद्ध बात करना हो वहाँ भी पूर्ण शिष्टता के साथ कहना चाहिए। शिष्टता में भी दृढ़ता रह सकती है।

८—किसी शब्द या वाक्यांश को तकिया कलाम बना लेना या बात-बात मे अश्लील शब्दों का व्यवहार करना या कसम खाना ये सब बातें शिक्षा की कमी की द्योतक हैं।

६—बात को स्पष्ट कहना चाहिए। द्वयर्थक बात कहना उचित नहीं है। जहाँ दो अर्थ लगाये जाने की सम्भावना हो वहाँ अपना अभिप्राय स्पष्ट कर देना आवश्यक है। 'अश्वत्थामोहतः नरो वा कुञ्जरो वा' की दुविधा मूलक युधिष्ठिरी सत्य से यथा-सम्भव बचना चाहिए।

१०—आवेश में भी कोई ऐसी बात न कहना चाहिए जिसके लिए पीछे पछताना पड़े। जबान से निकली हुई बात तीर के समान है जो एक बार छूट जाने पर वापस नहीं आती। बात को पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ कहना चाहिए। वह ऐसी हो जो साधारणतया प्रमाणित को जा सके।

यद्यपि शिष्टाचार का प्रश्न बड़ा पेचीदा है और पद-पद पर ग़लती हो सकती है तथापि हमको ध्यान रखना चाहिए कि हम अपने से दूसरे को अधिक महत्ता दें। दूसरो के आने पर उठ खड़े होना, जाने पर दरवाजे तक पहुँचा देना (विशेषकर अपने से बड़ों को) पहले से प्रणाम-नमस्कार करना, मुस्कराहट से जान-पहचान का परिचय देना, बड़ो से आगे न चलना, बड़ो के साथ

बड़ों से उनके हाथ से सामान ले लेना, रेल या गाड़ी में पहले दूसरों को बैठने का अवसर देना, द्वार में होकर पहले अपने बड़ों को निकलने का अवसर देना; पान, इलायची, पानी, भोजन का थाल आदि पहले दूसरों के सामने रखना ये सब शिष्टता और सद्व्यवहार के अंग हैं। सब लोगों के साथ एक-सा शिष्टाचार तो नहीं दिखाया जा सकता है किन्तु बोल-चाल में यथासम्भव सब से मिष्ट भाषण करना चाहिए और उसके अनुकूल व्यवहार में भी मधुरता रखनी चाहिए। सद्व्यवहार निष्फल नहीं जाता है। प्रत्येक स्थान के शिष्टाचार में कुछ न कुछ विशेषता होती है। वाचनालय में मौन ही सब से बड़ा शिष्टाचार है। यदि कोई मनुष्य अखबार पढ़ रहा हो तो जब तक वह उसे पढ़ न ले उसके हाथ से अखबार ले लेना अशिष्टता का द्योतक होगा। अखबार का यदि कोई पन्ना खाली हो तो उसको विनयपूर्वक मांग सकते हो।

सभा-सोसाइटियों में ठीक समय पर पहुंचना, समय से अधिक न बोलना, दूसरों की शान्ति भंग न करना, बोलने वाले का उत्साह भङ्ग न करना, सावधानी से दूसरों को सुनने देना, ये सब शिष्टाचार के अंग हैं।

किसी को दूर से न पुकारना, आवश्यकता से अधिक ज़ोर से बात न कहना, राह चलती स्त्रियों की ओर न ताकना, उनसे कोई ऐसी बात न कहना जो अपमान जनक हो या शिष्टता के विरुद्ध हो, किसी के पत्र को चोरी से न पढ़ना, किसी के मकान में प्रवेश करने से पूर्व द्वार खटखटा देना या उसे सावधान कर देना; ये सब छोटी-छोटी परन्तु आवश्यक बातें शिष्टता की मांग हैं।

खाने-पीने के शिष्टाचार में देशी और विदेशी ढंग में थोड़ा अन्तर है फिर भी ये बातें साधारणतया ध्यान में रखने योग्य हैं। खाते समय मुंह में इतना बड़ा ग्रास न देना कि मुंह चलाना

कठिन हो जाय, अपने पास किसी चीज़ के आने के लिए अधीर न हो जाना, दूसरों से पहले खाना न आरम्भ कर देना, व्यर्थ जूठा न छोड़ना, खाते समय पंक्ति से पहले न उठ बैठना, पानी आदि को न फैलाना, ऐसी बातों का उल्लङ्घन करना अशिष्टता का परिचायक होता है।

कपड़े पहनने में भी समय और अवसर का ध्यान रखना पड़ता है। प्रीति भोज में फुटबॉल की पोशाक काम न देगी। सभा सोसाइटी में केवल बनियान पहन कर पहुँच जाना शिष्टता न होगी। (महात्मा गांधी की दूसरी बात है) मैले कपड़े जो दूसरों को अरुचिकर हों स्वयं अपना ही अपमान कराते हैं और आत्म-ग्लानि उत्पन्न करते हैं। शिष्टाचार की माँग यह है कि कपड़े साफ हों और यथासम्भव मौसम को ध्यान में रखते हुए सारा शरीर ढक जाय।

सभ्य समाज में शिष्टाचार का विशेष महत्व है। शिष्टाचार सभ्य समाज का प्रवेश-पत्र है। उसका अभाव व्यक्ति को ही नहीं बदनाम करता है वरन् उसकी संस्था उसके शिक्षालय और कुल पर भी लाञ्छन का विषय बन जाता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को शील और शिष्टाचार का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जपी, तपी, धनवान, दाता और सूर लोगों की कमी नहीं है। संसार में शीलवान पुरुष विरले ही होते हैं।

ज्ञानी ध्यानी संयमी दाता सूर अनेक।
जपिया तपिया बहुत हैं सीलवंत कोई एक॥

खेत।' महामना मालवीय, गोखले, तिलक और गाँधी भी अवसरों का लाभ उठाकर ही बढ़े हैं किन्तु और लोग उन अवसरों के होते हुए भी लाभ न उठा सके। इसका कारण यही है कि वे अपने व्यसनों में इतने मस्त थे कि अवसरों को अपने हाथ से जाने दिया।

अवसर से लाभ उठाना अवसर-वादिता (Time serving) नहीं है। अवसरवादी मनुष्य अपने सिद्धान्त में दृढ़ नहीं रहता है किन्तु अवसर से लाभ उठाने वाला मनुष्य उचित अवसर की खोज मे रहता है। वह हर एक अवसर से लाभ नहीं उठाता है।

समय के सदुपयोग करनेवाले के लिए अवसरों की बाट नहीं जोहना पड़ता। छोटे से छोटा अवसर उसके लिए दुधार गाय का काम देता है क्योंकि वह समय का सदुपयोग कर उससे जितना लाभ उठाया जा सकता उतना लाभ उठाता है।

समय थोड़ा है, काम बहुत है, इसलिए समय का सदुपयोग आवश्यक हो जाता है। यदि हमारी आयु लोमश ऋषि के समान भी हो तो भी समय को न खोना चाहिए। उससे जितना अनुभव प्राप्त किया जाय उतना करना चाहिए। संसार में ज्ञान और अनुभव का अन्त नहीं है किन्तु मनुष्य जीवन सान्त है। अपनी सान्तता को ध्यान मे रखते हुए समय का पूरा सदुपयोग करना आवश्यक है।

निद्रा मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है किन्तु चारपाई पर पड़े-पड़े करवटें बदलते रहना अथवा रजाई की भरक का मोह न छोड़ना मनुष्य के लिए आवश्यक नहीं। यदि मनुष्य अपने समय का सदुपयोग करे तो उसको समय के अभाव की शिका-

यत करने की गुंजाइश नहीं है। मनुष्य को काम कर लेने पर ही विश्राम की सोचना चाहिए। जो लोग पहले विश्राम कर पीछे काम करने की सोचते हैं वे उस काम को पूरा करने में कभी सफल नहीं हो सकते हैं। जहाँ हमने थोड़ा आलस्य किया, विश्राम लेना आरम्भ किया या ताश शतरंज या गप्पों में रम गये तो फिर समय का ध्यान नहीं रहता। समय अपनी द्रुतिगति से चलता रहता है। सूर्य और चन्द्र की गति को कोई नहीं रोक सकता। समय निकल जाता है या कम रह जाता है तो हम काम को अधूरा ही कर पाते हैं। जल्दी का काम शैतान का होता है। जल्दी उन्हीं लोगों को करनी पड़ती है जो अपने समय को व्यर्थ खोते हैं। इसीलिए कहा गया है :—

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब्ब।
पल में परलय होइगी, बहुरि करेगो कब्ब॥

बहुत से विद्यार्थी साल भर चैन की वंशी बजाते हैं। देर तक चारपाई पर सोते रहे। चाय पानी के साथ गप्पाष्टक का भी क्रम जारी रक्खा। स्नान भी लिए दिये किये, भोजनों को भी नौकरों को डाटते-फटकारते खाया और फिर स्कूल या कॉलेज गये। वहाँ अध्यापकों की शिक्षा को सुनी-अनसुनी कर दिया। अधूरे नोट लिखे, छपे हुए नोटों का भरोसा किया। कॉलेज में मास्टरों की बुराई-भलाई की या मैचों या सिनेमाओं की आलोचना की। लौटकर आये टेनिस खेले, उसके पश्चात् खाना खाकर या बिना खाये ही सिनेमा गये या ताश खेले, गप्पाष्टक लड़ाई या कविताएँ लिखीं। इस प्रकार के कार्यक्रम में विद्यार्थियों के शिशिर वसन्त बीतते हैं। इम्तहान के दिन निकट आने पर नोट और परीक्षकों के स्कूल या कॉलेज से आये हुए 'हिन्टों' अर्थात् संकेतों

को वेदवाक्य की भाँति प्रमाण मानकर उनके आलोक में तैयारी की। विषय का ज्ञान अधूरा ही रहा और जो कुछ रटा-रटाया ज्ञान प्राप्त किया उसका परीक्षा भवन में वमन कर देने के पश्चात् उससे अपना पल्ला छुड़ाया। यही आजकल साठ प्रतिशत विद्यार्थियों की शिक्षा है।

अच्छी शिक्षा के लिए नित्य के भोजन की भाँति नित्य का अध्ययन समय विभाग के अनुकूल आवश्यक है। व्यसनो के लिए समय रक्खा जाय किन्तु पहले अध्ययन फिर व्यसन। कोर्स की किताबों के विधिवत् अध्ययन के लिए दो साल पर्याप्त नहीं होते किन्तु यदि उन पुस्तको का विधिवत् अध्ययन किया जाय तो वह अपने विषय का पण्डित हो सकता है। यह तभी हो सकना है जब वह अपने समय का सदुपयोग करे।

समय का सदुपयोग विद्यार्थी जीवन के लिए ही आवश्यक नहीं है वरन् गार्हस्थ जीवन के लिए भी उतना ही आवश्यक है। अपने उद्योग-धन्धे के लिए योग्यता प्राप्त करना पड़ती है और हाथ-पैर पीटने पड़ते हैं—'नहिं सुप्तस्य सिंहस्य प्रवशन्ति मुखे मृगाः' समय का एक-एक क्षण सम्भावनाओं से भरा रहता है। समय का नष्ट करना उन सम्भावनाओ को हाथ से खोना है।

जो मनुष्य दीर्घसूत्री होता है, आज के काम को कल पर टालता है वह जीवन में कभी सफल नहीं होता है। समय किसी की बाट नहीं जोहता है। उसको आगे से पकडना होता है। Catch time by the fore lock.

महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद अपने समय के एक-एक मिनट की रक्षा करते हैं, तभी वे इतने काम करने में सफल होते हैं। कार्नेगी, रोकफेलर, हेनरी फोर्ड, विड़ला आदि

केवल भाग्य के सहारे ही धन कुबेर नहीं बन गये। इन्होंने अपने समय को परिश्रम से सफल बनाया। महात्मा गाँधी तो बात चीत करने में भी तकली कातते रहते हैं और व्यर्थ बात चीत करने से बचने के लिए ही वे सप्ताह में एक बार मौनव्रत धारण करते हैं। समय के सदुपयोग मे समय की पावन्दी भी एक आवश्यक अंग है। समय की पावन्दी से अपना ही समय नहीं बचता है दूसरों का भी समय नष्ट होने से बचता है। जो लोग समय के पावन्द नहीं हैं तथा सोसाइटियों में देर से जाते हैं यदि वे नेता हैं तो दूसरों का समय नष्ट करते हैं और शोर गुल के उत्तरदायी बनते हैं। यदि वे साधारण पुरुष हैं तो बीच में पहुँच कर सभा के कार्यक्रम मे बाधा डालते हैं, अथवा लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर उनके सावधानी पूर्वक सुनने में बाधक होते हैं।

समय के सदुपयोग करने में हमको टालमटोल न करना चाहिए। जिन्दगी और मौत अपने हाथ की बात नहीं है। गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्।

सद्व्यसन

व्यसन शब्द प्राय: बुरे अर्थ में ही आता है। जुआ, चोरी, शराब पीना आदि व्यसन अवश्य बुरे हैं किन्तु व्यायाम, कुश्ती, पर्यटन, साहसी कार्य, संगीत, कविता करना, चित्रकारी, बढ़ई गीरी, मूर्ति संग्रह आदि व्यसन अच्छे कहे जा सकते हैं।

हमारा मन विश्राम और विषय का परिवर्तन चाहता है। एक ही विषय पर मन लगे रहने से जी ऊब जाता है। मनुष्य को आवश्यक कार्य, जैसे ईश्वराराधन, आजीविका उपार्जन अथवा समाज सेवा के कर लेने पर भी कुछ समय बचता है। उसके सदुपयोग का प्रश्न रहता है कि वह उस समय क्या करे। खाली बैठता है तो दूसरों की बुराई-भलाई करता है या कोई षड्यंत्र रचता है, खाली दिमाग शैतानी कारखाना बन जाता है। (An idle man's mind is the devil's workshop) इस कारण उस खाली समय के लिए मन को व्यस्त रखने के अर्थ कुछ गोरख-धन्धा चाहिए।

इसके अतिरिक्त मनुष्य को बुरे व्यसनो से बचाने के लिए कोई दूसरा व्यसन ही वाञ्छनीय है। वे व्यसन कौन से होना चाहिए। इन व्यसनों के सम्बन्ध में सब से पहली बात तो यह है कि इनका अनुशीलन इस हद तक न पहुँच जाय कि ये धर्म और अर्थ के उपार्जन में बाधक हों। कविता कर रहे हैं तो दिन रात काग़ज़, पेन्सिल लिए बैठे ही रहते हैं, न जीविका उपार्जन की फ़िक्र है न बाल-बच्चों की ख़बर है। बिचारी गृहणी गार्हस्थिक आवश्यकताओं

के अभाव के कारण अपने भाग्य को कोसती है, ऐसी स्थिति में कविता करना या चित्रकारी करना दुर्व्यसन बन जाता है। समाजोपकारी कार्यों मे भी जैसे समाज सेवा, राजनीतिक कार्य अथवा वैज्ञानिक अनुसन्धान में घर की चिन्ताओं को भूल जाना एक सीमा तक क्षम्य माना जाता है; किन्तु जिसने अपने ऊपर गृहस्थी का भार ले लिया है उसको अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करना ही पड़ता है। समाज के सभी लोग ब्रह्मचारी नहीं रह सकते है।

जो व्यसन अपनाये जायँ उनमे यथासम्भव कुछ उपयोगिता भी हो तो अच्छा है। (जैसे बढ़ईगीरी के काम को एक कला के रूप में अपनाना) वैसे तो बहुत-सी चीज़ें ऐसी हैं जिनका भौतिक उपयोग नहीं है; किन्तु मानसिक उपयोग है; उनको भी हम सुविधा पूर्वक अपना सकते हैं। संगीत ऐसा ही व्यसन है। संगीत से मानसिक प्रसन्नता और शान्ति मिलती है। कहीं-कहीं तो संगीत का प्रयोग मानसिक रोगों के अच्छा करने में भी होता है। कविता करना भी संगीत की कोटि में आता है। उसका प्रभाव संगीत की अपेक्षा दूर तक पहुँचता है और चिरस्थायी भी होता है। रेडियो की बदौलत संगीत का प्रभाव भी दूर व्यापी हो गया है, फिर भी उसमे इतना स्थायित्व नहीं (जब तक उसकी काँड न बना ली जायँ) जितना कि कविता मे। कविता का सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों ही हो सकते है। हम शृङ्गार का बहिष्कार तो नहीं चाहते हैं किन्तु उसमें संयम और मर्यादा की आवश्यकता है। शुद्धकला की दृष्टि से भी कविता प्रसन्नता का साधन बन सकती है किन्तु उपयोगिता की दृष्टि से देश-प्रेम को प्रोत्साहित करनेवाली कविताएँ तथा शोषितो और पीड़ितों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने वाली रचनाओं का अधिक महत्व है। इसका

यह अभिप्राय नहीं कि कला की दृष्टि से कविता का अनुशीलन बिलकुल छोड़ ही दिया जाय।

चित्रकारी और फोटोग्राफी भी ऐसे व्यसन हैं जिनको उपयोगी बनाया जा सकता है। फोटोग्राफी द्वारा हम अपने दूसरे भाइयो को जो यात्रा करने में असमर्थ हैं यात्रा का लाभ दे सकते हैं। चित्रकारी का उपयोग पोस्टर आदि बनाने में हो सकता है, लेकिन हमारा यह अभिप्राय नहीं कि मनुष्य हर समय उपयोगिता का ही ध्यान रक्खे। मन की प्रसन्नता भी एक सबसे बड़ा उपयोग है। फोटोग्राफी अच्छा व्यसन है किन्तु खर्चीला अवश्य है। सीमित आय के लोगो के लिए यदि वे उसे उपयोगी न बना सकें तो इस व्यसन को अधिक प्रोत्साहन न देना चाहिए।

बाग़बानी के व्यसन में उपयोगिता और सौन्दर्य दोनो का समन्वय हो सकता है। बाग़वानी में फूल और शाक-भाजी तो उत्पन्न किये जाते ही है किन्तु उसमे हाथ से काम करने और थोड़े मृदु व्यायाम का भी अवसर मिल जाता है। प्रत्येक मनुष्य के लिए कुछ न कुछ हाथ से काम करना आवश्यक है। बाग़वानी ख़र्चीला व्यसन भी है और बिना ख़र्च का भी। हाथ से काम करने वाले लोगो के लिए वह अल्प व्यय साध्य है। इसमें प्रकृति बहुत कुछ सहारा दे सकती है। जिसके पास थोड़ी-सी भी ज़मीन है यानी दस-बीस गज़ मुरब्बा ज़मीन भी है वह भी अपने लिए कुछ न कुछ उत्पादन कर सकता है। सेम, तोरई, घीया, काशीफल आदि बेल की तरकारियाँ कम स्थान घेरती हैं। जड़ के लिए थोड़ी ज़मीन चाहिए फिर वे दीवाल या छप्पर पर चढ़ जाती हैं।

बीजो की भी समस्या बहुत कठिन नहीं है। बहुत-सी चीज़ों के बीज तो घर ही में उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे पक्के टमाटरों में

से टमाटर के बीज निकल आते हैं। पपीते का भी बीज खाने के पपीतों मे से सहज मे मिल जाता है। आम के आम और गुठली के दाम की बात सार्थक हो जाती है। कभी-कभी करेलों मे से भी जब रक्खे-रक्खे पक जाते हैं बीज प्राप्त हो जाते हैं। सरसों का बीज गेहूँ के छानन-बीनन मे से मिल जाता है।

जो बीज इस प्रकार नहीं मिल सकते वे सहज में ख़रीदे जा सकते है। बीज बहुत सस्ते मिलते हैं। पालक, मूली, गाजर, लौकी, काशीफल आदि के बीज प्रायः मामूली पंसारियों से सस्ते मिल जाते है। हर एक बड़े शहर मे बीज बेचनेवाले भी होते है, नहीं तो बाहर से भी मँगाये जा सकते है। बाग़बानी के लिए खाद और पानी की समस्या रह जाती है। जिन लोगों के यहाँ जानवर होते हैं उनके यहाँ गोबर का खाद सहज मे ही बन जाता है। सूखी पत्तियों, छिलकों आदि का भी खाद उनको ज़मीन में गाड़ कर बनाया जाता है। बरसात मे तो पानी की प्रायः ज़रूरत नहीं होती (जहाँ बरसात कम होती है वहाँ की दूसरी बात है) और स्नानादि में जो पानी ख़राब जाता है उसका बाग़बानी में सदुपयोग किया जा सकता है। पानी अगर सब्जी को मिलता रहे तो बाकी काम प्रकृति स्वयं कर लेती है। प्रकृति की देन बहुत बड़ी है। उसकी ब्याज बनिए की ब्याज से कहीं अधिक होती है। बनिए की ब्याज सोते जागते दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती है किन्तु प्रकृति की देन थोड़ा जागरण चाहती है।

सब्जी भाजी उत्पन्न हो जाने पर उनके संचयन में बड़ा आनन्द आता है। उनका महत्व बाजार की ख़रीदी हुई शाक-भाजी से अधिक होता है। उनमें अपने परिश्रम से उत्पन्न किये हुए का भाव लगा रहता है और उन पर हम गर्व भी कर सकते

हैं। इधर-उधर पत्तों में छिपी हुई फलियों और सब्जियों की तलाश मे मनुष्य की खोज वृत्ति का भी तोष हो जाता है। जो आनन्द शिकारी को शिकार खेलने में आता होगा वह शाक-भाजी की खोज और संचयन में शाक-भाजी के उत्पन्न करने वाले को आता है।

ऐतिहासिक वस्तुओ, अजूबा चीजों आदि का संग्रह भी बड़ा रोचक व्यसन है। मूर्तियॉ, पत्थर, बर्तन, कपड़े, शंख, घोंघे आदि का संग्रह घर की शोभा ही नहीं बढ़ाते वरन् उनसे इतिहास, भूगोल और प्रकृति का ज्ञान भी बढ़ता है। इस प्रकार के संग्रहो के लिए यात्रा अपेक्षित है। यात्रा भी स्वयं एक प्रकार का व्यसन बन जाता है। भूगोल का व्यवहारिक ज्ञान यात्रा द्वारा ही होता है। यदि यात्राओ मे पैदल चलने का भी काम हो तो उनसे स्वास्थ्य और साहस की भी वृद्धि होती है और प्रकृति का निकटतम परिचय मिलता है। साहसी यात्राओं का करना हर एक मनुष्य का काम नहीं किन्तु जो लोग शारीरिक वल और हृदय का साहस रखते है वे इन यात्राओं द्वारा न केवल अपना गौरव बढ़ाते हैं वरन् देश का भी गौरव बढ़ाते हैं। वे संसार के ज्ञान की वृद्धि करते हैं।

वैज्ञानिक अनुसन्धान या ऐतिहासिक अनुसन्धान भी व्यसन के विषय बनाये जा सकते हैं। हम लोग परीक्षा समाप्त करने के बाद अपनी शिक्षा को समाप्त-सी समझ लेते हैं। जो लोग शिक्षा विभाग में काम करते हैं वे लोग तो ऐसे अनुसन्धान सहज मे कर सकते हैं किन्तु बहुत से अध्यापक भी अपने विद्यार्थियो को केवल परीक्षा पास कराना ही जानते है। अनुसन्धान के कार्यो मे न स्वयं रुचि लेते हैं और न अपने विद्यार्थियो को प्रोत्साहन देते हैं। वे अपने व्यवसाय को लज्जित करते हैं।

व्यायाम और खेल ऐसे निरापद और उपयोगी व्यसन हैं जिनको हर एक आदमी को स्वास्थ्य के हित अपनाना चाहिए। टहलना सबसे मृदुलतम व्यायाम है। इसको बच्चे और बूढ़े भी अपना सकते हैं। इसको भी यथा सम्भव एकाकी होने से बचाये रखना चाहिए। यदि दो चार आदमी साथ टहलने जाते है तो उसमे व्यायाम-सा नहीं मालूम होता है और चित्त भी अधिक प्रसन्न रहता है। प्रातः पर्यटन में हमको प्रकृति की अपूर्व रंग-बिरंगी छटाओं के देखने का अवसर मिलता है साथ ही धूल और गन्दगी से साफ और शुद्ध वायु मिल जाती है।

कुश्ती, लेजम आदि व्यायाम शरीर गठन और स्फूर्ति के लिए उपयोगी हैं किन्तु इनके सम्बन्ध में अति सर्वत्र वर्जयेत् का ध्यान रखना आवश्यक है। इनको भी एकान्त में न करके बगीची आदि मे सामूहिक रूप से करना अधिक वाञ्छनीय है।

टेनिस फुटबॉल क्रोकेट आदि का अनुशीलन समय और आय के अनुकूल होना चाहिए। फुटबॉल तो अल्प व्यय साध्य है किन्तु टेनिस में कुछ खर्चा अधिक है। इन खेलों की विशेषता यह है कि इनमे सामाजिकता कुछ बढ़ती है। कबड्डी आदि देशी खेलों को प्रोत्साहन देकर अधिक सुव्यवस्थित बनाया जा सकता है।

मनुष्य को परिवार का पालन करना भी आवश्यक है उसीके साथ सामाजिक सम्बन्धों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इन खेलों द्वारा मनुष्य की सामाजिकता बढ़ सकती है और सहनशीलता, परिश्रमशीलता, उदारता आदि गुणों का अनुशीलन भी हो सकता है।

योग्यतानुकूल व्यवसाय चुनना

हर एक मनुष्य के लिए किसी न किसी व्यवसाय, रोजगार, धंधे अथवा पेशे की आवश्यकता है और अपने लिए बुद्धिमत्ता-पूर्वक व्यवसाय चुनने में ही मनुष्य-जीवन का सफल होना न होना अवलम्बित है। ऐसे बहुत ही थोड़े—हजारों में एक—मनुष्य होंगे जिन्हें जीवन-निर्वाह के लिए कुछ उद्योग नहीं करना पड़ता अर्थात् जिनके पास आवश्यकता से बहुत ही अधिक संपत्ति होती है। परन्तु ऐसे मनुष्यों को भी अपने लिए कुछ न कुछ कार्य चुनने की आवश्यकता पड़ती है। इसका कारण यह है कि ऐसे मनुष्यों को उदरपूर्ति के लिए भले ही कष्ट न उठाना पड़े, परन्तु अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए तथा उसे आलस्य से बचाने के लिए, इच्छा न होने पर भी कुछ काम करना ही पड़ता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य-जीवन काम करने के लिए ही बनाया गया है, और धनवान् तथा धनहीन कोई भी मनुष्य इससे बच नहीं सकता।

यद्यपि इस बात की सत्यता विवाद रहित सिद्ध है कि प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ व्यवसाय या कार्य करना ही पड़ेगा, तथापि बहुत से युवकों को इस बात में डर और घृणा होती है। वे अपने माता-पिता का पिंड नहीं छोड़ना चाहते और रोटी के प्रश्न को स्वयं हल करने में बेइज्जती समझते हैं। परन्तु उन्हें भी कभी न कभी, जल्दी अथवा देरी से, कुछ कार्यारम्भ करना ही पड़ता है। इसलिए प्रत्येक युवक का, जो संसार में प्रवेश

करके विजय-कामना रखता हो, यह कर्त्तव्य है कि वह शीघ्र ही इस बात का निश्चय करले कि वह अपनी सारी शक्तियों को किस काम मे लगावेगा। अनिश्चित अवस्था में रह कर विलम्ब करने और व्यर्थ समय खोने से कुछ लाभ न होगा।

बहुत से मनुष्य सुख का अर्थ नहीं समझते। वे कार्य के अभाव अर्थात् आलस्य के साथ समय बिताने को सुख का साधन समझते हैं। यह एक बड़ी भारी भूल है। कहा जाता है कि उद्योग-रहित और कार्यहीन मनुष्यो का मन शैतान का निवास-स्थान होता है। भारतवर्ष मे एक बड़े भारी अधिकारी को यह आज्ञा मिली कि "अब तुम्हारे नौकरी के दिन पूरे हो गये। तुमने ईमानदारी से काम किया, इसके उपलक्ष्य मे तुम्हे पेंशन मिला करेगी।" जब उसे यह आज्ञा मिली तब वह बहुत ही खुश हुआ। खुशी इस बात की थी कि उसे अब काम नहीं करना पड़ेगा और मज़े में दिन काटने का अवसर मिला करेगा। उसने खुशी के आवेश मे अपने एक मित्र को यह पत्र लिख भेजा, "अब मैंने दिन-भर के झंझटो से छुट्टी पाई। रात-दिन काम करने से जी ऊब गया था। अब मुझे दस गुनी तनख्वाह मिले तो भी मैं काम न करूँगा। दो-चार आठ दिन बीत जाने पर जब उसे बैठे-बैठे ख़राब मालूम होने लगा और जब उसने देखा कि काम किये विना आलस्यपूर्ण जीवन बड़ा ही दुखदायी होता है, तब उसने फिर अपने उस मित्र को शोक के साथ लिखा कि "भाई! मै मूर्खता से यह समझता था कि काम न करने ही में आनन्द है। परन्तु बात बिल्कुल उलटी है। अब मुझे साफ़-साफ़ मालूम हो रहा है कि मेरा पूर्व जीवन बहुत ही उत्तम और सुख-पूर्ण था। जितना ही अधिक काम करना पड़ता था उतना ही अधिक सुख मिलता था।" सारांश यह है कि हाथ पर हाथ

धर कर बैठे रहना मनुष्य के देह-धर्म के विरुद्ध है। मनुष्य का मन पनचक्की के समान है। जब उसमें गेहूँ डालते जाओगे तब वह गेहूँ को पीस कर आटा बना देगी। परन्तु जब उसमें गेहूँ न डालोगे तब वह स्वयं अपने आपको पीस-पास कर क्षीण बना डालेगी। एक तत्वज्ञानी के इस कथन से हम भी पूर्णतया सहमत हैं कि "बहुत कम मनुष्य लोभ के कारण जुआरी या शराबी हुआ करते हैं। उनमें से अधिकांश ऐसे मनुष्य हुआ करते हैं जो कुछ काम न करने के कारण केवल समय बिताने के लिए ही जुआ खेलते या शराब पीते हैं।"

जब यह निर्विवाद सिद्ध है कि काम न करना अथवा आलस्यपूर्ण जीवन बिता देना देहधर्म के विरुद्ध है, तब हमारा यही कर्त्तव्य है कि हम कुछ न कुछ अच्छा व्यवसाय अपने लिए पसंद करें। यह व्यवसाय हमारे मन, इच्छा, कार्यशक्ति और स्वभाव के अनुकूल होना चाहिए। स्वाभाविक प्रवृत्ति के प्रतिकूल व्यवसाय करने में सफलता कभी हो नहीं सकती। विचार करने की बात है कि जिस मनुष्य को ईश्वर ने जन्म-सिद्ध चित्रकार बना कर भेजा है उसे यदि किसी कारण से उसका पिता विश्व-विद्यालय मे पढ़ा-पढ़ा कर डिग्री दिलाना चाहे तो यह कभी हो सकता है? इधर प्रोफेसर साहब उसे किताब की बड़ी-बड़ी बातें समझायेंगे और इधर वह लड़का प्रोफ़ेसर साहब की भिन्न-भिन्न अवस्थाओ और हलचलों का चित्र अपने मन में खींचता जावेगा। मनुष्य-जीवन के असफल होने के दो मुख्य कारण हैं—पहला यह कि वह कभी-कभी अपनी स्वाभाविक कार्यशक्ति के विरुद्ध व्यवसाय मे लग जाता है। दूसरा कारण यह है कि मनुष्य व्यवसाय-कुशल हुए बिना ही अपने कार्यों को शुरू कर देता है। परन्तु जब तक कार्यकुशलता और कामचलाऊ अनुभव

न हो जाय तब तक एकाएक कोई काम शुरू न करना चाहिए। यह सच है कि अनुभव और कुशलता जल्द नहीं आती परन्तु इन्हे दृष्टि के बाहर जाने नहीं देना चाहिए।

ऊपर कहा जा चुका है कि जीवन-संग्राम मे मनुष्य अमुक दो कारणो से असफल होता है। परन्तु हमारे भारतवर्ष में एक और तीसरा कारण देखा जाता है। इस देश के लिखे-पढ़े शिक्षित लोग केवल मानसिक और मौखिक कार्य करना अधिक पसन्द करते है। उन लोगो में शारीरिक व्यवसायो से एक प्रकार की घृणा उत्पन्न हो गई है। ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। एक मनुष्य आठ रुपये माहवार में म्युनिसिपल नाके का मुंशी बन कर कान मे कलम दबा रखने मे अपने जीवन की अच्छाई समझता है, परन्तु अन्य शारीरिक कार्य करके अधिक द्रव्य पैदा करने मे उसे लज्जा मालूम होती है। भारतवर्ष में बाबू साहिबी की बीमारी दिनों-दिन बढ़ रही है और शोक के साथ कहना पड़ता है कि यदि किसी ने इस मर्ज़ की दवा शीघ्र न निकाली तो यह बीमारी असाध्य हो जायगी। स्मरण रहे कि शारीरिक श्रम करने से और अपनी कर्मेन्द्रियों को किसी उपयोगी कार्य मे लगा देने से ही शिक्षित-समाज अपने देश के लिए आदर्श हो सकता है। विद्यार्थियो को उचित है कि वे इस बात पर ध्यान दें और शारीरिक श्रम से घृणा न करें।

ऊपर इस बात की आवश्यकता बतलाई जा चुकी है कि हर एक मनुष्य को अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति और कार्यशक्ति के अनुकूल व्यवसाय चुनना चाहिए। अतएव जो मनुष्य संसार में सफलता प्राप्त करना चाहता है, उसका पहला कर्त्तव्य इस बात का ज्ञान प्राप्त करना होगा कि उसकी रुचि किन कार्यो की ओर अधिक है। बहुत से मनुष्य इस बात की कोई आवश्यकता नहीं

समझते कि कोई भी युवक अपनी प्रवृत्तियों को जान कर उनके अनुसार काम करे। उनका यह सिद्धान्त है कि हर एक मनुष्य कोई भी कार्य कर सकता है। अपनी प्रवृत्ति का ज्ञान प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है। केवल परिश्रम करना पड़ेगा। लॉर्ड चेस्टरफील्ड का भी यही मत था। वे कहा करते थे कि अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियो तथा कार्यशक्तियों को जानने की कोई आवश्यकता नहीं है। कोई भी युवक केवल परिश्रम से विद्वान्, सुवक्ता, राजनीतिज्ञ, यशस्वी, खूबसूरत इत्यादि सभी कुछ (परन्तु कवि नहीं) बन सकता है। बल्कि वे यहाँ तक कहते थे कि मिहनत करने पर मनुष्य यदि अच्छा कवि न भी बन सके, तो खासा तुकवन्द अवश्य बन सकता है। उनके कथन का सारांश यही है कि कोई भी मनुष्य कवि, ग्रंथकार, राजनीतिज्ञ अर्थात् कुछ भी बनाया जा सकता है। अपने इसी सिद्धान्त के अनुसार लॉर्ड चेस्टरफील्ड ने अपने लड़के स्टैनहाप को, जो कि बड़ा सुस्त, कार्य-शिथिल और असावधानतापूर्ण था, एक समय गुप्तचर बनाना चाहा। इन्होंने इसके लिए वर्षों तक परिश्रम किया। परन्तु फल वही हुआ जो ऐसी अवस्थाओं में सदैव हुआ करता है। लड़का उम्र भर ज्यो का त्यों रहा। उसकी योग्यता न बढ़ी। इसलिए स्वाभाविक प्रवृत्तियो का जानना परम आवश्यक है, और इसके जानने में कोई भी कठिनाई नहीं है। प्रायः हर एक लड़के की बाल्यावस्था के कार्यों से यह जाना जा सकता है कि वह भविष्य में किस तरह का मनुष्य होगा। जो लड़का कालिदास बनने को पैदा हुआ है वह छोटी उम्र में भी अच्छी कविता कर सकता है। जो भविष्य मे शिवाजी बनता है वह बचपन मे लड़कों की सेना बना कर सेनापति का कार्य भी किया करता है। और जो भविष्य मे विख्यात अमीरअली ठग बनता है वही लड़का बचपन मे पहले पहल "भुट्टे चुरा कर" अपना

पहला पाठ सीखता है । कहने का तात्पर्य यही है कि किसी की बाल्यावस्था के कार्यों और प्रवृत्तियों को देख कर यह सरलता-पूर्वक जाना जा सकता है कि यह लड़का आगे चल कर किस प्रकार का मनुष्य होगा ।

जब यह मालूम हो जाय कि अमुक लड़के की अच्छी प्रवृत्ति किस ओर है, तब सब से आवश्यक कार्य यह रह जाता है कि उसको उसी कार्य मे अच्छी शिक्षा मिले । अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों के अनुकूल योग्य और उदार शिक्षा पाने पर मनुष्य अपने व्यवसाय मे थोड़े ही परिश्रम से सर्वश्रेष्ठ हो सकता है। हाँ, कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि किसी मनुष्य के भविष्य जीवन का पूर्व प्रतिविम्ब उसकी बाल्यावस्था में नहीं दीखता। परन्तु ऐसे निन्दात्मक उदाहरण बहुत कम पाये जाते हैं ।

जिस तरह इस सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में एक-एक विशेष गुण रहता है उसी तरह प्रत्येक मनुष्य मे भी कुछ छिपे कार्य करने की शक्ति अवश्य ही रहती है । यह शक्ति अथवा स्वाभाविक प्रवृत्ति चाहे किसी विशिष्ट अवस्था अथवा परिस्थिति मे न भी मालूम हो सके, परन्तु वह ऐसी दृढ़ और उत्कट होती है कि वह आप ही आप प्रकट हो जाती है । उसे कोई छिपा नहीं सकता ।

जब हम अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार कोई व्यवसाय चुन लें तब फिर हमे उसमे हजारों बाधाओं के होने पर भी लगे रहना चाहिए । बहुधा युवावस्था में कुछ कष्ट, उदासीनता अथवा अकृतकार्यता होने से युवकगण हताश होकर अपने इच्छित व्यवसाय को यह समझ कर छोड़ देते है कि कदाचित् वे किसी दूसरे व्यवसाय मे लग जाने से अधिक सफलीभूत होंगे। परन्तु यह बड़ी भारी भूल है । हमे सर्वदा यही उचित है कि हम जिस

धन्धे को अपने लिए एक बार चुन लें फिर उसे कभी न छोड़ें; उसी मे दृढ़ता-पूर्वक लगे रहें। जीवन-संग्राम से विजय प्राप्त करने के लिए अपनी प्रवृत्तियो के अनुकूल व्यवसाय चुनने की जितनी जरूरत है उससे बढ़कर उसमे दृढ़तापूर्वक लगे रहने की भी है। कठिनाइयो के उपस्थित होने पर यह विचार करना मूर्खता है कि हम किसी दूसरे व्यवसाय मे अधिक सफल हुए होते। जब अपने व्यवसाय को छाड़कर दूसरे धंधे मे लगने के लिए जी ललचाता है तब उस दूसरे धंधे के केवल गुण और लाभ ही दृष्टिगत हुआ करते हैं और अपने धंधे के केवल दोष और हानि। पर ऐसा होना सम्भव नहीं है। हम जिस गुलाब को देखेंगे उसी मे कॉटे मिल सकते है। इसलिए अपने एक बार के दृढ़ निश्चित व्यवसाय को विना समझे-बूझे कभी नहीं छोड़ना चाहिए। नहीं तो लेने के देने पड़ जायेंगे और यही हालत होगी कि "न ख़ुदा ही मिला न विसाले सनम, न इधर के हुए न उधर के हुए।" इसलिए हमें किसी व्यवसाय के चुनने अथवा छोड़ने मे चंचलता अथवा जल्दी नहीं करनी चाहिए। कभी-कभी जब मनुष्य अपने व्यवसाय में हजार प्रयत्न करने पर भी सफल नहीं होता तब उसे अपना व्यवसाय बदल कर दूसरा चुनने की आवश्यकता अवश्य होती है। परन्तु इससे यह भो सिद्ध होता है कि उसने अपने व्यवसाय को चुनने मे बड़ी ग़लती की। ऐसी ग़लतियॉ कई कारणो से—बुरी संगति, अचानक घटना, माता-पिता की बुद्धिहीनता अथवा अधूरी शिक्षा के कारण बहुधा हुआ करती हैं। परन्तु युवावस्था में मन बहुत चंचल रहता है। किसी काम को खूब सोच-समझ कर करना चाहिए। प्रायः ऐसा भी देखा जाता है कि अनेक युवक उस कार्य को करते हैं जिसमें वे कभी सफल नहीं हो सकते और कुछ युवक भ्रमवश उस व्यवसाय को छोड़ बैठते हैं जिसमें

थोड़े ही अधिक परिश्रम से वे सफलीभूत हो गये होते। ध्यान रखने की बात है कि जो व्यवसाय किसी भी दृष्टि से जितना ही अधिक अच्छा होगा, उसमें सफलता प्राप्त करने के लिए उतना ही अधिक समय और परिश्रम भी लगेगा। हाँ, जिस राह से हम जा रहे हैं उस राह में यदि सिंह मिल जाय तो हमारा यह सोचना बिल्कुल स्वाभाविक होगा कि उस रास्ते के सिवा संसार में अन्य किसी रास्ते से सिंह आ ही नहीं सकता, परन्तु विना परिश्रम के कुछ भी नहीं मिल सकता। इसलिए बाधाओं का सामना करते हुए अपने एक बार के चुने हुए व्यवसाय में दृढ़तापूर्वक लगे रहना अच्छा है। इसी तत्त्व के आधार पर हमारे पूर्वजों ने वर्णाश्रम-धर्म की रचना की है, जिससे समाज के सब व्यवसाय उचित रीति से हुआ करें और इसी तत्त्व के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया है कि "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः"।

इस लेख को समाप्त करने के पहले विद्यार्थियों को यह बतला देना आवश्यक है कि तुम्हें इच्छा अथवा आवश्यकता के कारण जिस व्यवसाय को करना पड़े उसे घृणा की दृष्टि से मत देखो। बहुत से युवक अपनी योग्यता की डींग हाँके विना सन्तुष्ट नहीं होते। वे कहा करते हैं कि यदि हम उस व्यवसाय में न होते तो बहुत ही यशस्वी होते। उनका ईश्वर के सामने यही रोना रहता है कि उसने हमको अपनी अपूर्व योग्यता का प्रकाश करने का अवसर ही न दिया। अपने साथियों को सदैव अपनी योग्यता के विषय में व्याख्यान देकर ऐसे युवक कहा करते हैं कि हमें अपनी योग्यता को बरबाद करना पड़ रहा है, ग्रहदशा अच्छी नहीं है, साधन और संयोग प्रतिकूल हैं इत्यादि। परन्तु यह युवकों की बड़ी भारी भूल है। इस तरह के व्यर्थ की बकवाद के कारण

दुनिया उन्हें व्यर्थ बातें करना (अपनी बातें करना) समझ कर उनका तिरस्कार करेगी, क्योंकि दुनिया की तो आज तक यही समझ है कि जिसमें थोड़ी-बहुत आश्चर्य-जनक योग्यता विद्यमान है वह मनुष्य उसे किसी न किसी तरह से संसार को अवश्य ही दिखा देगा। इसलिए अपने व्यवसाय की तुच्छता की शिकायत करते रहने के बदले उसे उच्च और कुलीन बनाने के प्रयत्न में मनो-योग-पूर्वक लगे रहने से अधिक लाभ और ख्याति की सम्भावना है। उस व्यवसाय को तुम अपने किसी पाप का प्रायश्चित मत समझो, केवल कर्त्तव्य समझ कर उसके सम्पादन में दत्तचित्त हो जाओ। फिर सफलता दूर नहीं रहेगी। —माधवराव सप्रे

विशेष—हमारी अधिकांश शिक्षा निरुद्देश्य होती है। हमारे बहुत से विद्यार्थी उस यात्री की भाँति होते हैं जो यह नहीं जानता है कि उसे कहाँ जाना है। बालक की रुचि निश्चित हो जाने पर उसको शिक्षा का क्रम भी उसके अनुकूल निर्धारित होना आवश्यक है।

व्यवसाय के चुनाव में हम रूढ़िवाद से अधिक काम लेते हैं। नये मार्ग खोजने का हम बहुत कम साहस करते हैं। भेड़िया धसान की प्रवृत्ति के वश हो हम उसी पेशे मे जाना चाहते हैं जिसमें पहले से भीड़ अधिक है। पेशे के चुनाव में हमको काफी छान-बीन करना चाहिए और यथा सम्भव हमको ऐसा पेशा चुनना चाहिए जिसके करने में देश का भी कल्याण हो। —सम्पादक

संघर्ष

'अक्रोधेन जयेत्क्रोधमसाधुं साधुनाजयेत् ।"

"धर्मेण निधनं श्रेयो न जयः पापकर्मणा ।"*

हिंसानल से शान्त नहीं होता हिंसानल ।
जो सब का है वही हमारा भी है मंगल ॥
मिला हमें यह चिर सत्य नूतन होकर ।
हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर ॥

—सियारामशरण गुप्त

यद्यपि सभी युगों में थोड़ा बहुत संघर्ष रहा है, तथापि इस युग में संघर्ष की मात्रा अधिक है। संघर्ष विश्वव्यापी हो रहा है। कोई ऐसा क्षेत्र नहीं, जो संघर्ष से खाली हो। धर्म का उदय मानव-समाज में ऐहिक और पारलौकिक शाँति के लिए हुआ था, किंतु आजकल धर्म भी अशांति का केन्द्र बन गया है। जो लोग धर्म से उदासीन हैं, वे भी शांत नहीं रहते। वे लोग अपनी उदासीनता को ही एक धर्म बनाकर एक प्रतिद्वंद्वी मत खड़ा कर देते हैं। भारतवर्ष में तो हिंदू-मुस्लिम झगड़े जातीय जीवन पर कुठाराघात कर रहे हैं। विरोधी धर्मवाले तर्क और युक्ति को छोड़कर लाठी-डंडो का सहारा लेते है, एक दूसरे को हानि पहुँचाने ही में धर्म की इति-कर्तव्यता मानते और मिथ्याभिमान के कारण

---

*'क्रोध को अक्रोध से जीतो और असाधु को साधुता से जीतो ।'
'धर्म से मरना अच्छा है अधर्म से जीतना अच्छा नहीं है ।'

वास्तविक हित का बलिदान करने मे गौरव और बुद्धिमत्ता समझते हैं। बहुत-से सामाजिक झगड़े भी धर्म की भित्ति पर खड़े हुए हैं। प्राचीनता नवीनता का विवाद भी धर्म के सहारे ही चल रहा है। एक ओर नवीनता का घोर विरोध किया जाता है, तो दूसरी ओर प्राचीनता को ही देश की अवनति का कारण बतलाया जाता है। प्राचीन लोग यह भूल जाते हैं कि जिसे वे आज प्राचीन कहते है, कभी वही नवीन था; और नवीन लोग इस बात पर ध्यान नहीं देते कि उनकी संतान उन्हे ही प्राचीन और दक़ियानूसी ख़्याल का बतलावेंगे।

सामाजिक क्षेत्र मे जाति-पॉति और स्त्री-पुरुष-संबंधिनी समस्याएँ मानव-जाति को युद्धस्थली बनाये हुए है। वास्तव मे लोग वंश-परंपरागत अधिकारो की रक्षा कर रहे हैं। जिसे जो अधिकार प्राप्त है, वह उन्हे सहज मे नहीं छोड़ना चाहता।

औद्योगिक तथा राजनीतिक क्षेत्रो मे और सब जगहों से भी बुरा हाल है। पूँजीपति लोग समझते है कि रुपया ही सबसे बड़ी संचालन-शक्ति है, विना रुपए के सब काम पड़े रहते हैं। उधर मजदूर लोग यह समझते हैं कि वे ही सच्चे उत्पादक हैं। उनके विना धन अनुत्पादक रहता है।

राजनीतिक क्षेत्रो मे भी अधिकारों का प्रश्न है। प्राप्त अधिकारो को कोई नहीं छोड़ना चाहता। विजित जातियॉ मनुष्यो के समान अधिकारो की दुहाई देती हुई कहती है कि वे बंधनो मे कब तक जकड़ी रहे, और विजेतागण अपने को विजित लोगो का हित-रक्षक बताते हुए इन बंधनो को रक्षा के साधन और उन्नति के विधायक सिद्ध करते है। अंतरराष्ट्रीय संघर्ष भी कुछ कम अशॉतिजनक नहीं। निरस्त्रीकरण के वार्तालाप से वायु-मंडल व्याप्त हो रहा है, किंतु युद्ध के नित नए साधन तैयार होते

जाते हैं। मुँह में राम, बग़ल मे ईंटें, की बात चरितार्थ होती-सो दिखाई पड़ती है।

आर्थिक उन्नति के लिये धर्म और न्याय की उपेक्षा की जाती है। जो स्वार्थ व्यक्तियो मे संघर्ष का कारण है, वही जातियों में खींचातानी उत्पन्न कर रहा है। यद्यपि मनुष्य-जाति ने नख-दंत आदि स्वाभाविक अस्त्रो को त्याग दिया है, तथापि अब उनसे भयानक और तीव्र अस्त्र तैयार कर लिए हैं। जितना ही ज्ञान बढ़ता जाता है, उतनी ही प्रतिद्वंद्विता मे वृद्धि हो रही है। व्यापारिक प्रतिद्वंद्विता भी गोला-बारूद से कम घातक नहीं। मँहगाई भी दिन-प्रति-दिन भीषण रूप धारण करती जाती है। बढ़ती हुई आवश्यकताओ के अनुकूल आय नहीं। असंतोष क्रोध और क्रूरता को बढ़ा रहा है। क्रोध की अग्नि जब प्रज्वलित हो जाती है, तब सहज मे नहीं बुझती। वायु-मंडल संकुचित और विषाक्त बनता जा रहा है। साँस लेने से दम घुटता-सा मालूम होता है, फिर आशावाद के लिए क्या स्थान ?

आशावादी जो कुछ हो चुका है, उसकी ओर देखता है, जो कुछ नहीं हुआ, उसे देखकर निराश नहीं होता। इतना ही नहीं, मनुष्य की असफलता उसके उद्योग को जारी रखने मे सहायक होती है। मानव-जाति की उपर्युक्त समस्याएँ ऐसी नहीं, जो सावधानी से विचार करने पर हल न हो सकें। यद्यपि मनुष्य मे स्वार्थ की मात्रा अधिक है, तथापि अनुभव यह बतलाता है कि सच्चा स्वार्थ निःस्वार्थता में है। संकुचित स्वार्थ स्वार्थ का ही घातक होता है। मनुष्य में जहाँ घृणा के भाव हैं, वहाँ सहानुभूति और सामाजिकता भी है। सत्शिक्षा की आवश्यकता है। अभी तक लोग दूसरों को नीचा समझने मे अपनी उच्चता मानते हैं; किंतु अब, जैसे ज्ञान का विस्तार होता जाता है, एक

को दूसरे की योग्यता का परिचय मिलता जाता है। संसार के साहित्यिक एक दूसरे के अधिक निकट आते जा रहे हैं। आपके साहित्यिक यद्यपि राजनीतिक क्षेत्र में नहीं हैं, तथापि अपनी रचनाओं द्वारा दूसरी जातियों में आपका मान बढ़ाकर बड़ा राजनीतिक कार्य कर रहे हैं।

मानव-जाति मे वृष्णि-वंशियों की भाँति आपस में कट मरने, की प्रवृत्ति अवश्य है, किंतु उसमे आत्मरक्षा की भावना भी बलवती है। सच्ची आत्मरक्षा दूसरों को दबाकर रखने में नहीं है, क्योंकि दबा हुआ मनुष्य कभी मित्र नहीं बन सकता। मानव-जाति इन सिद्धान्तों को समझती जा रही है। हाँ, इन सिद्धान्तों का प्रचार अभी यथेष्ट रूप से नहीं हुआ है, किंतु यह निराशा की बात नहीं है। विचार-क्षेत्र में सिद्धान्त के प्रकट होने में भविष्य के लिये शुभाशा है। ये सिद्धाँत केवल जातियों के सुधार के अर्थ ही विचार-क्षेत्र में नहीं आए हैं, वरन् व्यक्तियों के सुधार में भी ये काम मे लाए जा रहे हैं। दंडविधान बदला लेने के लिये नहीं रक्खा गया है, वरन् अभियोगी के सुधार के लिये। दुष्कर्म करने की प्रवृत्ति अब एक मानसिक रोग समझा जाने लगा है, और उसकी चिकित्सा के साधन ढूँढे जा रहे हैं। जिस प्रकार व्यक्ति के मनोविज्ञान ने व्यक्तिगत रोगों की चिकित्सा में बड़ी सहायता पहुँचाई है, उसी प्रकार जातियों के आदर्शों का अध्ययन वर्गों और संगठित समूहों के दंभ, घृणा आदि रोगों को कम करने में सहायक होगा। राजनीतिक और अंतर-राष्ट्रीय समस्याएँ यद्यपि बहुत जटिल हैं, तथापि दृष्टि-कोण के बदलने से वे सहज मे सुलभ हो जायँगी। अभी तक ये समस्याएँ बिलकुल दूकानदारी के सिद्धांतों पर चल रही हैं। व्यापार के भी सिद्धाँत बुरे नहीं, किंतु व्यापार उच्च कोटि का भी होता है, और

नीचे दर्जे का भी। जिस प्रकार व्यक्तियों के व्यापार में सचाई को महत्व दिया जाता है, उसी प्रकार राजनीति मे भी सचाई को स्थान पाने की आवश्यकता है। सत्य की सदा जय होती है, किंतु कभी-कभी जरा देर लग जाती है। अभी हमको व्यापार-नीति से ऊँचा उठ कर न्याय और धर्म-संबंधिनी उदार नीति की शिक्षा ग्रहण करना है।

धर्म-नीति में दो पक्ष नहीं रहते। एक ही पक्ष को दूसरे का वास्तविक हित देखने का उत्तरदायित्व लेना पड़ता है। दूसरे पक्ष के वास्तविक हित देखने से अपना स्वार्थ त्यागना पड़ता है। इसके लिये शिक्षा की आवश्यकता है। वह शिक्षा हमे स्वयं देनी चाहिए। स्वयं चरित्रवान् बनकर दूसरो को भी शिक्षा दे सकते हैं। साम्य स्थापित करने के लिये परस्पर आदान-प्रदान अपेक्षित हैं। पहले स्वयं दान करना चाहिए, फिर दूसरो से प्रत्युपकार की आशा रखनी चाहिए। निष्काम कर्म किया जाय, तो सबसे अच्छा हो। सज्जनता कभी निष्फल नहीं जाती।

अन्य समस्याएँ भी परस्पर आदान-प्रदान से हल हो सकती है। यद्यपि धर्म मे अंध-विश्वास के लिये स्थान नहीं, तथापि धार्मिक भाव के लिये अब भी गुँजाइश है। हम आदर का व्यवहार चाहते है, हम उदारता चाहते हैं, हम अपने जीवन में सरसता चाहते हैं, हम अपने में प्रेम और दया की स्निग्धता और आर्द्रता देखने को उत्सुक है। यही धार्मिक भाव है। यदि हम अपने ईश्वर को व्यापक रूप में देखना चाहते हैं, तो ईश्वर की संतान से विरोध नहीं कर सकते। यदि दूसरे अज्ञानांधकार में हैं, तो हमे चाहिए कि उन्हे ज्ञान का प्रकाश दिखलावें, न कि अपने अज्ञान से उनका अज्ञान द्विगुणित कर दें। प्राचीन-नवीन का भी झगड़ा उदारता की अपेक्षा रखता है।

प्राचीनों को यह ख़याल करना चाहिए कि संसार परिवर्तन-

शील है। समय की गति किसी के रोके नहीं रुकती, किंतु वे लोग उस परिवर्तन को उच्छृंखलता में परिणत होने से रोक सकते हैं। नवीनों को भी इस बात को मानना पड़ेगा कि हमें नवीन इमारत पुरानी नींव पर ही बनाना है। हमें उन्नति अवश्य करनी है, परन्तु एक क्रम से। केवल परिवर्तन से कोई अर्थ नहीं सधता, हमें उन्नति चाहिए। उन्नति में क्रम और विकास रहता है। क्रम में पूर्वापर संबंध का विच्छेद नहीं होता। हमें चाहिए कि हम अपना जातीय व्यक्तित्व रखते हुए उन्नति करें।

जाति-पाँति की समस्या में हमें पहले समझ लेना चाहिए कि कोई जन्म-मात्र का अधिकार स्वीकार करने को तैयार न होगा। यदि हम दूसरों से आदर चाहते हैं, यदि हम चाहते हैं कि दूसरे हमें पूजें, तो हमें अपने गुणों से, अपने प्रेम से और सहानुभूति से दूसरों के हृदय में स्थान प्राप्त करना चाहिए। पतितों को भी चाहिए कि हम जिनकी समता चाहते हैं, उनकी समता के योग्य बनें। दोनों ही ओर योग्यता की आवश्यकता है। बिना योग्यता के अधिकार नहीं मिलता। हाँ, मनुष्य-मात्र के अधिकार सबको प्राप्त हैं। व्यक्ति चाहे योग्य हो, चाहे अयोग्य, उसे अपनी नैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का अधिकार है।

यह आशावाद अकर्मण्यता नहीं है। असंतोष क्रिया का प्रेरक अवश्य होता है, किंतु उसके साथ आशा और विश्वास की आवश्यकता है। यदि हमें मनुष्य-जाति की उच्च संभावनाओं में विश्वास नहीं, तो सारी शिक्षा निष्फल हो जाती है। उद्योग भी हलका पड़ जाता है। जो श्रद्धा और विश्वास धर्म में आवश्यक हैं, वे कार्य-क्षेत्र में भी अपेक्षित हैं। मनुष्य-जाति की उच्च संभावनाओं में विश्वास रखते हुए हम अपने कार्य को उत्साह-पूर्वक कर सकते हैं। संसार संघर्षमय अवश्य है, किंतु हम कम-

से-कम अपने अंश मे संघर्ष को कम कर सकते है। हमारी सद्-भावनाएँ निष्फल नहीं जायँगी। लगन के आगे कोई प्रतिबंध नहीं ठहरता। हम समाज के जीवित केन्द्र हैं, हम समाज की गति में अंतर ला सकते हैं। हमारे विचार दूसरो को प्रभावित करते हैं। यदि बुरी बातें संक्रामक हैं, तो अच्छी बातें भी संक्रामक हो जगद्व्यापिनी बन सकती हैं। बुरी बातें अछूत रोगों की भाँति फैल जाती हैं अच्छी बातों के प्रचार मे समय अवश्य लगता है किन्तु प्रयत्न करने पर जब अच्छी बातें जाति के मन में स्थान पा जाती हैं तब वे चिरस्थायी होती हैं और जाति उन्नति करती है।

आत्म संयम और अनुशासन

'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत'

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥

× × × ×

यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा।
यस्येन्द्रियाणिवश्यानि सदश्वा इव सारथे॥*

मनुष्य स्वतन्त्रता चाहता है किन्तु स्वतन्त्रता का अर्थ यह नहीं है कि जो चाहो सो करो। स्वतन्त्रता का अर्थ यही है कि उचित काम के करने मे ऊपर से कोई बाधा न हो और कोई दूसरा अपने स्वार्थ के लिए अथवा तुम्हारे स्वार्थ के लिये भी तुम्हारे कार्यों का नियन्त्रण न करे। स्वतन्त्रता और आत्म संयम अन्योन्यान्याश्रित शब्द है जब हम स्वयं अपने को शासित रक्खेंगे तभी हम पर दूसरो के शासन की आवश्यकता नहीं होगी। जो लोग स्वेच्छाचारो होते उनकी निरंकुशाता को वश में लाने के लिए दूसरो का शासन आवश्यक हो जाता है। दूसरों

---

*अर्थात् आत्मा को रथ में बैठनेवाला समझो और शरीर को रथ मानो। बुद्धि को सारथी रूप से ग्रहण करो और मन को उसके हाथ की लगाम समझो अर्थात् मन को बुद्धि के वश में करो—जो ज्ञानी पुरुष अपने मन को बुद्धि के संयम में रखता है। उसकी इन्द्रियाँ ऐसी वश में रहती हैं जैसे कि सारथी के वश में अच्छे घोड़े।

का शासन अरुचिकर होता किन्तु आत्मशासन में प्रसन्नता होती है। योग शास्त्र में जो यम नियम बतलाये गये हैं वे आत्मशासन के ही रूप हैं।

आत्म संयम के लिए मनको बुद्धि के वश में करना आवश्यक है। हमारी इन्द्रियाँ मन के वश मे हैं जब तक मन क़ाबू में नहीं होगा तब तक इन्द्रियाँ वश में नहीं हो सकती हैं। मन को क़ाबू में रखने का अर्थ मन को मारना नहीं है वरन् उसको औचित्य की सीमा से बाहर न जाने देना है। मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण बनता है। 'मन एव मनुष्याणां बन्ध मोक्ष कारणं।'

मन अधिक बलवान है। इसके जीतने के लिए बुद्धि का सारथित्व तो चाहिए ही किन्तु उसके साथ उसको दूसरे अच्छे आकर्षण भी उपस्थित करने की आवश्यकता है। ईश्वर ने जो हम को वृत्तियाँ दी हैं सब का उपयोग है। उनको उचित दिशा मे लगाना ही प्रत्येक मनुष्य का कार्य है। इसके लिये अध्ययन, सत्संग, नियमित जीवन, अपने दोषों का विश्लेषण और उनकी स्वीकृति आवश्यक है।

आत्म-संयम के साथ अपना या अपने बड़ों का अनुशासन मानना भी आवश्यक है। स्वतन्त्र देशों में अनुशासन का पूरा ध्यान रक्खा जाता है। फौज का अनुशासन तो आदर्श माना जाता है। स्कूल और बालकों का अनुशासन यद्यपि आजकल कुछ कम हो गया है उतना ही आवश्यक है जितना कि सेना का। विना अनुशासन के आत्म संयम असम्भव हो जाता है। आत्म संयम का अभ्यास बालक पन से ही आवश्यक है।

समाज मे अनुशासन की बड़ी आवश्यकता है। दूसरों के अनुशासन की अपेक्षा आत्मानुशासन का विशेष महत्व है। जब

सरकार अपनी हो तो अधिकारियों का अनुशासन भी अपना ही अनुशासन होता है। सरकारी अनुशासन भी समाज के हित के लिए ही होता है। उससे जीवन में हमको एक समय असुविधा या देरी लगे किन्तु दूसरी बार सुविधा भी हो जाती है। नियम और व्यवस्था से सामाजिक उन्नति का माप होता है। हम लोग भेड़ बकरियों से कुछ ऊँचे उठे हुए हैं। हमारे जीवन में नियम और व्यवस्था ही हमको अन्य जातियों की दृष्टि में ऊँचा उठाती है। रेल सिनेमा घरों आदि में हम लोग अपनी सभ्यता का परिचय नहीं देते हैं। धक्का-मुक्की खींच-तान हमारे लिए गौरव की वस्तु नहीं। टिकट खरीदने में कभी दम घुटने की नौबत आ जाती है। इस सम्बन्ध में हम श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल की 'कतार बनाइए' शीर्षक लेख का कुछ अंश देते हैं।

अपने कॉलेज-जीवन का स्मरण हो आता है। महीने में एक दिन फीस चुकानी पड़ती थी। दिन और वक्त बँधा हुआ था। बड़ी भीड़ लग जाती थी। सभी विद्यार्थी जल्द से जल्द फ़ीस देकर पिंड छुड़ाना चाहते थे। क्लर्क की खिड़की के सामने जमघट हो जाता था। एक विद्यार्थी फीस चुका कर हटा कि तीनों ओर से रेला आता था। जिसने फ़ीस दे दी उसे फिर उस भीड़ में से बाहर निकलना भी दुश्वार हो जाता था। बेचारे की टोपी इधर गिरती और हाथ की किताबें उधर। दुबला-पतला हुआ तो हड्डियों की भी पूरी आज़माइश हो जाती थी। कुछ मोटे-ताज़े हट्टे-कट्टे विद्यार्थियों की मौज थी। कभी भी आ जाते और ज़ोर का धक्का देकर, दूसरों को इधर-उधर हटा कर खिड़की के पास पहुँच जाते। पर मेरी तो उस दिन मानो शामत ही आ जाती। वह दिन और वक्त चूक जाय तो फिर कई दिन तक फ़ीस चुकाने का मौक़ा नहीं मिल सकता था, क्योंकि जुदा-जुदा क्लास के

विद्यार्थियों के दिन मुक़र्रर थे। उस दिन दूसरे किसी भी वर्ग की फीस नहीं ली जाती थी, और फ़ीस न दे पाये तो रोज़ फ़ाइन होता था।

मै इस कशमकश और मल्ल-युद्ध से घबड़ा जाता था। मैं एक तरफ़ खड़ा रहता और जब भीड़ छट जाती तभी फ़ीस चुकाता। पर बहुत-सा वक़्त ज़ाया होता और काफी परेशानी उठानी पड़ती। खड़ाखड़ा सोचता कि अगर हम विद्यार्थी भी अपनी-अपनी फ़ीस ठीक ढंग से नहीं दे सकते तो फिर मामूली अनपढ़ लोग स्टेशनों पर टिकट ख़रीदने में धक्का-मुक्की करें, तो उसमे क्या आश्चर्य। सुना था इँगलैंड मे क़तार बनाने का रिवाज़ है। एक के पीछे एक खड़े होते जाते है। जो सबसे पहले आया, वह सबसे आगे, जो सबसे बाद आया वह सबसे पीछे। एक-दूसरे को कोई धक्का नहीं देता। न क़तार तोड़ कर बीच में कोई आ खड़ा हो सकता है। काश! वैसा इन्तज़ाम हमारे कॉलिज मे भी हो जाय। बस यही ख्याल फ़ीस के दिन हर महीने दिमाग़ मे आते। पर हर वक़्त वही तजुर्बा और वही परेशानी।

कुछ साल बाद जब ख़ुद इँगलैंड जाने का मौक़ा मिला तो वहाँ का कतार-रिवाज देख कर बड़ी ख़ुशी हुई। अंग्रेजी में उसे क्यू-प्रथा (Queue System) कहते हैं। जानने, सीखने और अमल में लाने लायक रिवाज़ है। कहीं भी कई लोगों को एक जगह एक ही काम करना हुआ तो कतारें लग जाती हैं। जो बाद में आता है वह चुपचाप लाइन के पीछे खड़ा हो जाता है। एक तरफ से लोग आकर क्यू के पीछे खड़े होते जाते हैं और दूसरी ओर से जिनका काम पूरा हो जाता है वे निकलते जाते हैं। न जाने वालों को कोई दिक़्क़त, न आने वालों को। न क्लर्क को।

स्टेशन पर जाइये तो टिकिट-घर के सामने कतार खड़ी मिलेगी। न कोई शोरगुल, न धक्का-मुक्की। सभी का काम बड़ी शान्ति से हो जाता है। टिकिट देने वाले क्लार्क भी बड़े चुस्त रहते हैं। एक मशीन पर उँगली रखी कि सामने टिकिट गिर पड़ता है। दूसरी मशीन पर हाथ चलाया कि रेजगारी सामने आ जाती है। दो-तीन सेकिण्ड में एक-एक को टिकिट मिलता जाता है। किसी को भी ज़्यादा देर इन्तज़ार नहीं करना पड़ता।

बस पर चढ़ना हो तो आपको स्टैंड पर एक क्यू खड़ा मिलेगा। जब मोटर आती है तो एक-एक आदमी उस पर चढ़ता है। सब एक साथ घुसने की कोशिश नहीं करते। अगर मोटर में थोड़े लोगों की जगह खाली हुई तो कतार के आगे के उतने ही चढ़ पायेंगे, और बाकी के दूसरी बस की राह देखेंगे। औरत हो, चाहे आदमी—सभी क्यू के नियमों का पालन करते हैं। कोई भी बीच मे कतार तोड़ कर नहीं आ सकता और अगर बीच में ही क्यू से चले गये तो दुबारा जगह नहीं मिलेगी फिर तो क्यू की "पूँछ" के आख़िर मे ही जाकर खड़ा होना पड़ता है।

यही हाल सिनेमा और थियेटर के टिकिट-घर के सामने कभी-कभी तो सिनेमा-घर के चारो ओर इतना लम्बा क्यू बन जाता है कि उसकी "पूँछ" ढूँढ़ निकालना एक मसला बन जाता है और घंटो खड़े रहने पर भी अगर सिनेमा-घर मे कतार की संख्या के लिहाज से कम जगह हुई तो पीछे के लोगों को फिर दूसरे 'शो' के लिए खड़ा रहना पड़ता है। स्त्रियाँ भी घंटों खड़ी रहती हैं। कोई किताब पढ़ती रहती हैं, कोई अखबार। बीच-बीच में भूख लगने पर अपने बैग में से चाक्लेट और डबलरोटी के टुकड़े निकाल कर खा लेती हैं। पर अपनी जगह से नहीं हटतीं। अगर हटीं तो जगह गई। जब टिकिट-घर खुलता है तो

क़तार धीरे-धीरे रेंगने लगती है। क्यू मे खड़े स्त्री-पुरुषों के मनोरंजन के लिए कुछ भिखारी भी अक्सर आ जाते हैं। कोई गाना गाता है, तो कोई काग़ज़ पर कारटून बना-बना कर लोगों को दिखलाता है। कोई खड़िया से जमीन पर ही चित्र बना देता है। कोई अपने कुत्ते के खेल-तमाशे दिखला कर लोगों का दिल बहलाता है।

डाकघर मे इसी तरह की कतारें खड़ी मिलेंगी। एक मनी-आर्डर की खिड़की के सामने, दूसरी तार की खिड़की के सामने, तीसरी रजिस्ट्री के लिये और चौथी स्टाम्प और पोस्ट कार्ड ख़रीदने के लिए। बिलकुल शोर नहीं, कोई झंझट नहीं। सारा काम बड़े आराम और अमन मे चलता रहता है।

टेनिस या फ़ुटबॉल की मशहूर मैच देखने के लिये लोगों की जंगी भीड़ लगती है, पर वहाँ भी वही 'क्यू'। टिकिट ख़रीदने के लिये रेज़गारी आफ़िस की खिड़की के सामने भी उसी तरह की कतार लग जाती है।

ग़रज़े कि जीवन के सभी तरह के काम-काज मे इस 'क्यू'-प्रथा का चलन है। कितना अच्छा रिवाज है! उसे देख कर मेरा जी ख़ुश हो गया। अपने कॉलेज-जीवन के वह फ़ीस देने के दृश्य याद आये बिना न रहे।

नोट—भारतवर्ष मे कलकत्ते बम्बई के टिकिट घरों मे लोग कतार बनाते हैं। दिल्ली मे भी सिनेमा के टिकिट-घरों तथा कहीं-कहीं बस के अड्डों पर कतार दिखाई देती है।

नागरिक के कर्त्तव्य और अधिकार

नगर में रहने वाले को नागरिक कहते हैं। नगर में रहने के कारण नागरिक पर कुछ उत्तरदायित्व आ जाता है क्योंकि मनुष्य नगर में रहने के कारण एक जनसमुदाय के सम्बन्ध में आ जाता है। यदि मनुष्य अकेला रहे तो सिवाय पेट भर लेने के उसका कोई कर्त्तव्य न होगा अथवा वह अपना समय ईश-भजन वा प्रकृति के निरीक्षण में व्यतीत करेगा। परन्तु समाज मे रहने के साथ कर्त्तव्य बढ़ जाता है। जिस समाज में मनुष्य उत्पन्न हुआ है, उसकी उन्नति करना उसका परम कर्त्तव्य है।

नागरिक

नागरिकता बड़े शहर मे रहने वालों के लिए ही आवश्यक नहीं हैं वरन् प्रत्येक मनुष्य के लिए जो किसी प्रकार के सभ्य समाज में रहता है। नागरिकता एक प्रकार से मानवता और सभ्यता का पर्याय बन जाता है। अच्छे नागरिक को अपने सभी सम्बन्धों में अच्छा मनुष्य बनना होगा क्योंकि मनुष्य के पारिवारिक, व्यापारिक-सामाजिक राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय आदि सम्बन्ध सामाजिक दृढ़ता और संगठन में सहायक होते हैं। इन सब सम्बन्धो के पारस्परिक अविरोध के साथ निर्वाह में ही सच्ची नागरिकता है। लोकतंत्र राष्ट्र की भी सफलता के लिए जनता में नागरिकता के भावो का मान आवश्यक है।

मनुष्य की उत्पत्ति समाज से हुई है। समाज से भरण-पोषण, शिक्षा, आदि प्राप्त कर वह पुष्ट हुआ है। समाज ही में

उसकी आजीविका है। अतः समाज की उन्नति में बाधक होना घोर कृतघ्नता ही नहीं वरन् आत्महत्या है। समाज की उन्नति के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं। जो बातें सामाजिक उन्नति के लिए आवश्यक हैं उनका साधन करना और उनके सम्पादित होने मे योग देना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है।

सफाई और स्वास्थ्य

शरीर-रक्षा को शास्त्रों मे पहला धर्म-साधन बतलाया है— "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्", यदि शरीर ही नहीं तो धर्म कहाँ? मनुष्य-शरीर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का साधन माना गया है। यदि वह स्वस्थ नहीं है तो सब साधन विफल हो जाते हैं। इसीलिए कहा गया है कि 'तन्दुरुस्ती हजार नियामत'। मनुष्य को स्वयं स्वस्थ रह कर दूसरों के स्वस्थ रहने में सहायक होना चाहिए। यदि हमारे पड़ोसी स्वस्थ नहीं हैं और यदि हमारा जलवायु शुद्ध नहीं, तो हमारे स्वास्थ्य को भी आघात पहुँचता है। हमारे बिगड़ने से समाज बिगड़ता है और समाज के बिगड़ने से हम बिगड़ते हैं। इस प्रकार क्रिया-प्रतिक्रिया रूप से बिगाड़ का रोग बढ़ता रहता है और मनुष्य की हानि होती है। इसलिए मनुष्य सबसे पहले आप स्वस्थ रहने का उद्योग करे।

स्वस्थ रहने के लिए अपने शरीर, अपने वस्त्र और अपने घर की सफ़ाई अत्यन्त आवश्यक है। अधिकतर रोग सफाई के अभाव से होते हैं। सफाई रखने से केवल शरीर ही स्वस्थ नहीं रहता वरन् मन भी प्रसन्न रहता है, और आत्म-गौरव बढ़ता है। स्वयं अपने को स्वच्छ कर अपने मुहल्ले तथा सारे नगर को स्वच्छ और आलोकित रखने में सहायक होना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। मतदाता गण म्युनिसिपैलिटी के मेवरों पर जोर डाल कर इस कार्य में सहायक हो सकते हैं। चुनाव के समय वे लोग

व्यक्तिगत सम्बन्ध, आकर्षणों और प्रलोभनों को छोड़कर सच्चे कार्यकर्त्ताओं को ही अपना मत (Vote) दें। अस्पतालों के सुचारु-रूप से चलाने और गरीबों को यथावत् दवाई पहुँचाने में सहायक होना भी परम वाञ्छनीय है।

शिक्षा

शिक्षा के लिए जितना लिखा जावे उतना ही थोड़ा है। शिक्षा से मनुष्य मनुष्य बनता है। प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह इस बात को देखे कि उसके बालकों, और नगर वा मुहल्ले के अन्य बालक-बालिकाओं को ठीक-ठीक शिक्षा होती है या नहीं, यदि नहीं होती तो किस कारण? यदि पाठशालाओं में सुधार की आवश्यकता हो तो उस सुधार के लिए यत्न करे और यदि लोगों की शिक्षा में अरुचि हो तो उनको शिक्षा के लाभ बतलाने और उनके बालकों के लिए शिक्षा सुलभ करवाने का प्रयत्न करे। शिक्षा का कार्य स्कूल और कॉलेज की शिक्षा में ही समाप्त नहीं हो जाता वरन् वह जीवन भर चलता है। जनता को नागरिकता की शिक्षा देना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। हाँ, यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रकार की शिक्षा देने में किसी प्रकार का दम्भ न आने पावे। शिक्षा सेवाभाव से दी जाय।

सामाजिक संगठन और धार्मिक उदारता

सामाजिक उन्नति सहकारिता और संगठन पर निर्भर है। प्रत्येक नागरिक को चाहिए कि वह स्वयं अपने सद्व्यवहार से लोगों में प्रेम का व्यवहार बढ़ावे, और दूसरों से घृणा-भाव को कम करे। लोग वर्णाश्रम-धर्म का पालन करें, किन्तु उनका धर्म दूसरों को अपमानित न करे, कोई अपमानित होकर समाज में नहीं रहना चाहता। धर्म को सेवा का साधन, उसके द्वारा परस्पर प्रीति-भाव और भ्रातृ-भाव बढ़ाना ही सच्ची धार्मिकता है। नागरिक को चाहिए कि वह साम्प्रदायिकता और मत-

भेद से उठने वाले झगड़ों को कम कर समाज को अंग-भंग होने से बचावे। स्वयं दूसरों के मत का आदर कर लोगों में उदारता के भावों की उत्पत्ति करे। परस्पर उदारता और आदान-प्रदान से ही सामाजिक संगठन पुष्ट होता है।

आर्थिक उन्नति

जिस प्रकार व्यक्ति का धन-हीन जीवन निरर्थक है वैसे ही समाज का भी। जो नागरिक सम्यक आजीविका द्वारा धनोपार्जन नहीं करता वह समाज का घातक है। नागरिक को चाहिए कि स्वयं बेकार न हो और दूसरों को बेकारी से बचावे। जो बेकार हों उनके लिए बेकारी दूर करने के साधन उपस्थित करे। नगर में उद्योग-धंधों की वृद्धि में सहायता दे। जो लोग विद्या या अनुभव के अभाव से अपना व्यवसाय या व्यापार नहीं बढ़ा सकते उनको अपनी विद्या और अनुभव से सहायता करे।

रक्षा और शांति

यद्यपि रक्षा और शान्ति पुलिस और मैजिस्ट्रेटों का कार्य है, तथापि उसमें नागरिकों का सहयोग आवश्यक है। प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह वास्तविक अपराधियों का पता लगाने में सहायता दे और इसी प्रकार बेगुनाहों को पुलिस के अत्याचार से बचाने का उद्योग करे। न्याय में व्यक्तिगत सम्बन्धों और प्रलोभनों को स्थान देना उचित नहीं। नागरिक को चाहिए कि वह देश की रक्षा के लिए फौजी स्वयं-सेवकों अथवा सेवा-समितियों में काम करे क्योंकि नगर की रक्षा देश की रक्षा पर आश्रित है। अच्छा नागरिक जो कुछ काम करे—चाहे मेंबरी हो, चाहे आनरेरी मैजिस्ट्रेटी हो और चाहे कलक्टरी हो—सब सेवा भाव से करे, केवल आत्म-गौरव बढ़ाने के लिए नहीं। नागरिक को चाहिए कि वह समाज को केवल चोर-डाकुओं से ही रक्षित न रक्खे, वरन् उन लोगों से भी रक्षित रक्खे जो सभ्यता के आवरण में लोगों को ठगते हैं। उसको यह

भी चाहिए कि आपस के लड़ाई-झगड़े के कारणों को उपस्थित न होने दे। यदि नगर में शान्ति-भंग होती है तो दुर्जन तो आपस में लड़ते हैं और सज्जनों की हानि होती है। जो व्यक्ति लड़ाई के कारण उपस्थित होते हुए देखकर उपेक्षाभाव से मौन रहता है, वह उस लड़ाई में सहायक होता है। हाँ, विरोध के शमन के लिए भी यह ध्यान रखना चाहिए कि उसके लिए ऐसे उपाय काम मे न लाये जावें, जिनसे विरोध बढ़े, वरन् शान्ति और प्रेम के साथ, शान्ति स्थापित की जाय।

राजनीतिक उन्नति

राजनीति के सम्बन्ध मे बड़ी सावधानी और धैर्य की आवश्यकता है। प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह नेता बने। जहाँ बहुत से नेता होते हैं वहाँ विनाश के साधन उपस्थित हो जाते हैं। धैर्य, दृढ़ता और निश्चय के साथ किया हुआ कार्य सफल होता है। सत्य का अवलंब लेकर निर्भयता से कार्य करना चाहिए। जहाँ पर मताधिकार का प्रश्न हो, जहाँ उसकी राय ली जावे, वह स्वतंत्रता-पूर्वक दे, उसमे किसी का पक्षपात न करे। धन और मान के प्रलोभनो से विचलित न हो और न बन्धुत्व, जाति और सांप्रदायिकता का ख़याल करे। मताधिकार का सदुपयोग ही लोकतंत्र राज्य की सफलता का मूल साधन है। राजनीतिक उन्नति के लिए वह इस बात का ध्यान रक्खे कि वही राजनीतिक व्यवस्था उत्तम है जिससे समाज में शान्ति और साम्य स्थापित रहे; सब को समान अधिकार रहें; कोई अपनी जाति वा मत के कारण समाज के किसी लाभ से वंचित न रहे; सबको अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियो के विकास और उनके उपयोग से न्यायानुकूल लाभ उठाने के लिए समान अवसर मिलें; उचित कार्य करने में किसी की स्वतंत्रता मे बाधा न आवे; सबका—चाहे वह पदाधिकारी हो और चाहे साधारण पुरुष—मान और गौरव रहे;

लोग भूखे न मरें, किसानों का भार हलका हो; बेकारों की बेकारी कम हो; संपत्ति की रक्षा हो, धर्म के शान्ति-पूर्वक आचरण में बाधा न पड़े; देशवासी देश की उन्नति के साधनों का स्वयं निर्णय कर सकें; और देश के सुचारु रूप से शासन का और उसकी रक्षा का स्वयं अपने ऊपर भार लेने की योग्यता प्राप्त कर सकें। जिस प्रकार देश मे उपर्युक्त रीति की व्यवस्था स्थापित होने की दृढ़तापूर्वक मांग करना और उस मांग की पूर्ति मे सहायक होना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है उसी प्रकार राज-व्यवस्था का मान करना, करो का देना और न्याय पूर्ण शासन मे राष्ट्र का सहायक बनना भी नागरिक धर्म के अन्तर्गत समझना चाहिए।

अधिकार

नागरिक अपने कर्तव्य का पूर्णतया पालन करता हुआ अपने शरीर, सम्पत्ति और वैयक्तिक, पारिवारिक एवं जातीय स्वाभिमान की रक्षा, गमनागमन विचार और भाषण की स्वतन्त्रता, व्यापारिक सुविधाओ अस्पताल, पुस्तकालय आदि सार्वजनिक संस्थाओ और नौकरियों मे समानता का व्यवहार व राजकीय न्याय विधान मे अभेद, बच्चो की शिक्षा आदि नागरिक अधिकारो के लिए झगड़ सकता है अपने अधिकारों के लिए उदासीन रहना अपने प्रति अन्याय है। जो अपने को प्राप्य अधिकारों से वञ्चित रखता है वह अन्याय को प्रोत्साहन देता है और दूसरो के लिए बुरा उदाहरण उपस्थित करता है अधिकारो के लिए जब झगड़ना हो तब वैयक्तिक लाभ की भावना से नहीं वरन् सामाजिक लाभ को अपने सामने रखना चाहिए। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि दूसरों से मनुष्योचित व्यवहार करते हुए समाज को उन्नतिशील बनाने में सहायता देना नागरिक का कर्तव्य है और अपने साथ मनुष्योचित व्यवहार की मॉग उसका अधिकार है।

भारतीय संस्कृति के आधार-स्तम्भ

जिस प्रकार व्यक्ति के संस्कार होते हैं उसी प्रकार जाति के भी संस्कार होते हैं। ये संस्कार जाति के रहन-सहन तथा विचार की परम्परागत पद्धतियों के कारण बन जाते और जाति के प्रत्येक व्यक्ति इनको पैतृक सम्पत्ति के रूप मे थोड़ी-बहुत मात्रा मे प्राप्त होते हैं। दूसरे देश के प्रभाव या संस्कार के प्राबल्य के कारण ये दब भी जाते है। इन्हीं विचार और रहन-सहन के संस्कारो के समूह को संस्कृति कहते हैं। ये संस्कार व्यक्ति के घरेलू जीवन और सामाजिक जीवन सभी मे व्यक्ति के साथ रहते हैं। अकेला रह कर भी वह इन संस्कारों से छुटकारा नहीं पा सकता है। संस्कृति का सामाजिक रूप ही शिष्टाचार है। सभ्यता संस्कृति का कुछ स्थूल दृश्यमान रूप है जो बाहरी संस्थाओ और कार्यों में प्रकट होता है।

संस्कृति का आन्तरिक पक्ष भी है और वाह्य भी। वाह्य पक्ष प्राय: आन्तरिक पक्ष की ही अभिव्यक्ति रूप होता है।

अँग्रेजी सभ्यता और संस्कृति के सम्पर्क में आने से हम लोग अपनी संस्कृति को भूलते जाते हैं और रहन-सहन और चाल-ढाल मे विदेशी बनते जाते हैं। यह देश की स्वतन्त्र स्थिति के विरुद्ध है। हमको दूसरो से अविरोध अवश्य रखना चाहिए किन्तु अविरोध के कारण जो अपना है उसका परित्याग नहीं करना चाहिए। हमारी संस्कृति मे ही हमारा जातीय व्यक्तित्व है। हम अपना जातीय व्यक्तित्व नहीं खोना चाहते हैं। इसके

खाने से हमारा ही नुक़सान नहीं है वरन् संसार का भी नुक़्सान है। संसार की सम्पन्नता विविधता जहाँ तक है यह विविधता दूसरों की स्वतन्त्रता में बाधक नहीं होती है रक्षणीय है।

हमारी भाषा और हमारा रहन-सहन सब हमारी संस्कृति के ही अंग हैं। हमारी भाषा के बहुत से शब्द हमारी संस्कृति के परिचायक है। कुशल शब्द कुशलाने की शक्ति। वह शब्द तुरन्त हमको उस समय की ओर आकृष्ट कर लेता है जब कि ब्राह्मण लोग नित्य अपनी पूजा उपासना के लिए जंगल से कुश लाया करते थे। प्रवीण का शब्द वीणा से बना है जो वीणा बजाने में कौशल रखता था वह प्रवीण कहलाता था। गवेषणा, गोष्ठी, गोमुखी, गवाक्ष आदि शब्द हमारी समाज मे गौ की प्रधानता के द्योतक हैं। हृदय शीतल करना भारतीय वातावरण के अनुकूल प्रयोग है। Warm reception ठंडे मुल्क की आवश्यकताओं के अनुरूप मुहावरा है। अंग्रेजी का मुहावरा 'Killing two birds with a stone' वहाँ की हिंसा-प्रधान मनोवृत्ति का परिचायक है। हमारे यहाँ इसके लिए 'एक पंथ दो काज' मुहावरा है।

रहन-सहन और पोशाक भी हमारी जातीय परिस्थिति और भावनाओं से सम्बन्ध रखती है। ज़मीन पर बैठना, हाथ से खाना, लम्बे कपड़े पहनना ये सब यहाँ की आवश्यकताओं और आदर्शों के अनुकूल है। गरम देश में पृथ्वी का स्पर्श बुरा नहीं लगता। हाथ से खाना इसलिए है कि यहाँ हर समय हाथ धोये जा सकते है और इसमें भोजन के साथ सीधा सम्पर्क रहता है। इस देश मे शरीर को महत्त्व कम दिया जाता है इसलिए वस्त्र का कार्य शरीर को उभार में लाना नहीं वरन् उसको आच्छादित करना है। लम्बी पोशाक आत्मा के विस्तार की भी द्योतक है।

पूर्वी देशों में लम्बी पोशाक को अधिक महत्त्व दिया जाता है। यूरोप के धार्मिक लोग भी लम्बी पोशाक पहनते हैं। हमारे यहाँ नंगे सर की अपेक्षा सर ढके रखना अधिक सांस्कृतिक समझा जाता है। बाँये हाथ की अपेक्षा सीधे हाथ को अधिक महत्त्व दिया जाता है। भारतीयो का दावतों में दोने-पत्तलों के प्रति-मोह उनके प्रकृति-प्रेम का परिचायक है।

इसी प्रकार देशी रुचि के अनुकूल फूल, फल, वृक्ष मांगल्य वस्तुएँ आदि हैं। फूलों में हमारे यहाँ कमल को सबसे अधिक महत्त्व दिया जाता है, कमल ही सब प्रकार के शारीरिक सौन्दर्य का उपमान बनता है। चरण कमल, कर कमल, नेत्र कमल, मुख कमल आदि कमल की महत्ता के साक्षी हैं। कमल का महत्त्व शायद इसलिए है कि उसका जल और सूर्य दोनों से सम्बन्ध है। भारत मे कृषि के लिए जल और सूर्य दोनो ही आवश्यक हैं। आम्र, कदली, दूर्वादल का मांगल्य वस्तुओ में अधिक मान है। आम्र यहाँ की ख़ास मेवा है। इसका वसन्त से और कोयल से सम्बन्ध है।

भारतीय संस्कृति की कुछ विशेष बातें जिनकी हमारे साहित्य में भी झलक दिखाई पड़ती है नीचे दी जाती हैं।

(१) आध्यात्मिकता—आत्मा को अमरता मे विश्वास, आवागमन को भावना, भाग्यवाद से प्रभावित पुरुषार्थवाद, भौतिक की अपेक्षा आध्यात्मिक को महत्व देना आदि बातें इसके अंग हैं।

(२) समन्वय बुद्धि—धर्म, अर्थ, काम को अविरोध भाव से महत्व देना, ज्ञान भक्ति की एकता, ज्ञान, इच्छा क्रिया का मेल, आदि इसके ही रूप हैं।

(३) अहिंसा—यद्यपि युद्धादि के वर्णनो में हिंसा का प्रचुर वर्णन है तथापि महत्त्व अहिंसा, त्याग, क्षमा, दया आदि सात्विक गुणों को ही दिया गया है।

(४) आनन्दवाद—दुख को बौद्ध धर्म में अधिक महत्व मिला है किन्तु दुख से निवृत्ति और स्थायी आनन्द की प्राप्ति हमारे यहाँ का मूल ध्येय रहा है। वर्तमान युग मे कुछ परिस्थितियों के कारण और कुछ पाश्चात्य प्रभाव और बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान से हमारे साहित्य मे दुखवाद का प्राधान्य हो गया है। वर्तमान कविता में दुखवाद को अधिक आश्रय अवश्य दिया जा रहा है किंतु उस मे भी आनन्द की झलक देखी जाती है।

(५) प्रकृतिप्रेम—भारतीय आध्यात्मिकता प्रकृति की विरोधनी नहीं है वरन् भारतीय विचार धारा में प्रकृति आध्यात्मिकता की पोषिका के रूप मे स्वीकृत हुई है। हमारे यहाँ दोनों का सुन्दर सामञ्जस्य रहा है।

आध्यात्मिकता—हमारी जातीय मनोवृत्ति का परिचय हमको वाल्मीकीय रामायण, रघुवंश महाकाव्य, शकुन्तला, उत्तर रामचरित नाटकों आदि प्रायः सभी प्राचीन साहित्य मे प्रचुर रूप से मिलता है और वर्तमान काल का भी साहित्य उनसे बहुत अंश में प्रभावित है। वाल्मीकीय रामायण के आदि में जो आदर्श पुरुष के लक्षण है वे भारतीय मनोवृत्ति के अनुकूल हैं। रघुवंश में जो सूर्यवंशी राजाओ के गुणो का उल्लेख हुआ है उनमे भारतीय आदर्शों की पूरी झलक पाई जाती है, देखिए —

त्यागाय संभृतार्थाना सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणा प्रजायै गृहमेधिनाम्॥

शैशवेऽभ्यस्तविद्याना यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धक्ये मुनिवृत्तीना योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥
रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्।

अर्थात् दूसरों को दान देने के लिए ही जो पन्न वनते थे औत सत्य के लिए ही जो थोड़ा बोलते थे (मिथ्याभिमान के कारण नहीं), केवल यश के लिए ही विजय करते थे (धन और राज्य छीनने के लिए नहीं) सन्तानोत्पत्ति कर पितृ-ऋण चुकाने के लिए ही (कामोपभोग के लिए नहीं) जो गृहस्थ बनते थे, जो शैशव-काल में विद्याध्ययन करते थे और यौवन मे विषयों की इच्छा करते थे, वृद्धावस्था मे मुनियों की वृत्ति धारण कर लेते थे और जो योग द्वारा स्वेच्छा से शरीर छोड़ते थे (आज-कल की भाँति रोगेणान्ते तनुत्यजाम नहीं थे)। ऐसे रघुवंशियों के कुल का मैं (कालिदास) वर्णन करता हूँ, यद्यपि मेरे पास उसके योग्य वाणी का वैभव नहीं है। इस अवतरण मे भारत की जातीय मनोवृत्ति का बड़ा सुन्दर चित्र है।

नश्वर शरीर के तिरस्कार की भावना रघुवंश आदि काव्यों मे प्रचुरता से मिलती हैं। गुरु की प्रसन्नता के लिये नन्दिनी गौ की शेर से रक्षा के हेतु महाराज दिलीप कहते हैं कि यदि तुममें मेरे लिए कुछ अहिंसा की मनोवृत्ति है तो मेरे यश शरीर पर दया करो नाश होने वाले पञ्चभूतो के बने हुए पिण्ड मे मुझ जैसे लोगों की आस्था नहीं होती।

किमप्यहिंस्यतव चेन्मतोऽह यशः शरीरे भव मे दयालुः।
एकान्तविध्वंसिषु मद्विधाना पिण्डेष्वनास्था खलभौतिकेषु॥

कबीर, दादू, सूर, तुलसी तो सन्त और भक्त ही थे, उनमें वैराग्य हो तो कोई आश्चर्य नहीं, परम शृङ्गारिक कवि बिहारी में

भा संसार के प्रति मोह नहीं था, वे भी उसमे एक परमात्म
रूप को प्रतिविम्बित देखते हैं।

आवागमन की भावना हमको रघुवंश, कादम्बरी, ं
आदि अनेकों साहित्य ग्रन्थों में ओत-प्रोत मिलती है। शकुन्त
दुष्यन्त जैसे पारस्परिक आकर्षण का आधार भी जन्मा
सम्बन्ध ही माना गया है। पातिव्रत को भावना (उसके
आज-कल के लोग चाहे जो कुछ कहे) हमारे साहित्य में प्रचु
से पाई जाती है। सीताजी निर्वासित होने पर भी रामचन्द्र
दोषी नहीं ठहरातीं। वे अपने भाग्य को ही उसके लिए उत्तरद
ठहराती हैं—

'ममैव जन्मान्तरपातकाना विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः'

और यही संकल्प करती हैं कि प्रसूति कार्य से निवृत्त हो
वे सूर्य की ओर दृष्टि लगा कर उनसे यही प्रार्थना करेंगी
जन्मान्तर में भी राम ही पति-रूप से प्राप्त हों और उनके स
तब भी सम्बन्ध-विच्छेद न हो।

भूयो यथा ये जनमान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न मे विप्रयोगः

पूर्वी देशो मे अलङ्कार-प्रियता कुछ अधिक है जिस प्रक
भारतीय नारियाँ आभूषणों को हमेशा पसन्द करती आई हैं वै
ही कविगण कविता को भी अलङ्कारों से सजाते रहे हैं। इसीलि
जितने भाषा के अलङ्कार पूर्वी साहित्य मे मिलते हैं उतने पश्चि
साहित्य मे नहीं। यह प्रवृत्ति बहुत सराहनीय नहीं है।

समन्वय बुद्धि का परिचय हमको प्राचीन साहित्य में प्रचुरत
के साथ मिलता है। साकेत के राम पृथ्वी को स्वर्ग बनाने आ
थे। वे तोड़ने नहीं, जोड़ने आये थे। प्रसादजी की कामायनी व

पर्वतराज कैलाश पर ले जाकर वहाँ ज्ञान, इच्छा और क्रिया को पहले पृथक रूप से दिखाती है फिर उसकी मुसकराहट से वे तीनो चक्र मिलकर एक हो जाते हैं। उसी मे प्रसादजी ने शिव के दर्शन किये हैं। देखिये:—

ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की।
महा ज्योति रेखा-सी बन कर
श्रद्धा की स्मिति दौड़ी उनमें ;
वे सम्बद्ध हुए फिर सहसा
जाग उठी थी ज्वाला जिन में।
स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे;
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धा युत मनु बस तन्मय थे।

समन्वयवाद और आनन्दवाद दोनों ही एक आध्यात्मिकता के प्रतिफलन हैं। आत्मा सदा विस्तारोन्मुखी होती है। वह सदा अनेकता मे एकता और एकता में अनेकता चाहती है। यही समन्वयवाद है और यही आनन्दवाद का मूल है 'भूमा वै सुखम्' पूर्णता मे सुख है। काव्य की आत्मा रस भी हमको उसी भूमा या पूर्णता को ओर ही ले जाता है। जो आत्मा विस्तार चाहती है वह हिंसा को भी आश्रय नहीं दे सकती।

अहिंसावाद को हमारे प्रत्येक कार्य में स्थान मिलता है। हमारे साहित्य मे दुखान्त नाटकों का अभाव है। रंगमंच पर मरण नहीं दिखाया जाता। नाग पंचमी का सॉपो को भी दूध

पिलाया जाता है ये सब बातें अहिंसात्मक मनोवृत्ति की ही परिचायक हैं।

भारतवर्ष पर प्रकृति की विशेष कृपा रही है। यहाँ पर ऋतुएं समय-समय पर आती हैं और अपने अनुकूल फल-फूल का सृजन करती हैं। धूप और वर्षा के समान अधिकार के कारण यह भूमि शस्यश्यामला हो जाती है। यहाँ की नदियाँ इस देश की पावनता को और भी बढ़ाती हैं। वे सदा कवियो के उल्लास का विषय रही हैं। सूर्योदय और सूर्यास्त अपनी स्वर्णिम आभा से आकाश-रञ्जित कर देते हैं। 'प्रथम प्रभात उदय तब गगने प्रथम साम रव तब तपोवने।' यहाँ के पशु-पक्षी, लता-गुल्म और वृक्ष तपोवनों के जीवन का एक अंग बन गये थे, तभी तो शकुन्तला के पतिगृह जाते समय महर्षि कण्व वृक्षों से भी उसके जाने की आज्ञा चाहते हैं।

पातुं न व प्रथम व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रिय मण्डनापि भवता स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुम प्रसूतिसमये यस्याःभवत्युत्सवः
सेयं यासि शकुन्तला पतिगृह सर्वैरनुज्ञायताम्॥

पीछे पीवति नीर जो पहले तुमको प्याय।
फूलपात तोरति नहीं गहने हू के चाय॥
जब तुम फूलन के दिवस आवत है सुखदान
फूली अङ्ग समाति नहिं उत्सव करत महान॥
सो यह जाति शकुन्तला आज प्रिया के गेह।
आज्ञा देहु पयान की तुम सब सहित सनेह॥

यद्यपि पीछे के कवियो का प्रकृति-वर्णन परम्परा पालन मात्र रह गया था फिर भी हमारे यहाँ विना प्रकृति-वर्णन के कविकर्म पूरा नहीं होता है।

देश-प्रेम और देश-सेवा

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'

मातृभूमिः पितृभूमिः कर्मभूमिः सुजन्मनाम् ।
भक्तिमर्हति देशोऽयं सेव्यः प्राणैर्धनैरपि ॥

—महामना मालवीय

जननी, जनक, भ्रात, भगिनी रहती जहाँ,
पुण्य भूमि उसके समान जग में कहाँ ?
अमृत तुल्य निज घर का दल-फल नीर है,
महलों से बढ़कर निज शांति कुटीर है ।
भू-लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गङ्गाजल जहाँ ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है ?
उसका कि जो ऋषिभूमि है, वह कौन ? भारतवर्ष है ॥

—मैथिलीशरण गुप्त

स्वदेशानुराग मनुष्य में स्वाभाविक है। प्रत्येक आदमी को अपने निवास-स्थान से प्रेम होता है। घोड़ा अपना थान पहचानता है। सर्प को भी अपने बिल से मोह होता है। चिड़ियाँ दिन भर गगन-मण्डल का चक्कर लगा कर शाम को अपने नीड़ को ही लौटती हैं। हम लोग अपने देश के चहचहाते पशु-पक्षियों के समान ही हैं—

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा,
हम बुलबुलें हैं उसकी वह आशियाँ हमारा।

देश का हमारे ऊपर भारी ऋण है। हम उसकी जलवायु से पले हैं। उसकी धूल में लोट कर ही हम इतने बड़े हुए हैं। उससे उत्पन्न हुए अन्न से हमारा भरण-पोषण हुआ है। जिस धरती माता ने हमको जन्म लेते ही अपने अंक में लिया था, जिन सड़कों पर हम चलते-फिरते और दौड़ते हैं, जिस भूमि पर हम अपने विलास-भवनों का निर्माण करते हैं, वे सब हमारे इसी भूखण्ड के ही, जिसको हम अपना देश कहते हैं, अङ्ग हैं। देश की संस्थाओं से ही हमने विद्यालाभ किया और देश ही हमारी आजीविका के साधन उपस्थित करता है। देश की सरकार द्वारा जो संरक्षण मिलता है उसीके बल-भरोसे पर हम अपना व्यापार और व्यवसाय चलाते हैं। हम देश के उपकार से कदापि उऋण नहीं हो सकते हैं।

देश प्रेम स्वाभाविक भी है और हमारे प्रेम पर उसका अधिकार भी है। जिस प्रकार हम अपने माता-पिता के उपकारो का बदला नहीं चुका सकते उसी प्रकार देश के उपकारो से हम उऋण नहीं हो सकते हैं। देश-प्रेम का अर्थ है देश की संस्थाओं से प्रेम, देश की रीति-रिवाज और उसमें उत्पन्न वस्तुओं, भाषा, भेष, भूमि आदि से प्रेम और उनके प्रति अपनपत्व और गर्व की भावना का अनुभव करना। सच्चे देश प्रेमी के लिए अपने देश की रज का कण-कण पवित्र होता है। उसकी भाषा का माधुर्य उसके लिए पीयूष के समान होता है और वहाँ की रहन-सहन भेष-भूषा, फल-फूल लतागुल्म और वृक्ष सभी उसके लिए आकर्षण रखते हैं।

जहाँ देश के प्रति हमारा प्रेम है वहा उसके प्रति हमारा कर्तव्य भी है। प्रेम की सार्थकता भावना मात्र में नहीं है वरन् उसके अनुकूल क्रिया भी चाहिए। देश-प्रेम देश-सेवा के बिना

एक विडम्बना मात्र है। वह प्रेम क्या जिसमें स्वार्थों का बलि-दान न हो ?

अपनी भाषा, अपनी रहन-सहन, रीति-रिवाज और संस्थाओं से प्रेम और उनके पोषण और रक्षा के अतिरिक्त उसकी आर्थिक, मानसिक, नैतिक, राजनैतिक, सामाजिक आध्यात्मिक उन्नति में योग देना प्रत्येक देश प्रेमी का कर्तव्य है।

व्यक्ति देश और समाज की अन्तिम और अविभाज्य इकाई है। देश का उत्थान और पतन व्यक्तियो के उत्थान और पतन पर निर्भर है। देशोन्नति का सबसे पहला रूप है आत्मोन्नति। यदि हम उन्नत बनते हैं तो हमारे देश का मस्तक उन्नत होता है और यदि हमारा पतन होता है तो देश का सर भी लज्जा से झुक जाता है। प्रत्येक व्यक्ति की अच्छाई या बुराई का उत्तर-दायित्व उसके ही प्रति नहीं है वरन् देश के प्रति भी है।

देशभक्त का सबसे पहला कर्तव्य यह है कि वह कोई काम ऐसा न करे जिससे बुरा उदाहरण उपस्थित हो और उसके लिए देश या जाति की बदनामी हो। हमारा कर्तव्य है कि हम अपने को हृष्ट-पुष्ट और बलवान बनाकर देश की सेवा के योग्य प्रमाणित करें—अपने स्वास्थ्य और अपनी पुष्टि को देश के एक सेवक की पुष्टि समझें। किन्तु वह पुष्टि अपने लिए सुखमय जीवन व्यतीत करने मे सीमित न रहे, वह पुष्टि और बल देश की सेवा के लिए हो।

आर्थिक उन्नति में हम केवल इतना ही योग दे सकते हैं कि हम जो व्यवसाय चुनें वह ऐसा हो जिससे कि देश के व्यवसाय में उन्नति हो। देश में कल-कारख़ाने खुलवाना, ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन देना, देश में औद्योगिक अनुसन्धान के लिए सुविधाएँ

उपस्थित करना प्रदर्शनियाँ कराना ये सब आर्थिक सुधार सम्बन्धी कार्यक्रम के अंग है। यदि हम यह न भी कर सकें तो स्वदेशी का व्रत धारण कर देश की आर्थिक उन्नति में बहुत कुछ योग दे सकते हैं। देश की बनी हुई वस्तुओं का ही व्यवहार करने से देश के उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन मिलता है। देश की बनी हुई वस्तु का मूल्य कुछ अधिक भी हो तो भी वह विदेश की वस्तु की अपेक्षा अधिक ग्राह्य होना चाहिए।

देश की नैतिक उन्नति के लिए हम अपने व्यवहार मे ईमानदारी और सचाई का आदर्श उपस्थित करें। हमको अपने वायदे के पक्के और अपनी जबान के सच्चे बनना चाहिए जिससे कि कोई हमारे ऊपर अंगुली न उठा सके। जिस माल का भाव करें वही माल दें। ऐसी बातो से देश की साख बढ़ती है। हम अपने वैयक्तिक लाभ की ओर ध्यान न देकर देश की साख का विचार करें। हमको चाहिए कि अपने को लोभ और लालच से बचायें विशेषकर उन कामों मे जहाँ कि देश के हित का सीधा सम्बन्ध हो। बहुत से लोग अपने वैयक्तिक लाभ के लिए देश के अहित की परवाह नहीं करते हैं। इस सम्बन्ध मे मोडर्न रिव्यू के सम्पादक श्री रामानन्द चटर्जी ने बड़ा ऊँचा आदर्श उपस्थित किया था। वे पहले महायुद्ध के बाद लीग ऑफ़ नेशन्स के अधिवेशन मे गये थे; वहाँ उनको आठ सहस्र रुपये मार्ग व्यय के रूप मे भेट किये गये किन्तु उन्होंने केवल इसीलिए नहीं स्वीकार किये कि उनके स्वीकार कर लेने पर वे उसके सम्बन्ध में स्वतन्त्र और निर्भीक आलोचना न कर सकेंगे। ऐसी बातो से देश का नैतिक मान बढ़ता है।

देश की सामाजिक विषमताओ को दूर करना अर्थात् अछूतों मजदूरों आदि की स्थिति को सुधारना, दहेज, वृद्ध-विवाह आदि

समाज की कुप्रथाओं का सुधार, निरक्षरता का निवारण, स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी का प्रसार, मकानों और मुहल्लों की गन्दगी और संकीर्णता को दूर कराना, नये और स्वस्थ निवास-स्थानो का निर्माण, रोगी सेवा औषधि आदि का प्रबन्ध करना या कराना, लोगों के मनोरञ्जन और विश्राम के लिए पार्क, व्यायामशाला, क्लब आदि खुलवाना ये सब समाज सेवा के ही अङ्ग हैं। समाज की सेवा देश की सेवा है। देश भक्ति का अर्थ केवल नारे लगाना या व्याख्यान देना ही नहीं है वरन् रचनात्मक कार्य करना है।

जनता के मानसिक धरातल को ऊँचा करने के लिए निरक्षरता निवारण के साधनों मे योग देना, तथा वाचनालय और पुस्तकालय, पाठशालाओ और कॉलेजों को खुलवाने में सहायक बनना देश-सेवा के ही रूप हैं। ज्ञान-प्रसार के लिए वैज्ञानिक, राजनीतिक और आर्थिक व्याख्यान कराना तथा देश के वैज्ञानिक ऐतिहासिक और साहित्यिक खोज को प्रोत्साहन देना ये सब देश-सेवा के ही क्षेत्र हैं।

राजनीतिक उन्नति के लिए सबसे आवश्यक वस्तु है जनता में राजनीतिक ज्ञान का प्रसार करना और उसमें राष्ट्रीयता की चेतना उत्पन्न करना। इस चेतना के उत्पन्न करने मे सबसे अधिक बाधक है साम्प्रदायिकता। साम्प्रदायिकता एक प्रकार का धार्मिक अहंभाव है। जहाँ धर्म अहंभाव को दूर करना सिखाता है वहाँ साम्प्रदायिकता उसको पुष्ट करती है। धर्म हृदय का विषय है। हम किसी का जबरदस्ती हृदय-परिवर्तन नहीं कर सकते हैं।

परमात्मा एक ही है उसके विद्वानो ने अनेक रूप बना लिए हैं। 'एकंसत् विप्राः बहुधा वदन्ति' परमात्मा अनन्त है, हम सब

अंधे के हाथी को भाँति उसके एक ही अंग को पूर्ण समझ कर लड़ने लगते हैं। अपने धर्म में दृढ़ रहकर दूसरे धर्म का आदर करना प्रत्येक देश के हितचिन्तक का कार्य है। पूज्य महामना मालवीय ने अपने धर्मोपदेश में लिखा है।

विश्वासे दृढता स्वीये परनिन्दा विवर्जनम्।
तितिक्षा मतभेदेषु प्राणिमात्रेषु मित्रता॥

अर्थात् अपने विश्वास में दृढ़ता और पराई निन्दा से दूर रहना, मतभेदों को छोड़ देना। (अर्थात् सामान्य बातों को ग्रहण करना और प्राणिमात्र से मित्रता रखना चाहिए) उसी बात को मालवीयजी ने हिन्दी में कहा है—'दृढ़ता अपने धर्म में सारे जग सों प्रेम' कोई धर्म ईश्वर की सृष्टि का हनन नहीं सिखलाता ईश्वर से प्रेम करना और ईश्वर के बन्दो से द्वेष करना धर्म नहीं। जहाँ रीति रिवाज उपासना के तरीको का सवाल है। हम चाहे अलग हों किन्तु जहाँ देश का सवाल है वहाँ हम एक हैं। उर्दू के कवि इकबाल ने क्या ही अच्छा कहा है:—

मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।
हिन्दी हैं हम वतन हैं हिन्दोस्ताँ हमारा॥

साम्प्रदायिकता की भाँति प्रान्तीयता और जातिभेद राष्ट्रीयता में बाधक है। हम यह नहीं कहते कि प्रान्त के लोग अपने प्रान्त से प्रेम न करें अथवा जातिभेद मिटजाय, जातिभेद रहे तो विवाह शादियो के लिए रहे किन्तु उसे राष्ट्र की एकता और उन्नत्ति में बाधक न होना चाहिए। मत देते समय योग्यतम व्यक्ति का ध्यान रखना चाहिए न कि यह कि अमुक व्यक्ति क्षत्रिय है या वैश्य अथवा कायस्थ, ब्राह्मण या शूद्र है अलग-अलग निर्वाचन भी भेद-भाव की खाई को बढ़ाते हैं किन्तु हमको इतना उदार होना

चाहिए कि सबको देश सेवा का अवसर मिल जाय। हमारी अनुदारता ही पृथक निर्वाचन क्षेत्रों के लिए उत्तरदायी है।

राष्ट्रीयता की दूसरी मॉग है एक राष्ट्र भाषा। अंग्रेजी मे साहित्य और विज्ञान अच्छा है किन्तु उसे प्रान्तों के पारस्परिक विचार विनिमय का या शिक्षा का माध्यम बनाना दासता की मनोवृत्ति और अपने दिवालिए पन का परिचय देना है। राष्ट्र-भाषा ऐसी हो जिसमें साम्प्रदायिक भेद न्यूनातिन्यून होकर हमारे देश की संस्कृति की रक्षा हो। वह हिन्दू, मुसलमान, ईसाई पारसी सब लोगों के लिए सुलभ हो। हम अपना साहित्य प्रान्तीय भाषाओं मे रचें किन्तु राजनीतिक कार्य एक ही राष्ट्र भाषा में हों, लिपि चाहे दो रहें।

राष्ट्रीयता की तीसरी मॉग है देश मे सुशासन की स्थापना। उसमे सबको उन्नति के समान अवसर रहें और न्यायोचित कार्य करने में किसी को बाधा न पड़े। इसके लिए आत्म संयम और सद्भावना के प्रचार की आवश्यकता है। शासन व्यवस्था में ईमानदारी का आना बहुत कुछ अपने हाथ में है। हम अपनी सुविधा के लिए अफसरों हाकिमों से कोई बेईमानी की बात न चाहें और न उसके लिए कोई अनुचित प्रलोभन दें।

जिन लोगों को सरकारी नौकर होकर देश की सेवा का सौभाग्य प्राप्त होवे वे अपने को वास्तव मे जनता के सेवक (Public Servants) समझें और ईमानदारी और सच्चरित्रता का आदर्श उपस्थित करें। जो लोग सरकारी नौकरी को या संस्थाओं की नौकरी को ईमानदारी से करते हैं वे सच्चे देशभक्त हैं, वे चाहे गॉधीटोपी लगायें या न लगायें। लगायें तो वे अपने राष्ट्र-प्रेम का परिचय देंगे किन्तु राष्ट्र-प्रेम गॉधीटोपी या जवाहर वास्कट में नहीं है। ये तो बाहरी चिह्न है इनका आदर करना

चाहिए और अपनाना भी चाहिए किन्तु सच्ची राष्ट्रीयता राष्ट्र के गौरव बढ़ानेवाले कामों मे है। जो कोई नया वैज्ञानिक अनुसंधान करता है अथवा उच्च साहित्यिक पुस्तक लिखता है वह भी राष्ट्र का गौरव बढ़ाकर देश की सेवा करता है।

राजनीतिक उन्नति की अन्तिम माँग है विदेशी शासन को हटाकर उत्तरदायित्वपूर्ण प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना। इस दिशा मे भी पर्याप्त उन्नति हो चुकी है, विधान परिषद नया विधान बनाने का काम कर रही है। साम्प्रदायिक भेदभाव को दूर करके उसके सफल बनाने मे सहायक होना प्रत्येक देशवासी का काम है। हम लोगों को ऐसा सुझाव दें कि जिससे सब सम्प्रदाय अपना व्यक्तित्व खोये बिना और अपनी धार्मिक सुविधाओं की रक्षा करते हुए उसमे योग दे सकें। देशी राज्य भी अपनी राज सत्ताओं को स्थित रखकर उत्तरदायी शासन की स्थापना कर संघ मे शामिल होकर राष्ट्र की शक्ति और सम्पन्नता बढ़ा सकते हैं।

स्वराज्य स्थापित हो जाने पर भी अपने संयम और आत्मबल द्वारा अपनी योग्यता प्रमाणित करना हमारा कर्तव्य रहेगा। वह स्वतन्त्रता किस काम को जिसमे शान्ति और सम्पन्नता न हो। देश को सम्पन्न, समृद्धशाली शान्त और बलवान बनाना प्रत्येक राष्ट्र सेवक का पुनीत कर्तव्य है। अन्त में हम रविबाबू की देश सम्बन्धी प्रार्थना का श्री कविरत्न सत्यनारायण द्वारा किया हुआ हिन्दी अनुवाद देकर इस प्रसङ्ग को समाप्त करेंगे।

भगवन्! मेरा देश जगाना।
स्वतन्त्रता के उसी स्वर्ग में, जहाँ क्लेश नहीं पाना॥
रुचे जहाँ मनको निर्भय हो ऊँचा शीश उठाना।
मिले बिना किसी भेद भाव के सबको ज्ञान-खजाना॥

तंग घरेलू दीवारों का बुना न ताना-बाना।
इसी लिए बच गया जहाँ का पृथक्-पृथक् हो जाना॥
सदा सत्य की गहराई से शब्दमात्र का आना।
पूरणता की ओर यत्न कर जहाँ भुजा फैलाना॥
विमल विवेक सुलभ श्रोते का जो रस पूर्ण सुहाना।
रूढि भयानक मरुस्थली में जहाँ नहीं छिप जाना॥
जहाँ उदारशील भावों का भावे नित अपनाना।
सच्चे कर्मयोग में प्रतिजन सीखे चित्त लगाना॥

विश्व-प्रेम और मानवता

'उदार चरितानाातुवसुधैव कुटुम्बकम्'

जहाँ दैन्य-जर्जर, अभाव-ज्वर पीड़ित
जीवन यापन हो न मनुज को गर्हित।
युग युग के छाया-भावों से त्रासित
मानव प्रति मानव-मन हो न शकित॥
मुक्त जहाँ मन की गति जीवन में रति
भव-मानवता में जन-जीवन परिणति।
सस्कृत वाणी भाव सस्कृत मन
सुन्दर हो जनवास वसन सुन्दर तन।

—सुमित्रानन्दन पन्त।

राष्ट्रीयता हमको प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकता से ऊँची उठाती है किन्तु मानव के इस उत्थान में उससे भी ऊँची वस्तु है विश्व-प्रेम और मानवता। राष्ट्रीयता जहाँ हमको एक सूत्रता में बाँधती है, हमारे संकुचित स्वार्थों को दूर करती है वहाँ हमको कभी-कभी राष्ट्र राष्ट्र में भेद और पार्थक्य का पाठ पढ़ाकर हमको विश्व-व्यापी संघर्ष के वात्याचक्र मे घसीट ले जाती है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को दबाकर रखना चाहता है और उस पर अपनी तथाकथित उच्चतर संस्कृति को लादने का प्रयत्न करता है। संस्कृति और सभ्यता का प्रसार स्वार्थ-साधन का दूसरा नाम है। उनके नाम से अपने देशवासियों को काम मिलता है

व्यापारियों को व्यापार मिलता है और राष्ट्र का प्रभुत्व और शक्ति बढ़ती है।

राष्ट्रीयता जहाँ तक पारस्परिक प्रेम-बन्धन का सूत्र है वहाँ तक सराहनीय गुण है किन्तु जहाँ वह दूसरे राष्ट्रों पर प्रभुत्व जमाने या उनके प्रति घृणा का प्रचार करने में सहायक होता है वहीं वह निन्दनीय हो जाता है।

आत्मा के विस्तार की सीमायें नहीं हैं। उसका वृत्त बढ़ता ही रहता है। व्यक्ति को केन्द्र बनाकर पहला वृत्त कुटुम्ब का है उसके बाद जाति या सम्प्रदाय का। आत्मा के अनन्त विस्तार का वहाँ पर अन्त नहीं हो जाता। सम्प्रदाय के पश्चात् देश आता है और देश के आगे सारा विश्व है।

आत्मा का संकोच और विस्तार मनुष्य की शिक्षा-दीक्षा पर निर्भर रहता है। संकुचित मनोवृत्ति के मनुष्य के लिए उसका निकटतम स्वार्थ ही सब कुछ है। उसको चुपड़ी और दो-दो मिलती रहे अन्य लोग चाहे भूखे मरें उसे कुछ नहीं। चाहे बङ्गाल का अकाल हो और चाहे क्वेटा का भूकम्प, उसकी सुख-निद्रा भङ्ग नहीं होती। बहुत से स्वार्थी लोग तो अपने बाल-बच्चों की भी परवाह नहीं करते। सद्गृहस्थ अपने बाल-बच्चों के स्वार्थ के हित अपनी भूख-प्यास को भूल जाता है। उदारता के सोपान में एक सीढ़ी वे ऊँचे चढ़े हुए हैं जो अपनी जाति-बिरादरी के हित मे संलग्न रहते हैं। वे जाति विशेष के लोगो को ही अपना समझकर उनको हर तरह का उचित या अनुचित लाभ पहुँचाना चाहते है। कुछ लोग कुटुम्ब से ऊँचे उठकर सम्प्रदाय तक जाते हैं। उनके लिए देश चाहे परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ा रहे किन्तु हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के

लिए अपने स्वार्थों का एक कण का भी बलिदान न करेंगे। एक तरफ़ हिन्दुत्व की रक्षा की पुकार उठती है तो दूसरी ओर इस्लाम ख़तरे में है—का नारा लगता है। वे लोग भी उदार हैं। हिन्दुत्व और इस्लाम के लिए अपने को क़ुरबान करने को तैयार रहते हैं अपने को ही क़ुरबान करने की बात नहीं रहती, वे धर्म की रक्षा के लिए दूसरों को भी बलिवेदी पर चढ़ाने में संकोच नहीं करते।

राष्ट्रीय लोग अपने धर्म मे दृढ़ रहते हुए भी (बहुत से क्या अधिकांश नहीं भी रहते किन्तु अपने धर्म की दृढ़ता और राष्ट्रीयता का विरोध नहीं है। महामना मालवीय जैसे कट्टर धर्म-निष्ठ भी राष्ट्रीय थे) दूसरों के प्रति उदार रह सकते हैं। वे भारतीय पहले हैं साम्प्रदायिक पीछे। ऐसे उदारचरित—गान्धी, जवाहरलाल, मौलाना अब्दुलक़लाम आजाद, ख़ान अब्दुल-गफ्फ़ार ख़ॉ आदि अनेकों हैं जो राष्ट्र की दत्तचित्त होकर सेवा कर रहे हैं।

हमारे भारत मे तो राष्ट्रीयता दूषित हद तक नहीं पहुँची है किन्तु पिछले महायुद्ध मे जर्मनी, जापान, रूस, इङ्गलेण्ड, अमरीका सभी इस दूषित राष्ट्रीयता के चक्र मे फँस कर एक दूसरे का गला घोंटने को तैयार हो गये थे। सभी न्याय और सभ्यता की दुहाई देते थे (इसमें कुछ लोग क्रूरता की सीमा को पार कर गये और कुछ थोड़ी-बहुत मर्यादा के भीतर रहे। मानवता का व्यवहार हमको सभी स्थानों मे करना चाहिए। मानवता का प्रारम्भ घर से हो किन्तु घर मे सीमित न रहे। Charity begins at home but it should not end there.

हमारे कहने का यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के नाते घर के लोग सम्प्रदाय के लोग या देशवासी

भूखों मरें। जिनकी हम तक सहज पहुँच है जिन पर हमारा विशेष उत्तरदायित्व है उनकी अवहेलना करना पाप है। पारिवारिकता और सामाजिकता का समन्वय कठिन नहीं है। मनुष्य अपने परिवार की देख भाल और रक्षा करता हुआ भी समाज की और राष्ट्र की सेवा कर सकता है। मनुष्य को अपनी जाति और देश की सेवा अवश्य करना चाहिए किन्तु उस सेवा को वहीं तक सीमित नहीं रखना चाहिए।

मनुष्य राष्ट्रीय होकर भी दूसरे राष्ट्रों से अविरोध रख सकता है और किसी देश को अपने से नीचा न समझना और अपने देश की हानि न करते हुए उसके उत्थान में सहायक होना, यही राष्ट्रीय मानवता है।

राष्ट्रीय मानवता से पहले मनुष्य को वैयक्तिक मानवता का अभ्यास करना चाहिए जो मनुष्य अपने निकट वासियों के प्रति उदार नहीं है उसका दूर देशों के लोगों के प्रति उदार होना विडम्बना मात्र है। मानवता के कुछ लक्षण नीचे के श्लोक में दिये गये हैं, देखिए :—

ये दीनेषु दयालवः स्पृशति यानल्पोऽपि न श्रीमदो।
व्यग्रा ये च परोपकारकरणे हृष्यन्ति ये याचिताः॥
स्वस्था सन्ति च यौवन्मदमहाव्याधिप्रकोपेऽपि ये।
तैस्तंम्भैरिव सुस्थिरै किलभाराक्रान्ता धरा धार्यते॥

अर्थात् जो दीनों के प्रति दयाल हैं और जिनको जरा-सा भी धन का मद स्पर्श नहीं करता है, जो लोग परोपकार करने के लिए व्यग्र रहते हैं और जो माँगे जाने पर प्रसन्न होते हैं। (याचक हमारे ऊपर उपकार करता है कि वह स्वयं हमको सेवा करने का अवसर देता है, वे लोग उनमें से नहीं होते जो कुछ माँगने पर

मुँह बना लेते हैं) जो कि यौवन-मद की महाव्याधि के प्रकोप होने पर भी स्वस्थ बने रहते हैं, उन्हीं सुदृढ़ स्तम्भों के सहारे यह भाराक्रान्त पृथ्वी सधी रहती है। विरले ही मनुष्यों में यह गुण होता है कि "जो परोपकार उत्साह के साथ करते हैं और जो उपकृत पर अहसान न जताकर उसके मान की रक्षा करते हैं। उदार वही है जो विना माँगे टेर-बुलाकर दे और दूसरे की ग़रज को अपनी ग़रज समझे। जो परोपकार करके अभिमान न करे वही सच्चा वैष्णव है।

वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीड़ पराई जाणे रे।
पर दुखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे॥

जो व्यक्ति इन गुणों का अनुशीलन अपने वैयक्तिक जीवन में करते हैं वे बड़े होने पर विस्तृत क्षेत्र में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार मे भी अपनी नैसर्गिक उदारता का परिचय देते हैं। दूसरी जातियों का उपकार करके भी उन पर प्रभुत्व की कामना न करना यही मानवता है। इसके लिए वह उदार दृष्टिकोण चाहिए जो प्राचीन वैदिक मनीषियों का था जो नित्य नीचे की प्रार्थना विश्व-कल्याण के लिए किया करते थे—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुख भाग्भवेत्॥

मनुष्य का जितना वैज्ञानिक वल वढ़ा है युद्ध उतना ही अधिक संहारक हो गया है। कल के वल से वर्षों का कार्य घंटों में समाप्त हो जाता है। युद्ध की प्रचण्डज्वाला में दोनों ओर से धन-जन का स्वाहा होता है। देश का सारा उत्पादन कार्य जन संहार के अर्थ किया जाता है। युद्ध की विभीषिका के कारण कोई सुख की नींद नहीं सोने पाया है। यद्यपि युद्ध की प्रखर

ज्वालाएँ भारत से कुछ दूरी पर प्रज्वलित रहीं तथापि महार्घता के रूप में उनकी झुलस भारत को अब भी व्याकुल कर रही है।

जिन देशों मे युद्ध का ताण्डव नृत्य हुआ है उनके हाहाकार और करुणा क्रन्दन से विश्व गूँज रहा है। कोई ऐसा घर न होगा जहाँ अपने प्रिय-जनों के लिए शोक न हो। शोक मनाने की भी किसी को फ़ुर्सत नहीं रही। श्री सियारामशरणजो ने अपने उन्मुक्त नाम के खण्ड-काव्य मे एक काल्पनिक युद्ध का वर्णन करते हुए वर्तमान युद्ध के भीषण संहार का एक बड़ा हृदय-द्रावक चित्र खींचा है, देखिए:—

बरस पड़े विध्वंस पिण्ड सौ-सौ यानों से।
सुना सभी ने बधिर हुए जाते कानों से॥
उनका,—क्या मैं कहूँ—घोष-दुर्घोष भयङ्कर।
प्रेतों का-सा अट्टहास, शत-शत प्रलयङ्कर।
उल्काओं का पतन वज्रपातों का तर्जन।
नोरव जिनके निकट—हुआ ऐसा कटु गर्जन॥
कुछ ही क्षण उपरान्त एक अर्द्धांश नगर का,
युग-युग का श्रम साध्य साधना फल वह नर का,
ध्वस्त दिखाई दिया। चिकित्सालय, विद्यालय,
पूजालय, गृह-भवन, कुटीरों के चय के चय।
गिरकर अपनी ध्वस्त चिताओं में थे जलते,
कहीं उजलते, कहीं सुलगते, धुआँ उगलते॥

इन रोमाञ्चकारी दृश्यो के अस्तित्व में भी युद्ध की शृङ्खला अटूट बनी हुई देखकर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या यह ध्वंस अनिवार्य है? क्या युद्ध जन समाज की, अदम्य आवश्यकता है? कोई भी इस ध्वंस के पक्ष मे नहीं हो सकता किन्तु

करना सभी को पड़ता है। जिन राष्ट्रों के पक्ष में नीति और न्याय है जो केवल आत्म-रक्षा के लिए ही युद्ध मे शामिल हैं उनको भी नीति और न्याय की रक्षा के लिए जन-संहार का आश्रय लेना पड़ता है। नीति और न्याय की अन्तिम विजय अवश्य होती है, किन्तु उसके लिए जितना बलिदान और जन-संहार हो रहा है। क्या यह अनिवार्य है? क्या विश्व शान्ति का कोई उपाय है?

युद्ध रोकने के लिए जितने उपाय सोचे गये वे सब निष्फल हुए। राष्ट्र संघ की स्थापना हुई किन्तु उसका अधिकार किसी ने न माना। उसके अस्तित्व मे आते ही उसके शासन से बाहर भागने का उद्योग हुआ। निःशस्त्रीकरण एक सुख स्वप्न ही रहा। इस सम्बन्ध मे यही कहना पड़ेगा कि मनुष्य का नैतिक विकास उसके बौद्धिक विकास के अनुपात मे ही नहीं हुआ है। साहित्य भी नीति की उपेक्षा करता है। साहित्य ने राष्ट्रीयता का प्रचार किया है अन्तर्राष्ट्रीयता का नहीं। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की नेशनेलिज्म (Nationalism) आदि पुस्तकों मे अन्तर्राष्ट्रीयता के पक्ष में अवश्य लिखा गया है किन्तु यह उद्योग समुद्र में बूँद की बराबर है। जो नीति वैयक्तिक सम्बन्ध मे बरती जाती है वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध मे नहीं बरती जाती। शक्ति के कम करने की आवश्यकता नहीं वरन् उसके संतुलन की आवश्यकता है। सतुलन स्थापित करने के लिए वल प्रयोग अवश्य करना पड़ेगा किन्तु उसका आधार नीति और न्याय होना चाहिए। विजय के लिए पूरा प्रयत्न किया जाय किन्तु विजय प्राप्त होने पर दबे को इतना न दबाया जाय कि उसमें प्रतिक्रिया उत्पन्न हो। विजित के साथ उदारता का व्यवहार किया जाय, तभी विश्व मे शान्ति का स्वप्न देखा जा सकता है। जिन बन्धनों से विजित को बाँधा जाय उनका स्वयं न तिरस्कार किया जाय।

दानव की-सी शक्ति का होना बुरा नहीं किन्तु उसका दानवी प्रयोग न होना चाहिए। संहार की अपेक्षा रक्षा का अधिक महत्व है। मनुष्य में प्रभुत्व की भावना अवश्य है किन्तु आत्म-रक्षा की भावना उस से कम प्रबल नहीं है। संहार भी रक्षा के लिए होता है। रक्षा के कारण विष्णु भगवान को देवताओं मे सर्वोच्च स्थान मिला है। क्षत या हानि से जो परित्राण करे वही सच्चा क्षत्रिय है। राष्ट्रो मे सच्चे क्षत्रिय की भावना उत्पन्न होनी चाहिए। इसके लिए सत् शिक्षा और सत् प्रचार की आवश्यकता है।

हमारा दृष्टिकोण राष्ट्रीय न होकर अन्तर्राष्ट्रीय होना चाहिए। राष्ट्रीयता वहीं तक क्षम्य है जहाँ तक कि अपने को दूसरे राष्ट्रो के बराबर लाने का प्रयत्न हो। अन्तर्राष्ट्रीयता के प्रचार के लिए उन्नत राष्ट्रों का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे पिछड़े हुए राष्ट्रों को अपने बराबर लाने मे सहायक हों। दूसरों की कमजोरी दूर करना शक्तिशाली राष्ट्रो का धर्म है। कमजोर जब तक कमजोर रहेंगे तब तक वे दूसरो की राज्य-लिप्सा के केन्द्र बने रहेंगे और जब तक वह लिप्सा रहेगी तब तक विश्व शान्ति एक सुख स्वप्न ही रहेगी।

मनुष्य को अपने मनुष्य होने का गौरव होना चाहिए। मनुष्यता इस बात मे नहीं कि हमने अपना या अपनो का कितना भला किया वरन् यह कि हमने दूसरो को कितना उठाया। गोस्वामी जी ने ठीक ही कहा है:—

आपु आपु कहँ सब भलो, अपने कहँ कोइ कोइ।
तुलसी सब कहँ जो भलो, सुजन सराहिअ सोइ॥

दूसरों को उठाने से हम स्वयं भी उठेंगे और हमारा नैतिक मान बढ़ेगा। आजकल शक्ति की उपासना बेबसी की उपासना

करना सभी को पड़ता है। जिन राष्ट्रों के पक्ष में नीति और न्याय है जो केवल आत्म-रक्षा के लिए ही युद्ध में शामिल हैं उनको भी नीति और न्याय की रक्षा के लिए जन-संहार का आश्रय लेना पड़ता है। नीति और न्याय की अन्तिम विजय अवश्य होती है, किन्तु उसके लिए जितना बलिदान और जन-संहार हो रहा है। क्या यह अनिवार्य है? क्या विश्व शान्ति का कोई उपाय है?

युद्ध रोकने के लिए जितने उपाय सोचे गये वे सब निष्फल हुए। राष्ट्र संघ की स्थापना हुई किन्तु उसका अधिकार किसी ने न माना। उसके अस्तित्व मे आते ही उसके शासन से बाहर भागने का उद्योग हुआ। निःशस्त्रीकरण एक सुख स्वप्न ही रहा। इस सम्बन्ध मे यही कहना पड़ेगा कि मनुष्य का नैतिक विकास उसके बौद्धिक विकास के अनुपात मे ही नहीं हुआ है। साहित्य भी नीति की उपेक्षा करता है। साहित्य ने राष्ट्रीयता का प्रचार किया है अन्तर्राष्ट्रीयता का नहीं। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की नेशनेलिज्म (Nationalism) आदि पुस्तकों मे अन्तर्राष्ट्रीयता के पक्ष मे अवश्य लिखा गया है किन्तु यह उद्योग समुद्र में बूँद की बराबर है। जो नीति वैयक्तिक सम्बन्ध मे बरती जाती है वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध मे नहीं बरती जाती। शक्ति के कम करने की आवश्यकता नहीं वरन् उसके संतुलन की आवश्यकता है। सतुलन स्थापित करने के लिए बल प्रयोग अवश्य करना पड़ेगा किन्तु उसका आधार नीति और न्याय होना चाहिए। विजय के लिए पूरा प्रयत्न किया जाय किन्तु विजय प्राप्त होने पर दबे को इतना न दबाया जाय कि उसमें प्रतिक्रिया उत्पन्न हो। विजित के साथ उदारता का व्यवहार किया जाय, तभी विश्व मे शान्ति का स्वप्न देखा जा सकता है। जिन बन्धनों से विजित को बाँधा जाय उनका स्वयं न तिरस्कार किया जाय।

दानव की-सी शक्ति का होना बुरा नहीं किन्तु उसका दानवी प्रयोग न होना चाहिए। संहार की अपेक्षा रक्षा का अधिक महत्व है। मनुष्य में प्रभुत्व की भावना अवश्य है किन्तु आत्म-रक्षा की भावना उस से कम प्रबल नहीं है। संहार भी रक्षा के लिए होता है। रक्षा के कारण विष्णु भगवान को देवताओं में सर्वोच्च स्थान मिला है। क्षत या हानि से जो परित्राण करे वही सच्चा क्षत्रिय है। राष्ट्रों में सच्चे क्षत्रिय की भावना उत्पन्न होनी चाहिए। इसके लिए सत् शिक्षा और सत् प्रचार की आवश्यकता है।

हमारा दृष्टिकोण राष्ट्रीय न होकर अन्तर्राष्ट्रीय होना चाहिए। राष्ट्रीयता वहीं तक क्षम्य है जहाँ तक कि अपने को दूसरे राष्ट्रों के बराबर लाने का प्रयत्न हो। अन्तर्राष्ट्रीयता के प्रचार के लिए उन्नत राष्ट्रों का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे पिछड़े हुए राष्ट्रों को अपने बराबर लाने मे सहायक हो। दूसरो की कमजोरी दूर करना शक्तिशाली राष्ट्रों का धर्म है। कमजोर जब तक कमजोर रहेंगे तब तक वे दूसरों की राज्य-लिप्सा के केन्द्र बने रहेंगे और जब तक वह लिप्सा रहेगी तब तक विश्व शान्ति एक सुख स्वप्न ही रहेगी।

मनुष्य को अपने मनुष्य होने का गौरव होना चाहिए। मनुष्यता इस बात मे नहीं कि हमने अपना या अपनो का कितना भला किया वरन् यह कि हमने दूसरों को कितना उठाया। गोस्वामी जी ने ठीक ही कहा है:—

आपु आपु कहँ सब भलो, अपने कहँ कोइ कोइ।
तुलसी सब कहँ जो भलो, सुजन सराहिअ सोइ॥

दूसरों को उठाने से हम स्वयं भी उठेंगे और हमारा नैतिक मान बढ़ेगा। आजकल शक्ति की उपासना बेवसी की उपासना

समझी जाती है। उसका नैतिक मूल्य नहीं होता। नीति की उपासना स्वातन्त्र्य की उपासना है। राष्ट्रों में भय की प्रीति न होकर प्रीति का भय होना चाहिए। संसार और भौतिक बल का संघर्ष तो जानवरों में होता है। मनुष्य जानवरों से इसीलिए ऊँचा है कि वह विना संहार के भी विज्ञान के सहारे उन्नति करता है। मनुष्य को अपना यह गौरव अक्षुण्ण रखना चाहिए। यदि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में उसी न्याय और नीति का व्यवहार होने लगे जिसका वैयक्तिक नीति में होता है तो युद्ध अनिवार्य नहीं है। यदि न्याय की स्थापना के लिए संहार का आश्रय न लेकर पारस्परिक समझौते से काम लिया जाय तो मनुष्य जाति का गौरव स्थापित होगा। विज्ञान के चमत्कारों को यदि मानव हित सम्पादन के काम में लाया जायगा तो विज्ञान का नाम सार्थक होगा और मनुष्य अपने बुद्धिबल पर वास्तविक गर्व कर सकेगा।

मनुज का जीवन है अनमोल,
साधना है वह एक महान।
सभी निज संस्कृति के अनुकूल,
एक हो रचें राष्ट्र - उत्थान
इसलिये नहीं कि करें सशक्त,
निर्बलों को अपने में लीन—
इसलिये कि हों विश्व-हित-हेतु,
समुन्नति-पथ पर सब स्वाधीन॥

grieved by the absence of pupils who could fully understand his system and to whom the continuation of his work could have been entrusted. Just as Dignaga had no famous pupil, but his continuator emerged a generation later, so was it that Dharma kirti's real continuator emerged a generation later in the person of Dharmottara. His direct pupil Devendrabuddhi was a devoted and painstaking follower, but his mental gifts were inadequate to the task of fully grasping all the implications of Dignaga's and his own system of transcendental epistemology. Some verses of him in which he gives vent to his deepest feelings betray this pessimistic mentality.

"The second introductory stanza of his great work[1] is supposed to have been added later, as an answer to his critics He there says, "Mankind are mostly addicted to platitudes, they don't go in for finesse. Not enough that they do not care at all for deep sayings, they are filled with hatred and with the filth of envy. Therefore neither do I care to write for their benefit. However, my heart has found satisfaction in this (my work), because through it my love for profound and long meditation over (every) well spoken word has been gratified"[2]

"And in the last but one stanza of the same work he again says, "My work will find no one in this world who would be adequate easily to grasp

1 *Pramanavarttika.*

2 प्राय· प्राकृतसक्तिरप्रतिबलप्रज्ञो जन केवल,
नाऽनर्थ्यैव सुभाषितैः परिगतो विद्वेष्टयपीर्ष्यामलैः ।
तेनाऽय न परोपकार इति नश्चिन्ताऽपि चेतस्ततः,
सूक्ताभ्यासविवर्धितव्यसनमित्यत्राऽनुबद्धस्पृहम् ॥

its deep sayings. It will be absorbed by, and perish in, my own person, just as a river (which is absorbed and lost) in the ocean. Those who are endowed with no inconsiderable force of reason, even they cannot fathom its depth. Those who are endowed with exceptional intrepidity of thought, even they cannot perceive its highest truth."[1]

"Another stanza is found in anthologies and hypothetically ascribed to Dharmakirti, because it is to the same effect. The poet compares his work with a beauty which can find no adequate bridegroom 'What was the creator thinking about when he created the bodily frame of this beauty ! He has lavishly spent the beauty stuff ! He has not spared the labor ! He has engendered a mental fire in the hearts of people who thereto fore were living placidly ! And she herself is also wretchedly unhappy, since she never will find a fiance to match her !'"[2]

"In this personal character Dharmakirti is reported to have been very proud and self-reliant, full of contempt for ordinary mankind and sham scholar-

1 अनध्यवसितावगाहनमनल्पधीशक्तिना-
प्यदृष्टपरमार्थतत्त्वमधिकाभियोगैरपि ।
मतं मम जगत्यलब्धसदृशप्रतिग्राहकं
प्रयास्यति पयोनिधेः पय इव स्वदेहे जराम् ॥
–Quoted in *Dhvanyaloka* (N. S P. 1891), p. 217.

2 लावण्यद्रविणव्ययो न गणितः क्लेशो महानर्जितः,
स्वच्छन्दं चरतो जनस्य हृदये चिन्ताज्वरो निर्मितः ।
एषाऽपि स्वयमेव तुल्यरमणाभावाद्वराकी हता,
कोऽर्थश्चेतसि वेधसा विनिहितस्तन्व्यास्तनुं तन्वता ।
Ibid p. 216.

ship Taranatha tells us that when he finished his great work, he showed it to the pandits, but he met with no appreciation and no good will He bitterly complained of their slow wits and their envy, His enemies, it is reported, then tied up the leaves of his work to the tail of a dog and let him run through the streets where the leaves became scattered. But Dharmakirti said, " just as this dog runs through all streets, so will my work be spread in all the world."

શેરબાત્સ્કીએ આપેલા ઉપરના જીવનમા સમયનો પ્રશ્ન ચર્ચાયો નથી, જ્યારે તે પ્રશ્ન ડૉ વિદ્યાભૂષણ અને શ્રી. રાહુલજીએ ચર્ચ્યો છે. વિદ્યાભૂષણ ધર્મકીર્તિનો અસ્તિત્વ–સમય ઈ સ. ૬૩૫—૬૫૦ ધારે છે, જ્યારે રાહુલજી (વાદન્યાયની પ્રસ્તાવના) તેમા થોડો જ ફેરફાર સૂચવી તે સમયને ૬૨૫ થી શરૂ કરે છે આ સમય એટલે જન્મસમય લેખવાનો નથી. એ માત્ર તેના કાર્યકાળનો સૂચક છે આ વિશે કોઈ એક ચોક્કસ નિર્ણય ઉપર આવવુ એ શક્ય નથી, તેમ છતાં પંડિત મહેન્દ્રકુમાર ન્યાયાચાર્યે અકલંકગ્રન્થત્રયની પ્રસ્તાવના (પૃ૦ ૧૮–૨૩)માં એ સમય વિશે જે ઊહાપોહ કર્યો છે તે વિશેષ સગત લાગતો હોવાથી ખાસ ધ્યાન ખેચે છે. તે પ્રમાણે ધર્મકીર્તિનો સમય ૬૨૦ થી ૬૯૦ આવે છે ગમે તેમ હો, પણ ધર્મકીર્તિ સાથે સબધ ધરાવનાર કેટલાક આગળ પાછળના મહત્ત્વના વિદ્વાનોનું પૌર્વાપર્ય નક્કી કરવામાં તો સદેહને ભાગે જ સ્થાન રહે છે. અમારા વિચાર પ્રમાણે તે પૌર્વાપર્ય નીચે પ્રમાણે છે

વૈયાકરણ ભર્તૃહરિ, ઉદ્દ્યોતકર, ઈશ્વિરસેન અને કુમારિલ[1] એ ચારેય ધર્મકીર્તિના સમકાલીન હોવા છતા તેના કરતાં ઓછેવત્તે અંશે વૃદ્ધસમકાલીન હોવા જોઈએ, કેમકે ધર્મકીર્તિ ઈશ્વિરસેનનો શિષ્ય લેખાય છે અને હેતુબિન્દુ આદિમાં તેના મતની, અર્ચટ આદિ ટીકાકારોના કથનાનુસાર, સમાલોચના પણ કરે છે એ જ રીતે તે ઉદ્દ્યોતકર, ભર્તૃહરિ અને કુમારિલ એ ત્રણેનાં મન્તવ્યોની તીવ્ર સમાલોચના પણ કરે છે, જ્યારે તે ત્રણ વિદ્વાનો પૈકી કોઈ પણ ધર્મકીર્તિના વિચારની સમાલોચના કરતા હોય તેવુ ચોક્કસ પ્રમાણ મળતુ નથી.

જૈનતાર્કિક સમન્તભદ્ર અને પ્રભાકર એ બન્ને ધર્મકીર્તિના સમકાલીન હોવા છતા લઘુસમકાલીન છે, કેમકે સમન્તભદ્ર ધર્મકીર્તિના પ્રમાણવાર્તિકગત પ્રથમ પરિચ્છેદનુ અનુકરણ કરી આપ્તમીમાંસા રચે છે

૧. અકલકગ્રથત્રય પ્રસ્તાવના પૃ૦ ૧૯

વ્યોમશિવ,[1] અકલંક,[2] હરિભદ્ર,[3] જયંત[4] એ ચારેય ધર્મકીર્તિના ઉત્તરવર્તી છે, કેમકે તે બધા ધર્મકીર્તિનાં મન્તવ્યોનું ખંડન કરે છે.

ધર્મકીર્તિના ગ્રન્થો અને તેની વ્યાખ્યાઓની જે માહિતી શ્રી રાહુલજીએ વાદન્યાયના પરિશિષ્ટોમાં પૂરી પાડી છે તેને આધારે અહીં નીચે મૂળ ગ્રન્થો અને વ્યાખ્યાઓનું કોષ્ઠક આપવામા આવે છે—

ધર્મકીર્તિના ગ્રંથો અને તેની વ્યાખ્યાઓ

ગ્રંથનામ	વ્યાખ્યાઓ	વ્યાખ્યાકર્તા	વિશેષ
१. प्रमाणवार्तिक	१ स्वोपज्ञवृत्ति	धर्मकीर्ति	प्रकाशित
	२. पञ्जिका	देवेन्द्रमति	भोट भाषान्तर
	३. टीका	शाक्यमति	,,
	४ भाष्य(प्रमाणवार्तिकालकार)	प्रज्ञाकरगुप्त	अप्रकाशित
	१. भाष्यटीका	जयानन्त	भोट भाषान्तर
	२. ,,	यमारि	,,
	५. टीका	शकरानन्द	,,
	६. ,,	रविगुप्त	,,
	७ ,,	मनोरथनन्दी	प्रकाशित
२. प्रमाणविनिश्चय			भोट भाषान्तर
	१. टीका	धर्मोत्तर	,,
	२. टीका	ज्ञानश्रीभद्र	,,
३. न्यायबिन्दु			प्रकाशित
	१ टीका	धर्मोत्तर	,,
	१. धर्मोत्तरप्रदीप	दुर्वेक	अप्रकाशित
	२. टिप्पण	मल्लवादी	प्रकाशित
	२. टीका	विनीतदेव[5]	भोट भाषान्तर

---

૧. વ્યોમવતી પૃ. ૩૦૬, ૩૭૭, ૬૮૦ આદિ. તુલના કરો પ્રમાણવાર્તિક ૧-૧૩, ૧૪, ૧૫; ૩-૬૭, ૬૮, ૬૯.

૨. અકલંકગ્રન્થત્રય, પ્રસ્તાવના પૃ. ૨૫

૩ શાસ્ત્રવાર્તાસમુચ્ચય પૃ. ૮, ૧૫-૩૨; અનેકાન્તજયપતાકા પૃ ૨૩, ૨૩. જુઓ પ્રમાણવાર્તિક ૩, ૧૮૧; ૧, ૨૧૯.

૪. ન્યાયમંજરી ભાગ ?, પૃ. ૧૦૭, ૧૯૧

૫. ડૉ. વિદ્યાભૂષણ વિનીતદેવનો જે સમય માને છે તેનાથી કાંઈક પાછળનો સમય રાહુલજી માને છે. વિશેષ માટે જુઓ History of Indian Logic p 320 અને વાદન્યાયની રાહુલજીની પ્રસ્તાવના.

	३. टीका	कमलशील	भोट भाषान्तर
	४. टीका	जिनमित्र	,,
४. हेतुबिन्दु			
	१. टीका (विवरण)	अर्चट (धर्माकरदत्त)	प्रकाशित
	१. आलोक	दुर्वेक	,,
	२. टीका	विनीतदेव	भोट भाषान्तर
५. संबन्धपरीक्षा[1]			,,
	१. वृत्ति	धर्मकीर्ति	,,
	२. टीका	विनीतदेव	,,
	३. टीका	शकरानन्द	,,
६. वादन्याय			प्रकाशित
	१. टीका	विनीतदेव	भोट भाषान्तर
	२. टीका	शान्तरक्षित	प्रकाशित
७. सन्तानान्तरसिद्धि			भोट भाषान्तर
	१. टीका	विनीतदेव	,,

૨. અર્ચટ

પ્રસ્તુત સંસ્કરણમાં બીજો ગ્રન્થ હેતુબિન્દુટીકા છે તેનો કર્તા અર્ચટ છે. નામ ઉપરથી તે કાશ્મીરી લાગે છે, અને લામા તારાનાથ[2] તે વાતનું સમર્થન પણ કરે છે. એ જાતે બ્રાહ્મણ હતો. હેતુબિન્દુટીકાના ટિબેટન ભાષાન્તરમાં ત્રણ સ્થળ 'ब्राह्मणाचतेन' એમ ચોખ્ખો નિર્દેશ છે (પૃ ૧૪૯, ૧૬૬, ૨૨૯). એનું બીજુ નામ ધર્માકરદત્ત છે (પૃ. ૨૩૩, ૨૬૧) એમ લાગે છે કે પાછળથી અર્ચટ બૌદ્ધ ભિક્ષુ થયો હોય, અને ભિક્ષુઅવસ્થાનુ એ બીજું નામ હોય. દુર્વેક, અર્ચટ સાથે 'भट्ट' વિશેષણ (પૃ ૨૩૩, ૨૪૧, ૨૪૩, ૩૩૩, ૩૪૩, ૩૭૦, ૩૭૭) યોજે છે જ્યારે ધર્માકરદત્ત નામ સાથે ભદન્ત (પૃ. ૨૬૧) વિશેષણ યોજે છે, જે ભિક્ષુ માટે જ પ્રયુક્ત થાય છે. અનુટીકાકાર દુર્વેક મિશ્ર પોતાની વ્યાખ્યા 'આલોક'ના આરંભમાં જ (પૃ. ૨૩૩) એ બન્ને નામોનો નિર્દેશ કરે છે

અર્ચટના જીવન વિશે આથી વિશેષ માહિતી નથી, પણ એના પોતાના લખાણ ઉપરથી (પૃ ૮૨, ૮૭) તેમ જ દુર્વેકના વ્યાખ્યાન ઉપરથી ઓછામા ઓછી એની નીચેની ત્રણ કૃતિઓ હોવા વિશે જરાય સદેહ રહેતો નથી—

---

૧. જુઓ પ્રમેયકમલમાર્તંડ પૃ. ૫૦૪–૧૧ અને સ્યાદ્વાદરત્નાકર પૃ. ૮૧૧–૨૮

૨. History of Indian Logic, p. 329-32.

૧. ક્ષણભંગસિદ્ધિ (પૃ. ૮૨, ૮૭ ૩૨૭)
૨. પ્રમાણદ્વિત્વસિદ્ધિ (પૃ ૧૮૯)
૩. હેતુબિન્દુટીકા

અર્ચટનું લખાણ કાશ્મીરી ન્યાયમંજરીકાર જયન્ત અગર વાચસ્પતિ મિશ્ર જેવું પ્રસન્ન છે, અને તેનું દાર્શનિક જ્ઞાન બહુ જ ઊંડુ તેમ જ વિશદ છે. જ્યાં જ્યાં તેણે બૌદ્ધમત કે દર્શનાન્તરોના મતો વિશે ચર્ચા કરી છે ત્યાં સર્વત્ર તેના વિચારોની પારદર્શિતા જણાઈ આવે છે. એમ લાગે છે કે ધર્મ-કીર્તિને પોતાના જીવનમા કદાચ સુયોગ શિષ્ય લાધ્યો ન હોય, પણ ઉત્તર કાળમાં તો તેને અર્ચટ જેવા અનેક સુયોગ્ય શિષ્યો સાપડ્યા છે.

ન્યાયબિન્દુટીકાકાર ધર્મોત્તર તે આ જ અર્ચટનો શિષ્ય છે, એમ તારાનાથના ઉલ્લેખ ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે, કેમકે તારાનાથ ધર્મોત્તરને ધર્માકરદત્ત ના શિષ્ય તરીકે નિર્દેશે છે, જે ધર્માકરદત્ત પોતે અર્ચટ જ છે. એ પણ ફલિત થાય છે કે ભદન્ત થયા પછી જ ધર્માકરદત્તે શિષ્યદીક્ષા આપી હોય[1]

અર્ચટનો સમય ધર્મકીર્તિ અને ધર્મોત્તર વચ્ચે તેમ જ ધર્મકીર્તિ અને કમળશીલ તેમ જ પ્રજ્ઞાકરગુપ્ત વચ્ચે પડે છે. એટલે તેનો જીવનકાળ સાતમા સૈકાના અંતિમ ભાગથી આઠમા સૈકાના પ્રથમ પાદ સુધી તો માનવો જ જોઈએ.

૩. દુર્વેક મિશ્ર

પ્રસ્તુત સસ્કરણમાં ત્રીજો ગ્રન્થ અર્ચટની ટીકાની 'આલોક' નામક વ્યાખ્યા છે, જેનો કર્તા દુર્વેક મિશ્ર છે. એના જીવનની વિશેષ સામગ્રી અત્યારે ઉપ-લબ્ધ નથી જે કાંઈ જાણી શકાય છે તે તેની પોતાની પ્રશસ્તિ ઉપરથી જ (પૃ ૪૧૧) એ પ્રશસ્તિ ઉપરથી નીચેની હકીકત સ્પષ્ટપણે ફલિત થાય છે :—

૧ તે પોતે વિક્રમશિલા વિદ્યાપીઠના અધ્યક્ષ અને પાછળથી ટિબેટમાં ગયેલ જિતારિ આચાર્યનો વિદ્યાશિષ્ય હતો

૨. તે પોતે બ્રાહ્મણ હતો અને ધનદરિદ્ર હતો સંભવ છે કે તે વિક્રમ-શિલા વિદ્યાપીઠમાં અધ્યાપકનુ કામ કરતો હોય અને સાથે સાથે બૌદ્ધ પરં-પરાનું સૂક્ષ્મ અધ્યયન પણ કર્યું હોય, કેમકે એવા અધ્યયન સિવાય અર્ચટના ગંભીર વિચારની આવી બહુ પારદર્શી વ્યાખ્યા થઈ શકે નહિ

૩ એની વ્યાખ્યામા એના પોતાના રચેલા પાચ ગ્રન્થોનો નિર્દેશ છે, એટલે તેણે ઓછામા ઓછા 'આલોક' ઉપરાત પાચ ગ્રન્થો નો રચ્યા જ હોવા જોઈએ.

---

૧. History of Indian Logic, p 329

આ પાંચ પૈકી ધર્મોત્તરપ્રદીપ, જે ન્યાયબિન્દુની અનુટીકા છે, તેની ફોટોપ્રતિ પટના રિચર્સ સોસાયટીમાંના સંગ્રહમા છે.

આ પાંચે ગ્રન્થોનાં નામ નીચે મુજબ છે —

૧. ધર્મોત્તરપ્રદીપ (પૃ ૨૫૯, ૩૦૮, ૩૩૭)

૨ સ્વયૂથ્યવિચાર (પૃ ૩૩૭)

૩. વિશેષાખ્યાન (પૃ ૩૪૦, ૩૬૫, ૩૭૦, ૩૭૩)

૪. ક્ષણભંગસિદ્ધિ (પૃ. ૩૭૦, ૩૭૨)

૫. ચતુઃશતી (પૃ. ૩૭૦, ૩૭૨)

એમ લાગે છે કે દુર્વેક મિશ્રે જિતારિના સંનિધાનમાં રહી વિક્રમશિલા વિદ્યાપીઠમાં કામ કરતાં કરતાં બૌદ્ધ દર્શનસાહિત્યને સમૃદ્ધ કરવાનું જ એક માત્ર મુખ્ય કામ કર્યું હોય તેની મિશ્ર ઉપાધિ જોતાં અને તે સમયમાં મિથિલાની વિદ્યાસમૃદ્ધિ તેમ જ વિક્રમશિલાનું સાંનિધ્ય જોતાં એમ લાગે છે કે તે મૈથિલ બ્રાહ્મણ હશે આ વસ્તુસ્થિતિ એક બાબત ઉપર બહુ પ્રકાશ ફેંકે છે તે એ કે ધર્મ અને જાતિની દૃષ્ટિએ બ્રાહ્મણ-શ્રમણનો નિત્ય વિરોધ હોવા છતા વિદ્યા અને તત્ત્વચિંતનના પ્રદેશમાં ઘણીવાર બન્નેનો વિરોધ શમી જાય છે અને એક નવી જ સમન્વયસંસ્કૃતિનુ નિર્માણ થાય છે

દુર્વેક મિશ્રના ગ્રન્થો ઉપલબ્ધ થયા ન હોત તો તેનુ નામ કાલમાં જ ભૂંસાઈ જાત, કેમકે તેનો નામનિર્દેશ નથી ટિબેટન લેખકોના ગ્રથોમાં કે નથી ભારતીય લેખકોના ગ્રન્થોમા અર્ચટને તો જૈન વિદ્વાનો નામપૂર્વક નિર્દેશ છે, જ્યારે બ્રાહ્મણ દુર્વેક માત્ર એના પોતાના જ ગ્રન્થોમાં સમાઈ જાય છે. જૈન વિદ્વાન વાદી દેવસૂરિ જેવા દુર્વેક વિશે અજાણ્યા હોય એમ લાગે છે જેસલમેરના ભંડારમાથી જે થોડાક ન્યાયબિન્દુ-અનુટીકાના પત્રો મળ્યા છે[1] તે ઘણુ કરી દુર્વેક મિશ્રના હોવાં જોઈએ જો તેમ ઠરે તો એમ માનવુ જોઈએ કે ગમે ત્યારે કોઈ ને કોઈ જૈન વિદ્વાને દુર્વેકના લખાણને ભારતમાં સંઘરવા ને તેનો ઉપયોગ કરવા પ્રયત્ન કરેલો

દુર્વેકનુ પાંડિત્ય એક દાર્શનિક મૈથિલ બ્રાહ્મણને શોભા આપે એવુ છે. તે બહુશ્રુત છે અને વૈયાકરણ પણ આની પ્રતીતિ તેની વ્યાખ્યામા પદે પદે થાય છે તેની વ્યાખ્યા અર્ચટની વિવૃતિને અનુરૂપ જ છે તે જ્યારે જ્યારે અર્ચટની પ્રતીકો લઈ તેનુ વ્યાખ્યાન કરે છે ત્યારે બહુધા પૂર્વપક્ષ રૂપે કે

---

૧. એ પાનાં મુનિશ્રી જિનવિજયજી પાસે છે.

ઉત્થાનરૂપે અર્ચટના વક્તવ્યનું હાર્દ પૂર્ણપણે વ્યક્ત કરતો લાગે છે. તે વિચારમાં સ્વતંત્ર છે કેટલેક સ્થળે અર્ચટના મંતવ્યથી તે જુદો પડી પોતાનું સ્વતંત્ર મન્તવ્ય દર્શાવે છે[1] આ ઉપરથી એક એ બાબત ફલિત થાય છે કે બૌદ્ધ વિદ્યાપીઠોમાં વિચારસ્વાતંત્ર્યનું વાતાવરણ અવશ્ય હતું. જે અર્ચટને તે ગુરુરૂપે નિર્દેશે છે તેના જ મંતવ્યથી તે જુદો પણ પડે છે, એ જ વિચાર-સ્વાતંત્ર્યની ભૂમિ સૂચવે છે.

દુર્વેકનો સમય ઈ સ દશમા સૈકાના અંતિમ ચરણથી અગિયારમા સૈકાના પૂર્વાર્ધ સુધી તો માનવો જ જોઈએ, કેમકે તે દીપંકર જ્ઞાનશ્રીના ગુરુ જિતારિનો વિદ્યાશિષ્ય હતો અને જિતારિ તેમ જ જ્ઞાનશ્રી બન્ને દશમ શતકના અંતિમ પાદમાં તો હતા જ વળી દુર્વેક મિશ્રની અનેક કૃતિઓ અને તેનું બહુમુખી પાંડિત્ય પણ તેના જીવનની લાંબી અવધિ સૂચવે છે

[૩] ગ્રન્થ પરિચય

૧. હેતુબિન્દુ

પ્રસ્તુત હેતુબિન્દુનો પરિચય કરીએ તે પહેલાં એ જાણવું જરૂરી છે કે ધર્મકીર્તિએ હેતુબિન્દુ અને બીજા ગ્રન્થો રચ્યા તે તેણે વારસામાં મળેલ કેવા પ્રકારના વિચાર અને સાહિત્યને આધારે રચ્યા ? ધર્મકીર્તિના ગ્રન્થોમાં પ્રતિપાદિત થયેલા વિચાર અને વપરાયેલી પરિભાષા આદિનો ઐતિહાસિક પરિચય પૂર્ણપણે તો કરાવવો અસંભવિત છે, તેથી અહીં એનું ટૂંકમાં દિગ્દર્શન કરાવવા ધારીએ છીએ આ કારણથી અમે આ સ્થળે મુખ્યપણે બે મુદ્દા પરતી જ ચર્ચા કરવા ધારી છે તે મુદ્દા છે—

(૧) પ્રમાણવિચાર અને તેનો અંગભૂત ન્યાયવિચાર તેમ જ ન્યાયના અંગભૂત હેતુ આદિ પ્રમેયનો વિચાર કયા લક્ષ્યની સિદ્ધિ અર્થે ઉત્પન્ન થયો અને વિકસ્યો ?

(૨) આ વિચારોને સંઘરતું અને વિકસાવતું સાહિત્ય કેવી કેવી રીતે પલટા લેતું ગયું અને ધીરે ધીરે છના અખંડપણે ધર્મકીર્તિ સુધી આવ્યું ?

તત્ત્વ અને સત્યશોધનનો પ્રયત્ન ભારતમાં હજારો વર્ષ પહેલાં શરૂ થયાની વાત હવે કોઈથી અજાણી નથી સત્યશોધનનો પ્રયત્ન બે રીતે ચાલતો. કેટલાક વિરલ પુરુષો માત્ર આધ્યાત્મિક દૃષ્ટિએ તત્ત્વશોધન ભણી પ્રેરાતા તો બીજા કેટલાક ભૌતિક અને બાહ્ય દૃષ્ટિએ તે દિશામાં વળીને આવા શોધોમાં

---

૧. હેતુબિન્દુટીકાલોક પૃ [illegible] આદિ

૨. History of Indian Logic, p 337.

જે જે વ્યક્તિઓ એક કે બીજી બાબતમાં પોતાનો કાંઈક પણ નવો ફાળો આપે તેવી પ્રતીતિકાર શોધ કરતી તે વ્યક્તિઓની આસપાસ શિષ્યમંડળ અને અનુયાયીમંડળ જામતું અને તેમાંથી તેની પરંપરા સ્થિર થતી. ઘણીવાર એક જ બાબત પરત્વે જુદા જુદા બે કે તેથી વધારે શોધકોની શોધ પરસ્પર જુદી પડતી અને પરસ્પર અથડાતી પણ ખરી. મૂળ શોધક પોતાની શોધને જ યથાર્થરૂપે પ્રતીતિકર થાય તે રીતે રજૂ કરતો, જ્યારે એનું શિષ્યમંડળ એ જ વસ્તુને વધારે તર્કપુરસ્સર સ્થાપિત કરવા અને તેનો પ્રચાર કરવા મથતું અનુયાયીમંડળ મુખ્ય શોધક અને તેના શિષ્યપરિવારમાં શ્રદ્ધા કેળવીને જ મુખ્યપણે તે શોધને પોષતું. આમ શોધ, પછી તે મુખ્યપણે પ્રમેય વસ્તુને લગતી હોય કે ચરિત્રને લગતી હોય, તેનું રક્ષણ, સંવર્ધન અને પલ્લવન થતું. આવી પ્રવૃત્તિ જ્યાં એક જ પ્રદેશમાં અનેકવિધ ચાલતી હોય ત્યાં શોધકોના વિચારો વચ્ચે અથડામણી થાય એ સ્વાભાવિક છે આવી અથડામણીઓ મુખ્યપણે બે પ્રકારની જોવામાં આવે છે એક સ્વપરંપરા-પૂરતી અને બીજી અન્ય પરંપરાઓ સાથે જ્યારે જ્યારે સ્વપરંપરા પૂરતી શોધને લગતી બાબતમાં ગુરુશિષ્ય વચ્ચે કે સબ્રહ્મચારી શિષ્યો વચ્ચે ચર્ચા થતી ત્યારે ત્યારે તે ચર્ચા જય કે પરાજયમાં ન પરિણમતાં માત્ર તત્ત્વજિજ્ઞાસાની તૃપ્તિમાં જ પરિણમતી, પણ જ્યારે જ્યારે બીજી પરંપરાઓ સાથે આવી ચર્ચા થતી ત્યારે ત્યારે ઘણીવાર તે જય-પરાજયમાં જ પરિણામ પામતી, અને તે તત્ત્વ-બુભુત્સુની કથા મટી વિજિગીષુની કથા બનતી[1]

કથા ગમે તે હોય, પણ તે જો અમુક નિયમોથી સીમિત હોય તો જ ફળદાયી નીવડે, એટલે સત્યશોધના ઉમેદવારોની ચર્ચામાથી આપોઆપ તેમ જ બુદ્ધિપૂર્વક કેટલાક નિયમો નક્કી થયા, તેમ જ કયું જ્ઞાન પ્રમાણ, કયું અપ્રમાણ, એવા કયા અને કેટલાં પ્રમાણો માનવાં અને કયા ન માનવાં ઇત્યાદિ વિચાર પણ થવા લાગ્યો. આને પરિણામે એક બાજુથી પ્રમાણવિદ્યા સ્થિર થતી ગઈ અને બીજી બાજુથી તેની જ અંગભૂત ન્યાય, તર્ક કે આન્વીક્ષિકી વિદ્યા સ્થિર થતી ચાલી આ બન્ને વિદ્યાઓનો ઉપયોગ આધ્યાત્મિક શાસ્ત્રોમા તેમ જ ભૌતિક કહેવાતા બધા જ વ્યાવહારિક શાસ્ત્રોમા થતો રહ્યો એક તો શોધના વિષયો જ ઘણા, બીજું એક એક વિષય પરત્વે જુદી પડતી માન્યતાઓ ઘણી અને એક એક શોધ તેમ જ તેના વિષયનું અમુક અંશે જુદું જુદું નિરૂપણ કરનાર પરંપરાઓ પણ ઘણી તેથી કરીને

૧. વિશેષ માટે જુઓ પ્રમાણમીમાંસા ભાષાટિપ્પણ, પૃ ૧૦૮-૨૩.

સ્વાભાવિકપણે જ પ્રમાણવિદ્યા અને ન્યાયવિદ્યાની બાબતમાં પણ અનેકવિધ પરંપરાઓ ઊભી થતી ગઈ

મનુષ્યનું જન્મસિદ્ધ સહજ વલણ શ્રદ્ધાનુસારી હોઈ વારસામાંથી કે પરિસ્થિતિમાંથી જે મળ્યું હોય તેને ચલાવી કે નભાવી લેવામાં જ તે ચરિતાર્થતા અનુભવે છે આમ છતાં કેટલાક અપવાદભૂત દાખલાઓ એવા પણ બને છે કે તેમાં અમુક પુરુષો વારસામાં મળેલ સંસ્કારોનું ઊંડું પરીક્ષણ કરે છે અને ઘણીવાર એ પરીક્ષાને પરિણામે માત્ર શ્રદ્ધાજીવી વિચારોની સામે થાય છે ને તેની વિરુદ્ધ નવો જ વિચાર મૂકે છે. નવા વિચારની પૃષ્ઠભૂમિકા મુખ્યપણે બુદ્ધિની શુદ્ધિ અને તર્કબળ તેમ જ ચરિત્રબળ હોય છે જ્યારે શરૂઆતમાં શ્રદ્ધા ઉપર બુદ્ધિ અને તર્ક પ્રહાર કરે છે ત્યારે સ્વાભાવિક રીતે જ શ્રદ્ધાજીવી વિચારો બુદ્ધિ અને તર્કજીવી વિચારોને અવગણે છે, એટલું જ નહિ. પણ નિંદા સુધ્ધાં કરે છે. ભારતીય સંસ્કૃતિના ઇતિહાસમાં પહેલાં પણ આ ભૂમિકા પસાર થઈ છે. તેથી જ આપણે બ્રાહ્મણ, બૌદ્ધ અને જૈન એ બધી પરંપરાઓના પ્રાચીન સાહિત્યમાં તર્કવિદ્યાની નિન્દા સાંભળીએ છીએ[૧] પણ આ ભૂમિકા લાંબો વખત ટકતી નથી શ્રદ્ધા અને બુદ્ધિ બન્ને છેવટે તો જીવનના અવિભાજ્ય અંગો હોઈ પરસ્પર માંડવાળ કરે છે ને અથડામણી ન થાય તે રીતે પોતપોતાના વિષયની મર્યાદા આંકે છે આ જ શ્રદ્ધા અને બુદ્ધિના સમન્વયની ભૂમિકા કહેવાય. એને જ શાસ્ત્રોમાં અહેતુવાદ–હેતુવાદ તરીકે ઓળખાવેલ છે, અને છેવટે બધી પરંપરાઓએ એ બન્ને વાદોને માન્ય રાખી પોતપોતાની મર્યાદામાં તેના વિષયોની સીમા બાંધી[૨] છે. આ સમન્વયની ભૂમિકામાં જ્યારે શ્રદ્ધાજીવી વિચારકોએ તર્કવિદ્યાની પ્રતિષ્ઠા કરી ત્યારે તેનું પોષણ વધારે થવા લાગ્યું પછી તો આધ્યાત્મિક કે ભૌતિક બધી જ શોધના ક્ષેત્રમાં તર્કવિદ્યાનો પણ અભ્યાસ વધ્યો અને તેનાં શાસ્ત્રો પણ રચાતાં ચાલ્યાં. કોઈ પરંપરાએ પહેલાં તો કોઈએ પછી, પણ તર્કવિદ્યાના શાસ્ત્રો રચવામાં ઓછોવત્તો ફાળો આપ્યો જ છે. પ્રમાણવિદ્યા અને ન્યાયવિદ્યાની બાબતમાં પ્રાચીન ફાળો મુખ્યપણે ન્યાયપરંપરાના પુરસ્કર્તાઓનો જ છે ચાણક્યના અર્થશાસ્ત્રમાં[૩] કે ચરક[૪] જેવા શારીરવિજ્ઞાનશાસ્ત્રમાં જે તન્ત્રયુક્તિને નામે સંગ્રહ થયો છે તે મૂળમાં મોટે ભાગે ન્યાયપરંપરાનો ફાળો છે. પૂર્વમીમાંસક

---

૧ History of Indian Logic, p 35

૨. દા ત જુઓ સન્મતિ ૩,૪૩–૪૫

૩. અર્થશાસ્ત્ર ૧૪૧ (ત્રિવેન્દ્રમ LXXXII) પ્રકરણ ૧૮૦ વિધાનમ્ : History of Indian Logic, p 24.

૪. વિમાનસ્થાન, અ૦ ૮ History of Indian Logic, p. 28

કે ઉત્તરમીમાંસક, સાંખ્ય કે યોગ્ય, બૌદ્ધ કે જૈન એ એક પરંપરાના પ્રાચીનતમ ગ્રન્થોમાં પોતપોતાનું આગવુ હોય તેવુ ન્યાયવિદ્યાનુ બધારણ ઘડાયેલુ મળતું નથી, જેવુ કે એ પરંપરાઓના પાછળનાં શાસ્ત્રોમાં મળે છે

ન્યાયવિદ્યાના તે કાળ સુધીમાં ઘડાયેલા નિયમ–પ્રતિનિયમો અને ન્યાયના અંગ–પ્રત્યંગોને પોતાની પરંપરામા જેમના તેમ અગર થોડા ફેરફાર સાથે અપનાવનાર પરંપરાઓમાં સૌથી મોખરે બૌદ્ધપરંપરા આવે છે અલબત્ત, કદાચ આયુર્વેદ અને અર્થશાસ્ત્ર આદિ અન્ય વિદ્યાનોએ બૌદ્ધપરંપરા પહેલા પણ ન્યાયવિદ્યાના નિયમ–પ્રતિનિયમો અને અંગ–પ્રત્યંગોને પોતામાં સમાવ્યા હોય, પણ બૌદ્ધપરંપરાની વિશેષતા એ છે કે તેણે પોતાની પરંપરામાં ન્યાયવિદ્યાને સ્થાન આપ્યુ તે માત્ર સંગ્રહપૂરતું અને શોભાપૂરતુ જ નહિ, પણ એમાં સંશોધન કરવાની દૃષ્ટિ સુધ્ધા હતી, જ્યારે ચાણક્ય કે ચરક આદિને સંગ્રહથી આગળ વધવુ ઇષ્ટ ન હતુ. એ જ સબબ છે કે ઉત્તર કાળમા બૌદ્ધપરંપરામા જેવુ એક ન્યાયશાસ્ત્ર સ્વતંત્ર નિર્માણ થયુ તેવુ અર્થશાસ્ત્રની પરંપરા કે આયુર્વેદની પરંપરામા કશું બન્યુ નહિ બૌદ્ધપરંપરાએ જે કામ પહેલા શરૂ કર્યું તે જૈનપરંપરાએ પાછળથી શરૂ કર્યું ઉપલબ્ધ સાહિત્યને આધારે તો એમ પણ કહી શકાય કે મીમાંસક અને વેદાંત પરંપરાએ પોતપોતાનું પ્રમાણ તેમ જ ન્યાયશાસ્ત્ર તેથીયે પાછળથી વ્યવસ્થિત કર્યું

ઉપાયહૃદય[1] નામનો ગ્રન્થ ચાઈનીઝ પરંપરામા નાગાર્જુનને નામે ચડેલ છે તે તેનો ન હોય, તોપણ તેના વિગ્રહવ્યાવર્તિની અને મધ્યમકકારિકા જોતા એમ ચોક્કસપણે કહી શકાય કે તેણે બૌદ્ધપરંપરામા કદાચ સૌથી પહેલા પ્રમાણ અને ન્યાયવિદ્યા વિશે મૌલિક ચિંતન શરૂ કર્યું. મૈત્રેયનાથે યોગચર્યાભૂમિશાસ્ત્રમા અને તેના શિષ્ય અસંગે અભિધર્મસંગીતિમા તેમ જ અસંગના શિષ્ય સ્થિરમતિએ અભિધર્મસંયુક્તસંગીતિમા જે પ્રમાણવિદ્યા તેમ જ ન્યાયવિદ્યાનો સંગ્રહ કર્યો છે તે કોઈ મૌલિક નથી[2] ન્યાયપરંપરાની જુદી જુદી શાખાઓમા થયેલા વિચારો જેમ એક અથવા બીજી રીતે અર્થશાસ્ત્ર, ચરક આદિમા સંગૃહીત થયા તેમ જ મૈત્રેય, અસંગ આદિએ પણ સંગ્રહ કર્યો અલબત્ત, એના સંગ્રહમા સુધારક દૃષ્ટિબિન્દુ અવશ્ય હતુ તેથી જ તેમા ન્યાયપરંપરાના પાંચ કે દશ અવયવોના સ્થાનમા ત્રણ અવયવનો સુધારો તેઓ કરે છે અગર બીજા કોઈનો સુધારો

---

૧. Tucci. Pre-Dinnaga Buddhist Texts—Introduction, p XI.

૨ On Some Aspects of the Maitraya [natha] and Asanga. Also JRAS 1929 મના Pre-Dignaga Buddhist Logic

સ્વીકારે છે અસંગનો લઘુભ્રાતા અને શિષ્ય વસુબન્ધુ આગળ વધે છે અને તે પોતાના વાદવિધિ આદિ ગ્રન્થોમાં ત્રણ અવયવોના પૂર્વ સુધારાને કાયમ રાખી હેતુના ન્યાયપરંપરાસંમત પાંચ રૂપના સ્થાનમાં ત્રૈરૂપ્યનો સુધારો કરે છે તર્કશાસ્ત્ર વસુબંધુકર્તૃક હોય કે અન્યકર્તૃક, પણ તે દિઙ્નાગ પહેલાના કોઈ બૌદ્ધ તાર્કિકની કૃતિ છે એટલુ તો નક્કી જ. એ તર્કશાસ્ત્રમા પાંચ અવયવો વર્ણવેલ છે, પણ ન્યાયપરંપરાસંમત જાતિઓ અને નિગ્રહસ્થાનોમા સુધારો વધારો કર્યા છે. આવો સુધારો બીજી રીતે ઉપાયહૃદયમાં પણ છે પ્રત્યક્ષ, અનુમાન અને આગમ એ ત્રણ પ્રમાણ મૈત્રેય અને અસંગની પેઠે સ્વીકાર્યા છતા વસુબંધુ એની વ્યાખ્યામા સુધારો કરે છે, એટલુ જ નહિ, પણ તે તથાગત બુદ્ધની દૃષ્ટિને બંધબેસતુ થાય તે રીતે આગમ પ્રમાણનુ સ્થાન ગોઠવે છે અને કહે છે કે આગમ એ પ્રમાણ છે ખરુ, પણ તે પ્રત્યક્ષ ને અનુમાનની ઉપર અવલંબિત હોઈ તે બન્ને કરતા ગૌણ છે આ સ્થળે વસુબંધુ સ્પષ્ટપણે ન્યાયપરંપરાના દૃષ્ટિબિન્દુથી આગમ પ્રામાણ્યના મહત્ત્વની બાબતમા જુદા પડે છે, કેમકે ન્યાયપરંપરા આગમને ઈશ્વરપ્રણીત માનતી હોવાથી તે અનુસારે લૌકિક પ્રત્યક્ષ અને અનુમાન પ્રમાણ કરતા અલૌકિક આગમનુ સ્થાન ચડિયાતુ છે. વસુબન્ધુનો શિષ્ય દિઙ્નાગ તો પોતાના પ્રમાણસમુચ્ચય, ન્યાયમુખ, હેતુચક્ર આદિ ગ્રન્થોમા અનેકવિધ સુધારાઓ કરે છે અને બૌદ્ધપરંપરામાં સર્વમાન્ય થાય તેવી ન્યાયવિદ્યાની સ્થાપના કરે છે જોકે વસુબંધુ અને દિઙ્નાગના સમય પછી પણ બૌદ્ધપરંપરાઓમા એવા અનેક પ્રકારના વિચારવહેણો હતા જેઓ વસુબન્ધુ અને દિઙ્નાગને ન અનુસરતા, પણ પ્રાચીન મૈત્રેયનાથ આદિના ગ્રન્થોમા સંગૃહીત થયેલા મન્તવ્યોને અક્ષરશ માનતા કે જે મન્તવ્યોને વસુબન્ધુ અને દિઙ્નાગ આદિએ સુધાર્યા અને પરિવર્તિત કર્યા હતા તેમ છતા એકદર આગળ જતા વસુબન્ધુ અને તેના કરતાય વિશેષ દિઙ્નાગનુ સ્થાન બૌદ્ધપરંપરામા વધારે પ્રતિષ્ઠિત થયુ છે, ને તેથી જ તેમના ગ્રન્થો અને વિચારોનુ અનુકરણ, ભાષાન્તર ને તેના ઉપર સંશોધન ઉત્તરોત્તર વધારે અને વધારે થયુ છે આ કાર્ય માત્ર ભારતમા જ નહિ, પણ ભારતની બહાર મધ્ય એશિયા ચીન, તિબેટ આદિ દેશોમા પણ પુષ્કળ પ્રમાણમા થયુ છે

પ્રમાણ તેમ જ ન્યાયવિદ્યાને લગતુ સંસ્કૃત બૌદ્ધ વાઙ્મય ભારતની સીમા બહાર ગયુ અને નવા નવા સ્વરૂપોમા વિકસ્યુ તેમ જ ફેલાતુ ગયું, ને પહેલા પણ બૌદ્ધ પિટકોનુ પાલિવાઙ્મય ભારતની સીમા ઓળંગી ગયું હતું 'સંસ્કૃત

1. Pre-Dinnaga Buddhist texts-Intro p IX

અશોકની ધર્મસંતતિ મહેન્દ્ર અને સંઘમિત્રાએ સિલોનમાં પાલિવાઙ્મયનું વટવૃક્ષ રોપ્યું ત્યારબાદ તો તેની શાખા–પ્રશાખાઓ બીજા દેશો સુધી પણ પહોંચી જાણે કે બૌદ્ધપરંપરાની અઢારે નિકાયો ફેલાવાના કામમાં સ્પર્ધા કરતી ન હોય તેમ ભારતના એક ખૂણાથી બીજા ખૂણા સુધીમાં અને મધ્ય એશિયા તથા ચીન આદિ દેશોમાં પણ બૌદ્ધ વાઙ્મયે પોતાના સૌરભથી વિદ્યાભ્રમરોને આકર્ષ્યા ભારત બહાર દક્ષિણ દિશામા જે બૌદ્ધ વાઙ્મયને લગતી પ્રવૃત્તિ શરૂ થઈ તે પાલિ ભાષામાં મુખ્યપણે હતી, અને ગાંધાર, કાશ્મીર જેવા ઉત્તરીય દેશોમાં જે પ્રવૃત્તિ ચાલતી તે મુખ્યપણે સંસ્કૃતાવલમ્બી બની તળ ભારતમા તો બન્ને ભાષામા એ પ્રવૃત્તિ ચાલતી શરૂઆતમાં આ પ્રવૃત્તિનો વિષય મુખ્યપણે ત્રિપિટક હતો. સર્વાસ્તિવાદીઓ સંસ્કૃતનેજ મુખ્યપણે અવલંબી પ્રવૃત્તિ કરતા, જ્યારે મહાસાંઘિકો પ્રાકૃત ભાષાઓને અવલંબી પોતાનું ધ્યેય સાધતા[1] એમ લાગે છે કે પ્રમાણ અને ન્યાયશાસ્ત્રના પ્રવેશ પહેલાં જ ચીનમા સંસ્કૃત ત્રિપિટકો પહોંચી ગયા હતાં, એને તેને આશરી ચીની ભાષામાં ભાષાન્તરનું કામ પણ શરૂ થઈ ગયુ હતુ

ભારતીય અને અભારતીય વિદ્વાનોએ મળી બૌદ્ધ વાઙ્મયને લગતી જે પ્રવૃત્તિ કરી છે તેના ચાર ભાગ પાડી શકાય · ૧ ભાષાન્તર, ૨ વ્યાખ્યાઓ અને ટીકાટિપ્પણો, ૩ એક જ વિદ્વાન દ્વારા આકર ગ્રન્થોનુ તેમ જ તેમાં પ્રવેશ કરાવનાર એકાદ મુદ્દા ઉપરનાં નાના નાના પ્રકરણોનુ નવું પ્રણયન, ૪. અન્યના આકર ગ્રન્થો કે પ્રકરણો ઉપરથી માત્ર પ્રવેશક જિજ્ઞાસુને ઉપયોગી થાય તેવા નાનાં નાનાં પ્રકરણોની નવીનવી રચના

ત્રીજા વિભાગની પ્રવૃત્તિના ઉદાહરણ તરીકે નાગાર્જુનનો મધ્યમકકારિકા ગ્રન્થ અને તેમા પ્રવેશ કરવા માટે ઉપયોગી થાય તેવુ વિગ્રહવ્યાવર્તિની પ્રકરણ સૂચવી શકાય. દિઙ્નાગે પોતે જ પ્રમાણસમુચ્ચયના પ્રારંભમાં (કા. ૧ અને વૃત્તિ) સૂચવ્યુ છે કે તેણે છૂટા છૂટા પ્રકરણો રચ્યા અને પછી તે પ્રમાણસમુચ્ચય નામક આકર ગ્રન્થ રચે છે. દિઙ્નાગની પ્રવૃત્તિનું જ જાણે અનુકરણ ન કરતો હોય તેમ તેના પછી લગભગ ૧૫૦ વર્ષે થયેલ ધર્મકીર્તિ પ્રમાણવાર્તિક જેવા આકરગ્રન્થ અને ન્યાયબિન્દુ, વાદન્યાય આદિ જેવા પ્રકરણો રચે છે દિઙ્નાગ સુધીમા જે પ્રમાણવિદ્યા અને ન્યાયવિદ્યાનો બૌદ્ધપરંપરાએ વિકાસ કર્યો હતો તેમા ધર્મકીર્તિના સમય સુધીમા ઘણો ઉમેરો પણ થયો હતો. ધર્મકીર્તિની સમગ્ર વાઙ્મયપ્રવૃત્તિ પ્રમાણ અને ન્યાયવિદ્યાને કેન્દ્રમા રાખીને જ

---

[1] Kimura Hinayana and Mahayana, p 6, 7.

થયેલી હોય એમ લાગે છે પ્રમાણવાર્તિક તો દિઙ્નાગના પ્રમાણસમુચ્ચયની કારિકાબદ્ધ આકરવ્યાખ્યા છે, પણ ન્યાયબિન્દુ અને હેતુબિન્દુ જેવાં પ્રકરણોનું સ્વરૂપ જુદું છે ન્યાયબિન્દુ ગદ્યમાં છે, જ્યારે હેતુબિન્દુ વાદન્યાયની જેમ પ્રારંભિક એક કારિકાનુ વિસ્તૃત ગદ્ય વિવરણ છે જેમ ન્યાયપ્રવેશમાં પ્રારંભિક સંગ્રહકારિકા આગળના બધા વક્તવ્યનો સંક્ષિપ્ત સગ્રહ છે, તેમ જ હેતુબિન્દુની પ્રથમ કારિકા આગળના સમગ્ર વક્તવ્યનો અતિસક્ષિપ્ત સંગ્રહ છે. પ્રમાણસમુચ્ચયની વ્યાખ્યા હોવાથી ધર્મકીર્તિ પોતાના આકર ગ્રન્થનું પ્રમાણવાર્તિક એવુ નામ રાખે તે તો સમજી શકાય, પણ પોતાનાં લઘુપ્રકરણોનાં ન્યાયબિન્દુ, હેતુબિન્દુ, વાદન્યાય આદિ જેવા જે નામો રાખ્યાં છે તેમાં પણ વિચાર અને સાહિત્યની પૂર્વપરપરાનુ પ્રતિબિમ્બ સ્પષ્ટપણે દેખાય છે. દિઙ્નાગે પોતાના પ્રકરણોના ન્યાયમુખ (ન્યાયદ્વાર), હેતુમુખ, હેતુચક્ર જેવા નામો રાખેલા, શકરસ્વામીએ ન્યાયપ્રવેશ એવુ નામ પસંદ કરેલુ, જ્યારે ધર્મકીર્તિ તેવા જ વિષયના પ્રકરણો માટે ન્યાયબિન્દુ, હેતુબિન્દુ જેવાં નામો પસંદ કરે છે. માત્ર નામકરણ અને રચનામા જ પૂર્વપરંપરાનો વારસો નથી સમાતો, પણ ધર્મકીર્તિએ જે જે વિષયો ચર્ચ્યા છે તે બધામાં પોતાના સમય સુધીની બૌદ્ધ કે બૌદ્ધેતર વિચારપરંપરાઓ અને પરિભાષાઓનો વારસો પૂર્ણપણે સમાવેલો છે. વારસામા મળેલ વિચારો તેમ જ પરિભાષાઓને ધર્મકીર્તિ પોતાની પરીક્ષક કસોટીએ કસે છે અને જ્યા યોગ્ય લાગે ત્યા તે પ્રાચીન વિચારો અને પરિભાષાઓનુ નિર્ભયપણે ખડન પણ કરે છે તે એટલે સુધી કે તેના કહેવાતા ગુરુ ઈશ્વરસેન સુધ્ધાને તે છોડતો નથી પોતાના પૂર્વવર્તી બૌદ્ધ આચાર્યોએ જે જે બૌદ્ધેતર પરપરાઓના મંતવ્યનુ નિરસન કર્યું છે તે ઉપરાત પણ આગળ વધી ધર્મકીર્તિ બીજા અનેક બૌદ્ધેતર દર્શનોના મન્તવ્યોનું નિરસન કરે છે. તેથી જ ધર્મકીર્તિના ગ્રન્થોમા ભર્તૃહરિ, ઉદ્દ્યોતકર, કુમારિલ જેવા અનેક વૈદિક દાર્શનિકોના મન્તવ્યોની સમાલોચના મળે છે.

મૂળ હેતુબિન્દુ મગળ સિવાય જ પ્રારંભિક એક ઉત્થાનવાક્ય સાથેની એક કારિકાથી શરૂ થાય છે, જે કારિકા પ્રમાણવાર્તિકના મનોરથનંદિનીના ક્રમ પ્રમાણે ત્રીજા પરિચ્છેદની પ્રથમ કારિકા અને કર્ણગોમીના ક્રમ પ્રમાણે સ્વોપજ્ઞવૃત્તિવાળા પ્રથમ પરિચ્છેદની ત્રીજી કારિકા છે એ કારિકામા સૂત્રરૂપે હેતુનું લક્ષણ અને હેતુના પ્રકારોનુ કથન છે. હેત્વાભાસનુ સ્વરૂપ અને તેના પ્રકારો હેતુના લક્ષણ અને પ્રકારો ઉપરથી જ સૂચિત થયેલા છે કારિકામાં જે વસ્તુ બીજરૂપે સક્ષેપમાં કહી છે તેનું જ આખા ગ્રન્થમાં ગદ્યરૂપે ધર્મકીર્તિએ વિવરણ કર્યું છે આપણી સામે અત્યારે એ ગદ્ય જેનું નામ હેતુબિન્દુ

ઉપલબ્ધ નથી, માત્ર અર્ચટની વ્યાખ્યામાં તેની પ્રતીકો લેવામાં આવી છે કે જે પ્રતીકો રચનાના ક્રમથી ઘણીવાર વિપરીત ક્રમે પણ લેવાયેલી છે, અને તે પ્રતીકો પણ મૂળનો અંશમાત્ર સૂચવે છે એટલે એ પ્રતીકો ઉપરથી ધર્મકીર્તિરચિત અખંડ સંસ્કૃતગદ્યમય વિવરણનો ખ્યાલ પૂર્ણપણે આવી નથી શકતો અલબત્ત, ટિબેટન અનુવાદ ઉપરથી એનો ખ્યાલ કાંઈક આવી શકે શ્રી. રાહુલજીએ ટિબેટન અનુવાદ ઉપરથી પ્રતિસંસ્કૃત કરી આપ્યુ છે, પણ એ પ્રતિસંસ્કૃત અને અર્ચટે લીધેલી પ્રતીકો એ બન્નેને મેળવતાં પણ અમને એમ લાગે છે કે ધર્મકીર્તિ રચિત ગદ્યમય સંસ્કૃત વિવરણ જેમનુ તેમ તૈયાર થતુ નથી. એટલે પ્રસ્તુત સસ્કરણમા ધર્મકીર્તિના અવિકલ સસ્કૃત ગદ્ય વિવરણ પૂરતી ત્રુટિ રહી જ જાય છે એમ કબૂલ કરવુ જોઈએ

ધર્મકીર્તિએ હેતુબિન્દુના ગદ્યવિવરણમા દિઙ્નાગ સિવાય બીજા કોઈ આચાર્યનો નામપૂર્વક નિર્દેશ કર્યો લાગતો નથી એણે પોતાના ગ્રન્થો પૈકી પ્રમાણવિનિશ્ચયનો જ નામપૂર્વક ઉલ્લેખ કર્યો છે હેતુબિદુમા ચર્ચાયેલો વિષય મુખ્યપણે સ્વાર્થાનુમાન સાથે સંબધ ધરાવે છે, એટલે હેતુબિદુપ્રકરણને સ્વાર્થાનુમાનનુ એક પ્રકરણ કહી શકાય ધર્મકીર્તિએ ન્યાયબિંદુમાં સ્વાર્થાનુમાન અને પરાર્થાનુમાન બન્નેનુ નિરૂપણ કર્યું છે પ્રમાણવાર્તિકમા પણ બન્નેનુ નિરૂપણ છે એ કહેવુ કઠણ છે કે તેણે આ ત્રણ પૈકી કયા ગ્રથની રચના પ્રથમ કરી, પણ વધારે સભવ એવો છે કે પહેલા પ્રકરણો રચ્યા હોય અને પછી તે બધાંનુ સકલન કરી અને બીજા નવા વિષયો તેમ જ વિચારો ઉમેરી પ્રમાણવાર્તિક જેવો આકર ગ્રથ રચ્યો હોય ધર્મકીર્તિએ પોતાના ઉપર્યુક્ત ત્રણ ગ્રથોમા હેતુના પ્રકારોનો વર્ણન ક્રમ એકસરખો રાખ્યો નથી ન્યાયબિદુમા અનુપલબ્ધિ, સ્વભાવ અને કાર્ય એવો ક્રમ છે, પ્રમાણવાર્તિકમાં કાર્ય, સ્વભાવ અને અનુપલબ્ધિ એ ક્રમ છે, જ્યારે હેતુબિંદુમા સ્વભાવ, કાર્ય અને અનુપલબ્ધિ એવો ક્રમ છે તેથી એકદર હેતુબિદુપ્રકરણના મુખ્ય વિષયની દૃષ્ટિએ ચાર ભાગ પડે છે એ ચારેય ભાગમા બીજા અનેક વિષયો અને અનેક દાર્શનિક-તાર્કિક પરિભાષાઓની ચર્ચા છે, જેનો ખ્યાલ વાચક વિષયાનુક્રમ ઉપરથી કરી શકશે

'હેતુ' શબ્દ પ્રાચીન ગ્રથોમા સામાન્ય પ્રમાણના અર્થમા પણ આવે છે અને ઘણીવાર ન્યાયના પર્યાય તરીકે પણ વપરાય છે, જેમકે હેતુવિદ્યા=ન્યાયવિદ્યા, તર્કવિદ્યા, આન્વીક્ષિકી પણ પ્રસ્તુત ગ્રન્થના નામમા વપરાયેલ 'હેતુ' શબ્દ અનુમાનના અન્યતમ અગભૂત સાધનનો જ બોધક છે તેની સાથે સમાસ પામેલ 'બિન્દુ' શબ્દ સૂચવે છે કે પ્રસ્તુત પ્રકરણ એ તો હેતુવિષયક વિચાર,

કે જે વસ્તુત મહોદધિ જેવો અપાર અને અગાધ છે, તેનું એક બિન્દુમાત્ર હોઈ તેમાં એ વિશે ઓછામાં ઓછો વિચાર છે. બીજી રીતે કદાચ 'બિન્દુ' શબ્દથી ધર્મકીર્તિ પોતાના આકરગ્રન્થ પ્રમાણવાર્તિકગત હેતુવિષયક વિસ્તૃત વિચારનો હેતુબિન્દુપ્રકરણમા અશમાત્ર છે એમ પણ સૂચવતો હોય. ગમે તે હો, એટલુ તો અસંદિગ્ધ છે કે ધર્મકીર્તિએ પ્રસ્તુત પ્રકરણમા હેતુ વિશેના પોતાના મતવ્યો તદ્દન સ્પષ્ટપણે રજૂ કર્યા છે, કે જે મન્તવ્યો બૌદ્ધપરપરાની વિચારસરણી સાથે બધબેસતા હોઈ તેમ જ વધારે તર્કશુદ્ધ હોઈ આગળના બૌદ્ધ તર્કશાસ્ત્રમા એકસરખી રીતે પ્રતિષ્ઠા પામ્યા છે અને મોટે ભાગે બીજા વિરોધી વિચારોનુ સ્થાન બૌદ્ધપરપરામા ધર્મકીર્તિ બાદ રહ્યુ જ નથી. ખરી રીતે દિઙ્નાગે જે પ્રભાવ તર્કશાસ્ત્રમા પાડેલો તેનુ સ્થિરીકરણ અને વિશદીકરણ ધર્મકીર્તિએ કર્યું છે, અને બૌદ્ધ તર્કશાસ્ત્રની એક ચોક્કસ વિચારસરણી ઘડી છે તેથી જ આપણે જોઈએ છીએ કે ન્યાય-વૈશેષિક-મીમાસક જેવી વૈદિક પરપરાના ગ્રન્થોમા અને જૈન તર્કગ્રન્થોમાં દિઙ્નાગ અને ધર્મકીર્તિનુ પ્રમાણમા વધારેમા વધારે ખડન થયેલુ છે—જાણે કે તે બે બૌદ્ધેતર દર્શનોના મહાન પ્રતિસ્પર્ધી હોય।

આ સ્થળે દિઙ્નાગકૃત પ્રમાણસમુચ્ચય, ન્યાયમુખ અને હેતુચક્ર સાથે ધર્મકીર્તિના સસ્કૃતમા ઉપલબ્ધ એવા જ ત્રણ ગ્રન્થોની વિષય અને શૈલીની દૃષ્ટિએ તુલના કરવી યોગ્ય છે. પ્રમાણસમુચ્ચયમા બધા જ પ્રમાણોની મુખ્યપણે ચર્ચા છે, ને તે સવૃત્તિક કારિકાબદ્ધ છે ન્યાયમુખમા મુખ્યપણે અનુમાનની ચર્ચા છે; જેમકે સિદ્ધસેનકૃત ન્યાયાવતારમા હેતુચક્રમા મુખ્યપણે ન્યાયાંગભૂત હેતુસ્વરૂપની ચર્ચા છે ધર્મકીર્તિનું પ્રમાણવાર્તિક તો પ્રમાણસમુચ્ચયની વ્યાખ્યા હોઈ તેમા તેનો જ વિષય આવે એ સ્વાભાવિક છે પણ એનો પ્રમાણવિનિશ્ચય ગ્રન્થ મુખ્યપણે બધા જ પ્રમાણોનુ નિરૂપણ કરે છે, જ્યારે ન્યાયબિન્દુમા મુખ્યપણે અનુમાનની જ ચર્ચા છે, અને હેતુબિન્દુમા હેતુચક્રની પેઠે મુખ્યપણે હેતુસ્વરૂપની ચર્ચા છે

હેતુબિન્દુમા હેતુનુ સ્વરૂપ એક જ કારિકામા નિર્દેશી ને ફિર તેની વ્યાખ્યામા વિશેષ ઊહાપોહ સબાણથી કરવામા આવ્યો છે જ્યારે ન્યાયબિન્દુના બીજા પરિચ્છેદમા હેતુના સ્વરૂપ વિશે બૌદ્ધ સિદ્ધાન્તોનો મુદ્દો માત્ર ઉક્તિસવાદ છે પરંતુ પ્રમાણવાર્તિકના સ્વાર્થાનુમાન પરિચ્છેદમા સમગ્ર હેતુબિન્દુમા સંક્ષેપથી ચર્ચાયેલ વિષય પણ ઘણા જ સબાણથી [illegible] સહિત ઢગલા કારિકાઓમા ચર્ચાયેલ છે હેતુબિન્દુનો જે [illegible] છે તે સમગ્ર પ્રમાણવાર્તિકની સ્વાર્થાનુમાનની [illegible] આવી જ જાય છે

૨. હેતુબિન્દુટીકા

અર્ચટકૃત હેતુબિન્દુટીકા પણ ગદ્યાત્મક જ છે. એમાં અર્ચટના પોતાનાં થોડાંક પદ્યો છે ખરાં, જેમ કે શરૂઆતના ચાર પદ્યો સુગતની સ્તુતિ અને ધર્મકીર્તિની કૃતિનુ ગૌરવ તેમ જ પોતાની લઘુતા વિશેનાં છે, અંતમાં એક પદ્ય ઉપસંહારસૂચક છે અને વચ્ચે જ્યાં સ્યાદ્વાદનુ ખંડન આવે છે ત્યાં તે સ્વરચિત ૪૫ પદ્યો (પૃ. ૧૦૪) મૂકે છે આ પદ્યો તેણે હેતુબિન્દુ-ટીકા રચતી વખતે જ રચ્યાં છે કે કોઈ પોતાના બીજા ગ્રન્થમાથી ઉદ્ધૃત કર્યાં છે એ નક્કી થઈ શકતુ નથી, પણ તેના વ્યાખ્યાકાર દુર્વેકના સ્પષ્ટ કથન (પૃ ૩૪૪) ઉપરથી એ નક્કી થાય છે કે તે પદ્યો તેના પોતાનાં જ છે. આ સિવાય અર્ચટે અનેક સ્થળે અન્યકૃત પદ્યો ઉદ્ધૃત કર્યાં છે તેમાં દિઙ્નાગ, ભર્તૃહરિ, કુમારિલ અને ધર્મકીર્તિ મુખ્ય છે (જુઓ પરિશિષ્ટ નં. ૩)

અર્ચટ હેતુબિન્દુ મૂળના પ્રત્યેક પદનો અર્થ કરે છે એટલે સુધી કે તે કેટલીક વાર च અને तु જેવા અવ્યય પદોના પ્રયોગનું પણ તાત્પર્ય દર્શાવે છે તે પદોના શબ્દાર્થને જ દર્શાવવામા કૃતાર્થતા ન માનતા તેના રહસ્યનુ પૂર્ણપણે વિસ્તૃત વિવરણ કરે છે. તે પોતે શરૂઆતમા કહે છે તેમ તેણે ધર્મકીર્તિની સમગ્ર ઉક્તિઓનુ ચર્વિતચર્વણ તો કર્યું જ છે, પણ તે ઉપરાંત ધર્મકીર્તિએ પોતે જે જે બૌદ્ધ ને બૌદ્ધેતર વાઙ્મય પચાવ્યુ છે તે પણ તેણે યથાવત્ અવગાહ્યુ છે આ વસ્તુની પૂર્ણ પ્રતીતિ તેનુ વિવરણ કરાવે છે. જ્યાં જ્યા ધર્મકીર્તિએ વિશેષ નામ સિવાય જ केचित्, अन्ये, अपरे જેવા સર્વનામો વાપરી મતાન્તરોનો નિર્દેશ કરી સમાલોચના કરી છે ત્યાં અર્ચટ એ મતાન્તરો જેના જેના હોય તેનો નામપૂર્વક નિર્દેશ પણ કરે છે અને એ મતાન્તરોવાળાં સ્થળો પણ સૂચવે છે દાર્શનિક અને તાર્કિક વિચાર-ધારાઓનુ વિશાળ અને ઊંડુ અવગાહન અર્ચટને એટલુ બધુ છે કે તે જ્યારે કોઈ પણ મુદ્દાની ચર્ચામા પૂર્વપક્ષ રચે છે અને તેનો બૌદ્ધ તેમ જ ધર્મકીર્તિની દૃષ્ટિએ જવાબ આપે છે ત્યારે આપણી સામે સર્વતંત્રસ્વતંત્ર વાચસ્પતિ મિશ્રનુ લખાણ ઉપસ્થિત હોય એમ ઘડીભર લાગે છે

ધર્મકીર્તિના સમય સુધીના દાર્શનિક વાઙ્મય ઉપરાંત તેણે પોતાના અને ધર્મકીર્તિના ગાળા દરમિયાન રચાયેલ પ્રસિદ્ધ પ્રસિદ્ધ તાર્કિક વાઙ્મય પણ અવગાહ્યુ હોય એમ લાગે છે ખાસ કરીને ધર્મકીર્તિના મન્તવ્યોથી વિરુદ્ધ જતુ હોય એવુ ધર્મકીર્તિના ઉત્તરવર્તી પ્રસિદ્ધ વિદ્વાનનુ કોઈ લખાણ હોય તો તેની સમાલોચના તે કરે છે અને ધર્મકીર્તિના મંતવ્યોને દૃઢ કરે છે. દાખલા તરીકે ધર્મકીર્તિ પછી જૈન આચાર્ય સમંતભદ્ર એક વસ્તુનુ

એકાનેકસ્વભાવપણું સ્થાપે છે જે ધર્મકીર્તિના એકસ્વભાવત્વના સિદ્ધાન્તની વિરુદ્ધ પડે છે. તેથી અર્ચટ સ્વામી સમંતભદ્રની પ્રસિદ્ધ એક કારિકાનો અંશેઅંશ લઈ તેનુ વિસ્તૃત નિરસન કરે છે (હેતુબિન્દુટીકા પૃ ૧૦૫, પં ૧૫)

૩. હેતુબિન્દુટીકાલોક

શરૂઆતના બે અને અંતના ચાર પદ્યોને બાદ કરતા દુર્વેકની સમગ્ર વ્યાખ્યા ગદ્યાત્મક છે, અલબત્ત, એણે વચ્ચે વચ્ચે અન્યકૃત અનેક પદ્યો અનેક સ્થળે ઉદ્ધૃત કર્યાં છે દુર્વેકની શૈલીગત વિશેષતા પણ અર્ચટના જેવી જ છે. તે એ કે જ્યારે તે કોઈ શબ્દ કે પરિભાષાનુ અર્થકથન કરવા ઇચ્છતો હોય ત્યારે તે એટલુ બધુ વિશદ અને વિસ્તૃત ઉત્થાન રચે છે કે તેમા પૂર્વપક્ષ સપૂર્ણપણે આવી જવા ઉપરાત સિદ્ધાન્તી બૌદ્ધનો ઉત્તર પણ સમાઈ જાય છે, અને પછી વ્યાખ્યેય પદ કે પરિભાષાનુ શાબ્દિક વિવરણ જ માત્ર બાકી રહે છે. આ શૈલી અભ્યાસની દૃષ્ટિએ બહુ ઉપયોગી છે દુર્વેકે પણ અર્ચટની પેઠે પોતાના સમય સુધીનુ બૌદ્ધ–બૌદ્ધેતર દાર્શનિક અને તાર્કિક વાઙ્મય સૂક્ષ્મ દૃષ્ટિથી અવગાહ્યુ હોય તેમ લાગે છે દુર્વેકની અર્ચટ કરતા પ્રકૃતિગત એક વિશેષતા એ લાગે છે કે તે વિચારમા વધારે સ્વતત્ર છે, એટલે સુધી કે જે અર્ચટનુ તે હાર્દિક બહુમાન અને જેની કૃતિનુ વિવેચન કરે છે તેના જ વિચારોથી કેટલીક વાર જુદો પડે છે અને આધળિયુ સમર્થન કરતો નથી

[૪] વિષય પરિચય

હેતુબિન્દુનો મુખ્ય વિષય છે હેતુનુ સ્વરૂપ નિરૂપણ એ વિષય સૂચવની પ્રથમ કારિકા છે—

पक्षधर्मस्तदंशेन व्याप्तो हेतुस्त्रिधैव सः ।
अविनाभावनियमाद् हेत्वाभासास्ततोऽपरे ॥

અર્ચટે પોતાની વ્યાખ્યામા આ કારિકા ઉપરથી ત્રણ અથવા ૭ પ્રતિપાદ્ય વિષયો સૂચવ્યા છે, જ્યારે કર્ણગોમીએ ચાર વિષયો સૂચવ્યા છે. અનુક્રમે તે વિષયો આ પ્રમાણે છે : ૧ (૧) હેતુનું લક્ષણ, (૨) તેની સંખ્યાનો નિયમ, (૩) સંખ્યાનિયમદર્શક પ્રમાણ[1]. ૨ (૧) હેતુનુ સ્વરૂપ, (૨) હેતુસંખ્યાનિયમ (૩) વિવિધ હેતુમા હેતુત્વનું સ્પષ્ટીકરણ (૪) સંખ્યાનિયમ અને

૧. હેતુબિન્દુ પૃ. ૯ પં. ૨૫

અવધારણ તેમ જ બન્નેનું કારણ, (૫) શ્લિષ્ટ નિર્દેશકથન, (૬) હેત્વાભાસનુ લક્ષણ ન કહેવાનુ કારણ[1] ૩. (૧) હેતુનુ લક્ષણ, (૨) તેની સંખ્યાનો નિયમ, (૩) નિયમનું કારણ, (૪) વિપક્ષનિવૃત્તિ [2]

ખરી રીતે જોતાં જે પ્રથમ ત્રણ અર્થો સૂચવ્યા છે તેમા જ બાકીનાનો સમાવેશ થઈ જાય છે

સાહચર્યનિયમ, અવ્યભિચારનિયમ, અવિનાભાવનિયમ, અન્યથાનુપપત્તિ એ બધા વ્યાપ્તિના પર્યાય છે, જેમાથી અન્યથાનુપપત્તિ શબ્દ જૈનપરંપરામા વિશેષે પ્રસિદ્ધ છે અનુમાનને પ્રમાણ માનનાર હરકોઈ વ્યાપ્તિ સ્વીકારીને જ ચાલે છે, અને તે જેમા જેમાં સાધ્યની વ્યાપ્તિ માનતો હોય તે બધાને સદ્ધેતુ કહે છે આ તત્ત્વ સર્વ અનુમાનવાદીઓને સમાન છે, તેમ છતાં વ્યાપ્તિના નિયામક તત્ત્વ વિશે મતભેદ છે ન્યાય, વૈશેષિક, જૈન આદિ તાર્કિકો સાધ્ય અને હેતુ વચ્ચે સાહચર્યનિયમ કે અવ્યભિચારનિયમના નિયામક તરીકે સબંધોની મર્યાદા આંકતા નથી, જ્યાં જે સબંધ હોય તે સબંધ માનીને ચાલે છે એટલે તેમને મતે સયોગ, એકાર્થસમવાય વગેરે અનેક સબંધો વ્યાપ્તિના નિયામક બની શકે છે, પણ બૌદ્ધપરંપરા એમ ન માનતાં માત્ર તાદાત્મ્ય અને કાર્યકારણભાવ એ બે સબંધોને જ વ્યાપ્તિના નિયામક માને છે બૌદ્ધપરંપરાનુસાર અન્ય પરંપરાસંમત વધારાના બધા જ સબંધો ઉક્ત બે સબંધમાં જ સમાઈ જાય છે દિઙ્નાગ પહેલાં બૌદ્ધપરંપરામા આ માન્યતા સ્પષ્ટ થઈ હશે કે નહિ તે અજ્ઞાત છે, કારણ કે યોગચર્યાભૂમિશાસ્ત્રમાં જે જે અનુમાનના પ્રકારો આપ્યા છે તે ઉપરથી મૈત્રેયનાથ એ જ સબંધ માનતો હોય તેમ લાગતુ નથી (જુઓ Docrines of Maitrayanath and Asagna, p. 67), પણ દિઙ્નાગથી માંડી આગળના બધા જ બૌદ્ધ તાર્કિકોએ એ બે સંબધને જ વ્યાપ્તિનિયામક તરીકે માની તેમા બાકીના બધા સબંધો ઘટાવ્યા છે બૌદ્ધપરંપરાની આ માન્યતા સામે ન્યાય-વૈશેષિક–મીમાંસક-જૈન આદિ પરંપરાઓ પોતપોતાના મંતવ્યો રજૂ કરી દર્શાવે છે કે હેતુ-સાધ્યના તાદાત્મ્યસબંધ તેમ જ કાર્યકારણસંબંધ ઉપરાંત સહચાર અને ક્રમ પણ વ્યાપ્તિના નિયામક બને છે. આ વિરોધી માન્યતાનુ હેતુબિન્દુમા વિસ્તારથી અને સચોટપણે ખંડન કરવામાં આવ્યું છે

---

૧ હેતુબિન્દુ પૃ. ૧૦. પં. ૨૯.

૨. કર્ણગોમી ટીકા પૃ. ૮.

શિંશપાત્વ જેવા વિશેષથી વૃક્ષત્વ જેવા સામાન્યનુ અનુમાન થતુ હોય ત્યાં તાદાત્મ્યસબંધ અને ધૂમ જેવા કાર્યથી વહ્નિ જેવા કારણનું અનુમાન થતું હોય ત્યા કાર્યકારણભાવસબંધ દર્શાવવામા આવ્યો છે. કોઈ ફળમાં રૂપવિશેષથી રસવિશેષનું અનુમાન કરે છે, ત્યાં બૌદ્ધેતર પરંપરાઓ સાહચર્યસંબંધ માની વ્યાપ્તિ ઘટાવે છે, અને કૃત્તિકાનો ઉદય જોઈ શકટ નક્ષત્રના ઉદયનુ અનુમાન કરવામા તેઓ ક્રમસબંધ માની વ્યાપ્તિ ઘટાવે છે. આવાં બધા જ સ્થળોએ દિઙ્નાગ અને તેનો અનુયાયી ધર્મકીર્તિ તાદાત્મ્ય અગર તદુત્પત્તિ ઘટાવી દે છે તે એટલે સુધી કે અનુપલંભ હેતુ દ્વારા પ્રતિષેધ સિદ્ધ કરવો હોય ત્યા પણ તેઓ સાક્ષાત્ કે પરંપરાથી તાદાત્મ્ય ને તદુત્પત્તિનો જ નિયમ ઘટાવી સ્પષ્ટ ઘોષણા કરે છે કે—

" कार्यकारणभावाद्वा स्वभावाद्वा नियामकात् ।
अविनाभावनियमोऽदर्शनान्न न दर्शनात् ॥ "

—प्रमाणवा ३, ३०.

આ જ મુદ્દાને ધર્મકીર્તિએ હેતુબિન્દુમાં સવિશેષે સ્પર્શ્યો છે.

હેતુબિન્દુમાં હેતુનુ લક્ષણ દર્શાવતા ત્રણ રૂપો વર્ણવાયેલાં છે પક્ષમાં સત્ત્વનો નિયમ, સપક્ષસત્ત્વ અને વિપક્ષાસત્ત્વ. આ ત્રણ રૂપો તર્કશાસ્ત્ર જેટલાં તો જૂનાં છે. તર્કશાસ્ત્ર એ દિઙ્નાગ અને પ્રશસ્તપાદ પહેલાંની કૃતિ છે એ વિશે શંકા નથી, ભલે તેના કર્તા અને સમય વિશે ચોક્કસ નિર્ણય ન હોય વસુબંધુએ પણ ત્રૈરૂપ્યનો સ્વીકાર કર્યો છે (જુઓ ન્યાયવા પૃ. ૧૩૬, તાત્પર્ય પૃ ૨૯૮) સાંખ્યકારિકાની માઠરવૃત્તિમા પણ એ જ ત્રણ રૂપો ગણાવ્યા છે તર્કશાસ્ત્ર અને માઠરવૃત્તિ બન્નેનો ચીની અનુવાદ પરમાર્થે કરેલો છે ન્યાયસૂત્ર કે તેના ભાષ્યમાં જોકે રૂપોની સંખ્યા ગણાવી નથી, પણ હેતુસ્વરૂપનું વર્ણન એમ સૂચવતુ લાગે છે કે તેમને પણ ત્રણ રૂપો જ માન્ય હશે આ ત્રણ રૂપમા ઉમેરો કરી પાચ રૂપ માનનાર અને છ રૂપ માનનાર કોણ કોણ છે તે ચોક્કસ થતું નથી પણ ધર્મકીર્તિએ પાચ અને છ રૂપનું ખંડન કર્યું છે તે ઉપરથી એમ લાગે છે કે પ્રશસ્તપાદ અને ધર્મકીર્તિ વચ્ચેના સમયમા ક્યારેક પાચ અને છ રૂપની કલ્પના હેતુલક્ષણમાં દાખલ થયેલી છે. જૈનપરંપરા અન્યથાનુપપત્તિને જ હેતુનું એક સ્વરૂપ માને છે. એનો સામાન્ય નિર્દેશ ન્યાયાવતાર (કા. ૨૨)મા છે. ધર્મકીર્તિએ જૈનસંમત એકરૂપનું ખંડન નથી કર્યું; એનું કારણ ગમે તે હોય છતાં આગળ જતાં શાન્તરક્ષિત અને

ધર્મકીર્તિનો વ્યાખ્યાકાર કર્ણગોમી જૈન તાર્કિકસંમત અન્યથાનુપપત્તિ સ્વરૂપ એકરૂપતું પણ ખંડન કરે છે (તત્ત્વસંગ્રહ કા ૧૩૬૪, કર્ણ. પૃ ૯).

કાર્યથી કારણના સાધક ધૂમ–વહ્નિ જેવાં અનેક અનુમાન પ્રકારો સર્વસંમત છે. તેમ છતા જુદી જુદી તત્ત્વજ્ઞાનની માન્યતાવાળી અનેક પરંપરાઓ હોવાથી દરેક પરપરાના કેટલાક અનુમાનપ્રકારો એવા હોય છે કે તે સર્વસંમત હોતા નથી. જ્યારે બૌદ્ધપરંપરા વસ્તુમાત્રમા અનિત્યત્વ સિદ્ધ કરે ત્યારે તેને મતે સત્ત્વ હેતુ સદ્ધેતુ છે, પણ અન્ય પરંપરાઓને તે અનુમાન માન્ય નથી. જૈનપરપરા વસ્તુમાત્રમાં પરિણામિત્વ સિદ્ધ કરવા સત્ત્વને સદ્ધેતુ ઠરાવે છે, ત્યારે તે અન્યપરંપરાસમત નથી હોતો એવા જ દાખલાઓ બીજી પરપરાઓને સમત એવા અનુમાન પ્રકારો વિશે સરલતાથી આપી શકાય. આમ હોવાથી અને કેટલેક સ્થળે વસ્તુસ્વભાવની વિચિત્રતાને લીધે હેતુના અનેક પ્રકારો પડી જાય છે કોઈ હેતુ એવો હોય છે કે તેની પક્ષથી ભિન્ન સ્થળમાં અન્વયવ્યાપ્તિ બતાવી શકાતી નથી, પણ વ્યતિરેકવ્યાપ્તિ બતાવી શકાય છે એવા કેવલવ્યતિરેકી હેતુને પણ સદ્ધેતુમાં સ્થાન આપવામાં આવ્યું છે કેટલાક હેતુ એવા હોય છે કે તેની વ્યતિરેકવ્યાપ્તિ વાસ્તવિક વિપક્ષમાં મળતી જ નથી. તેવા કેવલાન્વયી હેતુને પણ સદ્ધેતુમાં સ્થાન મળ્યુ છે જ્યા સીધી રીતે હેતુનુ અસ્તિત્વ પક્ષમા બતાવાતુ ન હોય ત્યાં પણ તેને સદ્ધેતુ માની લેવામા કેટલાકને કશો પણ બાધ દેખાતો નથી. જ્યા અન્વય અને વ્યતિરેક બન્ને સુલભ હોય ત્યાં તો સદ્ધેતુ વિશે મતભેદને સ્થાન જ નથી આ રીતે પક્ષ અને સાધ્ય આદિના વૈવિધ્યને લીધે તેમ જ સાપ્રદાયિક માન્યતાભેદને લીધે લિગના અનેક પ્રકારો પડી જાય છે તે બધામાથી વ્યાપ્તિને દર્શાવતુ કોઈ એક જ સ્વરૂપ નક્કી કરવુ તે સરલ નથી તેમ છતા એવુ સ્વરૂપ નક્કી કરી તે પ્રમાણે પોતપોતાની તર્કપરપરા સ્થાપવાના અનેક પ્રયત્નો થયા છે દરેક પ્રયત્નકાર પોતાની જ રીતમાં અન્ય પરપરાઓની રીતોને સમાવવાનો પણ પ્રયત્ન કરે જ છે દા ત અર્થાપત્તિને જુદુ પ્રમાણ માનનાર મીમાસક આદિ અન્યથાનુપપત્તિનો જ મુખ્ય આશ્રય લઈ તેને આધારે ઇષ્ટ સિદ્ધ કરે છે ત્યારે એ જ અર્થાપત્તિના બધા દાખલાઓને, અર્થાપત્તિને અનુમાનમા સમાવનાર બધા જ તાર્કિકો, પોતાની પક્ષ–સપક્ષ–વિપક્ષની કલ્પના દ્વારા અનુમાનમા ઘટાવે છે. અન્વયવ્યાપ્તિને આવશ્યક અનુમાનાગ લેખનાર જ્યારે પક્ષભિન્નમા તે દર્શાવવી અશક્ય હોય ત્યારે પક્ષના એક જ ભાગમાં અગર પક્ષની અદર જ તે ઘટાવી લે છે. વ્યતિરેકવ્યાપ્તિને આવશ્યક અનુમાનાગ લેખનાર વાસ્તવિક વિપક્ષ ન હોય ત્યા પણ કલ્પનાથી વિપક્ષ સરજી

તેથી વ્યાવૃત્તિ દર્શાવી વ્યતિરેકવ્યાપ્તિ ઘટાવે છે. પક્ષસત્ત્વને આવશ્યક અનુમાનાંગ લેખનાર ગમે તે રીતે હેતુમા પક્ષસત્ત્વ ઘટાવે છે. આમ દાર્શનિકોમાં વ્યાપ્તિદર્શક સ્વરૂપો વિશે મતભેદની પરંપરાનો ઈતિહાસ બહુ પ્રાચીન છે.

દિઙ્નાગ પહેલાં પણ અન્તર્વ્યાપ્તિ દ્વારા અનુમાન કરવાની પરંપરા હતી. જ્યારે પક્ષથી ભિન્ન સપક્ષ કે વિપક્ષ જેવું કશુ જ ન હોય અને બહિર્વ્યાપ્તિ બતાવવી શકય ન હોય, છતાં સાધ્ય સિદ્ધ કરવું હોય ત્યારે અન્તર્વ્યાપ્તિનો જ આશ્રય લેવો પડે છે. આવો આશ્રય લેનાર પરંપરાએ હેતુનું સ્વરૂપ અન્યથાનુપપત્તિમાત્રમાં ઘટાવ્યુ. આ સિદ્ધાન્ત શરૂઆતમાં અમુક દાખલા પૂરતો જ રહ્યો, પણ જ્યારે બહિર્વ્યાપ્તિના પક્ષપાતીઓએ તેની સામે વાધા રજૂ કર્યા ત્યારે અન્તર્વ્યાપ્તિના સમર્થકોએ બહિર્વ્યાપ્તિ હોય છતાં પણ નિષ્ણાતો સમક્ષ તેને દર્શાવવાની જરૂર નથી રહેતી એ વસ્તુસ્થિતિનો લાભ લઈ સાર્વત્રિકપણે બહિર્વ્યાપ્તિની નિરર્થકતા સાબિત કરવા પ્રયત્ન કર્યો અને એ પ્રયત્નમાથી અન્યથાનુપપત્તિમાત્રને હેતુસ્વરૂપ માનનાર તેમ જ અંતર્વ્યાપ્તિનો જ પક્ષ કરનાર એક પરંપરા સ્થિર થઈ કે જે જૈન તર્કશાસ્ત્રમાં દેખાય છે.[1] એ જ રીતે કેવલાન્વયી અને કેવલવ્યતિરેકી લિંગની પણ પરંપરા સ્થિર થઈ આ બધું બન્યે જતું હતુ ત્યારે પણ એક ત્રૈરૂપ્યની પરંપરા ચાલુ જ હતી, જે પક્ષસત્ત્વ, સપક્ષસત્ત્વ અને વિપક્ષવ્યાવૃત્તિ એ ત્રણ તત્ત્વોને વ્યાપ્તિના અનિવાર્ય અંગ લેખતી.[2] તે પરંપરા પક્ષથી ભિન્ન સપક્ષ ન હોય ત્યારે પક્ષના એકદેશને જ સપક્ષ માની લે અને વાસ્તવિક વિપક્ષ ન હોય ત્યાં પણ કાલ્પનિક વિપક્ષ ઊભો કરી તેથી વ્યાવૃત્તિ ઘટાવે અને ઘણી વાર એક સંભવિત સ્પષ્ટ અંગમાં બીજા અંગનો અર્થગતિથી સમાવેશ ઘટાવે અને છેવટે ત્રૈરૂપ્ય સિદ્ધ કરે. આ પરંપરાનું સચોટ સમર્થન દિઙ્નાગે કરેલું ને તે જ હેતુબિન્દુમાં વિસ્તારથી ચર્ચાયેલુ છે. તે એટલે લગી કે કોઈએ દિઙ્નાગ આદિ દ્વારા સમર્થિત ત્રૈરૂપ્યનો વિરોધ કરતાં પંચરૂપ્ય, ષડ્‌રૂપ્ય કે એકરૂપતું સમર્થન કરેલુ, તે બધાનું નિરસન ધર્મકીર્તિ અને તેના વ્યાખ્યાકારો કરે છે. અને આ જ કારણથી ધર્મકીર્તિ સ્વભાવ, કાર્ય તેમ જ અનુપલંભ એ ત્રણે હેતુપ્રકારોમા અન્વય અને વ્યતિરેક વ્યાપ્તિ બન્નેનો નિશ્ચય આવશ્યક સમજી તે કેવી રીતે થાય છે તે દર્શાવે છે.

હેતુના વ્યાપ્તિદર્શક પક્ષસત્ત્વ આદિ ત્રણ રૂપો સ્વીકાર્યાં છે, તે ઉપરથી જ

---

૧. અષ્ટકગ્રન્થત્રય પૃ. ૧૯૬.

૨. તર્કશાસ્ત્ર પૃ. ૧૪.

ત્રણ હેત્વાભાસોની જૂની પરંપરા ચાલી આવતી. એ જ પરંપરાનુ દિઙ્નાગે સમર્થન કર્યું અને ધર્મકીર્તિએ પ્રમાણવાર્તિક તેમ જ ન્યાયબિંદુમાં અતિવિસ્તારથી તે તે એક, બે કે ત્રણ સ્વરૂપને અભાવે કેવી કેવી રીતે હેત્વાભાસ બને છે તે બતાવ્યુ, અને હેત્વાભાસો પણ ત્રણ જ છે એમ સ્થાપ્યુ. હેતુબિંદુમા પ્રમાણવાર્તિક કે ન્યાયબિંદુની પેઠે આ બાબતનું વિશદીકરણ નથી, માત્ર હેત્વાભાસની સૂચના છે.

ઉપર્યુક્ત મુખ્ય વિષય ઉપરાંત હેતુબિંદુમાં અનેક એવા વિષયો સ્પષ્ટપણે ચર્ચ્યા છે, જે બૌદ્ધપરંપરાની ખાસ વિશેષતા લેખાય છે, જેમ કે, જાતિ કે સામાન્યવાદનુ નિરસન, અપોહરૂપ સામાન્યનુ સ્થાપન, વિશેષમાત્રની અર્થાત્ ક્ષણિકત્વની સિદ્ધિ અને પરિણામે નિર્હેતુકવિનાશવાદ, નિર્વિકલ્પક પ્રત્યક્ષમાત્રનું પ્રામાણ્ય અને તેમ છતા સવિકલ્પક અનુમાનમાં પારંપરિક પ્રામાણ્યનું ઉપપાદન, કાર્યકારણભાવ તેમ જ સામગ્રીજન્ય એકસ્વભાવત્વનું સમર્થન, સહકારિત્વનું સ્વરૂપ અને અભાવનું સ્વરૂપ.

આ બધા વિષયો એવા છે કે એકનું સમર્થન કરવા જતાં બીજાઓનું સમર્થન અનિવાર્ય બની જાય છે આ વિષયોમાં ક્ષણિકત્વ જ કેન્દ્રસ્થાને છે એને સિદ્ધ કરતાં બીજા વિષયોનુ સમર્થન આવશ્યક બની જાય છે. ધર્મકીર્તિ પહેલા ઘણા લાબા વખતથી આ વિષયોનું સમર્થન બૌદ્ધ દૃષ્ટિએ થતું આવેલુ. દા. ત નિર્હેતુકવિનાશવાદ જેવા વિષયોની ચર્ચા મૈત્રેયનાથના યોગચર્યાભૂમિશાસ્ત્ર જેટલી તો જૂની છે જ (જુઓ દર્શનદિગ્દર્શન પૃ. ૭૧૮, યોગચર્યાભૂમિ–ચિંતામયીભૂમિ ૧૧) તે બધી ચર્ચાઓનું સંકલન તેમ જ વિશદીકરણ ધર્મકીર્તિના પ્રમાણવાર્તિક જેવા ગ્રંથોમા દેખાય છે. હેતુબિંદુમાં પણ ધર્મકીર્તિએ આ વિષયો અતિસ્પષ્ટપણે ચર્ચ્યા છે, અને તેમ કરતા જે જે વિરોધી વાદો સામે આવતા ગયા તે બધાનું નિર્દય અને છતાં સપરિહાસ (દા. ત. પૃ. ૬૭) નિરસન કર્યું છે

ધર્મકીર્તિએ હેતુબિંદુમાં સ્પષ્ટ ચર્ચાઓ કરી છે ખરી, પણ ચર્ચિત વિષયો એટલા બધા સૂક્ષ્મ અને ગંભીર છે કે જિજ્ઞાસુ માત્ર તેટલા વિવેચનથી પૂર્ણપણે સંતોષાતો નથી, એટલે એવા વિસ્તૃતરુચિ જિજ્ઞાસુઓની દૃષ્ટિએ અર્ચટે પોતાની ટીકામા મૂળ ચર્ચિત બધા જ વિષયોને તેના યથાર્થ રૂપમાં વિસ્તારથી ચર્ચ્યા છે એટલે તેની ટીકા એક એક વિષય પરત્વે બૌદ્ધ વિચારસરણીનું ચિત્ર રજૂ કરે છે અને ધર્મકીર્તિના કેટલાંક મર્માળાં વાક્યોનું હાર્દ તલસ્પર્શીપણે પ્રગટ કરે છે. આ ઉપરાંત અર્ચટે એવા પણ થોડા વિષયો ચર્ચ્યા છે કે મૂળમાં જેનુ કોઈ સૂચન નથી; દા. ત. આદિવાક્ય વિશેની ચર્ચા.

[૫] હેતુબિન્દુનો પ્રભાવ અને ઉપયોગ

અર્ચટની ટીકા દ્વારા હેતુબિન્દુનો પ્રભાવ વ્યાપક રીતે ઉત્તરકાલીન સાહિત્ય ઉપર પડ્યો છે બૌદ્ધપરંપરાના વિદ્વાનો અર્ચટનો ઉપયોગ કરે એ તો સ્વાભાવિક છે, પણ બ્રાહ્મણ અને જૈન પરંપરાના સુવિદ્વાનોએ સુધ્ધા તેનો અનેકવિધ ઉપયોગ કર્યો છે. પ્રકરણપંચિકાકાર શાલિકનાથ[1] અને વ્યોમશિવ[2] ખંડન દૃષ્ટિએ તેનો ઉપયોગ કરે છે, જ્યારે વાચસ્પતિ મિશ્ર જેવા સર્વતંત્રસ્વતંત્ર દાર્શનિકે અર્ચટના વિચારોનું મૂલ્યાંકન પણ પોતાની ઢબે કર્યું હોય તેમ લાગે છે[3] ઉદયને પોતાના બધા જ ગ્રન્થોમાં ધર્મકીર્તિના અનેક ગ્રન્થો અને તેની વ્યાખ્યાઓનો ખંડનદૃષ્ટિએ મુખ્યપણે ઉપયોગ કર્યો છે,[4] એટલે એમાં સટીક હેતુબિન્દુનો કેટલો અને કયો ઉપયોગ થયો છે તે તારવવું સરલ નથી, છતાં એવો સંભવ લાગે છે કે ઉદયને અર્ચટની ટીકા અવશ્ય જોઈ હશે એ ગમે તેમ હો, પણ વધારે ચોકસાઈથી હેતુબિન્દુનો બૌદ્ધેતર પરંપરા ઉપર પ્રભાવ દર્શાવવો હોય તો જૈન તર્કવાઙ્મય તરફ વળવું પડે દિગમ્બર–શ્વેતામ્બર બન્ને જૈન તાર્કિકોએ અર્ચટનું ખંડન પણ કર્યું છે અને તેનો પોતપોતાની રીતે ઉપયોગ પણ કર્યો છે અકલંક[5] અને તેના ટીકાકાર અનન્તવીર્ય,[6] અષ્ટસહસ્રીકાર વિદ્યાનન્દ[7], પ્રમેયકમલમાર્તણ્ડપ્રણેતા પ્રભાચંદ્ર અને અકલંકકૃત ન્યાયવિનિશ્ચયનો અલંકાર રચનાર વાદિરાજ[8] તથા ન્યાયમંજરીકાર જયન્ત ભટ્ટ—એ બધાએ અર્ચટ દ્વારા હેતુબિન્દુનો ઉપયોગ છૂટથી કર્યો છે

---

૧ प्रकरणपंचिकापूर्ति-मीमांसाजीवरक्षा पृ ३

૨. વ્યોમવતીમાં "बाधाविनाभावयोर्विरोधात्" (પૃ. ૫૬૫) એ હેતુબિન્દુનું વાક્ય આવે છે.

૩. तात्पर्यटीका (विजया), पृ २, ३, ३९० आदि.

४. न्यायकुसुमाञ्जलि (वृत्ति) का ६, आत्मतत्त्वविवेकगत क्षणभंग चर्चा आदि

५ सिद्धिविनिश्चय स्वोपज्ञवृत्ति पत्र ५०७ अ, लघीयस्त्रय–न्यायकुमुद. पृ १३८.

६ सिद्धिविनिश्चयटीका पृ. २०.

७. तत्त्वार्थश्लो० पृ. ४, २१२.

८. न्यायविनिश्चयटीका—'हेतुबिन्दुस्तद्विवरणं' (पृ ३४५ ब), 'हेतुबिन्दुव्याख्यानेनाऽर्चटेन' (पृ ४८९ अ), 'अर्चटेनोक्तं हेतुबिन्दौ' (पृ. ५०० अ).

શ્વેતામ્બર આચાર્યોમાં પ્રસિદ્ધ આચાર્ય હરિભદ્ર[1] યાકિનીસૂનુથી હેતુબિન્દુનો ઉપયોગ શરૂ થાય છે. અને પછી તો અર્ચટ દ્વારા તે ઉપયોગ એટલો બધો વ્યાપક બને છે કે સિદ્ધર્ષિ,[2] સન્મતિ ટીકાકાર અભયદેવ,[3] તર્કવાર્તિકકાર શાંતિસૂરિ[4], સ્યાદ્વાદરત્નાકરકાર વાદી દેવસૂરિ[5], આચાર્ય હેમચંદ્ર[6] જેવા પ્રસિદ્ધ પ્રસિદ્ધ તાર્કિકોએ જાણે અર્ચટને પોતાના અભ્યાસનો વિષય જ બનાવ્યો હોય તેમ ક્ષણભર લાગે છે. મલયગિરિ જેવા બહુશ્રુત લેખકે અર્ચટકૃત સ્યાદ્વાદના ખંડનનું નિરસન શબ્દશઃ કર્યું છે[7] એ જ રીતે શ્રીચન્દ્રે[8] ઉત્પાદાદિસિદ્ધિત્રયમાં એ જ કામ કર્યું છે. આ રીતે જૈન વિદ્વાનોના અભ્યસનીય અને અવલોકનીય ગ્રન્થોમાં અર્ચટની ટીકાનુ પ્રધાન સ્થાન રહેલુ. તેથી જ આપણે જોઈએ છીએ કે જ્યારે અત્યાર લગીમાં કોઈ પણ સ્થળેથી અર્ચટની ટીકા ઉપલબ્ધ ન થઈ ત્યારે પણ પાટણ જેવા જૈનભંડારપ્રધાન જૂના શહેરમાંથી એની જૂની તાડપત્રીય એકમાત્ર નકલ મળી આવી સંભવ છે કે બીજા પણ કોઈ જૈન ભંડારોમાથી એની અન્ય પ્રતિ મળી આવે

આભાર દર્શન

આ મથાળા નીચે મારે અનેકોનો આભાર માનવાનો છે જે ભંડારની પ્રતિ મને મળી તેના તત્કાલીન વ્યવસ્થાપકોનો હુ આભારી છુ કે જેમણે પૂર્ણ ધીરજથી એ પ્રતિ મને ધીરી. પ્રવર્તક શ્રી. કાતિવિજયજીના સાહિત્યનિષ્ઠ પ્રશિષ્ય મુનિ શ્રી પુણ્યવિજયજીનો ઉદાર સાથ મળ્યો ન હોત તો અમારે માટે આગળ કામ લંબાવવાનું ભાગ્યે જ શક્ય બન્યુ હોત. એમણે જૂની દુષ્પઠ લિપિ ઉપરથી અદ્યતન સુપઠ લિપિમાં એવો સુદર આદર્શ તૈયાર કરી આપ્યો કે જે લેખનકળાના અદ્યતન નમૂનારૂપે અત્યારે પણ શ્રીમદ્રાજચંદ્ર જ્ઞાનસંગ્રહમા મોજૂદ છે, અને જેના ઉપરથી પ્રેસકોપી કરવાનું કામ બહુ જ સરલ બન્યું શ્રીયુત પુરુષોત્તમ આઈ. તારકસની મદદ તો અસાધારણ રીતે ઉપકારક નીવડી છે. એમણે શરૂઆતથી ટિબેટનનો અભ્યાસ કરી અર્ચટની ટીકાને ટિબેટન અનુવાદ સાથે મેળવી જે અનેકવિધ ઉપયોગી કામ કરી

---

૧ અનેકાન્તજયપતાકા.

૨. ન્યાયાવતારવિવૃતિ પૃ. ૩.

૩ સન્મતિટીકા પૃ ૧૭૧, ૫૫૬, ૫૬૮.

૪. ન્યાયાવતારવાર્તિકવૃત્તિ પૃ. ૧૨.

૫ સ્યાદ્વાદરત્નાકર પૃ ૧૬, ૫ ૨૧.

૬ પ્રમાણમીમાસા પૃ ૩૮ અને તેના ટિપ્પણ પૃ ૭૮.

૭ ધર્મસંગ્રહણી ટીકા પૃ. ૧૭૭ થી.

૮. ઉત્પાદાદિસિદ્ધિ. પૃ. ૬, ૧૫, ૩૭, ૪૫, ૭૬, ૯૨, ૧૪૦, ૧૪૨ આદિ.

આપ્યુ તે થયુ ન હોત તો તાડપત્રીય સંસ્કૃત મૂળ આદર્શ, જે ઘણે સ્થળે ખંડિત અને અસ્તવ્યસ્ત સ્થિતિમાં હતો, તેવા એકમાત્ર આદર્શ ઉપરથી આ બન્યું છે તેવુ સંસ્કરણ કદી તૈયાર થઈ શક્યું ન હોત ગૂજરાત વિદ્યાપીઠના વ્યવસ્થાપકોની સહાનુભૂતિ પણ ઉપકારક નીવડી છે. જ્યારે જ્યારે જરૂર પડી ત્યારે ત્યારે તેમણે શ્રીમદ્રાજચન્દ્ર જ્ઞાનસંગ્રહમાંના મુનિ શ્રી. પુણ્યવિજયજીકૃત નવો આદર્શ અમને ધીરજપૂર્વક ધીર્યો છે શ્રી રાહુલજીની અનન્ય ઉદારતા અને અસાધારણ પુરુષાર્થનો લાભ મળ્યો ન હોત તો નેપાલના ભંડારની ખંડિત પ્રતિ અને બિહાર ઓરિસા રિસર્ચ સોસાયટીમાં સંગ્રહાયેલ ફોટોપ્રતિનો લાભ કદી જ મળત નહિ અને આ પ્રસિદ્ધ થતું દુર્વેકનુ લખાણ કોઈના હાથમાં—વાચકોના હાથમાં—ક્યારે આવત તે કહેવું કઠણ છે. મારા અન્યતમ શિષ્ય પં૦ મહેન્દ્રકુમાર 'અભયે' ફોટો વાંચવા આદિમા જે એકાગ્ર શ્રમપૂર્વક મદદ કરી છે તે અમારે માટે બહુમૂલ્ય નીવડી છે કાશી વિશ્વવિદ્યાલયના સસ્કૃત મહાવિદ્યાલયના જૈનદર્શનાધ્યાપક શ્રી. દલસુખ માલવણિયા, જે મારા પ્રિયતમ શિષ્ય અને મિત્ર છે, તેમની સતત અને અસાધારણ ખંત તેમ જ મહેનત ન હોત તો આ આખુ સંસ્કરણ આ રૂપમાં, બીજી બધી સામગ્રી હોવા છતાં, કદી જ તૈયાર થયુ ન હોત. તાડપત્રીય મૂળ પ્રતિથી માંડી દુર્વેકકૃત અનુટીકાના ફોટા વાચવા સુધીનુ સમગ્ર કામ તેમ જ જરૂર જણાઈ ત્યા નવી નકલ કરવાનું કામ અને પહેલેથી છેલ્લે સુધી બધા જ પ્રૂફો જોવા સુધારવા વગેરે સંપાદનને લગતુ યાવત ઝીણું ઝીણું કામ તેમણે જ કર્યું છે એ રીતે આખા સપાદનનો યશ તેમને જ ભાગે જાય છે. નેત્રની પરાધીનતા અને બીજાં ઘણા કારણોસર હુ ઉત્તરોત્તર લબાતુ આ કામ કદી જ શ્રી માલવણિયાની મદદ વિના પાર પાડી શક્યો ન જ હોત, અને મેં જે હેતુબિન્દુના સંપાદનનુ કામ સ્વીકારેલું તે પણ તેમના સહકારની ખાતરી વિના સ્વીકાર્યું જ ન હોત આ સંપાદનમાં શું પરિશિષ્ટો કે શુ અવતરણોની શોધ કે શું શીર્ષક, વિષયવિભાજન અને શુદ્ધીકરણ આદિ જે કાંઈ ધ્યાન ખેંચે તેવુ છે તે બધું શ્રીયુત માલવણિયાની અનન્ય સાહિત્યોપાસનાનું જ ફળ છે. ગાયકવાડ ઓરિએન્ટલ સિરીઝના મુખ્ય સપાદક શ્રીયુત બી ભટ્ટાચાર્યે પ્રસ્તુત સંપાદન માટે અમને પસંદ કર્યા અને તે કામ સોપ્યું તેથી જ આ સપાદન-યત્ન અત્યારે પૂર્ણ થયો છે આ રૂપમાંથી ઉપર નિર્દેશલ બધા જ મહાનુભાવો પ્રત્યે અમે અમારી હાર્દિક કૃતજ્ઞતા પ્રકટ કરીએ છીએ

સન્મતિતર્ક અને તેનું મહત્વ

[૨૮]

જૈન શ્રુતનો બહુ મોટો ભાગ નાશ પામ્યો છે. તે નાશનાં અનેક કારણો છે, પણ આજે તેનો જેટલો અને જે ભાગ સચવાઈ રહ્યો છે તેનુ ફક્ત એક જ કારણ છે અને તે જૈન સંઘની શ્રુતભક્તિ જૈન જનતા જ્ઞાનમાત્રને પૂજે છે, પણ શ્રુત પ્રત્યે એની ભક્તિ એટલી જાગરૂક છે કે તે વિશે લખવા જતાં તેનો મનોરમ ઇતિહાસ તૈયાર થાય માત્ર મોટી વયના સ્ત્રી-પુરુષો જ નહિ, પણ નાના કુમાર-કુમારિકાઓ સુધ્ધા શાસ્ત્રજ્ઞાન આરાધવા તપ કરે છે, એના નજીવાં સાધનોની આદરપૂર્વક પૂજા કરે છે અને એ માટે પોતાનુ સર્વસ્વ આપી દેવા તૈયાર રહે છે ચારિત્રપૂજાનુ જૈન સઘમા મોટુ સ્થાન છે, પણ તે જ્ઞાનના એક ભાગ તરીકે ચારિત્ર એ જ્ઞાનનો છેલ્લો ને પરિપક્વ અંશ જ છે. તીર્થપૂજા હોય કે ગુરુપૂજા હોય, એ બધી વિવિધ પૂજાઓની પાછળ જ્ઞાનભક્તિ જ રહેલી છે એ બધામા સત્યજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવાનો એક જ હેતુ મુખ્ય છે.

આજે વિશિષ્ટ રીતે જૈનદર્શન જીવિત હોય તો તે એક શ્રુતને આભારી છે, અને શ્રુત જીવિત હોય તો તે જ્ઞાનભક્તિને આભારી છે બુદ્ધિમાન અને દીર્ઘદર્શી જૈન આચાર્યોએ જ્યારે જોયુ કે અમુક અમુક શાસ્ત્રો વિશિષ્ટ રીતે જૈનદર્શનની પ્રભાવના કરે તેવા છે ત્યારે ત્યારે તેઓએ તે તે શાસ્ત્રોને જૈનદર્શનના પ્રભાવક કહી તેના તરફ લોકાનુરાગ કેળવ્યો, તેના અભ્યાસને ઉત્તેજન આપ્યુ, તેની પોથીઓ લખી-લખાવી તેની સાચવણીમાં ભારે ફાળો આપ્યો. આગમગ્રંથોની પ્રતિષ્ઠા તો ભગવાનની પ્રતિષ્ઠાનો એક ભાગ જ છે, પણ ત્યાર પછી રચાયેલા ઘણા શાસ્ત્રોમા સન્મતિનુ સ્થાન મુખ્ય છે. નેમિચન્દ્રસૂરિએ રચેલ પ્રવચનસારોદ્ધારની વૃત્તિમા તેના કર્તા શ્રીસિદ્ધસેન સન્મતિતર્કને અંગે જે લખે છે તે ખાસ ધ્યાન દેવા જેવુ છે તેઓ દર્શનના પ્રભાવક તરીકે ગ્રંથો જણાવતા સન્મતિને પહેલો મૂકે છે અને સાથે જ કહે છે કે એ દર્શનપ્રભાવક ગ્રંથોનું દરેક રીતે ભક્તિપૂર્વક બહુમાન કરવુ. જીતકલ્પ નામના છેદસૂત્રની ચૂર્ણિની વ્યાખ્યામાં તેના કર્તા સન્મતિતર્કને

એક મહાપ્રભાવક ગ્રંથ તરીકે વર્ણવે છે, અને તે એટલે સુધી કે તેનો અભ્યાસ કરતા કોઈ અપવાદ સેવવો પડે તો તેને પ્રાયશ્ચિત્તયોગ્ય નથી માનતા. શ્રુતજ્ઞાનની જાગ્રન્મૂર્તિ ઉપાધ્યાય શ્રીયશોવિજયજી તો એના ઉપર ફિદા ફિદા છે અને છેલ્લે શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર તથા શ્રીમાન આત્મારામજીસૂરીશ્વર સુધ્ધાં એ ગ્રંથ ઉપર ભારે મમત્વ દર્શાવે છે.

આ રીતે સન્મતિતર્કનો મહિમા જ્યાં ત્યાં ગાવામાં આવ્યો છે અને હજી ગવાય છે, ત્યારે એ જાણવુ જરૂરનુ છે કે સન્મતિતર્ક એ શુ છે? તેનું મહત્ત્વ શા માટે છે? અને બીજાં શાસ્ત્રોની સરખામણીમાં એનુ સ્થાન શું છે? વગેરે વગેરે આ હેતુથી પ્રેરાઈ પ્રસ્તુત લેખ લખવા પ્રેરણા થઈ છે.

નામવિધાન

જૈન સાહિત્ય અને સમાજમાં 'સમ્મતિતર્ક' એ જ નામ બહુ જાણીતુ છે, પણ છેલ્લી માહિતી પ્રમાણે તેનુ ખરું નામ 'સન્મતિતર્ક' લાગે છે, ઘણી અને જૂની હસ્તલિખિત પ્રતિઓમાં 'સન્મતિતર્ક' એવો જ ઉલ્લેખ મળે છે. એ ઉલ્લેખ ઉપર વિચાર કરતા જણાય છે કે 'સંમતિ' નહિ પણ 'સન્મતિ' નામ ખરુ હોવુ જોઈએ, કારણ કે ધનજયનામમાળામા ભગવાન મહાવીરના જે નામો ગણાવ્યા છે તેમાં એક નામ સન્મતિ એવુ છે. તેથી ચોખ્ખુ લાગે છે કે આચાર્ય શ્રી સિદ્ધસેને પોતાના પ્રૌઢ ગ્રંથરત્નને ભગવાનના નામથી અંકિત કરી સન્મતિતર્ક એ જ નામ આપ્યુ હશે અને તે દ્વારા સૂચિત કર્યું કે આ મારા રચેલા પ્રકરણનો વિષય કલ્પિત અગર તો સાધારણ નથી, પણ હું જે કહું છું તે તો ભગવાન મહાવીરનો તર્ક છે એટલે તેમનો સિદ્ધાંત છે અથવા ભગવાન મહાવીરનો મત છે.

પ્રવચનસાર સાથે સરખામણી

નામની બાબતમા આટલુ સ્પષ્ટીકરણ કરી હવે તે ગ્રંથ અને તેના વિષય તરફ વળીએ એ ગ્રંથ પ્રાકૃતભાષામા છે એના ત્રણ ભાગો છે દરેક ભાગ કાંડને નામે પ્રસિદ્ધ છે, એટલે એ ગ્રંથ ત્રિકાંડ છે રચના ગદ્ય નહિ, પણ પદ્યમય છે. પદ્યો બધા આર્યા છંદબદ્ધ છે. પહેલા કાંડમાં ૫૪, બીજા કાંડમા ૪૩ અને ત્રીજા કાંડમા ૭૦ પદ્યો છે કુલ પદ્યો ૧૬૭ છે

આ ગ્રંથ બાદ રચનામા દિગંબરાચાર્ય કુંદકુંદના પ્રવચનસાર જેવો છે. પ્રવચનસારના પણ ત્રણ ભાગ છે તેમાં પહેલા ભાગમા ૯૨, બીજા ભાગમા

૧૦૮ અને ત્રીજા ભાગમાં ૭૫, કુલ ૨૭૫ પ્રાકૃત આર્યાબદ્ધ પદ્યો છે. પ્રવચનસારના ત્રણે ભાગો કાંડ નહિ, પણ જૂની ઢબના શ્રુતસ્કંધ એવા નામે પ્રસિદ્ધ છે.

પ્રાકૃતભાષા, આર્યાછંદ અને ત્રણ ભાગમાં વહેંચણી એટલુ બાહ્ય સામ્ય જોયા પછી હવે એ બન્ને ગ્રંથોના આંતર સ્વરૂપ તરફ વળીએ.

પ્રતિપાદ્ય વિષય

પ્રવચનસારમાં ચારિત્રનુ પ્રતિપાદન ખાસ એક અધિકારમા કરવામાં આવ્યું છે, જ્યારે સન્મતિતર્કમાં એ વિષય લીધો જ નથી. સન્મતિતર્કમાં આખું એક કાડ નયની ચર્ચાથી ભર્યું છે, જ્યારે પ્રવચનસારમાં એ વિષય સ્પર્શાયો જ નથી. એમાં માત્ર સપ્તભંગીનો અતિટૂંકમાં ઉલ્લેખ છે, ત્યારે સન્મતિમાં એની પૂર્ણ અને વિશદ ચર્ચા છે, પ્રવચનસારમાં આત્મિક પરિણામના વિકાસને સૂચવતી જે શુભ, અશુભ અને શુદ્ધ પરિણામની હૃદયંગમ ચર્ચા છે તે સન્મતિમાં નથી. બન્ને ગ્રંથોમાં જ્ઞાન અને જ્ઞેયની ચર્ચા તો છે જ, પણ એમાં ઘણું અ તર છે પ્રવચનસાર મુખ્યપણે પ્રત્યક્ષ અને પરોક્ષ જ્ઞાનનો તફાવત જૈન દૃષ્ટિએ સમજાવે છે અને જ્ઞાનને લગતી પ્રાચીન જૈન પરંપરાને બીજા દર્શનોથી જુદી પાડી કાંઈક તર્કપદ્ધતિએ સમજાવવા પ્રયત્ન કરે છે, ત્યારે સન્મતિમાં એ વિષય જુદી જ રીતે ચર્ચાયો છે. એ પોતાના સમય સુધીમાં ચાલ્યા આવતા જ્ઞાનને લગતા બધા વાદોને એકે એકે લઈ તેની ઊંડી માર્મિક અને અદૃષ્ટપૂર્વ સમીક્ષા તેમ જ પરીક્ષા કરે છે અને એમાં દિવાકરશ્રી પોતાનો તદ્દન સ્વતંત્ર તેમ જ નવો વાદ મૂકે છે તેમ જ સ્થાપે છે. તે વાદ એટલે કેવળજ્ઞાન–કેવળદર્શન વચ્ચે ભેદ ન માનવાનો. આ વાદ સ્થાપતાં તેઓશ્રીએ પ્રાચીન વાદોને બહુ ઝીણવટથી છણ્યા છે અને તેમાં તર્કદૃષ્ટિએ દેખાતા દોષોને દર્શાવ્યા છે એ જ રીતે પ્રવચનસારમાં છે તે કરતાં સન્મતિની જ્ઞેયચર્ચા જુદી જાતની છે. પ્રવચનસારમા જૈન પરંપરા પ્રમાણે મનાતાં ૭ દ્રવ્યોનુ આગમિકશૈલીએ શ્રદ્ધાગમ્ય વર્ણન છે, જ્યારે સન્મતિમાં એમ નથી એ તો વિસ્તારથી એટલુ જ વર્ણવે છે કે જૈનદૃષ્ટિએ જ્ઞેયતત્ત્વનુ સ્વરૂપ કેવુ માનવું જોઈએ. એ સ્થાપતાં એણે મૃદુતાથી વિરોધી દૃષ્ટિઓની ખૂબ ઝાટકણી કાઢી છે

પ્રતિપાદનશૈલી

પ્રવચનસારની શૈલી મુખ્યપણે આગમિક છે. એમા તાર્કિક શૈલીની છાયા છે, જ્યારે સન્મતિમાં શુદ્ધ તાર્કિક શૈલી પ્રધાનપદે છે. કહેવાની વસ્તુ

ભલે ગમે તે હોય, પણ એને તર્કની તીક્ષ્ણ શાણ ઉપર ચઢાવી અને બુદ્ધિની કસોટીએ કસીને જ દિવાકરશ્રી કહે છે. પ્રવચનસારની શૈલી આગમિક એટલા માટે છે કે તેમાં તત્ત્વનુ નિરૂપણ કરતાં કરતાં ડગલે ને પગલે ઉપદેશ દેવાતો જાય છે. તે સાંભળતાં એમ ભાન થાય છે કે જાણે આપણે ધર્મસ્થાન કે ઉપાશ્રયમાં બેસી કોઈ મહામના નિર્ગ્રંથના મુખેથી શ્રદ્ધાપૂર્વક ઉપદેશમિશ્રિત જૈનતત્ત્વ સાભળી રહ્યા છીએ; ત્યારે સન્મતિની બાબતમા એમ નથી. એમાં ઉપદેશનો છાંટોયે નથી એમાં તો શુદ્ધ જૈન તત્ત્વો પોતાની ઢબે દિવાકરશ્રી પ્રવાહબદ્ધ વર્ણવે જ જાય છે. એને સાભળતા એમ લાગે છે કે જાણે કોઈ પ્રતિભામૂર્તિ તાર્કિકશિરોમણિના મુખેથી જૈન તત્ત્વો સાભળી રહ્યા છીએ.

પ્રસ્તુત બન્ને ગ્રંથો જૈન તત્ત્વજ્ઞાન અને સંપ્રદાયના પોષક છે, છતાં બન્નેમાં મોટો તફાવત છે. એક જૈનમત સાથે સાથે તેના એક ફાંટાનુ પોષણ કરે છે, જ્યારે બીજો કોઈ ફાંટાના પોષણમા ન ઊતરતા માત્ર જૈન તત્ત્વજ્ઞાનને જ સ્થાપે છે અને વ્યવસ્થિત કરે છે પ્રવચનસારનુ ચારિત્રવર્ણન દિગંબર શાખાનું પોષણ કરે છે, પણ સન્મતિને કોઈ શાખાની કશી જ પડી નથી. એ તો ભગવાન મહાવીરની દૃષ્ટિ સ્પષ્ટ કરવા, તેને વ્યવસ્થિત રીતે સમજાવવા અને તર્ક ઉપર તેની માંડણી કરવા મથે છે.

બૌદ્ધ અને વૈદિક ગ્રંથો સાથે સરખામણી

દિવાકરશ્રીના સમયનો સવાલ હજી વિચારવા જેવો હોવાથી કાળના પૌર્વાપર્યનો વિચાર છોડી માત્ર સરખામણી માટે કેટલાક પ્રાચીન, બૌદ્ધ અને વૈદિક ગ્રંથો લઈએ. પ્રવચનસાર જોતા તેના પ્રણેતા આચાર્ય કુંદકુંદના માનસમાં ત્રણ જૈનેતર દર્શનોના અભ્યાસની છાપ પડેલી દેખાય છે અને તે પણ સ્થૂલ : સાંખ્ય, વૈશેષિક અને બૌદ્ધ એ ત્રણ ઉપરાત ન્યાય, વેદ, ઔપનિષદ આદિ બીજાં તત્કાલીન પ્રસિદ્ધ જૈનેતર દર્શનોના અભ્યાસની ઊંડી અને વિસ્તૃત છાપ દિવાકરશ્રીના માનસમા પડેલી છે, એ તેઓશ્રીની સન્મતિ, બત્રીસીઓ વગેરે કૃતિઓ જોતાં સ્પષ્ટ થાય છે (ક) સાંખ્યાચાર્ય ઈશ્વરકૃષ્ણની કારિકાઓ લો અને સન્મતિ સાથે સરખાવો ભાષા અને સંપ્રદાયનો ભેદ બાદ કરીએ તો એ બેમા છંદનુ તેમ જ પોતપોતાના વિષયને તર્કપદ્ધતિએ ગોઠવવાનું સામ્ય નજરે પડશે (ખ) શૂન્યવાદી બૌદ્ધાચાર્ય નાગાર્જુનની મધ્યમકકારિકા અને વિજ્ઞાનવાદી વસુબન્ધુની વિંશિકા તથા ત્રિંશિકા સાથે દિવાકરશ્રીની કૃતિઓ સરખાવતાં એમ લાગે છે કે એ આચાર્યો ઉપર એકબીજાની અસર અવશ્ય છે. (ગ)

વૈશેષિકસૂત્ર અને ન્યાયદર્શનના અભ્યાસે તો સન્મતિની રચનામાં દિવાકરશ્રીને ખાસ પ્રેરણા આપ્યાનુ ભાન થાય છે. તેથી એ દર્શનોનાં સૂત્રો અને સન્મતિ વચ્ચે ભાષા તેમ જ ગદ્ય–પદ્યનો ભેદ હોવા છતાં શુદ્ધ તર્કદૃષ્ટિના ઉપયોગનુ એમા મુખ્ય સામ્ય છે.

રચનાનો ઉદ્દેશ

દિવાકરશ્રીએ સન્મતિતર્ક એ ઉદ્દેશથી રચ્યો હોય તેમ લાગે છે (૧) સ્વસંપ્રદાયમાં વિચારશક્તિ અને તર્કબળ કેળવી પ્રજ્ઞાનો વિકાસ કરવો, અને (૨) જૈનેતર દર્શનના વિદ્વાનોમાં જૈન મૂળ તત્ત્વોની પ્રતિષ્ઠા કરવી.

જૈન નિર્ગ્રંથો મૂળથી જ જ્ઞાનપ્રિય છતા ત્યાગપ્રધાન હતા તેથી તેઓમાં આત્મશ્રદ્ધાનુ તેજ હતું, પણ તે કાળક્રમે ધીરે ધીરે સ્થૂલ માન્યતા અને સ્થૂલ રૂઢિઓમાં જકડાઈ સંકુચિતપણામાં બદલાઈ ગયું હતું તેથી આગમ-પાઠી સાધુસંઘ મોટેભાગે શબ્દસ્પર્શી થઈ ગયો હતો અને તેથી ભગવાનના વ્યાપક સિદ્ધાતો દેશ–કાળ પ્રમાણે ઘટાવી તેનો વિસ્તાર કરવાને બદલે તેઓ નવી પરિસ્થિતિમાત્રથી ભડકતા અને નવા વિચારો અને વ્યવહારો તેમને તદ્દન અસહ્ય થઈ પડતા. કોઈ ચાલતી પ્રથા બહારનો વિચાર મૂકે કે મૂળ વસ્તુને નવા રૂપમાં સમજાવે તો તેને તેઓ શ્રદ્ધા વિનાનો–સમ્યગ્દર્શન વિનાનો–કહી વગોવતા વિચાર અને આચારનુ જે વિશિષ્ટ બળ શ્રમણસઘમા હતુ તેનો ઉપયોગ માત્ર પ્રાચીનતાની રક્ષા કે રૂઢિ સાચવવામા જ થતો આ સ્થિતિ દિવાકરશ્રીને ખટકી તેઓને લાગ્યુ કે ભગવાનના ઉદાર અને ગભીર સિદ્ધાન્તો બહુ જ વ્યાપક બની શકે તેમ છે તે સિદ્ધાન્તો દેશ–કાળના બંધન-થી પર હોવાને લીધે તેનો પ્રજ્ઞા વડે બહુ જ વિસ્તાર કરી શકાય તેમ છે અને તેમા જૂનું કે નવુ જે કાંઈ વાસ્તવિક હોય તે બધુ સમાવવાનો અવકાશ છે. ફક્ત તે માટે સૂક્ષ્મ વિચાર કેળવવો જોઈએ, તર્કશક્તિ ખીલવવી જોઈએ અને પ્રજ્ઞાનો વિકાસ કરવો જોઈએ દિવાકરશ્રીની પ્રતિભાને ભગવાનના સિદ્ધા-ન્તોની ખૂબીઓનુ ઊડું અને સ્પષ્ટ દર્શન થયુ હતુ, જ્યારે બીજો શ્રમણવર્ગ એ વસ્તુ સાભળવા સુધ્ધા તૈયાર ન હતો, ઊલટું, ભગવાનના જ સિદ્ધાંતની પોષક, પણ માત્ર નવી એકાદ દલીલ સાભળી તે છ છેડાઈ જતો અને તે નવા વિચારક ઉપર તેની નવી વિચારણાને અગે આક્ષેપ મૂકતો કે તમે તો સ્વસિદ્ધાન્તની પ્રરૂપણા નહિ પણ તીર્થંકરની અવજ્ઞા–આશાતના કરો છો. શાસનની આશાતના કે તીર્થંકરની આશાતનાનો આરોપ જૈન પરપરામાં

નાસ્તિકપણાના આરોપ કરતાં પણ વધારે ભારે મનાતો આવ્યો છે, એ વાત સ્મરણમાં રાખવી જોઈએ તેથી એવા આરોપ મૂકનાર વર્ગને દિવાકરશ્રીએ સ્પષ્ટ સંભળાવી દીધુ કે નયોનો વિવેક અને તેનું સમુચિત જ્ઞાન એ જ સ્વસિદ્ધાન્તની પ્રરૂપણા છે અને બીજુ બધુ તીર્થંકરની આશાતના છે કેટલાક દિવાકરશ્રીના નવા તર્કવાદ સામે થઈ કહેતા કે તમે કહો છો તે સૂત્રમા ક્યા લખ્યુ છે? અને સૂત્રના શબ્દ વિરુદ્ધ જવુ એ તો તીર્થંકરની આશાતના છે. એવું કહેનારના મતની સમીક્ષા કરતા દિવાકરશ્રી તેઓને ઉદ્દેશી કહે છે કે તીર્થંકરની આશાતનાથી ડરનારા અને સૂત્રાક્ષરને વળગી રહેનારા કેટલાક આચાર્યો કેવળજ્ઞાન–કેવળદર્શનનો ભેદ માને છે ઇત્યાદિ દિવાકરશ્રીના આ કથનમાં કટાક્ષ એ લાગે છે કે તીર્થંકરની આશાતનાના ભયથી માત્ર સૂત્રાક્ષરને વળગી રહેવું અને તેનુ મર્મ ન વિચારવુ કે તર્ક ન વાપરવો એ ક્યાનો ન્યાય? ઊલટુ, વિચાર અને તર્કને અયોગ્ય રીતે દાબી દેવામા જ તીર્થંકરની આશાતના છે. દિવાકરશ્રી કેવળજ્ઞાન–કેવળદર્શનના અભેદનો પોતાનો પક્ષ સ્થાપતા આગમમા દેખાતા તેથી વિરુદ્ધ પાઠોનું સમાધાન કરતા કહે છે કે સૂત્રોમા અભેદપક્ષ વિરુદ્ધ જે જે કથનો છે તે અન્ય દર્શનોનાં મંતવ્યોનુ માત્ર નયદૃષ્ટિએ વર્ણન છે, સ્વસિદ્ધાન્ત નથી માટે સૂત્રોનુ વ્યાખ્યાન કરતી વખતે માત્ર શબ્દસ્પર્શથી કામ ન ચાલે ખરો જાણકાર હોય તો તે પૂર્વાપર અર્થની ઊંડી વિચારણા કરીને જ સૂત્રાર્થનું કથન કરે, એમ ને એમ નહિ. વળી, જેઓને નવી વિચારણામા મિથ્યાદૃષ્ટિની ગંધ આવતી તેઓને ઉદ્દેશી દિવાકરશ્રી કહે છે કે મેં જે રીતે કહ્યું છે તે રીતે જિનકથિત તત્ત્વો ઉપર શ્રદ્ધા રાખનારનુ જ્ઞાન એ જ સમ્યગ્દર્શન છે તત્ત્વોનુ વાસ્તવિક જ્ઞાન હોય તો સમ્યગ્દર્શન નિયમથી આવી જાય છે, પણ વાસ્તવિક જ્ઞાન ન હોય તો સમ્યગ્દર્શન શી રીતે આવે? ખરી રીતે સમ્યગ્જ્ઞાન એ જ સમ્યગ્દર્શન છે તેથી એવુ જ્ઞાન મેળવવાના પ્રયત્ન વિના સમ્યગ્દર્શનનુ અભિમાન રાખવુ અને એવા જ્ઞાન માટે પ્રયત્નશીલને મિથ્યાદૃષ્ટિ કહેવો એ ક્યાંનો ન્યાય? જેઓ સૂક્ષ્મ વિવેચના કર્યા વિના જ આગમનું જ્ઞાન મેળવતા અને પોતાને આગમજ્ઞ માનતા તેઓને તેનો(?) કહે છે કે જુદી જુદી નયદૃષ્ટિવાળાં સૂત્રોને માત્ર ભણી જેઓ પોતાને સૂત્રધર કહેવડાવવામા સંતોષ માને છે અને એ નયવાદની યોગ્ય મીમાંસા નથી કરતા તેઓ મૂઢ છે સંપૂર્ણ નયવાદનું જ્ઞાન એ જ નિર્દોષ સમ્યગ્દર્શન છે; એ વિનાના માત્ર સૂત્રોના(?) પોતાની પ્રશંસા કરતા કરતા છેવટે નષ્ટ થાય છે કેટલાક પોતાને જ સમ્યક્ત્વ અને સિદ્ધાન્તમાની દિવાકરશ્રી [illegible]

કહેતા. તેઓને લક્ષીને દિવાકરશ્રી કહે છે કે, ભાઈઓ! માત્ર સિદ્ધાંતજ્ઞ થવાથી તેની પ્રરૂપણા કરવા જેટલી સ્થિરબુદ્ધિ નથી આવી શકતી વળી આગળ વધી તેઓ કહે છે કે માત્ર સૂત્રપાઠથી અર્થનો ઠીક બોધ નથી થતો એવો બોધ કઠિન નયવાદની અપેક્ષા રાખતો હોવાથી દુર્ગમ છે. તેટલા માટે સૂત્રપાઠી દરેક જણે અર્થજ્ઞાન મેળવવા પ્રયત્નશીલ થવું જે આચાર્યો અશિક્ષિત અને છતાં ધૃષ્ટ છે તેઓ ભગવાનની આજ્ઞાને અવગણે છે છેવટે કેટલાકની બહારની ધમાલ અને મોટપનો દાવો જોઈ દિવાકરશ્રી દુઃખપૂર્વક કહે છે કે જેઓ વિચાર વિના જ ઘણાં પોથાં વાંચી પોતાને બહુશ્રુત માને છે, જેઓ મોટા શિષ્યપરિવારને લીધે પોતાને બહુસમત માનવાની ભૂલ કરે છે, તેઓ શાસ્ત્રમાં સ્થિરમતિ ન થતા ઊલટા સિદ્ધાંતદ્રોહી બને છે.

દિવાકરશ્રીના આટલા પ્રાસંગિક ઉદ્ગારોથી એ સ્પષ્ટ થાય છે કે સન્મતિની રચના એ મુખ્યપણે શ્રમણ સંઘમાં પ્રજ્ઞાબળ પ્રેરવા માટે થયેલી છે, પરન્તુ એ ઉપરાંત એ રચનાનો બીજો પણ ઉદ્દેશ હતો અને તે એ છે કે જૈન તત્ત્વોનું જૈનેતર વિદ્વાનોમાં જ્ઞાન ફેલાવવું અને જેઓ જૈન સિદ્ધાન્તો ઉપર આક્ષેપો મૂકતા તેઓને સચોટ ઉત્તર આપવો આપણે સન્મતિની નય, જ્ઞાન અને જ્ઞેયની પ્રરૂપણાઓમાંથી નય અને જ્ઞેયની પ્રરૂપણાઓમા સ્પષ્ટ જોઈ શકીએ છીએ કે એ બીજો ઉદ્દેશ સિદ્ધ કરવા દિવાકરશ્રીનુ ખાસ લક્ષ્ય હતુ તેથી જ તેઓએ નયવાદનુ સુદર પૃથક્કરણ કરી ઉપલબ્ધ તત્કાલીન સમગ્ર દર્શનોને સ્યાદ્વાદની સાંકળની કડીઓ જેવા ભિન્ન ભિન્ન નયોમા યોગ્ય રીતે ગોઠવ્યા છે અને તે રીતે તેની મહત્તા આંકી છે. જે દર્શનો માત્ર પોતાની પ્રરૂપણા સિવાય બીજી પ્રરૂપણાઓને ઘટતું સ્થાન નથી આપતા તે બધાને તેઓએ એકતરફી અને અધૂરાં સાબિત કરવાનો ખાસ પ્રયત્ન કર્યો છે અને નયવાદનુ તત્ત્વજ્ઞાનના પ્રદેશમાં કેવુ સ્થાન છે એ સમજાવવા પ્રબળ પુરુષાર્થ દાખવ્યો છે. જેઓ વગર સમજ્યે અનેકાતનો ઉપહાસ કરતા તેઓને તેનું સ્વરૂપ સમજાવવા આકર્ષક ચર્ચા કરી છે અને છેવટે કહ્યુ છે કે જેના વિના વ્યવહારનું એક પણ કામ સિદ્ધ નથી થઈ શકતું એવા અનેકાતવાદને નમસ્કાર હો

બારીકીથી જોતા ખરેખર એમ લાગે છે કે નય અને અનેકાતવાદને સ્પષ્ટ સમજાવવા અને જૈન તત્ત્વજ્ઞાનની એ વિશેષતાને સર્વગમ્ય કરવા સૌથી પહેલા બુદ્ધિ અને તર્કસિદ્ધ જો કોઈ પ્રયત્ન થયો હોય તો તે દિવાકરશ્રીનો જ પ્રયત્ન છે દિગબરાચાર્ય સમંતભદ્રની આપ્તમીમાસા અને શ્વેતાબરાચાર્ય હરિભદ્રની અનેકાતજયપતાકા વગેરે કૃતિઓ એ પાછળના પ્રયત્નો છે

દિવાકરશ્રીનો અને સન્મતિનો પ્રભાવ

વીર અને વિદ્વાન પુરુષની પ્રભા કાંઈ પોતાના જ કુલને વ્યાપીને અટકતી નથી; એ તો સહસ્રકિરણ સૂર્યની પેઠે બધી દિશાઓને ઝગઝગાવી મૂકે છે. દિવાકરશ્રી પોતાની પરંપરામાં તો ગવાયા જ છે, પણ એમના તેજોબળથી આકર્ષાયેલા બીજા બીજા વિદ્વાન આચાર્યોએ પણ એમનું ગુણગાન કરવું વિસાર્યું નથી. હરિવંશપુરાણના કર્તા મહાકવિ જિનસેનાચાર્ય (પ્રથમ) પોતાના એ ગ્રંથની પ્રસ્તાવનામાં જ્યાં મોટા મોટા પ્રભાવશાળી આચાર્યોનું અને કવિઓનું સ્મરણ કરે છે ત્યાં તેમણે અત્યંત આદર સાથે દિવાકરશ્રીને પણ સ્તવેલા છે એ ઉપરાંત આદિપુરાણના પ્રણેતા બીજા જિનસેનસૂરિ, સિદ્ધિવિનિશ્ચયના ટીકાકાર અનંતવીર્ય અને પંડિત લક્ષ્મીભદ્ર વગેરે દિગંબર પંડિતોએ પોતપોતાની કૃતિઓમાં દિવાકરશ્રીના નામને અતિ ઉચ્ચ સ્થાને સ્થાપેલું છે. દિવાકરશ્રીની જેમ એમની કૃતિઓનો પણ કાંઈ ઓછો પ્રભાવ વિસ્તરેલો નથી. તત્ત્વાર્થરાજવાર્તિકના પ્રણેતા ભટ્ટ અકલંકદેવે દિવાકરશ્રીના એક પ્રસિદ્ધ પદ્ય દ્વારા પોતાના વાર્તિકને શોભાવ્યું છે. તત્ત્વાર્થશ્લોકવાર્તિકના કર્તા શ્રી. વિદ્યાનંદ સ્વામી અપરનામ પાત્રકેસરીજીએ એ વાર્તિકની વ્યાખ્યામાં પોતાના વચનના દૃઢીકરણ માટે સન્મતિની ગાથાને ઉદ્ધરીને સન્મતિના પ્રામાણ્યનું બહુમૂલ્ય આંકી બતાવ્યું છે. સિદ્ધિવિનિશ્ચય ટીકામાં પણ આચાર્ય અનંતવીર્ય સન્મતિની ગાથાને વિસારતા નથી દિવાકરશ્રીની કૃતિનો પ્રભાવ કાંઈ આટલેથી જ અટક્યો નથી, પણ વિશેષ વિચારતા એમ પણ ભાસે છે કે પ્રસિદ્ધ તાર્કિક આચાર્ય અકલંક ભટ્ટની લઘીયસ્ત્રય એ જાણે સન્મતિનું પ્રતિબિંબ જ ન હોય! આમ ચારે કોર દિવાકરશ્રી અને સન્મતિનો પ્રભાવ વિસ્તરેલો જોઈએ છીએ, ત્યારે આ એક નવાઈ જેવું લાગે છે કે એમની સન્મતિ અને ન્યાયાવતાર સિવાયની બીજી કોઈ કૃતિ ઉપર કોઈએ સાધારણ ટિપ્પણી સરખી પણ કરી નથી સંભવ છે કે સિદ્ધસેનની તર્કસમીક્ષારૂપ ચિનગારીને લીધે લોકો ભડક્યા હોય અને તેમના પ્રતિભાપૂર્ણ પાંડિત્યને લીધે મુગ્ધ થયા હોય એથી તેઓએ દિવાકરશ્રી અને તેમની કૃતિને ભલે અભિનંદી હોય, પણ પેલી ભડકામણને લીધે તેઓ દિવાકરશ્રીની મહત્તાપૂર્ણ એ બત્રીસીઓને સ્પર્શ કરતા અચકાયા હોય વધુ સંભવ તો એ છે કે એ બત્રીસીઓને કોઈ વિરલ પુરુષે જ વાંચી હશે અને એથી જ આજે એ બધી અશુદ્ધ રીતે ઉપલબ્ધ છે કે જેમાં ૩૨-૩૨ શ્લોકની માત્ર એકવીસ બત્રીસીઓ છતાં એના શુદ્ધ સંસ્કરણ માટે આમાં બત્રીસ ભાગ તો [illegible] અને બીજો પ્રયાસ થાય તે તો વળી જુદો જ રહે તો દેશમાં [illegible]

દૂર કરવા, લોકોમાં ચૈતન્ય પ્રેરવા અને સામાજિક અંધ વાતાવરણની ઠંડીને ઉડાડવા એમની એ ચિનગારીઓને ચેતવવી આવશ્યક છે

બીજી કૃતિઓ

સન્મતિ ઉપરાંત બીજી પણ કૃતિઓ દિવાકરશ્રીની છે બીજી કુલ કેટલી કૃતિઓ રચેલી તે જાણવાનુ અત્યારે કોઈ સાધન નથી, પણ એ બત્રીસ બત્રીસીઓમાં જો ન્યાયાવતાર ન આવતો હોય તો તે અને કલ્યાણમંદિર સ્તોત્ર પણ તેઓની કૃતિઓમા ગણવા જોઈએ તેઓને નામે ચડેલી કે મનાતી બીજી કેટલીક કૃતિઓ સંભળાય છે, પણ તેમાં વજૂદ જણાતુ નથી અત્યારે તેઓશ્રીની નિશ્ચિત કૃતિઓમાંથી ઉપલબ્ધ તો સન્મતિ ઉપરાત ફક્ત એકવીસ બત્રીસીઓ, ન્યાયાવતાર અને કલ્યાણમંદિર છે સન્મતિ અને બીજી કૃતિઓ વચ્ચે મુખ્ય તફાવત ભાષા અને વિષય બન્નેનો છે, કારણ કે બાકીની બધી કૃતિઓ સસ્કૃતમાં જ છે

બત્રીસીઓ કોઈ એક ખાસ વિષય ઉપર નથી, પણ તે જુદા જુદા વિષય ઉપર લખાયેલી છે. શરૂઆતની કેટલીક બત્રીસીઓમાં ભગવાન મહાવીરની અનુપમ સ્તુતિ છે, ત્યાર પછી કેટલીકમા જૈનેતર દર્શનોનુ વર્ણન છે. એકમા વાદકળાનુ મર્મ અને વળી એકમા વિવાદની દુર્દશાનુ ચિત્ર છે ન્યાયાવતારમાં જૈનન્યાયની સ્થાપના અને કલ્યાણમદિરમા પ્રભુ પાર્શ્વનાથની સ્તુતિ છે ભારતીય સમગ્ર દર્શનોનો અભ્યાસ કરવા માટે ગ્રથ રચનાની પ્રેરણા આચાર્ય હરિભદ્રને કે માધવાચાર્યને દિવાકરશ્રીની ભિન્ન ભિન્ન દર્શન ઉપરની પ્રૌઢ બત્રીસીઓમાથી મળી હોય તેમ સ્પષ્ટ લાગે છે. સન્મતિનો શુદ્ધ વિષય જૈન તત્ત્વજ્ઞાનનો છે, જ્યારે બત્રીસીઓનો મુખ્ય વિષય ભારતીય સમગ્ર દર્શનોની મીમાંસા અને તેનુ નિરૂપણ એ છે

દાન, શીલ, તપ અને ભાવના સસ્કારોમા જૈનોનુ વારસાગત ચઢિયાતાપણુ કબૂલ કરવામા આવે તો બૌદ્ધિક સસ્કારોનુ તેવુ ચઢિયાતાપણુ બ્રાહ્મણ જાતિનુ કબૂલ કરવું જોઈએ—એ વાતની સાક્ષી અનેક બ્રાહ્મણ જૈનાચાર્યોની કૃતિઓ પૂરે છે. વૈશ્ય જાતીય શ્રીમાન્ હેમચદ્ર અને યશોવિજયજી જેવા તો અપવાદ માત્ર ગણાય દિવાકરશ્રી જન્મે બ્રાહ્મણ જાતિના અને પોતાની જ પરંપરામા વ્યાકરણ, કાવ્ય, વેદ અને ઉપનિષદ ઉપરાત તત્કાલીન સમગ્ર વૈદિક દર્શનોને તેમ જ બૌદ્ધ દર્શનને પી ગયેલા એમનો સંસ્કૃતભાષા ઉપરનો કાબૂ અને કવિત્વ એમની કૃતિઓમાં ચમત્કારક રીતે નજરે પડે છે. પૂર્વાશ્રમના દાર્શનિક પ્રૌઢ અભ્યાસે તેઓની બુદ્ધિને તીક્ષ્ણ અને દર્પણ જેવી સ્વચ્છ બનાવી હતી. હૃદય તેઓનું સરળ અને ગુણપક્ષપાતી હતુ પરીક્ષાશક્તિ અને

નિર્ભયતા તેઓમાં સ્વત સિદ્ધ હતાં તેથી જૈન આગમ જોતાવેત જ બીજા કોઈ સાધારણ વિદ્વાનને ન ભાસે એવું ભગવાન–ભાવિત તત્ત્વ તેમની પ્રતિભાને ભાસ્યું અને તેમની વિરક્તવૃત્તિ સાથે નિર્ભયતા જાગી ઊઠી પરિણામે તેઓએ દીર્ઘતપસ્વી મહાવીરનું શાસન સ્વીકાર્યું અને પોતાની સમગ્ર શક્તિ એ શાસનને અર્પી, તેની વ્યવસ્થા અને પ્રભાવના કરવામાં જ પોતાના પાંડિત્યનો ઉપયોગ કર્યો.

એમની બત્રીસીઓ વાચતાં ઉપરની બધી હકીકત સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે. અહિંસા અને અનેકાંતનુ બીજાને ભાગ્યે જ સમજાયેલુ તત્ત્વ તેઓને સરળતાથી સમજાયુ તેથી જ તેઓ દીર્ઘતપસ્વીના બુદ્ધિગમ્ય તત્ત્વસિદ્ધાંતો ઉપર ફિદા થઈ એમની ગદ્ગદ ભક્તિથી સ્તુતિ કરવા મંડી ગયા એ સ્તુતિમાં પણ તેમણે પોતાનો બુદ્ધિપ્રભાવ અને તર્કવાદ સ્પષ્ટ કર્યો છે. એ સમજવા કેટલાક બત્રીસીઓમાના પદ્યો લેખના અતમા અર્થ સહિત નમૂનારૂપે આપવામાં આવે છે, જેને વાચતા વાચકોને દિવાકરશ્રીના વિશિષ્ટ વ્યક્તિત્વની ખાતરી થશે અને તેમનુ હાર્દ સમજાશે.

સન્મતિનો પ્રચાર ઓછો કેમ છે અને હવે તે વધે કેમ ?

એકંદર રીતે જોતાં પ્રવચનસાર અને સન્મતિતર્ક એ બન્ને ગ્રથો મહત્ત્વના છતા તેમા સન્મતિતર્કનું જ સ્થાન મુખ્ય આવે છે એમાંથી અભ્યાસ માટે જો એકની જ પસંદગી કરવી હોય તો સન્મતિતર્કની જ પસંદગી વિશેષ ફળદ્રુપ છે પ્રવચનસારની પદ્યરચના કરતા સન્મતિની પદ્યરચના પણ વિશેષ ધ્યાન ખેચે તેવી છે. છતાં સન્મતિતર્કના અભ્યાસી પ્રવચનસારની ઉપેક્ષા કરે તો ઘણુ જ ગુમાવે એ ચોખ્ખુ છે.

પ્રવચનસાર કરતાં સન્મતિતર્કનુ સ્થાન વિશિષ્ટ હોવા છતાં અને બન્ને મૂળ ગ્રંથોનુ પ્રમાણ લગભગ સરખું હોવા છતાં અભ્યાસક્રમમાં પ્રવચનસાર જેટલો વધારે પ્રચલિત છે તેટલો વધારે સન્મતિતર્ક અપ્રચલિત છે, તેના શાં કારણો ? એ પ્રશ્ન થવો સ્વાભાવિક છે ઉત્તર સ્પષ્ટ છે. પ્રવચનસારમાં માત્ર પ્રાચીન પદ્ધતિને અનુસરી જૈન તત્ત્વો નિરૂપવામા આવ્યાં છે, જ્યારે સન્મતિતર્કમાં તત્ત્વોનુ નિરૂપણ નવીન રીતે કરવામા આવ્યુ છે. તેથી નવીન વિચારને અને નવી પદ્ધતિને સહન ન કરી શકનાર પ્રાચીન વર્ગ એ મહત્ત્વપૂર્ણ ગ્રંથથી જોઈતો લાભ ન ઉઠાવ્યો. બીજું કારણ એ છે કે પ્રવચનસાર ઉપરની ટીકાઓ બહુ મોટી કે ભણનારને મૂંઝવે તેવી નથી, જ્યારે સન્મતિની ઉપલબ્ધ ટીકા અસાધારણ મહત્ત્વપૂર્ણ છતા અતિવિસ્તૃત અને સાધારણ

અભ્યાસી માટે અગમ્ય હોવાથી તે મૂળના અભ્યાસમાં દરેકને સાધક થતી નથી. ત્રીજું કારણ પ્રવચનસારીય મૂળ અને ટીકા જૂની-નવી દેશી ભાષાઓમા અનુવાદિત છે, તેથી ગમે તે જિજ્ઞાસુ તેને વાંચી અને ભણી શકે છે, જ્યારે સન્મતિતર્કની બાબતમા તેમ નથી તેની ટીકાની વાત તો બાજુએ રહી, પણ એવડા નાનકડાશા મૂળ ગ્રંથનો જૂની કે નવી કોઈ પણ દેશી ભાષામાં અનુવાદ આજ સુધી ક્યારેય થયો હોય એમ જાણવામા નથી, કોઈ લેખકે જૂના વખતમા એના ઉપર સક્ષિપ્ત ટબો સુધ્ધા લખ્યો નથી આ અને આનાં જેવાં બીજાં અનેક કારણોથી એ અસાધારણ ગૌરવવાળા ગ્રંથથી માત્ર ગૃહસ્થવર્ગ જ નહિ, પણ જ્ઞાન અને ત્યાગપ્રધાન ભિક્ષુવર્ગ સુધ્ધાં મોટે ભાગે અજાણ રહ્યો છે

જૈનતર્કના સ્વયભૂ સમ્રાટ ઉપાધ્યાય શ્રીયશોવિજયજીને કોણ નથી જાણતું ? તેઓશ્રી દ્રવ્યગુણપર્યાયના રાસમાં સ્પષ્ટ કહે છે કે જેઓ દ્રવ્યાનુયોગનો વિચાર નથી કરતા અને ક્રિયાકાડમા જ મચ્યા રહે છે તેઓ નિશ્ચયશુદ્ધ ચારિત્રનુ સ્વરૂપ જ નથી જાણતા એ રીતે દ્રવ્યાનુયોગ-તત્ત્વચિંતનના અભ્યાસનું મહત્ત્વ બતાવી તેઓએ કહ્યુ છે કે તે માટે સન્મતિતર્ક વગેરે ગ્રથો શીખવા અને તેનું મનન કરવું ખરેખર, ઉપાધ્યાયજીની તીક્ષ્ણ દૃષ્ટિ વસ્તુસ્થિતિનો સ્પર્શ કરે છે, પણ બહારની ધમાધમ અને ઉપરની ટાપટીપમા રસ લેનાર ત્યાગપ્રધાન ભિક્ષુવર્ગનો મોટો ભાગ એ વસ્તુથી બહુ વેગળો હોય એમ લાગે છે, નહિ તો સન્મતિતર્કના નાનામોટા અનેક અનુવાદો અનેક ભાષાઓમાં ક્યારનાયે થયા હોત અને આજે તેનુ પાઠ્યક્રમમા આકર્ષક સ્થાન હોત

ઉપાધ્યાયજીએ સન્મતિતર્કનો જેટલો છૂટથી ઉપયોગ કર્યો છે, જેટલી તે ઉપર વિચારણા કરી છે અને તે ઉપર છૂટંછવાયુ જેટલુ લખ્યું છે તે સન્મતિતર્કના સ્વાભાવિક ગૌરવને શોભાવે તેવું છે ન્યાયાંભોનિધિ વિજયાનંદસૂરીશ્વરે ઉપાધ્યાયજી પછી એ ગ્રથને સંપૂર્ણ જોયેલો છે એવા નિશ્ચિત પ્રમાણો અમને મળ્યાં છે શ્રીમદ્ રાજચંદ્રે સન્મતિતર્કનુ ગૌરવ ખૂબ ગાયું છે, પણ કોઈએ એને ભાષામા ઉતાર્યો નથી. એ ગ્રથનું વસ્તુ અને તેનું ગૌરવ સર્વગમ્ય થવા માટે તેના સરળ અનુવાદની જ ખાસ જરૂર છે જો એ ગ્રથનો મધ્યમ પરિમાણનો અનુવાદ થઈ બહાર પડી શકે તો અમારી ખાતરી છે કે જેમ તત્ત્વાર્થ સર્વત્ર પઠનપાઠનમા છે તેમ સન્મતિતર્ક પણ એ કક્ષામા આવે; એટલું જ નહિ, પણ યુનિવર્સિટી સુધ્ધામા દાખલ થાય એનો પ્રાંજલ અનુવાદ વિદેશી વિદ્વાનોને પણ ખરેખર આકર્ષશે એવો અનુવાદ

કરવાની બહુ જૂની અને બળવતી ધારણાએ જ સન્મતિતર્કના સંપાદન-કાર્યમાં અમને પ્રેર્યા છે અને બાંધી રાખ્યા છે.

ઉપલબ્ધ ટીકા અને તેનું મહત્ત્વ

અત્યારે સન્મતિતર્કની એક જ ટીકા સુલભ છે અને તે તાર્કિક અભયદેવની. આ ટીકા પહેલાં બીજી ઘણી ટીકાઓ તેના ઉપર લખાયેલી, પણ અભયદેવ પછી સન્મતિ ઉપર બીજા કોઈએ ટીકા લખી જણાતી નથી શ્રી. અભયદેવ પહેલા રચાયેલી ઘણી ટીકાઓમા એક શ્વેતાંબરાચાર્ય તાર્કિક મલ્લવાદીની અને બીજી દિગંબરાચાર્ય સુમતિની હોવાનાં પ્રમાણો મળે છે. આ બે ઉપરાત બીજી ટીકાઓ હતી કે નહિ ? અને હતી તો કોની કોની રચેલી ? વગેરે પ્રશ્નો હજી વિચારવાના બાકી જ છે. તેવી જ રીતે જેમ દિગંબરાચાર્ય અકલકે પોતાના પ્રકરણો ઉપર સ્વોપજ્ઞ લઘુવૃત્તિઓ રચેલી છે તેમ ખુદ દિવાકરશ્રીએ પોતાના સન્મતિતર્ક ઉપર નાનીમોટી કોઈ સ્વોપજ્ઞ વૃત્તિ રચેલી હોવી જોઈએ એવી પ્રો લૅાયમનની સંભાવના પણ ખાસ વિચારણીય હોઈ સશોધનનો વિષય છે. ગમે તેમ હો, પણ આજે તો એકમાત્ર શ્રી. અભયદેવની ટીકા જ સન્મતિતર્કમા પ્રવેશ કરવાનું દ્વાર છે.

ટીકાનો સામાન્ય અર્થ એટલો જ છે કે તેના વડે મૂળ ગ્રંથમા પ્રવેશ કરવો. અલબત્ત, એ રીતે જોતા ટીકા એ મૂળ ગ્રથરૂપ નગરનું દ્વાર કહેવાય, પણ પ્રસ્તુત ટીકાને માત્ર દ્વાર કહેવુ કે નહિ તે એક ખાસ સવાલ છે. સબબ એ છે કે પ્રસ્તુત ટીકા જેમ પ્રમાણમાં અતિવિશાળ છે તેમ મૂળ ગ્રંથમાં સ્પષ્ટ રીતે નહિ આવતા એવા અનેક નાનામોટા દાર્શનિક વિષયોની વિસ્તૃત અને સૂક્ષ્મ ચર્ચાથી ભરેલી છે. તેથી એ ટીકા જ એક સ્વતત્ર ગ્રથ બની ગયેલ છે એ ટીકા દ્વારા મૂળ ગ્રથમા પ્રવેશ થવાનો વાસ્તવિક સંભવ હોવાથી એ ટીકા મૂળ ગ્રથનું દ્વાર છે, છતાં એ સ્વતંત્ર અધ્યયનની યોગ્યતા ધરાવતી હોવાથી મૂળ ગ્રંથની પેઠે એક સ્વતંત્ર જ કૃતિ છે, એમ કહેવું જરાયે અસ્થાને નથી

૧૬૭ પદ્યો ઉપર પચીસ હજાર શ્લોકની પ્રસ્તુત ટીકામા શ્રી. અભયદેવસૂરિએ પોતાના સમય સુધીમાં પ્રસિદ્ધ એવા તમામ ભારતીય દાર્શનિક વિષયોનો સગ્રહ બહુ ખૂબીથી કર્યો છે, અને દરેક વાદને અતે મૂળ ગ્રંથના પ્રતિપાદ્ય વિષય અનેકાન્તવાદનું સમર્થન કરી પોતાની ટીકાને મૂળ ગ્રથના ધ્યેયની સાધક બનાવી છે.

એક રીતે પ્રસ્તુત ટીકામાની દાર્શનિક વિષયો ઉપરની લાંબી ચર્ચાઓ

સાધારણ બુદ્ધિવાળા માટે અગમ્ય હોવાથી એ ટીકા કેટલાકને બહુ ઉપયોગી ન લાગે એવો પણ સંભવ છે, છતાં ખરી રીતે એથી એનું મહત્ત્વ ઘટતું નથી, ઊલટું તે વધારે સિદ્ધ થાય છે જગતમાં કાંઈ દરેક વસ્તુ સર્વભોગ્ય જ નથી હોતી અથવા જે સર્વભોગ્ય ન હોય અગર તો અલ્પભોગ્ય હોય તેની કિંમત ઓછી એવો પણ નિયમ બાંધી ન શકાય ખરી વસ્તુસ્થિતિ એવી છે કે પ્રત્યેક વસ્તુનું મહત્ત્વ તેની કક્ષાના પ્રયોજનની સિદ્ધિ ઉપરથી જ અંકાવું જોઈએ આ દૃષ્ટિએ જોતા શ્રી. અભયદેવની ટીકાનું સ્થાન તેના ઉદ્દેશ પ્રમાણે બહુ ઊંચું છે. બૌદ્ધદર્શન, ભિન્ન ભિન્ન વૈદિક દર્શનો અને દિગંબર સંપ્રદાયના નવમા સૈકા સુધીના જે મોટા મોટા આકર ગ્રંથો હતા તે બધાના સંપૂર્ણ વિષયોનો સંગ્રહ કરી તેના ઉપર જૈનદૃષ્ટિએ ચર્ચા કરવી અને છેવટે અનેકાંતવાદનુ સ્થાપન કરવુ એ જ શ્રી અભયદેવસૂરિનો ઉદ્દેશ તે ટીકા રચવામાં હતો, અને, પ્રો લૉયમન પોતાનો અભિપ્રાય જણાવે છે તે પ્રમાણે, તે ઉદ્દેશ ખરેખર અભયદેવસૂરિએ સિદ્ધ કર્યો છે તેમના પોતાના સમય પહેલા સસ્કૃત દર્શનસાહિત્યમાં આકર ગ્રંથોનુ પ્રમાણ વધારેમાં વધારે ૧૮૦૦૦ શ્લોક જેટલું વધ્યુ હતુ. બૌદ્ધદર્શનનો મહાન્ ગ્રંથ તત્ત્વસંગ્રહ લો કે વૈદિક દર્શનોનાં વાર્ત્તિક આદિ કોઈ ગ્રંથો લો, દિગબરાચાર્યના માર્ત્તંડાદિ ગ્રંથો લો કે શ્વેતાબરાચાર્યના નયચક્ર આદિ ગ્રંથો લો એ બધા લગભગ અઢાર હજાર શ્લોકપ્રમાણ છે. તે બધાથી કદ મોટુ કરી પૂર્વકાલીન સમગ્ર ચર્ચાઓનો સમાવેશ કરી અભયદેવસૂરિએ ૨૫૦૦૦ શ્લોકપ્રમાણ ટીકા રચી અને તેને દાર્શનિક સર્વ વિષયોનું સગ્રહસ્થાન બનાવ્યું આવો મહાન ઉદ્દેશ સિદ્ધ કરવા જતાં ટીકાનું પ્રમાણ વધે એ સ્વાભાવિક છે જો એનો એટલો વિસ્તાર કરવામાં તેઓએ કૃપણતા કરી હોત તો દશમા સૈકા સુધીના ભારતીય સમગ્ર દાર્શનિક વિષયોની વિકસિત ચર્ચા એક સ્થળે આપણને ભાગ્યે જ જોવા મળત. તેથી ટીકાનો વિસ્તાર એ એનું ખરું મહત્ત્વ છે, કારણ કે તેથી જ તેનો ઉદ્દેશ સધાય છે.

અગિયારમા સૈકા પછી શ્વેતાબર સાહિત્યમાં એવા પણ ગ્રંથો રચાયા છે કે જે કદમા પ્રસ્તુત ટીકા કરતાં ત્રણ ગણા છે, છતાં એ મહાકાય ગ્રંથો અભયદેવસૂરિના સર્વસગ્રહના ઋણી છે, કારણ કે પ્રસ્તુત ટીકામા સગૃહીત થયેલ વિષયો તેમને સરળતાથી મળી ગયા છે એક બીજી દૃષ્ટિએ પણ પ્રસ્તુત ટીકાનુ મહત્ત્વ છે, અને તે એ કે દશમા સૈકા પછીના ગ્રંથોની જેમ તેમા શબ્દાડબર નથી. એમાં ભાષાનો પ્રસન્ન પ્રવાહ શરદ્ઋતુના નદીપ્રવાહની જેમ વહે જ જાય છે.

ભારતીપૂજામાં ગૂજરાતનો ફાળો

સાહિત્યનાં સર્જન, રક્ષણ અને વિસ્તારમાં આ દેશના બીજા ભાગોને મુકાબલે ગૂજરાતનું સ્થાન ક્યાં છે એનુ સ્પષ્ટ અને વિસ્તૃત ભાન તો ગૂજરાતીઓને જાગ્રત કરી પુરુષાર્થની દિશામાં પ્રેરે તેવું અને ઇતર પ્રાન્તના દેશવાસીઓને ગૂજરાત પ્રત્યે બહુમાનશીલ કરે તેવુ અવશ્ય છે, પણ એ વિશેની ગંભીર અને વિસ્તૃત માહિતીમા અત્રે ન ઊતરતા ટૂંકમાં એટલુ જણાવો દેવુ બસ થશે કે ભારતીમંદિરમા સાહિત્યોપાસનાનું નૈવેદ્ય ધરવામાં પોતપોતાની ઢબે બીજા પ્રાતોએ જે શ્રદ્ધાપૂર્વક ભાગ લીધો છે તેવો ભાગ લેવામાં વૈશ્યવૃત્તિપ્રધાન ગૂજરાત જરાયે પાછુ નથી રહ્યું બલ્કે ઘણા અંશોમાં તો તેનું વ્યક્તિત્વ માત્ર નિરાળુ જ નહિ, પણ બીજા પ્રાતો કરતાં ચઢિયાતુયે છે

જૂના યુગને બાદ કરી ઐતિહાસિક યુગ તરફ આવી પૂર્વ અને ઉત્તર હિંદુસ્તાનના વિદ્વાનોને જોઈએ છીએ તો તેઓ વ્યાકરણ, કોષ. કાવ્ય, નાટક, અલંકાર, દર્શન, અર્થશાસ્ત્ર, કામશાસ્ત્ર, નીતિ. ધર્મશાસ્ત્ર સંગીત, શિલ્પ, જ્યોતિષ ચિકિત્સા આદિ અનેક સાહિત્યની શાખાઓના મૌલિક તથા ટીકાત્મક ગ્રંથો રચી વિશ્વભારતીને ભેટ કરતા નજરે પડે છે. દક્ષિણ હિંદુસ્તાનના બ્રાહ્મણ વિદ્વાનો પૂર્વમીમાસા અને ઉત્તરમીમાંસાના જગદાકર્ષક ભાષ્ય અને ટીકાગ્રંથો રચીને સરસ્વતીની આરાધના કરતા નજરે પડે છે, તેમ જ તે ભાગના જૈન વિદ્વાનો આગમિક અનેકાન્તવાદને તાર્કિકપદ્ધતિએ વિશદ કરતા ગ્રંથોને રચી જુદી જ રીતે સરસ્વતીની સેવા કરતા નજરે પડે છે. કાશ્મીરના વિદ્વાનો વળી તંત્ર શૈવ અને પાશુપતદર્શન વિશે અનુપમ સાહિત્ય નિર્માણ કરી કાવ્ય અને અલંકારના પ્રદેશમા અદ્ભુત અતિઆકર્ષક કૃતિઓ સરજી શારદાને પ્રસન્ન કરી રહ્યા છે, ત્યારે ગૂજરાતના સુપુત્રો પણ લગભગ સાહિત્ય અને કળાની પ્રાચીન બધી શાખાઓમા ગૌરવ પ્રાપ્ત કરે તેવી કૃતિઓ બનાવી વાગ્દેવીની અભ્યર્ચના કરતા દેખાય છે.

સાહિત્યના સર્જન સંગ્રહ અને રક્ષણમાં ગૂજરાતના બ્રાહ્મણ સંપ્રદાયે કે શ્રમણ સંપ્રદાયે અને શ્રમણ સંપ્રદાયના પણ જૈન કે બૌદ્ધ કેટકેટલો ભાગ આપ્યો એનુ પૃથક્કરણ અત્યારે અનાવશ્યક છે. અહીં તો એમ જ માનવું જોઈએ કે એ બધો ફાળો ગૂજરાતે આપેલો ગણાય જ છે, અને તેમાં જ ગૂજરાતનું વિશિષ્ટ વ્યક્તિત્વ અને મહત્ત્વ છે

જ્યારે પૂર્વ, ઉત્તર અને દક્ષિણ હિંદુસ્તાનના બ્રાહ્મણ વિદ્વાનો જ મુખ્ય

ગે પોતાની પ્રતિભા અને વિદ્યાવ્યાસંગનું અદ્ભુત નિદર્શન દાર્શનિક અને ર્કિક ગ્રંથો મારફત કરાવી રહ્યા છે, ત્યારે ગૂજરાતના જૈન શ્રમણો જ ર્શનિક અને તાર્કિક પ્રદેશમા પોતાની ગંભીર વિચારણાનુ પ્રદર્શન કરાવે છે.

ગૂજરાતમાં બૌદ્ધ વિદ્વાનોને હાથે રચાયેલી કોઈ કૃતિ વિશે આજે સ્પષ્ટ ાણ નથી બ્રાહ્મણ વિદ્વાનોને હાથે દર્શન કે ન્યાયના વિષયમા કાઈ પણ ત્ત્વપૂર્ણ લખાયું હોય એવી માહિતી અદ્યાપિ નથી જ મળી દર્શન અને ર્કના પ્રદેશમા સ્વૈર વિહાર કરનાર સિદ્ધસેન, મલ્લવાદી, સિહક્ષમાશ્રમણ, નભદ્ર, હરિભદ્ર, શાંત્યાચાર્ય, અભયદેવ, મલયગિરિ, હેમચદ્ર, ચદ્રપ્રભ, ચંદ્ર, જિનેશ્વર, મુનિચંદ્ર, વાદી દેવસૂરિ, ગુણરત્ન, મલ્લિષેણ, રાજશેખર અને ા ઉપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી એ બધા જૈન શ્રમણો જ છે, અને તેમાં લાયે તો એવા છે કે જેની એકએકની કૃતિઓની સખ્યા ક્ષેમેન્દ્રની તે સખ્યા તા બમણી કે ચારગણી સુધ્ધા છે એ બધાની કૃતિઓ અત્રે મુખ્ય પ્રસ્તુત ી એમા સિદ્ધસેનની કૃતિઓ અને તેમાયે સન્મતિતર્ક પ્રસ્તુત છે અને ી ગૂજરાતે ગૌરવ લેવુ જોઈએ કે સન્મતિ અગર તેની ટીકા એ ગૂજરાતનું ર્જન છે.

આપણું જૂનામા જૂનુ જે જ્ઞાન સચવાઈ રહ્યું છે તેના સાધનોમાં ખ્ય સાધન ભંડાર છે પુસ્તકસંગ્રહ (લાયબ્રેરી)ની પ્રથા આ દેશ માટે ી નથી એનો ઇતિહાસ જેવો મહત્ત્વનો છે તેવો જ આકર્ષક છે આપણા મા ભડારો બે જાતના છે વ્યક્તિની માલિકીના અને સઘની માલિકીના. હ્મણ સંપ્રાદાયના ભડારો મોટેભાગે પહેલા પ્રકારના છે જૈન સપ્રદાયમા ક્તિએ સ્થાપેલા અને વધારેલા ભડારો પણ છેવટે સઘના જ કબજામા ાવે છે. તેથી જૈન સપ્રદાયના ભડારો સંઘની જ સપત્તિ મનાય છે દક્ષિણ, ર્વ અને ઉત્તર હિદુસ્તાનમા એવા સેંકડો મોટા મોટા જૈન ભડારો છે, પણ હી તે પ્રસ્તુત નથી વ્યાપાર અને અર્થપ્રિય ગૂજરાતે માત્ર પૈસાનો સંગ્રહ ા કર્યો, કિન્તુ એણે જ્ઞાનસગ્રહ કરવામા પણ જરાયે પાછી પાની નથી કરી. -છ, કાઠિયાવાડ અને ગૂજરાતના નાનામોટા દરેક જાણીતા શહેરમા એક વધારે જૈન ભડાર હોવાના જ કેટલાક શહેરો તો જૈન ભંડારોને ધે જ જાણીતાં છે પાટણ, ખભાત, લીબડી, કોડાઈ વગેરેનુ નામ સાભળતાં વિદ્વાનોના મનમા બીજી વસ્તુ પહેલા ભડારો જ આવે છે આવા સેંકડો ડારો ગૂજરાતે સાચવ્યા છે અને તેમા લાખો વિવિધ પુસ્તકો સચવાયેલાં છે.

જૈન ભંડારો એ કાઈ માત્ર જૈન પુસ્તકોના જ સંગ્રહસ્થાનો નથી. ેના સ્થાપકો અને રક્ષકોએ દરેક વિષય તેમ જ દરેક સપ્રદાયના પુસ્તકો

સગ્રહવાનો પ્રશસનીય પ્રયત્ન કર્યો છે. આજે કેટલાંક એવાં બહુ જૂનાં અને મહત્ત્વનાં બૌદ્ધ તેમ જ બ્રાહ્મણ સપ્રદાયના પુસ્તકો જૈન ભડારોમાં મળી આવે છે, જે બીજે ક્યાંય લભ્ય નથી પુસ્તકો માત્ર કાગળ ઉપર જ લખાયેલાં નથી, તાડપત્રનાં પણ હજારો પુસ્તકો અને તેના આખેઆખા ભંડારો સાચવી રાખવાનું પુણ્યકર્મ ગૂજરાતે કર્યું છે

એવા ભંડારોમાં સન્મતિતર્કની અનેક પ્રતિઓ સચવાયેલી રહી છે. તે કાગળ અને તાડપત્ર બન્ને ઉપર લખેલી મળે છે.

સન્મતિતર્ક અને ગૂજરાત વિદ્યાપીઠ

મૂળ અને ટીકાનું અસાધારણ મહત્ત્વ જોઈને જ એ ગ્રથના અભ્યાસની અને પછી તેનો અનુવાદ કરવાની લાલચ જન્મી; એ લાલચમાંથી સપાદનની મમતા જાગી વ્યાપાર અને અર્થપ્રધાન ગણાતા ગૂજરાતની વિદ્યાની બાબતમાં લાજ રાખવાને જ કેમ જાણે જૈનાચાર્યોએ જે કિંમતી સસ્કૃત સાહિત્ય ભારતને અને વિશ્વને ચરણે ધર્યું છે તેમાં સન્મતિતર્ક-ટીકાનું પણ સ્થાન છે. એવા એક ગૂજરાતની જાહોજલાલીના અને વિદ્યાવિલાસના સમયમાં ગૂજરાતમા જ રચાયેલા અને ગૂજરાતના જ ભંડારોમા મુખ્યપણે સચવાયેલા આકર ગ્રથનુ પ્રકાશન ગૂજરાતમાથી જ થાય તો વધારે સારું, એમ સમજી કેવળ જૈન સમાજની કોઈ પણ સસ્થાએ કરવા જોઈતા કામને ગૂજરાત પુરાતત્ત્વ મદિરે અપનાવ્યુ અને વિદ્યાપીઠની ઉદાર નીતિએ એ કામ કરવામાં અકલ્પ્ય પ્રોત્સાહન આપ્યું. પરિણામે એના ચાર ભાગો પ્રસિદ્ધ થઈ ગયા અને છેલ્લો ભાગ થોડા વખતમા પ્રસિદ્ધ થશે લગભગ વીસ-પચીસ હજાર રૂપિયા જેટલો ખર્ચ કરી એ સસ્થાએ ગૂજરાતના ગ્રથરત્નની કેવી આરાધના કરી છે એ વાત તો સમભાવી તટસ્થ વિદ્વાનો જ જાણી શકે.

આ સ્થળે ગૂજરાત પુરાતત્ત્વ મદિરના એ ઔદાર્યની નોંધ એટલા માટે લેવામાં આવે છે કે ઘણા ખરા એ વસ્તુ ન જાણતા હોય તેને વિદિત થાય, પણ હવે છેલ્લી અને મુદ્દાની વાત ઉપર આવીએ

સશોધિત આવૃત્તિનો ટૂક પરિચય

મૂળ ગ્રથ અને ટીકાનું પઠન-પાઠન સપ્રદાયમાં ન હતુ અથવા તો તદ્દન નજીવું હતું, એમ માનવાને ઘણાં કારણો છે પરિણામે વખત જવા સાથે નકલોની અને અશુદ્ધિઓની વૃદ્ધિ અનેક રીતે થતી જ ગઈ પાઠો નષ્ટ

થયા, વાક્યો ખંડિત થયાં અને કેટકેટલું અવનવું થયું ! પણ સદ્‌ભાગ્યે પ્રતિઓ સચવાઈ રહી. એવી કાગળ અને તાડપત્રની મળી ત્રીસેક પ્રતિઓ ઉપરથી સંશોધિત આવૃત્તિ તૈયાર કરવામાં આવી અને તેમાં પાઠ–પાઠાંતરો કાયમ રાખી અનેક દૃષ્ટિએ ટિપ્પણો કરવામાં આવ્યાં છે, જે ગ્રંથ ભણનારને તેમ જ ઐતિહાસિક અવલોકન કરનારને કામના છે. એવાં ટિપ્પણો કરવામાં લગભગ ૨૫૦ જેટલા ગ્રંથોનો ઉપયોગ છૂટથી કર્યો છે એ ઉપયોગમાં અમુદ્રિત પણ ઘણા ગ્રંથો કામમાં આવ્યા છે

સ્યાદ્વાદમંજરી કે સ્યાદ્વાદરત્નાકર, શાસ્ત્રવાર્તાસમુચ્ચયની સ્યાદ્વાદકલ્પલતા ટીકા કે નયામૃતતરંગિણી, પ્રમેયકમલમાર્ત્તંડ કે પ્રમેયરત્નકોષ, સિદ્ધિવિનિશ્ચય કે ન્યાયવિનિશ્ચય, અષ્ટસહસ્રી કે ન્યાયકુમુદચંદ્રોદય, નયચક્ર કે અનેકાન્તજય-પતાકા કોઈ પણ જૈન ગ્રંથ અગર તત્ત્વસંગ્રહ જેવા બૌદ્ધ ગ્રંથના અભ્યાસીને સન્મતિની ટીકાની પ્રસ્તુત આવૃત્તિ વધારેમાં વધારે ઉપયોગી થાય એ દૃષ્ટિએ જ ટિપ્પણમાં પ્રચુર ગ્રંથોનો ઉપયોગ કરવાની પ્રેરણા આપી છે અને વિદ્યા-પીઠના ઔદાર્યે અને પુરાતત્ત્વ મંદિરના સુલભ પુસ્તકસંગ્રહે એ પ્રેરણાને અમલમાં મુકાવી છે.

ઉપસંહાર

એ કહેવાની ભાગ્યે જ જરૂર છે કે સંસ્કૃત ટીકા અગર પ્રાકૃત મૂળ ગ્રંથનું ગમે તેટલું મહત્ત્વ હોય અથવા તેની સંશોધિત આવૃત્તિનું ગમે તે સ્થાન હોય, છતાં એ ગ્રંથની સર્વસાધારણ ઉપર છાપ પાડવા કહો કે તેનું જ્ઞાન બહુભોગ્ય કરવા કહો એના ગૂજરાતી, હિંદી આદિ અનેક ભાષાઓમાં સુગમ અને સુલભ અનુવાદો થવા જ જોઈએ અને અનુવાદ મારફત જેમ ઉપનિષદો કે દાર્શનિક–વૈદિક સૂત્રગ્રંથો વિશેષ ને વિશેષ લોકપ્રિય થતા જાય છે તેમ અનુવાદ મારફત જ સન્મતિને એ સ્થાન અપાવી શકાય

દિવાકરશ્રીનો ગ્રંથરચનાનો ઉદ્દેશ એક એ પણ હતો કે જેમ વૈદિક અને બૌદ્ધ સાહિત્ય લોકપ્રિય તેમ જ વિદ્વત્પ્રિય થતું જાય છે તેમ જૈન સાહિત્ય પણ થાય અને તેથી જ તેઓશ્રીએ કેવળ સંસ્કૃતમાં કે કેવળ પ્રાકૃતમાં ગ્રંથરચના ન કરતાં તે વખતની પ્રસિદ્ધ બન્ને ભાષાઓમાં ગ્રંથરચના કરી છે અલબત્ત, એ ખરું કે તેઓશ્રીની બધી કૃતિઓ જેટલી ઉચ્ચતમ છે તેટલી જ તે અતિ અને અસાધ્ય નથી છે, પણ એ વિરોધ દૂર કરવાનો અને તેની ઉચ્ચતમતાનો આસ્વાદ લેવાનો કલિયુગ હવે આવી લાગ્યો છે તેથી જેટલી કૃતિઓ છપિત છે તે બધીનો અનુવાદ દ્વારા અને સંશોધન દ્વારા ઉદ્ધાર કરવામાં જ જ્ઞાનપ્રજાનું

રહસ્ય સમાયેલું છે માત્ર ગ્રંથ અને તેનાં ઉપકરણોની પૂજામાં જ આપણે રચ્યાપચ્યા રહીએ તો તેના ચેતન-આત્મા સુધી પહોંચી ન શકીએ અને પરિણામે, ઉપાધ્યાયજી કહે છે તેમ, ક્રિયાગ્રહિલ જડપૂજક બની જઈએ. એ સ્થિતિ અનેકાંતદષ્ટિને ન શોભે. તેથી સાચા જ્ઞાનપૂજક માટે શુ કર્તવ્ય છે તે જુદું કહેવાની ભાગ્યે જ જરૂર રહે છે.

પ્રસ્તુત લેખ દ્વારા એક પણ વાચકની રુચિ કોઈ પણ કાળે સન્મતિતર્કના ખરા મહત્ત્વ તરફ વળશે તો પ્રયાસ સફળ જ છે.

દિવાકરશ્રીનાં કેટલાંક પદ્યોનો સાર

[આગળ કહ્યા પ્રમાણે એકંદર બધી કૃતિઓ જોતા દિવાકરશ્રીના જીવનનુ ખરું હાર્દ શું છે તે જણાઈ આવે છે અને તે એ છે કે તેમનો ભગવાન મહાવીર પ્રત્યે અનન્ય અનુરાગ છે. એ અનુરાગ આગમજ્ઞાનમાંથી ઉત્પન્ન થયો છે અને તેથી શાસનની પ્રભાવના એ તેમને મન ભગવાનના સિદ્ધાંતોને સર્વગમ્ય કરવામાં છે. એ માટે તેઓ કોઈ નિર્વિચાર રૂઢિબંધન નથી સ્વીકારતા અને સમગ્ર જ્ઞાનને અનેકાંતમા ગોઠવવા તેમ જ જૈન શ્રુતને વિસ્તારવા પ્રયત્નશીલ છે. આ સ્થળે તેઓનો ભક્તિપ્રસાદ પારખવા અને વિવેચ્ય વિષયના મર્મને સ્પર્શી તેઓની અનન્યસાધારણ વિવેચકશક્તિનો પરિચય આપવા તેમની બત્રીસીઓમાંના કેટલાંક પદ્યો સારસહિત આપવાનો લોભ રાખવો એ અસ્થાને નથી.]

સ્તુતિ કરવાનો હેતુ જણાવતાં તેઓ કહે છે કે—"હે વીર ! કવિત્વશક્તિથી, પરસ્પરની ઈર્ષ્યાથી કે કીર્તિ પ્રસિદ્ધ કરવાની ઇચ્છાથી કે શ્રદ્ધામાત્રથી તારી સ્તુતિ કરવામા નથી આવતી, પણ ગુણજ્ઞો તારું બહુમાન કરે છે તેથી મારો આ આદર છે" ૧, ૪

ભગવાન મહાવીરમા પોતાનો અતિઆદર થવાનું કારણ આપતા તેઓ કહે છે કે—

'હે ભગવન્! પરસ્પરના વિખવાદને લીધે જેઓના મન બહેર મારી ગયા છે અને એથી જ જેઓ પોતાના વાદને-સિદ્ધાતને પણ સળંગ સમજી શકતા નથી એવા તથા તત્ત્વના માર્ગને મૂકી અવળે રસ્તે ચડેલા આ એકાન્તવાદીઓની સમીક્ષા કરતો કયો પુરુષ તારા તરફ ન આકર્ષાય? અર્થાત્ એકાંતવાદના દુરાગ્રહથી કંટાળેલો પુરુષ તારા જેવા અનેકાંતવાદી-સમન્વયવાદી તરફ જરૂર આકર્ષાય" ૧, ૫

અનેકાંતવાદના વિજ્ઞાન (science)ની ખૂબી બતાવતાં તેઓ કહે છે કે—

" હે ભગવન્ ! ગુણો તરફ અંધ રહેનારા અને એથી જ પોતાની જાતના અહિતકારી એવા આ એકાંતવાદીઓ ભેગા થઈને તારા સિદ્ધાંતમાં જે જે દોષો બતાવે છે તે જ દોષો અનેકાંતવિજ્ઞાનની કસોટીએ કસાતાં તારું સૂક્ત સમજવામાં સાધનરૂપ નીવડે છે, અર્થાત્ એકાંતવાદીઓ જેને દોષરૂપ સમજે છે તે જ દોષ અનેકાંતવિજ્ઞાનની દૃષ્ટિએ તપાસતાં તત્ત્વમાર્ગને સમજવાનું સાધન થાય છે " ૧, ૬

ગમે તેવા વાદ કરવામાં કુશળ એવા એકાંતવાદીઓ ભગવાનની તોલે તો ન જ આવી શકે એમ બતાવતાં કહે છે—

" સમૃદ્ધપત્રવાળો[1] એટલે સુંદર પીંછાની સમૃદ્ધિવાળો પણ મોર ગરુડની ચાલે તો ન જ ચાલી શકે, તેમ હે ભગવન્ ! કોઈ પણ પ્રકારના વાદનું મંડન કરવામાં એક્કા છતાં એ એકાંતવાદીઓ તારા વિચારને તો ન જ પહોંચી શકે " ૧, ૧૨.

ભગવાનના અહિંસાના સિદ્ધાન્તમાંથી જન્મેલા જીવજંતુ-વિજ્ઞાનનું માહાત્મ્ય દર્શાવતાં કહે છે કે—

" હે ભગવન્ ! બીજા વાદીઓને જેનો સ્પર્શ સુધ્ધાં નથી થયો એવો આ ષડ્જીવનિકાયનો વિસ્તાર તેં જે દર્શાવ્યો છે તે દ્વારા જ સર્વજ્ઞતાની પરીક્ષામાં ક્ષમ એવા આ વાદીઓ તારા તરફ પ્રસન્નતા અને ઉત્સવ સાથે ઝૂકી ગયા છે " ૧, ૧૩.

ભગવાનની શિષ્યપરંપરાના સામર્થ્યનું વર્ણન કરતાં જણાવે છે કે—

" હે ભગવન્ ! વનવિહારી, અવધૂત અને અનગાર હોવાથી જેઓની ક્યાંય નિષ્ઠા-આસક્તિ નથી એવા જ્વલંત ચિત્તવાળા તારા પ્રશિષ્યો જે જાતનો યશ વિસ્તારે છે તેટલો પણ યશ એક સમૂહમાં સંકળાયેલા આ એકાંતવાદીઓ નથી મેળવી શકતા, અર્થાત્ જગતમાં ત્યાગ અને ચારિત્રની જ પૂજા થાય છે, પણ વાદવિવાદ કે ખંડનમંડનની ધમાલને કોઈ પૂછતું પણ નથી " ૧, ૧૫

આગમોના માધુર્યને લીધે જાણે ભગવાન મહાવીરનો સાક્ષાત્કાર જ ન થતો હોય એવો પોતાનો અનુભવ નિવેદતાં કહે છે કે—

" હે જિનેન્દ્ર ! આજે પણ તારી વાણીને ઉકેલતાં એમ લાગે છે કે જાણે તું પોતે જ સાક્ષાત્ તારા વચનામૃતનું પાન કરાવી રહ્યો છે એ તારી

૧. પત્રનો અર્થ પીંછું અને પક્ષ એટલે વાદ પણ થાય છે

પ્રાકૃત વાણી સ્વાભાવિક[1] છે, મધુર છે, નયના પ્રસંગોથી વિસ્તરેલી છે અને અનેક ભેદ-પ્રભેદોના ભાવોથી પેશલ છે. " ૧, ૧૮.

ભગવાનનુ કર્મવિજ્ઞાનશાસ્ત્ર તો અદ્ભુત છે, એવું એ બીજા કોઈથી કહી શકાયુ નથી એમ બતાવતાં કહે છે કે—

"કર્તા સિવાય કર્મ હોઈ શકતુ નથી જે કર્તા છે તે જ કર્મના ફળનો ભોક્તા છે—એ સિદ્ધાંતને અવલંબી તેં જે આઠ પ્રકારનુ પૌદ્ગલિક કર્મ પ્રરૂપ્યુ છે તેવુ સંસારમા બીજો કોઈ કહી શક્યો નથી " ૧, ૨૬.

"કેવળ[2] માનસિક કર્મ જ શુભાશુભ ફળને આપનારું છે અને કાયિક કે વાચિક કર્મ તેવુ નથી, એવો કર્મવિભાગ તારા કર્મવિજ્ઞાનમાં નથી હે શરણ્ય! તારા કર્મવિજ્ઞાનમાં તો માનસિક, વાચિક અને કાયિક એ ત્રણે કર્મોને યથોચિત સ્થાન છે તેથી જ એટલે કર્મવિજ્ઞાનને લગતી તારી આવી અદ્ભુત વિચારશૈલીથી જ મુગ્ધ થયેલા વિચારક પુરુષો તારા તરફ જ નજર કરી રહ્યા છે. " ૧, ૨૭

એક કુશળ કૃષિકારની પેઠે ભગવાનનુ બોધિબીજવપનનુ અદ્ભુત કૌશલ છતાંય કેટલાંક ક્ષેત્રો અણખેડાયેલાં જ રહ્યાનુ કારણ બતાવતા કહે છે—

"હે લોકબાંધવ! સદ્ધર્મરૂપ બીજના વપન માટે તારુ અમોઘ કૌશલ છતાંય કેટલાંય ક્ષેત્રો અફળ નીવડચા તે કાંઈ આશ્ચર્યનુ કારણ નથી, કારણ કે સૂર્યનાં કિરણો તો ઘણાય જાજ્વલ્યમાન છે, છતાય અન્ધકારપ્રિય ઘૂવડના કુલને માટે તો તે સહજ પીળા જેવા જ લાગે છે, એ કાંઈ આશ્ચર્ય ન કહેવાય " ૨, ૧૩

પાપ અને પુણ્ય વિશેની લોકોની અજ્ઞાનતાનો ઉલ્લેખ કરતા તેઓ જણાવે છે કે—

"માણસ જે પાપને વાંછતો નથી તે પાપનુ સ્વરૂપ પણ સમજતો નથી અને જે પુણ્યને વાંછે છે તેને પણ સમજવાની તેને દરકાર નથી. આવી સ્થિતિમા પડેલો મનુષ્ય હેયોપાદેયનો વિવેક શી રીતે કરે? ત્યારે હે સુગત!

૧. સરખાવો—'अकृत्रिमस्वादुपदां परमार्थाभिधायिनीम् ।
सर्वभाषापरिणतां जैनीं वाचमुपास्महे ॥'
—આ. હેમચંદ્રના કાવ્યાનુશાસનનું મંગલ

૨ જુઓ 'સૂત્રકૃતાંગ સૂત્રમાં આવેલા કેટલાક પરમતોનો ઉલ્લેખ' પુરાતત્ત્વ પુસ્તક ૩, પૃ. ૧૨૧.

તેં તો હિતાહિતના સ્ફુટ નિર્ણય સાથે પાપની પેઠે પુણ્યને પણ કહી નાખ્યું છે, અર્થાત્ ઘણા લોકો પુણ્યને જ પોતાનું હિતકર સમજીને સકામપ્રવૃત્તિ કર્યા કરે છે, છતાંય અંતે તે પુણ્ય જ તેઓના આત્માને સુવર્ણપંજરની પેઠે બાંધી રાખે છે, એ હકીકત તેઓની જાણમાં નથી હોતી. ત્યારે તેં તો પાપપુણ્યનું સ્વરૂપ બરાબર સમજી એ બન્નેને બાળી નાખ્યાં છે." ૨, ૧૯.

૯૬ અને સૂર્ય કરતાં પણ ભગવાનનો અધિક મહિમા વર્ણવતા કહે છે કે.—

"જગતના જે અંધકારનો નાશ સહસ્રલોચન-ઇંદ્રનું વજ્ર પણ ન કરી શક્યું, સહસ્રકિરણવાળો સૂર્ય પણ ન કરી શક્યો, હે ભગવન્! તે જ અંધકારને તેં ભેદી નાખ્યો." ૪, ૩

વાસનાથી ભરેલો માનવ ભગવાનની મુદ્રાને જોઈને સંતોષ પામે કે કેમ? એ વિશે જણાવે છે કે—

(હે ભગવન! તું તો સ્થિતપ્રજ્ઞ છે, વિષય અને કષાયોથી પર છે ત્યારે) આ જન અમર્યાદ ચંચળ છે અને વિષય કષાયોથી ભરેલો છે એવી સ્થિતિમાં જેમ નવા પકડેલા હાથીને તેને બાંધવા માટેનો સ્તંભ પરિતોષ ન આપી શકે તેમ એવા જનને તારામાં પરિતોષ કેમ થઈ શકે?" ૪,૪

અનેકાંતવાદની ગંભીરતા અને વિશાળતાનું ગાન કરતા કહે છે કે—

"સમુદ્રમાં બધી નદીઓ ભળી જાય છે તેમ, હે ભગવન્! તારામાં—તારા અનેકાંતવાદમાં બધી દૃષ્ટિઓ ભળી જાય છે, પણ જેમ ભિન્ન ભિન્ન વહેતી નદીઓમાં ક્યાંય સમુદ્ર કળાતો નથી તેમ ભિન્ન ભિન્ન પ્રસરેલી તે તે એકાંતદૃષ્ટિઓમાં તું ક્યાંય કળાતો નથી[1]" ૪, ૧૫.

પોતપોતાના વાદને પુરાતન માનનારા વાદીઓ શ્રી સિદ્ધસેનને કહે છે કે, 'અમુક વિચાર તો નવો છે, તમે પણ આજકાલના છો અને અમે જ પુરાતન છીએ, માટે સાચા છીએ' આ વાદીઓ પ્રત્યે તેઓના ઉદ્‌ગારો આ પ્રમાણે છે—

---

૧. જુઓ અને સરખાવો—

"જિનવરમાં સઘળાં દરિસણ છે, દર્શને જિનવર ભજના રે,
સાગરમાં સઘળી તટિની છે, તટિનીમાં સાગર ભજના રે"

પદ૦ ॥ ૬ ॥

—આનંદઘનજીનું નમિનાથનું સ્તવન.

"હે પુરાતનવાદીઓ ! તમે પુરાતન પુરાતન શું કહ્યા કરો છો ? આ માણસ પણ આવતી કાલે જ પુરાતનોનો સમોવડિયો થવાનો છે. વળી, કેટલાય પુરાતનો થઈ ગયા, કેટલાય થવાના. એ રીતે પુરાતનોનું તો કાંઈ ઠેકાણું જ ન રહ્યું. એવી સ્થિતિમાં પુરાતનોક્તિને પારખ્યા વિના જ માત્ર તેના એક પુરાતનત્વને લીધે કેમ પ્રમાણ કરી શકાય ? ૬,૫

"જે કાંઈ આડુંઅવળું કે ઊંધુંચત્તું કલ્પાયેલું હોય, પણ તે જો પુરાતનોએ કહેલું હોય તો તે જૂનું છે એમ કહી વખાણ્યા કરવું અને આજના મનુષ્યની સુવિનિશ્ચિત શૈલીવાળી એકાદ કૃતિ પણ કોઈને જોવા, વાંચવા કે શીખવા ન દેવી એ સ્મૃતિમોહ નહિ તો બીજું શું ?" ૬,૮.

"હે પુરાતનો ! તમે પણ આગળ આવીને હિમ્મત અને યુક્તિપૂર્વક તો કાંઈ કહી શકતા નથી, તેમ બીજાની એટલે નવા મનુષ્યની વિદ્વત્સમાજે કરેલી પ્રતિષ્ઠાને પણ સાંખી શકતા નથી અને 'અમે જ પુરાતન છીએ,' 'આપ્તપુરુષના વારસદાર પણ અમે જ છીએ'—એવું એવું કહીને પરીક્ષકો તરફ અંગુલિનિર્દેશ કરવાનું જ એક કામ તમારે કરવાનું છે, જે તમે બરાબર કર્યા કરો છો અને પાછા હઠો છો" ૬, ૧૬.

प्रथमा द्वात्रिंशिका

न काव्यशक्तेन परस्परेर्ष्यया न वीर ! कीर्तिप्रतिबोधनेच्छया ।
न केवल श्राद्धतयैव नयसे गुणज्ञ पूज्योऽसि यतोऽयमादरः ॥ ४ ॥

परस्पराक्षेपविलुप्तचेतसः स्ववादपूर्वापरमूढनिश्चयान ।
समीक्ष्य तत्त्वोत्पथिकान कुवादिन कथं पुमान् स्याच्छिथिलादरस्त्वयि ॥५॥

वदन्ति यानेव गुणान्धचेतसः समेत्य दोषान किल ते स्वविद्विषः ।
त एव विज्ञानपथागताः सतां त्वदीयसूक्तप्रतिपत्तिहेतव ॥ ६ ॥

समृद्धपत्त्रा अपि सच्छकुन्तयो यथा न गच्छन्ति गतं गरुत्मतः ।
सुनिश्चितज्ञेयविनिश्चयास्तथा न ते मतं प्राकृतकाः प्रवादिनः ॥ १२ ॥

य एष षड्जीवनिकायविस्तरः परैरनालीढपथस्त्वयोदितः ।
अनेन सर्वज्ञपरीक्षणक्षमास्त्वयि प्रसादोदयसोत्सवाः स्थिताः ॥ १३ ॥

अल्पनिष्ठाः प्रसमिद्धचेतसस्तव प्रशिष्याः प्रथयन्ति यद्यशः ।
न तावदप्येकसमूहसंहताः प्रकाशयेयुः परवादिपार्थिवाः ॥ १४ ॥

नयप्रसङ्गापरिमेयविस्तरै-रनेकभङ्गाभिगमार्थपेशलैः ।
अकृत्रिमस्वादुपदैर्जनं जन जिनेन्द्र ! साक्षादिव पासि भाषितैः ॥ १८ ॥

न कर्म कर्तारमतीत्य वर्तते य एव कर्ता स फलान्युपाश्नुते ।
तदष्टधा पुद्गलमूर्तिकर्मजं यथात्थ नैव भुवि कश्चनापरः ॥ २६ ॥

न मानस कर्म न देहवाङ्मय शुभाशुभज्येष्ठफल विभागशः ।
यदात्थ तेनैव समीक्ष्यकारिणः शरण्य ! सन्तस्त्वयि नाथबुद्धयः ॥ २७ ॥

द्वितीया द्वात्रिंशिका

सद्धर्मबीजवपनानघकौशलस्य यल्लोकबान्धव ! तवापि खिलान्यभूवन् ।
तन्नाद्भुत खगकुलेष्विह तामसेषु सूर्यांशवो मधुकरीचरणावदाताः ॥१३॥

पाप न वाञ्छति जनो न च वेत्ति पाप
पुण्योन्मुखश्च न च पुण्यपथ प्रतीतः ।
नि मशय स्फुटहिताहितनिर्णयस्तु
त्व पापवत्सुगत ! पुण्यमपि व्यधाक्षीः ॥ १६ ॥

चतुर्थी द्वात्रिंशिका

कुलिशेन सहस्रलोचन सविता चाशुसहस्रलोचनः ।
न विदारयितुं यदीश्वरो जगतस्तद्भवता हत तमः ॥ ३ ॥

निरवग्रहमुक्तमानसो विषयाशाकलुषस्मृतिर्जनः ।
त्वयि किं परितोषमेष्यति द्विरदः स्तम्भ इवाचिरग्रहः ॥ ४ ॥

उदधाविव सर्वसिन्धव समुदीर्णास्त्वयि सर्वदृष्टयः ।
न च तासु भवानुदीक्ष्यते प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधि ॥ १५ ॥

षष्ठी द्वात्रिंशिका

जनोऽयमन्यस्य मृत. पुरातन पुरातनैरेव समो भविष्यति ।
पुरातनेष्वित्यनवस्थितेषु कः पुरातनोक्तान्यपरीक्ष्य रोचयेत ॥ ५ ॥

यदेव किंचिद्विषमप्रकल्पित पुरातनरुक्तमिति प्रशस्यते
विनिश्चिताप्यद्य मनुष्यवाक्कृति-र्न पाठ्यते यत्स्मृतिमोह एव स ॥ ८ ॥

यदा न शक्नोति विगृह्य भाषितु पर च विद्वत्कृतशोभमीक्षितुम् ।
अथात्मनादितगौरवो जन. परीक्षकक्लेपमुखो निवर्तते ॥ १६ ॥

શ્રીસિદ્ધસેન દિવાકરકૃત દ્વાત્રિંશિકાઓ

[આ નીચે દિવાકરશ્રીની ત્રણ બત્રીસીઓના કેટલાક શ્લોકોનો ભાવ આપવામા આવે છે. જેમાંની ૧લી વાદોપનિષદ્ બત્રીસી, ૨જી વાદબત્રીસી અને ૩જી ન્યાયબત્રીસી છે વાદોપનિષદ્ બત્રીસીમાં વાદપદ્ધતિમાં કુશળતા મેળવવા ઇચ્છનારે તેનાં જે રહસ્યોનુ જ્ઞાન મેળવવુ જોઈએ તે રહસ્યોનું વર્ણન કરેલું છે. વાદબત્રીસીમા વાદની ચિંતા અને વિજયની તૃષ્ણાથી વિદ્વાનો અને ત્યાગીઓની સ્થિતિ કેવી શોચનીય થઈ જાય છે તેનુ આબેહૂબ ચિત્ર મૂકેલુ છે અને ન્યાયબત્રીસીમા ન્યાયદર્શનના પદાર્થોનુ અક્ષપાદના ન્યાયસૂત્રોને કાંઈક મળતુ વર્ણન છે. સાર એ છે કે આ ત્રણે બત્રીસીઓને વાંચનાર દિવાકરશ્રીના સમયનું વાદવિવાદનું વાતાવરણ, વાદી અને પ્રતિવાદીના મનોભાવનું ચિત્ર અને ન્યાયની પદ્ધતિ વિશે સ્પષ્ટપણે સમજી શકશે અને એ જ આશયથી આ ત્રણે બત્રીસીઓને અહીં મૂકવામા આવી છે]

વાદોપનિષદ્ દ્વાત્રિંશિકા

જે દ્વારા ધર્મ, અર્થ અગર કીર્તિ મેળવવી ઇષ્ટ હોય એવા શાસનો (માનપત્ર, દાનપત્ર, અને આજ્ઞાપત્ર આદિ ફરમાનો) કેવળ સ્પર્ધાને લીધે કાંઈ શોભતાં નથી, તેથી જે માર્ગે રાજસભાઓમાં વિગ્રહ કરીને તેવા શાસનો સંપાદન કરવા ઘટે તે માર્ગનુ (વાદનુ) કથન કરવામા નિર્વિઘ્નતા હો. ૧

પ્રથમ જ પોતાના પક્ષની સ્થાપનામા તત્પર એવા પ્રતિવાદીના વક્તવ્યમાર્ગ ઉપર અંકુશ મૂક્યા સિવાય જે વાદી વાક્ચેષ્ટા કરે છે તે પૌરુષવાન્ છતા પોતાનો અવસર ગુમાવેલો હોવાથી વિદ્વાનોની સભામાં ઊંચું મસ્તક કરી બોલી શકતો નથી ૭

"તુ શુ બોલે છે, તે હુ નથી સમજતો આ તે કોનો સિદ્ધાંત છે? સિદ્ધાંતયુક્ત બોલ. આ ક્યાં કહ્યુ છે? આ ગ્રંથ રહ્યો અર્થ નક્કી કર. આ માર્ગ (રીત) નથી આ પ્રક્ષેપ છે." એ રીતે અસ્પષ્ટ–આગમવાળા પ્રતિવાદીનુ મુખ બંધ કરાય છે. ૮

કઠોર ઉત્તરો વડે જે પુરુષ આઘાત પામી જાય છે તેની બુદ્ધિ જો આમ્નાય–માર્ગને અનુસરી સુકુમાર અભિયોગ કરનારી હોય છે તો તે વિલીન થઈ જાય છે. પણ જે પુરુષ એવા કઠોર ઉત્તરો વડે ઉત્તેજિત થઈ જાય છે તેના શત્રુઓ સભાભટોથી ભરેલ રણાંગણમાં ચોખ્ખો માર ખાઈ મૂર્છ જાય છે. ૨૧

જેનું સાહસ સ્થિર છે તેને માટે શત્રુના વિષયમાં મર્મસ્થાન શું જોવાનું હોય? અને જે મંદ છે તેને માટે તો પોતે મર્મ ઉપર કરેલો પ્રહાર સ્વ-નાશનું કારણ થઈ જાય છે, કારણ કે સહજ અને પ્રચંડ વીર્યવાળા દાંતો વડે ક્રીડા કરતો આશીવિષ સર્પ જ્યાં સ્પર્શ કરે તે જ મર્મ થઈ જાય છે ૨૬

મંદ, અલ્પાભ્યાસી પણ જો શાંત ચિત્તવાળો હોય છે તો તેનું વચન અખંડનીય થાય છે તેથી ઊલટું, બહુ અભ્યાસી પણ જો અશાંતચિત્ત હોય છે તો તે, પુરુષોમાં ઉપહાસપાત્ર બને છે તેટલા માટે સભ્યોના મનમાં સ્થાન મેળવવા તત્પર થનારે શાસ્ત્ર કરતાં પ્રશમના વિષયમાં જ સોગણો પ્રયત્ન કરવો જોઈએ ૨૭

જે પોતાના સિદ્ધાંતનું સ્થાપન કરી નિર્ભય મન અને નિષ્ઠુર નેત્રવાળો થઈ પ્રતિવાદીઓ સામે જુએ છે તે રાજસભા ઉપર કાબૂ મેળવી તેજસ્વી બનેલો પોતાના શત્રુઓને શોક અને જાગરણના દુ:ખથી દુર્બળ કરી મૂકે છે ૨૮

સંમુખ થઈ બેઠેલા શત્રુઓમાં ગર્જન કરવાથી શું થવાનું છે? તેમ જ નિર્દયભાવે જેઓ પૌરુષ નિહાળી રહ્યા હોય તેમની વચ્ચે પણ ગર્જન કરવાથી શું થવાનું છે? કારણ કે, વાણીથી પ્રકટાવેલું તેજ માત્ર શ્વાસના અગ્નિ જેટલું બળ ધરાવે છે. કલ્પાંત સુધી સ્થિર રહે તેવું તેજ તો પરાક્રમથી જ પ્રકટી શકે છે. ૨૯

જેમ સમૃદ્ધિશાળી અને નીતિજ્ઞ હોવા છતાં પણ જો રાજા રહસ્યબળથી દુર્બળ હોય છે તો તે પ્રાપ્ત થયેલી સંપૂર્ણ સંપત્તિને ભોગવી શકતો નથી, તેમ શાસ્ત્રોનો જ્ઞાતા હોવા છતાં (વાદના) રહસ્યને ન જાણતો હોય તો તે (જનસમૂહમાં) દીપી ઊઠતો નથી, કારણ કે જે (વાદી અગર રાજા) જે રીતે જ્ઞાતા હોય તે રીતે તે વિગ્રહ કરી શકે. ૩૨.

વાદદ્વાત્રિંશિકા

જુદા જુદા ગામથી આવી ચઢેલા અને એક જ માંસના ટુકડા ઉપર તાકી રહેવાથી પરસ્પર મત્સરી બનેલા એવા બે શ્વાનોનું પણ કદાચિત્ સખ્ય સંભવે ખરું, પરંતુ વાદીઓ જો બે સગા ભાઈ હોય તોપણ તેઓનું પરસ્પર સખ્ય રહેવું અસંભવિત છે. ૧

ક્યાં તે તત્ત્વનો આગ્રહ અને ક્યાં આવેશથી આતુર (ચંચલ)

આંખવાળુ (વાદીનુ) મુખ ? ક્યાં તે વિશ્વાસની મૂર્તિસમી દીક્ષા અને ક્યાં એ કુટિલ વાદ ? ૨

જ્યાં સુધી રંગ (વાદસ્થલી)માં નથી ઊતરતો ત્યા સુધી વાદી બગલા જેવો મુગ્ધ દેખાય છે, પણ રગમા ઊતરતા જ તે મત્ત થઈ કાગડા જેવો ઉદ્ધત અને કઠોર થઈ જાય છે. ૩

ક્ષુલ્લકવાદી, કૂકડા અને તેતરની પેઠે પૈસાદારોનુ રમકડું બની પોતાનાં શાસ્ત્રોને બાળકો મારફત ઉપહાસ અને લઘુતા પ્રાપ્ત કરાવે છે ૪

બીજાઓએ (અન્ય વાદીઓએ) સ્વેચ્છાપૂર્વક રચેલા વિશિષ્ટ અર્થોને કષ્ટપૂર્વક જાણીને વાદી, જાણે અહીં જ સપૂર્ણ શાસ્ત્રો છે એમ, દર્પવડે અગોને કરડે છે ૫

કલ્યાણો બીજી જ તરફ છે અને વાદિવૃષભો બીજી જ તરફ વિચરે છે, મુનિઓએ તો વાણીના યુદ્ધને ક્યાયે કલ્યાણનો ઉપાય કહ્યો નથી ૭

વાક્છલરૂપી રંગભૂમિમાં ઊતરીને જેતું નિર્વચન કરવાનું છે એવા તત્ત્વની જો સ્વચ્છ મન વડે અકલહથી સુંદર બને તેમ વિચારણા કરવામાં આવે તો તેમાં કશો દોષ ન થાય ૮

શાસ્ત્ર જાણનાર વિદ્વાન જો શાંત હોય તો તે એકલો છતાં પણ પોતાનો પક્ષ સાધે છે, પરતુ વાક્યોની લાળ ચાટનારા અનેક વિદ્વાનો એકઠા થઈને કલહપ્રધાન એવી કરોડો કોટિઓથી પણ પોતાનો પક્ષ સાધી શકતા નથી ૯

વાદી દુર્ધ્યાનમાં પડી પ્રતિવાદીના અને પોતાના પક્ષવિષયક, નયવિષયક, હેતુવિષયક, શાસ્ત્રવિષયક અને વચનબાણ વિષયક સામર્થ્યની જ ચિંતા કરતો રહે છે. ૧૦

અમુક વાદી હેતુજ્ઞ (તર્કજ્ઞ) છે તો શબ્દશાસ્ત્ર નથી જાણતો. વળી અમુક બીજો વાદી શબ્દશાસ્ત્રજ્ઞ છે તો તર્કકથામા કુશળ નથી ત્રીજો વળી તર્ક અને શબ્દશાસ્ત્ર બને જાણતો છતા ભાવ પ્રકટ કરવામાં પટુ નથી, તો ચોથો વાદી પટુ છે પણ તેને પોતાની બુદ્ધિ નથી. ૧૧

'અમારા વચ્ચે તે કથા થવાની છે તેમા મારે આ જાતિઓ (અસત્ ઉત્તરો) યોજવાની છે.' આવા પ્રકારની ચિંતાથી નિદ્રાહીન થઈ વાદી રાત્રિને વખતે વચન અને મુખની કસરત કરે છે. ૧૨

સભામાં જેનો ગર્વ તૂટી ગયો છે એવો વાદી પોતાની મિથ્યા આત્મ-સંભાવનાથી આઘાત પામી આખી રાત અશુભ વિતર્કોથી ઘેરાયેલા હૃદયવાળો થઈ ઊંઘ લઈ શકતો નથી. ૧૩

જો વાદી કોઈ પણ રીતે જીતે તો તેથી થતી ખુશીમાં તે મર્યાદા તોડી આત્મપ્રશંસાથી ફુલાઈ જઈ ત્રણ લોકની અવજ્ઞા કરે છે, પરન્તુ જો હારે તો તે વાદી ક્રોધાંધ થઈ સભા અને પ્રતિવાદી ઉપર ઊંડી ગર્જના દ્વારા આક્રમણ કરતો પોતાની ઝાખપને દૂર કરે છે ૧૫, ૧૬

જ્યારે વાદી વાદ–કથા નથી સહી શકતો ત્યારે માનભંગના ભયથી ગરમ અને લાંબો નિસાસો મૂકે છે અને તે રમ્ય સ્થાનોમાં પણ બેચેનીથી સંતપ્ત થયેલો હોઈ મિત્રોના પ્રત્યે પણ વજ્ર જેવાં તીક્ષ્ણ વચનો બોલવા લાગે છે. ૧૭

સર્વ શાસ્ત્રકારોનો એ મત છે કે અહંકાર એ જ દુ ખનુ મૂળ છે, છતાં તે જ અહંકારનો આશ્રય લઈ વાદી તત્ત્વની પરીક્ષા કરવા ઇચ્છે છે. ૧૮

પોતાના પક્ષબળના નિશ્ચયની ઉપલબ્ધિ (ખાતરી) માટે જ બીજાનો સિદ્ધાંત જાણી લેવો આવશ્યક છે, પરતુ સામાના પક્ષને ક્ષોભ પમાડવાના ઉદ્દેશથી તેનો સિદ્ધાત જાણવો એ તો સજ્જનો માટે અનાચાર જ છે ૧૯

પોતાના હિતની દૃષ્ટિએ જ પરાક્રમ કરવુ ઉચિત છે, કારણ કે, અનેક મતભેદોથી ભ્રાન્ત થયેલુ આ જગત સર્વજ્ઞોથી પણ એકમત ન થયુ તો પછી તેને કયો વાદી એકમત કરી શકશે ? ૨૦

સર્વજ્ઞના જ વિષયભૂત એવા પદાર્થોને જો છદ્મસ્થ (અલ્પજ્ઞ) મનુષ્ય પ્રકટ કરી શકતો નથી, તો તેમા કાંઈ આશ્ચર્ય પામવા જેવુ નથી. એવા અલ્પજ્ઞો જે કાંઈ થોડું જાણી શકે છે તે જ આશ્ચર્ય માનવું જોઈએ. ૨૧

પામર જનોનાં ચિત્તને ભરમાવવા માટે પિશાચ જેવા અને કઠોર વચન બોલવા માટે જ જેઓનાં મુખ તતપર હોય છે એવા ધૂર્તજનોએ કલહને મીમાંસાના નામમાં બદલી નાખ્યુ છે ૨૪

બીજાઓને નિગ્રહ આપવાના નિશ્ચયથી વાદી ચિત્તની જે એકાગ્રતા મેળવે છે તેવી જો વૈરાગ્યમા મેળવે તો તે વાદી વગરવિલંબે મુક્તિ પામે ૨૫

અહી–આ લોકમાં જ્યારે મનુષ્ય સર્વ અંશોથી નિર્વચન કરવા–

યોગ્ય એવી એક વસ્તુને પૂરી જાણી શકતો નથી તો પછી 'હું' કે 'મારા પ્રત્યે!' એવા પ્રકારનો ગર્વ કરવો કયા સ્વસ્થ પુરુષને યોગ્ય હોઈ શકે? ૨૬

ન્યાયદ્વાત્રિંશિકા

મોઢું દૈવે ખોદ્યું છે (બનાવી રાખ્યું છે) અને વાઙ્મય પોતાને અધીન છે. જે કાંઈ પણ કહેવામાં આવે તેને સાંભળનાર પણ મળી જ આવે છે. એવી સ્થિતિમા કયો નિર્લજ્જ પંડિત ન બની શકે? ૧

સર્વે કથા (વાદ)-માર્ગો પરપક્ષના ઘાત માટે જ રચાયેલા હોય છે, છતાં શબ્દ અને અર્થમા ભ્રાન્ત થયેલા વાદીઓ અંદરોઅંદર વિપ્રલાપ કર્યો જ કરે છે ૭

જલ્પરૂપ વચનયંત્રમાં પીડિત થયેલી બુદ્ધિ એક પક્ષમા હણાઈ જાય છે, અને શાસ્ત્રસંભાવના (બહુમાનની) શત્રુ બની નીરસપણું પ્રાપ્ત કરે છે ૧૬

ઉપપત્તિ (યુક્તિ)થી કાંઈ બળવાન કે દુર્બળ છે જ નહિ વક્તાની વિશિષ્ટ શક્તિને લીધે જ તે તેમ બને અથવા ન બને ૨૮

સામ આદિ ઉપાયો સમાન હોવા છતા જેવી રીતે શક્તિશાળી વિજયેચ્છુ ચઢી જાય છે તેવી રીતે વક્તા પણ શાસ્ત્ર કરતા શક્તિના યોગે ચઢી જાય છે. ૨૯

સભ્ય અને સભાપતિનો સદ્ભાવ, ધારણાશક્તિ અને આક્ષેપશક્તિનુ કૌશલ, સહનશીલતા અને પરમધૃષ્ટતા—આ ૭ વાદચ્છલ કહેવાય છે. ૩૧

वादोपनिषद्–द्वात्रिंशिका

धर्मार्थकीर्त्यधिकृतान्यपि शासनानि
न ज्ञानमात्रनियमात् प्रतिभान्ति लक्ष्म्या ।
संपादयेन्नृपसभासु विगृह्य तानि
येनाध्वना तमभिधातुमविघ्नमस्तु ॥ १ ॥

पूर्वं स्वपक्षरचना रभते परस्य
वक्तव्यमार्गमनियम्य विजृम्भते च ।
आपोद्यमानसमयः स्तनरोरसोऽपि
नोच्चैः शिरः न नदति प्रतिमानदम्भः ॥ ७ ॥

नावैमि किं वदसि कस्य कृतान्त एषः
सिद्धान्तयुक्तमभिधत्स्व कुहैतदुक्तम् ।
ग्रन्थोऽयमवधारय नैष पन्थाः
क्षेपोऽयमित्यविशदागमतुण्डबन्ध ॥ ८ ॥

आम्नायमार्गसुकुमारकृताभियोगा
क्रूरोत्तरैरभिहतस्य विलीयते धीः ।
नीराजितस्य तु सभाभटसकटेषु
शुद्धप्रहारविभवा रिपव. स्वपन्ति ॥ २१ ॥

कि मर्म नाम रिपुषु स्थिरसाहसस्य
मर्मस्वपि प्रहरति स्ववधाय मन्द. ।
आशीविषो हि दशनै सहजोग्रवीर्यै.
क्रीडन्नपि स्पृशति यत्र तदेव मर्म ॥ २६ ॥

मन्दोऽप्यहार्यवचनः प्रशमानुयात.
स्फीतागमोऽप्यनिभृत. स्मितवस्तु पुसाम् ।
तस्मात् प्रवेष्टुमुदितेन सभामनार्सि
यत्नः श्रुताच्छतगुण सम एव कार्य. ॥ २७ ॥

आक्षिप्य य स्वसमय परिनिष्ठुराक्षः
पश्यत्यनाहृतमनाश्च परप्रवादान् ।
आक्रम्य पार्थिवसभा स विरोचमानः
शोकप्रजागरकृशान् द्विषत करोति ॥ २८ ॥

किं गर्जितेन रिपुषु त्वभितो मुखेषु
किं त्वेव निर्दयविरूपितपौरुषेषु ।
वाग्दीपित तृणकृशानुवल हि तेजः
कल्पात्ययस्थिरविभूति पराक्रमोऽयम् ॥ २९ ॥

परिचितनयः स्फीतार्थोऽपि श्रिय परिसगता
न नृपतिरलं भोक्तु कृत्स्ना कृशोपनिषद्बलः ।
विदितसमयोऽप्येव वाग्मी विनोपनिषत्क्रियां
न तपति यथा विज्ञातारस्तथा कृतविग्रहाः ॥ ३२ ॥

वादद्वात्रिंशिका

ग्रामान्तरोपगतयोरेकामिषसंगजातमत्सरयोः ।
स्यात् सौ (? स) ख्यमपि शुनोर्भ्रात्रोरपि वादिनोर्न स्यात् ॥ १ ॥

क्व च तत्त्वाभिनिवेशः क्व च संरम्भातुरेक्षण वदनम् ।
क्व च सा दीक्षा विश्वसनीयरूपतानुजुर्वादः (?) ॥ २ ॥

तावद् बकमुग्धमुखस्तिष्ठति यावन्न रङ्गमवतरति ।
रङ्गावतारमत्तः काकोद्धतनिष्ठुरो भवति ॥ ३ ॥

क्रीडनकमीश्वराणां कुर्कुटलावकसमानवालेभ्य· ।
शास्त्राण्यपि हास्यकथा लघुता वा क्षुल्लको नयति ॥ ४ ॥

अन्यैः स्वेच्छारचितानर्थविशेषान् श्रमेण विज्ञाय ।
कृत्स्न वाङ्मयमित इति खादत्यङ्गानि दर्पेण ॥ ५ ॥

अन्यत एव श्रेयास्यन्यत एव विचरन्ति वादिवृषा· ।
वाक्संरम्भ· क्वचिदपि न जगाद मुनि शिवोपायम् ॥ ७ ॥

यद्यकलहाभिजात वाक्छलरङ्गावतारनिर्वाच्यम् ।
स्वस्थमनोभिस्तत्त्व परिमीमांसेन्न दोषः स्यात् ॥ ८ ॥

साधयति पक्षमेकोऽपि हि विद्वान् शास्त्रवित् प्रशमयुक्त· ।
न तु कलहकोटिकोटयाऽपि समेता (? संगता) वाग्बलालभुजः ॥९॥

आर्तध्यानोपगतो वादी प्रतिवादिनस्तथा स्वस्य ।
चिन्तयति पक्षनयहेतुशास्त्रवाग्बाणनामर्थ्यम् ॥ १० ॥

हेतुविदसौ न शब्द· (शाब्द) शाब्दोऽसौ न तु विदग्धहेतुकथः ।
उभयज्ञो भावपटु पटुरन्योऽसौ स्वमतिहीन· ॥ ११ ॥

सा न कथा भवित्री तत्रेता जातयो मया योज्या· ।
इति रागविगतनिद्रो वाग्मुग्नयोग्यो निशि करोति ॥ १२ ॥

अशुभवितर्कविधूमितहृदय कृत्वा क्षनामपि न शेते ।
कुण्ठितदर्पः परिषदि नृपातमभाननोपहृत ॥ १३ ॥

यदि विजयते कथञ्चित्ततोऽपि परितोषभग्नमर्याद' ।
स्वगुणविकत्थनदूषिक (?)त्रीनपि लोकान् खलीकुरुते ॥ १५ ॥

उत जीयते कथञ्चित् परिपत्परिवादिन स कोपान्धः ।
गलगर्जेनाक्रामन् वैलक्ष्यविनोदन कुरुते ॥ १६ ॥

वादकथा न क्षमते दीर्घं निःश्वसिति मानभङ्गोष्णम् ।
रम्येऽप्यरतिज्वरितः सुहृत्स्वपि वक्रीकरणवाक्य. ॥ १७ ॥

दुःखमहङ्कारप्रभवमित्यय सर्वतन्त्रसिद्धान्तः ।
अथ च तमेवारूढस्तत्त्वपरीक्षा किल करोति ॥ १८ ॥

ज्ञेयः परसिद्धान्तः स्वपक्षबलनिश्चयोपलब्ध्यर्थम् ।
परपक्षक्षोभणमभ्युपेत्य तु सतामनाचारः ॥ १९ ॥

स्वहितायैवोत्थेय को नानामतिविचेतन लोकम् ।
यः सर्वज्ञैर्न कृतः शक्ष्यति तं कर्तुमेकमतम ॥ २० ॥

सर्वज्ञविषयसंस्थास्छद्मस्थो न प्रकाशयत्यर्थान् ।
नाश्चर्यमेतदत्यद्भुत तु यत्किंचिदपि वेत्ति ॥ २१ ॥

परुषवचनोद्यतमुखै. कातलजनचित्तविभ्रमपिशाचै. ।
धूर्तैः कलहस्य कृतो मीमासा नाम परिवर्त्तः ॥ २४ ॥

परनिग्रहाध्यवसितश्चित्तैकाग्र्यमुपयाति तद्वादी ।
यदि तत्स्याद्वैराग्ये न चिरेण शिव पदमुपयातु ॥ २५ ॥

एकमपि सर्वपर्ययनिर्वचनीय यदा न वेत्त्यर्थम् ।
मा प्रत्यहमिति गर्व. स्वस्थस्य न युक्त इह पुसः ॥ २६ ॥

न्यायद्वात्रिंशिका

दैवखात वदन आत्मायत्त च वाङ्मयम् ।
श्रोतार. सन्ति चोक्तस्य निर्लज्ज को न पण्डित ॥ १ ॥

द्वितीयपक्षप्रतिघा सर्वे एव कथापथाः ।
अभिधानार्थविभ्रान्तैरन्योऽन्य विप्रलभ्यते ॥ ७ ॥

एकपक्षहता बुद्धिर्जल्पवाग्यन्त्रपीडिता ।
श्रुतसभावना वैरी वैरस्य प्रतिपद्यते ॥ १६ ॥

न नामं दृढमेवेति दुर्बल चोपपत्तित, ।
वक्तृशक्तिविशेषात्तु तत्तद्भवति वा न वा ॥ २८ ॥

तुल्यग्रामाद्युपायासु शक्त्या युक्तो विशेष्यते ।
विजिगीषुर्यथा वाग्मी तथाभूयं श्रुतादपि ॥ २६ ॥

प्राश्निकेश्वरसौमुख्य धारणाक्षेपकौशलम् ।
सहिष्णुता पर धाष्टर्यमिति वादच्छलानि षट् ॥ ३१ ॥*

—જૈન 'રૌપ્ય મહોત્સવ અંક.'

---

* આ લેખના સહલેખક પં. બેચરદાસજી છે.

વટબીજનો વિસ્તાર

[૨૯]

સોસાયટીના પ્રયાસોનો આ અહેવાલ અનેક દૃષ્ટિએ બોધપ્રદ અને રસદાયક છે કેળવણીમાં રસ લેતા કે બીજી રીતે જિજ્ઞાસા ધરાવનાર વાચકોને આ દ્વારા ઘણી જાણવાજોગ બાબતોની માહિતી પૂરી પાડવામાં આવી છે. એક રીતે આ અહેવાલ ટૂંકો છે, પણ એ એવો શૃંખલાબદ્ધ અને યથાર્થ હકીકતોથી ભરેલો છે કે એ વાચવા માંડ્યા પછી પૂરો કર્યા વિના ભાગ્યે જ અટકી શકાય અહેવાલમા જે જે કહેવામાં આવ્યુ છે તેની યથાર્થતાનાં નિદર્શક પાછલા પરિશિષ્ટો પણ એટલા જ અગત્યના છે, તેથી આ અહેવાલ વિશેષ આવકારપાત્ર બને છે. મારા જેવા શિક્ષણમા રસ ધરાવનાર પણ એવા કેટલાય હશે કે જેઓ અહેવાલમાં વર્ણવેલી નાનીમોટી બાબતો વિશે સાવ અજ્ઞાન નહિ તો અધૂરું જ્ઞાન ધરાવતા હશે કેળવણીના કોઈ પણ ક્ષેત્રમાં કામ કરનારને માટે તો આ અહેવાલ એક દીપિકાનુ કામ આપે એવો છે, એમ મને લાગે છે.

કોઈ વ્યક્તિ ફાલેલફૂલેલ અને વિસ્તરેલ વડનુ ઝાડ અને એનુ બીજ એ બંનેની સરખામણી કરે તો એને પ્રથમ દર્શને એમ જ લાગે કે આ છેક જ સૂક્ષ્મ બીજમાથી આવડું મોટું ગગનવ્યાપી ઝાડ તે સભવી શકે ખરું ? અને છતાય એ અણુબીજમાથી એવડુ મોટું ઝાડ ઉદ્‌ભવ્યાની હકીકત તે નિર્બાધ સાચી છે બીજમાથી એવુ ઝાડ આવિર્ભાવ પામે તે પહેલા બીજે ગળી જવાનુ હોય છે જ્યારે એને ભૌતિક રસ, સ્નેહ, પ્રાણ અને તાપ દ્વારા પોષણ મળે છે ને એને સંભાળનાર યોગ્ય પુરુષ લાધે છે ત્યારે જ એ વિશાળ-કાયનુ રૂપ લે છે ને અનેકને આશ્રય પૂરો પાડે છે બરાબર આ જ ન્યાય સંકલ્પને લાગુ પડે છે સકલ્પ એ માનસિક હોઈ વટબીજ કરતા પણ વધારે સૂક્ષ્મ અને અદૃશ્ય હોય છે, પણ જ્યારે એ સકલ્પ તપનુ બળ મેળવે છે ત્યારે એમાથી સંકલ્પિત સૃષ્ટિ દૃશ્ય-મૂર્ત બને છે. આ અહેવાલ વાચના મનમાં એવી છાપ ઊઠે છે કે કોઈ એક મંગલક્ષણે વિશ્વવિદ્યાલયનો સકલ્પ કોઈના મનમા ઊગ્યો ને પછી એ સકલ્પના બળે જ આસપાસમાંથી પોષક સામગ્રી તૈયાર કરી ને એ તૈયારીમાથી જ નાનીમોટી અનેક પ્રવૃત્તિને ઉપયોગી

એવી શિક્ષણસંસ્થાઓની ગ્રહમાળા ક્રમેક્રમે રચાતી અને ગોઠવાતી ચાલી ને વિશ્વવિદ્યાલયના સંકલ્પનો મધ્યવર્તી સૂર્ય પણ એક જ ગ્રહમાળાના કેન્દ્રમાં પ્રકાશવા લાગ્યો

અહેવાલમાં શિક્ષણનીતિ વિશે જે ચોખવટ કરી છે તે બહુ મહત્ત્વની છે. આપણે જાણીએ છીએ કે પૂ ગાધીજીએ પોતાના જીવનક્રમના આંતરબાહ્ય ધરખમ ફેરફાર સાથે જ પ્રજાવ્યાપી શિક્ષણની એક નવી જ દૃષ્ટિ લોકો સમક્ષ રજૂ કરી હતી, અને એ દૃષ્ટિને અનુસરી એમણે કામ પણ શરૂ કર્યું હતુ. એ કામ ગુજરાત અને ગુજરાત બહાર પણ ચાલતુ વિચારશીલ અને સહૃદય સ્વાતંત્ર્યપ્રેમી આત્માઓને તો એ પસદ આવ્યુ, પણ સાધારણ લોકોનુ ગજું ચાલુ શિક્ષણમાં કરવા પડનાર એવડા મોટા ફેરફારને ઝીલવાનુ ન હતુ, તેથી બાપુજીની દૃષ્ટિ પ્રમાણે સ્થપાયેલ સંસ્થાઓમાથી પણ ધીરે ધીરે ઓટ થતી જોવાતી. બીજી બાજુ આખા દેશમાં વિદેશી સરકારની ગુલામીપોષક શિક્ષણ-નીતિ પ્રત્યે લોકોનો રોષ પણ જેવો તેવો ન હતો એક બાજુ ગુલામીપોષક શિક્ષણનીતિ પ્રત્યે રોષ અને બીજી બાજુ એ પ્રથા પ્રમાણે ચાલતી અનેક વિષયની વ્યવહારુ જીવનને ઘડનાર કૉલેજો જેવી સંસ્થાઓનો મોહ, એ બને વચ્ચે લોકમાનસ ક્ષોભ પામતુ એની દશામાં શો રસ્તો લેવો કે જેથી લોકોને જોઈતી આધુનિક પ્રણાલીની શિક્ષણસસ્થાઓ પણ સાંપડે અને એમનાં માનસ ગુલામીમાંથી ધીરે ધીરે છૂટવા પણ પામે?—આ એક પ્રશ્ન હતો એનો ઉકેલ સોસાયટીના કાર્યકર્તાઓએ મધ્યમમાર્ગ લઈ કાઢ્યો એ મધ્યમમાર્ગ એટલે વિદેશી સરકારની નીતિએ લાદવા ધારેલી ગુલામીમાથી લોકમાનસને મુક્ત કરવુ અને છતાય પાશ્ચાત્ય પ્રણાલીની શિક્ષણપ્રથામા લોકોને જોઈતા લાભ પણ પૂરા પાડવા

સોસાયટીના કાર્યકર્તાઓની નેમ પહેલેથી જ ગુલામીમાનસ વિરુદ્ધ બંડ કરવાની હતી એવો પ્રસંગ ઉપસ્થિત પણ થયો. સાયમન કમિશન વખતે ગુજરાત કૉલેજના કેટલાક વિદ્યાર્થીઓએ વિરોધસૂચક ન્યાય્ય વર્તન આચર્યું ને તરત જ એ વખતના એ કૉલેજના ગોરા આચાર્યે એ પ્રત્યે કડક વલણ અખત્યાર કરી વિદ્યાર્થીઓ તેમ જ દેશના સ્વમાન ઉપર સીધો ઘા કર્યો આ બનાવ ખરેખર કસોટીનો હતો. કાં તો ગુલામી સામે થવું કાં તો નમાલી ઘેટાવૃત્તિ પોષવી પણ અત્યાર અગાઉ બાપુજીએ આખા દેશમાં સ્વતંત્રતાની ભાવનાની એવી ચિનગારી પેટાવી હતી કે હવે લોકો અને વિદ્યાર્થીઓ આવા સ્વમાનભંગ સહેવા તૈયાર ન હતા અને ખરેખર ત્યારે [illegible]

છીએ કે ગમે તેવાં કડક પગલાં સરકારે લેવા ધાર્યાં છતાં વિદ્યાર્થીઓ અને કાર્યકર્તાઓ અણનમ રહ્યા અને એના પરિણામસ્વરૂપે અમદાવાદ એજ્યુકેશન સોસાયટીની સ્થાપનાના વિચારે ઊંડાં મૂળ ઘાલ્યાં, ત્યારે સ્વાતંત્ર્યપ્રેમી મન પ્રફુલ્લ થાય છે

અહેવાલમાં બીજો એક પ્રજાસ્વમાનભંજક પ્રસંગ વાંચવા મળે છે કે જ્યારે એ જ ગોરા આચાર્યે અને બીજા દેશી અમલદારોએ "વંદે માતરમ્"ના ગાન સામે અણગમો દર્શાવેલો ખરેખર, આ પ્રસંગ પણ કસોટીનો જ લેખાય. એ વખતે સરકારની ખફગી વહોરવી કે નમી પડવું એ બે વિકલ્પ હતા; પણ આખા દેશમાં જે સ્વમાનની ભાવના સ્થિરપદ થઈ હતી, તેથી કાંઈ ગુજરાત જરા પણ અસ્પૃષ્ટ ન હતું ઊલટું, એમ કહેવું જોઈએ કે, આ વખતે તો જેલની તપસ્યાથી એ ભાવના વધારે દૃઢ અને સ્પષ્ટ થઈ હતી તેથી જ આપણે જોઈએ છીએ કે એ ગોરા આચાર્યની તુમાખીની ભૂખ ભાંગે એવો વિનમ્ર પણ મક્કમ જવાબ સોસાયટીના કાર્યકર્તાઓએ પરખાવ્યો. સાથે જ નવી નવી કોલેજોની સ્થાપનાનો નિરધાર પણ વધારે વેગવાન બન્યો દેખીતી રીતે એમ લાગે છે કે ગુજરાતનું આ ગૌરવશાળી બળ, પણ એનાં મૂળમાં ઊંડે ઊતરીને જોતા મને તો એમ લાગે છે કે આ પ્રજાના સ્વમાનની વૃત્તિ અને એ માટે ખપી જવાની દૃઢતા એ બને પૂજ્ય ગાંધીજીના આફ્રિકાના જીવનમાં ધરમૂળથી ગુલામીવૃત્તિને નિવારવા માટે પ્રગટેલા શૂરમાં છે

સોસાયટીના સભ્યો અને કાર્યકર્તાઓમા કેટલાય એવા છે કે જેઓ અત્યારે આપણી સામે નથી, પણ એમણે સોસાયટીએ કરવા ધારેલ વિશ્વ-વિદ્યાલયાનુલક્ષી પ્રવૃત્તિમા નાનોસૂનો ફાળો નથી આપ્યો. એમાથી આ અહેવાલ સૌથી પહેલા આપણું ધ્યાન સર લલ્લુભાઈ આશારામ પ્રત્યે ખેંચે છે એ જમાનામાં, કે જ્યારે હજી વિશ્વવિદ્યાલયનો વિચાર જોઈએ તેવો દૃઢ થયો ન હતો, તે વખતે એમણે કેવી અગમચેતી વાપરી અને લૉ કોલેજના પાયા નંખાવ્યા ! જે વસ્તુ આજે સહેલી લાગે છે તે એ કાળે એટલી સહેલી ન હતી સાથે જ આપણે જોઈએ છીએ કે સર લલ્લુભાઈના વિચારને અમદાવાદે તરત જ કેવો વધાવી લીધો ! સામાન્ય રીતે સોસાયટીના હિતચિંતકોએ કામ વહેંચી લીધેલા કેટલાકે નાણાં એકઠાં કરવાની જવાબદારી માથે લીધી તો બીજા કેટલાકે સંસ્થાને અંગે જરૂરી એવા વ્યવહારુ કામોની જવાબદારી માથે લીધી સ્વ બલ્લુભાઈ ઠાકોર નાણાં ઉઘરાવનારાઓમા મોખરે હતા એમનું નામ કેળવણીકારો અને અમદાવાદીઓને તો ભાગ્યે જ અજાણ હશે, એટલે

અહીં તો એમના નામનો ઉલ્લેખ માત્ર પૂરતો છે, પણ હીરાલાલ કાપડિયા અને ગોવિંદલાલ દામોદરદાસ શાહ જેવા બીજા એવા પણ છે કે જેમને સર્વસામાન્ય ગુજરાતી અને અમદાવાદી સુધ્ધાં ભાગ્યે જ જાણતા હશે. પણ તેઓએ નાણાં ઉઘરાવવામા અને બીજાં વહીવટી કામમાં સ્મરણીય કાળો આપ્યો છે, એ અહેવાલમાંના ટૂંકા સૂચનથી પણ જણાઈ આવે છે.

અહેવાલમા સૌથી વધારે ધ્યાન ખેંચે તેવુ નામ ડો ધ્રુવનુ છે પ્રસગ છે તો એમના વિશે કાંઈક વધારે લખવુ યોગ્ય છે વાચકને પણ એ અનુપયોગી નહિ લાગે પડિત મદનમોહન માલવીયના આકર્ષ્યા અને પૂ ગાંધીજીના પ્રેર્યા ધ્રુવસાહેબ બનારસ ગયા. એ વાત સર્વવિદિત છે તેઓ ત્યાં પ્રો-વાઇસ ચેન્સલર હતા, પ્રિન્સિપાલ પણ હતા, અધ્યાપન પણ કરતા. એમના વિદ્યાપ્રધાન જીવનને હિન્દુ યુનિવર્સિટીમા કામ કરવાની તક મળી એ સાથે આ દેશમા ચાલતી અનેક યુનિવર્સિટીઓના પ્રત્યક્ષ સંપર્કમા આવવાની પણ તક સાપડી અને દેશવિદેશના અનેક ઉચ્ચ કક્ષાના વિવિધ વિષયોના પારગામી વિદ્વાનોના સપર્ક સાધવાની પણ પૂરી તક સાપડી તેમનુ મન વિશ્વવિદ્યાલયના સ્વરૂપનું સ્વતત્રપણે ચિતન કરતુ આ રીતે તેઓ વિદ્યાપ્રૌઢ ઉપરાંત અનુભવપ્રૌઢ પણ હતા. તેઓ રહેતા કાશીમાં, પણ તેમનુ મન ગુજરાતમા હતુ મને એક પ્રસગે કાશીમા કહેલું કે 'પડિતજી મને છોડતા નથી, અને ગુજરાતમાં કામ કરવાનુ મારું સ્વપ્ન દૂર ધકેલાતુ જાય છે' મે એક વાર પૂછ્યુ કે 'આજે સાંભળ્યું કે હવે આપ છૂટા થવાના છો' તો કહે કે 'હરિઇચ્છા, પણ મારે વર્ધાના તપસ્વીના આશીર્વાદ જોઈએ હુ ગાધીજીને લખેલ પત્રના જવાબની રાહમા છુ' મને એ વખતે થયેલુ કે આખી જિંદગી વિદ્યા અને શાસ્ત્રોનું બ્રાહ્મણત્વ કેળવનાર આ વયોવૃદ્ધ તપસ્યામા કેટલી ઊંડી શ્રદ્ધા ધરાવે છે! આવા પ્રૌઢ અને વયોવૃદ્ધ જ્યારે નિવૃત્તિ લઈ ગુજરાતમા આવ્યા ત્યારે એમણે ગુજરાત માટે પોતે જ કરવા ધારેલું કામ હાથમાં લીધું વિશ્વવિદ્યાલય આવશ્યક છે કે નહિ, આવશ્યક હોય તો એને અગે કેવી કેવી અને કેટકેટલી શાખાઓનું ઉચ્ચ શિક્ષણ આપવાની વ્યવસ્થા કરવી જોઈએ, એમના કઈ કક્ષાના અધ્યાપકો જોઈએ, વગેરે બાબતોનુ એમને અનુભૂત જ્ઞાન હતું તે જ્ઞાનનો લાભ સોસાયટીને સીધો મળ્યો છે, એ વસ્તુ આપણે અહેવાલમાના એમના વિશેના પ્રાસંગિક ઉલ્લેખોથી જાણવા પામીએ છીએ. સોસાયટીના પ્રમુખ તરીકે ધ્રુવસાહેબ નિમાયા અને એમના હાથ નીચે કે એમની સાથે કામ કરવામા સૌને એકસરખો આનદાનુભવ થવા લાગ્યો. જેવો વિદ્યા

ખાતાના અને કેળવણીપ્રિય હતા તેમને અને જેઓ વ્યાપારી માનસ ધરાવતા તેમને પણ એકસરખો ઉત્સાહ પ્રગટયો તેથી જ આપણે જોઈએ છીએ કે ધ્રુવસાહેબ ગુજરાતમાં આવ્યા પછી સોસાયટીના કાર્યે બહુ જલદી વેગ પકડયો ધ્રુવજીએ પહેલુ મૂર્ત કામ તો પ્રાચ્યવિદ્યા સંશોધન માટે ગુજરાત વિદ્યાસભાના આશ્રય નીચે સંસ્થા સ્થાપવાનુ કર્યું એ સસ્થાની કાર્યદિશા અને બીજી યોજના વિશેની વિચારણાનો યશ તેમ જ સરકારી મદદ મેળવવાનો યશ એમને ફાળે જ મુખ્યપણે જાય છે એમણે જે દીર્ઘદૃષ્ટિથી એ સસ્થા માટે કાર્યકર્તાની પસંદગી કરી હતી તેમાં જ સંસ્થાનાં ઊડાં મૂળ નંખાયેલાં, એમ મને અનુભવે લાગ્યું છે વિજ્ઞાનની જુદી જુદી શાખાઓ વિષયક તેમ જ ઉદ્યોગ વિષયક કોલેજો-ની પ્રજાકલ્યાણ માટે અગત્ય તેઓ પૂરેપૂરી સમજતા, છતાં પણ જે શિષ્ટ અને મગળ સસ્કારોથી માણસ માણસ બને છે તે સંસ્કારો એમણે આજીવન પીધેલા અને અન્યને દીધેલા હોવાથી એમનુ વલણ પ્રથમ આર્ટ્સ કોલેજની સ્થાપના તરફ વળે એ સ્વાભાવિક હતુ. એ પ્રમાણે એમણે એ કામની શરૂઆત પણ કરાવી એમની સાથે અને એમના હાથ નીચે કામ કરનાર સોસાયટીના કાર્યકર્તાઓ કે બીજા મહાનુભાવોના મનમા વિશ્વવિદ્યાલયની સ્થાપના માટે નંખાયેલાં અને સીચાયેલા બીજો બહુ ત્વરિત ગતિએ અંકુરિત થઈ રહ્યાં હતાં તેથી જ આપણે જોઈએ છીએ કે ધ્રુવસાહેબના સ્વર્ગવાસ દરમ્યાન દેશમાં સ્વાતંત્ર્યયુદ્ધનો પ્રચંડ જુવાળ આવેલો, છતા એ જુવાળ શમ્યો કે ન શમ્યો, ત્યા તો વિશ્વવિદ્યાલયનુ સ્વપ્ન મૂર્ત થાય છે અને ધ્રુવજીએ જે કહેલુ કે ‘ હુ સ્વપ્નમા નથી, પણ જાગૃત છુ ’ તે વચન ફળે છે. સાથે સાથે બીજી અનેક કોલેજો પણ અસ્તિત્વમા આવી જાય છે

અહેવાલ વાંચનારના લક્ષ ઉપર આવ્યા વિના રહી જ ન શકે તેવી એક બાબત સમગ્ર વિદ્યાપ્રવૃત્તિમાં સધાયેલો ધી–શ્રીનો સયોગ છે એક પ્રાચીન સૂત્ર અત્યારે સ્મૃતિપટ પર આવે છે. ધી–શ્રી સ્ત્રી હું અહી સ્ત્રીપદને માતા સરસ્વતીની આરાધના માટેની સસ્થાના પ્રતીક તરીકે લઉ છુ જો એવી આરાધના સાધન સાથે પણ સમજણપૂર્વક કરવી હોય તો એ માટે ધી–શ્રીનો જીવનદાયી સમન્વય આવશ્યક છે, જે સોસાયટીએ પહેલેથી જ સિદ્ધ કર્યો છે સરકાર સાથે કામ લેવાનુ તેમ જ બધારણ અને કાયદાકાનૂનની ગૂંચોમાથી ક્ષેમકર માર્ગ કાઢવાનુ ડહાપણ તે ધી, અને લક્ષ્મી ઉપાર્જન કરી એનો વિનિયોગ કરવાનુ ડહાપણ તે શ્રી આ બનેમા એકની પણ ઊણપ કે કચાશ હોત તો સોસાયટીએ કરવા ધારેલ પ્રગતિ આટલી ટૂક મુદતમા કદી સધાત

નહિ. એમ તો ગુજરાત વ્યાપારપ્રધાન હોઈ એની પ્રકૃતિમાં જ સમન્વયશક્તિ રહેલી છે, પણ પ્રજાહિતના શિક્ષણ જેવા મંગળવાહી ઉદ્દેશને સિદ્ધ કરવામાં એવો સમન્વય સધાવો એ જેવીતેવી સિદ્ધિ નથી. હું સમજું છું કે આ જ વસ્તુ સોસાયટીનો ધબકતો પ્રાણ છે

એસ. એલ. ડી. આર્ટ્સ કોલેજ માટે સખાવત કરતી વખતે અને ઇજનેરી કોલેજની સ્થાપના માટે સખાવત જાહેર કરતી વખતે અનુક્રમે સોસાયટી સમક્ષ તેમ જ સરકાર સમક્ષ સખાવત કરનાર શેઠશ્રીએ જે શરતો મૂકી છે તે સંખ્યામા છે તો સાવ ઓછી અને કદમાં સાવ નાની, પણ એનુ મર્મ વિચારતા માલૂમ પડે છે કે એમા પૂરુ વેપારી ડહાપણ સમાઈ જાય છે આર્ટ્સ કોલેજ માટેની શરતમાં મુખ્ય હેતુ એવો છે કે એમા અનુભવી સમર્થતમ અધ્યાપકો રોકવામા આવે, અને સોસાયટી બીજા ધનિકોમા પણ સખાવતવૃત્તિ વિકસાવે સરકાર સામેની શરતોમા પહેલી શરતનો હેતુ એ છે કે ઇજનેરી શિક્ષણની કોઈ પણ શાખા ઉપેક્ષિત ન રહે અને એનુ શિક્ષણ છેલ્લામાં છેલ્લી વિકસિત ઢબનું ઉત્તમ હોય વધારે ડહાપણ તો એમાં દેખાય છે કે શરત સરકારને છૂટે હાથે ખર્ચ કરી કોલેજ ચલાવવા બાધી લે છે મારી દૃષ્ટિએ એથીયે વધારે વ્યવહારુ ડહાપણ આગલી શરતમા છે, અને તે એ કે તત્કાળ કોલેજ સરકાર બંધાવે તો એના બાધકામ અને પૂર્ણ સાધનો સાથેનો જે ખર્ચ થાય તેનો અરધો ભાગ દાતા આપશે, એ બાધકામ તેમ જ સાધનો વસાવવાની જવાબદારી જો શેઠ કસ્તુરભાઈને સોપવામા આવે તો જ આ શરતમા કોલેજની શ્રેષ્ઠતા, કાર્યની શીઘ્રતા અને અપવ્યયથી બચત, એ ત્રણ તત્ત્વ સમાયેલાં છે. આપણે જાણીએ છીએ કે સરકાર ધારીએ તેટલી ઝડપથી કામ નથી કરી શકતી, અને એના કામમા પરહાથે કામ લેવાનું હોઈ ઘણો અપવ્યય પણ થાય છે અને કેટલીક વાર તો એ કામ ઉચ્ચ કોટિનુ ભાગ્યે જ હોય છે આ સર્વસાધારણ અનુભવોનો લાભ લેવા માટે જ દાતાઓએ આ શરતો મૂકી છે મારી દૃષ્ટિએ ભવિષ્યના દાતાઓ માટે આ વસ્તુ પદાર્થપાઠ જેવી ગણાવી જોઈએ દાન કરવુ એ તો સદ્‌ગુણ છે જ, પણ એની કાર્યસિદ્ધિની દૃષ્ટિએ યોગ્ય ચોકી કરવી એ તેથીયે મોટો વિવેકપૂર્ણ સદ્‌ગુણ છે

પૂ. ગાંધીજી વિદ્યમાન હતા ત્યારે પણ અમદાવાદમાં ચાલતી આ વિદ્યાપ્રવૃત્તિને ઉપસ્થિતિ દ્વારા આશીર્વાદ આપવાનો પ્રસંગ સુલભ નહોતો પણ એમના જમણા હાથ જેવા વજ્રપુરુષ સરદારશ્રીએ આ પ્રવૃત્તિ પ્રત્યે

હમેશાં પૂરો રસ લીધો હતો અને પોતાની જાતહાજરી તેમ જ વિશિષ્ટ પ્રયાસો દ્વારા સોસાયટીના કાર્યકર્તાઓના ઉત્સાહને ઉત્તેજન આપ્યું હતું કૉમર્સ કૉલેજના મકાનનું ઉદ્ઘાટન એમને હાથે થયું, તેમ જ યુનિવર્સિટીના મકાનનું ખાતમુહૂર્ત પણ એમણે કર્યું અને એમણે જ સલાહ આપી કે ખેતીવાડીની કૉલેજ આણંદમાં જ શરૂ કરવી ને એ ગુજરાત વિશ્વવિદ્યાલયનું અંગ બને. સરદારશ્રીની દીર્ઘ દૃષ્ટિ અને ગુજરાત વિશ્વવિદ્યાલય પ્રત્યે મમતાથી પ્રભાવિત થઈ શ્રી અમૃતલાલ શેઠે પોતાની દેણગી આણંદમાં ખેતીવાડીની કૉલેજ સ્થાપવા આપી એ વસ્તુ નોંધપાત્ર છે સરદારશ્રી ગુજરાત યુનિવર્સિટી ટ્રસ્ટના પહેલા પ્રમુખ અત્યારે શ્રી ગ વા માવલંકર પ્રમુખ છે, પણ એ તો સરદારશ્રીના સ્વર્ગવાસ પછી જ આ બધું જોતાં એક બાબત સ્પષ્ટ થાય છે કે ગાંધીજીની કલ્પના પ્રમાણે સ્થપાયેલી અને ચાલતી અનેક સંસ્થાઓમાં સરદારશ્રીને જેટલો રસ હતો તેથી જરાયે ઓછો રસ એમણે ગુજરાતમાં ખીલતી બીજી વિદ્યા-પ્રવૃત્તિઓ વિશે દાખવ્યો નથી. મહાન પુરુષની દૃષ્ટિ અને પ્રવૃત્તિ કાંઈ એક જ માર્ગમાં બંધાઈ નથી રહેતી, એ તો જ્યાં જ્યાં જેટલું જેટલું પ્રજાક્ષેમ જુએ ત્યાં ત્યાં તેટલું તેટલું ધ્યાન આપ્યા સિવાય રહી જ ન શકે

લો સોસાયટી હોય કે અમદાવાદ એજ્યુકેશન સોસાયટી હોય, પણ એ બંનેનું લક્ષ ગુજરાત વિશ્વવિદ્યાલયની કલ્પનાને મૂર્ત રૂપ આપવાનું પ્રથમથી જ રહ્યું છે, અને એ ઉદ્દેશની સિદ્ધિ અર્થે સોસાયટીના બધા પ્રયાસ થાય છે, એ બાબત અહેવાલ વાંચનારથી અજ્ઞાત રહે એમ છે જ નહિ વિશ્વ-વિદ્યાલય અને એની અંગભૂત બધી જ નાનીમોટી સંસ્થાઓ એક જ સ્થાનમાં પાસે પાસે હોય તો આખું એક વિદ્યાચક્રવાલ રચાય ને વિદ્યાના સંસ્કાર જાણ્યે-અજાણ્યે અરસપરસમાં સંક્રાન્ત થાય, એવા ઉદાત્ત ધ્યેયથી જ બધી સંસ્થાઓને એક સ્થળે સાંકળવામાં આવી છે બધી સંસ્થાઓ પોતપોતાની પ્રવૃત્તિ અંગે અને બીજી દૃષ્ટિએ ભલે સ્વતંત્ર હોય, છતાં એ બધીમાં સળંગસૂત્રતા અને એકવાક્યતા કે સંવાદીપણું સચવાઈ અને ઉત્તરોત્તર એ વિકસતું રહે એવો હેતુ સોસાયટીના કાર્યકર્તાઓની નજર સમક્ષ સદા રહ્યો છે, એ આપણે મકાનોની રચના, તંત્રનો સંબંધ અને કાર્યકર્તાઓની સમાન મમતા—એ બધા ઉપરથી જોઈ શકીએ છીએ

અહેવાલમાં ગુજરાત વિદ્યાસભાના આશ્રયે ચાલતા ભો જે વિદ્યાભવન-નો નિર્દેશ છે, તો એ વિશે પણ મારો વિચાર અહીં દર્શાવવો જોઈએ.

વિશ્વવિદ્યાલયની ભૂમિમાં ચાલતી અનેક સંસ્થાઓ છે, પણ મને એ બધીનો પરિચય નથી અંતરંગ કે નથી પૂરો એથી ઊલટું, વિદ્યાભવન વિશે હુ કાંઈક વધારે નિકટતાથી જાણું છુ એની ધ્રુવજીના હાથે સ્થાપના થઈ ત્યારથી અત્યાર લગી એની પ્રવૃત્તિમા મને વિશેષ રસ રહ્યો છે. ડૉ ધ્રુવજીના કેળવણી વિષયક ઘણા મનોરથ હતા, પણ પ્રાચ્યવિદ્યા સશોધન ગુજરાતમાં ઉચ્ચ કક્ષાએ ચાલે એ એમનો વિશિષ્ટ મનોરથ હતો મારા પ્રશ્નના જવાબમા એમણે એકવાર કહેલું કે હિન્દુસ્તાનમા યુનિવર્સિટીઓ ઘણી છે, પણ સર આશુતોષની રચનાને તોલે કોઈ આવી શકે એમ નથી એમણે કાશીમા ઉચ્ચ કક્ષાના પ્રાચ્યવિદ્યાવિષયક વિદ્વાનો જોયેલા કેટલાક તો એમની દેખરેખ તળે જ ભણાવતા. પણ તેઓ કહેતા કે, ‘ સશોધનવૃત્તિ સિવાય પ્રાચ્યવિદ્યાઓ નવયુગમા પ્રકાશી ન શકે ’ તેઓ હિદુ યુનિવર્સિટીમા જે કામ કરવા અશક્ત હતા તે જ કામ એમને ગુજરાતમા ચાલુ કરવાનો મનોરથ હતો એમની સામે પુરાતત્ત્વ મંદિરનો નમૂનો પણ હતો તેથી જ એમણે આ સસ્થા શરૂ કરી, એમ હુ સમજુ છુ. સદ્‌ભાગ્યે એ સસ્થામા ઉત્તરોત્તર ઘણો વિકાસ થયો છે અને પ્રાચ્યવિદ્યાના સશોધન વિશે ગુજરાત કશુ જ નથી કરતુ એ મહેણુ સહેવાપણુ રહ્યુ નથી. એમા ધગશવાળો સુસગઠિત વૃદ્ધ–યુવક અધ્યાપકવર્ગ છે, અને બીજી પણ કેટલીક સગવડ છે આ સસ્થાના સુપરિણામ દૂરવર્તી અને વ્યાપક બનાવવાની ફરજ કાં તો વિશ્વવિદ્યાલયની છે અને કા તો અમદાવાદ એજ્યુકેશન સોસાયટીની જો સોસાયટી સાયન્સ કૉલેજના ઉચ્ચ અભ્યાસને અદ્યતન બનાવવા લાખો રૂપિયા ઉદાર ભાવથી ખર્ચી શકે તો મારી દૃષ્ટિએ એણે આવા ભવનના કાર્યને પૂરેપૂરો વેગ આપવા અને સાધનસપન્ન બનાવવામા લેશ પણ સકોચ સેવવો ન જોઈએ છેવટે તો જીવનમા બહાર તેમ જ અદરના બધાં શુભ સત્ત્વ આવી જ સાંસ્કારિક કેળવણીથી જાગવાના અને વિજ્ઞાનની કોઈ પણ શાખામા પૂર્ણ પાવરધા થયેલ માનસની યાન્ત્રિકતામા રસ રેડવાનાં. તેથી હું સંશોધનનુ મૂલ્ય આંકનાર કાર્યકર્તાઓને સૂચવીશ કે તેઓ આ સસ્થાને વિકસાવી સોસાયટી કે એ દ્વારા વિશ્વવિદ્યાલયને સર્વાંગીણ બનાવે

છેવટે સોસાયટીના પ્રયાસોના મૂલ્ય વિશે તટસ્થભાવે કાંઈક કહેવુ જોઈએ આપણે જોઈએ છીએ કે આ પ્રવૃત્તિમા શ્રી ગ વા માવળંકર પહેલેથી જ એકસરખા ઓતપ્રોત દેખાય છે તેઓ બીજાં ગમે તેટલા કામ કરતા હશે, છતા એમનુ મન વિશ્વવિદ્યાલયના વિકાસને ગગનગામી બનાવવા ભણી જ રહેલુ મે જ્યારે ને ત્યારે અનુભવ્યું છે. છેલ્લા ... વર્ષનો જ મારો તો એમની સાથેનો પરિચય, પણ મેં એમનામા જે ...

વેલી, વિશાળ દૃષ્ટિ, અને નાનામોટા બધા જ કાર્યકર્તાઓ સાથે તાદાત્મ્ય સાધવાની વૃત્તિ જોઈ છે તે જ મને આવી પ્રવૃત્તિનું અસલી મૂલ્ય દેખાય છે. આનો ચેપ બીજા સહકારી કાર્યકર્તાઓમા પણ ઊતર્યા વિના રહી શકે જ નહિ જોકે શેઠ અમૃતલાલ કે કસ્તુરભાઈ સાથે મારો પરિચય છે જ નહિ, પણ આ અહેવાલ સાક્ષી પૂરે છે કે તેઓ વિદ્યાવિકાસના ચાલુ યજ્ઞમાં પૂરેપૂરો રસ લઈ રહ્યા છે આ રસનો ચેપ એમણે બીજા અનેક ધનિકોને પણ લગાડયો છે, અને એમા શકા નથી કે આ ચેપ ઉત્તરોત્તર વધતો જવાનો છે અત્યાર લગીમાં આ ચેપને લીધે જ શેઠશ્રી નવીનચદ્ર, ડૉ વિક્રમ સારાભાઈ, શેઠશ્રી શાતિલાલ મગળદાસ વગેરેએ વટબીજના વિસ્તારમા ફાળો આપ્યો છે, એ પણ સોસાયટીના પ્રયાસનુ જેવુતેવુ મૂલ્ય નથી. જે અનેક વિશિષ્ટ અધ્યાપકો અને બીજા કાર્યકર્તાઓ સોસાયટીને મળ્યા છે, તેમ જ જે પ્રતિભાશાળી વિદ્યાર્થીઓની સપત સોસાયટીને લાધી છે તે પણ સોસાયટીનુ મહામૂલું ધન છે આ રીતે આપણે સોસાયટીના પ્રયાસોનો વિચાર કરીએ તો આશા પડે છે કે એનો લોકકલ્યાણ કરવાનો મગળવાહી ઉદ્દેશ વધારે ને વધારે સિદ્ધ થવાનો જ છે અને ક્યારેક, કદાચ બહુ જ થોડા વખતમા, એવો પણ સમય આવશે કે ડૉ ધ્રુવને કેળવણીની બાબતમા ગુજરાત પછાત છે એવુ જે લાગતું તેના સ્થાનમા કાંઈ જુદું જ ચિત્ર એમનો સ્વર્ગવાસી આત્મા નિહાળશે *

---

* 'ગુજરાતનાં શૈક્ષણિક પ્રગતિ તથા વિકાસ. અમદાવાદ એજ્યુકેશન સોસાયટીના પ્રયત્ન' (૧૯૫૧)ની પ્રસ્તાવના.

ઉચ્ચ શિક્ષણની બોધભાષાનો પ્રશ્ન

[૩૦]

કેળવણીની નવી રચનાની ચર્ચાવિચારણામાં શિક્ષણના વાહનના પ્રશ્ને, એટલે કે બોધભાષાના પ્રશ્ને, ઠીકઠીક મતભેદો ઊભા કર્યા જણાય છે. એટલે આ પ્રશ્ન પર સ્વસ્થ ચિત્તે વિચાર કરી યોગ્ય નિર્ણય ઉપજાવવાની પુષ્કળ જરૂર છે એ પ્રશ્ન પ્રજાની કેળવણીનો હોવાથી નિર્ણય કરવામાં જો ભૂલ થાય તો આખી પ્રજાને એનો ગેરલાભ વેઠવો પડે

શુદ્ધ કેળવણીની દૃષ્ટિએ તો જે પ્રજાની જે ભાષા તે જ તેની બોધભાષા હોવા જોઈએ એ વિશે બે મત છે જ નહિ નવા વિશ્વવિદ્યાલયોને લક્ષીને વિચાર કરીએ ત્યારે પણ પ્રાથમિક અને માધ્યમિક શિક્ષણમા બોધભાષા તે સ્વભાષા જ હોવી જોઈએ એ વિશે પણ એકમત દેખાય છે. આપણે ત્યાં ગુજરાત વિશ્વવિદ્યાલયની પ્રવૃત્તિ ચાલી રહી છે, તેમા પ્રાથમિક અને માધ્યમિક શિક્ષણ માટે બોધભાષા ગુજરાતીથી ભિન્ન એવી કોઈ ભાષા હોય એમ સૂચવાયુ જાણ્યું નથી એ જ પ્રમાણે, હમણા જૂનાગઢમાં ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદનું સત્તરમુ સમેલન થયું, તેમા પસાર થયેલા એક ઠરાવમા ‘ વિદ્યાર્થીનો મનોવિકાસ પૂરેપૂરો થાય તે માટે ’ માતૃભાષા જ પ્રાથમિક અને માધ્યમિક શિક્ષણના માધ્યમ તરીકે રહેવી જોઈએ એમ જણાવાયું છે. એટલે જે વિચારવાની બાબત છે તે માત્ર ઉચ્ચ શિક્ષણ પરત્વે છે.

ઉચ્ચ શિક્ષણ જો ગુજરાતમાં આપવાનુ હોય અને તેનો લાભ ઉપરથી નીચે સુધી સૌને મળી રહે તેમ કરવાનો ઉદ્દેશ હોય, તો ઉચ્ચ શિક્ષણ પણ જો ગુજરાતી ભાષા દ્વારા અપાય તો અને તો જ એ શિક્ષણના બધા સુપરિણામો પ્રજાવ્યાપી બને, એ વસ્તુ કેળવણીની દૃષ્ટિએ તો દીવા જેવી ચોખ્ખી છે પહેલેથી સત્તાસ્થાને ચડી બેઠેલી અને અન્યથા ઘણા લાભો પૂરા પાડતી અંગ્રેજી ભાષા સામે પ્રજાનુ હિત વાચ્છનારા કેળવણીકારો વિરોધ ઉઠાવતા રહ્યા છે, તેનુ કારણ પણ આ જ હતુ ને, કે અંગ્રેજી દ્વારા મળતુ શિક્ષણ પ્રજાના બધા વર્ગોમાં પહોચતુ નથી ? અને હવે તો નિર્વિવાદપણે સ્વીકારાયું છે કે અંગ્રેજી ભાષા અનેક રીતે શીખવી અને જાણવી જરૂરી હોવા છતાં તે બોધભાષા તો ન જ રહી શકે. જેમ અંગ્રેજી તેમ બીજી કોઈ પણ ગુજરાતી-ભિન્ન ભાષા ગુજરાતમા ગુજરાતીનું સ્થાન બોધભાષા તરીકે તો

લઈ ન જ શકે. અને તેવુ જ બીજા પ્રાન્તોમાં બીજી પ્રાન્તભાષાઓનું.

તેમ છતાં પ્રજાવ્યાપી કેળવણી સિવાયના જુદા જુદા હેતુઓથી ઉચ્ચ શિક્ષણના વાહન તરીકે અત્યારે રાષ્ટ્રભાષાની હિમાયત કરવામાં આવે છે રાષ્ટ્રભાષાનુ શિક્ષણ વિવિધભાષાભાષી આપણા દેશમાં આન્તરપ્રાન્તીય વ્યવહાર માટે તેમ જ રાષ્ટ્રીય ઐક્ય અને અખડતાની ભાવનાને દૃઢ કરવા માટે અનિવાર્ય છે, એ વિશે પણ ભાગ્યે જ બે મત છે. કોઈ પણ પ્રાન્તના રહીશને મધ્યસ્થ વહીવટીતંત્રમા ગોઠવાતા જરા પણ મુશ્કેલી ન પડે, એટલું જ નહિ, સાંસ્કૃતિક વિષયોમાં પણ જરૂર પડતા વિચાર–વિનિમયને માટે સરલતાથી એને પ્રયોજી શકાય એટલુ એનુ શિક્ષણ આપવાનો પ્રબધ અવશ્ય થવો જોઈએ, એ વિશે પણ મતભેદને ઝાઝો અવકાશ રહ્યો નથી એટલે પ્રશ્ન તો રાષ્ટ્રભાષાને ઉચ્ચ શિક્ષણની બોધભાષા તરીકે સ્વીકારવી કે નહિ તે જ છે

જો એને એ રીતે સ્વીકારીએ તો નીચેનાં પરિણામો માટે આપણે તૈયાર રહેવું જોઈએ

૧ ઉપરથી નીચે સુધીની પ્રજામાં કેળવણીના દરેક પ્રવાહના એકસરખા લાભોની ઉપેક્ષા કરવી

૨. ગુજરાતી ભાષાની શક્તિ વિશેષ વિકાસ માટે નથી, અથવા હોય તોપણ એવા વિકાસનો આગ્રહ રાખવાની જરૂર નથી, એમ માની આત્મ-સતોષી થઈ જવુ અને તેના વિકાસને બહુ તો કાવ્ય–નાટકાદિ જેવા સાહિત્યિક વિષય પૂરતો મર્યાદિત કરી લેવાની વૃત્તિ કેળવવી

૩ સાહિત્યમાં પણ તેટલા જ વિકાસથી સતોષ માનવો કે જેટલો બીજા અનેક વિષયોના સાહજિક ખેડાણ વિના સભવિત હોય (સાહિત્ય પણ વિકાસની પૂર્ણ કળાએ ત્યારે જ પહોચી શકે જ્યારે બીજા અનેક વિષયોનુ જ્ઞાન પ્રજાવ્યાપી બનેલુ હોય અને લેખકને ગળથૂથીમાં મળેલુ હોય)

ઊલટ પક્ષે, જ્યારે ગુજરાતમા ગુજરાતી ભાષાને જ બોધભાષા કરવાની હિમાયત કરીએ ત્યારે એ પણ જોવુ જોઈએ કે, ગુજરાતી ભાષાની શક્તિ કેટલી છે અને તેના વિકાસની શક્યતા કેટલી છે? ઇતિહાસ અને અનુભવ એમ કહે છે કે ગુજરાતી ભાષામાં શિક્ષણના સમગ્ર પ્રદેશોને આવરવાની શક્તિ અવશ્ય છે. જ્યારે જ્યારે એને યોગ્ય હાથનુ સચાલન મળ્યુ છે ત્યારે ત્યારે એણે એ શક્તિ પુરવાર કરી છે છેલ્લે ગુજરાત વિદ્યાપીઠ અને ગાંધીજી દ્વારા ગુજરાતી ભાષાએ પોતાનું જે અસાધારણ પોત દર્શાવ્યુ છે તે એનું ઉત્તમ ઉદાહરણ છે.

ગુજરાતી ભાષા મૂળે સંસ્કૃત અને પ્રાકૃતનો બધો જ વારસો ધરાવે

છે અને બીજી વારસદાર બધી જ ભાષાઓની તે સમીપ છે, અર્થાત્ સમકક્ષ છે. એટલે એક અથવા બીજે કારણે જે વિષયો હજી લગી ગુજરાતી ભાષામાં થોડેઘણે અંશે નથી ખેડાયા તે વિષયો પણ પૂર્ણપણે ખેડવાની બાબતમાં ગુજરાતી ભાષામાં હિંદુસ્તાનની બીજી કોઈ પણ પ્રાન્તીય કે રાષ્ટ્રીય ભાષા કરતાં ઓછી શક્તિ છે એમ માનવાને એક પણ કારણ નથી. એવી સ્થિતિમા ગુજરાતી ભાષાને ગુજરાતમાં જ બોધભાષા ન સ્વીકારવી એનો અર્થ એ જ થાય કે તેની શકયતાને રૂંધી નાખવી અને સાથેસાથે પ્રજાનુ કાઠું પણ ઠીંગણું કરી નાખવુ.

આ પ્રશ્ન ભાષાભિમાનનો નથી, પણ પ્રજાકેળવણીનો છે અને જેમના તાટસ્થ્ય વિશે ભાગ્યે જ કોઈને કશી શકા આવે એવા પુરુષોએ રાષ્ટ્રસગઠન અને પ્રજાવ્યાપી કેળવણીની બેવડી દૃષ્ટિથી જુદે જુદે સમયે આ વિષયમા જે અભિપ્રાયો ઉચ્ચાર્યા છે તે શાન્તિથી વિચારવા જેવા છે

પૂજ્ય મહાત્માજીનો રાષ્ટ્રભાષા માટેનો આગ્રહ કોઈથી ઊતરે એવો નહોતો. ગુજરાત વિદ્યાપીઠના ઉચ્ચ અભ્યાસક્રમમા હિંદી–હિંદુસ્તાનીને એ દૃષ્ટિથી સૌથી પહેલા તેમણે જ સ્થાન આપ્યુ હતુ, પરંતુ બોધભાષા તરીકે તેમણે ગુજરાતીનો જ આગ્રહ રાખ્યો હતો. જેમને ગુજરાતી કે હિંદી બેમાંથી એકે ભાષા નહોતી ફાવતી તેવા બીજા પ્રાન્તના અધ્યાપકોને અપવાદરૂપે અંગ્રેજીનો અથવા તેમને ફાવતી બીજી ભાષાનો આશ્રય તેઓ લેવા દેતા, પણ આ લોકો પણ ગુજરાતી શીખી લે એવી તાકીદ તેઓ કર્યા જ કરતા જે પ્રદેશમાં રહેવાનુ હોય તે પ્રદેશની ભાષા માટે ગાધીજીનો આગ્રહ હમેશાં એ પ્રમાણે રહેતો. એક વાર ગાધીજી ગુજરાત વિદ્યાપીઠમા ભાષણ કરવાના હતા. મીરાંબહેન પણ એ પ્રસંગે હાજર હતાં ગાંધીજીએ ગુજરાતીમા ભાષણ કરવા માડ્યું, એટલે મીરાંબહેને સૂચવ્યુ કે, 'બાપુજી, હિંદી બોલીએ ' ગાંધીજીએ તરત પરખાવ્યું, 'ગુજરાતમા ગુજરાતીઓ સમક્ષ હુ હિંદી બોલુ ? તમે ગુજરાતી શીખી લો ' એ બહેન ઇંગ્લેંડથી આ દેશની સેવા કરવા આવેલા એ સુવિદિત છે ગાધીજીએ એમને પણ સૌથી પહેલાં દેશની સેવા કરવા દેશની ભાષા શીખી લેવાની શિખામણ આપી હતી, તે મુજબ એમણે હિંદી શીખી લીધેલુ સ્વાભાવિક રીતે જ દેશની સર્વમાન્ય થઈ શકે એવી ભાષાનો આગ્રહ એમનામાં સ્પષ્ટ ગયો, તો સા પણ ગાંધીજીએ એની મર્યાદા બતાવી

આચાર્ય કૃપાલાનીજીને પણ ગાધીજી ગુજરાતી શીખી લેવાની તાકીદ જ કરતા. તેઓ કહેતા . ' કૃપાલાનીજી આપકો આચાર્ય નો રહના હૈ, લેકિન

ગુજરાતી બનના હોગા.' ગિદવાણીજીને પણ એ તાકીદ કરતા બધા એ માટે પ્રયત્નશીલ પણ રહેતા, અને ગાંધીજીનુ કથન કોઈને કડવુ લાગ્યું જાણ્યું નથી, અર્થાત્ રાષ્ટ્રભાષા અને ગુજરાતી વચ્ચે વિદ્યાપીઠમાં કદી અથડામણી થઈ હોય એમ જાણ્યું નથી. રાષ્ટ્રભાષા માટે આટલો બધો આગ્રહ છતાં ગુજરાતમાં સૌનું મોઢું ગુજરાતી ભાષા તરફ રહેવું જોઈએ, એનો ગાધીજીને આ પ્રકારનો આગ્રહ હતો એની પાછળ દૃષ્ટિ એ હતી કે શિક્ષણના તમામ લાભો પ્રજાના થરેથરમાં પચે

શ્રી. કિશોરલાલ મશરૂવાળાની દૃષ્ટિ પણ આ જ પ્રકારની છે. એમને તો સ્વભાષાનોયે આગ્રહ નથી. એ તો માને છે કે 'માણસની કોઈ કુદરતી સ્વભાષા (માતૃભાષા કે પિતૃભાષા) છે જ નહિ' ભાષા અને લિપિને તે કેળવણી કે જ્ઞાન માનતા નથી, કેવળ એનાં વાહન કે સાધન માને છે છતાં 'સમૂળી ક્રાન્તિ' મા 'કેળવણી' નામના છેલ્લા વિભાગમા 'સિદ્ધાન્તોનો નિશ્ચય' એ પ્રકરણમાં એમણે બે વાતો પૂરતી સ્પષ્ટતાથી કહી છે એક એ કે, "સ્વભાષા દ્વારા શિક્ષણ મળે તે કરતાં (પરદેશમાં જઈને શીખવાનો પ્રશ્ન ન હોય તો) બાળપણથી છેવટ સુધી एक ज भाषा द्वारा शिक्षण मळे ए वधु महत्त्वनुं छे. शिक्षणनु वाहन वारेवारे वदलाय ए इष्ट नथी પ્રાથમિક શિક્ષણ એકમાં, માધ્યામિક બીજીમાં, અને ઉચ્ચ ત્રીજીમાં એ બરાબર નથી. . કમમાં કમ એક પ્રાન્તમાં એક જ ભાષા દ્વારા શિક્ષણ અપાય એ ઇષ્ટ છે."

બીજી વાત એમણે એ કહી છે, "કેળવણીનું સારામાં સારું અને સફળ વાહન કેળવણી આપનારની નહિ, પણ કેળવણી લેનારની સ્વભાષા છે"

આપણે ત્યા જે વિખવાદો છે તેથી શ્રી. મશરૂવાળા અજાણ તો નથી જ, છતાં એમણે આમ કહ્યું છે તેની પાછળની દૃષ્ટિ સમજાવી જોઈએ 'બોલનાર શિક્ષકે કે વ્યાખ્યાનકારે સાંભળનારની ભાષા શીખવી ઘટે, ન કે એથી ઊલટું.' એ નિયમ દર્શાવીને એમણે કહ્યુ છે કે, 'કેટલેક અંશે સભ્યતા પણ આ નિયમમા છે.'

બાબુ રાજેન્દ્રપ્રસાદે પણ આ પ્રશ્ન પરત્વે પોતાના મંતવ્યો 'હરિજન'-માં થોડાક વખત પર જ પ્રગટ કર્યાં હતા એમણે એમાં ઉચિત જ કહ્યું છે કે, "પાતપોતાની ફરજ બરાબર બજાવી શકે એટલા માટે વહીવટી અમલદારો સુપ્રીમ કોર્ટ, પ્રાન્તિક સરકારો અને હાઈકોર્ટના જ નહિ, પણ છેક નીચલી

અદાલતોના વકીલો અને ન્યાયાધીશો, ધારાસભાના સભ્યો વગેરેએ ઓછામા ઓછી હિંદ સમસ્તની સર્વમાન્ય ભાષા જાણી લેવી જોઈએ એના પરથી એ ફલિત થાય છે કે એ સર્વમાન્ય ભાષા સખ્યાબધ લોકોએ શીખવાની રહેશે અને લોકશાહીને સફળતાપૂર્વક ચલાવવી હોય તો તે સમગ્ર પ્રજાવ્યાપી નહિ, તો બની શકે એટલી બહોળી ફેલાયેલી હોવી જોઈએ ”

આ વિધાનના અક્ષરેઅક્ષર સાથે મળતા થવામા હિંદ એક અને અવિભાજ્ય રહે એવુ પ્રામાણિકપણે ઝખનાર કોઈને પણ કશો જ વાંધો હોવો ના જોઈએ. બાબુજીએ રાજભાષા એટલે કે હિંદની સમાન ભાષા અર્થાત્ હિંદી–હિંદુસ્તાનીનો અભ્યાસ ઊડાણથી તેમ જ વેગથી કરવાની હિમાયત કરી છે, એટલુ જ નહિ, અદાલતી કામકાજનો અને સંશોધનનો લાભ આખા દેશને એકસરખો મળતો રહે એટલા ખાતર તેમ જ નોકરીઓમાં પસંદગી પામવા ખાતર પણ એ ભાષામા સારી સરખી પ્રવીણતા મેળવવા પર ભાર મૂક્યો છે એમણે કહ્યું છે “કેળવાયેલા અથવા ભણેલાગણેલા ગણાવાનો દાવો રાખનાર હરેક માણસે હિંદની સમાન ભાષા એટલે કે રાજભાષા અને પોતાના પ્રદેશની ભાષા એમ બે भाषा ओछामा ओछी जाणवी रहेशे ”

પણ એમણે પણ વિદ્યાપીઠોમાં રાષ્ટ્રભાષા શિક્ષણનુ માધ્યમ બને એવો આગ્રહ સેવ્યો નથી નિરાગ્રહી બુદ્ધિથી એ અભિજાત પુરુષે આ પ્રમાણે સ્પષ્ટ કહ્યુ છે, “દેશભરમા વિદ્યાપીઠો ભલે હિંદની સમાન ભાષાને પોતાનું શિક્ષણનું માધ્યમ ન ગણે, પણ એ વિદ્યાપીઠોના વિદ્યાર્થીઓને આખા મુલકની સેવા કરવાની અને દેશભરની સમાન રસ અથવા હિતની બાબતોના સપર્કમા રહેવાની ઉમેદ હોય તો તેમનામાના ઘણાખરાનો હિંદની સમાન ભાષાનો ખંતથી અભ્યાસ કર્યા વિના છૂટકો નહિ થાય ” વળી કહ્યુ છે, “ વિશ્વ-વિદ્યાલયોમાંથો નીકળનારા જે વિદ્યાર્થીઓ ઊંચા સરકારી હોદ્દાઓ મેળવવાની આકાંક્ષા રાખતા હશે, રાજદ્વારી વ્યવસાયમા પડવા માગતા હશે, વધારે ઊંચી જાતની વિજ્ઞાનની અથવા યંત્રોદ્યોગની વિદ્યાઓનુ જ્ઞાન મેળવવા માગતા હશે, વૃત્તવિવેચનના વ્યવસાયમા પડવા ઇચ્છતા હશે, તે સૌને હિંદની સમાન ભાષામાં સારું પ્રાવીણ્ય મેળવવાની સગવડ મળવી જ જોઈએ આ આશય પાર પાડવો હોય તો માધ્યમિક શાળાના ચોથા ધોરણથી ઉપરના ધોરણના અભ્યાસક્રમના હિંદની સમાન ભાષાને બીજી ભાષાના ફરજિયાત વિષય તરીકે બધા પ્રાંતોમાં રાખવો પડશે અને દરેક રીતે તેના અભ્યાસને પ્રોત્સાહન આપવુ જોઈએ '

આ પ્રસંગે, ૧૯૪૫માં જયપુર ખાતે મળેલા અખિલ હિંદ લેખક સંમેલનમાં યોજાયેલી એક વ્યાખ્યાનમાળાના મુખ્ય વક્તાના પદેથી પં. જવાહરલાલ નેહરૂએ જે મનનીય વિચારો પ્રગટ કર્યા હતા તે ટાંકવાનો લોભ જતો કરી શકતો નથી. 'એકીકરણના એક બળ તરીકે હિંદનાં પ્રાન્તીય સાહિત્યોનો વિકાસ' એ એ વ્યાખ્યાનમાળાનો વિષય હતો પં જવાહરલાલે પોતાના વ્યાખ્યાનમાં જણાવ્યું હતું કે, "પ્રાન્તીય ભાષાઓનો વિકાસ થવાને લીધે એકતાવિરોધી વલણ રચાયુ હોવાનુ મારી જાણમા નથી. અમુક અંશે એથી પ્રાન્ત વિશેની મમતા થોડીક વધી હોય કે પ્રાન્તીયતાને વેગ મળ્યો હોય અને પ્રાન્તની સંસ્કૃતિનો વિકાસ થયો હોય એ વિશે શંકા નથી. એક બંગાળી બંગાળી ભાષા વિશે અભિમાન ધરાવતો હોય, ગુજરાતી ગુજરાતી વિશે અને મહારાષ્ટ્રી મરાઠી વિશે, અને એમ બીજા પ્રાન્તવાળા પોતપોતાની ભાષા વિશે અભિમાન ધરાવતા હોય તેમા કશુ અજુગતું નથી એમનાં એ અભિમાન સકારણ છે, યોગ્ય છે, પણ હુ નથી માનતો કે આ લાગણી અને રાષ્ટ્ર સાથેની પોતાની તદાકારતાની વિશાલતર લાગણી વચ્ચે અથડામણ પેદા થતી હોય, કેમ કે, હુ સમજું છું ત્યાં સુધી, એકતા વત્તા ભિન્નતા વત્તા વિવિધતા એ તો હિંદની વિચારસરણીનો પાયો છે બધાને એક જ લાકડીએ હાંકીને એકસરખા કરી મૂકવાનુ એના સ્વભાવમા નથી એટલે આ બે લાગણીઓ વઢી મરતી નથી, કેમ કે, દરેક પ્રાન્ત, દરેક વિભાગ, પોતપોતાની ભૂતકાળની સાંસ્કૃતિક સિદ્ધિઓ વિશે ગર્વ અનુભવતો છતાં એમ સમજે છે કે પોતે વિશાલતર સમસ્તનો એક અંશમાત્ર છે

"હિંદમાં પ્રાન્તીય ભાષાઓનો વિકાસ થવાથી ભેદો અથવા તાત્ત્વિક અલગપણાની લાગણી વધે એવુ કશુ મને દેખાતું નથી. એક બીજો મુદ્દો પણ વિચારવા જેવો છે ખરેખર તો, જો હુ રવીન્દ્રનાથ ઠાકુરનો દાખલો ટાંકુ તો, એ કેવી અસાધારણ બાબત છે કે એમના જેવા માણસ લખે બંગાળીમાં તોપણ હિંદની બીજી એકેએક ભાષા ઉપર, હિંદી ઉપર તો ખાસ, અસર પાડી શકે છે એ એમ પુરવાર કરે છે કે સાંસ્કૃતિક ક્ષેત્રમા આ પ્રકારના દિગ્ગજો હમેશાં પ્રાન્તોના સીમાડા ઓળગી જાય છે જો એક ભાષા વિકસે તો એ જરૂર બીજીને વિકસવામા મદદ કરે છે, એ બીજી ભાષાઓને નડતરરૂપ થતી નથી. એ એની સાથે અથડામણ ઊભી કરતી નથી. એથી જ તો જે હિંદી અને ઉર્દૂની બાબતમાં કજિયો કરે છે તેમની સામે મારે મોટી ફરિયાદ છે

“ ...જો ભાષાનો પ્રશ્ન હિંદની એકતાનો ધ્વંસ કરે તો એમા ભાષાનો દોષ નહિ હોય, પણ હિંદમાં જે કેટલાક રાજકારણી મોરચા રચાયા કરે છે તેની કેટલીક વિચારસરણીઓનો દોષ હશે. મને પાકી ખાતરી છે કે ભાષાઓ જાતે થઈને કદી વિનાશનુ સાધન બનતી નથી કે વિભેદ તરફ દોરી જતી નથી....

“ભાષાઓના પ્રશ્નની પાછળ રહેલા રાજકારણને આપણે વેગળું મૂકીએ તો આખરે તો તાત્ત્વિક પ્રશ્ન આ જ રહે છે કે આપણામાં એક સમાન જીવનદૃષ્ટિ કે નીતિનાં સમાન ધોરણો છે કે કેમ ? જો એમાં મોટા ભેદો હોય તો એ ભેદો ભાષાઓમા પણ ઊતરી આવે અને અનેક દુષ્પરિણામો સરજે ...જો આપણામાં સદ્‌વર્તનનાં સમાન ધોરણો હોય તો આપણે ખુશીથી એકઠા રહી શકીએ ”

હમણાં જ થોડા વખત ઉપર શાન્તિનિકેતનમાં ભાષણ કરતાં પં. રાહુલ સાંકૃત્યાયન, જેમનો દેશવિદેશનો અને ખાસ કરીને રશિયન વિદ્યાસંસ્થાઓનો પ્રત્યક્ષ અને બહોળો અનુભવ છે, તેમણે આ જ પ્રશ્ન સંબંધી પોતાના જે વિચારો વ્યક્ત કર્યા હતા તે પણ નોધવા જેવા છે

“પશ્ચિમમા આરમેનિયા જેવા નાના દેશો અને એશિયામાં તિબેટ જેવો દેશ જો શિક્ષણની તમામ કક્ષાઓમા સ્વભાષાદ્વારા જ શિક્ષણ આપે છે તો હિંદના પ્રાન્તો શા માટે તેમ ન કરી શકે તે હુ સમજી શકતો નથી.”

(પંડિતજીના રાષ્ટ્રભાષા સંબંધી વિચારો નોંધવા અત્રે કદાચ પ્રસ્તુત ન ગણાય, પણ એ જ ભાષણમાં એમણે એ પણ કહ્યુ હતુ કે હિંદીએ જ્યારે તમામ પ્રાન્તભાષાઓની સમૃદ્ધિ આત્મસાત્ કરી લીધી હશે અને એ પોતે વિપુલ શબ્દભંડારવાળી સમર્થ ભાષા બની હશે ત્યારે જ તે રાષ્ટ્રભાષા તરીકે કામ આવી શકશે)

છેલ્લે આન્ધ્ર યુનિવર્સિટીના સમાવર્તન સમારંભ પ્રસંગે શ્રી અરવિંદે મોકલેલા સંદેશામાંથી નીચેનો મનનીય ફકરો પ્રસ્તુત લાગવાથી ઉતારું છું:

“ એકસપાટે બધુ એકસરખું કરી મૂકવામાં જ કેટલાકને સાચા સંપનાં, એક અને અખંડ રાષ્ટ્રના દર્શન થાય છે. એને સિદ્ધ કરવા એક જ રાષ્ટ્રીય

ભાષા દ્વારા વહીવટ, ભાષા, સાહિત્ય, કલા–કેળવણી એ સર્વનાં નિશ્ચિત ધોરણો ઉપજાવવાનો અને એકરૂપતા લાવવાનો એમને આગ્રહ છે. ભવિષ્યમાં આ કલ્પના કેટલે અંશે સિદ્ધ થઈ શકે એની આગાહી કરવી કઠણ છે, પણ અત્યારે તો એમ કરવું અવ્યવહારુ છે એ સાવ દેખીતુ છે. એમ કરવું એ ખરેખર હિંદના લાભમાં છે કે કેમ તે પણ શંકાસ્પદ છે દેશની પ્રાચીન વિવિધતાઓમાં જેમ મોટા લાભો રહ્યા હતા તેમ એમાં ત્રુટિઓ પણ હતી. પણ આ ભિન્નતાઓને લીધે આ દેશ જીવનકલા અને સંસ્કૃતિના અનેક જીવતા અને ધબકતાં કેન્દ્રોનુ ધામ બન્યો હતો, દેશની એકતામાં સમૃદ્ધ અને તેજસ્વી રંગોની ભભકવાળી વિવિધતાની ભાત પડી હતી બધુ ઐશ્વર્ય પ્રાન્તોની થોડીક રાજધાનીઓમાં કે સામ્રાજ્યના પાટનગરમાં ખેંચાઈ ગયું હોય અને બીજા નગરો અને પ્રદેશો એમના તાબેદાર બનીને રહેતાં હોય અથવા સાંસ્કૃતિક અર્થમાં ઘોરતા હોય એવુ અહી બન્યું નહોતુ આખો દેશ એના અનેક ભાગોમાં પૂર્ણ ચૈતન્યથી જીવતો હતો, અને એથી સમસ્ત રાષ્ટ્રની સર્જક શક્તિ ખૂબ જ વધી ગઈ હતી આ વિવિધતા હિંદની એકતાને ઘટાડે અથવા જોખમમા મૂકે એવી શકયતા હવે તો મુદ્દલ રહી નથી જે વિશાળ અતરો પૂર્વે લોકોને સરસા આવવામા અને પૂરેપૂરો વ્યહવાર કરવામાં અતરાયરૂપ હતાં તે તો હવે વિજ્ઞાનના વિકાસને લીધે અને વ્યહવારના સાધનો ઝડપી થવાને લીધે, અલગ પાડવાના અર્થમાં, અતરો જ રહ્યાં નથી સમવાયી ભાવના અને એને સપૂર્ણ કાર્યક્ષમ બનાવનારુ પરિપૂર્ણ તંત્ર પણ શોધાઈ ગયેલ છે આ સર્વ ઉપરાત, સ્વદેશભક્તિમૂલક એકતાની લાગણી પણ પ્રજાના હૃદયમાં એવી દૃઢ રોપાઈ છે કે હવે સહેજમા એ ઊખડી શકે એમ નથી. હવે તો ઉપરાષ્ટ્રો સમા પ્રાન્તોની વાજબી આકાક્ષાઓ તૃપ્ત કરવામા એકતાનો હ્રાસ થવાનો ભય છે, તે કરતાં તેમને તેમનુ સ્વાભાવિક જીવન નહિ જીવવા દેવામાં વિશેષ ભય છે . વિવિધતામાં એકતાનો સિદ્ધાન્ત આ દેશની પ્રકૃતિને પથ્ય છે અને એની પરિપૂર્ણતાની દિશામા જ એના અસ્તિત્વની મુખ્ય ગતિ થઈ છે एकमा बहुनो આવિર્ભાવ નિહાળવાની એની પ્રકૃતિ છે અને એ જ એને એના સ્વભાવ અને સ્વધર્મના પાયા પર સ્થિર ગોઠવી આપશે ”

જો ઉપર સૂચવાયેલી દૃષ્ટિથી ગુજરાતમા ગુજરાતી જ બોધભાષા થવા યોગ્ય હોય તો એની જગા રાષ્ટ્રભાષાને આપવાની પાછળ કઈ દૃષ્ટિ છે તે પણ આપણે વિચારી લઈએ એમ કહેવાય છે કે જો બોધભાષા ગુજરાતી હોય તો અખડ રાષ્ટ્રીયતામા ખલેલ પડે, અગર કાંઈ ને કાંઈ અનિષ્ટ

અથડામણ ઊભી થાય. પણ આ મુદ્દો કહેવામાં જેટલો સરલ છે તેટલો જ સમજવામાં અઘરો છે. જો ગુજરાત બીજા પ્રાન્તોની પેઠે એક જુદો પ્રાન્ત રહેવાનો જ હોય અને સાથે હિન્દુસ્તાનના એક ભાગ તરીકે પણ રહેવાનો જ હોય તો, તેની બધી વિશેષતાઓ અન્ય પ્રાન્તોની પેઠે કાયમ રહેવાની, એ કાંઈ ભૂંસાવાની નહિ જ. અને તે બધી વિશેષતાઓ જો હિંદુસ્તાનની અખંડતાને બાધક નહિ થાય તો માત્ર ભાષાની વિશેષતા અખંડતાને બાધક થશે એમ કહેવું એ કેટલુ અસંગત છે?

એ જ રીતે જો ઉચ્ચ શિક્ષણ પૂરતી રાષ્ટ્રભાષાને બોધભાષા તરીકે સ્વીકારવાથી અથડામણ ટળવાની હોય તો એ પણ ધ્યાનમાં રાખવુ ઘટે કે પ્રાથમિક અને માધ્યમિક શિક્ષણની બોધભાષા ગુજરાતી રહેવાથી અથડામણનું મૂળ તો કાયમ જ રહેવાનુ. કેળવણીની નવી રચનામા ઘણુ કરીને માધ્યમિક શિક્ષણને નાગરિકત્વ ખીલવવાનુ સ્વતંત્ર ધ્યેય રહેવાનુ અને કેળવણી ફરજિયાત થતા પણ રાષ્ટ્રમાં માધ્યમિક કક્ષા સુધીની કેળવણી જ ફરજિયાત થઈ શકવાની—જેમ આજે રશિયા આદિ પશ્ચિમના દેશોમાં છે તેમ; અને જો પ્રાન્તિક સ્વશાસન ચાલુ જ રાખવામાં આવે તો એમા આટલે સુધીની કેળવણી પામેલા સમાજની વિશિષ્ટ માન્યતાઓ, લક્ષણો, જરૂરતો આદિની છાયા પડવાની, એટલે કે શિક્ષણ પાછળની દૃષ્ટિ નીરોગી અને રાષ્ટ્રની અખંડતાને બાધક ન હોય તેવી રાખીને આ વિશિષ્ટત્વને નિરુપદ્રવી બનાવવુ પડવાનુ જો હકીકત આમ જ હોય તો પછી ઉચ્ચ શિક્ષણમા શા માટે અસ્વાભાવિક, કૃત્રિમ અને ઉપરથી લાદેલી બોધભાષાનો આગ્રહ સેવવો?

એક બીજો મુદ્દો પણ વિચારવા જેવો છે જે લોકો પ્રાથમિક અને માધ્યમિક શિક્ષણ ગુજરાતી ભાષા દ્વારા પામ્યા હશે તે ખરેખર તો ઉચ્ચ શિક્ષણ પણ એમાં જ લેવાનો આગ્રહ સેવશે અને ઉચ્ચ શિક્ષણના માધ્યમ તરીકેની બીજી કોઈ પણ ભાષા સામે બળવો પોકારશે અર્થાત્ અખંડતા સિદ્ધ કરવા માટેનો ઉપાય ઊલટો ભેદ અને કલહ વધારવાનુ સાધન બનશે એટલે જેઓ પ્રાન્તભાષા અને રાષ્ટ્રભાષા વચ્ચે તેમ જ પ્રાન્ત અને રાષ્ટ્ર વચ્ચે અથડામણનો ભય જોતા હોય તેમણે તો પ્રાથમિકથી તે ઉચ્ચ શિક્ષણ સુધી અને શિક્ષણની તમામ શાખાઓમા, માત્ર રાષ્ટ્રભાષાને જ સ્થાન આપવાનો સ્પષ્ટ આગ્રહ અને પ્રયત્ન રાખવો જોઈએ! એવો આગ્રહ કોઈ કે સમજી શકાય એવો છે. બાકી પ્રાથમિક અને માધ્યમિક શિક્ષણ પ્રાન્તીય ભાષામા આપવાથી રાષ્ટ્રીયતા

સાથે અથડામણ નથી આવવાની એમ માની તેટલાનો બચાવ કરવામાં આવે તો બચાવની એ જ દલીલ ઉચ્ચ શિક્ષણમાં પણ લાગુ પડે છે.

આ તો એક તાર્કિક દલીલ થઈ, પણ અથડામણનો પ્રશ્ન વિચારીએ ત્યારે જરા વધારે ઊંડા ઊતરવુ જોઈએ અથડામણ ઊભી થાય છે તે તો માનસિક દોષોને કારણે થાય છે ખાસ કરીને આર્થિક તેમ જ સત્તાના પ્રશ્નો એવા છે કે તેને લીધે માણસનુ મન વિકૃત થાય છે અને તે જ કારણે તે બીજાઓની સાથે અથડામણમા આવે છે જ્યા આવી માનસિક વિકૃતિ નથી હોતી એટલે કે આર્થિક અને રાજપ્રકરણી મહત્ત્વાકાક્ષા વધારે પડતી નથી હોતી ત્યા બે જુદી જુદી ભાષાઓ બોલનાર વચ્ચે પણ કદી અથડામણ મચી જાણી નથી એથી ઊલટું, એકભાષાભાષી વ્યક્તિઓ કે એક ભાષામાં વ્યવહાર કરતી કેળવણીની સસ્થાઓમાં પણ જ્યાં અર્થ અને સત્તાના લોભથી માનસ વિકૃત બને છે ત્યાં કદી અથડામણ થયા વિના રહેતી નથી એવી સ્થિતિમા એમ માની લેવુ કે ભાષાભેદ એ જ અથડામણનું કારણ છે, તે તો એમ માનવા બરાબર છે કે ચહેરાભેદ અને પોશાકભેદ પણ અથડામણનાં કારણો છે

ધારો કે રાષ્ટ્રભાષાને માત્ર ગુજરાત જ નહિ પણ બીજા બધા પ્રાન્તો બોધભાષા તરીકે માન્ય રાખે—જેમ કે અત્યાર લગી અગ્રેજી ભાષાને માન્ય રાખતા આવ્યા છે—તો શું એમ માનવુ કે હવે પ્રાન્ત પ્રાન્ત વચ્ચે તેમ જ પ્રાન્ત અને કેન્દ્ર વચ્ચે અથડામણનો બધો સભવ ટળી ગયો? આપણે જોયું છે અને અત્યારે પણ જોઈએ છીએ કે અગ્રેજી ભાષામાં સમાનપણે વ્યવહાર કરનારમા પણ જ્યારે અને જ્યા અર્થ અને સત્તાની બાબતમાં લોભ ઉદય પામ્યો છે ત્યારે અને ત્યા અથડામણ ઊભી થઈ જ છે જો આ અનુભવ અબાધિત છે તો અગ્રેજીના સ્થાનમા માત્ર રાષ્ટ્રભાષા આવવાથી અથડામણ કેવી રીતે ટળવાની? એટલે જો પ્રાન્તીયતા અને રાષ્ટ્રીયતાની અથડામણ ટાળવી હોય (અને તે ટાળવી જ જોઈએ) તો એ માટે માનસિક તુલા સમધારણ કરવાનો જ એકમાત્ર માર્ગ છે, જે ભારતના બધા સુપુત્રોએ દર્શાવ્યો છે મહાત્માજી અને શ્રી અરવિંદે પણ એના પર જ ભાર દીધો છે

પ્રાન્તભાષાઓ અને રાષ્ટ્રભાષા વચ્ચે અથડામણનો કોઈ જ સંભવ નથી

એ તો જીવન અને ઉપદેશ દ્વારા ગાંધીજીએ સિદ્ધ કરી બતાવ્યું છે. રાષ્ટ્રની અખંડતાને સિદ્ધ કરવા એમણે હિંદુસ્તાનીને આગળ કરી અને છતા ગુજરાતમાં ગુજરાતીનો મહિમા વધારી આપ્યો. એમની પ્રવૃત્તિથી ન હાનિ થઈ ગુજરાતી ભાષાને કે ન રાષ્ટ્રભાષાને ઊલટું, બંનેનાં તેજ વધ્યાં. જીવનનાં વિવિધ ક્ષેત્રોમાં કોણ એમના જેટલુ ઘૂમી રહ્યું છે કે જેથી એમને પહોંચી તે કરતાં વધારે અથડામણ એને પહોંચે? એટલે કે અથડામણના તત્ત્વો ભાષામાં ભર્યાં નથી, પણ માણસના મનમા ભર્યા છે. ગાંધીજીનુ મન ચોખ્ખું હતુ, તેથી અથડામણ થઈ નહિ. ઊલટુ, પ્રાન્તભાષા અને રાષ્ટ્રભાષાની સેવા થઈ. એટલે માનસિક સમતુલા સાચવવી એ જ અથડામણ ટાળવાનો રાજમાર્ગ છે. એ નહિ હોય તો ગમે તેટલી યુક્તિપ્રયુક્તિઓ પણ કામ નહિ આવે.

જો માનસિક સમતુલા જળવાશે—અને એ જ કેળવણીનો પ્રશ્ન છે—તો આપણા દેશમાં પ્રાન્તપ્રાન્તની જે વિશેષતાઓ છે તે રાષ્ટ્રના સાર્વત્રિક જીવનને ઉપકારક થઈ પડશે એક ડંડે બધાને એકસરખા કરી મૂકવાનો સ્વભાવ આપણી સસ્કૃતિએ કદાપિ ખીલવ્યો નથી વિવિધતામાં એકતા સિદ્ધ કરવી એમા કંઈ રહસ્ય હોય તો એ જ કે પોતાની વિશેષતા કોઈ પણ પ્રજાએ કદી છોડવી નહિ, પણ તેને એવી રીતે વિકસાવવી, જેથી બીજી પ્રજાઓની વિશેષતાઓ સાથે તે સવાદી બને દરેક પ્રાન્તવાસી પોતાની સ્તનપાનની ભાષામા જે પ્રતિભા વિકસાવે તેનાં જે કંઈ સારા પરિણામો આવે તે બધાનો લાભ રાષ્ટ્રભાષાને તો વિવિધતાઓના–વિશેષતાઓના સંવાદથી જ મળી શકે. ગુજરાતી ભાષા પોતાની પૂર્ણ વિશેષતા સાચવી, તેને વિકસાવીને પણ રાષ્ટ્ર-ભાષા સાથે સપૂર્ણપણે સંવાદ સાધી શકે તેમ છે તેથી ઊલટું, જો રાષ્ટ્રભાષાને જ પૂર્ણ માનીને ચાલવામા આવે તો ગુજરાતીની વિશેષતાનો સંપૂર્ણપણે લોપ થવાનો ભય છે.

આ પ્રમાણે જો ગુજરાતી ભાષા બધી રીતે બોધભાષા થવાને પાત્ર ઠરે છે તો તે રાષ્ટ્રભાષાને અને રાષ્ટ્રની અખડતાને કોઈ પણ રીતે અવરોધ નથી કરતી એમ પણ સિદ્ધ થાય છે અત્યારે જે અંગ્રેજીનું સ્થાન છે લગભગ તે જ રાષ્ટ્રભાષાને હવે મળવાનુ છે, એટલે કે, પ્રાન્તપ્રાન્તીય સંપર્ક, વ્યવહાર અને વિચારવિનિમયનું તે જ હવે મુખ્ય દ્વાર થશે; એટલે ઉચ્ચ શિક્ષણમાં પણ તેને અનિવાર્યપણે સ્થાન મળવુ જ જોઈએ. માત્ર એને

કૃત્રિમપણે બોધભાષાનું સ્થાન આપીને પ્રાન્તીય વિશેષતાઓને ગળાટૂંપો ન દેવો જોઈએ, એ જ અહીં વક્તવ્ય છે.*

—બુદ્ધિપ્રકાશ, જાન્યુઆરી ૧૯૪૯.

* એમ કહેવામાં આવ્યું છે કે અંગ્રેજીની પેઠે આપણા દેશમાં એક કાળે સંસ્કૃત ઉચ્ચ શિક્ષણની બોધભાષા હતી, અને તે જ રીતે હવે રાષ્ટ્રભાષાને એ સ્થાન મળવું જોઈએ. આ વિધાન સંસ્કૃત પૂરતું તો સાવ મિથ્યા છે. સંસ્કૃત કોઈ કાળે શિક્ષણનું વાહન હતી નહિ અને અત્યારે પણ નથી. સંસ્કૃતમાં લખાયેલા ગ્રંથો જ્યાં જ્યાં અને જ્યારે જ્યારે શીખવાય છે ત્યાં ત્યાં અને ત્યારે ત્યારે સર્વત્ર નિરપવાદ પદ્ધતિ એ જ રહી છે કે શીખવનાર જે ભાષા સારી રીતે જાણતો હોય તેમાં અગર તો શીખનારને જે ભાષા તદ્દન પોતાની હોય તેમાં એનું શિક્ષણ આપવું. દક્ષિણ, ઉત્તર કે પૂર્વના કોઈ પણ સંસ્કૃતશિક્ષણપ્રધાન કેન્દ્રમાં જઈને જુઓ તો અધ્યાપકો અને વિદ્યાર્થીઓ કઈ રીતે શિક્ષણ આપે ને લે છે તે પરથી પૂરો ખ્યાલ આવી જશે. સંસ્કૃતની વ્યાપકતા એટલા જ અર્થમાં છે કે હિંદુસ્તાનનો કોઈ પણ પ્રાચીન પરંપરાનો વિદ્વાન તે ભાષામાં લખવાનું પસંદ કરે છે અને બીજા ગમે તે પ્રાન્તનો વિદ્વાન તે ભાષામાં લખાયેલું સમજી શકે છે. સાંસ્કૃતિક, ધાર્મિક અને આધ્યાત્મિક એ બધા વિષયો સંસ્કૃત ભાષા દ્વારા ઓછેવત્તે અંશે ખેડાયેલા છે, પણ સંસ્કૃતે કદી સંસ્થાગત રૂપે વ્યાપકપણે બોધભાષા તરીકેનું સ્થાન લીધું નથી અને તે લેવા જાય તો, એટલે કે અધ્યાપક સંસ્કૃતમાં શીખવે તો, વિદ્યાર્થીઓને ખાલી હાથે જ પાછા ફરવું પડે. એટલે પૂર્વકાળમાં જુદી જુદી ભાષાઓ વચ્ચે અનુસંધાન કરનારી મુખ્યપણે જે ભાષા હતી અને અત્યારે પણ છે તે સંસ્કૃત અને તેમ છતાં તે પોતાના ક્ષેત્રમાં બોધભાષાનું સ્થાન લઈ શકી નથી. એ ભાષા માત્ર શીખવાના વિષય તરીકે તેમ જ સાંસ્કૃતિક, આધ્યાત્મિક અને ધાર્મિક વિષયોને ગ્રંથબદ્ધ કરવાના મુખ્ય વાહન તરીકે કામ આવી છે.

ઉચ્ચ શિક્ષણની બોધભાષા

[૩૧]

'**બુદ્ધિપ્રકાશ**'ના જાન્યુઆરી ૧૯૪૯ના અંકમાં 'ઉચ્ચ શિક્ષણની બોધભાષાનો પ્રશ્ન' એ શીર્ષકે મારો એક લેખ પ્રગટ થયો હતો તેમાંના કેટલાક મુદ્દાઓ પરત્વે આણંદથી પ્રગટ થતા 'વાણી' માસિકના સં ૨૦૦૫ના મહા–ફાગણ–ચૈત્રના સંયુક્ત અંકમા આચાર્ય ડોલરરાય માંકડે પોતાનો મતભેદ પ્રગટ કર્યો છે ત્રણ મુદ્દાઓ તરફ એમણે મારુ ખાસ ધ્યાન ખેચ્યું છે, જે માટે હુ તેમનો આભારી છુ. એમનો લેખ સાભળ્યા પછી 'બુદ્ધિપ્રકાશ'માંનો મારો ઉપર્યુક્ત લેખ હુ ફરીથી તપાસી ગયો, પણ એમાં એવુ કશુ ન જણાયું જેમાં વિચારપરિવર્તનને અવકાશ હોય તેમ છતાં આ. માંકડે રજૂ કરેલા મુદ્દાઓને એક પછી એક વિચારુ.

૧. એમનો પહેલો મુદ્દો એમ છે કે આપણે ઉચ્ચ શિક્ષણની અર્થાત્ સ્નાતક અને અનુસ્નાતક કક્ષાના શિક્ષણની વાત કરીએ ત્યારે સામાન્ય જન-સમાજની એટલે કે નીચલા થરો (masses)ની વાત નહિ કરવી જોઈએ, કેમકે એ પ્રકારનું શિક્ષણ એટલું વ્યાપક થવાનુ જ નહિ. આથી નીચલા થરો સમજી શકે એ ભાષા ઉચ્ચ શિક્ષણમાં માધ્યમ તરીકે રહેવી જોઈએ એ દલીલ એમને ઠીક લાગતી નથી

આશ્ચર્યની વાત છે કે આ. માંકડે આ પ્રશ્નને કેવળ મહાવિદ્યાલયોમાં દાખલ થઈને ઉચ્ચ શિક્ષણ લેનારાઓનો ખ્યાલ કરીને વિચાર્યો ! એવાઓની સંખ્યા ઓછી જ હોય એ હકીકત તરત સ્વીકારી લેવાય એવી છે, પણ સવાલ એ નથી. સવાલ તો જ્ઞાન શી રીતે પ્રજાવ્યાપી થાય તેનો છે, અને શી રીતે પ્રજાવ્યાપી થતુ હોય છે તેનો પણ છે. પ્રજામાં કક્ષાના ભેદો તો હોય છે, પણ પ્રત્યેક કક્ષાને સુગમ પડે તે રીતે જ્ઞાનનુ વિતરણ કરવુ રહે છે. હવે જો ઉચ્ચ શિક્ષણની બોધભાષા સ્વભાષા કરતા જુદી હોય તો વિદ્વાનો એ ભાષામાં જ લખતા–વિચારતા થાય એને પરિણામે સામાન્ય જનોને સુગમ એવી શબ્દાવલી એમને ઝટ સૂઝે નહિ, જેથી પોતાની ભાષામાં લખે–બોલે ત્યારે પણ એમની ભાષામા સ્વાભાવિક ખામીઓ શિખરી આવી જરે નહિ. આપણે ત્યાં જ્યારે શિક્ષણનું વાહન અંગ્રેજી ભાષા હતી ત્યારે શાળામાં

વર્ગોમાં એને માધ્યમ તરીકે પ્રયોજીને એના ઘડતરને વેગ મળે તેમ કરવું જોઈએ, જેથી ઉચ્ચ શિક્ષણ સહેલાઈથી જનતાના થરેથરમાં પચવા માંડે, અને પરિભાષા એક થવાથી, વળી શાળા–મહાવિદ્યાલયમાં ભણનાર વિદ્યાર્થીને ફરજિયાત બીજી ભાષા તરીકે રાષ્ટ્રભાષાનું શિક્ષણ ઠેઠ સુધી મળતું રહેવાનું તેથી સાંસ્કૃતિક સંપર્કમાં જરાય વિઘ્ન નહિ આવે અને પ્રાન્તીય વિશેષતા દ્વારા રાષ્ટ્રભાષાની સમૃદ્ધિ પણ વધશે વિદ્યાર્થીના મનોવિકાસને અને પ્રજાના ભાષાવિકાસને નિષ્કારણ હાનિ પહોંચાડ્યા વિના જો પ્રશ્નનો ઉકેલ આણવો હોય તો આ રીતે જ આણી શકાશે

૨ મે લખ્યું છે કે સંસ્કૃત બોધભાષા પ્રાચીન કાળમાં નહોતી અને અત્યારે પણ નથી તેની વિરુદ્ધ આ. માંકડે મુખ્યપણે એમ કહ્યું છે કે પ્રવેશપત્ર, પ્રશ્નપત્ર અને ઉચ્ચ વિષયોના જવાબો સંસ્કૃતમાં જ અત્યારે પણ લખાય છે, તો સંસ્કૃત બોધભાષા નથી એમ કેમ કહી શકાય ? મારો જવાબ એમ છે કે પ્રવેશપત્ર, પ્રશ્નપત્ર અને ઉત્તરો સંસ્કૃતમાં લખાય છે એટલા જ માત્રથી જો સંસ્કૃતને બોધભાષા કોઈ કહે તો તેની સામે મારો લેશ પણ વાંધો નથી, પણ બોધભાષાનો એટલો જ અર્થ હું નથી લેતો બોધભાષાનો એટલો જ અર્થ કરવો તે કોઈ પણ રીતે યોગ્ય નથી, એમ પણ હું માનું છું. બોધભાષાનો અર્થ હું એ કરું છું કે जे भाषा द्वारा भणनार सहेलाईथी विषय समजी शके अने अध्यापक सहेलाईथी समजावी शके ते बोधभाषा. આ અર્થમાં અત્યારે પણ સંસ્કૃત બોધભાષા નથી અને પહેલાં પણ નહોતી, એમ મારું નિરીક્ષણ અને ચિન્તન મને કહે છે. આ માંકડે જ્યારે એમ કહ્યું છે કે સંસ્કૃત બોધભાષા ન હતી તે મારે જ સાબિત કરવું, તો હવે આ વિશે કાંઈક વિસ્તારથી લખું તો અસ્થાને નહિ ગણાય.

અધ્યયન અને અધ્યાપનના બાવીસ વર્ષ લગભગ મેં કાશીમાં ગાળ્યાં છે અને જૂની ઢબે ચાલતી તેમ જ જુદા જુદા પ્રાન્તના ઉચ્ચતમ વિદ્વાનો જેમાં શીખવે છે એવી પાઠશાળાઓ અને મહાવિદ્યાલયોનો શીખવા અને શીખવવાની દૃષ્ટિએ મેં પરિચય સાધ્યો છે. તે ઉપરાંત મિથિલા અને બંગાળના વિશિષ્ટ સંસ્કૃત કેન્દ્રોનો પણ અધ્યયનની દૃષ્ટિએ તેમ જ અવલોકનની દૃષ્ટિએ થોડોક જાતઅનુભવ મને છે દૂર દક્ષિણમાં નથી ગયો, છતાં ત્યાંના વિશિષ્ટતમ અધ્યાપકોનો પણ કાશી, કલકત્તા અને મુંબઈ જેવા સ્થાનોમાં આ દૃષ્ટિએ થોડોક પરિચય સાધ્યો છે. હું પોતે જે રીતે શીખતો, બીજાને શીખતા જોતો અને શીખવતો તે વખતે પણ આ દૃષ્ટિએ હું હંમેશાં વિચાર કરતો

અને સહેજે ભૂતકાળનો પણ વિચાર કરતો. આ બધા અધૂરા ગણો કે પૂરા ગણો, તે અવલોકનને આધારે જ મેં મારું વિધાન કર્યું છે. મેં જોયું છે કે જ્યાં વિદ્યાર્થી અને અધ્યાપકની ભાષા સમાન હોય છે ત્યાં ઉચ્ચતમ વિષયોને શીખવતી વખતે પણ અધ્યાપક માતૃભાષા જેવી સંસ્કૃતભિન્ન ભાષાનો જ મુખ્યપણે આશ્રય લેતો હોય છે, કેમકે શીખનાર વિદ્યાર્થી એ રીતે વિષયને બહુ જ સરળતાથી ગ્રહણ કરી લેતો હોય છે એટલે જે અધ્યાપકો વિદ્યાર્થીના હિતની દૃષ્ટિએ જ શીખવતા હોય છે તે સીધી રીતે વિદ્યાર્થીને સમજાય એ જ ભાષાનો આશ્રય લેતા હોય છે. એવો એક પણ દ્રવિડિયન કે બંગાળી મોટો અધ્યાપક મેં નથી જોયો કે જે પોતાના પુત્રો કે સ્વભાષાભાષી વિદ્યાર્થીઓને શીખવતી વખતે માતૃભાષા છોડી માત્ર સંસ્કૃતનો આશ્રય લેતો હોય. જ્યાં વિદ્યાર્થી અધ્યાપકની પરિચિત ભાષા ન જાણતો હોય, અગર વિદ્યાર્થીની પરિચિત ભાષા અધ્યાપક બિલકુલ ન જાણતો હોય, તેવા દાખલાઓમાં અધ્યાપક ન છૂટકે સંસ્કૃત ભાષાનો આશ્રય લઈ ગમે તેવા વિષયોને પણ શીખવે છે એની ના નથી; પણ ક્રમે ક્રમે સ્થિતિ બદલાતી આવે છે. જો અધ્યાપક કરતા વિદ્યાર્થી જ વધારે ગરજુ અને જિજ્ઞાસુ હોય છે તો તે અધ્યાપકની પરિચિત ભાષા જાણી લે છે કેટલાક પ્રસંગોમાં વિદ્યાર્થી કરતાં અધ્યાપક અમુક કારણસર વધારે ગરજુ હોય છે એવી સ્થિતિમા અધ્યાપક વહેલો કે મોડો શીખનાર વિદ્યાર્થીની પરિચિત ભાષાથી કામ પૂરતો પરિચિત થઈ જાય છે એટલે એકંદરે ભણવા–ભણાવવાનુ ગાડું મુખ્યપણે સંસ્કૃતભિન્ન ભાષાને માર્ગે ચાલે છે.

ગીર્વાણ ગિરાનો જે મહિમા વિદ્યાર્થી, અધ્યાપક કે અમુક કોટિના સમાજમા પ્રતિષ્ઠિત થયો હોય તેની સાથે ઉપર વર્ણવી તે વસ્તુસ્થિતિને ભેળવી દેવાની ભૂલ આપણે ન કરવી જોઈએ એ મહિમાને લીધે સંસ્કૃતમાં વ્યાખ્યાનો અપાય કે બીજી–ત્રીજી રીતે એ પ્રયોજાય એમ બને, પણ ભણવા-ભણાવવાની સ્વાભાવિક રીત તો ઉપર બતાવી તે જ હતી, છે અને હોઈ શકે. એમ હુ સમજું છુ

તો પછી પ્રશ્ન થશે કે સંસ્કૃતના અસાધારણ વિદ્વાનો સંસ્કૃત ભાષામાં જ ઉચ્ચતમ વિષયોને બહુ જ ઊંડાણથી લખી ગયા તે કેમ સંભવ્યું ? ઉત્તર અહીં વિસ્તારથી આપવાની જરૂર નથી પણ સંક્ષેપમાં એટલું કહેવું પ્રસ્તુત ગણો કે બીજી ભાષાનો આશ્રય લેવા છતાં મુખ્યપણે શીખવાના ગ્રંથો તો સંસ્કૃતમાં જ લખાયેલા હોય છે—વેદના વારાથી, અને એ ગ્રંથોને જ [illegible]

તેમ જ વિષયની દૃષ્ટિએ શીખવા ને શીખવવા માટે એવું એક સંસ્કૃતમય માનસિક ઘડતર ઊભું થાય છે કે તેને લીધે એવા ગદ્યગ્રંથો જ નહિ, પણ પદ્યરચનાઓ પણ કરવી તેમને સરળ બને છે.

૩. મારા ઉપર્યુક્ત લેખમાં મેં ગાંધીજી વગેરેના મતો છાપેલા તે આ. માંકડને ભ્રામક લાગ્યા છે તેઓ કહે છે, "એ મતો જ્યારે ગાંધીજી વગેરેએ ઉચ્ચાર્યા હતા ત્યારે આ પ્રશ્ન આ રૂપમા એમની પાસે હતો જ નહિ; એ વખતે તો અંગ્રેજીનુ જ સાર્વત્રિક સામ્રાજ્ય હતુ અને એને ટાળવુ એ જ મુખ્ય પ્રશ્ન હતો એ પ્રશ્ન આજના રૂપમાં ગાંધીજી પાસે હોત તો એ શો મત આપત તેના વિશે કશું જ કહેવુ અપ્રસ્તુત છે" આ સંબંધમાં મારે એટલું જ કહેવાનુ છે કે ગાધીજીના અવસાનને ફક્ત દોઢ જ વર્ષ વીત્યુ છે. એટલા ટૂંકા ગાળામાં પરિસ્થિતિ કે પ્રશ્નનુ રૂપ એકદમ એવુ તે કેવું બદલાયું છે તે મારી સમજમાં આવતું નથી પરિસ્થિતિ બદલાયાની દલીલ મારે મતે નકામી છે. ઊલટું, સ્વરાજ્ય મળ્યાથી તો જે પરિસ્થિતિ ગાધીજી વગેરેએ કલ્પેલી તે ઉપસ્થિત થઈ છે, કેમ કે અંગ્રેજોના જવાની સાથે અગ્રેજીની ઉપાધિ પણ ગઈ છે આ પરિસ્થિતિ આપણી સામે પ્રત્યક્ષ રૂપે આવતા આપણને એ નવી લાગે, પણ નિત્યના પરામર્શથી ગાધીજી વગેરેને એ નવી ભાગ્યે જ હોય. વળી, વર્ષો સુધી સ્વાભાવિક ક્રમે ગાધીજીએ પ્રજાની કેળવણીમાં પ્રયોજવા માટેની ભાષાનો જે વિચાર સેવ્યો તે જ પં. જવાહરલાલ નેહરુ, રાજેન્દ્ર બાબુ, શ્રી કિશોરલાલ મશરૂવાળા, પં રાહુલ સાંકૃત્યાયન વગેરેના મસ્તિષ્કમાથી વહે છે, તે પણ આકસ્મિક યોગ તો ન જ હોઈ શકે પરિસ્થિતિના સમ્યક્ દર્શનનો જ એ પરિપાક છે વળી, પરિસ્થિતિ બદલાયાનો જેવો અનુભવ આ. માંકડને થયો છે તેવો આ વિદ્વાનોને થયો હોત તો એમણે જરૂર પોતાના વિચાર-પરિવર્તનની પ્રજાને જાણ કરી હોત ગાધીજી સિવાયના વિદ્વાનો આપણે સદ્ભાગ્યે હજી આપણી વચ્ચે છે તેમણે કંઈ વિચાર બદલાયાની જાહેરાત કરી નથી. અને ગાધીજીએ પોતાનો વિચાર ઉતાવળમા કે અધીરાઈમાં કે અંગ્રેજીના દ્વેષથી પ્રેરાઈને ઓછો જ ઘડ્યો હતો ? ગાધીજી કેવળ વિધ્વંસનો વિચાર કરતા નહોતા, સાથે રચનાનો પણ વિચાર કરતા હતા જેમ વિલાયતી કાપડની હોળી કરવાનુ કહીને પ્રજાને કાંતવાનો માર્ગ એમણે બતાવ્યો તેમ અગ્રેજી જેવી પરભાષાની ઉપાધિને કાઢ્યા પછી એના સ્થાનમાં કઈ ભાષા કઈ કક્ષામાં હોય તે સંબંધી એમની પાસે સ્પષ્ટ નિશ્ચય હતો ઠેઠ આફ્રિકામાં રહેતા હતા તે કાળથી તે મરણ પર્યંત એ નિશ્ચય એમણે ટકાવેલો. એમને મતે હિંદી રાષ્ટ્રભાષા હતી અને

કેળવણીનું સ્વાભાવિક વાહન પ્રાન્તભાષા હતી 'હિંદ સ્વરાજ્ય' લખ્યું તે વખતથી (શ્રી પ્રભુદાસ ગાંધીના 'જીવનનું પરોઢ' એ પુસ્તકનો આધાર લઈએ તો તેની પણ પહેલાંથી એટલે કે ૧૯૦૮ પહેલાંથી) તે ૧૯૪૮ના જાન્યુઆરી સુધી આગ્રહપૂર્વક અને વારવાર એક જ પ્રકારનો મત એ પ્રગટ કરતા રહ્યા હતા ૧૯૨૭માં એમણે લખેલુ, "મેં ઘણી વાર કહ્યું છે તે ફરીને કહુ છુ કે હિંદી વાટે પ્રાન્તભાષાઓને દબાવવાનો મારો ઇરાદો નથી, પરતુ હું તેમાં હિંદીને ઉમેરવા ચાહું છું કે જેથી પ્રાતો એકમેકનો જીવત સંપર્ક સ્થાપી શકે. આનું પરિણામ એ પણ આવવુ જોઈએ કે પ્રાત-ભાષાઓ ને હિંદી બેઉ એથી સમૃદ્ધ બને"

જો આમ છે તો પછી પૂ ગાધીજી નથી એટલી જ હકીકતનો લાભ લઈ આ પ્રશ્ન પૂરતી પરિસ્થિતિ બદલાયાની દલીલ કરી બુદ્ધિભેદ ઊભો કરવાનુ પ્રયોજન રહેતુ નથી—જોકે આગળ વધીને હુ એમ પણ કહુ કે આપણને જે સાચું લાગતુ હોય તે સમર્થોના વિરોધનુ જોખમ વહોરીને પણ કહેવુ જ જોઈએ. ગાંધીજી વગેરેના ઉતારા મે મારા લેખમા આપેલા તે બીજાઓને આંજીને તેમની વિચારશક્તિને કુંઠિત કરવા માટે નહિ જ, પણ પરિસ્થિતિના એકસરખા દર્શનમાથી જે એકસરખી વિચારસરણી પ્રગટી રહેલી તેનો ઉપયોગ મારા વક્તવ્યને પુષ્ટ કરવા માટે મે કર્યો હતો.

આટલો ખુલાસો પૂરતો થશે એમ માનું છુ.

—બુદ્ધિપ્રકાશ, ઓગસ્ટ ૧૯૪૯.

ઉચ્ચ શિક્ષણુની બોધભાષા : એક પ્રશ્નોત્તરી

[૩૨]

૧. વિશ્વવિદ્યાલયમાં બોધભાષા કઈ હોવી જોઈએ એ પ્રશ્નનો ઉત્તર દુનિયાનાં બધાં જ અનુભવી અને પુરાતન વિશ્વવિદ્યાલયો આપી રહ્યાં છે ટાગોર તેમ જ ગાંધીજી જેવા દ્રષ્ટાઓ એ ઉત્તર અસદિગ્ધપણે આપી ગયા છે વળી, બધા જ જન્મસિદ્ધ કેળવણીકારો મુક્તકઠે ઉત્તર આપે છે. તેમ છતાં બોધભાષાનો પ્રશ્ન ઊભો કરવો એ તો બાળકની સાચી માતા એને જન્મ આપનાર કે એને ઉછેરનાર નોકરાણી—એના જેવુ અસ્થાને છે બોધભાષા સહજ રીતે પહેલેથી છેલ્લે સુધી માતૃભાષા જ હોઈ શકે, એ વિશે સંદેહ સેવવો એ પોતાની જાત વિશે સંદેહ સેવવા જેવુ છે આ વસ્તુ શૈક્ષણિક પ્રયોગોથી દીવા જેવી સ્પષ્ટ છે.

૨ હિંદીનુ સ્થાન રાષ્ટ્રીય ભાષા લેખે માધ્યમિક શાળામાંથી જ શરૂ થાય છે, તે વિશ્વવિદ્યાલયમા ઠેઠ સુધી યથાયોગ્ય અનિવાર્ય બને એ પૂરતું છે. એટલા પાયા ઉપર હિદી-જ્ઞાનનું પૂરુ ચણતર સરલ અને શક્ય છે.

૩ વિશ્વવિદ્યાલયોમા અગ્રેજી બધી રીતે સમર્થ અને ઉપયોગી એક ભાષા લેખે શીખવાય જ. તેમ છતા જેઓ એનો બોજો સહી ન શકે અને માત્ર વિષયોના જ્ઞાનાર્થી હોય તેવાઓ ઉપર તેનુ અનિવાર્ય બધન હિંદીની પેઠે ન રહે. છેવટે હિંદી એ કોઈ પણ હિદની ભાષાથી અગ્રેજી કરતાં અનેકગણી નજીક છે.

૪ સ્વભાષામા શીખવનાર અધ્યાપકો પોતપોતાના વિષયમા પ્રાથમિક અને છેલ્લી માહિતીવાળા પુસ્તકો સહેલાઈથી લખી શકે આ રીતે બધી જ પ્રાદેશિક ભાષાઓમા અનેક વિષયો ઉપર અનેક પુસ્તકો ઝપાટાબંધ તૈયાર થવાના હિંદીમા પણ થવાનાં એમા જે જે વધારે ઉત્તમ કોટિના હશે તે જ મુખ્યપણે ધ્યાન ખેચવાના, અને અન્ય પ્રાન્તીય ભાષાઓમા કે હિંદીમા તેના અનુવાદ પણ થવાના એટલે અનેક પ્રાન્તીય ભાષાઓના સહજ વિકાસ અને પરિણામરૂપે લાધેલી સામગ્રી હિદી ભાષામા પણ આવવાની માત્ર એકલી હિદી ભાષા દ્વારા એવુ પરિણામ તેના સુપુત્રો પણ આણી ન શકે. એટલે છેવટે તો હિંદી ભાષાના કાઠામા આન્તરિક પ્રાણ પૂરવાની દૃષ્ટિએ પણ ઉપરનો ક્રમ જ સહજ છે પછી જેને જે પુસ્તક યોગ્ય લાગે તે તે ચલાવે જ્યારે સ્વભાષાનુ

જ સમર્થ પુસ્તક હશે ત્યારે તે સહજ રીતે પસંદગી પામશે, છતાં બીજાં પ્રાન્તીય ભાષાઓનાં અને અંગ્રેજી પુસ્તકોની ભલામણ અધ્યાપક કર્યા વિના રહેવાના જ નહિ અને ખરા વિદ્યાર્થીઓ તે વાંચવાના પણ

૫ પ્રાદેશિક ભાષા ન જાણનાર અધ્યાપકો અને વિદ્યાર્થીઓ પણ હિંદી તો શીખ્યા જ હશે, કેમ કે તેનુ સ્થાન અનિવાર્ય છે એટલે જ્યા તેઓ જશે ત્યાં હિંદી મારફત શીખવશે કે શીખશે તેમ છતા જે પ્રાદેશિક બોધભાષા આગંતુક વિદ્યાર્થીને તદ્દન અજાણી હશે તે ભાષા તે વિદ્યાર્થી ત્યાં જઈ શીખી લે એ જ ચાલુ શિરસ્તો છે આજે પણ અંગ્રેજી જાણનાર ફ્રાંસ, જર્મની કે રશિયા જાય છે તો તે શું કરે છે? વળી ગુજરાતી કે મરાઠીભાષી બંગાળી દ્વારા અપાતુ શિક્ષણ લેવા જાય ત્યારે કલકત્તા અને શાન્તિનિકેતનમાં શુ કરે છે? વિદેશના વિદ્યાર્થીઓ અહીં આવે છે તોપણ જરૂર હોય ત્યાં એ જ ક્રમ સ્વીકારે છે

૬ સ્વભાષા સાથે હિંદી ભાષા માધ્યમિક શાળામાથી ઠેઠ સુધી અનિવાર્ય રહેવાની પછી સરકારી નોકરીઓમા મુશ્કેલી શી રીતે આવે એ સમજાતુ જ નથી. આટલા વર્ષો હિંદી શીખ્યો હોય તે સામાન્ય બુદ્ધિનો માણસ પણ સરકારી કામકાજ પૂરતી હિંદીની તાલીમ પામે છે, કેમ કે હિંદી કોઈ બીજા ખંડની અગર સ્વભાષાથી સાવ વેગળી ભાષા છે જ નહિ દ્રાવિડી ભાષાઓ બોલનાર પણ હિંદી સરલતાથી શીખી લે છે અને જ્યારે તે અભ્યાસકાળમા અનિવાર્ય શિખાઈ હોય ત્યારે તો તેને માટે પણ તે તદ્દન વ્યવહારક્ષમ બની જાય છે

૭ ભાષાની એકતા એ વ્યવહારની એકતા અને સરળતાનુ સાધન છે. દેશની એકતા એ જુદી વસ્તુ છે તે તો દેશ પ્રત્યેની જવાબદારી અને કર્તવ્યનિષ્ઠાથી જ સાધી શકાય. પણ ધારો કે ભાષા જ દેશની એકતાનુ ખાસ સાધન છે એમ માનીએ, તોપણ રાષ્ટ્રીય ભાષા લેખે પ્રથમથી ઠેઠ સુધી હિંદી ભાષા છે જ અને સરકારી વહીવટમા તે રહેવાની એટલાથી એકતા સધાશે જ. જો એમ માનીએ કે બોધભાષા લેખે બીજી ભાષાઓ ચાલે તેટલા પૂરતી એકતા ખંડિત થાય તો તો એમ માનવું રહ્યું કે બોધભાષા ન રાખવા છતા આખા દેશના જનતામા સાચી એકતા માટે પ્રાન્તીય ભાષાઓનો લોપ જ કરવો પડે. નહિ તો જેટલે અંશે પ્રાન્તીય ભાષાઓ જીવતી હશે તેટલે અંશે દેશની એકતા ખંડિત થવાની માટે દૃષ્ટિએ દેશની એકતાના પ્રશ્નને બોધભાષા સાથે સાંકળવો એ અસંગત છે.

—સંસ્કૃતિ એપ્રિલ ૧૯૫૮.

'સંસ્મરણો 'ની સમાલોચના

[૩૩]

પ્રસ્તુત પુસ્તક ' સંસ્મરણો ' ગુજરાત વિદ્યાસભાએ પ્રસિદ્ધ કર્યું છે. એના લેખક છે વહાલસોયુ ' દાદાસાહેબ ' ઉપનામ ધારણ કરનાર શ્રી ગણેશ વાસુદેવ માવળકર મધ્યવર્તી લોકસભાના સ્પીકર તરીકે દાદાસાહેબનુ નામ એટલું બધુ જાણીતું અને સાથે સાથે લોકપ્રિય છે કે તેમને વિશે કશો વધારે ઉલ્લેખ કરવાની જરૂર રહેતી નથી

દાદાસાહેબે ' માનવતાના ઝરણાં ', ' My Life at the Bar ' ' કાંહી પાઉલે ' વગેરે ગુજરાતી, અંગ્રેજી, મરાઠીમા જુદા જુદા પ્રસંગો લઈ પુસ્તકરૂપે સ્મૃતિઓ લખેલી છે. પ્રસ્તુત પુસ્તક, એના નામ પ્રમાણે, વિશિષ્ટ સ્મૃતિઓનુ સંકલન છે એ સ્મૃતિઓ ગાંધીજી સાથે પરિચયમા આવ્યા પછી તેમની દોરવણી પ્રમાણે કે તેમની સાથે કામ કરતા ઉપસ્થિત થયેલા પ્રસંગોની એક અનુભવયાત્રા છે. ગાંધીજી સાથેના આ જીવન-પ્રસંગો પણ લેખિત આધાર પૂરતા મર્યાદિત છે તેથી જ શ્રી નરહરિભાઈ પ્રસ્તાવનામા ઠીક જ કહે છે કે, " આ પુસ્તકની ગૂથણી ગાંધીજીના એમના ઉપર આવેલા પત્રોની આસપાસ કરી છે એ પત્રો આપતા પહેલા કઈ પરિસ્થિતિમા ગાંધીજીએ તેમને અમુક પત્રો લખ્યા અને એ પત્રોની એમના જીવન ઉપર શી અસર થઈ એ તેમણે ઝીણવટથી વિગતવાર વર્ણવ્યું છે "

ગાંધીયુગમા ગાંધીજીના દેશમાં જન્મવુ એ પ્રથમ ધન્યતા તેમના પરિચયમાં આવવુ એ બીજી ચડિયાતી ધન્યતા પરિચયમાં આવ્યા પછી પણ તેમની દૃષ્ટિની સમજણ અને તે પ્રમાણે જીવન જીવવાની આવડત અને તાલાવેલી એ ત્રીજી પણ વધારે ઉત્તમ ધન્યતા. આ બધી ધન્યતાઓથી વધારે ચડિયાતી અને વધારે મૂલ્યવતી ધન્યતા તો તેમની સાથે એક યા બીજી રીતે કામમા સહભાગી બનવુ તે આ મારુ અનુભૂત અને મૂળગત મંતવ્ય છે. એ મંતવ્યની કસોટીએ જોઈએ તો દાદાસાહેબના પ્રસ્તુત સ્મરણો એ બધી ધન્યતાઓના પરિપાકરૂપે છે. આ વસ્તુની પ્રતીતિ હરકોઈ સમજદાર વાચકને ' સંસ્મરણો ' વાચ્યા પછી થયા વિના નહિ રહે એમ હું સમજુ છું

દાદાસાહેબના જીવનનાં અનેક પાસાં છે અધ્યયન, ગાર્હસ્થ્ય–જીવનમાં પ્રવેશ, વકીલાત, ગુજરાત સભા, મ્યુનિસિપાલિટી અને ગુજરાત વિદ્યાસભા જેવી માતબર સંસ્થાઓમા પ્રમુખપદ સુધીનો જવાબદારીવાળો કાર્યભાર, મોટા સંકટપ્રસંગે રાહતકાર્યમાં પ્રત્યક્ષ ભાગ લેવો, રાષ્ટ્રીય સ્વાતંત્ર્યની લડાઈમાં એક વિશિષ્ટ સૈનિક તરીકે ઝંપલાવવું, કેળવણીના વિવિધ ક્ષેત્રોમા એકસરખો રસ લેવા ઉપરાંત તેને લગતા અનેક સ્વપ્નોને સાકાર કરવાં, અધિકારીના અન્યાય કે જોહુકમી સામે લડતા તરુણવર્ગને પડખે ઊભા રહી નમૂનારૂપ કહી શકાય એવી દોરવણી દ્વારા લડતને વિજયી બનાવવી, કેળવણીના કામ અગે તેમ જ લોકહિતના બીજા અનેક કામો અગે ફંડફાળા એકઠા કરવા, કોંગ્રેસ અને બીજી અનેક સસ્થાઓના નાણાનો પ્રામાણિક તેમ જ કુશળ વહીવટ કરવો, કસ્તૂરબા રાષ્ટ્રીય સ્મારક અને ગાધીસ્મારક જેવા અનેક દેશવ્યાપી ટ્રસ્ટોના ટ્રસ્ટી થવું, તેનો વહીવટ કરવો અને ઠરાવેલ ઉદ્દેશ અનુસાર ચાલતાં કામોને જાતદેખરેખથી વેગ આપવો, સ્પીકર તરીકેની મહત્તમ જવાબદારીઓને યશસ્વીપણે પહોચી વળવુ, વગેરે વગેરે. એમના જીવનના કેટલા બધા પાસા છે ને પ્રત્યેક પાસામા કેટલો બધો અનુભવ સંભાર ભરેલો છે તે બધુ આ મર્યાદિત સ્મરણોમા પણ સીધી કે આડકતરી રીતે જોવા મળે છે જેમ એક જ મધુબિન્દુમા અનેક મોસમોના, અનેક જાતનાં, અનેક આકારના અને વિવિધ રગસ્વાદ તથા ગધના ફૂલોનુ સત્ત્વ એકરસ થયેલુ હોય છે તેમ પ્રસ્તુત સસ્મરણો વિશે કહી શકાય ઘટના કોઈ એક જ હોય છે, પણ જ્યારે દાદા એને લગતા અનુભવનુ સ્મૃતિચિત્ર ખેંચે છે ત્યારે અખડ જીવનમા જીવેલા અને જિવાતા અનેક પાસાઓ તે ચિત્રમા સાકાર થયા વિના નથી રહેતા

સત્યની ચાહના સાહજિક તેજસ્વિતા અને ઊંડી ધાર્મિકતા, સ્પષ્ટ સમજણ અને વિવિધ ક્ષેત્રે કામ કરવાની ધગશ તેમ જ તેને યશસ્વી રીતે પાર પાડવાની કલા—એ પ્રસ્તુત સસ્મરણોના પ્રાણ તેમ જ તેની ભૂમિકા છે.

સત્યનિષ્ઠાનો પુરાવો જીવ્રા અને ભાવનમા સંસ્મરણમાં સ્પષ્ટ છે. આશ્રમ ટ્રસ્ટનો લાંબો કાયદેસર દસ્તાવેજ મહેનત કરી દાદાસાહેબે ઘડ્યો. પણ જ્યારે ગાધીજીએ દસ્તાવેજ ટૂંકો કરવાની દૃષ્ટિ સૂચવી ત્યારે દાદા જરાય આનાકાની વિના એ દૃષ્ટિનુ સત્ય સ્વીકારી લે છે અને પોતાને એક નવ દૃષ્ટિ લાધ્યાનો સંતોષ પ્રગટ કરે છે આ એક વાત તેવી [illegible], જ્યારે પ્રાદેશિક વિદ્યાપીઠ પરત્વે પોતાનો વિચાર ગાધીજી કરતાં જુદો પડતા છતા પોતાને તે સ્પષ્ટ

લાગ્યો ત્યારે, ગાંધીજી પ્રત્યે અનન્ય માન ધરાવવા છતાં, પોતાની વિચારસરણીને મક્કમપણે રજૂ કરતો ગાંધીજી સાથે થયેલ વાતચીતનો મુસદ્દો દાદાસાહેબે ગાંધીજીને મોકલ્યો અને તેથી ગાધીજી કાંઇક વળ્યા અને ખુશ પણ થયા. જેનામાં સત્યનિષ્ઠા હોય છે તે જેમ બીજા હરકોઈ પાસેથી સત્ય સ્વીકારતાં ખમચાતો નથી તેમ તે પોતાને સ્પષ્ટ પ્રતીત થતા સત્યને મક્કમપણે છતાં વિનમ્રપણે વળગી રહે છે અને જેને શિરસાવંદ્ય લેખતો હોય તેની સામે પણ તે સત્ય મૂકતાં જરાય પાછો પડતો નથી

તેજસ્વિતા અને રાષ્ટ્રીય સ્વમાનનો પુરાવો સંસ્મરણ નં ૮ થી ૧૪ સુધીમાં એવો મળે છે કે તેમા દાદાનુ હીર તરી આવે છે તેમણે જે રીતે વિદ્યાર્થીઓની લડત અને હડતાલનુ સચાલન કર્યું, જે સાવધાનીથી લોકમતને પોતાને પક્ષે વાળ્યો અને જે હિંમત તેમ જ બહાદુરીથી તે વખતના કેળવણી-પ્રધાનની સાન ઠેકાણે આણી એ બધું વાચનારને એમ જરૂર થઈ આવવાનુ કે પરરાજ્ય કે સ્વરાજ્યમા કોઈ પણ અન્યાય કે જોરતલબી સામે સત્યાગ્રહ-મૂલક લડત લડવાની હોય તો તેની આગેવાની લેવાનુ ખમીર દાદાસાહેબમાં અવશ્ય છે

દાદામા તેજસ્વિતાની જેમ ધાર્મિકતા પણ ઊંડી છે આની જીવન્ત પ્રતીતિ પઢરપુરનુ શ્રીવિઠ્ઠલમદિર હરિજનોને માટે ખુલ્લુ કરાવવા શ્રી સાને ગુરુજીની જહેમત, મદિરના પગથિયા પાસેથી જ પોતે કરેલુ દર્શન, દિવસ-રાત ચાલેલી મત્રણાઓ તેમ જ હરિજનપ્રવેશનો ઠરાવ અને સાને ગુરુજીના પારણા—આ ચાર પ્રકરણોમા થાય છે કટ્ટર પૂજારીઓના એક આગેવાન સાથે દાદાને થયેલી પ્રશ્નોત્તરી પ્રકરણ ૪૯મા છે તે તથા છેલ્ના પ્રકરણ ૫૨ માં ગાંધીજીને પાઠવેલ પત્ર વાચનાર દાદાની સત્યનિષ્ઠ વકીલાતનો નમૂનો જોઈ શકશે

દાદાએ જે જે કામમા હાથ નાખ્યો છે ત્યા સર્વત્ર તેમને કેવો જશ મળ્યો છે અને ગાધીજીએ તેમને કેટલા સદ્ભાવથી અપનાવ્યા છે એ બધું તમામ સસ્મરણોમા તરી આવે છે દાદા એવા વિનમ્ર છે કે જરૂર પડે ત્યાં વડીલોની સલાહ લેવાનુ ચૂકતા નથી તેથી જ ગાધીજીની પેઠે સરદારની પણ દોરવણીનો લાભ લેતા તેઓ ચૂકતા નથી

આ સસ્મરણોમા એક મહત્ત્વની વસ્તુ ધ્યાન ખેચે છે અને તે એ કે દાદાસાહેબનાં માતુશ્રી અસાધારણ હૈયાઉકલતવાળા અને હિમતવાળા છે. જ્યારે મૂંઝવણ પ્રસગે નિર્ણય લેવાનો હોય ત્યારે દાદા માતુશ્રીને પૂછે છે,

ને માતુશ્રી પણ એવાં કે પુત્રમોહમાં તણાયા સિવાય કર્તવ્યને અનુરૂપ જ પોતાનો નિર્ણય આપે છે.

દાદાએ 'સંસ્મરણો' લખવાનું પ્રયોજન અનુભૂત જીવનપ્રસંગોમાં ડોકિયું કરી તે સાથે તાદાત્મ્ય સાધવા દ્વારા સ્વસંતોષરૂપે દર્શાવ્યું છે. એ વાત અન્તર્મુખ દૃષ્ટિએ તદ્દન સાચી છે, પરંતુ એની બીજી બાજુયે છે અને તે વાચકોની દૃષ્ટિ. લેખકનું મુખ્ય પ્રયોજન આત્મસંતોષ હોય તોય વાચકનું પ્રયોજન તે સાથે સંકળાયેલું છે જ. તેથી દાદાએ દર્શાવેલું પ્રયોજન બહિર્મુખ દૃષ્ટિએ વાચકોના પરિતોષને પણ વ્યાપે છે મેં આ સંસ્મરણો બીજી વાર સાંભળ્યાં તોય મને જરાય કંટાળો ન આવ્યો, ઊલટું, વધારે સમજવાનું પ્રાપ્ત થયું. તેથી હું એમ કહી શકું છું કે પ્રસ્તુત સંસ્મરણો દરેક સમજદાર વાચકે વાંચવા જેવાં છે તેથી જ તો શ્રી નરહરિભાઈ લખે છે કે શ્રી. દાદાસાહેબ માવળંકરનું આ પુસ્તક વાચકવર્ગને બહુ ઉપયોગી, રસપ્રદ અને બોધક લાગશે

હું જાણું છું કે દાદાસાહેબ કેટલા કામના બોજા નીચે સતત દબાયેલા રહે છે, તેમ છતાં તેમનાં સંસ્મરણોનું રસિક અને બોધપ્રદ વાચન એવી વિનંતી કરવા પ્રેરે છે કે દાદાસાહેબ પોતાના જીવનનાં બધા જ પાસાને સ્પર્શતી જીવનકથા વિગતે સત્વર લખે તો તે અત્યારની અને ભાવી પેઢીને અનેક રીતે ઉપકારક નીવડશે

સંસ્મરણો સાથે જે અગત્યના ત્રણ પરિશિષ્ટો આપ્યાં છે તેને લીધે પુસ્તકની ઉપયોગિતા સાચે જ વધી જાય છે. અને અંતે જે સૂચિ આપી છે તે ચોકસાઈ અને ઝીણવટનો એક નમૂનો છે. ગાંધીજીના નામ સાથે અને દાદાના નામ સાથે સૂચિમાં બધી જ વિગતો અને ઘટનાઓનો ટૂંક નિર્દેશ એવી રીતે કરવામાં આવ્યો છે કે માત્ર સૂચિ જોતાં જ ગાંધીજી અને દાદાસાહેબ વચ્ચેના સંબંધ ને જીવનપ્રસંગોનો આખો ચિતાર રજૂ થાય

પુસ્તકની છપામણી, શુદ્ધિ અને ગોઠવણ એ બધું અદ્યતન હોઈ પ્રકાશક અને મુદ્રકને શોભા આપે તેવું છે મારી ખાતરી છે કે જે આ સંસ્મરણો ધ્યાનથી વાચશે તેને અનેક રીતે ઇષ્ટપ્રેરણા મળશે.

* માનનીય શ્રી [illegible] 'સંસ્મરણો'ની સમાલોચના

સ્ત્રી-પુરુષના બળાબળની મીમાંસા

[૩૪]

કોઈ કહે છે કે સ્ત્રીઓએ પુરુષોનું પૌરુષ હર્યું. બીજાઓ વળી કહે છે કે પુરુષોને લીધે જ સ્ત્રીઓ અબળા બની આ બેમાં કોઈ એક જ કથન સાચુ છે કે બન્ને સાચાં છે કે બન્ને ખોટા છે એ પ્રશ્ન છે એનો ઉત્તર મેળવવા ઇચ્છનારે વિશેષ ઊડા ઊતરવુ જોઈશે વિકારનો વેગ માત્ર અમુક જાતિ સાથે સબધ નથી ધરાવતો તેને તપાસવા આત્માની ભૂમિકાઓ ઉપર દૃષ્ટિપાત કરવો પડશે

સ્ત્રી હોય કે પુરુષ, બન્નેમા આત્મા સમાન છે વાસનાના કૃત્રિમ વાતાવરણથી તેજ ખડિત ન થયુ હોય એવો જાગતો તેજસ્વી આત્મા સ્ત્રીના શરીરમાયે હોઈ શકે અને પુરુષના શરીરમાંયે હોઈ શકે કાવ્ય, કળા, વિદ્યા કે ધર્મના ભવ્ય સંસ્કારો માત્ર અમુક જાતિ સાથે સકળાયેલા નથી હોતા. એ સંબધમા આલકારિક રાજશેખર પોતાની કાવ્યમીમાંસામા કહે છે કે, ‘પુરુષની પેઠે સ્ત્રીઓ પણ કવિ થાય, કારણ કે સસ્કાર એ આત્મા સાથે સબધ ધરાવે છે’ તે સ્ત્રી કે પુરુષ એવા વિભાગની અપેક્ષા નથી રાખતો તે કહે છે કે, ‘અનેક રાજપુત્રીઓ, મત્રીપુત્રીઓ, ગણિકાઓ અને સ્ત્રીઓ શાસ્ત્રજ્ઞ અને કવિ તરીકે સંભળાય છે અને જોવામા પણ આવે છે’

સ્ત્રીજાતિના બળ અને શીલ વિશે શકા ઉઠાવનારને ઉત્તર આપતા સાહિત્યસ્વયભૂ હેમચદ્ર (પોતાના યોગશાસ્ત્રની ટીકામા પૃ ૨૦૮ થી) બહુ જ માર્મિક ભાષામા વિસ્તારથી કહે છે કે સ્ત્રીઓ પુરુષોના જેટલી જ દાન, સમાન અને વાત્સલ્યની પાત્ર છે, કારણ કે તેઓ પણ પુરુષ જેટલી જ યોગ્યતા ધરાવે છે. અમુક સ્ત્રીવ્યક્તિઓ યોગ્ય ન હોય કે દૂષિત હોય તે ઉપરથી આખી સ્ત્રીજાતિને બલ કે શીલહીન માનવામા આવે તો પુરુષજાતિને પણ તેવી જ માનવી જોઈએ, કારણ કે અનેક પુરુષો પણ ક્રૂર, કૃતઘ્ન અને મૂર્ખ હોય છે અનેક પુરુષો યોગ્ય પણ મળે છે, તેથી આખી પુરુષજાતિને અયોગ્ય કહી ન શકાય એવી દલીલ કરવામા આવે તો તે દલીલ સ્ત્રીના વિષયમાં

સરખી જ લાગુ પડે છે, કારણ કે અનેક ત્યાગી અને ગૃહસ્થ સ્ત્રીઓ પુરુષ-વંદ્ય અને દેવવંદ્ય થઈ ગઈ છે.

વિદ્વાનોના એ અનુભવની સત્યતા સાબિત કરનાર અનેક પ્રાચીન આખ્યાનો આપણાં આર્યશાસ્ત્રમાં છે અત્યારે અહીં એવાં કેટલાંક આખ્યાનો જોઈશું કે કોઈમાં પુરુષ અડોલ રહી સ્ત્રી તરફ નિર્વિકાર રહે છે અને કોઈમાં સ્ત્રી નિર્વિકાર રહી ઊલટી પડતા પુરુષને સ્થિર કરે છે.

પહેલુ આખ્યાન હિંદુશાસ્ત્રમા પ્રાચીનમા પ્રાચીન ગણાતા ઋગ્વેદમાંનુ છે, બીજા બે આખ્યાનો જૈન આગમોમાંના છે અને બે આખ્યાનો બૌદ્ધ સાહિત્યમાંનાં છે ઋગ્વેદના એ આખ્યાનમા ભાઈ અને બહેનનો પ્રસંગ છે. બહેન યમી ભાઈ યમને પરણવા પ્રાર્થે છે. યમ એ અધર્મ માર્ગે જવાની ના પાડી પોતાની બહેનને અન્ય કોઈ તરુણ સાથે જોડાવા સમજાવે છે બહેન બહુ લલચાવે છે, ધમકાવે છે ને શાપ પણ આપે છે, પરંતુ ભાઈ યમ પોતાના અખંડિત તેજોબળથી એ કશાની પરવા નથી કરતો ને પોતાના નિશ્ચયમાં મક્કમ રહે છે આ આખ્યાનમા પુરુષાત્માના જાજ્વલ્યમાન આત્મતેજનુ અને સ્ત્રી-આત્માના વાસનારૂપ આવરણનું દર્શન થાય છે.

તેથી ઊલટો દાખલો જૈન આખ્યાનમા છે એમા ભાઈ ભરત ચક્રવર્તી ઓરમાન બહેન સુંદરીને સ્ત્રીરત્ન બનાવવા ઇચ્છે છે એ યુગ ભાઈ-બહેનના લગ્નનો હતો. એવા લગ્નો ત્યારે સહજ હતાં એમા નિંદા કે તિરસ્કાર ન થતો, છતા સુંદરીનો જાગરિત આત્મા ચક્રવર્તી ભાઈના વૈભવથી કે તેના મહત્ત્વથી ચલિત નથી થતો, ઊલટો અખંડ જ્યોતિની પેઠે વધારે તેજથી પ્રકાશે છે. એ સુંદરી પોતાના શારીરિક સૌન્દર્યને મોહનું સાધન સમજી શરીરને નિસ્તેજ બનાવવા અને તેનું બાહ્ય તેજ અંદર ઉતારી તેજસ્વી આત્માને વધારે તેજસ્વી બનાવવા તપનુ અનુષ્ઠાન કરે છે અતિ લાંબા વખત સુધી રસાસ્વાદ ત્યજી તે સુંદરી બહારથી જેટલી અસુંદર તેટલી જ અંદરથી સુંદરતમ બની તપને બળે ભાઈને સમજાવે છે અને તેની વાસના શમાવે છે આ આખ્યાનમા સ્ત્રીઆત્માનુ અખંડ તેજ પડતા પુરુષને ઉદ્ધરે છે.

ત્રીજા જૈન આખ્યાનમા પણ એક કુમારી બ્રહ્મચારિણી અને સાધ્વી રાજપુત્રીના નિરાસ બ્રહ્મચર્યનું દર્શન થાય છે એ સાધ્વી વિકારવશ થતા એક સાધુને તેના પ્રેમનું સ્મરણ આપી શાન્ત અને માર્મિક ઉપદેશથી તેને સંયમમા સ્થિર કરે છે, અને સ્ત્રી-કલેવરમા વસતા આત્માનું કેટલુ તેજ હોઈ

શકે એનો દાખલો આપણી સામે રજૂ કરે છે આ ત્રણે આખ્યાનો અનુક્રમે નીચે આપવામાં આવે છે.

ચોથું આખ્યાન બૌદ્ધ ભિખ્ખુણી ઉપ્પલવણ્ણા અને પાંચમું આખ્યાન બૌદ્ધ ભિખ્ખુણી ભદ્દા કાપિલાનીનું છે અંતર્મુખ વૃત્તિની અલૌકિક ચક્ષુ વડે સહજ સુખનો આસ્વાદ લેવામાં નિમગ્ન એવી સમાહિતમના ઉપ્પલવણ્ણાનું સૌંદર્ય જોઈ ચલિત થયેલ માર (વિકારવૃત્તિ અથવા વિકારમૂર્તિ કોઈ પુરુષ) તેને બહિર્મુખ કરવા અને પોતા તરફ લલચાવવા પ્રયત્ન કરે છે, પરન્તુ એ ધીરમના ભિખ્ખુણીના અડોલપણા સામે છેવટે તે માર હાર ખાઈ ચાલ્યો જાય છે

પાચમા આખ્યાનમાં ભદ્દા કાપિલાની સ્ત્રીજાતિમા સુલભ અને છતાં દુર્લભ મનાતા ધૈર્યનો સચોટ પુરાવો પૂરો પાડે છે પોતાના પતિ મહાકાશ્યપની બ્રહ્મચર્ય–પ્રતિજ્ઞામાં અર્ધાંગી તરીકે જોડાઈ તે ધર્મવીર બાઈ તે પ્રતિજ્ઞાને અદ્ભુત રીતે સંપૂર્ણ કરવા સાથ આપે છે સહ–શયન છતા પુષ્પમાળાનું ન કરમાવુ એ એ લોકોત્તર દંપતીના વિકસિત માનસનું માત્ર બાહ્ય ચિહ્ન છે. મહાકાશ્યપ અને ભદ્દા કાપિલાનીની અલૌકિક બ્રહ્મચર્યપાલનની કથા જૈન કથાસાહિત્યમાં અતિપ્રસિદ્ધ એક વૈશ્ય બ્રહ્મચારી દંપતીની યાદ આપે છે કે જે સહશયન છતાં વચ્ચે ઉઘાડી તલવાર મૂકી આજન્મ બ્રહ્મચર્ય પાલવામા સફળ થયા હતા. એ દંપતીમાં પતિનું નામ વિજય અને પત્નીનુ નામ વિજયા હતુ. જૈન સમાજમા એ વિજય શેઠ અને વિજયા શેઠાણીને નામે જાણીતા છે પુષ્પમાળાને બ્રહ્મચર્યની કોમળતાનું અને ઉઘાડી તલવારને બ્રહ્મચર્યની કઠોરતાનું રૂપક માની આપણા જેવાએ એ કોમળ અને કઠોર વ્રતને બરાબર સમજવાનો પ્રયત્ન કરવો જોઈએ બાકી, તેને જીવનમા ઉતારવા માટે કોઈએ પુષ્પમાળા કે તલવારનો આશ્રય લેવાની કશી જરૂર નથી

આખ્યાન–૧

યમી—સખાને સખ્ય માટે પસંદ કરું છું વિશાળ અર્ણવ ઉપર હું આવી છુ યોગ્ય પુત્રનો વિચાર કરતો વેધા પૃથ્વીને વિશે (ભાગ) વિશે પિતાના નપાતનુ (ગર્ભલક્ષણ અપત્યનુ) આદાન કરે (૧)

યમ— હે યમિ ! તારો સખા સખ્યને ઇચ્છતો નથી, શાથી જે સલક્ષ્મા (સમાનયોનિ) તે હોય વિષમરૂપા થાય છે. મહાન અસુરના વીર પુત્રો—દ્યૌને ધારણ કરનારા વિશાળ જુએ છે. (૨)

યમી—તે દેવો એક મર્ત્યનું (તારું) આ અપત્ય ઇચ્છે છે તારું મન મારા વિશે મૂક જનકપિતા તું તનુમાં પ્રવેશ કર. (૩)

યમ—પહેલાં જે કર્યું નથી (તે કરીએ) ? ઋત બોલનારા અનૃત બોલીએ ? (હું) પાણીમાનો ગંધર્વ, (તુ) પાણીમાની યોષિત્ તે આપણી નાભિ (ઉત્પત્તિસ્થાન) તે આપણુ મોટુ સગપણ છે. (૪)

યમી—ગર્ભમા જ આપણને વિશ્વરૂપ, ત્વષ્ટા, સવિતા જનકે દંપતી કર્યા છે. આના વ્રતો (નિયમો) કોઈ લોપી શકતુ નથી આપણ એને પૃથ્વી અને દ્યૌ ઓળખે છે (૫)

યમ—પહેલા દિવસને કોણ જાણે છે ? કોણે જોયો છે ? કોણે (તે વિશે) કહ્યુ છે ? મિત્રનું, વરુણનું તેજ મહાન છે હે આહન્તર્ (મર્યાદા તોડનારી) ! પુરુષોને લોભાવવા તું શું બોલે છે ? (૬)

યમી—મને યમીને યમનો કામ થયો છે—એક સ્થાનમા સાથે સૂવા માટે જાયાની જેમ પતિને માટે તનુને પ્રકટ કરું. રથના પૈડાની જેમ ગાઢ થઈએ (અથવા ઉદ્યમ કરીએ, દોડીએ) (૭)

યમ—દેવોના જે સ્પશો (ચારો) અહીં ફરે છે તે ઊભા રહેતા નથી, આખ મીચતા નથી હે આહન્તર્ (મર્યાદા તોડનારી)! મારાથી અન્યની સાથે શીઘ્રતાથી તુ જા રથના પૈડાની જેમ તેની સાથે ગાઢ થા (૮)

યમી—આને રાત્રિઓ અને દિવસો આપે સૂર્યનુ ચક્ષુ ફરી ફરી ઉદય પામે. દ્યૌમા અને પૃથ્વીમા સમાનબન્ધુ મિથુન થાય (જોડાય) યમી યમનું સગપણને ન છાજતુ (કૃત્ય) ધારણ કરે. (૯)

યમ— (એવા) ઉત્તર યુગો આવશે જેમા સગાઓ સગાને ન છાજે એવુ કરશે વૃષભ માટે (વીર્યના સેક કરનાર માટે) બાહુને ઓશીકું કર. હે સુભગે ! મારાથી અન્યને પતિ તરીકે ઇચ્છ (૧૦)

યમી—જ્યારે નાથ ન હોય ત્યારે શુ ભાઈ હોય ? જ્યારે નિર્ઋતિ (નાશ) આવે ત્યારે બહેન હોય ? કામથી મૂઢ થઈ હુ આ બહુ વદુ છું. શરીર વડે મારા શરીરનો સંપર્ક કર (૧૧)

યમ—હુ તારા શરીર સાથે શરીરનો સંપર્ક નહિ કરુ જે બહેનને જાય (સંગ કરે) તેને પાપી કહે છે મારાથી અન્ય સાથે આનંદ કર. હે સુભગે ! તારો ભાઈ આ ઇચ્છતો નથી. (૧૨)

યમી—હે યમ! તું બાયલો છે તારા મનને અને હૃદયને અમે ન જાણ્યું કેડનો પટો જેમ જોડાયેલાને, લિબુજા (વેલી) જેમ વૃક્ષને તેમ તને બીજી આલિંગન કરશે (૧૩)

યમ—અન્ય તને અને તું અન્યને આલિગન કર—લિબુજા જેમ વૃક્ષને. તુ તેના મનને ઇચ્છ, તે તારા મનને ઇચ્છે અને પછી સુભદ્ર સંવિત્તિ કર (શુભ સુખ મેળવ). (૧૪)

આખ્યાન–૨

ભગવાન ઋષભદેવના પ્રધાન બે પુત્રો નામે ભરત અને બાહુબલિ (ઓર માન) હતા ભરતની સહોદર બહેન બ્રાહ્મી અને બાહુબલિની સહોદર બહેન સુદરી હતી બ્રાહ્મીએ લગ્ન ન કર્યું અને દીક્ષા લીધી સુદરીને બાહુબલિની સંમતિ મળવા છતા પણ દીક્ષા લેવામા ભરતનો નિષેધ આડે આવ્યો, તેથી તે શ્રાવિકા જ રહી

ઘણા લાબા કાળની દિગ્વિજય–યાત્રા કરી પાછા ફર્યા બાદ ભરતે પોતાના બધા સંબંધીઓને મળવાની ઇચ્છા જણાવી અધિકારીઓ સૌથી પહેલાં સુંદરીને ભરત પાસે લાવ્યા સુંદરીને અતિકૃશ અને શુષ્કાંગી જોઈ ભરતે અધિકારીઓને આવેશપૂર્વક કહ્યુ કે આ સુદરીની શી સ્થિતિ? શુ રાજ ભડારમા ખાનપાનની, મેવા–મિષ્ટાન્નની, ફળફૂલની કે પરિચારકોની કમી છે? શુ ચિકિત્સકો નથી? મારી ગેરહાજરીમા તમે સુદરીને સૂકવી શત્રુનુ કામ કર્યું છે! અધિકારીઓ બોલ્યા પ્રભો! ખજાનામા કશી કમી નથી, પણ આ સુદરી તો જ્યારથી આપ દિગ્વિજય માટે ગયા ત્યારથી માત્ર દેહધારણ અર્થે શુષ્ક અન્ન લે છે, અને બધા રસસ્વાદો છોડી ૬૦૦૦૦ વર્ષ થયાં સતત આયબિલવ્રત કરે છે જ્યારથી આપે સુદરીને દીક્ષા લેતા રોક્યા ત્યારથી સકલ્પ વડે ત્યાગધર્મ સ્વીકારી એ ગૃહસ્થ છતાં ત્યાગી બની રહી છે. બસ, આટલુ જ સાભળતા ભરતનો સાચો ક્ષત્રિયઆત્મા જાગી ઊઠયો આહ પ્રમાદ! ક્યા અમારા જેવાની વિષયાસક્તિ અને ક્યા સુંદરીનું તપ! એટલું કહી તેણે સુદરીને તેના અભીષ્ટ સાધ્વીપણાના માર્ગે જવા દીધી અને પોતે સુન્દરીના તપના મૌન ઉપદેશથી ભાવનાશુદ્ધ થયો

આખ્યાન–૩

બાવીસમા તીર્થંકર અરિષ્ટનેમિ, જેઓ કૃષ્ણ વાસુદેવના પિતરાઈ થતા, તેઓએ લગ્ન કર્યા વિના જ પોતાની સાથે સગપણ કરેલ ગજપુત્રી રાજીમતીને

છોડી દીક્ષા લીધી. અરિષ્ટનેમિનો નાના ભાઈ રથનેમિ હતો તે કુમારી રાજીમતીમાં આસક્ત થઈ તેને અનુસરવા લાગ્યો એનો ભાવ કુમારીએ જાણી લીધો ને તેને સમજાવવા યુક્તિ રચી. મધ અને ઘી મેળવી એકવાર કુમારીએ રાબ પી લીધી અને તરત જ મીંઢળ ઘસીને પી લીધું, જેથી વમન થયું વિવેકિની એ કુમારીએ રથનેમિને પોતે વમેલ વસ્તુ પી જવા કહ્યું. 'આ તે કેમ પિવાય ?' એવો રથનેમિનો ઉત્તર સાભળી રાજીમતીએ કહ્યું, 'જો એ વમન કરેલ વસ્તુ ત્યાજ્ય હોય તો હુ પણ તમારા ભાઈ દ્વારા વમન કરાયેલ જ છુ ના ?' રથનેમિ સમજ્યો અને ભેખ લઈ ચાલી નીકળ્યો વિરક્ત રાજીમતીએ પણ તપોમાર્ગ લીધો

વળી ક્યારેક બીજે વખતે રથનેમિ દ્વારકામાથી ભિક્ષા માગી ભગવાન અરિષ્ટનેમિ પાસે જતો હતો તેવામા વરસાદ થવાથી તેણે વચ્ચે જ એક ગુફાનો આશ્રય લીધો સયોગવશ સાધ્વી રાજીમતી ભગવાનને પ્રણમી પોતાના નિવાસસ્થાને પાછી ફરતી હતી તે પણ વરસાદથી ભીજાઈ તે જ ગુફામા દાખલ થઈ. એ તેજસ્વિની સાધ્વીએ સૂકવવા માટે ભીના કપડા ઉતાર્યાં. એના અગોપાગ અવલોકી પેલો સાધુ આકર્ષાયો. ભાવપરીક્ષાપટુ એ સાધ્વીએ તે સાધુનુ હાર્દ જાણી લઈ નીચે પ્રમાણે ઉપદેશ કર્યો—

"હુ ભોગરાજ-ઉગ્રસેનની પુત્રી છુ ને તું અધકવૃષ્ણિ (સમુદ્રવિજય)-નો પુત્ર છે. આવા ખાનદાન કુળમા જન્મેલા આપણે ગંધક સર્પ જેવા, અર્થાત્ વમેલ વિષ પાછુ ચૂસનારા ન થઈએ. તેથી હે મુને ! તું નિશ્ચલ થઈ પોતાના સંયમને આચર (૮)

"જે જે સ્ત્રીઓ તારી નજરે પડશે તેમા 'આ સારી છે, પેલી સુંદર છે' એમ વિચારી જો તું તેઓની ઇચ્છા કરીશ તો પવનનો ઝપાટો ખાધેલ અદ્દઢમૂળ (ઢીલા મૂળવાળા) ઝાડની પેઠે અસ્થિરઆત્મા બની જઈશ—કામ-પવનથી કંપી સ્થિરતા ગુમાવી સસારચક્રમાં ભમીશ ' (૯)

"સંયમરત તે સાધ્વીનુ સુભાષિત વચન સાભળી અકુશથી હાથીની પેઠે તે વચન વડે એ મુનિ રથનેમિ પોતાના ધર્મમાં સ્થિર થયો " (દશવૈકાલિક-સૂત્ર, અધ્યયન બીજુ)

આખ્યાન-૮

"ભિક્ષુણીઓમાં અગ્રિમતા નિરુપણ ઉપસ્થિત કરે છે ' એ શ્રાવસ્તિમાં એક શ્રેષ્ઠિકુળમા જન્મી હતી એની કાંતિ કમળના જેવી હતી,

તેથી તેનું નામ ઉપ્પલવણ્ણા (ઉત્પલવર્ણા) પાડવામાં આવ્યું હતું. એ ઉમરલાયક થઈ ત્યારે એના સૌન્દર્યની કીર્તિ સાભળી ઘણા રાજપુત્રો અને શ્રેષ્ઠિકુમારોએ એની માગણી કરી એના બાપ પર આ એક મોટું સકટ આવી પડ્યું. છોકરી જો પ્રવ્રજ્યા લે તો આપણે આમાથી મુક્ત થઈ શકીએ, એવુ વિચારી એણે છોકરીને કહ્યું, "તું ભિક્ષુણી થઈશ કે?" આ સાંભળી છોકરીને અત્યત આનદ થયો અને એ ભિક્ષુણી થવા માટે તરત જ તૈયાર થઈ એ રીતે એને ભિક્ષુણી બનાવવામાં આવી

ક્યારેક ઉપ્પલવણ્ણા સવારના પહોરમા એક પ્રફુલ્લિત શાલવૃક્ષ નીચે ઊભી હતી તે વખતે પાપી માર ઉપ્પલવણ્ણામા બીક તથા લોમહર્ષ (કમકમાટી) ઉત્પન્ન કરવાના અને એને સમાધિમાથી ભ્રષ્ટ કરવાના હેતુથી ત્યાં આવ્યો અને બોલ્યો, "આ સુપુષ્પિત શાલવૃક્ષ નીચે તું એકલી ઊભી છે. તારા જેવી બીજી સુદર સ્ત્રી મળવી મુશ્કેલ છે ગાંડી છોકરી! તને ધૂર્ત લોકોની બીક નથી લાગતી?"

ઉપ્પલવણ્ણા બોલી, "આ ઠેકાણે સેકડો કે હજારો દૂતો આવે તો-પણ તેઓ મારો એક વાળ પણ વાંકો કરી શકે તેમ નથી હે માર! જોકે હુ એકલી છું, છતા તારાથી બીતી નથી.. મારુ મન મારા કાબૂમાં છે સિદ્ધાત હુ પૂર્ણ રીતે જાણુ છુ અને હુ સર્વબધનમાંથી મુક્ત થઈ છુ. હે માર! હુ તારાથી ગભરાતી નથી" (બૌદ્ધસઘનો પરિચય, પૃ ૨૬૧)

આખ્યાન-૫

મગધદેશના મહાતીર્થ નામના ગામમા એક અત્યંત શ્રીમત બ્રાહ્મણ-કુટુબમાં મહાકાશ્યપનો જન્મ થયો. એનુ નાનપણનુ નામ પિપ્ફલી હતુ એ મોટો થયો ત્યારે પરણવા માટે એની માએ એની પાછળ તગાદો ચલાવ્યો આજીવન બ્રહ્મચર્ય પાળવાનો નિશ્ચય અને માતૃપ્રેમ એ એના સાણસામા બિચારો સપડાયો છેવટે એક સોનીને હજાર મહોરો (નિષ્ક) આપી એણે એક સોનાની ઉત્તમ સ્ત્રી-પ્રતિમા બનાવરાવી અને એને વસ્ત્રો, દાગીનાઓ અને ફૂલોથી શણગારી માને કહ્યું, "જો આવી સુંદર સ્ત્રી મળે તો હુ પરણુ" કાશ્યપ ધારતો હતો કે એવી સુંદર સ્ત્રી મળશે નહિ અને હું અવિવાહિત રહી શકોશ પણ એની મા ઘણી ખટપટી હતી એણે આઠ હોશિયાર બ્રાહ્મણોને એવી સુદર સ્રીની શોધ માટે દેશોદેશ મોકલી આપ્યા તે વખતે મદ્રદેશની સ્ત્રીઓ સૌન્દર્ય માટે ઘણી પ્રખ્યાત હતી તેથી એ બ્રાહ્મણો પહેલા એ દેશના સાગર નામના એક નગરમા ગયા, અને સુવર્ણપ્રતિમા નદીકાઠે

મૂકી ત્યા વિશ્રાંતિ લેવા બેઠા. કૌશિક ગોત્રના એક બ્રાહ્મણની દાસી એની (બ્રાહ્મણની) દીકરી ભદ્રાને નવડાવી જાતે નાહવા માટે નદીએ આવી તે સુવર્ણ-પ્રતિમા જોઈ પોતાના શેઠની દીકરી ત્યાં આવી હોય એવો એને ભાસ થયો અને મોટેથી હાથ ઊંચો કરી બોલી, "અલી એ! એકલી અહીં આવી બેસતાં તને શરમ નથી આવતી?" એ બ્રાહ્મણો બોલ્યા, "આવી જાતની સુંદર સ્ત્રી પણ કોઈ છે.?"

દાસી—"તમારી આ પ્રતિમા જડ છે, પણ અમારી ભદ્રા સૌન્દર્યની. જીવંત મૂર્તિ છે આ પ્રતિમા સાથે એની તુલના કેમ કરી શકાય?"

એ બ્રાહ્મણો કૌશિક બ્રાહ્મણને ઘેર ગયા અને 'અમે કાશ્યપના બાપ તરફથી એના છોકરા માટે કન્યા શોધવા નીકળ્યા છીએ અને અમારી ખાતરી છે કે આપની છોકરી કાશ્યપને પસદ પડશે' વગેરે સર્વ કહ્યુ. કાશ્યપનો બાપ કપિલ બ્રાહ્મણ ઘણો પ્રસિદ્ધ હતો, તેથી આવા કુટુબમાં પોતાની છોકરી જાય એ કૌશિકને ગમતી વાત હતી. બ્રાહ્મણોનુ કહેવુ એને પસંદ પડ્યું અને એ પ્રમાણે પરસ્પર કુટુબોમાં પત્રવ્યવહારથી વિવાહ નક્કી થયો.

કાશ્યપની ઉંમર વીસ વર્ષની અને ભદ્રાની સોળ વર્ષની હતી વિવાહ નક્કી થયાની વાત જાણવામા આવી કે તરત જ એ બન્નેએ એવા આશયના કાગળ લખી મોકલ્યા કે સસારમા રહેવાની મારી ઇચ્છા નથી, તેથી લગ્નપાશમા બદ્ધ થવાથી નકામો ત્રાસ માત્ર થશે આ બન્ને કાગળ ભદ્રા તથા કાશ્યપના વાલીઓના હાથમાં આવ્યા અને એમણે એ વાચીને બારોબાર ફાડી નાખ્યા. "કાચી ઉમરના છે, ફાવે તે સારોનરસો વિચાર મનમા લઈ બેસે છે."—એમ એમને લાગ્યું હોય એમા નવાઈ નથી એ રીતે મહાકાશ્યપ અને ભદ્રાને ઇચ્છા ન હોવા છતા લગ્નપાશમા બદ્ધ કરવામા આવ્યા

એ વખતના રિવાજ પ્રમાણે રાત્રે બન્નેને એક જ શયનગૃહમા અને એક જ પલગ પર સૂવું પડતું પરંતુ બન્નેની વચ્ચમા બે ફૂલના હાર મૂકી ભદ્રા કાશ્યપને કહેતી. "જેના પુષ્પનો હાર કરમાઈ જાય તેના મનમા કામવિકાર ઉત્પન્ન થયો એમ સમજવુ." જ્યા સુધી મહાકાશ્યપના પિતા જીવતા હતા ત્યા સુધી એ કે ભદ્રા ઘર છોડી શકે તેમ ન હતું, પણ તે ઘરમાં રહેવાથી એમના અખંડ બ્રહ્મચર્યમા અને ઉદાત્ત પ્રેમમા કદી પણ ખલેલ પડી નહિ જ્યારે મહાકાશ્યપનાં માબાપ મરણ પામ્યા ત્યારે તેણે ભદ્રાને કહ્યુ, "તે પોતાને પિયેરથી આણેલું દ્રવ્ય તથા આ ઘરમા જે છે તે બધું દ્રવ્ય સ્વાધીન કરું છું"

ભદ્રા—પણ આપ ક્યાં જાઓ છો ?

કાશ્યપ—હું હવે પ્રવ્રજ્યા લેવાનો છું.

ભદ્રા—આપનો આ વિચાર મને પણ પસંદ છે હું પણ આપની પાછળ આવુ છુ.

મહાકાસ્યપ પરિવ્રાજકના વેશમાં ઘરમાંથી બહાર પડ્યો' ભદ્રા પણ એની પાછળ પાછળ પરિવ્રાજિકા થઈ નીકળી પડી. એમના નોકરચાકરોએ તથા માલિકીના ગામમાં રહેનારી રૈયતે એમને ઓળખી કાઢ્યાં અને પાછા ફરવા માટે અતિશય આગ્રહ કર્યો, પણ મહાકાશ્યપનો વિચાર જરા પણ ડગ્યો નહિ. ગામથી કેટલેક દૂર ગયા પછી એણે ભદ્રાને કહ્યું, “ભદ્રા ! તારા જેવી સુદરી સ્ત્રી મારી પાછળ પાછળ આવતી જોઈ, પ્રવ્રજ્યા લીધી તોપણ આ બન્નેનો ઘર-સંબંધ તૂટ્યો નથી, એવી કુકલ્પના લોકોના મનમાં આવે એવો સભવ છે આવા વિકારમય વિચારોને માટે આપણે કારણભૂત કેમ થવું ? ચાલ, આ બે રસ્તા જુદા પડે છે, તું એક રસ્તે જા અને હું બીજે રસ્તે જઈશ ”

ભદ્રા—આપ કહો છો તે ઠીક છે. આપ મોટા છો, તેથી આપ જમણે રસ્તે જાઓ અને હું ડાબે રસ્તે જઈશ (બૌદ્ધસંઘનો પરિચય, પૃ ૧૯૦)

—જૈનયુગ, જ્યેષ્ઠ ૧૯૮૫.

પરિવ્રાજિકાનું રોમાંચક લગ્ન અને તેના પુત્રનો બુદ્ધ સાથે સંલાપ

[૩૫]

'લલિતવિસ્તર' ની પેઠે 'મહાવસ્તુ' પણ બૌદ્ધપરંપરાનો એક કથાગ્રંથ છે. એમાં બુદ્ધના જીવનને લગતી અનેક બાબતો કથારૂપે અને પૌરાણિક શૈલીએ વર્ણવવામાં આવી છે. એનું સંસ્કૃત પંડિતોને પરિચિત સંસ્કૃતથી બહુ જુદા પ્રકારનું છે એમાં પાલિ, પ્રાકૃત અને અપભ્રંશ જેવી ભાષાઓનું એવું મિશ્રણ છે કે તેણે એક વિશિષ્ટ રૂપ ધારણ કર્યું છે. 'મહાવસ્તુ' ગ્રંથ ત્રણ ભાગમાં પેરિસથી પ્રસિદ્ધ થયેલો છે. તેમાં એક સભિક નામના પરિવ્રાજકની (ભાગ ૩, પૃ. ૩૮૯ થી ૪૦૧) કથા છે સભિક પરિવ્રાજકરૂપે બુદ્ધ પાસે આવે છે અને અનેક પ્રશ્નો પૂછે છે બુદ્ધ તેનો જવાબ આપે છે. છેવટે સભિક જવાબથી સંતોષ પામી બુદ્ધનો શિષ્ય બને છે. આટલી મુદ્દાની વસ્તુ એ ગ્રંથમાં એટલી બધી રોચક શૈલીમાં અને રોમાંચક રીતે વર્ણવવામાં આવી છે કે કોઈ પણ વાચક તે કથા પ્રત્યે અનાયાસે આકર્ષાય. તેથી આ લેખમાં એનો સાર આપી છેવટે કેટલાક મુદ્દા ઉપર સમાલોચના અને કાંઈક તુલના કરવા ધારું છું.

બનારસથી થોડે દૂર ઇસિપત્તન સ્થળમાં મૃગદાવ નામનું ઉપવન હતું. એ આજે સારનાથના નામથી પ્રસિદ્ધ છે, અને ત્યાં પ્રાચીન અશોકસ્તૂપ વગેરે અનેક અવશેષો મળી આવ્યા છે તે મૃગદાવ ઉપવનમાં એકવાર તથાગત બુદ્ધ પધારેલા. તે સમયની સભિક પરિવ્રાજકની આ સંલાપકથા છે

મથુરા નગરીમાં એક ધનાઢ્ય શ્રેષ્ઠી વાસ કરતો. તેને ત્યાં કન્યા ઉપર કન્યા એમ ચોથી કન્યાનો જન્મ થયો ઉપરાઉપર ચોથી કન્યા અમંગળ છે એવી માન્યતાથી પ્રેરાઈ તે શ્રેષ્ઠીએ એ કન્યા એક પરિવ્રાજિકાને અર્પિત કરી કહ્યું કે જ્યારે આ કન્યા ઉંમરે પહોંચે ત્યારે એને તમે દીક્ષા આપજો, તે તમારી શિષ્યા થશે. શ્રેષ્ઠીએ તે કન્યાના ઉછેર માટે એક ધાવમાતા આપી અને તેના પોષણ અર્થે જોઈતું નાણું પણ આપ્યું. પાણીમાં કમળ વધે તેમ એ કન્યા વધવા લાગી. સમજણી થઈ કે તરત જ પરિવ્રાજિકાએ એને

છું. અસ્તુ, તેમ છતાં વાદકથામાં ઊતરીએ તે પહેલાં એક શરત અમારે બન્નેએ કબૂલ કરવી જોઈએ અને તે એ કે જે હારે તે જીતનારનો શિષ્ય બને. સભાજનોએ એ શરત બાબત પરિવ્રાજિકાને પૂછ્યું, તો તેણે પણ પોતાની સમ્મતિ દર્શાવતાં કહ્યું કે મને એ શરત માન્ય છે

આ રીતે શરત નક્કી થઈ એટલે બ્રાહ્મણ પંડિતે એક લાંબો અને જટિલ પ્રશ્ન પૂછ્યો પરિવ્રાજિકાએ પણ આ સભા ઉપર પોતાની છાપ પાડવા રુઆબથી તે પ્રશ્નનો જવાબ આપ્યો આ રીતે પહેલો દિવસ એક બીજાના પ્રશ્નોત્તરમાં પસાર થયો, પણ કોઈ એકબીજાને જીતી શકયુ નહિ. બન્ને ચર્ચામાં સરખા જ ઊતર્યાં. આ રીતે સભામાં વાદવિવાદના સાત દિવસ પસાર થઈ ગયા, પણ કોઈ કોઈથી હાર્યું નહિ સભામા આવેલા પુરુષો પંડિત ને પરિવ્રાજિકા વચ્ચે ચાલતી ચર્ચાની રસાકસીમા એટલો બધો રસ લેતા કે સાજ પડે તોય ભાન ન રહે. જ્યારે તેઓ ઘેર પાછા ફરતા ત્યારે આખા નગરની સ્ત્રીઓ અકળાઈ પોતપોતાના પતિને પૂછતી કે સાત દિવસ થયા રોજ આટલુ બધુ મોડુ કેમ કરો છો? દરેક પતિનો પોતાની પત્નીને જવાબ એક જ હતો અને તે એ કે—શુ તુ નથી જાણતી કે એક સર્વશાસ્ત્ર-વિશારદ દાક્ષિણાત્ય વિદ્વાન આવેલ છે? એ સાત દિવસ થયા ચર્ચા કરે છે, પણ એક સ્ત્રીને જીતી નથી શકતો. આ સાભળી બધી જ સ્ત્રીઓએ પોતપોતાના ધણીને કહ્યુ કે સ્ત્રીઓ કેવી પડિત હોય છે! તેમની બુદ્ધિશક્તિ પુરુષો કરતા ચડે છે, ઊતરતી નથી. સ્ત્રીઓનું આ મહેણુ સાભળી બધા જ પુરુષોને મનમાં એમ થયુ કે કોઈ પણ રીતે જો તે બ્રાહ્મણ પડિત પરિવ્રાજિકા દ્વારા હાર પામ્યો તો આપણા બધા પુરુષોની હમેશને માટે બૂરી વલે થશે, જ્યારે ને ત્યારે સ્ત્રીઓ મહેણું મારી આપણને તણખલાતોલ લેખશે આ રીતે આખા નગરમાં બે પક્ષ પડી ગયા સ્ત્રીવર્ગ તો પરિવ્રાજિકાનો જય વાછે, જ્યારે પુરુષવર્ગ પેલા બ્રાહ્મણ પડિતનો જય વાછે ત્યાર બાદ એક દિવસે મળેલી સભામાં બ્રાહ્મણ પડિતે પરિવ્રાજિકાના પ્રશ્નનો જવાબ વાળ્યો, પણ પેલી પરિવ્રાજિકાએ જાણીને જ જવાબ ન વાળતા ન આવડવાનો ડોળ કર્યો—જાણે કે તે આપમેળે જ પાણીમાં બેસી ગઈ. પરિવ્રાજિકાની ચુપકીદી જોઈ સભાજનો પોકારી ઊઠ્યા કે પરિવ્રાજિકા હારી અને પંડિત જ્યો. ત્યાર બાદ પંડિતે પોતાના ધર્મની નિશાની લેખે તે પરિવ્રાજિકાને ત્રિદંડ અને છત્ર-ચાખડી આપી, પોતાની શિષ્યા તરીકે એને જાહેર કરી, સભાસ્થાનથી વિદાય આપી.

હવે એ બ્રાહ્મણ પડિત અવારનવાર પોતાની શિષ્યા પરિવ્રાજિકાના

મઠમાં જવા લાગ્યો. બન્ને જણ પોતાને રુચે તેમ સમાગમમાં આવવા લાગ્યા પુન. પુન. મિલનના પરિણામે તે પરિવ્રાજિકા આપન્નસત્ત્વા–સગર્ભા થઈ. બન્નેએ મથુરામા રહેવુ ઠીક નથી એમ વિચારી ત્યાંથી દક્ષિણ તરફ પ્રવાસ આદર્યો. ગ્રામાનુગ્રામ પગે ચાલતા શ્વેતબલાકા નામની નગરીમાં તેઓ પહોંચ્યા. નવ–દશ માસ પૂરા થતાં જ તે પરિવ્રાજિકાએ પુત્રને જન્મ આપ્યો. એક સભા અર્થાત્ સાર્વજનિક સ્થાનમા એનો જન્મ થવાથી માતાપિતાએ એનું સભિક નામ પાડ્યુ માતાપિતા બન્નેએ તેને કાળજીથી ઉછેર્યો અને ઉંમરલાયક થતા તેને લિપિ, ગણિત અને બીજાં અનેક પરિવ્રાજક શાસ્ત્રો શિખવાડ્યાં તે સભિક છેવટે વાદીપ્રવાદી તરીકે પ્રસિદ્ધિમાં આવ્યો. હવે સભિકને શાસ્ત્રવિસ્તાર એક મહાન સમુદ્ર જેવો જણાયો ને પોતાની જાતને અબુદ્ધ–અજ્ઞાની લેખી કોઈ બુદ્ધ–જ્ઞાનીની શોધમા નીકળી ગયો. અનેક દેશોમાં પરિભ્રમણ કરતો કરતો છેવટે તે જ્યા તથાગત બુદ્ધ હતા ત્યા વારાણસી પાસેના મૃગદાવ ઉપવનમાં આવી પહોંચ્યો સભિક બુદ્ધ સાથે કુશળવાર્તા કરી એક બાજુ બેસી ગયો અને તેણે ભગવાન બુદ્ધને પ્રશ્નો પૂછવાના ઇરાદાથી કહ્યુ કે, ‘ હે ભદન્ત તથાગત ! હું નામે સભિક પરિવ્રાજક કેટલીક શંકાઓ નિવારવા તમારી પાસે આવ્યો છુ અને જિજ્ઞાસાવશ પૂછું છું કે તમે મારા પ્રશ્નોનો અનુક્રમે યોગ્ય ખુલાસો કરો ’ તથાગતે કહ્યુ કે, ‘તું બહુ દૂરથી જિજ્ઞાસા-વશ આવે છે, તો ખુશીથી પ્રશ્નો કર હું તેનો યથાયોગ્ય ઉત્તર વાળીશ.’

સભિકે ગાથાબદ્ધ શૈલીમા પ્રથમ પ્રશ્ન કર્યો કે ભિક્ષુ કોને કહેવાય ? શ્રમણ અને દાન્ત કોને કહેવાય ? બુદ્ધે કહ્યુ કે જેણે આત્મજય કર્યો હોય, જે કાલાથી પર હોય અને જેણે નિર્વાણ પ્રાપ્ત કરી પુનર્ભવનો ક્ષય કર્યો હોય તે ભિક્ષુ જે બધી બાબતોમા ઉપેક્ષાશીલ રહે, જે પ્રત્યેક ક્ષણે જાગતો રહે ને જે કોઈ પણ જાતની હિંસા કરવાથી મુક્ત રહે. જે નિર્દોષ હોય તે શ્રમણ જેણે ઇન્દ્રિયોને વશ કરી હોય, જે આ લોક કે પરલોકમાં આસક્ત થયા વિના ભાવનાપૂર્વક કર્તવ્યોનુ પાલન કરી સમયનો સદુપયોગ કરતો હોય તે દાન્ત આ જવાબ સાભળી સભિક પરિવ્રાજકે તથાગતને બહુ અભિનંદન આપી ફરી પ્રશ્નો કર્યા કે હે ભદન્ત ! બ્રાહ્મણ કોને કહેવો ? સ્નાતક કોણ કહેવાય ? અને નાગનો અર્થ શો ? બુદ્ધે કહ્યુ કે જે બધાં પાપોને બહાર કરી, નિર્મળ થઈ સમાધિમગ્ન થયો હોય અને જે સંસારનુ સાચુ સ્વરૂપ સમજી સ્થિર મનથી બ્રહ્મચર્યમા વસેલ હોય તે બ્રાહ્મણ. જે અન્દર અને બહારનાં બધા મળોનુ પ્રક્ષાલન કરી દે તેમ જ મનુષ્યોએ કલ્પેલી સીમાઓ કે ગોઠાઓમા ફરી નથી બંધાતો તે સ્નાતક જે દુનિયામાં કોઈ પણ જાતનો કે

અપરાધ નથી કરતો, જે બધી જાતનાં બંધનોથી મુક્ત થઈ ક્યાંય પણ લેપાતો નથી તે નાગ ફરી એણે પૂછ્યું કે ભદન્ત! વેદક કોણ કહેવાય? અનુવિદિત એટલે શું? અને વીર્યવાન્ કેવી રીતે થવાય? આજાનેય ક્યારે કહેવાય? ભદન્ત તથાગતે કહ્યું કે બધા વેદોને જાણી બધી જાતની સુખ-દુઃખની વેદનાઓથી પર હોય તે વેદક અંદર અને બહારના નામ તેમ જ રૂપના રાગપ્રપંચને નિર્મૂળ કરી જે બંધનમુક્ત થયો હોય તે અનુવિદિત. જે ક્લેશોનું સર્વથા પ્રહાણ કરી તમામ ઇતર પ્રાણીઓની રક્ષા કર્યા વિના ન જંપે તે વીર્યવાન્ બધાં બંધનો છેદી પાર ગયો હોય તે આજાનેય એ જ રીતે ક્ષેત્રજ્ઞ, કુશળ, પંડિત, મુનિ, શ્રોત્રિય, આર્ય, ચરણવાન અને પરિવ્રાજક જેવા પદોના સભિકે પૂછેલ અર્થ તથાગતે સાર્થક વ્યુત્પત્તિથી કરી બતાવ્યો, એટલે સભિકે સુંદર ગાથાઓથી તથાગતની નીચે પ્રમાણે સ્તુતિ કરી

'હે ભગવન્! જે ૬૩ શ્રમણ દૃષ્ટિઓ–દર્શનો છે તે બધાથી તમે પર છો તમે દુઃખનો અન્ત કર્યો હોઈ દુઃખાન્તક છો તમે મુનિપદ પામી નિષ્કંપ થયા છો નાગોના નાગ અર્થાત્ હસ્તિરાજ એવા તમ મહાવીરનું સુભાષિત બધા જ દેવદાનવો પ્રશંસે છે મે જે જે શંકાઓ મૂકી તેનો તમે ખુલાસો કર્યો હે વીર! તમે જરા પોતાના ચરણ પસારો આ સભિક તે ચરણોમા પડી તમને વંદે છે'

ત્યાર બાદ તથાગતે સભિકને ભિક્ષુક પદથી સંબોધી પ્રવ્રજ્યા આપી પોતાના સંઘમા લીધો.

વાચકોના બોધમા કાંઈક વૃદ્ધિ થાય અને તેમની રુચિ સવિશેષ પોષાય એ હેતુથી ઉપર આપેલ સારમા આવેલ કેટલાક મુદ્દા પરત્વે પ્રાસંગિક ચર્ચા કરવી ઉપયુક્ત લાગે છે અલબત્ત, આ ચર્ચા કે તુલના માત્ર સંકેતરૂપ હોઈ યથાસંભવ ટૂંકમાં જ પતાવાશે

૧. વિજયરસ પ્રાણીમાત્રને હારવું નહિ, પણ જીતવું રુચે છે વિશેષે માનવજાતિનો ઇતિહાસ તો હારજીતના સંગ્રામથી જ લખાય છે શસ્ત્રવિજય તો જાણીતો છે જ, પણ શાસ્ત્રવિજયની કથાય હજારો વર્ષ જૂની છે અને કોઈ પણ ધર્મપરંપરાના ઇતિહાસમા તે આવે જ છે વિદ્વાનો અને જ્ઞાનીઓનો પ્રથમ પ્રયત્ન એ રહેતો આવ્યો છે કે પોતાના વિષયના હરીફને કોઈ પણ રીતે જીતે. જેઓ સર્વજ્ઞ કે વીતરાગ તરીકે સંપ્રદાયમા જાણીતા છે તેમના સાધક અને તપસ્વી શિષ્યપરિવારમાં એક એવો વર્ગ પણ હમેશા

રહેતો કે જે અન્ય પરંપરાના વિદ્વાનો સાથે વાદચર્ચામાં ઊતરે, તેમને હરાવે અને પોતાના સમ્પ્રદાયનો જયધ્વજ સ્થાપે. હજારો વર્ષનું સંસ્કૃત-પ્રાકૃત-પાલિ વાઙ્મય વાદચર્ચાના કાલ્પનિક અને ઐતિહાસિક વર્ણનોથી ભરેલુ છે. અખાડામાં કુસ્તી કરવાના દાવપેચો અને નિયમો હોય છે, જેમ યુદ્ધમાં શસ્ત્ર ચલાવવાના અને તેથી બચવાના દાવપેચો ખેલાય છે, તેમ વાદકથા વિશે પણ છે એતું એક વિશિષ્ટ શાસ્ત્ર જ રચાયુ છે તેથી કોઈ જ્યારે એક વિષયમા પારગામી થાય ત્યારે તેની પહેલી નેમ તે વિષયના હરીફને જીતવાની અને પોતાનો સિક્કો જમાવવાની રહે છે એ જ પરંપરાગત વહેણને વશ થઈ દાક્ષિણાત્ય પંડિત મથુરામા વિજય માટે આવ્યો છે અને એ જ વલણને વશ થઈ પેલી પરિવ્રાજિકા પણ પ્રથમ તો વાદનુ બીડુ ઝડપે છે.

લોકોને જાતે યુદ્ધ કરવુ ન હોય ત્યારે યુદ્ધ જોવાનો રસ પણ અદમ્ય હોય છે એવું યુદ્ધ જોવા ન મળે તો એની વાર્તા પણ રમ્ય લાગે છે, એ આપણો અનુભવ છે. પંડિત અને પરિવ્રાજિકા વચ્ચે વાદનો અખાડો રચવામાં મથુરાવાસીઓનો રસ કેટલો ઊંડો છે તે તો જાહેર ચર્ચા જોવા ચોમેરથી માનવમેદની ઊભરાય છે અને સાંજ પડે તોય જમાવટ કાયમ રહે છે એટલા ઉપરથી દેખાઈ આવે છે આવી ઘટના આજે પણ જૂની ઢબના પંડિતોમાં અને નવી ઢબની ડીબેટિંગ કલબોમા બનતી જોવાય છે તેથી 'મહાવસ્તુ'ના પ્રસ્તુત કથાનકમા જે વાદસભાને લગતુ ચિત્ર છે તે વસ્તુસ્થિતિનુ નિદર્શક માત્ર છે

૨. સ્ત્રી પણ વાદપટુ સામાન્ય રીતે એમ જ દેખાય ને મનાય છે કે વિદ્યા પુરુષપ્રધાન હોઈ વાદ કે ચર્ચામા પુરુષો જ પડે છે, પણ આ ધારણા પૂર્ણ સત્ય નથી. હજારો વર્ષ પહેલા પણ સ્ત્રીઓ વાદમા ભાગ લેતી—એની સંખ્યા પુરુષો કરતા નાની હોય એ વાત જુદી પણ સ્ત્રીઓ વિદ્યા શીખતી જ નહિ કે પુરુષો સાથે શાસ્ત્રીય વિષયોમા વાદચર્ચા કરવામા ભાગ લેતી જ નહિ એ માન્યતા નિરાધાર છે ઉપનિષદોમા વાચક્નવીની વાત જૂની અને જાણીતી છે તેણે જનકની સભામા યાજ્ઞવલ્ક્ય જેવા જ્ઞાની સામે માર્મિક અને મૂંઝવી નાખે એવા પ્રશ્નો કરેલા અને યાજ્ઞવલ્ક્યે એનુ સન્માન પણ કરેલુ મંડન-મિશ્રની પત્ની સરસ્વતીએ શંકરાચાર્ય જેવાને ચકરાવ્યાની દંતકથા જાણીતી છે દાક્ષિણાત્ય પંડિત સાથે ચર્ચા કરવાનુ બીડુ ઝડપનાર એક સ્ત્રી છે. એટલુ જ નહિ, પણ તે સ્ત્રી પરિવ્રાજિકા છે એમ કહેવામા આવ્યુ છે પરિવ્રાજક વર્ગ બુદ્ધ-મહાવીર પહેલાથી આ દેશમા ચાલ્યો આવે છે. એનો પરંપરા વિ.

એવી ઘણી શાખાઓ અસ્તિત્વ ધરાવતી પરિવ્રાજક વર્ગમાં પુરુષોની પેઠે સ્ત્રીઓનુ પણ સ્થાન હતું. મથુરામાં પરિવ્રાજિકાઓના અનેક મઠોનો ઉલ્લેખ છે. તે ઉપરથી પ્રાચીન ઇતિહાસની એ વાતને ટેકો મળે છે કે ઉત્તર ભારતમાં ભિક્ષુની પેઠે ભિક્ષુણીઓનો પણ મોટો વર્ગ હતો, અને તે અનેક પંથોમાં વહેંચાયેલો હતો. વધારે સંભવ એવો છે કે એ પરિવ્રાજિકાઓ વૈદિકેતર પરંપરામાંની હોય

૩. પ્રથમ મુલાકાતે પરસ્પર આકર્ષણ . વાદી પંડિત ગયો તો કુતૂહલવશ કે વાદનુ બીડુ ઝડપનાર એક નારી છે, તો તે કેવી હશે ? પણ બન્ને મળ્યાં અને એકબીજાના આકર્ષણથી ઝડપાઈ ગયાં હવે રસ્તો કેમ કાઢવો એ મૂંઝવણનો ઉકેલ પણ બન્નેએ મળી શોધી કાઢ્યો અલબત્ત, એ ઉકેલમાં પુરુષ પંડિતની ચાતુરી મુખ્ય દેખાય છે, પણ પેલી પરિવ્રાજિકા એની યુક્તિ–ચાતુરીને વશ થઈ એ પણ તેનુ પ્રબળ આકર્ષણ સૂચવે છે. બન્ને જણ પોતાની મંત્રણાને ગુપ્ત રાખે છે એ તત્કાલીન સામાજિક સ્થિતિનુ સૂચન છે

૪. નગરનારીઓની ફરિયાદ : એ તો હમેશનો અનુભવ છે કે જ્યારે પુરુષો સાંજે પણ વખતસર ઘેર પાછા ન ફરે ત્યારે સ્ત્રીઓ અકળાય છે અને એ એમની રોજિંદી ફરિયાદ રહે છે કે આટલુ મોડું કેમ કરો છો ? એ જ સાર્વજનિક અનુભવ કથાના લેખકે મથુરાવાસી નારીઓને મોઢેથી રજૂ કર્યો છે મોડું થવાનુ કારણ પુરુષોએ આપ્યુ ત્યારે સ્ત્રીઓ નાખુશ થવાને બદલે એમ જાણીને રાજી થઈ કે અમારી જ એક બહેન પુરુષોનો ગર્વ ગાળી રહી છે પુરુષોના મોડા આવવાથી થતા માનસિક દુ.ખમા સ્ત્રીઓને મોટું આશ્વાસન એ મળ્યુ કે અમે નહિ તો અમારી એક બહેન પુરુષના ગર્વને ગાળશે સામાન્ય રીતે આપણે જાણીએ છીએ કે સ્ત્રીઓ પોતપોતાના પતિના અને તે દ્વારા પુરુષવર્ગના ઉત્કર્ષથી રાજી થાય છે, પોતાની જાતને પાછળ રાખીને પણ પતિદેવને આગળ કરવામાં કે તેમને વિજયી જોવામા ઊંડું સુખ અનુભવે છે તેમ છતાં અહીં ઊલટું દેખાય છે. મથુરાનો આખો નારીવર્ગ પોતાનામાંની એક એવી સ્ત્રીને વિજયની દિશામાં જતી જોઈ અને પુરુષ પંડિત-ને પરાજયની દિશામાં જતો જોઈ કેટલી રાજી થાય છે ! બધી જ સ્ત્રીઓ એકસ્વરથી કહી દે છે અને નિરાત અનુભવે છે કે ઠીક થાય જો પુરુષ હારે તો ! વ્યક્તિગત રીતે પુરુષનો જય વાછતી નારી સામુદાયિક રીતે પુરુષવર્ગનો પરાજય કેમ ઇચ્છતી હશે, એ એક માનસશાસ્ત્રીય કોયડો તો ખરો જ એમ લાગે છે કે પ્રત્યેક વ્યક્તિમાં સજાતીય અને વિજાતીય એવા બે ચિત્તપ્રવાહો

વલ્યા કરે છે. જ્યારે વ્યક્તિગત આકાંક્ષાતૃપ્તિનો પ્રશ્ન હોય ત્યારે સામાન્ય રીતે સ્ત્રીનુ વિજાતીય ચિત્ત પ્રધાન બની પુરુષના પરાક્રમને ઝંખે છે અને તેને વશ રહેવામાં આન્તરિક કૃતાર્થતા અનુભવે છે; પણ જ્યારે સામુદાયિક આકાંક્ષા-તૃપ્તિની ક્ષણ આવે છે ત્યારે તેનુ સજાતીય ચિત્ત ગતિશીલ થાય છે અને તેને પોતાના સજાતીય વર્ગના ઉત્કર્ષ માટે ઝંખતી કરે છે વ્યક્તિગત રીતે ઊંડે ઊંડે મનમાં પુરુષનો ઉત્કર્ષ ઝંખતી નારી પણ સામુદાયિક રીતે નારીવર્ગના ઉત્કર્ષને પક્ષે જ હાથ ઊંચો કરે છે એમ પણ હોય છે કે વ્યક્તિગત રીતે પુરુષનો પરાભવ કરવા અસમર્થ એવી નારીના ચિત્તમાં કોઈ એવી ગ્રંથિ બંધાતી હોય કે પુરુષને ક્યારે પરાભૂત કરુ આવી તક જો કોઈ સ્ત્રી ગમે ત્યાં ઝડપતી હોય તો એની એ માનસગ્રંથિ તેમા સૂર પુરાવે કદાચ તેથી જ આખો નારીવર્ગ એ પરિવ્રાજિકાના વિજયની આશાથી નાચી ઊઠયો હોય.

૫. પરિવ્રાજિકાનું સગર્ભા થવું ને દેશાન્તરમાં ચાલી નીકળવું : કથામાં આપણે જોયું કે વાદપટુ પરિવ્રાજિકા છેક બાલ્યવયથી જ ઘરવંચિત થઈ હતી અને પરિવ્રાજિકાઓના મઠમા ઊછરી, ત્યાં જ દીક્ષિત થઈ હતી. આટલી શાસ્ત્રપટુ અને રાતદિવસ શાસ્ત્રપારાયણમા રત તેમ જ ધર્મક્રિયામા ભાગ લેનાર એક ત્યાગી સ્ત્રી અજાણ્યા પુરુષના અણધાર્યા મિલનમાત્રથી શાસ્ત્ર-ધર્મ–કર્મ બધું છોડી પુરુષ પ્રત્યે ક્ષણમાત્રમા કેમ આકર્ષાઈ? કેમ એને છળ-કપટનો આશ્રય લેવો પડયો અને ગર્ભ ધારણ કર્યા પછી પરિચિત વતન છોડી એને દેશાન્તરમા ગુપ્તપણે કેમ ચાલ્યા જવુ પડ્યું? આ પ્રશ્નો કાંઈ કાલ્પનિક નથી પ્રાચીન અને મધ્યયુગની પેઠે એવી ઘટનાઓ આજે પણ જ્યા ત્યા જુદા જુદા આકારમા બની રહી છે. તેથી સામાજિક સ્વાસ્થ્ય અને નિર્દંભ ધર્મના પક્ષપાતીઓએ વિચારવું ઘટે કે આવી ઘટનાઓનુ મૂળ શું છે અને તે કેમ બનતો અટકે? સ્પષ્ટ છે કે ગૃહસ્થાશ્રમના રાજમાર્ગનુ ઉલ્લંઘન કરી અકાળે અને વણસમજે સન્યાસ લેવામા જ આવી ઘટનાઓનાં મૂળ છે. બીજી વાત એ છે કે જાણે–અજાણે એક વાર ત્યાગી બનેલ સ્ત્રી કે પુરુષ ફરી જો પ્રામાણિકપણે ભોગમાર્ગે વળે તો સમાજ એના પ્રત્યે સૂગ સેવે છે. એવા પ્રથમ ત્યાગી અને પછી ભોગી પાત્રોને તિરસ્કાર વિના જીવવાનુ મુશ્કેલ બને છે અને એવી વ્યક્તિઓ ખંતીલી કે જનપ્રિય હોય તોય તેઓને નિર્વાહનું સાધન મેળવવું અતિવસમું થઈ પડે છે એને લીધે એવી વ્યક્તિઓને ક્યાંય પણ અજાણ્યા પ્રદેશમા જવુ ને ભટકવુ પડે છે આ સ્થિતિ કોઈ પણ સભ્ય સમાજ માટે ઇષ્ટ નથી ઇચ્છાથી અને સમજણપૂર્વક જે ત્યાગ તેમાં જ

સમાજનુ શ્રેય છે. બળાત્કાર કે લાચારીમા સ્વીકારાયેલો ધર્મ એ માત્ર પોકળ છે અને પોકળોને ઢાંકવાના પ્રયત્નોમાંથી પરિણામ પણ ભીરુતા, નિન્દા જેવા અનિષ્ટ દોષોની પુષ્ટિમાં જ આવે છે. તેથી આ બાબત તત્કાળ સુધારણા માગે છે એ કહેવાની ભાગ્યે જ જરૂર હોય

૬. **સભિકની પ્રશ્નપદ્ધતિ :** આપણે ઉપર જોયું કે સભિક તથાગત બુદ્ધને જે પ્રશ્નો કરે છે તે મૂળે ત્યાગમાર્ગ સાથે સંબધ ધરાવે છે અહી બે બાબતો વિચારવા જેવી છે એક તો આવા પ્રશ્નો કેમ ઉદ્ભવે છે તે અને બીજી આવી પ્રશ્નપરપરાનો ઇતિહાસ શો છે તે ત્યાગ એ આન્તરિક વસ્તુ છે, પણ એની આસપાસ જ્યારે ક્રિયાકાડનુ જાળુ અને વેશ તથા ચિહ્નોનુ પોપડુ બધાય છે ત્યારે ત્યાગ વિનાના એ જાળા અને પોપડામા પ્રજા સડોવાય છે એમાંથી જ્યારે કોઈ વિવેકી અદરનુ ખરુ તત્ત્વ તારવી તેને પચાવી લે છે ત્યારે તે એવા પ્રશ્નોનો ખુલાસો ખરા અર્થમા કરે છે. તેમાંથી અન્તસ્ત્યાગી અને બહારના ખોખાનુ અન્તર લોકો સ્પષ્ટ સમજવા માંડે છે ત્યા તો અન્ધ-શ્રદ્ધા અને અવિવેક વળી પાછા લોકોને જૂની ઘરેડમા ખેચે છે આ રીતે વિવેક અને અવિવેકનુ દેવાસુરી દ્વન્દ્વ ચાલ્યા કરે છે સભિક બ્રાહ્મણ, શ્રમણ, મુનિ, શ્રોત્રિય જેવા અનેક પ્રતિષ્ઠિત શબ્દોનો અર્થ પૂછે છે ને બુદ્ધ તાત્ત્વિક રીતે ખુલાસો કરે છે.

આવી પ્રશ્નોત્તરશૈલી કાંઈ નવી નથી, તે બહુ જ પુરાણી અને દરેક પંથના ખાસ સાહિત્યમા મળે છે મહાભારતના વન, ઉદ્યોગ, અનુશાસન, શાન્તિ આદિ પર્વોમાં આના બહોળા નમૂનાઓ છે ગીતામા સ્થિતપ્રજ્ઞને લગતા પ્રશ્નો એ પણ આ જ શૈલીનો નમૂનો છે ઉત્તરાધ્યયન નામક જૈન આગમમા એવા પ્રશ્નોની હારમાળા છે અને ધમ્મપદ આદિ બૌદ્ધ ગ્રન્થોમા ઠેર ઠેર એવા પ્રશ્નો વીખરાયેલા છે તે બધા રોચક હોવા ઉપરાત શબ્દોના સ્થૂળ અને તાત્ત્વિક અર્થનુ અન્તર તારવવામાં બહુ પ્રકાશ કેકે છે

૭. **૬૩ દૃષ્ટિઓ :** પ્રસ્તુત સારમા ૬૩ શ્રમણ દૃષ્ટિઓનો નિર્દેશ છે, અને બુદ્ધને તેથી પર કહી સ્તવવામા આવ્યા છે. તો પ્રશ્ન એ છે કે એ ૬૩ દૃષ્ટિઓ કઈ અને બુદ્ધ શ્રમણ છતા એ બધાથી પર કેમ મનાયા ? આ ૬૩ દૃષ્ટિઓ દીઘનિકાય નામના બૌદ્ધ પિટકના પ્રથમ બ્રહ્મજાલસુત્રમા (ખરી રીતે આપણે જેને લોકભાષામા ભ્રમજાળ કહીએ છીએ તેમા) ગણાવેલી છે દૃષ્ટિ એટલે માન્યતા અથવા એક પ્રકારની પકડ જ્યારે માણસ આવી એક

પકડમાં ફસાય ત્યારે તે બીજી પકડનો વિરોધ કરે છે ને અંદરોઅંદર બધી દૃષ્ટિઓ આખડે છે. બ્રહ્મ કે સત્ય તત્ત્વની શોધમાં સાંપડેલી દૃષ્ટિઓ એ તત્ત્વનો માર્ગ બનવાને બદલે એક એક જાળ અર્થાત્ ભ્રમજાળ બની જાય છે ને માણસો તેમાં જ ગૂંચવાયા કે મૂઝાયા કરે છે. બુદ્ધે જ સર્વપ્રથમ એમ કહ્યુ કે કોઈ પણ દૃષ્ટિને પકડી ન બેસવું. નદીકિનારે પહોચ્યા પછી માણસ જેમ કિનારે લઈ જનાર નાવડાને વળગી નથી રહેતો તેમ અમુક હદ સુધી વિચાર કે આચારમાં આગળ વધારનાર દૃષ્ટિને પણ, વિશેષ સત્યગામી બનવા, છોડવી જ જોઈએ આવા મહાન ક્રાન્તદર્શનને લીધે જ બુદ્ધ દૃષ્ટિઓથી પરરૂપે સ્તવાયા છે.

—નચિકેતા.

દંપતીજીવનના દસ્તાવેજી પત્રો

[૩૬]

શ્રી. ઇન્દુલાલ યાજ્ઞિક કેવળ ગુજરાતના જ સેવક નથી, પણ તેઓ વિશિષ્ટ રાષ્ટ્રીય સેવકોમાંના એક અસાધારણ છે. તેમણે પોતાની આત્મકથા લખવા માંડી છે તેનો બીજો ભાગ પણ પ્રસિદ્ધ થઈ ગયો છે જેણે જેણે એ ભાગો વાંચ્યા હશે તે બધા આગળના ભાગોની અતિ ઉત્કંઠાપૂર્વક રાહ જોઈ રહ્યા હશે એમ મને લાગે છે. 'ગૃહમાધુરી'માં એ બંને ભાગો વિશે લખવુ પ્રસ્તુત નથી, અને અત્યારે હું એટલો સ્વસ્થ પણ નથી.

પરંતુ બીજા ભાગમાં શ્રી. ઇન્દુભાઈના દંપતીજીવન ઉપર પ્રકાશ નાખતો જે ભાગ આવે છે તે વિશે 'ગૃહમાધુરી'ના વાચક–વાચિકાઓ સમક્ષ કાંઈક લખવાનુ મન થઈ આવે છે એમ તો શ્રી ઇન્દુભાઈએ પોતે જ પોતાના લગ્નજીવન વિશેની, ઘણાને માટે અજ્ઞાત એવી, સમસ્યા ઉપર 'લગ્નજીવનની વેદના' એ મથાળા નીચે આર્દ્ર–કરુણ વાણીમાં પોતાનું નિખાલસ હૃદય ઠાલવ્યુ છે, જે એમની સચ્ચાઈનો અમર દસ્તાવેજ બની રહે છે તેથી એ વિશે અત્રે મારે કશુ વિશેષ કહેવુ નથી કહેવુ હોય તો તે એટલુ જ કે વાંચી અને સમજી શકે એવા બધા જ ગુજરાતી ભાષા જાણનારાઓ તે વાંચે–વિચારે. મુખ્યત્વે અત્રે જે કહેવુ છે તે તો એમનાં સદ્‌ગત પત્ની બહેન કુમુદના એ જ ભાગમાં પ્રસિદ્ધ થયેલા બે પત્રો વિશે આ બે પત્રો દંપતીજીવનની આર્યનારીના હૃદયમા કેવી પ્રતિષ્ઠા છે એના અમર દસ્તાવેજો છે કુમુદના સુકુમાર હૃદયમાથી નીતરતી પતિનિષ્ઠા એમા વ્યક્ત થાય છે. એક ઋષિકલ્પ કવિએ ઉચ્ચાર્યું છે કે—अजर्यमार्यसगतम् તે કુમુદના જીવનમાં તંતોતંત દેખાય છે ઋષિના વક્તવ્યનો ભાવ એ છે કે આર્યત્વ એ ગુણસિદ્ધ છે, નહિ કે જન્મસિદ્ધ, અને તેનું વ્યવહારમા અનુભવી શકાય એવુ એકમાત્ર સ્વરૂપ એ છે કે આર્ય કે આર્યાની સંગતિ કદી જરાજીર્ણ થતી નથી—સદા એક-સરખી જીવંત રહે છે કુમુદના બંને પત્રો પૈકી એકેએક વાક્ય એના આર્ય-નારીત્વનો પુરાવો છે. આવી સહજ યોગ્યતા ધરાવનાર કુમુદ ઇન્દુભાઈ જેવા સહૃદય સેવાભાવી પુરુષ દ્વારા કેમ ઉપેક્ષા પામી હશે એ પ્રશ્ન વાચકને મૂંઝવે છે ખરો એનો ઉત્તર શકુન્તલાના આખ્યાનમાંથી નથી મળતો? શકુન્તલાને

દુર્વાસાનો શાપ હતો, તે કારણે દુષ્યન્ત તેને વીસરી ગયો એમ કાલિદાસ કહે છે. અહીં કુમુદને એવો કોઈ શાપ સ્પર્શ્યો નથી તો પછી અંતર શું અકારણ જ ઊભું થયું? ના, કાર્ય વિના કારણ કેમ થાય? શ્રી. ઇન્દુભાઈ પોતે જ એકરાર કરે છે કે તેમને નવા જમાનાની ચબરાક નારીના સ્વપ્ને કામણ કર્યું હતું. આવા કોઈ ભાવે જ તેમના સહૃદય હૃદયને અદય બનાવ્યુ, પણ પેલી કુમુદ તો આવા જીવલેણ સંકટ વખતે પણ સ્નિગ્ધ, સહૃદય અને સદય રહી. એણે પોતાના બંને પત્રોમા જે ઉદાત્ત અને ઉદાર વૃત્તિ રજૂ કરી છે તેમાં મને પોતાને તો સીતા અને દ્રૌપદીના હૃદયનુ અજબ મિશ્રણ લાગે છે. તે ઇન્દુભાઈને વીનવે છે, પગે પડે છે, પણ વળી સ્વમાનથી પ્રેરાઈ ઉચ્ચ ભાવનાવશ કોઈ સ્થૂળ દયાની માગણી નથી કરતી. જ્યારે તે લખે છે—

'તમારી રૂઢિ પ્રમાણે પરણેલી પત્ની તમારી જ છે. કોઈ કાળે, જીવ જતાં, આત્મા ઊડી જતા બીજાની થવાની નથી જ ભલે તમે ના ચાહો, ભલે તમે અમારા સ્નેહને તિરસ્કારો, પણ અમારો ધર્મ છે કે તમને ચાહવુ. અને તે ખાલી નહિ, આત્માના તાર સધાય તેવી જ રીતે' (પહેલો પત્ર)

'સંસારના જીવનમાં મેંય બ્રહ્મના ભણકાર સૂણવા પ્રયત્ન કર્યો છે, કરૂં છું. મારુંયે જયાની યોગ–સાધનામા જીવન જાય નિર્દય બની હૃદયને કચરુ છું. હૃદયમા ભીનાશ, કોમળતા પ્રભુએ કાં પ્રેરી હશે? અસ્થિમય એને કાં ન બનાવ્યું?' (બીજો પત્ર)—ત્યારે તેનું માનસ કેવા ઉચ્ચ આદર્શમા વિચરતુ હશે અને ઇન્દુભાઈને ઝંખતુ હશે એની કલ્પના જ કરવી રહે છે.

શરૂઆતમા કુમુદ શું ભણી હશે, કેવું ભણી હશે, કેવી તૈયારી હશે, વગેરે વિશે મારા જેવો કશું નથી જાણતો, પણ એના બે પત્રો એટલુ તો કહી જાય છે કે તેનામાં જેમ સૌકુમાર્ય અને આર્યનારીત્વ અલૌકિક હતું તેમ તેનામા સમજણ, વિવેક, સેવાની ભાવના અને પુરુષાર્થ પણ અદ્ભુત હતા. જો એ માત્ર સીતા હોત તો મૌનપૂર્વક પૃથ્વીમા વિલય પામત પણ એનામા દ્રૌપદીનુ ખમીર પણ હતુ. તેથી જ તેણે ખાનદાન કુટુંબના ઓસરતા સજ્જન-શીલ હૃદયની મર્યાદાઓનુ અતિક્રમણ કર્યા કઠોર પ્રતીત થયેલા પતિને ઉદ્દેશી ક્યારેક વિશ્વની રાજસભામાં સંભળાય એવાં પ્રેમાળ છતાં માર્મિક વેણ દ્રૌપદીની પેઠે ઉચ્ચાર્યાં છે ખરી રીતે કુમુદના એ આર્ય-હૃદયને, ભલે મોડે મોડે પણ શ્રી. ઇન્દુભાઈને સમજાયા ત્યારે તેમનું સંવેદનશીલ હૃદય હલમલી ઊઠ્યું અને એ હૃદય કઠોર મટી કોમળ બન્યું. કોમળતાના એ જ

વહેણે તેમની પાસે ‘ લગ્નજીવનની વેદના ’નુ આત્મલક્ષી પ્રકરણ લખાવ્યું. રામે સીતા માટે વલોપાત કર્યો હતો એ તો આપણે પરોક્ષ રીતે વાલ્મીકિની વાણીમાં સાંભળીએ છીએ, ત્યારે ઇન્દુલાલ યાજ્ઞિકનો આ વિલાપ આપણા માટે પ્રત્યક્ષ છે. પણ આ આખી કરુણ ઘટનામાં મને જે એક સળગસ્ત્ર સત્ય દેખાય છે તે છે કુમુદની વિવેકી આર્યભાવના ભલે એ એ જ ભાવનામાં મુરઝાઈ અને સુકાઈ ગઈ, પણ તે એક સ્મરણીય આદર્શ મૂકતી ગઈ.

‘ પણ પુરુષ પક્ષે શું ? ’ આવો એક પ્રશ્ન આ જમાનામાં થાય. શું અદ્યાપિ એવો કોઈ પુરુષ છે જે પત્નીઘેલો નહિ પણ પત્ની પ્રત્યે વફાદાર હોય, આર્ય હોય અને પત્ની તરફની સમગ્ર ભાવે ઉપેક્ષા છતાં તે એના પ્રત્યે માત્ર દાંપત્ય ભાવનાથી એકનિષ્ઠ રહ્યો હોય ? આનુ ઉદાહરણ બહુરૂપ ·જગતમાં દુર્લભ નથી, પણ એનો યથાર્થ પુરાવો શોધવાનું કામ સહેલુ પણ નથી કહેવાય છે કે પુરુષ પત્ની પ્રત્યે વફાદાર હોય તો છેવટે એના વિયોગમાં રામની પેઠે બીજુ લગ્ન ન કરતા ઝૂરે, પણ એ પોતાની સહચરીનો કુમુદની પેઠે સર્વાર્પણની ભાષામાં અજપાજાપ તો ન જ કરે

—ગૃહમાધુરી, માર્ચ ૧૯૫૬.

યાયાવર

[૩૭]

'શ્રીરંગ'ના ગયા અંકમાં 'આપણાં યાયાવર પંખીઓ' એ નામે શ્રી માધવસિંહ સોલંકીનો અતિસુંદર અને મહત્ત્વપૂર્ણ લેખ છપાયેલો છે. એમા 'Migrant Birds' માટે 'યાયાવર' શબ્દ યોજાયેલો છે એ લેખ સાંભળતાં મને 'યાયાવર' પદ એ અર્થ માટે બહુ ઉપયુંક્ત લાગ્યું અને મિત્રો સાથે ચર્ચા થતા ઉચિત લાગ્યુ કે એ પદ વિશે અત્રે કાંઈક લખવું.

સસ્કૃતમા 'યા' ધાતુ છે, એનો અર્થ જવુ–ગતિ કરવી થાય છે ગુજરાતી કે હિદી 'જા' એ આ 'યા' ધાતુ પરથી આવેલો છે 'જા જા કરે છે' એમ આપણે બોલીએ છીએ ત્યારે એવો ભાવ સૂચવીએ છીએ કે તે વ્યક્તિ વારવાર અથવા બહુ જ ચાલ્યા કરે છે, જેમ ગુજરાતીમા 'જા જા' વપરાય છે તેમ જ સંસ્કૃતમા 'યાયાતિ' એવુ રૂપ વપરાય છે એ જ સસ્કૃત રૂપ ઉપરથી સ્વભાવના અર્થમા 'વર' પ્રત્યય લાગતાં 'યાયાવર' શબ્દ બનેલો છે. એટલે એનો સીધો અર્થ એ થાય કે અનેકવાર કે બહુવાર જનાર યા જવા–આવવાના સ્વભાવ-વાળો. આ તો શબ્દના મૂળ ધાતુ અને રૂપ વિશે સકેત થયો.

ભારતીય વાઙ્મયમા 'યાયાવર' પદ વિશિષ્ટ અર્થમાં વપરાયેલું છે. એ અર્થમા એનો વ્યુત્પત્તિસિદ્ધ અર્થ તો આવે જ છે, ઉપરાન પરંપરાગત રૂઢ અર્થ પણ રહેલો છે 'યાયાવર' એ કહેવાતા જેઓ કોઈ એક સ્થાને બંધાઈ ન રહેતાં પરિવ્રાજકની પેઠે ચાલ્યા કરતા અને જેમ પરિવ્રાજક કોઈ સ્થાનમા ન બધાતાં ભ્રમણ કરે તેમ યાયાવરો પણ અલિપ્તભાવે વિચર્યા કરતા

મહાભારતમા એવા યાયાવર ગણોનો નિર્દેશ છે ને સૂચવે છે કે 'યાયાવર' એ કોઈ એકાદ છૂટીછવી વ્યક્તિ ન હતો. પણ યાયાવરના ગણો યા સંઘો પણ હતા વળી મહાભારતમાં જ જરત્કારુ નામના ઋષિને યાયાવરોમાં શ્રેષ્ઠ કહ્યા છે આથી સ્પષ્ટ છે કે જેમ બૌદ્ધોમા ભિક્ષુસઘ, જૈનોમાં મુનિસંઘ તેમ આ દેશમા તાપસસઘ–તપસ્વીસઘ અને યાયાવરસંઘ પણ હતા.

પરંતુ યાયાવર કહેવાતો ઋષિ માત્ર ભ્રમણને કારણે જ એ નામથી ન

ઓળખાતો; સાથે સાથે એનામાં વિશિષ્ટ ગુણોની અપેક્ષા પણ રહેતી એ અપેક્ષા એટલે એનું અપરિગ્રહી જીવન.

શ્રીભાગવતમાં શાલીન, યાયાવર, શિલ અને ઉંછન એવી ચાર બ્રાહ્મણની વૃત્તિઓ યા આજીવિકાઓનો નિર્દેશ છે. યાયાવર એ એક જાતની આજીવિકા છે. એનો અર્થ ભાગવતવૃત્તિકાર શ્રીધરે દર્શાવ્યો છે–અને તે યોગ્ય જ છે કે –એ પ્રમાણે હંમેશા અનાજની ભિક્ષા માંગવી તે યાયાવરવૃત્તિ. જે વિપ્રવ્યક્તિ પોતાની પાસે કશો સંગ્રહ ન રાખતાં જરૂરિયાત પ્રમાણે હંમેશા અનાજની ભિક્ષા માંગી લે તે તેની યાયાવરવૃત્તિ કહેવાય મૂળમા આવી વૃત્તિ પાછળ ઉચ્ચ આશયવાળા અપરિગ્રહનો ભાવ જ રહેલો છે આવી વૃત્તિ ધારણ કરનાર હોય તે યાયાવર કહેવાય. આ રીતે આ દેશમાં અપરિગ્રહ ઉપર જીવન ધારણ કરતા અનેક સંતો–મુનિઓમાં 'યાયાવર' એ એક પ્રકારનો વર્ગ હતો. (આજે ભલે તદ્દન અલ્પ પ્રમાણમા, તોપણ તેવા વર્ગની સાવ ખોટ નથી)

યાયાવર શબ્દ પાણિનિ જેવા વૈયાકરણોએ સિદ્ધ કર્યો છે. મહાભારત, રામાયણ, સ્મૃતિ અને ભાગવત આદિમાં એ વપરાયેલો મળે છે

આવા ભાવપૂર્ણ 'યાયાવર' શબ્દને અંગ્રેજી શબ્દ 'માઇગ્રેટરી બર્ડ'ને માટે યોજી એના યોજકે બહુ કૌશલ દર્શાવ્યું છે, એમ મને લાગે છે જો યાયાવર એ ભ્રમણશીલ અને અપરિગ્રહવૃત્તિ ધારણ કરનાર એવો કોઈ વર્ગ હતો તો યુરોપના અને ઉત્તર એશિયાના દૂરદૂરના પ્રદેશોમાંથી હજારો માઇલની અલિપ્ત યાત્રા કરી ગુજરાતમા અને આ દેશમા આવનાર પક્ષીઓ માટે એ શબ્દ વપરાય ત્યારે કહેવુ જોઈએ કે એણે પોતાનો મૂળ ભાવ સાચવી રાખ્યો છે.

પ્રકૃતિરસિક ભાઈશ્રી હરિનારાયણ આચાર્યે કદાચ સર્વપ્રથમ યાયાવર શબ્દ પક્ષીઓ માટે–માઇગ્રેટરી બર્ડ્સ માટે વાપર્યો છે, તે તેમનુ બ્રાહ્મણસુલભ ચિંતન સૂચવે છે

—શ્રીરંગ, એપ્રિલ ૧૯૫૬.

ભારતીય દર્શનોમાં આધ્યાત્મિક વિકાસક્રમ

[૧]

દર્શન એટલે તત્ત્વવિદ્યા અત્યારે દેશભેદની દૃષ્ટિએ દર્શન બે ભાગમાં વહેંચાઈ જાય છે યુરોપીય અને ભારતીય યુરોપીય દર્શનનુ ધ્યેય મુખ્ય ભાગે, અમુક વિષયોની ચર્ચા કરી તેનું વાસ્તવિક જ્ઞાન મેળવવા પૂરતુ છે, જ્યારે ભારતીય દર્શનનુ ધ્યેય તે તે વિષયોનુ વાસ્તવિક જ્ઞાન મેળવવા ઉપરાંત છેવટે તે દ્વારા મોક્ષ મેળવવા સુધીનુ છે[૧] આ કારણથી ભારતીય દર્શનોના પ્રતિપાદ્ય વિષયનું ક્ષેત્ર સંસાર અને તેની પરની સ્થિતિ સુધી લંબાયેલુ છે તેમા મોક્ષનુ સ્વરૂપ શું? તેને પ્રાપ્ત કરવાનાં સાધનો ક્યાં અને કેટલા? મોક્ષના અધિકારી આત્માનુ સ્વરૂપ કેવુ છે? સસાર એટલે શુ? ઇત્યાદિ અનેક આધ્યાત્મિક વિષયોની ચર્ચા પ્રધાનપદ ભોગવે છે.

મોક્ષ એટલે આધ્યાત્મિક વિકાસની પૂર્ણતા આવી પૂર્ણતા કાંઈ એકાએક પ્રાપ્ત થઈ શકતી નથી, કારણ તેને પ્રાપ્ત કરવામાં અમુક વખત વ્યતીત કરવો પડે છે, તેથી જ મોક્ષ મેળવવા માટે આધ્યાત્મિક ઉત્ક્રાન્તિનો ક્રમ સ્વીકારવો પડે છે તત્ત્વજિજ્ઞાસુઓના હૃદયમાં સ્વાભાવિક રીતે જ એવો પ્રશ્ન ઉદ્‌ભવે છે કે આ આધ્યાત્મિક ઉત્ક્રાન્તિનો ક્રમ કેવા પ્રકારનો હોય છે? આનો ઉત્તર સ્વતંત્ર રીતે આપવા કરતા તે સબધમા આર્ય દર્શનોના જે ભિન્ન ભિન્ન વિચારો મળી આવે છે તેનું સક્ષેપમા એકત્ર પ્રદર્શન કરી દેવુ એ વિશેષ ઉપયોગી છે એમ ધારી પ્રસ્તુત લેખમાં તે વિચારોનો સંગ્રહ કરવાનો ઉદ્દેશ રાખેલો છે આ ઉપરથી વાચકને ભિન્ન ભિન્ન દર્શનોની આધ્યાત્મિક ઉત્ક્રાન્તિના ક્રમ સંબધી વિચારસરણી જાણવાની તક મળશે અને તે ઉપર સ્વતંત્ર વિચાર કરવાની વૃત્તિ ઉદ્‌ભવશે

ભારતીય દર્શનોની મુખ્ય ત્રણ શાખા ગણાય. વૈદિક, બૌદ્ધ અને જૈન પહેલી શાખા બ્રાહ્મણપંથની અને બીજી શાખાઓ શ્રમણપંથની છે બૌદ્ધ

---

૧ તે તે દર્શનના મૂળ ગ્રંથ જોતા આ બાબત આપોઆપ જણાઈ આવે છે. ઉદાહરણ તરીકે જુઓ ન્યાયદર્શનનુ પહેલું સૂત્ર યોગદર્શનનુ બીજું સૂત્ર, સાંખ્યદર્શનનુ પહેલુ સૂત્ર અને વેદાન્તદર્શનનુ પહેલું તથા છેલ્લુ સૂત્ર. તે જ પ્રમાણે જૈનદર્શન માટે જુઓ તત્ત્વાર્થાધિગમનુ પહેલ સૂત્ર.

પ્રાચીન કાળમાં શ્રમણપંથની બીજી અનેક શાખાઓ હતી, પણ આજે તે શાખાઓનાં સ્વતંત્ર સાહિત્ય કે સંપ્રદાય કાંઈ પણ શેષ નથી. શ્રમણપંથની અનેક પ્રાચીન શાખાઓનાં છૂટાંછવાયાં નામ અથવા અસ્તવ્યસ્ત મંતવ્યો વર્તમાન સંપ્રદાયોના સાહિત્યમાં મળી આવે છે.[1] તેમાં આજીવક સંપ્રદાયનું નામ ખાસ નોંધવા જેવું છે, કારણ કે તેનાં અન્ય મંતવ્યો સાથે આધ્યાત્મિક ઉત્ક્રાન્તિના ક્રમને લગતા કેટલાક વિચારો બૌદ્ધ સાહિત્યમાંથી મળી આવે છે. બ્રાહ્મણપંથ અને શ્રમણપંથની અનેક ભિન્નતાઓમાંની એક ભિન્નતા એ છે કે જ્યારે બ્રાહ્મણપંથનું સાહિત્ય મુખ્યપણે સંસ્કૃત ભાષાનું ગૌરવ વધારે છે, ત્યારે શ્રમણપંથનું સાહિત્ય મુખ્યપણે પ્રાકૃત ભાષાનું ગૌરવ વધારે છે. આ કારણથી અને અન્ય કારણથી આધ્યાત્મિક ઉત્ક્રાન્તિના ક્રમને લગતા તે બંને પંથોના વિચારોમાં ભાષાનો, પરિભાષાનો અને પ્રતિપાદન પદ્ધતિનો ભેદ હોય તે સ્વાભાવિક છે, છતાં સૂક્ષ્મ દૃષ્ટિએ નિમજ્જન કરનારને તે વિચારોનું ઐક્ય સમજાયા સિવાય રહેશે નહિ

આધ્યાત્મિક ઉત્ક્રાન્તિના ક્રમનો વિચાર આવતાં જ તેની સાથે તેનાં આરંભનો અને સમાપ્તિનો વિચાર આવે છે તેનો આરંભ એ તેની પૂર્વ સીમા અને તેની સમાપ્તિ એ તેની ઉત્તર સીમા પૂર્વ સીમાથી ઉત્તર સીમા સુધી વિકાસનો વૃદ્ધિક્રમ એ જ આધ્યાત્મિક ઉત્ક્રાન્તિક્રમની મર્યાદા. તેના પહેલાંની સ્થિતિ એ આધ્યાત્મિક અવિકાસ અથવા પ્રાથમિક સંસારદશા અને તેના પછીની સ્થિતિ એ મોક્ષ અથવા આધ્યાત્મિક વિકાસની પૂર્ણતા આ રીતે કાળની દૃષ્ટિએ સંક્ષેપમાં આત્માની અવસ્થા ત્રણ ભાગમાં વહેંચાઈ જાય છે. (अ) આધ્યાત્મિક અવિકાસ, (ब) આધ્યાત્મિક વિકાસક્રમ, (क) મોક્ષ.

अ આત્મા સ્થાયી સુખ અને પૂર્ણજ્ઞાન માટે તલસે છે, તેમ જ તે દુ:ખ કે અજ્ઞાનને જરાયે પસંદ કરતો નથી છતાં તે દુ:ખ અને અજ્ઞાનના વમળમાં ગોથાં ખાય છે, તેનું શું કારણ? આ એક ગૂઢ પ્રશ્ન છે, પણ તેનો ઉત્તર તત્ત્વજ્ઞોને સ્ફુરેલો છે તે એ છે કે “સુખ અને જ્ઞાન મેળવવાની સ્વાભાવિક વૃત્તિથી આત્માનું પૂર્ણાનંદ અને પૂર્ણજ્ઞાનમય સ્વરૂપ સાબિત થાય છે, કારણ કે તે જ્યાં સુધી પૂર્ણાનંદ અને પૂર્ણજ્ઞાન ન મેળવે ત્યાં સુધી સંતોષ પામી શકતો નથી, છતાં તેના ઉપર અજ્ઞાન અને રાગદ્વેષના એવા પ્રબળ સંસ્કારો છે કે જેને લીધે તે ખરા સુખનું ભાન કરી શકતો નથી, અગર કાંઈક ભાન થયું તોપણ તે ખરા સુખની પ્રાપ્તિ માટે પ્રવૃત્તિ કરી શકતો

૧. જુઓ દીઘનિકાય, બ્રહ્મજાલસુત્ત.

નથી.” અજ્ઞાન એ ચેતનાના સ્ફુરણનું વિરોધી તત્ત્વ છે. તેથી જ્યાં સુધી અજ્ઞાનની તીવ્રતા હોય ત્યાં સુધી ચેતનાનું સ્ફુરણ અત્યંત મંદ હોય છે. તેને લીધે ખરા સુખ અને ખરા સુખના સાધનનો ભાસ જ થવા પામતો નથી. આ કારણથી આત્મા પોતે એક વિષયમાં સુખ મળવાની ધારણાથી પ્રવૃત્તિ કરે છે અને તેમાં છેવટે નિરાશ થવાથી બીજા વિષય તરફ વળે છે બીજા વિષયમાં નિરાશ થતાં વળી ત્રીજા વિષય તરફ દોડે છે. આ રીતે તેની સ્થિતિ વમળમા પડેલ લાકડાના `જેવી કે વંટોળિયામાં ઊડતા તણખલા જેવી થઈ જાય છે. આવી કષ્ટપરંપરા અનુભતા કાંઈક અજ્ઞાન ઓછું થાય છે, તોય રાગદ્વેષની તીવ્રતાને લીધે સુખની ખરી દિશામાં પ્રયાણ કરી શકાતું નથી અજ્ઞાનની સહજ મંદતાથી ઘણીવાર એવુ ભાન થાય છે કે સુખ અને દુ ખનાં બીજ બાહ્ય જગતમાં નથી. છતાં રાગદ્વેષની તીવ્રતાને પરિણામે પૂર્વ-પરિચિત વિષયોને જ સુખ અને દુ ખનાં સાધન માની તેમાં હર્ષ અને વિષાદનો અનુભવ થયા કરે છે આ સ્થિતિ ચોક્કસ લક્ષ્ય વિનાની હોવાથી દિશાનો ચોક્કસ નિશ્ચય કર્યા સિવાય વહાણ હંકારનાર ખલાસીની સ્થિતિ જેવી છે આ જ સ્થિતિ આધ્યાત્મિક અવિકાસ કાળની છે.

ચ. અજ્ઞાન અને રાગદ્વેષના ચક્રનું બળ પણ હમેશાં જેવુ ને તેવું ન જ રહી શકે, કારણ તે બળ ગમે તેટલું વધારે હોય તોપણ છેવટે આત્મિક બળ સામે તો અગણ્ય છે લાખો મણ ઘાસ અને લાકડાને બાળવા તેટલા જ અગ્નિની જરૂર નથી હોતી તે માટે તો અગ્નિનો એક કણ પણ બસ છે. શુભ પ્રમાણમાં થોડું હોય તોપણ તે લાખો ગણા અશુભ કરતાં વધારે બળવાન હોય છે જ્યારે આત્મામાં ચેતનતાનુ સ્ફુરણ સહજ વધે છે અને રાગદ્વેષ સાથેના આત્માના યુદ્ધમા જ્યારે રાગદ્વેષની શક્તિ ઘટે છે, ત્યારે આત્માનુ વીર્ય, જે અત્યાર સુધી ઊલટી દિશામાં કામ કરતુ, તે ખરી દિશાના વળે છે તે જ વખતે આત્મા પોતાના ધ્યેયનો નિર્ધાર કરી તે મેળવવા દૃઢ નિશ્ચય કરી લે છે અને તે માટે તે પ્રવૃત્તિ કરવા લાગે છે આ વખતે આધ્યાત્મિક વિકાસનો પાયો નંખાય છે હવે પછી આત્મા પોતાની જ્ઞાન અને વીર્યશક્તિની મદદ લઈ અજ્ઞાન અને રાગદ્વેષ સાથે કુસ્તી કરવા અખાડામાં ઊતરી જાય છે, કદાચ તે ક્યારેક હાર ખાય છે, પણ છેવટે તે હારના પરિણામે જ વધેલ જ્ઞાન અને વીર્યશક્તિને લઈ હરાવનાર અજ્ઞાન અને રાગદ્વેષને દબાવતો જ જાય છે. જેમ જેમ તે દબાવતો જાય છે તેમ તેમ તેનો ઉત્સાહ વધતો જાય છે, ઉત્સાહવૃદ્ધિ સાથે જ એક અપૂર્વ આનંદની લહેર છૂટે છે અને આનંદની લહરીમાં આનખશિખ રંગેલ આત્મા અજ્ઞાન તેમ જ રાગદ્વેષના ચક્રને

વધારે ને વધારે નિર્બળ કરતો પોતાની સહજ સ્થિતિ તરફ આગળ વધતો જાય છે આ સ્થિતિ આધ્યાત્મિક વિકાસક્રમની છે.

क. આ સ્થિતિની છેવટની મર્યાદા એ જ વિકાસની પૂર્ણતા. આ પૂર્ણતા પ્રાપ્ત થઈ એટલે સંસારથી પર સ્થિતિ પ્રાપ્ત થઈ. તેમાં કેવળ સ્વાભાવિક આનંદનુ જ સામ્રાજ્ય હોય છે. આ મોક્ષકાળ

આટલો સામાન્ય વિચાર કર્યા પછી હવે તે સંબધમાં પ્રત્યેક દર્શનના વિચારો ક્રમશ જોઈએ

વૈદિક દર્શન

ઉપનિષદ અને અન્ય ગ્રથોમા આધ્યાત્મિક વિચારની પ્રધાનતા હોવાથી તેમાં વિકાસક્રમને લગતા વિચારો મળી આવે એ સ્વભાવિક છે. છતાં વૈદિક સાહિત્યમાં યોગદર્શન ઉપરતું વ્યાસભાષ્ય અને યોગવાસિષ્ઠ એ બે ગ્રથો એવા છે જેમાં આધ્યાત્મિક વિકાસક્રમ વ્યવસ્થિત રીતે સાગોપાંગ આલેખાયેલો છે, જ્યારે અન્ય ગ્રથોમા તેટલો પૂર્ણ રીતે નથી તેથી એ બે ગ્રથોમાંથી જ વૈદિક દર્શનની તે સબંધી માન્યતા અત્રે જણાવીશુ

યોગદર્શનમાં મહર્ષિ પતંજલિએ મોક્ષના સાધનરૂપે યોગનુ વર્ણન કરેલ છે યોગ એટલે આધ્યાત્મિક વિકાસક્રમની ભૂમિકાઓ જે ભૂમિકામાં યોગનો આરંભ થાય છે, તે ભૂમિકાથી માંડી અને તે યોગ ક્રમશ પુષ્ટ થતાં થતાં જે ભૂમિકામા પૂર્ણ કલાએ પહોચે છે ત્યા સુધીની ચિત્તની ભૂમિકાઓ આધ્યાત્મિક વિકાસક્રમમા આવી જાય છે યોગનો આરભ થયા પહેલાંની ભૂમિકાઓ એ આધ્યાત્મિક અવિકાસની ભૂમિકાઓ છે

આ પ્રકારના સૂત્રકારના અભિપ્રાયને સ્પષ્ટ કરવા માટે ભાષ્યકાર મહર્ષિ વ્યાસે ચિત્તની પાંચ ભૂમિકાઓ બતાવી છે. (૧) ક્ષિપ્ત, (૨) મૂઢ, (૩) વિક્ષિપ્ત, (૪) એકાગ્ર, અને (૫) નિરુદ્ધ[૧] આ પાંચમાં પહેલી બે એટલે ક્ષિપ્ત અને મૂઢ ભૂમિકાઓ અવિકાસસૂચક છે. ત્રીજી વિક્ષિપ્ત ભૂમિકા એ અવિકાસ અને વિકાસનુ સમ્મેલન છે, પણ તેમા વિકાસ કરતા અવિકાસનુ બળ ઘણુ વધારે છે ચોથી એકાગ્ર ભૂમિકામા વિકાસનુ બળ વધે છે, અને તે સવિશેષ વધતા

૧ (૧) જે ચિત્ત હમેશાં રજોગુણની બહુલતાથી અનેક વિષયોમાં પ્રેરાતુ હોવાથી અત્યન્ત અસ્થિર હોય છે, તે ક્ષિપ્ત (૨) જે ચિત્ત તમોગુણના પ્રાબલ્યથી નિદ્રાવૃત્તિવાળુ બને તે મૂઢ. (૩) જે ચિત્ત અસ્થિરતા વિશેષ હોવા છતાં ક્યારેક ક્યારેક પ્રશસ્ત વિષયોમા સ્થિરતા અનુભવે તે વિક્ષિપ્ત. (૪) જે ચિત્ત એકતાન—સ્થિર બની જાય તે એકાગ્ર (૫) જે ચિત્તમા તમામ વૃત્તિઓનો નિરોધ થઈ ગયો હોય અને માત્ર સંસ્કારો જ બાકી રહ્યા હોય તે નિરુદ્ધ

પાંચમી નિરુદ્ધ ભૂમિકામા પૂર્ણ કલાએ પહોંચે છે. તેથી આ રીતે ભાષ્યકારની વિચારસરણીનું સંક્ષેપમાં પૃથક્કરણ કરીએ તો સાર એટલો જ નીકળે છે કે ક્ષિપ્ત, મૂઢ અને વિક્ષિપ્ત એ ત્રણ ભૂમિકાઓમાં અવિકાસ કાળ હોય છે, જ્યારે છેલ્લી બે એકાગ્ર અને નિરુદ્ધ ભૂમિકાઓમાં વિકાસક્રમ અથવા આધ્યાત્મિક ઉત્ક્રાન્તિનો ક્રમ હોય છે.[1] આ પાંચ ભૂમિકાઓ બાદની સ્થિતિ એ મોક્ષકાળ.

યોગવાસિષ્ઠમાં ચેતનની સ્થિતિના સંક્ષેપથી બે ભાગ કરવામા આવ્યા છે : (૧) અજ્ઞાનમય અને (૨) જ્ઞાનમય. અજ્ઞાનયમ સ્થિતિ એટલે અવિકાસ-કાળ અને જ્ઞાનમય સ્થિતિ એટલે વિકાસકાળ. આ વિકાસકાળ પછી મોક્ષકાળ આવે છે. અજ્ઞાનમય સ્થિતિના સાત વિભાગ કરી તેને સાત અજ્ઞાન-ભૂમિકાઓના નામથી ઓળખાવ્યા છે, જેમકે (૧) બીજજાગ્રત, (૨) જાગ્રત, (૩) મહાજાગ્રત, (૪) જાગ્રતસ્વપ્ન, (૫) સ્વપ્ન, (૬) સ્વપ્નજાગ્રત, અને (૭) સુષુપ્તક.[2]

---

૧. આ પાંચ ચિત્તોમા પહેલા બે તો અનુક્રમે રજોગુણ અને તમોગુણની બહુલતાને લીધે નિઃશ્રેયસપ્રાપ્તિમાં હેતુ થઈ શકતા નથી એટલું જ નહિ, બલ્કે તે ઊલટા નિઃશ્રેયસનાં બાધક છે, જેથી તે યોગકોટિમાં ગણાવા યોગ્ય નથી અર્થાત્ તે બે ચિત્તની સ્થિતિઓમા આધ્યાત્મિક અવિકાસ હોય છે. વિક્ષિપ્ત ચિત્ત ક્યારેક ક્યારેક સાત્વિક વિષયોમાં સમાધિ મેળવે છે ખરું, પણ તે સમાધિ સામે અસ્થિરતા એટલી બધી હોય છે કે જેથી તે પણ યોગકોટિમા ગણાવા યોગ્ય નથી. એકાગ્ર અને નિરુદ્ધ એ બે જ ચિત્ત વખતે જે સમાધિ હોય છે તે યોગ કહેવાય છે. એકાગ્ર ચિત્ત વખતે જે યોગ હોય છે તે સમ્પ્રજ્ઞાત અને નિરુદ્ધ ચિત્ત વખતે જે યોગ હોય છે તે અસમ્પ્રજ્ઞાત. જુઓ પાતંજલદર્શન, પાદ ૧, સૂ ૧ વ્યાસભાષ્ય તથા વાચસ્પતિ મિશ્રની ટીકા.

૨. (૧) પહેલી ભૂમિકામા અહંત્વ-મમત્વ બુદ્ધિની જાગૃતિ નથી હોતી, પણ તેવી જાગૃતિની બીજ રૂપે યોગ્યતા હોય છે, તેથી તે બીજજાગ્રત કહેવાય છે. આ ભૂમિકા વનસ્પતિ જેવા ક્ષુદ્ર નિકાયમા માની શકાય. (૨) બીજી ભૂમિકામા અહંત્વ-મમત્વ બુદ્ધિ અલ્પાંશે જાગે છે, તેથી તે જાગ્રત કહેવાય છે. આ ભૂમિકા કીટ, પતંગ, પશુ, પક્ષીમા માની શકાય. (૩) ત્રીજી ભૂમિકામાં અહંત્વ-મમત્વ બુદ્ધિ વિશેષ પુષ્ટ હોય છે, તેથી તે મહાજાગ્રત કહેવાય છે. આ ભૂમિકા મનુષ્ય, દેવ આદિ નિકાયમાં માની શકાય. (૪) ચોથી ભૂમિકામાં જાગ્રત અવસ્થાના મનોરાજ્ય—ભ્રમનો સમાવેશ થાય છે; જેમકે એકને બદલે બે ચંદ્ર દેખાવા, છીપમા રૂપાનું ભાન અને [illegible] પાણીની બુદ્ધિ [illegible] આ ભૂમિકા જાગ્રતસ્વપ્ન કહેવાય છે (૫) પાંચમી ભૂમિકામાં નિદ્રા વખતે આવેલ સ્વપ્નનું [illegible] તેનો સમાવેશ છે, તેથી તે સ્વપ્ન કહેવાય છે. (૬) છઠ્ઠી ભૂમિકામાં [illegible] સ્વપ્નનો સમાવેશ થાય છે [illegible]

જ્ઞાનમય સ્થિતિના પણ સાત ભાગ કરી તેને સાત ભૂમિકાઓના નામથી ઓળખાવ્યા છે, જેમકે (૧) શુભેચ્છા, (૨) વિચારણા, (૩) તનુમાનસા, (૪) સત્ત્વાપત્તિ, (૫) અસંસક્તિ, (૬) પદાર્થાભાવની, અને (૭) તુર્યગા.[1] સાત અજ્ઞાન ભૂમિકાઓમાં અજ્ઞાનનું પ્રાબલ્ય હોવાથી તે અવિકાસ કાળમાં ગણાવી જોઈએ, તેથી ઊલટું સાત જ્ઞાન ભૂમિકાઓમાં ક્રમશ જ્ઞાનવૃદ્ધિ થતી હોવાથી તે વિકાસક્રમના કાળમાં ગણાવી જોઈએ. જ્ઞાનની સાતમી ભૂમિકામાં વિકાસ પૂર્ણકલાએ પહોંચે છે તેથી ત્યારબાદની સ્થિતિ તે મોક્ષકાળ છે

બૌદ્ધ દર્શન

બૌદ્ધ સાહિત્યના મૌલિક ગ્રંથો પિટકના નામે ઓળખાય છે પિટકમાં અનેક જગાએ આધ્યાત્મિક વિકાસના ક્રમનુ વ્યવસ્થિત અને સ્પષ્ટ વર્ણન છે. તેમાં વ્યક્તિની છ સ્થિતિઓ કરવામાં આવી છે. તે આ પ્રમાણે: (૧) અંધ-પુથુજ્જન, (૨) કલ્યાણપુથુજ્જન, (૩) સોતાપન્ન, (૪) સકદાગામી, (૫)

તે સ્વપ્નજાગ્રત કહેવાય છે. (૭) સાતમી ભૂમિકા ગાઢ નિદ્રાની હોય છે, જેમા જડ જેવી સ્થિતિ થઈ જાય છે અને કર્મો માત્ર વાસનારૂપે રહેલા હોય છે, તેથી તે સુષુપ્તિ કહેવાય છે ત્રીજીથી સાતમી સુધીની પાચ ભૂમિકાઓ સ્પષ્ટપણે મનુષ્ય નિકાયમાં અનુભવાય છે જુઓ યોગવાસિષ્ઠ, ઉત્પત્તિ પ્રકરણ ૧, સર્ગ ૧૧૭.

૧. (૧) હુ મૂઢ જ શા માટે રહુ ? હવે તો શાસ્ત્ર અને સજ્જન દ્વારા કાંઈક આત્માવલોકન કરીશ એવી વૈરાગ્યપૂર્વક જે ઇચ્છા તે શુભેચ્છા. (૨) શાસ્ત્ર અને સજ્જનના સસર્ગપૂર્વક વૈરાગ્યાભ્યાસને લીધે જે સદાચારમા પ્રવૃત્તિ થવી તે વિચારણા. (૩) શુભેચ્છા અને વિચારણાને લીધે જે ઇંદ્રિયોના વિષયોમા આસક્તિ ઘટે છે તે તનુમાનસા કહેવાય છે, કારણ કે તેમાં સકલ્પ-વિકલ્પ ઓછા થાય છે. (૪) ત્રણ ભૂમિકાઓના અભ્યાસથી ચિત્ત સુધ્ધાંમા પણ વિરતિ થવાથી સત્ય અને શુદ્ધ એવા આત્મામા જે સ્થિતિ થવા પામે છે તે સત્ત્વાપત્તિ. (૫) પૂર્વની ચાર ભૂમિકાઓના અભ્યાસથી અને સમાધિના અસગરૂપ પરિપાકથી એવી અવસ્થા થાય છે કે જેમાં ચિત્તની અંદર નિરતિશય આત્માનંદનો ચમત્કાર પુષ્ટ થયેલ હોય છે તે અસસક્તિ ભૂમિકા. (૬) પાંચ ભૂમિકાઓના અભ્યાસથી પ્રગટ થયેલ આત્મારામ સ્થિતિને લીધે એક એવી દશા પ્રાપ્ત થાય છે કે બાહ્ય ને આભ્યતર બધા પદાર્થોની ભાવના છૂટી જાય છે. દેહયાત્રા ફક્ત બીજાના પ્રયત્નને લઈને ચાલે છે. તે પદાર્થાભાવની ભૂમિકા. (૭) છ ભૂમિકાઓના અભ્યાસને લીધે ભેદભાવનુ ભાન બિલકુલ શમી જવાથી જે એકમાત્ર સ્વભાવનિષ્ઠા પ્રાપ્ત થાય છે તે તુર્યગા. આ સાતમી તુર્યગાવસ્થા જીવન્મુક્તમા હોય છે. વિદેહમુક્તનો વિષય ત્યારબાદની તુર્યાતીત અવસ્થા છે. જુઓ યોગવાસિષ્ઠ, ઉત્પત્તિ પ્ર૦ સ૦ ૧૧૮ તથા નિર્વાણ પ્ર૦ સ૦ ૧૨૦.

ઔપપાતિક, અને (૬) અરહા[1]. જેમાં પહેલી સ્થિતિ એ આધ્યાત્મિક અવિકાસનો કાળ છે. બીજી સ્થિતિમાં વિકાસનુ સ્ફુરણ અલ્પાંશે અને અવિકાસનો પ્રભાવ સવિશેષ હોય છે. ત્રીજીથી છઠ્ઠી સુધીની ચારે સ્થિતિઓમાં ઉત્તરોત્તર આધ્યાત્મિક વિકાસ જ વધતો જાય છે અને તે વિકાસ છઠ્ઠી સ્થિતિમાં પૂર્ણ કલાએ પહોંચે છે ત્યાર બાદ નિર્વાણતત્ત્વ પ્રાપ્ત થાય છે. આ બૌદ્ધ વિચારસરણીનુ પૃથક્કરણ કરીએ તો એમ કહી શકાય કે પહેલી બે સ્થિતિઓ એ અવિકાસકાળ છે. ત્રીજીથી છઠ્ઠી સુધીની ચાર સ્થિતિઓ વિકાસકાળ છે અને છ સ્થિતિઓ પછી નિર્વાણકાળ છે.

જૈન દર્શન

જૈન સાહિત્યના પ્રાચીન ગ્રથો, જે આગમના નામથી ઓળખાય છે, તેમાં સુધ્ધાં આધ્યાત્મિક વિકાસના ક્રમ સબધી વિચારો વ્યવસ્થિત રીતે મળી આવે છે. તેમાં આત્મિક સ્થિતિના ચૌદ વિભાગો કરવામાં આવ્યા છે જે ગુણસ્થાનને[2] નામે ઓળખાય છે તે ગુણસ્થાનો આ પ્રમાણે :

---

૧ (૧-૨) પુથુજ્જન એટલે સામાન્ય મનુષ્ય, તેના અધપુથુજ્જન અને કલ્યાણપુથુજ્જન એવા બે ભેદો છે. યથા—

दुवे पुथुज्जना वुत्ता वुद्धेनादिच्चवधुना ।
अधो पुथुज्जनो एको कल्याणेको पुथुज्जनो ॥

—મજ્ઝિમનિકાય, મૂળ પરિયાય, સુત્તવણ્ણના

આ બનેમા સંયોજના (બધન) તો દશે હોય છે, છતાં અતર એટલું જ કે પહેલાને આર્યદર્શન અથવા સત્સગ પ્રાપ્ત થયેલ નથી હોતા, ત્યારે બીજાને પ્રાપ્ત થયેલ છે. આ બંને નિર્વાણમાર્ગથી પરાઙ્મુખ હોય છે. (૩) નિર્વાણમાર્ગને પ્રાપ્ત થયેલાના ચાર પ્રકાર છે જેણે ત્રણ સંયોજનાનો ક્ષય કર્યો હોય તે સોતાપન્ન (૪) જેણે ત્રણનો ક્ષય અને પછીની બેનુ શૈથિલ્ય કર્યું હોત તે સકદાગામી. (૫) જેણે પાંચેનો ક્ષય કર્યો હોય તે ઔપપાતિક. (૬) જેણે દશે સંયોજનાનો ક્ષય કર્યો હોય તે અરહા. સોતાપન્ન વધારેમાં વધારે સાત વાર મનુષ્યલોકમા અવતરે છે, ત્યાર બાદ અવશ્ય નિર્વાણ પામે છે. ઔપપાતિક બ્રહ્મલોકમાંથી જ નિર્વાણ પામે છે. અરહા તે સ્થિતિમાંથી જ નિર્વાણ મેળવે છે. દશ સંયોજનાઓ માટે જુઓ અગુત્તરનિકાય, પૃ. ૧૯, ફુટનોટ ૧૩ અને મજ્ઝિમનિકાય તથા બુદ્ધ, ધર્મ આણિ સંઘ (મરાઠી) પૃ. ૯૯

૨ ગુણસ્થાન—ગુણ એટલે આત્માની ચેતના, સમ્યક્ત્વ, ચારિત્ર, વીર્ય આદિ શક્તિઓ. સ્થાન એટલે તે શક્તિઓની શુદ્ધતાની તરતમભાવવાળી અવસ્થાઓ. આત્માના સહજ ગુણો વિવિધ આવરણોથી સંસારદશામાં આવૃત છે. જેમ જેમ

(૧) મિથ્યાદૃષ્ટિ,[૧] (૨) સાસ્વાદન, (૩) સમ્યક્‌મિથ્યાદૃષ્ટિ, (૪) અવિરત સમ્યગ્દૃષ્ટિ, (૫) દેશવિરતિ (વિરતાવિરત), (૬) પ્રમત્તસંયત, (૭) અપ્રમત્તસયત (૮) અપૂર્વકરણ (નિવૃત્તિબાદર), (૯) અનિવૃત્તિબાદર, (૧૦) સૂક્ષ્મસંપરાય, (૧૧) ઉપશાંતમોહ, (૧૨) ક્ષીણમોહ, (૧૩) સયોગકેવલી, (૧૪) અયોગકેવલી.[૨] પ્રથમ ગુણસ્થાન એ અવિકાસ-

---

આવરણોની વિરલતા કે ક્ષયનુ પ્રમાણ જેટલું વિશેષ તેટલી ગુણોની શુદ્ધિ વિશેષ અને આવરણોની વિરલતા કે ક્ષયનુ પ્રમાણ જેટલુ ઓછુ તેટલી ગુણોની શુદ્ધિ ઓછી. આ રીતે આત્મિક ગુણોની શુદ્ધિના પ્રકર્ષ કે અપકર્ષવાળા અસખ્યાત પ્રકારો સભવે છે, પણ સક્ષેપમા તેને ચૌદ ભાગમાં વહેચી નાખેલા છે, જે ગુણસ્થાન કહેવાય છે. ગુણસ્થાનની કલ્પના મુખ્યતયા મોહનીય કર્મની વિરલતા અને ક્ષયને આધારે કરવામાં આવી છે. મોહનીય કર્મની મુખ્ય બે શક્તિઓ છે. પહેલી શક્તિનુ કાર્ય આત્માના સમ્યક્ત્વ ગુણને આવૃત કરવાનું છે જેથી આત્મામાં તાત્ત્વિક રુચિ કે સત્યદર્શન થવા પામતુ નથી બીજી શક્તિનુ કાર્ય આત્માના ચારિત્ર ગુણને આવૃત કરવાનુ છે, જેથી આત્મા તાત્ત્વિક રુચિ કે સત્યદર્શન થયા છતા પણ તદનુસાર પ્રવૃત્તિ કરી સ્વરૂપલાભ કરી શકતો નથી. સમ્યક્ત્વની પ્રતિબંધક એવી મોહનીયની પ્રથમ શક્તિ દર્શનમોહનીય અને ચારિત્રની પ્રતિબધક એવી મોહનીયની બીજી શક્તિ ચારિત્રમોહનીય કહેવાય છે. આ બેમા દર્શનમોહનીય પ્રબળ છે, કારણ કે જ્યા સુધી તેની વિરલતા કે ક્ષય ન થાય ત્યાં સુધી ચારિત્રમોહનીયનુ બળ ઘટતુ નથી. દર્શન-મોહનીયનું બળ ઘટ્યુ એટલે ચારિત્રમોહનીય ક્રમે ક્રમે નિર્બળ થઈ છેવટે સર્વથા ક્ષીણ થવાનુ જ. સમસ્ત કર્માવરણોમાં પ્રધાનતમ અને બલવત્તમ મોહનીય જ છે. તેનુ કારણ એ છે કે જ્યા સુધી મોહનીયની શક્તિ તીવ્ર હોય ત્યા સુધી અન્ય આવરણો તીવ્ર જ રહે છે અને તેની શક્તિ ઘટતા જ અન્ય આવરણોનુ બળ મદ થતુ જાય છે આ જ કારણથી ગુણસ્થાનોની કલ્પના મોહનીય કર્મના તરતમભાવને આધારે કરવામાં આવી છે

૧. જુઓ સમવાયાગ, ૧૪ મો સમવાય.

૨ (૧) જે અવસ્થામાં દર્શનમોહનીયની પ્રબળતાને લીધે સમ્યક્ત્વ ગુણ આવૃત થયેલો હોવાથી આત્માની તત્ત્વરુચિ જ પ્રગટી શકતી નથી અને જેથી તેની દૃષ્ટિ મિથ્યા (સત્ય વિરુદ્ધ) હોય છે તે અવસ્થા મિથ્યાદૃષ્ટિ (૨) અગિયારમા ગુણસ્થાનથી પતિત થઈ પ્રથમ ગુણસ્થાન ઉપર આવતાં વચ્ચે બહુ જ થોડા વખત સુધી જે અવસ્થા પ્રાપ્ત થાય છે તે અવસ્થા સાસ્વાદન આનું સાસ્વાદન નામ એટલા માટે છે કે તેમા પતનોન્મુખ આત્માને તત્ત્વરુચિનો સ્વલ્પ પણ આસ્વાદ હોય છે, જેવી રીતે મિષ્ટાન્નના ભોજન બાદ ઊલટી થતી વખતે એક વિલક્ષણ સ્વાદ હોય છે. આ બીજુ ગુણસ્થાન પતનોન્મુખ આત્માને જ હોય છે (૩) હીંચકે હીંચતા માણસની પેઠે જે અવસ્થામાં આત્મા દોલાયમાન હોય છે, જેને લીધે તે સર્વથા સત્યદર્શન કરી શકતો નથી કે સર્વથા મિથ્યાદૃષ્ટિની સ્થિતિમાં રહી શકતો નથી અર્થાત્ તેની સશયશુ જેવી સ્થિતિ બની જાય છે, તે અવસ્થા સમ્યક્‌મિથ્યાદૃષ્ટિ આ ગુણસ્થાનમા દર્શનમોહનીયનું વિષ

કાળ છે. બીજા અને ત્રીજા એ બે ગુણસ્થાનમા વિકાસનુ સહજ સ્ફુરણ હોય છે, પણ તેમાં પ્રબળતા અવિકાસની જ હોય છે. ચોથાથી વિકાસ ક્રમશઃ વધતાં વધતાં તે છેવટે ચૌદમા ગુણસ્થાને પૂર્ણ કલાએ પહોંચે છે અને ત્યારબાદ મોક્ષ પ્રાપ્ત થાય છે. જૈન વિચારસરણીનુ પૃથક્કરણ એટલુ જ કરી શકાય કે પહેલાં ત્રણ ગુણસ્થાનો એ અવિકાસકાળ છે અને ચોથાથી ચૌદમા સુધીના ગુણસ્થાનો વિકાસ અને તેની વૃદ્ધિનો કાળ છે, ત્યારબાદ મોક્ષકાળ છે

આ પ્રાચીન જૈન વિચારને હરિભદ્રસૂરિએ બીજી રીતે પણ વર્ણવ્યો છે.

પ્રથમ જેટલુ તીવ્ર રહેતુ નથી, પણ તે હોય છે ખરુ (૪) જે અવસ્થામા દર્શનમોહનીયનુ બળ કા તો બિલકુલ શમી જાય છે કે વિરલ થઈ જાય છે, અને કા તો બિલકુલ ક્ષીણ થઈ જાય છે જેને લીધે આત્મા અસદિગ્ધપણે સત્યદર્શન કરી શકે છે. આ અવસ્થા અવિરતસમ્યગ્દષ્ટિ આનુ અવિરત નામ એટલા માટે છે કે તેમા ચારિત્રમોહનીયની સત્તા સવિશેષ હોવાથી વિરતિ (ત્યાગવૃત્તિ) ઉદય પામતી નથી. (૫) જે અવસ્થામા સત્યદર્શન ઉપરાંત અલ્પાશે પણ ત્યાગવૃત્તિનો ઉદય થાય છે તે દેશવિરતિ. આમા ચારિત્રમોહનીયની સત્તા અવશ્ય ઘટેલી હોય છે અને તેની કમીના પ્રમાણમા ત્યાગવૃત્તિ હોય છે (૬) જે અવસ્થામા ત્યાગવૃત્તિ પૂર્ણ રીતે ઉદય પામે છે છતા વચ્ચે વચ્ચે પ્રમાદ (સ્ખલન) સભવે છે, તે પ્રમત્તસયત. (૭) જે અવસ્થામાં પ્રમાદનો જરાયે સભવ નથી તે અપ્રમત્તસયત (૮) જે અવસ્થામા પહેલા ક્યારે પણ નહિ અનુભવેલ આત્મશુદ્ધિનો અનુભવ થાય છે અને અપૂર્વ વીર્યોલ્લાસ—આત્મિક સામર્થ્ય પ્રગટે છે તે અવસ્થા અપૂર્વકરણ. આનું બીજુ નામ નિવૃત્તિબાદર પણ છે. (૯) જે અવસ્થામા ચારિત્રમોહનીય કર્મના શેષ રહેલ અશોને શમાવવાનુ કે ક્ષીણ કરવાનુ કામ ચાલતુ હોય છે, તે અવસ્થા અનિવૃત્તિબાદર. (૧૦) જે અવસ્થામા મોહનીયનો અંશ લોભ રૂપે જ ઉદયમાન હોય છે અને તે પણ બહુ સૂક્ષ્મ પ્રમાણમા, તે અવસ્થા સૂક્ષ્મસપરાય (૧૧) જે અવસ્થામાં સૂક્ષ્મ લોભ સુધ્ધાં શમી જાય છે, તે ઉપશાતમોહનીય. આ ગુણસ્થાનમા દર્શનમોહનીયનો સર્વથા ક્ષય સભવે ખરો, પણ ચારિત્રમોહનીયનો તેવો ક્ષય નથી હોતો, માત્ર તેની સર્વાશે ઉપશાતિ હોય છે આને લીધે જ મોહનો ફરી ઉદ્રેક થતાં આ ગુણસ્થાનથી અવશ્ય પતન થાય છે અને પ્રથમ ગુણસ્થાન સુધી જવુ પડે છે. (૧૨) જે અવસ્થામા દર્શનમોહનીય અને ચારિત્રમોહનીયનો સર્વથા ક્ષય થઈ જાય છે તે ક્ષીણમોહનીય આ સ્થિતિથી પતન સભવતુ જ નથી. (૧૩) જે અવસ્થામા મોહના આત્યન્તિક અભાવને લીધે વીતરાગ દશા પ્રગટવા સાથે સર્વજ્ઞતા પ્રાપ્ત થાય છે તે અવસ્થા સયોગ ગુણસ્થાન આ ગુણસ્થાનમા શારીરિક, માનસિક અને વાચિક વ્યાપાર હોય છે. એથી આને જીવન્મુક્તિ કહી શકાય (૧૪) જે દશામાં શારીરિક, માનસિક વાચિક પ્રવૃત્તિનો પણ અભાવ થઈ જાય છે, તે અયોગ ગુણસ્થાન. આ ગુણસ્થાન છેલ્લુ છે તેથી શરીરપાત થતા જ તેની સમાપ્તિ થાય છે અને ત્યાર બાદ ગુણસ્થાનાતીત—વિદેહમુક્તિ પ્રાપ્ત થાય છે. આ માટે જુઓ કર્મગ્રંથ બીજો

તેઓના વર્ણનમાં બે પ્રકાર છે · પહેલા પ્રકારમાં અવિકાસ અને વિકાસક્રમ બન્નેનો સમાવેશ કરેલ છે[1]. અવિકાસ કાળને તેઓ ઓઘદૃષ્ટિના નામથી અને વિકાસક્રમને સદ્દૃષ્ટિના નામથી ઓળખાવે છે[2]. સદ્દૃષ્ટિના મિત્રા, તારા, બલા, દીપ્રા, સ્થિરા, કાન્તા, પ્રભા અને પરા એવા આઠ વિભાગ કરે છે. આ આઠે વિભાગોમાં ઉત્તરોત્તર વિકાસનો ક્રમ વધતો જાય છે. પહેલી

---

૧ જુઓ યોગદૃષ્ટિસમુચ્ચય.

૨. દૃષ્ટિ એટલે દર્શન અથવા બોધ. આના બે પ્રકાર છે. પહેલામાં સત્ શ્રદ્ધાનો (તાત્ત્વિક રુચિનો) અભાવ હોય છે જ્યારે બીજામા સત્ શ્રદ્ધા હોય છે. પહેલો પ્રકાર ઓઘદૃષ્ટિ અને બીજો યોગદૃષ્ટિ કહેવાય છે. પહેલામાં આત્માનુ વલણ સસારપ્રવાહ તરફ અને બીજામા આધ્યાત્મિક વિકાસ તરફ હોય છે તેથી યોગદૃષ્ટિ એ સદ્દૃષ્ટિ કહેવાય છે જેમ સમેઘ રાત્રિ, અમેઘ રાત્રિ; સમેઘ દિવસ અને અમેઘ દિવસમા અનુક્રમે અતિમદતમ, મદતમ, મદતર અને મદ ચાક્ષુષ જ્ઞાન હોય છે. તેમાય ગ્રહાવિષ્ટ અને ગ્રહમુક્ત પુરુષના ભેદથી, બાળ અને તરુણ પુરુષના ભેદથી, તેમ જ વિકૃત નેત્રવાળા અને અવિકૃત નેત્રવાળા પુરુષના ભેદથી ચાક્ષુષ જ્ઞાનની અસ્પષ્ટતા કે સ્પષ્ટતા તરતમભાવે હોય છે; તેવી રીતે ઓઘદૃષ્ટિની દશામા સસારપ્રવાહનુ વલણ છતા આવરણના તરતમભાવે જ્ઞાન તારતમ્યવાળુ હોય છે. આ ઓઘદૃષ્ટિ ગમે તેવી હોય તોયે તે આધ્યાત્મિક વિકાસની દૃષ્ટિએ અસદ્દૃષ્ટિ જ છે. ત્યારબાદ જ્યારથી આધ્યાત્મિક વિકાસનો આરભ થાય છે, પછી ભલે તેમા બાહ્ય જ્ઞાન ઓછુ હોય છતા, ત્યારથી સદ્દૃષ્ટિ શરૂ થાય છે, કારણ કે તે વખતે આત્માનુ વલણ સસારોન્મુખ ન રહેતા મોક્ષોન્મુખ થઈ જાય છે. આ સદ્દૃષ્ટિ (યોગદૃષ્ટિ)ના વિકાસના તારતમ્ય પ્રમાણે આઠ ભેદો છે. આ આઠ ભેદોમા ઉત્તરોત્તર બોધ અને સવિશેષ જાગૃતિ થાય છે. પહેલી મિત્રા નામક દૃષ્ટિમા બોધ અને વીર્યનુ બળ તૃણાગ્નિની પ્રભા જેવું હોય છે બીજી તારા દૃષ્ટિમાં છાણાના અગ્નિની પ્રભા જેવુ, ત્રીજી બલા દૃષ્ટિમાં લાકડાના અગ્નિની પ્રભા જેવુ, ચોથી દીપ્રા દૃષ્ટિમા દીવાની પ્રભા જેવુ, પાચમી સ્થિરા દૃષ્ટિમા રત્નની પ્રભા જેવુ, છઠ્ઠી કાન્તા દૃષ્ટિમાં નક્ષત્રની પ્રભા જેવુ, સાતમી પ્રભા દૃષ્ટિમાં સૂર્યની પ્રભા જેવુ, અને આઠમી પરા દૃષ્ટિમાં ચદ્રની પ્રભા જેવુ હોય છે.

જોકે આમાંની પહેલી ચાર દૃષ્ટિઓમા સ્પષ્ટપણે જ્ઞેય આત્મસ્વરૂપનુ સવેદન નથી હોતુ, કેમ્ન છેલ્લી ચાર દૃષ્ટિઓમા જ તેનુ સવેદન હોય છે, છતાં પ્રથમની ચાર દૃષ્ટિઓને સદ્દૃષ્ટિમા ગણવાનુ કારણ એ છે કે તે સ્થિતિમા આવ્યા પછી આધ્યાત્મિક ઉત્ક્રાંતિનો માર્ગ નિશ્ચિત થઈ જાય છે યોગના યમ, નિયમ, આસન, પ્રાણાયામ, પ્રત્યાહાર, ધારણા, ધ્યાન અને સમાધિ એ આઠ અગોને આધારે સદ્દૃષ્ટિના આઠ વિભાગો સમજવાના છે પહેલી દૃષ્ટિમાં યમની સ્થિરતા, બીજીમા નિયમની, એમ અનુક્રમે આઠમીમા સમાધિની સ્થિરતા મુખ્યપણે હોય છે.

મિત્રા આદિ ચાર દૃષ્ટિઓમાં આધ્યાત્મિક વિકાસ હોય છે ખરો, પણ તેમાં કાંઈક અજ્ઞાન અને મોહનું પ્રાબલ્ય રહે છે, જ્યારે સ્થિરા આદિ પાછલી ચાર દૃષ્ટિઓમાં જ્ઞાન અને નિર્મોહતાનુ પ્રાબલ્ય વધતુ જાય છે. બીજા પ્રકારના[1] વર્ણનમાં તે આચાર્યે માત્ર આધ્યાત્મિક વિકાસના ક્રમનું જ યોગરૂપે[2] વર્ણન કર્યું છે; તે પહેલાંની સ્થિતિ વર્ણવી નથી. યોગના તેઓએ અધ્યાત્મ, ભાવના, ધ્યાન, સમતા અને વૃત્તિક્ષય એવા પાંચ ભાગો કરેલા છે[3]

આ બન્ને પ્રકારના વર્ણનો એ પ્રાચીન જૈન ગુણસ્થાનકના વિચારોનુ નવીન પદ્ધતિએ વર્ણન માત્ર છે

આજીવક દર્શન

આ દર્શનનાં સ્વતંત્ર સાહિત્ય અને સંપ્રદાય નથી, તથાપિ તેના આધ્યાત્મિક વિકાસક્રમ સંબંધી વિચારો બૌદ્ધ ગ્રંથમાં સચવાઈ રહેલ છે જોકે

---

૧ જુઓ યોગબિંદુ

૨. યોગ એટલે જેનાથી મોક્ષ પ્રાપ્ત કરી શકાય તેવો ધર્મવ્યાપાર. અનાદિ કાળચક્રમા જ્યા સુધી આત્માની પ્રવૃત્તિ સ્વરૂપ-પરાઙ્મુખ હોઈ લક્ષ્યભ્રષ્ટ હોય છે, ત્યાં સુધીની તેની બધી ક્રિયા શુભાશય વિનાની હોવાથી યોગકોટિમાં આવતી નથી. જ્યારથી તેની પ્રવૃત્તિ બદલાઈ સ્વરૂપોન્મુખ થાય છે ત્યારથી જ તેની ક્રિયામાં શુભાશયનુ તત્ત્વ દાખલ થાય છે અને તેથી તેવો શુભાશયવાળો વ્યાપાર ધર્મવ્યાપાર કહેવાય છે અને તે પરિણામે મોક્ષજનક હોઈ યોગ નામને પાત્ર બને છે. આ રીતે આત્માના અનાદિ સંસારકાળના બે ભાગ થઈ જાય છે એક અધાર્મિક અને બીજો ધાર્મિક. અધાર્મિક કાળમા ધર્મની પ્રવૃત્તિ હોય તોપણ તે ધર્મ ખાતર નથી હોતી, કેવળ 'લોકપંક્તિ' (લોકરંજન) ખાતર હોય છે તેથી તેવી પ્રવૃત્તિ ધર્મકોટિમા ગણવા-યોગ્ય નથી. ધર્મ ખાતર ધર્મની પ્રવૃત્તિ ધાર્મિક કાળમા જ શરૂ થાય છે, તેથી તે પ્રવૃત્તિ યોગ કહેવાય છે. જુઓ યોગબિંદુ.

૩. (૧) જ્યારે થોડા કે ઘણા ત્યાગ સાથે શાસ્ત્રીય તત્ત્વચિંતન હોય છે અને મૈત્રી, કરુણાદિ ભાવનાઓ વિશેષ સિદ્ધ થઈ જાય છે, ત્યારે તે સ્થિતિ અધ્યાત્મ કહેવાય છે. (૨) જ્યારે મન સમાધિપૂર્વક સતત અભ્યાસ કરવાથી અધ્યાત્મ વડે સવિશેષ પુષ્ટ થાય છે, ત્યારે તે ભાવના છે. ભાવનાથી અશુભ અભ્યાસ ટળે છે, શુભ અભ્યાસની અનુકૂળતા વધે છે અને સુંદર ચિત્તની વૃદ્ધિ થાય છે. (૩) જ્યારે ચિત્ત કેવળ શુભ વિષયને જ અવલંબીને રહેલુ હોય છે, અને તેથી તે સ્થિર દીપક જેવુ પ્રકાશમાન હોઈ સૂક્ષ્મ બોધવાળુ બની જાય છે ત્યારે તે ધ્યાન કહેવાય છે. ધ્યાનથી દરેક કામમાં ચિત્ત આત્માધીન થઈ જાય છે, ભાવ નિશ્ચલ થાય છે અને બંધનોનો વિચ્છેદ થાય છે. (૪) અજ્ઞાનને લીધે ઇષ્ટ-અનિષ્ટરૂપે કલ્પાયેલી વસ્તુઓમાંથી જ્યારે વિવેકને લીધે ઇષ્ટ-અનિષ્ટપણાની ભાવના નષ્ટ થાય છે ત્યારે તેવી સ્થિતિ સમતા કહેવાય છે. (૫) વાસનાના સંબંધથી ઉત્પન્ન થનારી વૃત્તિઓનો નિર્મૂળ નાશ કરવો તે વૃત્તિસંક્ષય. જુઓ યોગબિંદુ શ્લો. ૩૫૭ થી ૩૬૫.

સંપ્રદાય ન હોવાથી તે વિચારોનો સ્પષ્ટ ખુલાસો તે ગ્રંથમાં નથી જણાતો, તોપણ તે વિચારો જેવા મળે છે તેવા સંગ્રહવા જરૂરના છે[૧] આજીવક દર્શન આધ્યાત્મિક આઠ પાયરીઓ માને છે. તે આ પ્રમાણે : મંદ, ખિડ્ડા, પદવીમંસા, ઉજુગત, સેખ, સમણ, જિન અને પન્ન. આ આઠમાં પ્રથમની ત્રણ અવિકાસ અને પાછળની પાંચ ભૂમિકાઓ વિકાસક્રમની જણાય છે ત્યારબાદ મોક્ષકાળ હોવો જોઈએ

—પુરાતત્ત્વ પુસ્તક ૧ માંથી ઉદ્ધૃત.

---

૧ મજ્ઝિમનિકાય નામના પ્રાચીન બૌદ્ધ ગ્રંથના સામઞ્ઞફલસુત્ત પ્રકરણમા આજીવક સંપ્રદાયના નેતા મખલી ગોશાળનો ઉલ્લેખ છે અને મૂળમા તેના કેટલાક વિચારો આપેલા છે. આ ગ્રંથની બુદ્ધઘોષકૃત સુમંગલવિલાસિની ટીકામા આજીવક દર્શનની આઠ પાયરીઓનુ વર્ણન છે, જે આ પ્રમાણે છે (૧) જન્મ દિવસથી સાત દિવસ સુધી ગર્ભનિષ્ક્રમણજન્ય દુઃખને લીધે પ્રાણી મદ (મોમુહ) સ્થિતિમા રહે છે. આ પહેલી મદ ભૂમિકા. (૨) દુર્ગતિમાથી આવીને જે બાળકે જન્મ લીધેલો હોય છે તે વારવાર રુએ અને વિલાપ કરે છે, તેમ જ સુગતિમાથી આવી જન્મ લીધેલ બાળક સુગતિનુ સ્મરણ કરી હાસ્ય કરે છે. આ ખિડ્ડા (ક્રીડા) ભૂમિકા (૩) માબાપના હાથ કે પગ પકડીને અગર ખાટલો કે બાજોઠ પકડીને બાળક જમીન ઉપર પગ માડે છે, તે પદવીમસા ભૂમિકા. (૪) પગથી સ્વતત્ર રીતે ચાલવાનુ સામર્થ્ય આવે છે તે ઉજુગત (ઋજુગત) ભૂમિકા (૫) શિલ્પકળા શીખવાનો વખત તે સેખ (શૈક્ષ) ભૂમિકા. (૬) ઘરથી નીકળી સન્યાસ લીધેલ વખત તે સમણ (શ્રમણ) ભૂમિકા. (૭) આચાર્યને સેવી જ્ઞાન મેળવવાનો વખત તે જિન ભૂમિકા (૮) પ્રાજ્ઞ થયેલ ભિક્ષુ (જિન) જ્યારે કાંઈ પણ નથી બોલતો તેવા નિર્લોભ શ્રમણની સ્થિતિ એ પન્ન (પ્રાજ્ઞ) ભૂમિકા

આ આઠ ભૂમિકાઓનાં નામ અને તેની વ્યાખ્યા બુદ્ધઘોષે આપેલ છે. બુદ્ધઘોષના વખતમા એટલે ઈ. સ પાંચમા–છઠ્ઠા સૈકામાં કદાચ આજીવક સપ્રદાય અંગે તેનુ સાહિત્ય થોડુ ઘણુ હશે, તે ઉપરથી તેને આ નામો મળ્યા હશે, પણ એટલુ તો સ્પષ્ટ જણાય છે કે બુદ્ધઘોષની આ વ્યાખ્યા યુક્તિસગત નથી, કારણ એ છે કે તેની એ વ્યાખ્યામાં બાળકના જન્મથી માડી યૌવનકાળ સુધીનુ વ્યાવહારિક વર્ણન છે જે આધ્યાત્મિક વિકાસ સાથે બધબેસતુ નથી તેનો ખરો અર્થ તે સપ્રદાય પ્રમાણે શો હશે તે અત્યારે સાધનના અભાવે કહી ન શકાય, પણ એ ભૂમિકાઓનાં નામ અને તેમા રહેલ આધ્યાત્મિક વિકાસના ક્રમનો સબધ વિચારતા એમ જણાય છે કે આ ભૂમિકાઓનો જન્મ સાથે કશો સબધ નથી. તે ફ્રાગ ફક્ત અજ્ઞાનની પ્રબળતાઓ અને જ્ઞાનની ક્રમશઃ વૃદ્ધિનો જ ભાવ સૂચવવાનો આશય હોય તેમ જણાય છે. આની પુષ્ટિમાં એટલુ જ કહી શકાય કે આજીવક દર્શન એ પ્રાચીન કાળમા શ્રમણપથોમાંનું એક ખાસ દર્શન હતુ અને તેનો સપ્રદાય મોટો હતો તેવી સ્થિતિમા તેના આધ્યા- ત્ક્રાન્તિને લગતા વિચારો અન્ય શ્રમણપથને અગર બ્રાહ્મણપંથને મળતા હોય ...ચિત છે પ્રો. હોર્નલે પોતાના ઉવાસગદસાઓના અનુવાદમાં ભા. ૨ ના

ભારતીય દર્શનોની કાળતત્ત્વ સંબંધી માન્યતા

[૨]

આર્યોની વિચારશીલતાનો અભ્યાસ કરવા ઇચ્છનારે તેઓના વિચારની સરણી અને વિચારના વિષયો તપાસવા જોઈએ. અનેક પ્રત્યક્ષ અને પરોક્ષ વિષયોમા આર્યોની બુદ્ધિ દોડી છે આ લેખમાં તે બધા વિષયો ઉપરના તેઓના વિચારની નોંધ લેવાનો ઉદ્દેશ નથી આ લઘુ લેખ દ્વારા એટલું જ પ્રદર્શન કરવા ધારેલ છે કે કાળના સંબંધમાં આર્યોના વિચાર પ્રાચીન સમયમાં કેવા હતા અને તેમાં વખત જતાં કેવું અને કેટલું પરિવર્તન થયું.

વિશ્વની વિવિધતા અને કાળતત્ત્વ

જગતની વિવિધતાનુ ઊંડાણ બુદ્ધિના ઊંડાણ કરતાયે ઘણું છે. તેથી હજુ સુધી બુદ્ધિ જગતની વિવિધતાનો પાર પામી શકી નથી, પણ તે પાર પામવા તો અલક્ષિત કાળથી મથ્યા કરે છે. મનુષ્યજાતિની બુદ્ધિએ અનેક વિવિધતા સાથે એ પણ વિવિધતા જોઈ કે એક જ ક્ષેત્ર કે દેશની અંદર જુદે જુદે વખતે ઋતુભેદ અને કાર્યભેદ દેખાય છે, ભિન્ન ભિન્ન દેશોમા એક જ વખતે ઋતુભેદ અને કાર્યભેદ નજરે પડે છે, એક જ દેશમાં એક જ વખતે જાતજાતના ફળો કે અનાજોનો પાક એકસરખો નથી આવતો. હેમંત અને શિશિર ઋતુમાં અમુક જાતના ફળોની પ્રધાનતા હોય છે, તો વસંત અને ગ્રીષ્મમા બીજી જાતના ફળોની જ્યારે વર્ષા અને શરદ ઋતુમા કોઈ ત્રીજી જાતનાં ફળોનો ઉત્સવ હોય છે. એક વખત જુવાર, બાજરો વગેરે ધાન્યો ખેતરોને શણગારે છે, ત્યારે બીજી વખતે ઘઉ, ચણા વગેરે સ્પર્ધાથી તે કામ કરે છે. એક વખતે ગરમ કપડાંને સેતાં રોકે છે, જ્યારે બીજી વખતે કેટલોક વખત ખોરાક સિવાય ચલાવી શકાય, પણ કપડાં સિવાય ચલાવી શકાતુ નથી. એક વખત એવો હોય છે કે જ્યારે મેઘનુ દર્શન સર્વ આનંદ પણ દુર્લભ હોય છે ત્યારે બીજે વખત એવો પણ આવે છે કે સૂર્યદર્શનના નિયમવાળાઓને કેટલાક દિવસો સુધી તેનુ દર્શન ન થવાથી ઉપવાસ કરવા પડે છે. આ પ્રાકૃતિક ફેરફારોના મૂળ કારણ તરીકે અત્યારના લોકો જેમ તાપક્રમની ન્યૂનાધિકતા અને વાતાવરણની ભિન્નતા બતાવે, તેમ પ્રાચીન

કાળમાં એમ મનાતુ હતું કે આ દેખાતાં પ્રાકૃતિક સ્થૂળ અને સૂક્ષ્મ એ બધાં પરિવર્તનો માત્ર તાપક્રમ કે હવાપાણીની ભિન્નતા ઉપર જ અવલંબેલા નથી. તે ઉપરાંત પણ બધાં પરિવર્તનોનું કાંઈ ખાસ કારણ હોવું જોઈએ, એતું કારણ માન્યા સિવાય પ્રાચીન કાળના લોકોની બુદ્ધિ પરિવર્તનોનો ખુલાસો કરી શકતી નહિ, અને તેથી જ જૂના જમાનામાં કાળતત્ત્વ ઉપર વિચાર થવા લાગ્યો. આ વિચાર તત્ત્વજ્ઞાનમાં દાખલ થયો અને તેણે મતભેદની અનેક પાઘડીઓ પહેરી. ભારતવર્ષ તાત્ત્વિક વિચાર માટે પ્રસિદ્ધ છે; ખાસ કરીને પરોક્ષતત્ત્વનો વિચાર કરવામાં તો તે એકલુ જ છે. એટલે આજે આપણે સંક્ષેપમાં જોઇશુ કે કાળના સંબંધમાં ભારતીય તત્ત્વજ્ઞાન શું કહે છે.

કાળના સંબંધમાં દર્શનભેદ

ભારતીય દર્શન મુખ્યપણે ત્રણ ભાગમાં વહેચાય છે વૈદિક, જૈન અને બૌદ્ધ

क વૈદિક સાહિત્યનો મૂળ આધાર વેદ અને ઉપનિષદો છે વેદો અને ઉપનિષદોમાં તત્ત્વવિચારણાનાં છૂટાંછવાયાં બીજ છે, પણ તેમાં તે વિચારણાઓએ સ્પષ્ટ, ક્રમબદ્ધ અને સયુક્તિક દર્શનોનું રૂપ પ્રાપ્ત નથી કર્યું. તેથી જ આપણે વેદ કે ઉપનિષદોમાંથી કાળતત્ત્વને લગતી ચોક્કસ માન્યતાઓ મેળવવા અશક્ત છીએ[1] એ માન્યતાઓ મેળવવા દર્શનકાળ તરફ આવવુ જોઈશે અને દાર્શનિક સાહિત્ય તપાસવુ પડશે વૈદિક દર્શનનોના સ્થૂલ રીતે ૭ ભાગ કરવામા આવે છે. વૈશેષિક, ન્યાય, સાખ્ય, યોગ, પૂર્વમીમાસા અને ઉત્તરમીમાસા કાળતત્ત્વની માન્યતાને સ્પષ્ટ સમજવા માટે એ ૭ દર્શનોના બે વર્ગો કરવા ઉચિત છે પહેલા વર્ગને સ્વતંત્ર કાળતત્ત્વવાદી અને બીજાને અસ્વતંત્ર કાળતત્ત્વવાદીના નામે ઓળખીશું

(अ) પ્રથમ વર્ગમા વૈશેષિક, ન્યાય અને પૂર્વમીમાંસાનો સમાવેશ થાય છે.[2]

---

૧ કૌશીતકિ, છાંદોગ્ય, બૃહદારણ્યક, શ્વેતાશ્વતર, મૈત્રિ આદિ અનેક ઉપનિષદોમા અનેક સ્થળે પ્રસગે પ્રસગે 'કાળ' શબ્દનો ઉલ્લેખ થયો છે, તે બધા પ્રસગો વાચનાર અને વિચારનારને આ મારુ કથન સ્પષ્ટ થશે. 'કાળ' શબ્દના પ્રયોગના સ્થળો માટે 'ઉપનિષદ્વાક્યકોશ' જોવો.

૨. પ્રથમ વર્ગમાં વૈશેષિક દર્શન સાથે ન્યાયદર્શન અને પૂર્વમીમાસાને રાખવાનું કારણ એ છે કે તે બન્ને દર્શનો પ્રમેયના સબધમા મુખ્યપણે વૈશેષિક દર્શનની

(ब) બીજા વર્ગમાં બાકીનાં ત્રણ એટલે સાંખ્ય, યોગ અને ઉત્તરમીમાંસાનો

માન્યતાનાં અનુગામી છે. ન્યાયદર્શનનો પ્રધાન વિષય પ્રમાણચર્ચાનો છે. તેમાં પ્રમેયચર્ચા છે ખરી, પણ ફક્ત તે સંસાર અને મોક્ષના કાર્યકારણભાવને સમજાવવા પૂરતી છે (આ માટે જુઓ—" आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफल-दुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्। " गौतमसूत्र, अ. १, आ. १ सू. ९) સમગ્ર જગતના પ્રમેયોની ચર્ચામાં તે ઊતર્યું નથી તે બાબતમાં તેણે વૈશેષિકના સિદ્ધાંતો સ્વીકારી લીધા છે. વૈશેષિક દર્શન મુખ્યપણે જગતના પ્રમેયોની ચર્ચા કરે છે. તે ચર્ચા પ્રમાણચર્ચાની પ્રધાનતાવાળા ન્યાયદર્શનને સર્વથા માન્ય છે. આ જ કારણને લીધે ન્યાય અને વૈશેષિક દર્શનોમાં ભેદ ક્રમે ક્રમે ઘટતો ગયો છે, અને તેથી જ ન્યાયશાસ્ત્ર એ નામ સાંભળતા જ તે બન્ને દર્શનો ખ્યાલમાં આવે છે. ઉક્ત બન્ને દર્શનોના મૂળ સૂત્રગ્રંથો ઉપર તદ્દન ભિન્ન ભિન્ન ટીકાગ્રંથો હોવા છતાં પાછળથી કેટલાક નૈયાયિકોએ એવા ન્યાયવિષયક ગ્રંથો રચેલા છે કે જેમાં વૈશેષિક દર્શનની પ્રમેયચર્ચા અને ન્યાયદર્શનની પ્રમાણચર્ચાનો સંગ્રહ કરી બન્ને દર્શનોનું સંધાન કરી દીધેલું છે. આ જાતના ગ્રંથોમાં સૌથી પહેલું સ્થાન તત્ત્વચિંતામણિનું છે. તેના કર્તા ગંગેશ ઉપાધ્યાય નવીનન્યાયશાસ્ત્રના સૂત્રધાર કહેવાય છે. જોકે ગંગેશ ઉપાધ્યાયના પહેલાં પણ ઉદયનાચાર્યે કુસુમાંજલિ વગેરે પોતાના ગ્રંથોમાં વૈશેષિક અને ન્યાય બન્ને દર્શનોની માન્યતાનું સંધાન કરેલું છે, પણ તે સંધાન પરિપૂર્ણ રૂપમાં ગંગેશ ઉપાધ્યાયે જ કરેલું હોવાથી તેનું માન તેઓને ઘટે છે ગંગેશ ઉપાધ્યાય પછીના નૈયાયિકોમાં ઉક્ત બન્ને દર્શનોનું સંધાન કરી ન્યાય ગ્રંથ બનાવનાર તર્કસંગ્રહના પ્રણેતા અન્નંભટ્ટ અને મુક્તાવલિના રચયિતા વિશ્વનાથ તર્કપંચાનન એ પ્રસિદ્ધ છે.

પૂર્વમીમાંસા એ ઉત્તરમીમાંસાનું પૂર્વાંગ અને નિકટવર્તી દર્શન કહેવાય છે ખરું, પણ તેનું કારણ એ નથી કે તે ઉત્તરમીમાંસાના પ્રમેયો સ્વીકારતું હોય. તે પ્રમેયના વિષયમાં વૈશેષિક અને ન્યાયદર્શનને જ મુખ્યપણે અનુસરે છે. (ઉદાહરણાર્થ તેની 'ઇંદ્રિય' સંબંધી આ માન્યતા વાંચો:—

तच्च द्विविधम्, बाह्यमभ्यन्तरं च। बाह्यं पञ्चविधं घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्रात्मकम्। आन्तरं त्वेकं मनः। तत्राद्यानि चत्वारि च पृथिव्यप्तेजोवायुप्रकृतीनि प्रत्यक्षादर्शन-वदभ्युपगम्यन्ते। श्रोत्रं त्वाकाशात्मकं तैरभ्युपगतम्। वयं तु 'दिशः श्रोत्रं' इति दर्शनाद् दिग्भागेन कर्णशष्कुल्यवच्छिन्नं श्रोत्रमाचक्ष्महे।" अ. १. पा. १ अधि. ४, सू. ४, जैमिनिसूत्र-शास्त्रदीपिका

પૂર્વમીમાંસા કર્મકાંડનિરૂપક વૈદિક શ્રુતિઓની વ્યવસ્થા અને ઉપપત્તિ [illegible] હોવાથી તે જ્ઞાનપ્રધાન ઉત્તરમીમાંસા (વેદાન્તદર્શન) [illegible] સુધી તેને પૂર્વાંગ યા નિકટવર્તી દર્શન કહેવાય [illegible] માન્યતાના પૂર્વમીમાંસા અને ઉત્તરમીમાંસા [illegible]

૧૫

સમાવેશ થાય છે.[1]

અ. (૧) વૈશેષિક દર્શનના પ્રણેતા કણાદ ઋષિએ કાળતત્ત્વને અંગે ચાર સૂત્રો રચ્યા છે.[2] તેમાં પ્રથમ સૂત્રમાં કાળતત્ત્વને સ્વતંત્ર સ્થાપિત કરવા કેટલાક લિંગો વર્ણવ્યાં છે. તે કહે છે કે અમુક વ્યક્તિ અમુક વ્યક્તિથી જ્યેષ્ઠ છે અગર કનિષ્ઠ છે, તેવી પ્રતીતિનું મુખ્ય કારણ તેમ જ વિવિધ કાર્યોમાં થતી યૌગપદ્ય, ચિર અને ક્ષિપ્ર પ્રતીતિનું મુખ્ય કારણ કોઈ તત્ત્વ સ્વતંત્ર હોવું જોઈએ. આ સ્વતંત્ર તત્ત્વ તે કાળ. પછીનાં ત્રણ સૂત્રોમાં તે ઋષિ કાળને દ્રવ્યરૂપ માને છે, નિત્ય માને છે, એક માને છે અને સકળ કાર્યોના નિમિત્તકારણ તરીકે ઓળખાવે છે. (૨) ન્યાયદર્શનના પ્રણેતા ગૌતમ ઋષિએ, કણાદ ઋષિની પેઠે પોતાના પંચાધ્યાયી સૂત્રગ્રંથમાં કોઈ પણ સ્થળે કાળતત્ત્વને સિદ્ધ કરવા કે તેનું સ્વરૂપ બતાવવા કાંઈ પણ કહ્યું નથી. તેનું કારણ એ છે કે તે ઋષિ પોતાના દર્શનમાં પ્રધાનપણે પ્રમાણની જ ચર્ચા કરે છે, અને પ્રમેયની બાબતમાં વૈશેષિકદર્શનને અનુસરે છે; છતાં તેઓએ એક સ્થળે પ્રસંગવશ દિશા અને

જોઈએ. પૂર્વમીમાંસા આત્માનું અનેકત્વ સ્વીકારે છે, પરમાણુ વગેરે જડ દ્રવ્યોને સ્વતંત્ર માને છે અને મોક્ષમાં નૈયાયિકોની પેઠે બુદ્ધિ વગેરે ગુણોનો નાશ અને આનંદનો અભાવ માને છે. વાંચો —

'મુક્તિસ્વરૂપમ્—કિમિદં ? સ્વસ્થ ઇતિ, યે હ્યાગમાપાયિનો ધર્મા બુદ્ધિસુખદુઃખેચ્છાદ્વેષપ્રયત્નધર્માધર્મસંસ્કારાસ્તાનપહાય યદસ્ય સ્વં નૈજં રૂપં જ્ઞાનશક્તિસત્તાદ્રવ્યત્વાદિ તસ્મિન્નવતિષ્ઠત ઇત્યર્થઃ । યદિ તુ સંસારાવસ્થાયામવિદ્યમાનોઽપ્યાનન્દો મુક્તાવસ્થાયાં જન્યત ઇત્યુચ્યતે તતો જનિમત્વાદનિત્યો મોક્ષઃ સ્યાત્ ।" અ. ૧. પા ૧ અધિ ૫. સૂ. ૫. શાસ્ત્રદીપિકા ઉપર રામકૃષ્ણ પ્રણીત યુક્તિસ્નેહપ્રપૂરણી સિદ્ધાન્તચન્દ્રિકા ત્યારે વેદાંતદર્શન પ્રધાનપણે એક જ આત્મા અગર બ્રહ્મને વાસ્તવિક સ્વીકારી, તે સિવાયના સકલ પ્રમેયોને માત્ર માયિક કલ્પે છે, અને મોક્ષમાં અખંડાનંદ માને છે.

(૧) બીજા વર્ગમાં સાંખ્ય સાથે યોગને ગણવામાં આવ્યું છે, તે તો સમજાય તેવું છે, કારણ યોગદર્શન સર્વાંશે સાંખ્યદર્શનના જ પ્રમેયો સ્વીકારે છે તે બન્ને વચ્ચેનો ભેદ ફક્ત ઉપાસનાની અને જ્ઞાનની ગૌણ–પ્રધાનતાને આભારી છે, પણ વેદાંતદર્શન, જે પ્રમેયની બાબતમાં સાંખ્યથી બિલકુલ જુદું પડે છે, તેને સાંખ્યદર્શન સાથે રાખવાનું કારણ એ છે કે આત્મા આદિ પ્રમેયોના સ્વરૂપના વિષયમાં તે બન્નેના પ્રબળ મતભેદ છતાં કાળના વિષયમાં તે બન્ને સમાન છે.

૨ "अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि ॥६॥ द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ॥७॥ तत्त्वं भावेन ॥८॥ नित्येष्वभावादनित्येषु भावात् कारणे कालाख्येति ॥९॥" वैशेषिकदर्शन, अ. २. आ २.

કાળને નિમિત્તકારણરૂપે વર્ણવી[1] એમ સૂચન કર્યું છે કે તેઓ કાળતત્ત્વના સંબંધમાં વૈશેષિકની માન્યતાને મળતા છે. (૩) પૂર્વમીમાંસાના પ્રણેતા જૈમિનિ ઋષિએ પોતાનાં સૂત્રોમાં કાળતત્ત્વ સંબંધી કોઈ પણ ઉલ્લેખ કર્યો નથી. તેનુ કારણ સ્પષ્ટ છે, અને તે એ કે તેઓનો મુખ્ય ઉદ્દેશ્ય કર્મકાંડવિષયક વૈદિક મન્ત્રોની વ્યવસ્થા કરવાનો છે છતાં પૂર્વમીમાંસાના પ્રામાણિક અને સમર્થ વ્યાખ્યાકાર પાર્થસારથિ મિશ્રની શાસ્ત્રદીપિકા ઉપરની ટીકા યુક્તિસ્નેહપ્રપૂરણી સિદ્ધાન્તચન્દ્રિકામાં પં. રામકૃષ્ણે[2] કાળતત્ત્વ સંબંધી મીમાંસક મત બતાવતા વૈશેષિકદર્શનની જ માન્યતાનો સ્વીકાર કરેલો છે. ફક્ત તેઓ વૈશેષિક દર્શનથી એટલી જ બાબતમા જુદા પડે છે કે વૈશેષિકો કાળને પરોક્ષ માને છે અને તેઓ મીમાંસકને મતે કાળને પ્રત્યક્ષ માને છે.

ચ (૧) સાંખ્યદર્શનમા સ્વતંત્ર અને મૂળ તત્ત્વ બે છે પ્રકૃતિ અને પુરુષ આ બે સિવાય કોઈ તત્ત્વ તે દર્શનમા સ્વતંત્ર સ્વીકારાયેલ નથી આકાશ, દિશા અને મન સુધ્ધાં સાંખ્યદર્શનમાં પ્રકૃતિના વિકારો છે તેથી તે દર્શનમા 'કાળ' નામનું કોઈ સ્વતંત્ર તત્ત્વ નથી. તે દર્શન પ્રમાણે કાળ એ એક પ્રાકૃતિક પરિણમન માત્ર છે પ્રકૃતિ નિત્ય છતા પરિણમનશીલ છે. આ સ્થૂળ અને સૂક્ષ્મ જડજગત પ્રકૃતિનો વિકાર માત્ર છે. વિકાર અને પરિણામની પરંપરા ઉપરથી જ વિશ્વગત બધા કાળસાધ્ય વ્યવહારોની ઉપપત્તિ સાંખ્યદર્શનના મૂળ સૂત્રમાંથી જ તરી આવે છે.[3]

(૨) યોગદર્શનના પ્રણેતા મહર્ષિ પતંજલિએ પોતાનાં સૂત્રોમા કાળતત્ત્વના સ્વરૂપના સંબંધમા સ્વલ્પ પણ સૂચન કર્યું નથી, પણ તે દર્શનના પ્રામાણિક ભાષ્યકાર વ્યાસ ઋષિએ ત્રીજા પાદના બાવનમા સૂત્રની વ્યાખ્યા કરતા પ્રસંગે કાળતત્ત્વનુ સ્પષ્ટ સ્વરૂપ આલેખ્યું છે, જે બરાબર યોગદર્શનમાન્ય સાંખ્યદર્શનના પ્રમેયોને બંધબેસતુ છે. તે કહે છે કે મુહૂર્ત, પ્રહર, દિવસ આદિ લૌકિક કાળવ્યવહારો બુદ્ધિકૃત છે—કલ્પનાજનિત છે. તે કલ્પના ક્ષણોના બુદ્ધિકૃત નાનામોટા વિભાગો ઉપર અવલંબેલી છે. ક્ષણ એ વાસ્તવિક છે, પણ તે મૂળ તત્ત્વરૂપે નહિ, માત્ર કોઈ પણ મૂળ તત્ત્વના પરિણામરૂપે તે [illegible]. છે. જે પરિ-

---

૧ જુઓ "दिग्देशकालाकाशेष्वप्येवं प्रसङ्गः।" [illegible]

૨. "नास्माकं वैशेषिकाभिमत[illegible] कालः किन्तु प्रत्यक्ष एव, [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible]

३. "दिक्कालावाकाशादिभ्यः।" [illegible]

ણામનો બુદ્ધિથી પણ બીજો વિભાગ ન થઈ શકે તેવા સૂક્ષ્માતિસૂક્ષ્મ પરિણામનું નામ ક્ષણ છે. તેવી ક્ષણનું સ્વરૂપ સ્પષ્ટ કરતાં કહે છે કે—"એક પરમાણુને પ્રથમ પોતાનું ક્ષેત્ર છોડી બીજું ક્ષેત્ર પ્રાપ્ત કરવામાં જેટલો વખત વીતે છે[1] તે જ વખતનું અર્થાત્ પરમાણુપરિમાણ દેશના અતિક્રમણમાં લાગતા વખતનુ નામ 'ક્ષણ' છે." આ રીતે જોતાં ક્ષણ એ માત્ર ક્રિયાના અવિભાજ્ય અંશનો સંકેત છે. યોગદર્શનમાં સાંખ્યદર્શનસમ્મત જડ પ્રકૃતિતત્ત્વ જ ક્રિયાશીલ મનાય છે. તેની ક્રિયાશીલતા સ્વાભાવિક હોઈ તેને ક્રિયા કરવામા અન્ય તત્ત્વની અપેક્ષા નથી. તેથી યોગદર્શન કે સાંખ્યદર્શન ક્રિયાના નિમત્તકારણ તરીકે વૈશેષિકદર્શનની પેઠે કાળતત્ત્વને પ્રકૃતિથી ભિન્ન કે સ્વતંત્ર નથી સ્વીકારતા, એ બાબત બરાબર સાબિત થાય છે

(૩) 'ઉત્તરમીમાંસા' દર્શન, વેદાંતદર્શન યા ઔપનિષદિક દર્શનના નામે પ્રસિદ્ધ છે. તે દર્શનના પ્રણેતા મહર્ષિ બાદરાયણે ક્યાંય કાળતત્ત્વના સંબંધમાં સ્પષ્ટ લખ્યુ નથી, પણ તે દર્શનના પ્રધાન વ્યાખ્યાકાર શંકરાચાર્યે માત્ર બ્રહ્મને જ મૂળ અને સ્વતંત્ર તત્ત્વ સ્વીકારી અન્ય સૂક્ષ્મ કે સ્થૂળ જડજગતને માયિક અગર તો અવિદ્યાજનિત સાબિત કરેલ છે. તેથી જ શાંકર વેદાંતનો સિદ્ધાંત સંક્ષેપમાં એટલો છે કે "ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या" આ સિદ્ધાંત પ્રમાણે ફક્ત કાળને જ નહિ, પણ આકાશ, પરમાણુ આદિ તત્ત્વોને પણ સ્વતંત્રતા માટે સ્થાન જ નથી, જોકે વેદાંતદર્શનના અન્ય વ્યાખ્યાકારો રામાનુજ, નિંબાર્ક, મધ્વ અને વલ્લભ કેટલીક મુદ્દાની બાબતોમા શાંકર સિદ્ધાતથી જુદા પડે છે, પણ તેઓના મતભેદનુ મુખ્ય ક્ષેત્ર આત્માનુ સ્વરૂપ અને જગતની સત્યતા કે અસત્યતા એ છે. કાળતત્ત્વ સ્વતંત્ર નથી, તે બાબતમાં વેદાંતદર્શનના બધા વ્યાખ્યાકારો એકમત છે

આ વૈદિક દર્શનની કાળતત્ત્વ સંબંધી માન્યતાઓ જોયા બાદ જૈન દર્શન તરફ નજર આવે છે અને પ્રશ્ન થાય છે કે જૈન દર્શન સ્વતંત્ર કાળતત્ત્વવાદી છે કે અસ્વતંત્ર કાળતત્ત્વવાદી ? આનો સક્ષેપમા ઉત્તર એટલો જ મળે છે કે જૈન દર્શનમાં સ્વતંત્ર કાળતત્ત્વની અને અસ્વતંત્ર કાળતત્ત્વની માન્યતાના બન્ને પક્ષો સ્વીકારાયા છે જોકે વખત જતાં જૈન સાહિત્ય હિંદુસ્તાનના દરેક ભાગમાં ફેલાયુ અને પુષ્ટ થતુ ગયું, પણ તેના ઉત્થાનના બીજ પૂર્વ દેશ

---

૧ આ જ પરમાણુની ગતિનો દાખલો પ્રવચનસારમા આચાર્ય કુંદકુંદે આપેલ છે અને તેના ટીકાગ્રંથોમા તે જ વાત સ્પષ્ટ થયેલ છે જુઓ અ ૨, ગાથા ૪૭ આદિ

બિહારાન્તર્ગત મગધ પ્રદેશમાં જ રોપાયેલાં. ઉપર્યુક્ત વૈદિક છ દર્શનોના સૂત્રકારો પણ મોટે ભાગે મગધની સમીપના મિથિલા દેશમાં જ થયેલા. જૈન દર્શન અને વૈદિક દર્શનોની માત્ર ક્ષેત્રવિષયક જ સમાનતા નથી પણ તેઓની સમાનકાલીનતા પણ નિશ્ચિત છે. આ સમાનક્ષેત્રતા અને સમાનકાલીનતાનો પ્રભાવ જૈન સાહિત્યમાં ઉપલબ્ધ થતા કાળતત્ત્વ સંબધી પૂર્વોક્ત બન્ને પક્ષોથી વધારે સ્પષ્ટ થાય છે. હવે આપણે તપાસી જોઈએ કે જૈન દર્શનના પ્રાચીન, મધ્યકાલીન અને અર્વાચીન સાહિત્યમાં કાળને સ્વતંત્ર તત્ત્વ માનનાર અને ન માનનાર એ બે પક્ષો ક્યાં ક્યાં ઉલ્લિખિત થયેલ છે. તે ઉપરાંત એ પણ જોવુ બાકી રહે છે કે વૈદિક સાહિત્યમા સ્વતંત્ર કાળતત્ત્વવાદી પક્ષે અને અસ્વતંત્ર કાળતત્ત્વવાદી પક્ષે કાળતું જેવુ જેવુ સ્વરૂપ વર્ણવ્યુ છે, જૈન સાહિત્યના ઉક્ત બન્ને પક્ષોએ પણ તેવું તેવું સ્વરૂપ જ વર્ણવ્યું છે કે તેમાં કંઈ ફેરફાર છે?

આ બન્ને પ્રશ્નોનો ઉત્તર આપ્યા પહેલાં એક વાત ખાસ જણાવી દેવી યોગ્ય છે, અને તે એ કે જૈન દર્શનનું સાહિત્ય શ્વેતાંબર અને દિગંબર એ બે શાખાઓમાં વહેંચાઈ ગયું છે જ્યારે શ્વેતાંબર સંપ્રદાયના પ્રાચીન, મધ્યકાલીન અને અર્વાચીન સાહિત્યમા કાળતત્ત્વને લગતી ઉપર્યુક્ત બન્ને માન્યતાઓ મળે છે, ત્યારે દિગંબર સપ્રદાયના પ્રાચીન, મધ્યકાલીન અને અર્વાચીન સાહિત્યમા ફક્ત કાળને સ્વતત્ર તત્ત્વ માનનાર એક જ પક્ષ દૃષ્ટિગોચર થાય છે.

શ્વેતાંબર પ્રાચીન સાહિત્યમા ભગવતી,[1] ઉત્તરાધ્યયન,[2] જીવાભિગમ, પ્રજ્ઞાપના[3] આદિ આગમોમા કાળ સંબધી ઉપર્યુક્ત બન્ને પક્ષો ઉલ્લિખિત થયા છે દિગંબરીય પ્રાચીન સાહિત્યમા પ્રવચનસારમાં[4] સ્વતંત્ર કાળતત્ત્વનો એકમાત્ર પક્ષ છે. શ્વેતાબર મધ્યકાલીન સાહિત્યમાં વિશેષાવશ્યકભાષ્ય,[5] ધર્મસંગ્રહણી,[6] તત્ત્વાર્થભાષ્યવૃત્તિ[7] આદિ ગ્રંથોમા ઉક્ત બન્ને પક્ષો નિર્દિષ્ટ

---

१. जुओ शतक २५, उद्देश ४, सू ७३४.

२. अध्ययन २८, गाथा ७-८.

३. पद १, सू ३

૪. જુઓ જ્ઞેય ૨, ગાથા ૪૬, ૪૯ વગેરે

૫. ગાથા ૯૨૬ થી ૨૦૬૮. આ ગ્રંથ જિનભદ્રગણી ક્ષમાશ્રમણ [illegible] છે. તેઓ હરિભદ્રસૂરિના પહેલાં [illegible] મનાય છે

૬ આ [illegible] હરિભદ્રસૂરિ [illegible] જુઓ [illegible] તથા મલયગિરિ ટીકા

૭. જુઓ અ ૫ સૂ ૩૮-૩૯, ભાષ્ય [illegible] સિદ્ધસેનગણિ

છે. દિગંબરીય મધ્યકાલીન સાહિત્યમાં તત્ત્વાર્થની[1] ત્રણ ટીકાઓ[2] (સર્વાર્થસિદ્ધિ, રાજવાર્તિક, શ્લોકવાર્તિક), ગોમ્મટસાર[3] આદિ ગ્રંથોમાં એ પૂર્વોક્ત એક જ પક્ષ જણાય છે. શ્વેતાંબરીય અર્વાચીન સાહિત્યમાં દ્રવ્યગુણપર્યાયનો રાસ,[4] યુક્તિપ્રબોધ,[5] લોકપ્રકાશ આદિ ગ્રંથોમાં ઉક્ત બન્ને પક્ષો પોષાયેલા છે.

બીજો પ્રશ્ન કાળતત્ત્વના સ્વરૂપને લગતો છે વૈદિકદર્શનસ્વીકૃત કાળતત્ત્વ સંબંધી ઉક્ત બન્ને પક્ષો જૈન દર્શનમાં છે, એટલા પૂરતુ એ બન્ને દર્શનોનું સામ્ય છતાં સ્વરૂપની બાબતમાં જૈન દર્શન વૈદિક દર્શનોથી બિલકુલ જુદુ પડે છે. સ્વરૂપ સંબંધી અનેક માન્યતાઓ જૈન સાહિત્યમા છે. તેની વિવિધતા જોતાં પરોક્ષ વિષયમા મનુષ્યની બુદ્ધિ કલ્પનાના કેવા ચિત્રણો આલેખે છે, તે વાત વધારે સાબિત થાય છે. જ્યારે વૈદિક સ્વતત્ર કાળપક્ષ કાળને એક, વ્યાપક અને નિત્ય માને છે ત્યારે જૈન સ્વતંત્ર કાળતત્ત્વ–પક્ષમા ચાર જુદી જુદી માન્યતાઓ છે. પહેલી માન્યતા કાળને અણુમાત્ર અને એક સ્વીકારે છે.[6] બીજી માન્યતા પ્રમાણે કાળ એક તત્ત્વ છતા મનુષ્યક્ષેત્રપ્રમાણ છે, અણુ માત્ર નહિ. ત્રીજી મન્યતા પ્રમાણે કાળતત્ત્વ એક છે ખરુ, પણ તે અણુમાત્ર નથી, મનુષ્યક્ષેત્રપ્રમાણ પણ નથી, કિન્તુ લોકવ્યાપી છે ચોથી માન્યતા પ્રમાણે કાળતત્ત્વ એક નહિ પણ અસંખ્ય છે, અને તે બધાયે પરમાણુમાત્ર

૧ આ ગ્રંથને શ્વેતાબર, દિગબર બન્ને સપ્રદાય પ્રમાણ તરીકે એકસરખી રીતે સ્વીકારે છે જોકે બને સપ્રદાયમાં કેટલાક સૂત્રો ઓછાવત્તા છે અને પરિવર્તન પણ પામ્યાં છે. કેટલેક સ્થળે સૂત્રમાં વિશેષ ભિન્નતા ન હોવા છતા પણ બન્ને સપ્રદાયના વ્યાખ્યાકાર આચાર્યોએ પોતપોતાની માન્યતા પ્રમાણે તે તે સૂત્રોનો જુદો જુદો અર્થ કર્યો છે. તેના ઉદાહરણ રૂપે કાળ સબધી સૂત્રો ઉપરની એક સપ્રદાયના આચાર્યોએ કરેલ વ્યાખ્યા જોવા જેવી છે

૨. અ. ૫, સૂ ૩૯–૪૦ ઉપરની ત્રણ વ્યાખ્યા.

૩ જુઓ. જીવકાંડ.

૪. આ ગ્રંથ ગુજરાતી ભાષામાં સત્તરમા–અઢારમા સૈકામા થયેલ ઉપાધ્યાય યશોવિજયજીએ રચેલ છે. તેમાં શ્વેતાબર અને દિગબર બન્ને સપ્રદાયોની કાળ સંબધી સમગ્ર માન્યતાઓ વિચારપૂર્વક વર્ણવાયેલ છે આ વિષયના જિજ્ઞાસુ માટે આ એક જ ગ્રંથ પર્યાપ્ત છે. જુઓ "પ્રકરણરત્નાકર" ભા ૧. પા ૧૦."

૫. આ ગ્રંથમાં પણ શ્વેતાબર, દિગબર બન્ને સપ્રદાયની સમગ્ર કાળ સબધી માન્યતાઓનુ એક પ્રકરણ છે. તેના પ્રણેતા ઉ. મેઘવિજયજી છે ને એક સારા વિદ્વાન અને યશોવિજયજીના સમકાલીન હતા.

૬. આ માન્યતા 'યુક્તિપ્રબોધ'મા હોવાનુ સ્મરણ છે આ વિચાર લખતી વખતે તે ગ્રન્થ પાસે ન હોવાથી ચોક્કસ પુરાવો આપી શકતો નથી

છે. આ ચોથી માન્યતા એકલા દિગંબર સંપ્રદાયમાં સ્વીકૃત છે. બાકીની ત્રણ માન્યતા *શ્વેતાંબર સંપ્રદાયમાં પ્રચલિત છે

વૈદિક અસ્વતંત્ર કાળતત્ત્વપક્ષ મુખ્યતયા પ્રકૃતિપરિણામને અગર વેદાંતની દૃષ્ટિએ માયિક વિલાસને કે બ્રહ્મવિવર્તને કાળ કહે છે, ત્યારે જૈન અસ્વતંત્ર કાળતત્ત્વપક્ષ ચેતન–અચેતન એ બન્નેના પરિણમનને કાળ કહે છે. સાંખ્ય અને યોગ ચેતનતત્ત્વને કૂટસ્થનિત્ય માનતા હોવાથી તેમના મત પ્રમાણે પ્રકૃતિમાત્ર જ પરિણામી છે અ તેથી જ તેમના મત પ્રમાણે પ્રાકૃતિક પરિણામ જ કાળ છે વેદાંત દૃષ્ટિ અનુસારે જગત માયિક અને બ્રહ્મનો વિવર્ત છે, તેથી તેની દૃષ્ટિએ કાળ એ એક માયાવિલાસ અગર તો બ્રહ્મવિવર્ત છે, પણ જૈન દર્શન ચેતન–અચેતન બન્નેને વાસ્તવિક અને પરિણામી માનતું હોવાથી તેના મત પ્રમાણે ચેતન–અચેતન બન્નેનો પર્યાયપ્રવાહ કાળ મનાય છે.

ગ. બૌદ્ધ દર્શનનું સાહિત્ય વિશેષ જોવામાં આવ્યું નથી. જે કાંઈ થોડું જોવામાં આવ્યું છે તે ઉપરથી અત્યારે એટલું જ કહી શકાય છે કે બૌદ્ધ મતમાં કાળ સ્વતંત્ર તત્ત્વરૂપે મનાયેલ નથી

ઉપસંહાર

આર્ય સાહિત્યમાં ઉપલબ્ધ થતી કાળતત્ત્વને લગતી માન્યતાઓનું ઉપર જે સંક્ષેપમાં વર્ણન આપવામાં આવ્યું છે, આશા છે કે તે વર્ણન આર્યસાહિત્યના અભ્યાસીઓને અલ્પાંશે પણ ઉપયોગી થશે.

* [illegible]

પ્રામાણ્ય સ્વતઃ કે પરતઃ?

[૩]

જે વિષય બહુ થોડાને પરિચિત છે તે વિષય ઉપર હું કેમ લખું છું, એ પ્રશ્નનો ખુલાસો પ્રસ્તુત લેખની પ્રસ્તાવનાથી થશે. લગભગ આઠેક વરસ પહેલાં ભાવનગર આત્માનંદ સભામાં વિદ્વાન કવિ કાન્તની સાથે પહેલવહેલું મળવાનું થયું. તે વખતે તેઓએ મને જે પ્રશ્ન પ્રથમ પૂછેલો અને મેં જે ઉત્તર આપેલો, તેને જ થોડું પલ્લવિત અને વ્યવસ્થિત કરી લખી દઉં તો એક દાર્શનિક વિચારની ચર્ચા અને કવિ કાન્તની યાદી એમ બે અર્થ સરે.

કાન્તે મને 'प्रमात्वं न स्वतो ग्राह्यं' એ કારિકાનું પાદ સમજાવવા કહ્યું. આનો ઉત્તર નીચે લખું તે પહેલાં ઉક્ત કારિકાની બાહ્ય માહિતી અને તેનો વિષય જાણી લેવો યોગ્ય છે

સાહિત્યદર્પણ અને ગૌતમસૂત્રવૃત્તિના લેખક બંગાળી વિદ્વાન વિશ્વનાથ તર્કપંચાનન (ઈ સ. સત્તરમો સૈકો) ની રચેલ કારિકાવલી (અથવા ભાષાપરિચ્છેદ)ની ૧૩૬મી કારિકાનું 'प्रमात्वं न स्वतो ग्राह्यं' એ ત્રીજું પાદ છે. એની થોડી વ્યાખ્યા તો ગ્રન્થકારે પોતે જ પોતાની મુક્તાવલિ નામક ટીકામાં આપી છે. મીમાંસકદર્શન પ્રામાણ્યને સ્વત. જ્ઞેય માને છે તેનું નિરાકરણ નૈયાયિક મતથી એ પાદમાં કરેલું છે એની દલીલ તરીકે તેનું ચોથું પાદ 'संशयानुपपत्तितः' આવે છે. આ કારિકાની વ્યાખ્યા કાન્તના પ્રશ્નના ઉત્તરમાં મેં આપી.

આ વિષયની પક્ષવાર માન્યતાઓ અને તેનું ઐતિહાસિક મૂળ એ બે બાબતો આ લેખમાં મુખ્ય જણાવવાની છે, પણ તે જણાવ્યા પહેલાં પ્રસ્તુત લેખમાં વારંવાર આવનારા કેટલાક શબ્દોની સંક્ષેપમાં માહિતી આપવી ઠીક ગણાશે

(૧) **પ્રમાત્વ** = જે જ્ઞાન યથાર્થ હોય તે પ્રમા કહેવાય છે. જ્ઞાનની યથાર્થતા (સત્યતા) એ પ્રમાત્વ.

(૨) **પ્રામાણ્ય** = આ સ્થળે પ્રામાણ્ય અને પ્રમાત્વ એ બને શબ્દો એકાર્થક હોઈ પ્રામાણ્ય શબ્દનો અર્થ પણ જ્ઞાનનું ખરાપણું છે

(૩) **સ્વતઃ** = જે બુદ્ધિમાં જ્ઞાનનું ભાન થાય તેમાં જ જ્ઞાનનું સત્યત્વ પણ ભાસિત થાય છે એમ માનવું તે સ્વતઃ.

(૪) **પરતઃ** = જ્ઞાનનું સત્યત્વ એ જ્ઞાનને જાણનાર બુદ્ધિ કરતાં જુદી બુદ્ધિથી જણાય છે એમ માનવું તે પરતઃ.

(૫) **અભ્યાસદશા** = વારંવાર પરિચયમાં આવવાની સ્થિતિ.

(૬) **અનભ્યાસદશા** = આનાથી ઊલટું.

(૭) **વ્યવસાય** = કોઈ પણ વિષયનું નિશ્ચયાત્મક જ્ઞાન.

(૮) **અનુવ્યવસાય** = પ્રથમ નિશ્ચયને જાણનારું પાછળનું જ્ઞાન

(૯) **અર્થક્રિયાજ્ઞાન** = જે વસ્તુથી જે પ્રયોજનો સાધી શકાતાં હોય, તે વસ્તુના જ્ઞાન પછી પ્રવૃત્તિ થયા બાદ તેવાં પ્રયોજનનો અનુભવ થવો તે અર્થક્રિયાજ્ઞાન.

(૧૦) **સંવાદ** = પ્રથમ જ્ઞાનથી વિરુદ્ધ ન પડવું તે સંવાદ.

(૧૧) **વિસંવાદ** = આથી ઊલટું.

(૧૨) **પ્રવર્તકજ્ઞાન** = જે જ્ઞાન પછી તે જ્ઞાનના વિષયને ગ્રહણ કરવા અથવા છોડવા પ્રવૃત્તિ થાય છે તે પ્રવર્તકજ્ઞાન

સ્વત કે પરતની ચર્ચાનું ઐતિહાસિક મૂળ

વેદના સંહિતા (મંત્ર) ભાગ ઉપર લોકોની શ્રદ્ધા દૃઢ જામી હતી અને તેથી જ અનુક્રમે ભાગનો ઉપયોગ કર્મકાંડમાં થવા લાગ્યો. જાણ્યે કે અજાણ્યે કર્મકાંડનાં વિધિવિધાનો, જેમ દરેક સંપ્રદાયમાં બને છે તેમ, જટિલ અને શુષ્ક થઈ ગયાં અને તેમાં વાસ્તવિક ધર્માનુભવનું તત્ત્વ ઘટી ગયું. હિંસા સામાન્યરૂપે અધર્મ ગણાતી, તે વેદવિહિત થતાં ધર્મનું કારણ મનાવા લાગી. આ રીતે કલ્યાણના જ્યોતિર્મય માર્ગમાં ધૂમનું આવરણ જોઈ કરુણામૂર્તિ પ્રતિભાશીલ અને સ્વાવલંબી ઘણા મહાત્માઓનું અંતર કકળી ઊઠ્યું. તેઓએ તે કર્મકાંડની હિંસાને પણ અધર્મના કારણ તરીકે જણાવવા માંડી અને વચ્ચે વેદનો પ્રશ્ન આવતાં તેઓએ જણાવ્યું કે જો વેદ આવાં હિંસાનું પ્રતિપાદન કરતા હોય તો તેને ખરા વેદ ન માનવા. આવી સ્થિતિમાં એક વર્ગ એવો ઊભો થયો કે જે હિંસામય યજ્ઞ અને તેને ટેકો આપનાં શ્રુતિઓને અપ્રમાણ ગણવતો હતો, જ્યારે બીજો વર્ગ એવો થયો. જે જ્યારે હિંસ

મૂકયા સિવાય દરેક પ્રકારના યજ્ઞ અને સમગ્ર વેદોનું પ્રમાણ્ય સ્થાપન કરવા લાગ્યો. છેવટે પ્રધાન ધર્મશાસ્ત્ર તરીકે લોકોમાં રૂઢ થયેલ વેદોના પ્રામાણ્યાપ્રામાણ્યનો જ પ્રશ્ન બંને વર્ગો વચ્ચે ચર્ચાનો મુખ્ય વિષય થઈ ગયો. અપ્રામાણ્ય સિદ્ધ કરનાર વર્ગ એમ કહેતો કે શાસ્ત્રને રચનાર પુરુષો હોય છે. કોઈ કોઈ પુરુષ કદાચ નિર્લોભ અને જ્ઞાની હોય, પણ દરેક કાંઈ તેવા હોતા નથી. તેથી એકાદ થોડાઘણા સ્વાર્થી કે થોડાઘણા અજ્ઞાની પુરુષ દ્વારા શાસ્ત્રમાં એવો ભાગ પણ દાખલ થઈ જાય છે કે જેને પ્રમાણ માનવા શુદ્ધ બુદ્ધિ તૈયાર ન થાય બીજો વર્ગ એમ કહેતો કે એ વાત ખરી છે, પણ વેદની બાબતમાં તે લાગુ પડતી નથી વેદોમાં તો પ્રામાણ્યની શંકા લઈ શકાય તેવું છે જ નહિ; કારણ એ છે કે પુરુષો વેદોના રચયિતા જ નથી તેથી તેઓના અજ્ઞાન કે લોભને લઈને વેદોમા અપ્રામાણ્ય આવે જ કયાંથી? આવી રીતે વેદના પ્રામણ્ય અને અપ્રામાણ્યની ચર્ચામાંથી વેદના પૌરુષેયત્વ અને અપૌરુષેયત્વનો વાદ જામ્યો અપૌરુષેયત્વવાદમાં બે ફાંટા પડયા. બંનેની માન્યતાનુ સમાનત્વ એ કે વેદો પ્રમાણ છે, તેમાં અપ્રમાણ ભાગ જરાયે નથી, પણ બંનેમા એક મતભેદ જન્મ્યો. એક પક્ષ કહેવા લાગ્યો કે વેદ શબ્દરૂપ હોઈ અનિત્ય છે, તેથી તેનો કોઈ રચનાર તો હોવો જ જોઈએ પુરુષો (સાધારણ જીવાત્માઓ) સર્વથા પૂર્ણ ન હોવાથી વેદોને તેઓની કૃતિ ન માની શકાય, એટલે સર્વજ્ઞ ઈશ્વરની રચનારૂપે વેદો મનાવા જોઈએ, જ્યારે બીજો પક્ષ કહેવા લાગ્યો કે વેદ ભલે શબ્દરૂપ હોય, પણ વેદ એ નિત્ય છે અને નિત્ય એટલે અનાદિસિદ્ધ તેથી વેદને પુરુષોની કે ઈશ્વરની રચના માનવાની જરૂર નથી. આ રીતે પૌરુષેયત્વ–અપૌરુષેયત્વવાદમા વેદના અનિત્યત્વ અને નિત્યત્વનો પ્રશ્ન પણ ચર્ચાવા લાગ્યો. વેદનું પ્રામાણ્ય મૂગા મોંએ ન સ્વીકારનાર પક્ષ તો તેને પૌરુષેય અને અનિત્ય માનતો જ, પરંતુ તેનુ પ્રામાણ્ય સ્વીકારનાર પણ એક પક્ષ તેને અનિત્ય માનતો થયો. વેદને અનિત્ય માની પ્રમાણ માનનાર પક્ષ નિત્યાવાદીને કહેતો કે શાસ્ત્રનુ પ્રામાણ્ય તેના રચનારની પૂર્ણતાને લઈને છે, તેથી જો વેદ કોઈની રચના ન હોય તો તેમા પ્રામણ્ય કેવી રીતે ઘટાવી શકાય? આનો ઉત્તર બીજા પક્ષે આપ્યો કે પ્રામાણ્ય એ પરાધીન નથી, પરાધીન તો અપ્રામાણ્ય છે. તેથી જે શાસ્ત્રો કોઈનાં રચાયેલાં હોય તેમાં અપ્રામાણ્યનો સભવ ખરો, પણ વેદ તો કોઈની રચના જ નથી, એટલે તેમા પુરુષદોષની સંક્રાન્તિ અને તજ્જન્ય અપ્રામાણ્યનો સભવ ન હોવાથી વેદનું પ્રામાણ્ય સ્વત સિદ્ધ છે આ રીતે અનુક્રમે સ્વત–પ્રામાણ્ય અને પરત–પ્રામાણ્યની કલ્પના જન્મી.

વિષય અને સાહિત્યનો ક્રમિક વિકાસ

પહેલાં તો ઉપરની કલ્પના વેદ અને તેને લીધે મુખ્યપણે શબ્દ–પ્રમાણના પ્રદેશમાં હતી, પણ ધીરે ધીરે વેદ–નિત્યત્વવાદીએ સમગ્ર પ્રમાણમાં તે કલ્પના લંબાવી અને કહ્યું કે પ્રત્યક્ષ, અનુમિતિ કે અન્ય કોઈ પણ જાતનુ જ્ઞાન હોય તે દરેક સ્વભાવથી યથાર્થ હોય છે જો આગંતુક દોષ ન હોય તો તેમા અપ્રામાણ્ય આવતુ જ નથી. અનિત્યત્વવાદીએ પણ પોતાની કલ્પનાને લબાવી કહ્યું કે શાબ્દિક જ્ઞાન હોય કે અન્ય જ્ઞાન, દરેકમાં પ્રામણ્ય કોઈ સ્વાભાવિક નથી, તે તો ફક્ત કારણના ગુણથી આવે છે—જેવી રીતે કારણના દોષથી અપ્રામાણ્ય. આ રીતે શબ્દ–પ્રમાણમા જન્મેલી સ્વત –પરતઃની કલ્પના સમગ્ર પ્રમાણના પ્રદેશમા ફેલાઈ. તેવી જ રીતે પહેલા સ્વત –પરત ની વાદભૂમિ મુખ્યભાગે પ્રામાણ્યની ઉત્પત્તિ હતી, તેનો ધીરે ધીરે વિકાસ થતાં પ્રામાણ્યની જ્ઞપ્તિ અને તેના કાર્યો સુધી તે વિસ્તરી તેથી અત્યારે સ્વત –પરત ની ચર્ચા પ્રામાણ્યની ઉત્પત્તિ, જ્ઞપ્તિ અને કાર્યના વિષયમાં જોઈએ છીએ.

જેમ જેમ ચર્ચાના વિષયની સીમા વધતી ચાલી અને તેની વિશદતા પણ થતી ચાલી તેમ તેમ તેનુ સાહિત્ય પણ વિકસ્યું આપણે જોઈએ છીએ કે ઉપનિષદ્‌ના પ્રાચીન જમાનામા સ્વત.–પરતઃની ચર્ચાના ‘ શબ્દનુ નિત્યત્વ–અનિત્યત્વ ’ જેવા કેટલાક અંશો માત્ર છૂટાછવાયા નિરુક્ત જેવા ગ્રન્થોમા અસ્પષ્ટ રૂપમા મળે છે. ક્રમે તેનો વિકાસ થતો ચાલ્યો, પણ છેક ચોથી–પાચમી શતાબ્દી સુધીમાં એ ચર્ચાનું સાહિત્ય બહુ નહોતું વધ્યુ. સ્વત.પક્ષમા શબરસ્વામીનું શાબરભાષ્ય અને પરત પક્ષમાં બૌદ્ધાચાર્ય દિઙ્નાગના, જૈનાચાર્ય સિદ્ધસેનના તથા સમતભદ્રના ગ્રન્થો—એટલું જ સાહિત્ય ત્યારસુધીમા આ વિષયને લગતું મુખ્યપણે કહી શકાય. પણ કુમારિલના શ્લોકવાર્તિકમાં સ્વત–પક્ષની ખૂબ ચર્ચા થતા જ બૌદ્ધ, જૈન અને નૈયાયિકો તેની વિરુદ્ધ ઊતરી પડ્યા. શાતરક્ષિતકૃત તત્ત્વસગ્રહ અને નાલંદા વિદ્યાપીઠના તન્ત્રના અધ્યાપક કમલશીલની (આશરે ઈ. સ. ૭૫૦) તે ઉપરની ટીકા સિવાય આજે સંસ્કૃત બૌદ્ધ ગ્રન્થો આપણી સામે ન હોવાથી તે વિષે મૌન જ ઠીક છે પણ જૈન વિદ્વાન વિદ્યાનંદિ પોતાની અષ્ટસહસ્રી, શ્લોકવાર્તિક આદિ કૃતિઓમા તથા પ્રભાચન્દ્રે પોતાની પ્રમેયકમલમાર્તંડ, ન્યાયકુમુદચંદ્રોદય આદિ કૃતિઓમાં તે વિષે જ્યાંગે ક્યાંક સિવાય ખૂબ લખેલું આપણી સામે છે. આવા ચર્ચામાં નૈયાયિકો તો કુશળ હોય જ. એટલે તેઓનું સાહિત્ય પણ તે વિષે ભિન્નવાવા લાગ્યું. દશમા સૈકા દરમ્યાન અભયદેવે સન્મતિતર્ક ઉપરની પોતાની ટીકામાં સ્વત –પરતઃ પ્રામાણ્યનો,

જે ચર્ચા કરી છે અને તેમાં મીમાંસક, બૌદ્ધ અને નૈયાયિકોના ગ્રન્થોનો આધાર લીધો છે, તે જોતાં તે વખતે આ વિષયમાં દાર્શનિક વિદ્વાનો કેટલો વધારે રસ લેતા તે જણાઈ આવે છે. દાર્શનિકશિરોમણિ વાચસ્પતિ મિશ્રની સર્વતોગામિની પ્રતિભામાંથી પસાર થયા બાદ ન્યાયાચાર્ય ઉદયન અને નવીનન્યાયના સૂત્રધાર ગંગેશ તથા તેના પુત્ર વર્ધમાનના હાથે આ વિષય ચર્ચાયો. તેથી તે વિષયનું સાહિત્ય ઘણું જ વધી ગયું; છતાં જે કાંઈ ઊણપ રહી હોય તે મીમાંસક પાર્થસારથિ મિશ્રની શાસ્ત્રદીપિકા અને વિદ્વાન વાદિદેવસૂરિના વિશાળકાય સ્યાદ્વાદરત્નાકરે પૂરી કરી. અત્યાર સુધીમાં સ્વત.–પરતઃના સાહિત્યનું એક મોટું મંદિર તૈયાર થયું હતું. તેના ઉપર તાર્કિક ગદાધર ભટ્ટાચાર્યે પ્રામાણ્યવાદ રચી કળશ ચઢાવ્યો, અને જૈન તાર્કિક યશોવિજય ઉપાધ્યાયે શાસ્ત્રવાર્તાસમુચ્ચય ઉપરની પોતાની ટીકામાં આ સાહિત્યમંદિરનો પ્રામાણિક ઉપયોગ કર્યો. આ રીતે અઢારમા સૈકા સુધીમાં પ્રસ્તુત વિષયને લગતું જેટલું સાહિત્ય ઉપલબ્ધ છે, તેનો વિચાર કરતાં જણાય છે કે મધ્યકાળમાં દાર્શનિક વિદ્વાનોની આ વિષયમાં રસવૃત્તિ ખૂબ વિકસી હતી એની પુષ્ટિમાં વિદ્યારણ્યવિરચિત શંકરદિગ્વિજયમાંથી મંડનમિશ્રનું ઘર પૂછતાં એક બાઈએ શંકરસ્વામીને આપેલો ઉત્તર ટાંકવો બસ થશે :

> स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति ।
> द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥
>
> स. ८, श्लो. ६

સ્વતઃ–પરતઃના દાર્શનિક પક્ષોનું વર્ગીકરણ

સ્વત. પ્રામાણ્ય માનનાર વર્ગમાં ફક્ત બે જ દર્શનો આવે છે: પૂર્વમીમાંસા અને ઉત્તરમીમાંસા. પરતઃ પ્રામાણ્ય માનનાર વર્ગમાં જૈન અને બૌદ્ધ દર્શન ઉપરાંત ચાર વૈદિક દર્શનો આવી જાય છે : ન્યાય, વૈશેષિક, સાંખ્ય અને યોગ.

ઉપપત્તિ

વેદ ઉપર થતા આક્ષેપનું સમાધાન અને શ્રુતિઓની પૂર્વાપર સંગતિ કરવાનું બુદ્ધિસાધ્ય કામ જૈમિનીયદર્શને લીધું, તેથી તેણે સ્વત પ્રમાણની ટૂંકી ને ટચ સરસ ઉપપત્તિ ઉપસ્થિત કરી. વેદાન્તદર્શનનું કાર્ય વ્યવસ્થિત થયેલ વેદમાંથી બ્રહ્મનું તાત્પર્ય બતાવવાનું હતું, તેથી તે જૈમિનીયદર્શનની સ્વત. પ્રમાણની કલ્પનાને ચર્ચા કર્યા સિવાય માની લે તે સ્વાભાવિક જ છે.

વેદના પ્રામાણ્યમાં વાંધો લેનાર જૈન અને બૌદ્ધ દર્શનને પરત. પ્રામાણ્યની બુદ્ધિગમ્ય કલ્પના રજૂ કર્યા સિવાય ન ચાલે તેથી તેઓનો તે પક્ષ પણ સહજ

જ થયો. ન્યાય અને વૈશેષિક દર્શનો તર્કપ્રધાન હોઈ બુદ્ધિગમ્ય તર્કનો વિરોધ ન જ કરી શકે, તેથી તેઓએ પરત. પ્રામાણ્યનો પક્ષ સ્વીકાર્યો, પણ તેમ છતાંયે ઈશ્વરને વચ્ચે લાવી વેદનું પ્રામાણ્ય સાચવ્યું. સાંખ્ય અને યોગ, એ આખા વિષયમા બહુધા ન્યાય અને વૈશેષિકને અનુસરતા હોવાથી તેઓને તેથી જુદા પાડી શકાતા નથી. આ રીતે દરેક દર્શનનો પક્ષ–ભેદ, પોતપોતાના સાધ્ય પ્રમાણે, સ્વતઃ–પરત.ની ચર્ચામાં યોગ્ય જ છે

બંને પક્ષકારોની મુખ્ય દલીલો અને તેનુ તાત્પર્ય

ઉત્પત્તિ : ઉત્પત્તિના વિષયમા સ્વતઃવાદીનુ મુખ્ય મંતવ્ય એ છે કે જ્ઞાન જે સામગ્રી (કારણસમૂહ) થી ઉત્પન્ન થાય છે, તે જ સામગ્રીથી જ્ઞાનમાં સત્યતા પણ આવે છે, અર્થાત્ જ્ઞાનની સત્યતા માટે જ્ઞાનોત્પાદક સામગ્રી ઉપરાંત અન્ય કોઈ પણ કારણની અપેક્ષા નથી આથી ઊલટું, જ્ઞાનની અસત્યતા માટે જ્ઞાનોત્પાદક સામગ્રી ઉપરાંત અન્ય કારણની અપેક્ષા રહે છે. તે અન્ય કારણ દોષરૂપ સમજવું. જેમ અપ્રામાણ્ય એ પોતાની ઉત્પત્તિમા જ્ઞાનોત્પાદક સામગ્રી ઉપરાંત દોષની અપેક્ષા રાખે છે, તેમ પ્રામાણ્ય કોઈ અધિક કારણની અપેક્ષા નથી રાખતું. તેથી જ જ્યારે જ્ઞાનોત્પાદક સામગ્રીમા દોષો ન હોય ત્યારે જ્ઞાન ઉત્પન્ન થવા સાથે જ પ્રામાણ્ય ઉત્પન્ન થાય છે અને તેથી તે સ્વતઃ ઉત્પન્ન કહેવાવું જોઈએ.

ઉત્પત્તિમાં પરત વાદીનુ કહેવું એમ છે કે જેવી રીતે અપ્રામાણ્ય એ પોતાની ઉત્પત્તિમાં દોષરૂપ અધિક કારણની અપેક્ષા રાખે છે, તેવી રીતે પ્રામાણ્ય પણ અધિક કારણની અપેક્ષા રાખે જ છે, આ કારણ તે ગુણરૂપ છે. જેમ જ્ઞાનોત્પાદક સામગ્રીમાં દોષ ન હોય તો તજ્જન્ય જ્ઞાનમાં અપ્રામાણ્ય ન આવી શકે, તેમ તેવી સામગ્રીમા ગુણ ન હોય તો તજ્જન્ય જ્ઞાનમાં પ્રામાણ્ય પણ ન આવી શકે દોષ, જે અપ્રામાણ્યનું ખાસ કારણ છે, તે જો ભાવરૂપ પદાર્થ હોઈ કારણકોટિમાં ગણી શકાય તો ગુણ પણ કારણકોટિમા ગણાવા યોગ્ય છે. ગુણને માત્ર દોષનો અભાવ કહીને તેનુ નિરાકરણ કરવું યોગ્ય નથી, કારણ કે, તેમ કરીએ તો તેથી ઊલટુ એમ પણ કહી શકાય કે દોષ, જે અપ્રામાણ્યનું ખાસ કારણ છે, તે પણ અભાવરૂપ કેમ ન હોય ? તેથી એમ જ માનવુ યોગ્ય છે કે ગુણ અને દોષ બન્ને સ્વતંત્ર છે, અને તેથી જ જો સામગ્રી સાથે ગુણ હોય તો પ્રામાણ્ય અને દોષ હોય તો અપ્રામાણ્ય આવે છે માટે જેમ અપ્રામાણ્ય ઉત્પત્તિમાં પરત તેમ પ્રામાણ્ય પણ ઉત્પત્તિમાં પરત મનાવું જોઈએ

મીમાંસકો દોષને ભાવરૂપ માની તાત્ત્વિક માને છે અને તેથી તેની કારણ કોટિમા ગણના કરે છે, પણ ગુણને તેઓ તાત્ત્વિક કે ભાવરૂપ ન માનતા માત્ર દોષાભાવરૂપ માને છે અને સાથે જ અભાવને તુચ્છરૂપ માની તેની કારણકોટિમાં ગણના કરતા નથી; જ્યારે નૈયાયિક વગેરે પરત:વાદીઓ ગુણને પણ દોષની પેઠે જ તાત્ત્વિક માની કારણકોટિમાં લે છે. તેઓ કહે છે કે જેમ સુખ-દુ.ખ એ બંને એકબીજાથી સ્વતંત્ર છે, નહિ કે એકબીજાના અભાવ-રૂપે—જોકે એકના સદ્ભાવમાં બીજાનો અભાવ હોય છે, પણ તેથી તે બને કાંઈ માત્ર અભાવરૂપ જ નથી—તેવી રીતે દોષ અને ગુણના સંબંધમા પણ સમજવું જોઈએ મીમાંસક મતનુ તાત્પર્ય એ છે કે દોષ એ માત્ર આગન્તુક છે, જો તે ન હોય તો સામગ્રીથી ઉત્પન્ન થતું જ્ઞાન સહજ રીતે જ શુદ્ધ જન્મે જ્યારે નૈયાયિક વગેરેના મતનું તાત્પર્ય એ છે કે દોષની પેઠે ગુણ પણ આગંતુક છે અને તેથી તે સામગ્રીમાં હોય તો જ પ્રામાણ્ય જન્મે જ્ઞાન ઉત્પન્ન થતી વખતે પ્રામાણ્ય અને અપ્રામાણ્ય એ બન્ને રૂપથી શૂન્ય હોતું નથી, કાં તો તે અપ્રામાણ્યયુક્ત ઉત્પન્ન થાય છે અને કા તો તે પ્રામાણ્યયુક્ત ઉત્પન્ન થાય છે હવે જો અપ્રામાણ્યયુક્ત ઉત્પન્ન થાય ત્યારે અપ્રામાણ્યને દોષાધીન માની પરત. માનીએ તો પ્રામાણ્યયુક્ત ઉત્પન્ન થાય ત્યારે પ્રામાણ્ય ગુણાધીન માની શા માટે પરત ન માનવું ? મીમાંસકો માત્ર એટલુ જ કહે છે કે પ્રામાણ્ય એ જ્ઞાનનું સાહજિક રૂપ છે જ્યારે જ્ઞાન જન્મે છે ત્યારે તેમાં પ્રામાણ્ય સ્વત સિદ્ધ હોય છે. માત્ર અપ્રામાણ્ય એ જ્ઞાનનું સાહજિક રૂપ નથી, તેથી જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયા પછી દોષને લઈ તેમા અપ્રામાણ્ય દાખલ થાય છે

જ્ઞપ્તિ : જ્ઞપ્તિમા સ્વત.વાદીઓનું કહેવુ છે કે જ્યારે જ્ઞાન ભાસિત થાય છે ત્યારે તેનું પ્રામાણ્ય પણ સાથે જ ભાસિત થઈ જાય છે. જ્ઞાન અને તેના પ્રામાણ્યનો ભાસ ભિન્ન ભિન્ન બુદ્ધિમા થતો નથી, તેમ માનવું જોઈએ જો ભિન્ન ભિન્ન બુદ્ધિથી ભાસ માનવામા આવે તો અનવસ્થા થાય. તે એવી રીતે કે કોઈ પણ વિષયનું જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયુ અને તે વિદિત પણ થયું, છતા તેનુ પ્રામાણ્ય તો બીજા સવાદક જ્ઞાનથી કે અર્થક્રિયાજ્ઞાનથી માનવુ પડે. હવે જે જ્ઞાનને પ્રામાણ્યગ્રાહક માનીએ તે પણ જો સ્વરૂપે નિશ્ચિત ન થયુ હોય તો પૂર્વજ્ઞાનનુ પ્રામાણ્ય શી રીતે નિશ્ચિત કરી શકે ? જે પોતે જ અનિશ્ચિત હોય તે બીજાનો નિશ્ચય ન કરી શકે આથી પ્રામાણ્યગ્રાહકરૂપે માની લીધેલ બીજા જ્ઞાનનું પ્રામાણ્ય નિશ્ચિત કરવા ત્રીજુ જ્ઞાન અને તેનુ પ્રામાણ્ય નિશ્ચિત

કરવા ચોથું જ્ઞાન એમ અનુક્રમે કલ્પના વધતાં અનવસ્થામાં જ પરિણામ પામે. તેથી એમ જ માનવું યોગ્ય છે કે કોઈ પણ વિષયનું જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયા પછી જ્યારે પ્રકાશિત થાય છે ત્યારે તેની સાથે જ તેનું પ્રામાણ્ય પણ પ્રકાશિત થઈ જાય છે.

આ વિષયમાં પરત વાદીનું કહેવું છે કે જેમ અપ્રામાણ્ય પરતોગ્રાહ્ય છે, તેમ પ્રામાણ્ય પણ પરતોગ્રાહ્ય માનવું જોઈએ કોઈ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયું અને તે મિથ્યા હોય તો તેનું અયથાર્થત્વ કાંઈ તે જ વખતે જણાતું નથી, પણ કાં તો વિસંવાદ થવાથી કે પ્રવૃત્તિ નિષ્ફળ જવાથી કાલાન્તરે તેનું અયથાર્થત્વ માલૂમ પડે છે તેવી રીતે યથાર્થત્વના સંબંધમાં પણ માનવું જોઈએ. જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયું અને તે ભાસિત પણ થયું, છતાં તેનું યથાર્થત્વ સંવાદ અગર પ્રવૃત્તિસાફલ્યથી જણાવાનું આમ માનતાં અનવસ્થા થવાનો ભય રાખવાનું કારણ નથી, કારણ કે મનુષ્યની જિજ્ઞાસા પરિમિત હોવાથી બેત્રણ ઉપરાઉપર થતાં જ્ઞાનના પ્રામાણ્ય સુધી તે લંબાય ખરી, પણ એમ ને એમ તે જિજ્ઞાસા પ્રામાણ્ય ન વિષયમાં જ બની રહે એમ બનતું નથી. બીજી વાત એ છે કે જો પ્રામાણ્યને જ્ઞાનના નિર્ણય સાથે જ નિર્ણીત માની લેવામાં આવે તો જે વિષયને વારંવાર જોવાનો અભ્યાસ ન હોય તે વિષયનું જ્ઞાન થતાં તેના પ્રામાણ્ય માટે જે સંદેહ થાય છે તે સંભવી ન શકે, કારણ કે જ્ઞાન થયું કે તેનું પ્રામાણ્ય નિર્ણીત થઈ જ ગયું, પછી મારું આ જ્ઞાન સત્ય છે કે અસત્ય એવા સંદેહને અવકાશ જ ન રહે તેથી પ્રામાણ્યને અપ્રામાણ્યની પેઠે પરતોજ્ઞેય માનવું યોગ્ય છે.

સ્વત વાદીનું વલણ પ્રત્યેક જ્ઞાનમાં એક સામાન્ય નિયમ માની લેવા તરફ છે. તેથી તે કહે છે કે પરત-પક્ષમાં આવી પડતી અનવસ્થા દૂર કરવા જો પરતવાદીને કોઈ પણ જ્ઞાન સ્વનિર્ણીત માનવું પડે તો પછી તે જ રીતે પ્રથમનાં બધાં જ્ઞાનોનું પ્રામાણ્ય સ્વતોજ્ઞેય શા માટે ન માનવું? અનભ્યાસદશાનો પક્ષ અભ્યાસદશાના અનુભવને આશરીને છે. તેથી તે કહે છે કે જે વિષય જોવા જાણવાનો બહુ પરિચય હોય તે વિષયનું જ્ઞાન થતાં તેના પ્રામાણ્ય માટે કોઈ ને કદી સંદેહ થતો નથી. તેથી સમજાય છે કે પરિચિત વિષયના જ્ઞાનનું પ્રામાણ્ય જ્ઞાન સાથે જ નિર્ણીત થઈ જાય છે હવે જ્ઞાનનું સ્વરૂપ તો એક જ પ્રકારનું હોય તો તેથી અભ્યાસ કે અનભ્યાસવાળા દરેક સ્થળોનાં જ્ઞાનના પ્રામાણ્યના સંબંધમાં એક જ નિયમ માની લેવો ઘટે છે. [illegible]

ગુજરાતી ભાષામાં દાર્શનિક તત્ત્વજ્ઞાન

[૪]

ભારતની જ્ઞાનસમૃદ્ધિ બહુ જૂના વખતથી જાણીતી છે અને અપાર છે તે અનેક જાતની છે. એ જ્ઞાનસમૃદ્ધિની અનેક શાખાઓમાં એક જ શાખા આ વિદ્યાના અભ્યુત્થાનકાળમાં હજુ પણ એવી રહી છે કે જેની બાબતમાં પશ્ચિમીય વિચારકોની દૃષ્ટિ પણ ભારત તરફ રહે છે. એ શાખા તે દાર્શનિક વિદ્યાની શાખા

ભારતીય દર્શનવિદ્યાની ત્રણ પ્રધાન શાખાઓમા વૈદિક શાખા લઈએ, અને તેના પહેલેથી ઠેઠ સુધીના સાહિત્યની રચનાના પ્રદેશો તરફ નજર ફેંકીએ તો આપણને જણાશે કે વૈદિક દર્શનસાહિત્યની રચનામાં ગુજરાતનો ફાળો પહેલેથી આજ સુધી નથી જ, વેદો, ઉપનિષદો, સૂત્રો, ભાષ્યો, ટીકાઓ અને પ્રકરણ ગ્રંથો કે ક્રોડપત્રો—એ બધાની રચનામાં પંજાબ, બ્રહ્માવર્ત, કાશી, મિથિલા, દક્ષિણ, બંગાળ અને કાશ્મીર જનપદ વગેરેનો હિસ્સો છે, પણ એકાદ સદિગ્ધ અપવાદને બાદ કરીએ તો એ રચનાઓમા ગુજરાતનો ફાળો નજરે નથી જ પડતો.

બૌદ્ધ પિટકોનો ઉદ્દ્ગમ તો મગધમાં થયો. એનુ સસ્કૃત સંસ્કરણ અને પછીનું દાર્શનિક સાહિત્ય હિન્દુસ્તાનના બધા ભાગોમા જન્મ્યુ. ગુજરાતમાં જન્મેલું બૌદ્ધ સાહિત્ય કયું અને કેટલું છે એનો સ્પષ્ટ નિર્ણય કરવો અત્યારે કઠણ છે, છતાં એમા જરાયે શંકા નથી કે સાતમા સૈકા પહેલાં અને ત્યાં સુધીના જે મોટા મોટા બૌદ્ધ મઠોમાં ગુણમતિ, સ્થિરમતિ જેવા અસાધારણ વિદ્વાન ભિક્ષુકો રહેતા હતા અને ભણાવતા ત્યાં બૌદ્ધ સાહિત્ય અવશ્ય રચાયુ હતુ. બોધિચર્યાવતાર જેવા વિશિષ્ટ ગ્રંથની રચના કાઠિયાવાડમા (સૌરાષ્ટ્રમાં) જ થયાનું કલ્પાય છે.

આવી સ્થિતિ છતા ગુજરાતને શરમાવા કે સંકોચાવા જેવુ કશું જ નથી. તેનુ કારણ એ છે કે તેણે જૈન દાર્શનિક સાહિત્યની રચનામાં મોટામા મોટો ફાળો આપ્યો છે. આપણે જાણીએ છીએ કે મૂળમા તો જૈન દર્શનનુ સાહિત્ય બૌદ્ધ દર્શનના સાહિત્યની પેઠે મગધમાં જ જન્મ પામેલુ, પણ પછીના

કાળમા તેની રચના દક્ષિણ અને ઉત્તર હિન્દુસ્થાનમા થતી ગઈ અને છેલ્લાં પંદરસો વર્ષનો ઇતિહાસ સ્પષ્ટ કહે છે કે જૈન દર્શનના પ્રધાનતમ સાહિત્યની રચના, તેની પુરવણી અને તેનો વિકાસ એ બધું ગુજરાતમા જ થયુ છે. ગુજરાતે માત્ર જૈન દર્શનના સાહિત્યને જન્માવી કે વિકસાવીને જ સતોષ નથી માન્યો, પણ એણે તો પોતાની ખોળીમા જુદા જુદા પ્રાતોમાં જન્મેલા અને ઊછરેલા કીમતી સાહિત્યને બહુ કાળજીથી સંભાળી રાખ્યું છે અને તેથી જ કેટલાયે અપૂર્વ અને દુર્લભ ગ્રથો તો એકમાત્ર ગુજરાતના ખૂણેખાંચરેથી જ અત્યારે પણ જડી આવે છે

દર્શન સાહિત્યને ઉત્પન્ન કરવાની, રક્ષવાની અને સાચવવાની ગૌરવ ગાથા ટૂકમા આટલી જ છે, પણ એ સાહિત્ય એટલે પ્રાકૃત, પાલિ અને સંસ્કૃત ભાષામા લખાયેલુ સાહિત્ય એટલુ જ જ્યારથી ઉક્ત ભાષાઓ બોલચાલમાથી લોપ પામી અને વિદ્વાનોના પઠન-પાઠનની જ ભાષા રહી, માત્ર શાસ્ત્રીય ભાષા તરીકે જ એનો ઉપયોગ રહ્યો અને એ ભાષાઓમા વસ્તુ વિચારવાનો પ્રઘાત ઓછો થઈ ગયો અને તેની જગ્યાએ તેની બીજી લોકભાષારૂપ પુત્રીઓ આવી, એટલે કે ભાષાયુગ શરૂ થયો, ત્યારથી એ લોકભાષાઓમા દર્શન-સાહિત્ય કેટલુ ગુજરાતમા રચાયુ છે અગર તો સંસ્કૃત આદિમા પ્રથમ રચાયેલ દર્શન-સાહિત્યને ગુજરાતે પોતાની ચાલુ ભાષામા કેટલું ઉતાર્યું છે એ પ્રશ્ન ઉપસ્થિત થાય છે. બૌદ્ધ સપ્રદાય તો ક્યારનોય લોપ પામેલો હોવાથી માત્ર ગુજરાતમાં જ નહિ પણ અન્ય પ્રાંતોમા સુધ્ધા તેના સાહિત્યની લોકભાષાઓમા રચના થાય એની શક્યતા જ રહી ન હતી પણ જાગતા અને ચોમેર પથરાયેલા વૈદિક સપ્રદાયના દાર્શનિક સાહિત્ય વિશે પણ ગુજરાતનો લોકભાષામા ફાળો તદ્દન સાધારણ જ ગણાય નરસિંહ મહેતા, મીરાબાઈ, દાદુ, અખો કે સ્વામીનારાયણ સંપ્રદાયના કેટલાક સાધુઓ વગેરે, જેઓ મુખ્યપણે ભક્ત જ હતા, તેમણે પોતાની ભક્તિની અજબ ધૂનમા પ્રસંગવશ જે તાત્ત્વિક વિચારો લોકભાષામા મૂક્યા છે તેને બાદ કરીએ તો ગુજરાતમા લખાયેલો સંગીન અને વ્યવસ્થિત વૈદિક તત્ત્વજ્ઞાનનો ગ્રન્થ આપણે ભાગ્યે જ મેળવી શકીશુ જૈનોની [illegible] ગુજરાતમા ઘણા લાબા કાળથી ચાલી આવે છે ને સંપ્રદાયના ત્યાગીઓ પણ સેંકડોની સંખ્યામા ગુજરાતમા પહેલેથી જ થતા અને [illegible] છે. તેમણે નવી નવી કૃતિઓથી જ્ઞાનભંડાર ભર્યા [illegible] તે તે સમયની ચાલુ ગુજરાતી ભાષામા [illegible] તત્ત્વજ્ઞાનના [illegible] સંસ્કૃત-પ્રાકૃત ભાષાની પેઠે લોકભાષાનો જ [illegible]

ભાગ્યે જ કહી શકાય. એ ચાર અપવાદભૂત કર્તાઓને બાદ કરીએ તો બધા લેખકોની મુખ્ય પ્રવૃત્તિ ભાષાયુગમાં પણ સંસ્કૃત અને પ્રાકૃત ભાષા તરફ જ રહી છે લોકો ઉપર શાસ્ત્રીય ભાષાઓનો પ્રભાવ અને પ્રતિષ્ઠા એટલાં બધાં પડેલા અને જામી ગયેલાં કે તે જ ભાષાઓમા લખનાર તેઓની દૃષ્ટિમા વિદ્વાન ગણાતા અને તેથી જ લેખકો જાણે-અજાણે પ્રચલિત લોકભાષા છોડી શાસ્ત્રીય ભાષાઓમા લખવા પ્રેરાતા આના ઇષ્ટ કરતા અનિષ્ટ પરિણામો વધારે આવ્યા છે સંસ્કૃત અને પ્રાકૃત ભાષાની સાચવણી અને ખીલવણી ઇષ્ટ પરિણામમા ગણીએ તોપણ અનિષ્ટનુ પલ્લુ ભારે જ રહે છે, એ વાત નીચેના મુદ્દાઓ સમજનાર કબૂલ્યા વિના નહિ રહે

(क) માતૃભાષા અને બોલચાલની ભાષામા જ કરાતો વિચાર ઊંડો, વ્યાપક અને સ્ફુટ હોઈ શકે એ સિદ્ધાત પ્રમાણે વિચાર એક ભાષામા અને લખવાનુ બીજી ભાષામાં હોવાથી વિચાર અને લેખન વચ્ચે અસામંજસ્ય.

(ख) શાસ્ત્રીય ભાષાઓમાં વિચારો લખવાથી સાધારણ લોકોમા તેની બહુ જ ઓછી પહોંચ અને જે થોડોઘણો પ્રવેશ થાય તે પણ સક્લિષ્ટ અને પાંગળો. જે લોકો શાસ્ત્રીય ભાષા ન જાણવા છતા પ્રતિભાશીલ અને જિજ્ઞાસુ હોય તેવા વિચારકો તરફથી તત્ત્વજ્ઞાનના વિકાસમા ઓછામાં ઓછો ફાળો અને તેટલા જ પ્રમાણમા લોકભાષાની ઓછામા ઓછી ખીલવણી. પરિણામે તત્ત્વજ્ઞાન અને ચાલુ ભાષામાં જીવતપણું ઓછુ, નવનવાપણું ઓછુ અને જૂના વારસા ઉપર નભવાપણુ ઘણુ

વર્તમાન સમયનો વિચાર કરીએ તો તો પહેલા તે વિચારની પોષક ભૂમિકા ટૂંકામા વિચારી જઈએ, અને તે માટે માત્ર કેટલાક મુદ્દાઓ પ્રશ્નરૂપમાં જ પહેલા મૂકી દઈએ ·

(क) જીવનમા તત્ત્વજ્ઞાનને લગતા વિચારોનુ સ્થાન છે કે નહિ ? મનુષ્ય-વૃત્તિ સ્વાભાવિક રીતે જ તત્ત્વજ્ઞાનના પ્રદેશ તરફ ઢળે છે કે નહિ ? તત્ત્વજ્ઞાન મેળવવાની તક તે શોધે છે કે નહિ ? અને સરળ રીતે પ્રાપ્ત થઈ હોય તો તેને તે પસંદ કરે છે કે નહિ ?

(ख) માત્ર પુરુષવર્ગ અને તેમાયે માત્ર શિક્ષિતવર્ગ જ તત્ત્વજ્ઞાનમાં રસ લે છે કે સ્ત્રીવર્ગ અને બીજા સાધારણ કોટિના દરેક જણ તત્ત્વજ્ઞાનને સમજવાના અધિકારી હોય છે અને તેઓ પણ તે બાબતમા રસ લે છે ?

(ग) વિદેશી ભાષા શાસ્ત્રીય ભાષા અને પરપ્રાંતની ભાષામાં ગૂથાયેલ

વિચારો સમજવા અને તેને પચાવવા એ સહજ છે કે માતૃભાષામાં મુકાયેલા વિચારો અને તે મારફત મળતુ જ્ઞાન સમજવું અને જીવનમાં ઉતારવું સહજ છે ?

(ઘ) ખાસ વિશિષ્ટ વર્ગ જ અને તેમાયે બહુ ઉચ્ચ કેળવણી પામેલા વિવિધ ભાષાના અભ્યાસીઓ જ તત્ત્વજ્ઞાન વિશે વિચાર કરી શકે અને નવ-નવા પ્રશ્નો ઉપર પોતાના વિચારો જણાવી શકે તેમ જ તેનો વિકાસ કરી શકે કે અનેક ભાષાઓ ન જાણનાર અને માત્ર માતૃભાષામાં બોલનાર માણસોમા પણ એની પ્રતિભા સંભવે ખરી કે જેથી વિશિષ્ટ વિદ્વાનો જેટલો જ તેઓ વિચારમાં નવો ફાળો આપી શકે ?

(ङ) ચાલુ ભાષાની ભૂમિકાના તત્ત્વજ્ઞાનમાં વિચારોનુ ખેડાણ અને ફેલાવો થવાથી ભાષાસમૃદ્ધિ અને તેનું સામર્થ્ય વધે છે કે નહિ અને જ્ઞાનની બધી શાખાઓને વિશેષ વ્યાપક બનાવવા એવી ભાષાની સમૃદ્ધિ તથા શક્તિ જરૂરના છે કે નહિ ?

ઉપરના બધા અસ્તિ-નાસ્તિરૂપ પ્રશ્નોનો ઉત્તર હામા જ આવતો હોય અને ઉભય પક્ષરૂપ પ્રશ્નનો ઉત્તર બીજા પક્ષના સ્વીકારમા જ આવતો હોય, તો એમ સ્વીકાર્યા સિવાય કદી ચાલી જ નહિ શકે કે ગુજરાતી ભાષામા બીજી જ્ઞાનશાખાઓની પેઠે તત્ત્વજ્ઞાનની શાખાને ખૂબ ખેડવી ઘટે જોઈએ કે એ શાખાને ગુજરાતી ભાષામા ખેડવી એટલે શુ ? અને ત્યાર પછી આપણે જોશુ કે આ શાખા વર્તમાન ગુજરાતી ભાષામા કેટલી ખેડાઈ છે, એટલે આપણું કર્તવ્ય સ્પષ્ટ થઈ જશે

(૧) હજારો વર્ષના તપ અને ચિંતનને પરિણામે આપણા પૂર્વજ ઋષિઓ અને વિદ્વાનોએ જે તત્ત્વજ્ઞાનના પ્રદેશમા અનેકવિધ અને અનેક ભાષાઓમા આપણને વારસો આપ્યો છે તે સમગ્ર વારસો સરળ અને [illegible] ગુજરાતી ભાષામા યથાર્થપણે ઉતારવો અને મૂળ પારિભાષિક શબ્દોની સ્પષ્ટ વ્યાખ્યા આપી તે શબ્દો માતૃભાષામા સહજ અને સુબોધ રીતે મૂકવા.

(૨) પ્રાચીન તત્ત્વજ્ઞાનના મહત્ત્વપૂર્ણ ગ્રંથોના પ્રામાણિક અનુવાદ અને સંશોધન ઉપરાંત તેના સારભૂત ટૂંકા મનનીય નિબંધો ગુજરાતીમા લખવા, જેમાં વિવેચકદૃષ્ટિ અને તુલનાદૃષ્ટિ [illegible]

(૩) [illegible] તત્ત્વજ્ઞાનના [illegible]

ઇતિહાસ ગુજરાતીમાં તૈયાર કરવો અને તેવી જ રીતે તત્ત્વજ્ઞાનના પ્રદેશમાં થયેલા વિશિષ્ટ વિદ્વાનોનાં પ્રામાણિક જીવનો આલેખવાં.

(૪) ભારતીય તત્ત્વજ્ઞાનમાં મુખ્યપણે કેટલા વિષયો સ્પર્શાયેલા છે અને એક એક વિષયને અંગે બીજા ઉપવિષયો કેટકેટલા છે તેની નોંધ કરી પ્રત્યેક વિષય પરત્વે તત્ત્વજ્ઞાનની બધી શાખાઓ શું શું માન્યતા ધરાવે છે તેનો તુલનાત્મક ઇતિહાસ ગુજરાતીમાં ઉતારવો.

(૫) ભારત બહારના પ્રદેશોમા પહેલેથી અત્યાર સુધી તત્ત્વજ્ઞાન વિશે જે જે ચિંતનો થયાં હોય તેમાંથી મહત્ત્વપૂર્ણ ભાગ સ્વરૂપ, તુલના અને ઇતિહાસરૂપે શુદ્ધ અને સરળ ગુજરાતીમા ઉતારવો અને એ રીતે ભારતીય તત્ત્વજ્ઞાનને ઇતર દેશના એવા વિચારો સાથે સરખાવવાનો માર્ગ સરળ કરી મૂકવો

(૬) જે વિષયો ભારતીય તત્ત્વજ્ઞાનમા આવ્યા ન હોય અથવા ઓછા ચર્ચાયા હોય અથવા તો અસ્પષ્ટ ચર્ચાયા હોય અને પશ્ચિમી તત્ત્વજ્ઞોએ એનો વિચાર ઊંડો તેમ જ સ્પષ્ટ કર્યો હોય તો તેવા વિષયોની યાદી કરી તે દરેક વિષય પરત્વે જે જે ઇતર દેશોમા લખાયું હોય તે યથાર્થપણે ગુજરાતીમાં ઉતારવુ, જેથી આપણો વારસો વધારે સમૃદ્ધ કરવાની સગવડ મળે

(૭) ભિન્ન ભિન્ન કક્ષાના અભ્યાસીઓ માટે સપૂર્ણ માહિતીવાળી પ્રસ્તુત વિષયક ચોપડીઓ તૈયાર કરવી

ઉપર જે મહાન કાર્યો બતાવવામા આવ્યા છે તેને ટૂંકમા તત્ત્વજ્ઞાનનુ ખેડાણ કહી શકાય. હવે જો આ ખેડાણ આવશ્યક હોય અને ભાવિ વિશાળ ખેડાણ માટે ખાસ જરૂરનુ હોય તો હવે એ જોવુ પ્રાપ્ત થાય છે કે આપણી ચાલુ ગુજરાતી ભાષામા ખેડાણ કેટલુ થયેલુ છે

પહેલુ બૌદ્ધ તત્ત્વજ્ઞાન લઈએ અધ્યાપક કોસાંબીજીના નાના નાનાં બેત્રણ પુસ્તકો બાદ કરીએ તો તે સપ્રદાયનું ગુજરાતી સાહિત્ય કશુ જ નથી, જ્યારે એ સપ્રદાયનું પ્રાચીન સાહિત્ય ઘણુ અગત્યનું અને વિશાળ છે જૈન સંપ્રદાયના તત્ત્વજ્ઞાનવિષયક સર્વસ્પર્શી ગ્રન્થો તો ગુજરાતીમા નથી જ. જૂની ગુજરાતીમાં એ સંપ્રદાયના મૂળ આગમો ઉપરના ગ્રથો છે, જે આજે કાર્યસાધક નથી ચાલુ જમાનાની વિકસિત ભાષામાં થયેલા એ સપ્રદાયના આગમાનુવાદો માત્ર ગણ્યાગાંઠ્યા છે જૂની ગુજરાતીમા લખાયેલા કેટલાક મહત્ત્વપૂર્ણ તત્ત્વજ્ઞાનના ગ્રથો છે, તે પણ પદ્ધતિસર ચાલુ ગુજરાતીમા તૈયાર થયેલા નથી.

એટલે એકંદર ગુજરાતી મારફત જૈન તત્ત્વજ્ઞાનનો વિશાળ અભ્યાસ કરવા ઇચ્છનારને કશી જ પૂર્ણ સગવડ નથી એમ કહી શકાય. વૈદિક સંપ્રદાયના સ્થૂળ રીતે છ અને વિસ્તારથી જોતાં તેથીયે વધારે દર્શનો છે એમાંનાં ઘણાંખરાં દર્શનો ઉપર તો અપાર અને ગંભીર સાહિત્ય લખાયેલું છે તે જોતાં માત્ર યોગ કે સાંખ્યદર્શનના થયેલા ગુજરાતી અનુવાદો એ તદ્દન અપૂર્ણ ગણાય. વેદાંતદર્શનના ત્રણ ભાષ્યોના અનુવાદો છે પણ વૈદિક બધાં દર્શનોના મહત્ત્વપૂર્ણ ગ્રંથો તો ગુજરાતીમાં અસ્પૃશ્ય જ રહ્યા છે. નિબંધ આદિમાં આચાર્ય ધ્રુવના "આપણો ધર્મ" નામક પુસ્તકમાં જે ટૂંકા ટૂંકા લેખો છે તે સિવાય બીજા કોઈએ કશું જ લખ્યું નથી. ઉપનિષદોની દિશામાં ગ. નર્મદાશંકર મહેતાનો પ્રયત્ન ખૂબ પ્રશંસનીય છે, પણ હજી એમાં ઘણું કરવાનું બાકી રહી જાય છે. પાઠ્યપુસ્તકોમાં આચાર્ય ધ્રુવની ત્રણ ચોપડીઓ સિવાય કશું જ નથી. એટલે એકંદર રીતે જોતાં ગુજરાતી ભાષામાં તત્ત્વજ્ઞાન-વિષયક સાહિત્ય જેટલું અને જેવું વિકસવું જોઈએ તેનો અલ્પાંશ પણ આજે નથી.

વિદ્વાનો પાસે આર્યસાહિત્યના તરજુમાઓ અરબી, ફારસી અને ઉર્દૂ ભાષામાં કરાવ્યા. તિબેટવાસીઓએ પણ એ જ કર્યું અને છેલ્લે જોઈએ તો જર્મન, ફ્રેન્ચ અને અંગ્રેજી ભાષાના વિશિષ્ટ વિદ્વાનોએ પોતપોતાના દેશની જ્ઞાનસમૃદ્ધિ વધારવા તેમ જ લોકોના માનસ અને અભ્યાસને ઊંચા ધોરણ ઉપર મૂકવા દુનિયાના બધા ભાગમાંથી બને તેટલું વધારેમાં વધારે સાહિત્ય અનેકરૂપે પોતપોતાની ભાષામાં ઉતાર્યું. સંસ્કૃત, પ્રાકૃત અને પાલિ ભાષાનો જ પારંપરિક વારસો ભોગવનાર આપણે અંગ્રેજી, ફ્રેન્ચ કે જર્મન ભાષા તરફ જોવું પડે છે એક વાર બાળક માને ધાવવું છોડે અને તેના ખોળામાં ખેલવાનો નિર્વ્યાજ આનંદ જતો કરે ત્યારે તેની પરમાતાના હાથે એના ખોળામાં જે વલે સંભવે તે વલે સાહિત્યની બાબતમાં આપણી છે તેથી જેઓ તત્ત્વજ્ઞાનના વિચારોને ઉચ્ચ ભૂમિકા ઉપર લઈ જવા ઇચ્છતા હોય, તેનો ફેલાવો ઇચ્છતા હોય, તેમની ફરજ છે કે તેમણે એ બધું જ્ઞાન વ્યવસ્થિત રીતે માતૃભાષામાં આવે એવો પ્રયત્ન કરવો

દક્ષિણી, બંગાળી અને હિંદી ભાષામાં આ માટે પ્રયત્નો થઈ રહેલા છે, અને કેટલેક અંશે તો તેઓ આપણા કરતાં આગળ વધ્યા છે ગુજરાતી ભાષાની ક્ષમતા બીજી એકે ભાષા કરતાં ઓછી નથી, ઊલટું, તેની વિચાર કરવાની અને તેને વ્યક્ત કરવાની શક્તિ પ્રમાણમાં વધારે છે સંસ્કૃત અને પ્રાકૃતનો તેને સાથ છે, ફારસી, ઉર્દૂ, અંગ્રેજી આદિનો પણ તેને સહયોગ છે એવી સ્થિતિમાં તે ભાષાના સાહિત્યને તત્ત્વજ્ઞાનના ગુલાબી ફૂલની સૌરભથી સુવાસિત કરી મૂકવું એ એક જ ઋષિઋણ, દેશઋણ કે સમયઋણ આપણા ઉપર બાકી રહે છે. એને ન ફેડનાર કે ફેડવામાં મંદ ઉત્સાહ રાખનાર પોતાને સાહિત્યસેવી કહે તો એ સાહિત્યનો દ્રોહ જ કરે છે, એમ સત્ય કહેવરાવે છે *

—પ્રસ્થાન, મહા ૧૯૮૫

* નવમી ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદમાં આપેલો નિબંધ

મનુષ્યજાતિ જ્યારે કુદરતને ખોળે આવી અને તેણે પ્રથમ બાહ્ય વિશ્વ તરફ આંખ ખોલી ત્યારે તેની સામે અદ્દ્ભુત અને ચમત્કારી વસ્તુઓ તેમ જ બનાવો ઉપસ્થિત થયા એક બાજુ સૂર્ય, ચંદ્ર અને અગણિત તારામંડળ અને બીજી બાજુ સમુદ્ર, પર્વત અને વિશાળ નદીપ્રવાહો તેમ જ મેઘગર્જનાઓ અને વિદ્યુત્ચમત્કારોએ તેનું ધ્યાન ખેંચ્યું. મનુષ્યનું માનસ આ બધા સ્થૂલ પદાર્થોના સૂક્ષ્મ ચિંતનમા પ્રવૃત્ત થયુ અને તેને એ વિશે અનેક પ્રશ્નો ઉદ્દ્ભવ્યા. જેમ મનુષ્યમાનસને બાહ્ય વિશ્વના ગૂઢ તેમ જ અતિસૂક્ષ્મ સ્વરૂપ વિશે અને તેના સામાન્ય નિયમો વિશે વિવિધ પ્રશ્નો ઉદ્દ્ભવ્યા, તેમ તેને આંતરિક વિશ્વના ગૂઢ અને અતિસૂક્ષ્મ સ્વરૂપ વિશે પણ વિવિધ પ્રશ્નો ઉદ્દ્ભવ્યા આ પ્રશ્નોની ઉત્પત્તિ તે જ તત્ત્વજ્ઞાનની ઉત્પત્તિનું પ્રથમ પગથિયુ એ પ્રશ્નો ગમે તેટલા હોય અને કાળક્રમે તેમાંથી બીજા મુખ્ય અને ઉપપ્રશ્નો પણ ગમે તેટલા જન્મ્યા હોય, છતાં એકંદર આ બધા પ્રશ્નોને ટૂંકમાં નીચે પ્રમાણે દર્શાવી શકાય

તાત્ત્વિક પ્રશ્નો

દેખીતી રીતે સતત પરિવર્તન પામતું આ બાહ્ય વિશ્વ ક્યારે ઉત્પન્ન થયુ હશે? શેમાંથી ઉત્પન્ન થયુ હશે? પોતાની મેળે જ ઉત્પન્ન થયુ હશે કે કોઈએ ઉત્પન્ન કર્યું હશે? અને ઉત્પન્ન થયુ ન હોય તો શુ આ વિશ્વ એમ જ હતું અને છે? જો તેના કારણો હોય તો તે પોતે પરિવર્તન વિનાનાં શાશ્વત જ હોવાં જોઈએ કે પરિવર્તનશીલ હોવા જોઈએ? વળી એ કારણો કોઈ જુદી જુદી જાતનાં જ હશે કે આખા બાહ્ય વિશ્વનું કારણ માત્ર એકરૂપ જ હશે? આ વિશ્વની વ્યવસ્થિત અને નિયમબદ્ધ જે સચાલના અને રચના દેખાય છે તે બુદ્ધિપૂર્વક હોવી જોઈએ કે યત્રવત્ અનાદિસિદ્ધ હોવી જોઈએ? જો બુદ્ધિપૂર્વક વિશ્વવ્યવસ્થા હોય તો તે કોની બુદ્ધિને આભારી છે? શું એ બુદ્ધિમાન તત્ત્વ પોતે તટસ્થ રહી વિશ્વનુ નિયમન કરે છે કે એ પોતે જ વિશ્વરૂપે પરિણમે છે અથવા દેખાય છે?

ઉપરની રીતે આતરિક વિશ્વના સબંધમાં પણ પ્રશ્નો થયા કે જે આ બાહ્ય વિશ્વનો ઉપભોગ કરે છે યા જે બાહ્ય વિશ્વ વિશે અને પોતા વિશે વિચાર કરે છે તે તત્ત્વ શું છે? શુ એ અહરૂપે ભાસતુ તત્ત્વ બાહ્ય વિશ્વના જેવી જ પ્રકૃતિનુ છે કે કોઈ જુદા સ્વભાવનુ છે? આ આતરિક તત્ત્વ અનાદિ છે કે તે પણ ક્યારેક કોઈ અન્ય કારણમાથી ઉત્પન્ન થયુ છે? વળી અહંરૂપે ભાસતા અનેક તત્ત્વો વસ્તુત. જુદા જ છે કે કોઈ એક મૂળ તત્ત્વની નિર્મિતિઓ છે? આ બધાં સજીવ તત્ત્વો ખરી રીતે જુદા જ હોય તો તે

પરિવર્તનશીલ છે કે માત્ર કૂટસ્થ છે? એ તત્ત્વોનો કદી અંત આવવાનો કે કાળની દૃષ્ટિએ અંતરહિત જ છે? એ જ રીતે આ બધા દેહમર્યાદિત તત્ત્વો ખરી રીતે દેશની દૃષ્ટિએ વ્યાપક છે કે પરિમિત છે?

આ અને આના જેવા બીજા ઘણા પ્રશ્નો તત્ત્વચિંતનના પ્રદેશમાં ઉપસ્થિત થયા. આ બધા પ્રશ્નોનો કે તેમાંના કેટલાકનો ઉત્તર આપણે જુદી જુદી પ્રજાઓના તાત્ત્વિક ચિંતનના ઇતિહાસમાં અનેક રીતે જોઈએ છીએ. ગ્રીક વિચારકોએ બહુ જૂના વખતથી આ પ્રશ્નોને છણવા માંડેલા. એમનું ચિંતન અનેક રીતે વિકાસ પામ્યું, જે પાશ્ચાત્ય તત્ત્વજ્ઞાનમાં ખાસ મહત્ત્વનો ભાગ રોકે છે. આર્યાવર્તના વિચારકોએ તો ગ્રીક ચિંતકો પહેલાં હજારો વર્ષ અગાઉથી આ પ્રશ્નોના ઉત્તર મેળવવા વિવિધ પ્રયત્નો કરેલા, જેનો ઇતિહાસ આપણી સામે સ્પષ્ટ છે.

ઉત્તરોનું સંક્ષિપ્ત વર્ગીકરણ

આર્ય વિચારકોએ એક એક પ્રશ્ન પરત્વે આપેલા જુદા જુદા ઉત્તરો અને તે વિશે પણ મતભેદની શાખાઓ અપાર છે. પણ આપણે રીતે સ્પષ્ટ ટૂંકમાં એ ઉત્તરોનું વર્ગીકરણ કરીએ તો આ પ્રમાણે કરી શકાય —

છે. નથી તે કોઈનું પરિણામ કે નથી તે કોઈ કારણમાંથી ઉત્પન્ન થયેલું જેમ તે આત્મતત્ત્વ અનાદિ છે તેમ દેશ અને કાળ એ બન્ને દૃષ્ટિએ તે અનંત પણ છે, અને તે આત્મતત્ત્વ દેહભેદે ભિન્ન ભિન્ન છે, વાસ્તવિક રીતે તે એક નથી

ત્રીજો વિચારપ્રવાહ એવો પણ હતો કે જે બાહ્ય વિશ્વ અને આંતરિક જીવજગત બન્નેને કોઈ એક અખંડ સતતત્ત્વનું પરિણામ માનતો અને મૂળમાં બાહ્ય કે આંતરિક જગતની પ્રકૃતિ કે કારણમાં કશો જ ભેદ માનવા ના પાડતો

જૈન વિચારપ્રવાહનું સ્વરૂપ.

ઉપરના ત્રણ વિચારપ્રવાહને અનુક્રમે આપણે અહીં પ્રકૃતિવાદી, પરમાણુવાદી અને બ્રહ્મવાદી નામથી ઓળખીશું આમાંથી પ્રથમના બે વિચારપ્રવાહોને વિશેષ મળતો અને છતાં તેનાથી જુદો એવો એક ચોથો વિચારપ્રવાહ પણ સાથે સાથે પ્રવર્તતો હતો એ વિચારપ્રવાહ હતો તો પરમાણુવાદી પણ તે બીજા વિચારપ્રવાહની પેઠે બાહ્ય વિશ્વનાં કારણભૂત પરમાણુઓને મૂળમાંથી જુદી જુદી જાતના માનવાનો તરફેણ કરતો ન હતો, પણ મૂળમાં બધા જ પરમાણુઓ એક સમાન પ્રકૃતિના છે એમ માનતો. અને પરમાણુવાદ સ્વીકારવા છતાં તેમાંથી માત્ર વિશ્વ ઉત્પન્ન થાય છે એમ પણ ન માનતા, તે પ્રકૃતિવાદીની પેઠે પરિણામ અને આવિર્ભાવ માનતો હોવાથી, એમ કહેતો કે પરમાણુપુંજમાંથી બાહ્ય વિશ્વ આપો આપ પરિણમે છે આ રીતે આ ચોથા વિચારપ્રવાહનું વલણ પરમાણુવાદની ભૂમિકા ઉપર પ્રકૃતિવાદના પરિણામની માન્યતા તરફ હતું

તેની એક વિશેષતા એ પણ હતી કે તે સમગ્ર બાહ્ય વિશ્વને આવિર્ભાવ વાળું ન માનતાં તેમાંથી કેટલાક કાર્યોને ઉત્પત્તિશીલ પણ માનતો તે એમ કહેતો કે બાહ્ય વિશ્વમાં કેટલીય વસ્તુઓ એવી છે કે જે કોઈ પુરુષના પ્રયત્ન સિવાય જ પોતાના પરમાણુરૂપ કારણોમાંથી જન્મે છે. તેવી વસ્તુઓ તલમાંથી તેલની પેઠે પોતાના કારણમાંથી માત્ર આવિર્ભાવ પામે છે, પણ તદ્દન નવી ઉત્પન્ન નથી થતી, જ્યારે બાહ્ય વિશ્વમાં ઘણી વસ્તુઓ એવી પણ છે કે જે પોતાના જડ કારણોમાંથી ઉત્પન્ન થાય છે, પણ પોતાની ઉત્પત્તિમાં કોઈ પુરુષના પ્રયત્નની અપેક્ષા રાખે છે જે વસ્તુઓ પુરુષના પ્રયત્નની મદદથી જન્મ લે છે તે વસ્તુઓ પોતાના જડ કારણોમાં તલમાં તેલની પેઠે છુપેલી નથી હોતી પણ તે તો તદ્દન નવી જ ઉત્પન્ન થાય છે જેમ કોઈ સુતાર જુદા જુદા લાકડાઓના કટકા એકત્ર કરી ને ઉપરથી એક ઘોડો બનાવે ત્યારે

તે ઘોડો લાકડાના કટકાઓમાં છૂપો નથી હોતો, જેમ કે તલમાં તેલ હોય છે, પણ ઘોડો બનાવનાર સુતારની બુદ્ધિમાં કલ્પનારૂપે હોય છે અને તે લાકડાના કટકા દ્વારા મૂર્તરૂપ ધારણ કરે છે. જો સુતાર ધારત તો એ જ લાકડાના કટકામાંથી ઘોડો ન બનાવતાં ગાય, ગાડી કે બીજી તેવી વસ્તુ બનાવી શકત. તલમાંથી તેલ કાઢવાની બાબત આથી તદ્દન જુદી છે. કોઈ ગમે તેટલો વિચાર કરે કે ઇચ્છે છતાં તે તલમાંથી ઘી કે માખણ તો ન જ કાઢી શકે. આ રીતે પ્રસ્તુત ચોથો વિચારપ્રવાહ પરમાણુવાદી છતાં એક બાજુ પરિણામ અને આવિર્ભાવ માનવાની બાબતમાં પ્રકૃતિવાદી વિચારપ્રવાહની સાથે મળતો હતો, અને બીજી બાજુ કાર્ય તેમજ ઉત્પત્તિની બાબતમાં પરમાણુવાદી બીજા વિચારપ્રવાહને મળતો હતો.

આ તો બાહ્ય વિશ્વની બાબતમાં ચોથા વિચારપ્રવાહની માન્યતા થઈ, પણ આત્મતત્ત્વની બાબતમાં તો એની માન્યતા ઉપરના ત્રણે વિચારપ્રવાહો કરતાં જુદી જ હતી. તે માનતો કે દેહભેદે આત્મા ભિન્ન છે, પરંતુ એ બધા જ આત્માઓ દેશદૃષ્ટિએ વ્યાપક નથી તેમ જ માત્ર કૂટસ્થ પણ નથી. એ એમ માનતો કે જેમ બાહ્ય વિશ્વ પરિવર્તનશીલ છે તેમ આત્માઓ પણ પરિણામી હોઈ સતત પરિવર્તનશીલ છે. આત્મતત્ત્વ સંકોચ-વિસ્તારશીલ પણ છે અને તેથી તે દેહપ્રમાણ છે.

આ ચોથો વિચારપ્રવાહ તે જ જૈન તત્ત્વજ્ઞાનનું પ્રાચીન મૂળ છે. ભગવાન મહાવીરથી પહેલાં ઘણા સમય અગાઉથી એ વિચારપ્રવાહ ચાલ્યો આવતો અને તે પોતાની ઢબે વિકાસ સાધતો તેમ જ સ્થિર થતો જતો હતો. આજે આ ચોથા વિચારપ્રવાહનું જે સ્પષ્ટ, વિકસિત અને સ્થિર રૂપ આપણને પ્રાચીન કે અર્વાચીન ઉપલબ્ધ જૈન શાસ્ત્રોમાં નજરે પડે છે, તે મોટે ભાગે ભગવાન મહાવીરના ચિંતનને આભારી છે. જૈન મતની મુખ્ય શ્વેતાંબર અને દિગંબર

છે તેમનામાં તત્ત્વચિંતનની બાબતમાં કોઈ મૌલિક ભેદ હજી સુધી નોંધાયેલો નથી. માત્ર આર્ય તત્ત્વચિંતનના ઇતિહાસમાં જ નહિ, પણ માનવીય તત્ત્વચિંતનના સમગ્ર ઇતિહાસમાં આ એક જ દાખલો એવો છે કે આટલા બધા લાંબા વખતનો વિશિષ્ટ ઇતિહાસ ધરાવવા છતાં જેના તત્ત્વચિંતનનો પ્રવાહ મૌલિક રૂપે અખંડિત જ રહ્યો હોય

પૂર્વીય અને પશ્ચિમીય તત્ત્વજ્ઞાનની પ્રકૃતિનું તોલન

તત્ત્વજ્ઞાન પૂર્વીય હો કે પશ્ચિમીય હો, પણ બધા જ તત્ત્વજ્ઞાનના ઇતિહાસમા આપણે જોઈએ છીએ કે તત્ત્વજ્ઞાન એ માત્ર જગત, જીવ અને ઇશ્વરના સ્વરૂપચિતનમાં જ પૂર્ણ નથી થતુ, પણ એ પોતાના પ્રદેશમાં ચારિત્રનો પ્રશ્ન પણ હાથ ધરે છે. ઓછે કે વત્તે અંશે, એક કે બીજી રીતે, દરેક તત્ત્વજ્ઞાન પોતામા જીવનશોધનની મીમાસા સમાવે છે અલબત, પૂર્વીય અને પશ્ચિમીય તત્ત્વજ્ઞાનના વિકાસમા આ વિશે આપણે થોડો તફાવત પણ જોઈએ છીએ ગ્રીક તત્ત્વચિતનની શરૂઆત માત્ર વિશ્વના સ્વરૂપ વિશેના પ્રશ્નોમાથી થાય છે. આગળ જતા ક્રિશ્ચિયાનિટી સાથે એનો સબધ જોડાતા એમા જીવન શોધનનો પણ પ્રશ્ન ઉમેરાય છે, અને પછી એ પશ્ચિમીય તત્ત્વચિંતનની એક શાખામાં જીવનશોધનની મીમાસા ખાસ ભાગ ભજવે છે. ઠેઠ અર્વાચીન સમય સુધી પણ રોમન કેથોલિક સપ્રદાયમા આપણે તત્ત્વચિંતનને જીવનશોધનના વિચાર સાથે સકળાયેલુ જોઈએ છીએ, પરતુ આર્ય તત્ત્વજ્ઞાનના ઇતિહાસમા આપણે એક ખાસ વિશેષતા જોઈએ છીએ અને તે એ કે આર્ય તત્ત્વજ્ઞાનની શરૂઆત જ જાણે જીવનશોધનના પ્રશ્નમાથી થઈ હોય તેમ લાગે છે, કારણ કે આર્ય તત્ત્વજ્ઞાનની વૈદિક, બૌદ્ધિક અને જૈન એ ત્રણે મુખ્ય શાખાઓમાં એકસરખી રીતે વિશ્વચિંતન સાથે જ જીવનશોધનનું ચિંતન સંકળાયેલુ છે. આર્યાવર્તનું કોઈ પણ દર્શન એવું નથી કે જે માત્ર વિશ્વચિંતન કરી સંતોષ ધારણ કરતું હોય, પણ તેથી ઊલટુ આપણે એમ જોઈએ છીએ કે દરેક મુખ્ય કે તેનુ શાખારૂપ દર્શન જગત, જીવ અને ઈશ્વર પરત્વે પોતાના વિશિષ્ટ વિચારો દર્શાવી છેવટે જીવનશોધનના પ્રશ્નને જ છણે છે અને જીવનશોધનની પ્રક્રિયા દર્શાવી વિરામ પામે છે. તેથી આપણે દરેક આર્ય દર્શનના મૂળ ગ્રંથમા શરૂઆતમા મોક્ષનો ઉદ્દેશ અને અતમા તેનો જ ઉપસહાર જોઈએ છીએ આ જ કારણને લીધે સાખ્યદર્શન જેમ પોતાનો વિશિષ્ટ યોગ ધરાવે છે અને તે યોગદર્શનથી અભિન્ન છે, તેમ ન્યાય, વૈશેષિક અને વેદાંત દર્શનમા પણ યોગના મૂળ સિદ્ધાંતો છે. બૌદ્ધ દર્શનમા પણ એની વિશિષ્ટ

યોગપ્રક્રિયાએ ખાસ સ્થાન રોક્યું છે. એ જ રીતે જૈન દર્શન પણ યોગપ્રક્રિયા વિશે પૂરા વિચારો દર્શાવે છે

જીવનશોધનના મૌલિક પ્રશ્નોની એકતા

આ રીતે આપણે જોયું કે જૈન દર્શનમા મુખ્ય બે ભાગ છે: એક તત્ત્વચિંતનનો અને બીજો જીવનશોધનનો અહીં એક વાત ખાસ નોંધવા જેવી છે અને તે એ છે કે વૈદિક દર્શનની કોઈ પણ પરંપરા લો કે બૌદ્ધ દર્શનની કોઈ પરંપરા લો અને તેને જૈન દર્શનની પરંપરા સાથે સરખાવો, તો એક વસ્તુ સ્પષ્ટ જણાશે કે આ બધી પરંપરાઓમા જે ભેદ છે તે બે બાબતમાં છે એક તો જગત, જીવ અને ઇશ્વરના સ્વરૂપચિંતન પરત્વે અને બીજો આચારના સ્થૂળ તેમ જ બાહ્ય વિધિવિધાનો અને સ્થૂળ રહેણીકરણી વિશે, પણ આર્યદર્શનની દરેક પરંપરામાં જીવશોધનને લગતા મૌલિક પ્રશ્નો અને તેના ઉત્તરોમા જરા પણ તફાવત નથી કોઈ ઈશ્વર માને કે નહિ, કોઈ પ્રકૃતિવાદી હોય કે કોઈ પરમાણુવાદી, કોઈ આત્મભેદ સ્વીકારે કે આત્માનું એકત્વ સ્વીકારે, કોઈ આત્માને વ્યાપક અને નિત્ય માને કે કોઈ તેથી ઊલટું માને, એ જ રીતે કોઈ યજ્ઞયાગ દ્વારા ભક્તિ ઉપર ભાર મૂકે કે કોઈ વધારે કડક નિયમોને અવલબી ત્યાગ ઉપર ભાર મૂકે; પણ દરેક પરંપરામા આટલા પ્રશ્નો એકસરખા છે. દુખ છે કે નહિ? હોય તો તેનું કારણ શું? તે કારણનો નાશ શક્ય છે? અને શક્ય હોય તો કઈ રીતે? છેવટનુ સાધ્ય શું હોવું જોઈએ? આ પ્રશ્નોના ઉત્તરો પણ દરેક પરંપરામાં એક જ છે ભલે શબ્દભેદ હોય, સંક્ષેપ કે વિસ્તાર હોય. છતાં દરેકનો ઉત્તર એ જ છે કે અવિદ્યા અને તૃષ્ણા એ દુખનાં કારણો છે. તેનો નાશ સભવિત છે વિદ્યાથી અને તૃષ્ણાછેદ દ્વારા દુખનાં કારણોનો નાશ થતાં જ દુખ આપોઆપ નાશ પામે છે, અને એ જ જીવનનુ મુખ્ય સાધ્ય છે. આર્ય દર્શનોની દરેક પરંપરા જીવનશોધનના મૌલિક વિચાર વિશે અને તેના નિયમો વિશે તદ્દન એકમત છે. તેથી અહીં જૈન દર્શન વિશે કાંઈ પણ કહેતાં મુખ્યપણે તેની જીવનશોધનની મીમાંસાનું જ સક્ષેપમા કથન કરવું વધારે પ્રાસંગિક છે

જીવનશોધનની જૈન પ્રક્રિયા

મોહનો વિલય કરવા જૈન દર્શન એક બાજુ વિવેકશક્તિ વિકસાવવા કહે છે અને બીજી બાજુ તે રાગદ્વેષના સંસ્કારો નષ્ટ કરવા કહે છે જૈન દર્શન આત્માને ત્રણ ભૂમિકાઓમાં વહેંચી નાખે છે જ્યારે અજ્ઞાન અને મોહનું પૂર્ણ પ્રાબલ્ય હોય અને તેને લીધે આત્મા વાસ્તવિક તત્ત્વ વિચારી ન શકે તેમ જ સત્ય ને સ્થાયી સુખની દિશામા એક પણ પગલુ ભરવાની ઇચ્છા સુધ્ધા ન કરી શકે, ત્યારે એ બહિરાત્મા કહેવાય છે. જીવની આ પ્રથમ ભૂમિકા થઈ આ ભૂમિકા હોય ત્યાં સુધી પુનર્જન્મનુ ચક્ર બંધ પડવાનો કદી સંભવ જ નથી અને લૌકિક દૃષ્ટિએ ગમે તેટલો વિકાસ દેખાય છતાં ખરી રીતે એ આત્મા અવિકસિત જ હોય છે.

વિવેકશક્તિનો પ્રાદુર્ભાવ જ્યારે થાય અને રાગદ્વેષના સંસ્કારોનું બળ ઘટવા માંડે ત્યારે બીજી ભૂમિકા શરૂ થાય છે. એને જૈન દર્શન અંતરાત્મા કહે છે. આ ભૂમિકા વખતે જોકે દેહધારણને ઉપયોગી એવી બધી દુન્યવી પ્રવૃત્તિ ઓછી-વત્તી ચાલતી હોય છે, છતાં વિવેકશક્તિના વિકાસના પ્રમાણમાં અને રાગદ્વેષની મંદતાના પ્રમાણમાં એ પ્રવૃત્તિ અનાસક્તિવાળી હોય છે આ બીજી ભૂમિકામા પ્રવૃત્તિ હોવા છતાં તેમા અતરથી નિવૃત્તિનુ તત્ત્વ હોય છે બીજી ભૂમિકાનાં સંખ્યાબંધ ચડતાં પગથિયાં જ્યારે વટાવી દેવાય ત્યારે આત્મા પરમાત્માની દશાને પ્રાપ્ત થયો કહેવાય છે આ જીવનશોધનની છેલ્લી ભૂમિકા અને પૂર્ણ ભૂમિકા છે. જૈન દર્શન કહે છે કે આ ભૂમિકાએ પહોંચ્યા પછી પુનર્જન્મનું ચક્ર હંમેશને માટે તદ્દન થંભી જાય છે.

આપણે ઉપરના સક્ષિપ્ત વર્ણન ઉપરથી જોઈ શકીએ છીએ કે અવિવેક (મિથ્યાદૃષ્ટિ) અને મોહ (તૃષ્ણા) એ બે જ સંસાર છે અથવા સંસારનાં કારણો છે. તેથી ઊલટું, વિવેક અને વીતરાગત્વ એ જ મોક્ષ છે અથવા મોક્ષનો માર્ગ છે. આ જ જીવનશોધનની સક્ષિપ્ત જૈનમીમાસા અનેક જૈન ગ્રંથોમાં અનેક રીતે, સંક્ષિપ્ત કે વિસ્તારથી, તેમ જુદી જુદી પરિભાષાઓમા વર્ણવેલી મળે છે, અને આ જ જીવનમીમાસા અક્ષરશ: વૈદિક તેમ જ બૌદ્ધ દર્શનોમા પણ પદે પદે નજરે પડે છે

કાંઈક વિશેષ સરખામણી

ઉપર તત્ત્વજ્ઞાનની મૌલિક જૈન વિચારસરણી અને આધ્યાત્મિક વિકાસ-ક્રમની જૈન વિચારસરણીનો બહુ જ ટૂંકમાં નિર્દેશ કર્યો છે. આ ચાલુ વ્યાખ્યાનના

તેના બહુ વિસ્તારને સ્થાન નથી, છતાં એ જ વિચારને વધારે સ્પષ્ટ કરવા અહીં ભારતીય બીજાં દર્શનોના વિચારો સાથે કાંઈક સરખામણી કરવી યોગ્ય છે.

(क) જૈન દર્શન જગતને માયાવાદીની પેઠે માત્ર આભાસ કે માત્ર કાલ્પનિક નથી માનતુ, પણ એ જગતને સત્ માને છે. તેમ છતા જૈન દર્શન સમત સત્–તત્ત્વ એ ચાર્વાકની પેઠે કેવળ જડ અર્થાત્ સહજ ચૈતન્યરહિત નથી એ જ રીતે જૈન દર્શન સંમત સત્–તત્ત્વ એ શાંકર વેદાન્ત પ્રમાણે કેવળ ચૈતન્યમાત્ર પણ નથી, પરંતુ જેમ સાખ્ય, યોગ, ન્યાય, વૈશેષિક, પૂર્વમીમાંસા અને બૌદ્ધ દર્શન સત્–તત્ત્વને તદ્દન સ્વતંત્ર તેમ જ પરસ્પર ભિન્ન એવા જડ તેમ જ ચેતન બે ભાગોમા વહેંચી નાખે છે, તેમ જૈન દર્શન પણ સત્–તત્ત્વની અનાદિસિદ્ધ જડ તથા ચેતન એવી બે પ્રકૃતિ સ્વીકારે છે, જે દેશ અને કાળના પ્રવાહમાં સાથે રહેવા છતાં મૂળમા તદ્દન સ્વતંત્ર છે જેમ ન્યાય, વૈશેષિક અને યોગદર્શન આદિ એમ સ્વીકારે છે કે આ જગતનુ વિશિષ્ટ કાર્યસ્વરૂપ ભલે જડ અને ચેતન બે પદાર્થો ઉપરથી ઘડાતુ હોય, છતાં એ કાર્યની પાછળ કોઈ અનાદિસિદ્ધ સમર્થ ચેતનશક્તિનો હાથ છે, એ ઈશ્વરીય હાથ સિવાય આવુ અદ્ભુત કાર્ય સંભવી શકે નહિ, તેમ જૈન દર્શન નથી માનતુ એ પ્રાચીન સાખ્ય, પૂર્વમીમાસક અને બૌદ્ધ આદિની પેઠે માને છે કે જડ અને ચેતન એ બે સત્–પ્રવાહો આપોઆપ, કોઈ ત્રીજી વિશિષ્ટ શક્તિના હાથ સિવાય જ, ચાલ્યા કરે છે, અને તેથી આ જગતની ઉત્પત્તિ કે વ્યવસ્થા માટે ઈશ્વર જેવી સ્વતંત્ર અનાદિસિદ્ધ વ્યક્તિ સ્વીકારવાની એ ના પાડે છે. જોકે જૈન દર્શન ન્યાય, વૈશેષિક, બૌદ્ધ આદિની પેઠે જડ સત્–તત્ત્વને અનાદિસિદ્ધ અનત વ્યક્તિરૂપ સ્વીકારે છે અને સાખ્યની પેઠે એક વ્યક્તિરૂપ નથી સ્વીકારતુ, છતાં તે સાંખ્યના પ્રકૃતિગામી સહજ પરિણામવાદને અનત પરમાણુ નામક જડ સત્–તત્ત્વોમાં સ્થાન આપે છે

આ રીતે જૈન માન્યતા પ્રમાણે જગતનો પરિવર્તન–પ્રવાહ આપમેળે જ ચાલે છે. તેમ છતા જૈન દર્શન એટલુ તો સ્પષ્ટ કહે છે કે વિશ્વમાંની જે જે ઘટનાઓ માણસની બુદ્ધિ અને પ્રયત્નને આભારી દેખાય છે તે ઘટનાઓની પાછળ ઈશ્વરનો નહિ પણ તે ઘટનાઓના પરિણામમાં ભાગીદાર થનાર સંસારી જીવનો હાથ છે, એટલે કે તેવી ઘટનાઓ જાણે–અજાણે કોઈ ને કોઈ સંસારી જીવના બુદ્ધિ અને પ્રયત્નને આભારી હોય છે. આ બાબતમાં પ્રાચીન સાખ્ય અને બૌદ્ધ દર્શન જૈન દર્શન જેવા જ વિચારો ધરાવે છે

માનતું, પણ સાંખ્ય, યોગ, ન્યાય, વૈશેષિક તેમ જ બૌદ્ધ આદિની પેઠે એ સચેતન તત્ત્વને અનેક વ્યક્તિરૂપ માને છે. તેમ છતાં એમની સાથે પણ જૈન દર્શનનો થોડો મતભેદ છે, અને તે એ છે કે જૈન દર્શનની માન્યતા પ્રમાણે સચેતન તત્ત્વ બૌદ્ધ માન્યતાની જેમ કેવળ પરિવર્તન–પ્રવાહ નથી, તેમ જ સાંખ્ય–ન્યાય આદિની પેઠે માત્ર કૂટસ્થ પણ નથી, કિન્તુ જૈન દર્શન કહે છે કે મૂળમા સચેતન તત્ત્વ ધ્રુવ અર્થાત્ અનાદિ–અનંત હોવા છતા એ દેશકાળની અસર ધારણ કર્યા સિવાય રહી શકતું નથી એટલે જૈન મત પ્રમાણે જીવ પણ જડની પેઠે પરિણામિનિત્ય છે જૈન દર્શન ઈશ્વિર જેવી કોઈ વ્યક્તિને તદ્દન સ્વતંત્રપણે નથી માનતુ, છતાં એ ઈશ્વિરના સમગ્ર ગુણો જીવમાત્રમા સ્વીકારે છે, તેથી જૈન દર્શન પ્રમાણે પ્રત્યેક જીવમા ઈશ્વિરપણાની શક્તિ છે, ભલે તે આવરણથી દબાયેલી હોય, પણ જો જીવ યોગ્ય દિશામા પ્રયત્ન કરે તો એ પોતામાં રહેલી ઈશ્વિરીય શક્તિને પૂર્ણપણે વિકસાવી પોતે જ ઈશ્વિર બને છે આ રીતે જૈન માન્યતા પ્રમાણે ઈશ્વિરતત્ત્વને અલાયદું સ્થાન ન હોવા છતા તે ઈશ્વિરતત્ત્વની માન્યતા ધરાવે છે અને તેની ઉપાસના પણ સ્વીકારે છે જે જે જીવાત્મા કર્મવાસના ઓથી પૂર્ણપણે મુક્ત થયા તે બધા જ સમાનભાવે ઈશ્વિર છે. તેમનો આદર્શ સામે રાખી પોતામા રહેલી તેવી જ પૂર્ણ શક્તિ પ્રકટાવવી એ જૈન ઉપાસનાનુ ધ્યેય છે જેમ શાકર વેદાત માને છે કે જીવ પોતે જ બ્રહ્મ છે, તેમ જૈન દર્શન કહે છે કે જીવ પોતેજ ઈશ્વિર કે પરમાત્મા છે વેદાંતદર્શન પ્રમાણે જીવનો બ્રહ્મભાવ અવિદ્યાથી આવૃત છે અને અવિદ્યા દૂર થતાં અનુભવમાં આવે છે, તેમ જૈન દર્શન પ્રમાણે જીવનો પરામાત્મભાવ આવૃત છે અને તે આવરણ દૂર થતા પૂર્ણપણે અનુભવમા આવે છે આ બાબતમા ખરી રીતે જૈન અને વેદાંત વચ્ચે વ્યક્તિમહત્વ સિવાય કશો જ ભેદ નથી

(ख) જૈન શાસ્ત્રમા જે સાત તત્ત્વ કહેલાં છે તેમાંથી મૂળ જીવ અને અજીવ એ બે તત્ત્વ વિશે ઉપર સરખામણી કરી હવે બાકી ખરી રીતે પાચમાથી ચાર તત્ત્વો જ રહે છે આ ચાર તત્ત્વો જીવનશોધનને લગતા અર્થાત્ આધ્યાત્મિક વિકાસક્રમને લગતા છે, જેને ચારિત્રીય તત્ત્વો પણ કહી શકાય બંધ, આશ્રવ, સવર અને મોક્ષ એ ચાર તત્ત્વો છે. આ તત્ત્વોને બૌદ્ધ શાસ્ત્રોમા અનુક્રમે દુખ, દુખહેતુ, નિર્વાણમાર્ગ અને નિર્વાણ એ ચાર આર્યસત્ય તરીકે વર્ણવેલા છે સાખ્ય અને યોગશાસ્ત્રમા એને જ હેય, હેયહેતુ, હાનોપાય, અને હાન કહી ચતુર્વ્યૂહ તરીકે વર્ણવેલ છે. ન્યાય અને વૈશેષિક દર્શનમા પણ એ જ વસ્તુ સંસાર, મિથ્યાજ્ઞાન, સમ્યગ્જ્ઞાન અને

અપવર્ગના નામ આપી વર્ણવેલ છે વેદાંત દર્શનમાં સંસાર, અવિદ્યા, બ્રહ્મ-સાક્ષાત્કાર અને બ્રહ્મભાવના નામથી એ જ વસ્તુ દર્શાવવામા આવી છે

જૈન દર્શનમા બહિરાત્મા, અન્તરાત્મા અને પરમાત્માની ત્રણ સંક્ષિપ્ત ભૂમિકાઓને જરા વિસ્તારી ચૌદ ભૂમિકારૂપે પણ વર્ણવેલી છે, જે જૈન પરંપરામાં ગુણસ્થાનના નામથી જાણીતી છે. યોગવાસિષ્ઠ જેવા વેદાન્તના ગ્રન્થોમાં પણ સાત અજ્ઞાનની અને સાત જ્ઞાનની એમ ચૌદ આત્મિક ભૂમિકાઓનું વર્ણન છે સાંખ્ય–યોગ દર્શનની ક્ષિપ્ત, મૂઢ, વિક્ષિપ્ત, એકાગ્ર અને નિરુદ્ધ એ પાચ ચિત્તભૂમિકાઓ પણ એ જ ચૌદ ભૂમિકાઓનુ સંક્ષિપ્ત વર્ગીકરણ માત્ર છે બૌદ્ધ દર્શનમા પણ એ જ આધ્યાત્મિક વિકાસક્રમને પૃથગ્જન, સોતાપન્ન આદિ તરીકે છ ભૂમિકાઓમા વહેંચી વર્ણવેલો છે આ રીતે આપણે બધા જ ભારતીય દર્શનોમાં સંસારથી મોક્ષ સુધીની સ્થિતિ, તેનો ક્રમ અને તેના કારણો વિશે તદ્દન એક મત અને એક વિચાર વાચીએ છીએ ત્યારે પ્રશ્ન થાય છે કે જ્યારે બધા જ દર્શનોના વિચારોમા મૌલિક એકતા છે ત્યારે પથ પથ વચ્ચે કદી ન સંધાય એવો આટલો બધો ભેદ કેમ દેખાય છે?

આનો ઉત્તર સ્પષ્ટ છે પંથોની ભિન્નતા મુખ્ય બે વસ્તુઓને આભારી છે તત્ત્વજ્ઞાનની જુદાઈ અને બાહ્ય આચારવિચારની જુદાઈ કેટલાક પંથો તો એવા જ છે કે જેમના બાહ્ય આચારવિચારમાં તફાવત હોવા ઉપરાંત તત્ત્વજ્ઞાનની વિચારસરણીમા પણ અમુક ભેદ હોય છે જેમ કે વેદાન્ત, બૌદ્ધ અને જૈન આદિ પંથો વળી કેટલાક પંથો કે તેના ફાંટાઓ એવા પણ હોય છે કે જેમની તત્ત્વજ્ઞાન વિષયક વિચારસરણીમા ખાસ ભેદ હોતો જ નથી, તેમનો ભેદ મુખ્યપણે બાહ્ય આચારને અવલંબી [illegible] ઉપરને આભારી હોય છે, દાખલા તરીકે જૈન દર્શનની શ્વેતામ્બર દિગમ્બર અને સ્થાનકવાસી એ ત્રણે શાખાઓ ગણાવી શકાય

અને ચતુર્દશીના વ્રતને મહત્ત્વ આપે; કોઈ તપ ઉપર બહુ ભાર ન આપતાં દાન ઉપર આપે તો બીજો કોઈ તપ ઉપર પણ વધારે ભાર આપે આ રીતે પરંપરાગત ભિન્ન ભિન્ન સંસ્કારોનું પોષણ અને રુચિભેદનું માનસિક વાતાવરણ અનિવાર્ય હોવાથી બાહ્યાચાર અને પ્રવૃત્તિનો ભેદ કદી ભૂંસાવાનો નહિ. ભેદની ઉત્પાદક અને પોષક આટલી બધી વસ્તુઓ છતાં સત્ય એવું છે કે તે ખરી રીતે ખંડિત થતું જ નથી તેથી જ આપણે ઉપરની આધ્યાત્મિક વિકાસક્રમને લગતી તુલનામાં જોઈએ છીએ કે ગમે તે રીતે, ગમે તે ભાષામાં અને ગમે તે રૂપમાં જીવનનું સત્ય એકસરખું જ બધા અનુભવી તત્ત્વજ્ઞોના અનુભવમાં પ્રગટ થયું છે.

પ્રસ્તુત વક્તવ્ય પૂરું કરું તે પહેલાં જૈન દર્શનની સર્વમાન્ય બે વિશેષતાઓનો ઉલ્લેખ કરી દઉં. અનેકાંત અને અહિંસા એ બે મુદ્દાઓની ચર્ચા ઉપર જ આખા જૈન સાહિત્યનું મંડાણ છે. જૈન આચાર અને સંપ્રદાયની વિશેષતા આ બે બાબતોથી જ બતાવી શકાય સત્ય ખરી રીતે એક જ હોય છે, પણ મનુષ્યની દૃષ્ટિ તેને એક રીતે ગ્રહણ કરી શકતી જ નથી તેથી સત્યના દર્શન માટે મનુષ્યે પોતાની દૃષ્ટિમર્યાદા વિકસાવવી જોઈએ અને તેમાં સત્યગ્રહણની સંભવિત બધી જ રીતોને સ્થાન આપવું જોઈએ આ ઉદાત્ત અને વિશાળ ભાવનામાંથી અનેકાંતની વિચારસરણીનો જન્મ થયેલો છે એ સરણી કાંઈ વાદવિવાદમાં જય મેળવવા માટે કે વિતંડાવાદની સાઠમારી રમવા માટે અગર તો શબ્દ-છળની આટીઘૂંટી ખેલવા માટે નથી યોજાયેલી, પણ એ તો જીવનશોધનના એક ભાગ તરીકે વિવેકશક્તિને વિકસાવવા અને સત્યદર્શનની દિશામાં આગળ વધવા માટે યોજાયેલી છે તેથી અનેકાંતવિચારસરણીનો ખરો અર્થ એ છે કે સત્યદર્શનને લક્ષમાં રાખી તેના બધા અંશો અને ભાગોને એક વિશાળ માનસવર્તુળમાં યોગ્ય રીતે સ્થાન આપવું.

જેમ જેમ માણસની વિવેકશક્તિ વધે છે તેમ તેમ તેની દૃષ્ટિમર્યાદા વધવાને લીધે તેને પોતાની અંદર રહેલી સંકુચિતતાઓ અને વાસનાઓના દબાણની સામે થવું પડે છે જ્યાં સુધી માણસ સંકુચિતતાઓ અને વાસનાઓ સામે ન થાય ત્યાં સુધી તે પોતાના જીવનમાં અનેકાંતના વિચારને વાસ્તવિક સ્થાન આપી જ નથી શકતો તેથી અનેકાંતના વિચારની રક્ષા અને વૃદ્ધિના પ્રશ્નમાંથી જ અહિંસાનો પ્રશ્ન આવે છે જૈન અહિંસા એ માત્ર ચૂપચાપ બેસી રહેવામાં કે ધંધોધાપો છોડી દેવામાં કે માત્ર લાકડા જેવી નિશ્ચેષ્ટ સ્થિતિ સાધવામાં નથી સમાતી, પણ એ અહિંસા ખરા આત્મિક

બળની અપેક્ષા રાખે છે. કોઈ પણ વિકાર ઊભો થયો. કોઈ વાસનાએ ડોકિયું કાઢ્યું કે કોઈ સંકુચિતતા મનમાં સરકી ત્યાં જૈન અહિંસા એમ કહે કે તું એ વિકારો, એ વાસનાઓ, એ સંકુચિતતાઓથી ન હણા, ન હાર, ન દબા. તું એની સામે ઝૂઝ અને એ વિરોધી બળોને જીત આ આધ્યાત્મિક જય માટેનો પ્રયત્ન એ જ મુખ્ય જૈન અહિંસા છે. આને સંયમ કહો, તપ કહો, ધ્યાન કહો કે કોઈ પણ તેવું આધ્યાત્મિક નામ આપો, પણ એ વસ્તુતઃ અહિંસા જ છે, અને જૈન દર્શન એમ કહે છે કે અહિંસા એ માત્ર સ્થૂલ આચાર નથી, પણ તે શુદ્ધ વિચારના પરિપાક રૂપે અવતરેલો જીવનોત્કર્ષક આચાર છે

ઉપર વર્ણવેલ અહિંસાના સૂક્ષ્મ અને વાસ્તવિક રૂપમાંથી કોઈ પણ બાહ્યાચાર જન્મ્યો હોય અગર એ સૂક્ષ્મ રૂપની પુષ્ટિ માટે કોઈ આચાર નિર્માયો હોય તો તેને જૈન તત્ત્વજ્ઞાનમાં અહિંસા તરીકે સ્થાન છે તેથી ઊલટું, દેખાતી રીતે અહિંસામય ગમે તે આચાર કે વ્યવહારના મૂળમાં જો ઉપરનું અહિંસાનું આંતરિક તત્ત્વ સંબંધ ન ધરાવતું હોય તો તે આચાર અને તે વ્યવહાર જૈન દૃષ્ટિએ અહિંસા છે કે અહિંસાના પોષક છે એમ ન કહી શકાય

અહીં જૈન તત્ત્વજ્ઞાનને લગતા વિચારમાં પ્રમેયચર્ચા જાણીને જ લંબાવી નથી માત્ર એ વિશેની જૈન વિચારસરણીનો ઇશારો કર્યો છે આચારની બાબતમાં પણ કોઈ બહારના નિયમો અને બંધારણ વિશે જાણીને જ ચર્ચા નથી કરી, પણ આચારના મૂળ તત્ત્વોની [illegible] રૂપે સહેજ ચર્ચા કરી છે, જેને જૈન પરિભાષામાં આસ્રવ, સંવર આદિ તત્ત્વો કહેવામાં આવે છે. આશા છે કે આ ટૂંક વર્ણન જૈન દર્શનની વિશેષ જિજ્ઞાસા ઉત્પન્ન કરવામાં કાંઈક મદદગાર થશે

—પ્રબુદ્ધ જૈન, ૧૫-૬-'૪૬

સપ્તભંગી

[૬]

[એમ એ ના પરીક્ષાર્થી એક દક્ષિણી વિદ્વાન મહાશયે 'સપ્તભંગી' એટલે શું તેનું દિગ્દર્શન આપવાની વિનતી કરતાં પંડિત સુખલાલજીએ સાર રૂપે–મુદ્દા રૂપે જે જણાવેલ તે અત્રે આપવામા આવે છે.]

૧. ભંગ એટલે વસ્તુનું સ્વરૂપ દર્શાવનાર વચનના પ્રકાર અર્થાત્ વાક્યરચના

૨ એ સાત કહેવાય છે, છતા મૂળ તો ત્રણ જ છે બાકીના ચાર એ ત્રણ મૂળ ભંગોના પારસ્પરિક વિવિધ સંયોજનથી થાય છે

૩ કોઈ પણ એક વસ્તુ વિશે કે એક જ ધર્મ પરત્વે ભિન્ન ભિન્ન વિચારકોની માન્યતામા ભેદ દેખાય છે. એ ભેદ વિરોધ રૂપ છે કે નહિ અને જો ન હોય તો દેખાતા વિરોધમા અવિરોધ કેવી રીતે ઘટાવવો ? અથવા એમ કહો કે અમુક વિવક્ષિત વસ્તુ પરત્વે જ્યારે ધર્મવિષયક દૃષ્ટિભેદો દેખાતા હોય ત્યારે એવા ભેદોનો પ્રમાણપૂર્વક સમન્વય કરવો, અને તેમ કરી બધી સાચી દૃષ્ટિઓને તેના યોગ્ય સ્થાનમાં ગોઠવી ન્યાય આપવો એ ભાવનામા સપ્તભંગીનું મૂળ છે

દાખલા તરીકે એક આત્મદ્રવ્યની બાબતમા તેના નિત્યત્વ વિશે દૃષ્ટિભેદ છે કોઈ આત્માને નિત્ય માને છે તો કોઈ નિત્ય માનવા ના પાડે છે કોઈ વળી એમ કહે છે કે એ તત્ત્વ જ વચન-અગોચર છે આ રીતે આત્મતત્ત્વની બાબતમાં ત્રણ પક્ષ પ્રસિદ્ધ છે તેથી વિચારવુ એ પ્રાપ્ત થાય છે કે શું તે નિત્ય જ છે અને અનિત્યત્વ તેમા પ્રમાણબાધિત છે ? અથવા શું તે અનિત્ય જ છે અને નિત્યત્વ તેના પ્રમાણબાધિત છે ? અથવા તેને નિત્ય કે અનિત્ય રૂપે ન કહેતા અવક્તવ્ય જ કહેવુ એ યોગ્ય છે ? આ ત્રણ વિકલ્પોની પરીક્ષા કરતા જો સાચા હોય તો એમનો વિરોધ દૂર કરવો જ જોઈએ. જ્યા સુધી વિરોધ ઊભો રહે ત્યાં સુધી પરસ્પર વિરુદ્ધ અનેક ધર્મો એક વસ્તુમા છે એમ કહી જ ન શકાય તેથી વિરોધપરિહાર તરફ જ [illegible]

ભંગીની દૃષ્ટિ પહેલવહેલી જાય છે તે નક્કી કરે છે કે આત્મા નિત્ય છે, પણ સર્વ દૃષ્ટિએ નહિ; માત્ર મૂળ તત્ત્વની દૃષ્ટિએ તે નિત્ય છે, કારણ કે ક્યારે પણ તે તત્ત્વ ન હતુ અને પછી ઉત્પન્ન થયું એમ નથી, તેમ જ ક્યારેક એ તત્ત્વ મૂળમાંથી જ નાશ પામશે એમ પણ નથી. તેથી તત્ત્વરૂપે એ અનાદિનિધન છે અને તે જ તેનુ નિત્યત્વ છે. આમ છતાં તે અનિત્ય પણ છે, પરતુ એનુ અનિત્યત્વ તત્ત્વદૃષ્ટિએ ન હોતા માત્ર અવસ્થાની દૃષ્ટિએ છે. અવસ્થાઓ તો પ્રતિસમયે નિમિત્તાનુસાર બદલાતી જ રહે છે જેમા કાંઈ ને કાંઈ રૂપાતર થતુ ન હોય, જેમા આંતરિક કે બાહ્ય નિમિત્ત પ્રમાણે સૂક્ષ્મ કે સ્થૂળ અવસ્થાભેદ સતત ચાલુ ન હોય એવા તત્ત્વની કલ્પના જ નથી થઈ શકતી તેથી અવસ્થાભેદ માનવો પડે છે અને એ જ અનિત્યત્વ છે. આ રીતે આત્મા તત્ત્વરૂપે (સામાન્યરૂપે) નિત્ય છતા, અવસ્થારૂપે (વિશેષરૂપે) અનિત્ય પણ છે નિત્યત્વ અને અનિત્યત્વ બન્ને એક જ સ્વરૂપે એક વસ્તુમા માનતાં વિરોધ આવે, જેમ કે, તત્ત્વરૂપે જ આત્મા નિત્ય છે એમ માનનાર તે જ રૂપે અનિત્ય પણ માને તો એ જ પ્રમાણે આત્મા નિત્ય અનિત્ય આદિ શબ્દ દ્વારા તે તે રૂપે પ્રતિપાદ્ય છતા સમગ્રરૂપે કોઈ પણ એક શબ્દથી કહી શકાય નહિ, માટે તે અસમગ્રરૂપે શબ્દનો વિષય થાય છે, છતા સમગ્રરૂપે એવા કોઈ શબ્દનો વિષય નથી થઈ શકતો માટે અવક્તવ્ય પણ છે આ રીતે એક નિત્યત્વ ધર્મને અવલબી આત્માના વિષયમા નિત્ય, અનિત્ય અને અવક્તવ્ય એવા ત્રણ પક્ષો—ભગો વાજબી ઠરે છે

એ જ પ્રમાણે એકત્વ, સત્વ, ભિન્નત્વ, અભિલાપ્યત્વ આદિ સર્વસાધારણ ધર્મો લઈ કોઈ પણ વસ્તુ વિષે એવા ત્રણ ભગો બને, અને તે ઉપરથી સાત બને ચેતનત્વ ઘટત્વ આદિ અસાધારણ ધર્મોને લઈને પણ સપ્તભંગી ઘટાવી શકાય એક વસ્તુના વ્યાપક કે અવ્યાપક જેટલા જેટલા ધર્મો હોય તે દરેકને લઈ તેની જોડ બાબત વિચારી સપ્તભગ ઘટાવી શકાય

સાતથી વધારે ભંગો સંભવતા નથી, માટે જ સાતની સંખ્યા કહી છે. મૂળ ત્રણની વિવિધ સયોજના કરો અને સાતમા અંતર્ભાવ ન પામે એવો ભંગ ઉપજાવી શકો તો જૈન દર્શન સપ્તભંગિત્વનો આગ્રહ કરી જ ન શકે

આનો ટૂંકમા સાર નીચે પ્રમાણે —

૧. તત્કાલીન ચાલતા વિરોધી વાદોનુ સમીકરણ કરવુ, એ ભાવના સપ્તભંગીની પ્રેરક છે

૨ તેમ કરી વસ્તુના સ્વરૂપની ચોકસાઈ કરવી અને યથાર્થ જ્ઞાન મેળવવું, એ એનુ સાધ્ય છે

૩ બુદ્ધિમા ભાસતા કોઈ પણ ધર્મ પરત્વે મૂળમા ત્રણ જ વિકલ્પો સભવે છે અને ગમે તેટલા શાબ્દિક પરિવર્તનથી સંખ્યા વધારીએ તોયે સાત જ થઈ શકે

૪ જેટલા ધર્મો તેટલી જ સપ્તભગી છે. આ વાદ અનેકાતદૃષ્ટિનો વિચારવિષયક એક પુરાવો છે. આના દાખલાઓ, જે શબ્દ, આત્મા વગેરે આપ્યા છે, તેનુ કારણ એ છે કે પ્રાચીન આર્ય વિચારકો આત્માનો વિચાર કરતા અને બહુ તો આગમ–પ્રામાણ્યની ચર્ચામા શબ્દને લેતા

૫ વૈદિક આદિ દર્શનોમા, ખાસ કરી વલ્લભદર્શનમાં, ‘ સર્વધર્મ સમન્વય ’ છે, તે આનું જ એક રૂપ છે શંકર પોતે વસ્તુને વર્ણવે છે, છતા અનિર્વચનીય કહે છે.

૬. પ્રમાણથી બાધિત ન હોય એવું બધુ જ સંઘરી લેવાનો આની પાછળ ઉદ્દેશ છે—પછી ભલે તે વિરુદ્ધ મનાતું હોય.

નિગોદ જાતિના જીવસમૂહ વિષયક પ્રશ્નોત્તરો

[૭]

૧. પ્રશ્ન . કર્મબન્ધના હેતુ મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, કષાય અને યોગ છે; તેમાં પણ કષાય અને યોગનુ પ્રાધાન્ય છે કષાયની તીવ્રતા જીવોના માનસિક વિકાસ પર અવલંબે છે; અર્થાત્ જે શ્રેણીના જીવોનું મન સંપૂર્ણ વિકસિત છે, તેઓના અધ્યવસાય જો કષાયમય થઈ જાય તો તેઓને તીવ્રતમ કષાયની સભાવના છે. સંજ્ઞી પચેન્દ્રિય પર્યાયના, અને ખાસ કરીને મનુષ્યના મનનો વિકાસ સપૂર્ણ હોવાથી એકેન્દ્રિયાદિ જીવોની અપેક્ષાએ મનુષ્યમાં તીવ્રતમરૂપે કષાયનો સભવ છે. આ કારણસર એકેન્દ્રિય જીવોમાં તીવ્રતમ કષાયની ઉત્પત્તિનો સંભવ નથી

ઉપર્યુક્ત વિચાર જો બરાબર હોય તો પ્રશ્ન એ ઉપસ્થિત થાય કે કે જે અવ્યવહાર–રાશિના જીવ અનાદિ કાળથી સૂક્ષ્મ નિગોદમાંથી નીકળ્યા નથી અને વ્યવહાર–રાશિમા આવવા સમર્થ થયા નથી તેઓને, અનાદિ કાળથી મન ન હોવા છતા પણ, એવા તીવ્ર કષાયનો બન્ધ કેવી રીતે થયો કે જેથી કરીને અનાદિ કાળથી આજ સુધી પણ તેમને સૂક્ષ્મ નિગોદમાં જ જન્મમરણના ચક્રમા ભમવુ પડે છે અને એ રીતે જીવશ્રેણીના હીનતમ પર્યાયમા રોકાઈ રહેવુ પડે છે? તેઓને એ પ્રકારના તીવ્ર કષાયોની ઉત્પત્તિ અને ચીકણા બન્ધ કરવાનો અવસર ક્યારે પ્રાપ્ત થયો?

ઉત્તર . જીવરાશિ, પુનર્જન્મ, બન્ધ અને મોક્ષ એ તત્ત્વો પ્રથમ તો આગમસિદ્ધ છે અને પછી સ્વસંવેદન (સ્વાનુભવ) સિદ્ધ પણ છે. જ્યારે બન્ધ, મોક્ષ અને જીવરાશિને માન્ય કરી ત્યારે અભવ્ય અને ભવ્યની કલ્પના તેમ જ અવ્યવહાર અને વ્યવહાર રાશિની કલ્પના પણ ઉત્પન્ન થઈ. આ જ કલ્પના સ્પષ્ટરૂપે જૈન દર્શનમાં છે. જૈનેતર દર્શનોમા પણ આ કલ્પનાનાં બીજ ઉપલબ્ધ છે, જેમ કે, અનેકાત્મવાદી સાંખ્ય, ન્યાય આદિ દર્શનોમાં

જીવની પ્રાથમિક સ્થિતિ અને અન્તિમ સ્થિતિ અત્યન્ત ભિન્ન હોવા છતાં પણ, તે એક રૂપે સમાન છે આધુનિક સ્થિતિ અવ્યવહાર–રાશિના

જીવોની અને અન્તિમ સ્થિતિ મુક્ત જીવોની. બન્ને સ્થિતિ વચ્ચે અંતર માત્ર આત્મિક શક્તિઓની આવૃતતા (અપ્રકટતા)નું છે, છતાં બન્ને વચ્ચે સમાનતા પણ છે. તે સમાનતા એ છે કે મુક્ત જીવો વિસદૃશ (વૈભાવિક અર્થાત્ કર્મજન્ય) પરિણામ પ્રાપ્ત કરતા નથી; તે જ પ્રકારે અવ્યવહાર-રાશિના જીવો અર્થાત્ અનાદિ અનન્ત અભવ્ય જીવો અથવા તો તેમાંથી કદી બહાર ન નીકળી શકનાર એવા જાતિભવ્ય જીવો પણ વિસદૃશ પરિણામ પ્રાપ્ત કરી શકતા નથી, એટલે કે જેમ મુક્ત જીવો મુક્તિરૂપ સદૃશ (સ્વાભાવિક) પરિણામનો નિરંતર અનુભવ કરે છે તેમ અવ્યવહાર-રાશિના પેલા જીવો પણ નિગોદ-અવસ્થાયોગ્ય ગાઢ અજ્ઞાન આદિ સદૃશ પર્યાય-પરંપરાનો જ અનુભવ કરે છે. મુક્ત જીવો મોહપૂર્વક સુખદુઃખનો અનુભવ કરતા નથી, અને અવ્યવહાર-રાશિના જીવો પણ સુખદુઃખને વ્યક્ત (પ્રકટ)પણે અનુભવી શકતા નથી. મુક્ત જીવોની તે અવસ્થા બદલાતી નથી, અને અવ્યવહાર-રાશિના કાયમી જીવોની પણ તે અવસ્થા ધ્રુવ (કાયમની) છે આ પ્રકારે બન્ને પ્રકારના જીવોમા સમાનતા હોવા છતાં કોઈ નૈગોદિક અવસ્થાની ઉપાસના કરતુ નથી, પરન્તુ સર્વ કોઈ મુક્તિની ઉપાસના કરે છે જગતમાં ગમે તેવી આસમાની સુલતાની થઈ જાય, તોપણ મુક્ત જીવોને શું ? તે જ પ્રકારે નિગોદના જીવોને પણ શું ?

મુક્ત જીવોને આર્ત, રૌદ્ર ધ્યાનના પ્રસંગો નથી, તેમ નૈગોદિક જીવોને પણ નથી તો પછી નૈગોદિક અવસ્થાની ઉપાસના કરવામા હરકત શી છે ? એકમાં જ્ઞાનપૂર્વક દુઃખનો અભાવ છે તો બીજીમા અજ્ઞાનપૂર્વક દુઃખનો અભાવ છે, પરન્તુ દુઃખનો અભાવ તો બન્ને સ્થિતિમા સમાન છે, જ્યાં ... એક સ્થિતિ ઉપાદેય અને બીજી હેય છે, તેના કારણો શાં ? તેનો ...ાછળ ...ર કરવો જોઈએ આ પ્રશ્નનો ઉત્તર ગર્ભિત રીતે તો મળી જ ગયો તોપણ તેને વધારે સ્પષ્ટ કરીએ.

...અવ્યવહાર-રાશિમાથી નીકળવાની અવસ્થા અને અગિયારમા ગુણ... સુધીની અવસ્થા વચ્ચે વિવિધ પરિવર્તન (ઉત્પાત-નિપાત ... ને હ્રાસ અર્થાત્ ચઢાવ-ઉતાર) થયા કરે છે. દુઃખ-સુખની અનેક... તેમાં હોય છે વિકાસ અને હ્રાસ, જેને જૈન પરિભાષામા અ... ...હાનિ કહી છે તે આ સ્થિતિમા સ્પષ્ટ જણાય છે

...રરાશીય જીવો અને મુક્ત જીવોમાં ખાસ ...સ અને વિ...

કર્યો છે? વિકાસ અને હ્રાસ શબ્દ સાપેક્ષ છે, જેમાં હ્રાસ હોય તેમાં વિકાસ પણ હોય છે. મુક્તિમાં હ્રાસ નથી, તેથી તેમાં વિકાસનો પણ અવસર નથી. અવ્યવહાર–રાશિમાં શું હ્રાસ હોઈ શકે છે? ના. તેથી જ તેમાં વિકાસ હોય એમ પણ કહી શકાય નહિ.

આત્માની સ્વાભાવિક શક્તિનો વિકાસ (વૃદ્ધિ) તે જ વૈભાવિક શક્તિનો હ્રાસ (હાનિ) છે, અને વૈભાવિકતાનો વિકાસ તે જ સ્વાભાવિકતાનો હ્રાસ છે. અવ્યવહાર–રાશિના જીવોમાં સ્વાભાવિક શક્તિનો વિકાસ હોત તો જરૂર કાષાયિક (વૈભાવિક) સ્થિતિનો હ્રાસ હોત, પરન્તુ અવ્યવહાર–રાશિના જીવોમા સ્વાભાવિક શક્તિનો અંશે પણ વિકાસ હોતો નથી, તેથી તેમનામા કષાયની માત્રા (પ્રમાણ કે માપ) સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય જીવોની અપેક્ષાએ ન્યૂન હોવા છતા પણ વૈભાવિક શક્તિનો હ્રાસ સમજવાનો નથી. સૂતેલા અથવા તો મૂર્છા પામેલા મનુષ્યમાં ક્રોધ, લોભ આદિ કાષાયિક પરિણામનો સ્પષ્ટ પ્રાદુર્ભાવ (આવિર્ભાવ કે પ્રકટતા) નથી, તેથી શું તે મનુષ્યને જાગ્રત મનુષ્યની અપેક્ષાએ વધારે વિકસિત કહેવો? અર્થાત્ જેમ ગાઢ નિદ્રામા સૂતેલા અથવા તો સખ્ત મૂર્છાને પામેલા મનુષ્યને કાષાયિક પ્રવૃતિ ન કરી શકવા માત્રથી મન્દકષાયી કે વિકસિત કહી શકાય નહિ, તે જ પ્રકારે અવ્યવહાર–રાશિગત જીવો સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય જીવો પ્રમાણે કાષાયિક પરિણામ ન કરી શકવા માત્રથી વિકસિત કહી શકાય નહિ. મૂળમા તેમનામા જે કાષાયિક પરિણતિની માત્રા થોડી છે તેનું કારણ આત્મિક વિશુદ્ધિની ન્યૂનતા નહિ, પરન્તુ સાધનની અપૂર્ણતા અથવા તો નિર્બળતા માત્ર છે.

સંજ્ઞી જીવોના પ્રમાણે જ કષાયબન્ધ જરૂર કરી શકે છે આમ હોવાથી યોગ્યતાની અપેક્ષાએ અવ્યવહાર–રાશિગત જીવો વિકસિત નહિ, પરન્તુ નિકૃષ્ટ (હીનતમ અર્થાત્ હલકામાં હલકી શ્રેણીના) જ છે.

પરન્તુ આમાં એક વસ્તુ ખાસ ધ્યાનમાં લેવા યોગ્ય છે, જેના પર આપણું ધ્યાન હજી ગયું નથી તે એ કે સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય જીવોમાં જેમ કષાયની માત્રા અધિક હોય છે, તેમ જ તેની સાથે જ્ઞાન અને વીર્યના ક્ષયોપશમની માત્રા પણ અધિક હોય છે આ ક્ષાયોપશમિક માત્રા પર જ વિકાસનો આધાર છે, નૈગોદિક એકેન્દ્રિય જીવમા સ્પર્શનેન્દ્રિયાવરણના અસંત અલ્પ અંશનો તેમ જ વીર્યાન્તરાયના પણ અતિ અલ્પાશનો ક્ષયોપશમ હોય છે. બાકીની સર્વ ઇન્દ્રિયોના આવરણકર્મોનો સર્વઘાતી રસ ઉદયમાં હોવાથી તે એકેન્દ્રિય જીવોને બીજી ઇન્દ્રિયો દ્વારા સ્વલ્પ પણ જ્ઞાન થઈ શકતું નથી, પરિણામે તે જીવોનુ અજ્ઞાન એટલુ બધું ગાઢ હોય છે કે તેથી તે સુપ્ત કે મૂર્ચ્છિત બરાબર છે વીર્યાન્તરાય કર્મનો પણ ક્ષયોપશમ એટલો અલ્પ હોય છે કે તે પોતાના સુખદુ:ખનો અનુભવ સ્પષ્ટપણે કરવામાં અસમર્થ છે આ પ્રમાણે જ્ઞાન અને વીર્યની અત્યન્ત ન્યૂનતા તે જ તેઓની આત્મિક અશુદ્ધિ છે, તે જ અવિકસિતતા છે કાષાયિક માત્રાની ન્યૂનતાનુ કારણ પણ તે જ તેની ન્યૂનતાઓ અર્થાત્ આત્મિક અશુદ્ધિ છે, અને નહિ કે સ્વાભાવિક શક્તિઓનો વિકાસ જેમ એક શસ્ત્રાસ્ત્રસંપન્ન પ્રજા બીજી પ્રજાને સંપૂર્ણ રીતે પોતાના તાબામા લઈ લે છે અને તેને ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ આદિ વડે કચડી નાખે છે, ત્યારે તેનાથી બીજી જંગલી, બાયલી, નામર્દ, પશુપ્રાય નગ્ન પ્રજા આક્રમણ કરતી પ્રજા સામે ઝૂઝવાને બદલે તેને દેખી નાસી જાય અને છુપાઈ જાય છે, તો શુ તેથી તે જંગલી પ્રજાને વિકસિત કહી શકીએ? કદી નહિ, કારણ કે જોકે હમણા તેનામાં ક્રોધ, લોભ આદિ ઓછા દેખાય છે, પરન્તુ તેના બદલે ભય અધિક જણાય છે, અને પરિણામે ક્રોધ, લોભ આદિ અધિક માત્રામા દેખાવાનો પૂર્ણ સંભવ છે આ જ પ્રમાણે એકેન્દ્રિય જીવોના સંબંધી સમજવુ જોઈએ.

અનાદિ કાળથી કાષાયિક માત્રા ન્યૂન હોવા છતા પણ જે એકેન્દ્રિય જીવો અવ્યવહાર–રાશિમાથી બહાર નીકળી શક્યા નથી તેમ જ નીકળી શકવાના પણ નથી તેનુ કારણ જ્ઞાન અને વીર્યરૂપ આત્મિક શક્તિની આત્યંતિક ન્યૂનતા અર્થાત્ આત્મિક અશુદ્ધિ જ છે. એકવાર જ્ઞાન અને વીર્યની

વૃદ્ધિની સાથે કાષાયિક માત્રા વધે તોપણ તે જ જ્ઞાન અને વીર્ય દ્વારા ઉપયોગપૂર્વક તે જ કાષાયિક માત્રા ન્યૂન કરવાનો અને તેને અત્યંત નિર્મૂલ કરવાનો સંભવ સંજ્ઞી જીવોમા છે, અને આ પ્રકારનો જે સભવ તે જ વિકાસ છે તેથી એકેન્દ્રિય જીવોમાં વિકાસનો પ્રશ્ન જ નથી. વિકાસનો આરંભ જ્ઞાન અને વીર્યની વૃદ્ધિની સાથે હોય છે, અને આ વૃદ્ધિ વૈભાવિક વિકાસની સહચારિણી હોય તોપણ તેવી અવસ્થામાં કોઈ ને કોઈ વખત પણ સ્વાભાવિક વિકાસનો સંભવ છે.

૨ પ્રશ્ન: અવ્યવહાર-રાશિના નિગોદ જીવોને તીવ્ર કષાયનો ઉદય અનાદિ કાળથી આજ સુધી અસંભવ હોવા છતા તેઓએ નિગોદમા જઈ જ્ઞાન તેમ જ વીર્યની આત્યંતિક અભાવગ્રસ્ત અવસ્થા કેવી રીતે પ્રાપ્ત કરી? જો તેનો ઉત્તર એ જ હોય કે અનાદિ કાળથી તે જીવો એ જ સ્થિતિમા છે તો તે મારી ક્ષુદ્ર બુદ્ધિને ઠીક લાગતો નથી. કારણ કે કર્મ તો સ્વકૃત જ છે જીવરાશિની હીનતમ અવસ્થામા જવાને અને રહેવાને માટે જ્ઞાનાવરણીય અને વીર્યાન્તરાય કર્મનો જેટલો રસ અને સ્થિતિનો બંધ કરવાની જરૂર છે તેટલો બંધ કરવાનો અવસર તે જીવોને અત્યાર લગી પ્રાપ્ત થયો નથી, કેમ કે તે જીવો હજી સુધી વ્યવહાર-રાશિમા આવ્યા જ નથી જ્યારે તે જીવોને અવ્યવહાર-રાશિનુ નામ આપ્યુ છે ત્યારે આટલુ તો માની લીધેલુ જ છે કે તે જીવોએ સંજ્ઞી જીવોના ભવને પ્રાપ્ત કર્યો નથી તો પછી આવા ચીકણા કર્મ તે જીવોએ ક્યારે બાંધ્યાં? જો એમ કહેવામા આવ્યુ હોત કે નિગોદમા જતા પહેલા તે જીવોએ અન્યાન્ય ભવોમા ઘોર ચીકણા કર્મનો બંધ કરી લીધેલો, જેથી નિગોદમા હીનતમરૂપે રહેવુ પડે છે, તો તે કહેવુ ઠીક ગણાત પરન્તુ જ્યારે આપણે કહીએ છીએ કે અનાદિ કાળથી તે જીવો નિગોદમાં જ છે તો પ્રશ્ન એ ઉઠે છે કે તેમણે એ ગાઢ ચીકણા કર્મનો ક્યારે બંધ કર્યો? જો તેને અવ્યવહાર-રાશિના સંજ્ઞા ન હોત તો એમ પણ કહી શકાત કે તેણે પણ અનાદિ કાળના કોઈ ને કોઈ વખતે તીવ્ર કષાયના ઉદયથી ચીકણા કર્મનો બંધ કર્યો હશે, પરન્તુ જ્યારે તેમને અવ્યવહાર-રાશિ જ કહ્યા છે—અનાદિકાળ [illegible] વર્તમાન [illegible] ગયા તેઓ વ્યવહાર-રાશિમા આવ્યા જ નથી—ત્યારે [illegible] ઉપસ્થિત થાય છે કે તેઓએ [illegible] [illegible]

ભરી દીધા? અદ્વૈતવાદીએ બ્રહ્મમા માયા (કર્મ?) ની ઉત્પત્તિ અર્થાત્ માયા યુક્ત બ્રહ્મમા સસારની ઉત્પત્તિ માનેલી છે, તે મતની કાઈ સમાનતા જૈન નિગોદવાદમા છે?

બ્રહ્મ માયાયુક્ત થઈને અનન્ત જીવરાશિમા પરિણામ પામ્યુ, અને પછી એ જીવો નિગોદમાં આત્યન્તિક અજ્ઞાનમાં રહી સ્વાભાવિકરૂપે માયા (કર્મ, અજ્ઞાનતા?)ને ક્ષીણ કરતા કરતા કાઇક વીર્યનો વિકાસ પ્રાપ્ત કરી, ક્રમશ આત્મિક શક્તિઓને વધારીને ખીલવી, મુક્તિ પ્રાપ્ત કરી બ્રહ્મમાં મળી જાય છે એ મત નિગોદ જીવોની સસ્થા દ્વારા શું આડકતરી રીતે પ્રતિપાદિત નથી થતો?

આપે નિગોદના જીવોને 'જીવની પ્રાથમિક અવસ્થા'માં બતાવ્યા છે તે 'પ્રાથમિક' શબ્દ શું આડકતરી રીતે સૃષ્ટિની રચનાની આદિ તો સૂચવતો નથી?

ઉત્તર અવ્યવહાર-રાશિના જીવો, કે જે કદી વ્યવહાર-રાશિને પામ્યા નથી, તેઓના કર્મપ્રવાહનુ કારણ પ્રધાનત મિથ્યાત્વ (અજ્ઞાન યા અવિદ્યા) છે; કષાય તથા યોગ અપ્રધાન (ગૌણ) કારણ છે. તેથી વ્યવહાર-રાશિમાં ન આવવા છતા અજ્ઞાનની તીવ્રતાને લઈ તેઓના કર્મબધપ્રવાહમા અનુપપત્તિ નથી એ જીવોની હીનતમ અવસ્થાનુ મુખ્ય કારણ અજ્ઞાનની તીવ્રતા છે.

હવે પ્રશ્ન એ રહ્યો કે તે અજ્ઞાન આવ્યુ ક્યાંથી અને ક્યારે? તેનો ઉત્તર અનાદિ કહેવા સિવાય બીજો નથી વેદાન્તની પ્રક્રિયા માનવાથી પણ સમાધાન થઈ શકતુ નથી, કેમ કે તે પ્રક્રિયામાં પણ એ જ પ્રશ્ન ઉપસ્થિત થાય તેમ છે કે જે જૈન પ્રક્રિયામા ઉદ્ભવે છે બ્રહ્મમાં માયા ક્યાંથી આવી અને શા માટે આવી? ઈશ્વરકૃત સૃષ્ટિ માનવાથી પણ બુદ્ધિને સતોષ થાય તેમ નથી, કારણ કે બુદ્ધિ શબ્દચાતુર્ય માત્રથી રજિત થતી નથી; ને તો ફરી પ્રશ્ન પૂછવા ખડો થઈ જાય છે કે ઈશ્વરે એ પ્રમાણે શા હેતુથી, ક્યારે અને ક્યા કર્યું? ઉત્તર ન મળવાથી તે ત્યા થાકી જાય છે, અને ત્યારે ત્યાં પણ શ્રદ્ધા જ તેની જગ્યા લે છે. ખરી રીતે તો આવા પ્રશ્નોના વિષયમા બુદ્ધિ કાર્ય કરી શકતો નથી તેથી ત્યા શ્રદ્ધાથી જિજ્ઞાસાને તૃપ્ત કરવી જોઈએ, અથવા તો કાઈ પણ છે જ નહિ એવુ માની લઈ નાસ્તિક અગર શૂન્યવાદી બની જવુ જોઈએ, અથવા જીવરાશિને ઉડાવી દઈ ચાર્વાક બની જવુ જોઈએ અને ત્યા જ ડાગણને લઈને બધ મનુષ્યોએ ચાર્વાકના '...

ગ્રહણ કર્યો છે, બહુ શૂન્યવાદી પણ બન્યા છે, છતા ઘણા શ્રદ્ધાજીવી પણ રહ્યા, અને જેઓએ માત્ર તર્કવાદનો આશ્રય લીધો છે તેઓ તો અંત સુધી અસંતુષ્ટ રહીને કાં તો પાગલ બન્યા છે અને કાં તો મરણ પણ પામ્યા છે.

હજી હુ તો શ્રદ્ધાજીવી છુ. મારી બુદ્ધિને હુ જ્યા ખડી કરું છું ત્યા તે આગળ ને આગળ પ્રશ્ન ઉઠાવે છે અને તેને ગમે તેટલી દૂર લઈ જાઉં તોપણ ફરી ફરીને પ્રશ્નોની બાણવૃષ્ટિ કરી હેરાન કરે છે. આથી કરીને જ કેન્ટ, સ્પેન્સર આદિ વિદ્વાનોએ ઘણી ચર્ચાઓને અજ્ઞેય કહી છોડી દીધી છે.

આખરે હુ પણ અતમા 'અજ્ઞેય' કહીને જ તેને છોડી દઉ છું. સર્વજ્ઞને પૂછવામાં આવે અને તે ઉત્તર દે તો હું તેમને પણ આગળ પૂછી શકું કે 'ઠીક, તેનાથી આગળ શુ તે કહો' આથી સર્વજ્ઞ પણ અનેક વિષયોમા 'અનાદિ તેમ જ અનંત' શબ્દો જ ઉપયોગમા લેશે એથી બુદ્ધે તો આવા જીવનસ્પર્શ રહિત પ્રશ્નોમા પડવાની જ સ્પષ્ટ મનાઈ કરી છે. 'જગતનો કોઈ કર્તા છે કે નહિ?' 'સસાર આદિ છે કે અનાદિ?' 'અવિદ્યા ક્યારે અને ક્યાથી આવી?' 'જીવ નિત્ય છે કે અનિત્ય?' 'તે વ્યાપક છે કે અવ્યાપક?' આવા તર્કો કરવા જ નહિ જોઈએ, અથવા તો શ્રદ્ધાથી કાંઈ ને કાંઈ સમાધાન કરી લેવુ જોઈએ. તેનાથી જીવનના વિકાસ પર કોઈ સારી–નરસી અસર પડતી નથી

વેદાન્ત સાથે કોઈક અંશમા સમાનતા ભલે હોય, પરંતુ સર્વાંશમા તો નથી મારો 'પ્રાથમિક' શબ્દ આપેક્ષિક છે, તે સાન્તિત્વનો દ્યોતક નથી.

—જૈન સાહિત્ય સંશોધક, ખંડ ૩ અંક ૨

સ્ત્રીજાતિને દૃષ્ટિવાદ અંગ ભણવાના નિષેધ પર એક વિચાર

[૮]

સમાનતા : વ્યવહાર અને શાસ્ત્ર એ બન્ને સ્ત્રીજાતિને શારીરિક અને આધ્યાત્મિક વિકાસમા પુરુષજાતિની સમાન સિદ્ધ કરે છે. શારીરિક બળમાં પ્રો. રામમૂર્તિથી કુમારી તારાબાઈ કોઈ પણ રીતે ઊતરે તેવી નથી તેવી જ રીતે વક્તૃત્વકલામાં અને અનેક પ્રકારના વિચારમા વિદુષી એની બિસેન્ટ કોઈ પણ વિચારક કે વક્તા પુરુષથી ઊતરે એવાં નથી. તે જ પ્રકારે કવિત્વશક્તિમા કોઈ પણ પ્રસિદ્ધ પુરુષ કરતાં શ્રીમતી સરોજિનીદેવી પાછાં પડે તેવાં નથી. ખરી રીતે નિયમ એ છે કે સમાન સાધન અને અવસર મળે તો સ્ત્રી પણ પુરુષ જેટલું સામર્થ્ય પ્રાપ્ત કરી શકે છે. શ્વેતાંબર આચાર્યોએ સ્ત્રીને પુરુષની બરાબર કેવલજ્ઞાન અને મોક્ષની અધિકારિણી અર્થાત્ શારીરિક અને આધ્યાત્મિક વિકાસની અધિકારિણી સિદ્ધ કરેલ છે. પ્રમાણ માટે જુઓ પ્રજ્ઞાપના સૂ. ૭, નંદી સૂ. ૨૧.

આ વિષયમાં મતભેદ ધરાવનાર દિગંબર આચાર્યો સામે તેઓએ (શ્વેતાંબરાચાર્યોએ) બહુ લખ્યું છે જુઓ નંદી–ટીકા પૃ ૧૩૧–૧૩૩, પ્રજ્ઞાપના–ટીકા પૃ. ૨૦–૨૨; શાસ્ત્રવાર્તાસમુચ્ચય–ટીકા પૃ. ૪૨૫–૪૩૦

આલંકારિક પંડિત રાજશેખરે મધ્યસ્થભાવપૂર્વક સ્ત્રીજાતિને પુરુષજાતિની સમાન વર્ણવી છે.

'पुरुषवत् योषितोऽपि कवीभवेयुः। संस्कारो ह्यात्मनि समवैति, न स्त्रैणं पौरुषं वा विभागमपेक्षते। श्रूयन्ते दृश्यन्ते च राजपुत्र्यो महामात्यदुहितरो गणिकाः कौतुकिभार्याश्च शास्त्रप्रहतबुद्धयः कवयश्च।'

—કાવ્યમીમાંસા, અધ્યાય ૧૦

અર્થાત્ સ્ત્રીઓ પણ પુરુષની જેમ કવિ થઈ શકે, કારણ કે સંસ્કાર—શિક્ષા એ આત્મામાં ઊતરે છે તે કોઈ સ્ત્રીજાતિ કે પુરુષજાતિના ભેદની અપેક્ષા—પરવા નથી કરતો. સાંભળવામાં આવે છે અને જોવામાં પણ આવે છે કે

રાજપુત્રીઓ, મહામંત્રીની પુત્રીઓ, ગણિકાઓ અને નટભાર્યાઓ શાસ્ત્રજ્ઞ તેમ જ કવિ હતી અને છે

વિરોધ: સ્ત્રીને દૃષ્ટિવાદ ભણવા માટે જે નિષેધ કરાયેલો છે તેમાં બે પ્રકારે વિરોધ આવે છે: (૧) તર્કદૃષ્ટિથી, (૨) શાસ્ત્રની મર્યાદાથી.

(૧) એક તરફ સ્ત્રીને કેવલજ્ઞાન અને મોક્ષ સુધ્ધાંની અધિકારિણી માનવી અને બીજી તરફ દૃષ્ટિવાદની–શ્રુતજ્ઞાન વિશેષની પણ અધિકારિણી ન માનવી –અયોગ્ય ઠરાવવી એ એવું વિરુદ્ધ જણાય છે જેમ કોઈને રત્ન સોંપીને કહેવું કે તું કોડીની રક્ષા નહિ કરી શકે

(૨) દૃષ્ટિવાદના અધ્યયનનો નિષેધ કરવાથી શાસ્ત્રકથિત કાર્યકારણની મર્યાદામાં પણ બાધ આવે છે. તે આ રીતે શુક્લધ્યાનના પહેલા બે પાદ (અંશ) પ્રાપ્ત કર્યા વિના કેવલજ્ઞાન ઉત્પન્ન નથી થતું. પૂર્વ નામક શ્રુતના જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ વિના શુક્લધ્યાનના પ્રથમનાં બે પાદ પ્રાપ્ત નથી થતા અને પૂર્વશ્રુત એ દૃષ્ટિવાદનો એક હિસ્સો છે આ મર્યાદા શાસ્ત્રમાં નિર્વિવાદ સ્વીકારવામાં આવી છે—" शुक्ले चाद्ये पूर्वविद. ।" તત્ત્વાર્થ અ. ૯, સૂ. ૩૯.

આ કારણથી સ્ત્રીને દૃષ્ટિવાદના અધ્યયનની અધિકારિણી ન માની કેવલજ્ઞાનની અધિકારિણી માનવી એ સ્પષ્ટ વિરુદ્ધ જણાય છે

દૃષ્ટિવાદના અનધિકારના કારણોના વિષયમાં બે પક્ષ છે પહેલો પક્ષ જિનભદ્રગણી ક્ષમાશ્રમણ આદિનો એ પક્ષ એમાં તુચ્છત્વ, અભિમાન, ઇન્દ્રિય-ચાંચલ્ય, મતિમાંદ્ય આદિ માનસિક દોષો બતાવીને તેને દૃષ્ટિવાદના અધ્યયનનો નિષેધ કરે છે. તે માટે જુઓ વિશેષાવશ્યકભાષ્ય ગા. ૫૫૨

બીજો પક્ષ હરિભદ્રસૂરિ આદિનો છે આ પક્ષ અશુદ્ધિરૂપ શારીરિક દોષ બતાવીને તેનો નિષેધ કરે છે. જેમ કે—

" [illegible] । [illegible] ।

'श्रेणिपरिणतौ तु कालगर्भवद्भावतो भावोऽविरुद्ध एव।'

—લલિતવિસ્તરા તથા એની મુનિચંદ્રસૂરિકૃત પંજિકા પૃ ૧૧૧.

તપ, ભાવના આદિથી જ્યારે જ્ઞાનાવરણીયનો ક્ષયોપશમ તીવ્ર થઈ જાય છે ત્યારે સ્ત્રી શાબ્દિક પાઠ સિવાય જ દૃષ્ટિવાદનું સંપૂર્ણ અર્થજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી શકે છે અને શુક્લધ્યાનના બે પાદ પ્રાપ્ત કરીને કેવલજ્ઞાન પણ પ્રાપ્ત કરી શકે છે.

'यदि च शास्त्रयोगागम्यसामर्थ्ययोगावसेयभावेष्वति सूक्ष्मेष्वपि तेषां विशिष्टक्षयोपशमप्रभवप्रभावयोगात् पूर्वधरस्येव बोधातिरेकसद्भावादाद्यशुक्लध्यानद्वयप्राप्ते केवलावाप्तिक्रमेण मुक्तिप्राप्तिरिति न दोष.। अध्ययनमन्तरेणापि भावतः पूर्ववित्त्वसंभवात्, इति विभाव्यते, तदा निर्ग्रन्थीनामप्येवं द्वितयसंभवे दोषाभावात्।' —शास्त्रवार्तासमुच्चय पृ. ४२६.

ગુરુમુખથી શાબ્દિક અધ્યયન કર્યા વિના અર્થબોધ ન થાય એવો નિયમ નથી, કારણ કે અનેક માણસો એવા દેખાય છે કે જેઓ કોઈ પણ માણસ પાસે ભણ્યા વિના જ મનન અને ચિંતન દ્વારા પોતાના ઇષ્ટ વિષયનું ઊંડું જ્ઞાન મેળવી શકે છે.

હવે રહ્યો શાબ્દિક અધ્યયનનો નિષેધ તે નિષેધ આ પ્રશ્ન ઉપર અનેક તર્ક–વિતર્ક ઉત્પન્ન કરે છે, જેમ કે, જે મનુષ્યની અંદર અર્થજ્ઞાનની યોગ્યતા માની શકાય, તે મનુષ્યને શાબ્દિક અધ્યયન માટે અયોગ્ય માનવો એ કેટલું સંગત છે? શબ્દ એ તો અર્થજ્ઞાનનું સાધનમાત્ર છે. તપ, ભાવના આદિ અન્ય સાધનોથી જે માણસ અર્થજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી શકે છે તે માણસ તે જ્ઞાન શબ્દ દ્વારા સંપાદન કરવામાં અયોગ્ય છે એમ કહેવું તે ક્યાં સુધી વ્યાજબી છે? શાબ્દિક અધ્યયનના નિષેધ માટે જે તુચ્છપણું, અભિમાન આદિ માનસિક દોષ દેખાડવામાં આવ્યા છે તે શું પુરુષજાતિમાં નથી હોતા? જો વિશિષ્ટ પુરુષોમાં તે દોષોનો અભાવ હોવાથી પુરુષસામાન્ય માટે શાબ્દિક અધ્યયનનો નિષેધ ન કર્યો તો શું પુરુષ સમાન વિશિષ્ટ સ્ત્રીઓનો સંભવ નથી? અને જો અસંભવ હોય તો સ્ત્રીમોક્ષનું વર્ણન પણ કેમ સંભવી શકે? શાબ્દિક અધ્યયન માટે જે શારીરિક દોષોની સંભાવના કરી છે તે પણ શું બધી સ્ત્રીઓને લાગુ પડે છે? જો કેટલીક સ્ત્રીઓમાં લાગુ પડતી હોય તો, શું કેટલાક પુરુષોમાં પણ શારીરિક અશુદ્ધિની સંભાવના નથી? આવી દશામાં પુરુષજાતિને છોડી સ્ત્રીજાતિ માટે શાબ્દિક અધ્યયનનો નિષેધ શા માટે

કરાયો? આ તર્કોના સંબંધમાં સંક્ષેપમાં એટલું જ કહેવાનું છે કે માનસિક અથવા શારીરિક દોષ બતાવીને શાબ્દિક અધ્યયનનો જે નિષેધ કરાયેલો છે તે પ્રાયિક જણાય છે, અર્થાત્ વિશિષ્ટ સ્ત્રીઓ માટે અધ્યયનનો નિષેધ નથી: આના સમર્થનમાં એમ કહી શકાય કે જો વિશિષ્ટ સ્ત્રીઓ દૃષ્ટિવાદનું અર્થજ્ઞાન, વીતરાગભાવ, કેવળજ્ઞાન અને મોક્ષને પ્રાપ્ત કરવામાં સમર્થ થાય છે, તો પછી તેનામાં માનસિક દોષની સંભાવના પણ કેમ હોઈ શકે? તેમ જ વૃદ્ધ, અપ્રમાદી અને પરમપવિત્ર આચારવાળી સ્ત્રીઓમાં શારીરિક અશુદ્ધિ પણ કેમ બતાવી શકાય? જેને દૃષ્ટિવાદના અધ્યયન માટે યોગ્ય માન્યા તે પુરુષો પણ—જેવા કે સ્થૂલભદ્ર, દુર્બલિક પુષ્યમિત્ર આદિ—તુચ્છત્વ, સ્મૃતિદોષ વગેરે કારણોથી દૃષ્ટિવાદની રક્ષા ન કરી શક્યા.

'तेण चिंतियं भगिणीणं इड्ढिं दरिसेमि त्ति सीहरूवं विउव्वइ।'

—આવશ્યક વૃત્તિ પૃ ૬૯૮-૧

'ततो आयरिएहिं दुब्बलियपुस्समित्तो तस्स वायणारिओ दिण्णो। ततो सो कइवि दिवसे वायणं दाऊण आयरियमुवट्ठिओ भणइ-मम वायणं देंतस्स नासति, जं च सण्णायघरे नाणुप्पेहियं, अतो मम अज्झरंतस्स नवमं पुव्वं नासिहिति त्ति। ताहे आयरिया चिंतेंति—जइ ताव एयस्स परममेहाविस्स एवं झरंतस्स नासइ अन्नस्स चिरनट्ठं चेव।'

—આવશ્યકવૃત્તિ પૃ ૩૦૬.

આવી વસ્તુસ્થિતિ હોવા છતાં પણ સ્ત્રીઓ માટે જ અભ્યાસનો નિષેધ કેમ કરાયો? આ પ્રશ્નનો ઉત્તર બે રીતે આપી શકાય: (૧) સમાન સામગ્રી મળવા છતાં પણ પુરુષોની સરખામણીમાં પુરુષો કરતાં સ્ત્રીઓનું ઓછી સંખ્યામાં તૈયાર થવું, અને (૨) બીજી ઐતિહાસિક પરિસ્થિતિ.

અને વૈદિક વિદ્વાનોએ શારીરિક શુદ્ધિને અગ્રસ્થાન આપીને સ્ત્રી અને શૂદ્રજાતિને વેદના અધ્યયન માટે અયોગ્ય ઠરાવી 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्' એમ કહ્યું છે.

આ વિરોધી સમ્પ્રદાયોની એટલી બધી અસર પડી કે તેને લીધે સ્ત્રીજાતિની યોગ્યતા પુરુષ સમાન માનનાર શ્વેતામ્બર આચાર્યો પણ તેને વિશેષ અધ્યયન માટે અયોગ્ય બતાવવા લાગ્યા હશે

અગિયાર અંગ આદિ ભણાવવાનો અધિકાર માનવા છતાં પણ ફક્ત બારમા અંગના નિષેધનું કારણ એ પણ લાગે છે કે વ્યવહારમાં દૃષ્ટિવાદનું મહત્ત્વ સચવાય તે કાળમાં વિશેષપણે શારીરિક શુદ્ધિપૂર્વક ભણવામાં વેદ આદિ ગ્રંથોની મહત્તા સમજાતી હતી. દૃષ્ટિવાદ બધા અંગોમાં પ્રધાન હતું, એટલા માટે વ્યવહારદૃષ્ટિથી તેની મહત્તા બતાવવા માટે બીજા મોટા પાડોશી સમાજનું અનુકરણ થવું સ્વાભાવિક છે. આ કારણથી પારમાર્થિક દૃષ્ટિએ સ્ત્રીને સંપૂર્ણ રીતે યોગ્ય માનવા છતાં પણ આચાર્યોએ વ્યાવહારિક દૃષ્ટિથી શારીરિક અશુદ્ધિનો વિચાર કરી તેને ફક્ત શાબ્દિક અધ્યયન માટે અયોગ્ય બતાવી હોય એમ લાગે છે.

ભગવાન ગૌતમબુદ્ધે સ્ત્રીજાતિને ભિક્ષુપદ માટે અયોગ્ય ઠરાવી હતી, પરંતુ ભગવાન મહાવીરે તો પ્રથમથી જ તેને પુરુષની સમાન ભિક્ષુપદની અધિકારિણી ઠરાવી હતી આ કારણથી જ જૈન શાસનમાં ચતુર્વિધ સંઘ પ્રથમથી જ સ્થાપિત છે અને સાધુ તથા શ્રાવકોની અપેક્ષાએ સાધ્વીઓ તથા શ્રાવિકાઓની સંખ્યા આરંભથી જ અધિક રહેલી છે પરંતુ પોતાના પ્રધાન શિષ્ય આનંદના આગ્રહથી ગૌતમબુદ્ધે જ્યારે સ્ત્રીઓને ભિક્ષુપદ આપ્યું ત્યારે તેની સંખ્યા ધીમે ધીમે વધતી ગઈ અને કેટલીક શતાબ્દીઓ પછી અશિક્ષા, કુપ્રબંધ આદિ કેટલાંક કારણોથી તેમાંથી ઘણી સ્ત્રીઓ આચારભ્રષ્ટ થઈ, જેને લીધે બૌદ્ધ સંઘ એક પ્રકારે દૂષિત મનાવા લાગ્યો. સંભવ છે કે આ પરિસ્થિતિની જૈનો ઉપર પણ કાંઈ અસર પડી હોય, જેથી દિગંબર આચાર્યોએ તો સ્ત્રીઓને ભિક્ષુપદ માટે પણ અયોગ્ય ઠરાવી અને શ્વેતામ્બર આચાર્યોએ એ પ્રમાણે નહિ કરતાં સ્ત્રીજાતિનો ઉચ્ચ અધિકાર કાયમ રાખીને પણ તેમાં દુર્બળતા, ઇન્દ્રિયચપળતા આદિ દોષો વિશેષ રૂપથી બતાવ્યા, કેમ કે સહચર સમાજોના બાહ્યાચારોના દૃષ્ટિબિંદુ પર પ્રભાવ પડે તે અનિવાર્ય છે.

—જૈન સાહિત્ય સંશોધક, ખંડ ૩, અંક ૩.

જૈન ન્યાયનો ક્રમિક વિકાસ

[૯]

ન્યાય અને ન્યાયશાસ્ત્ર : જે અનુમાનપ્રણાલિકાથી સંદિગ્ધ વસ્તુનો નિર્ણય કરી શકાય છે તે અનુમાનપદ્ધતિને 'ન્યાય' કહેવામાં આવે છે ને શાસ્ત્રમાં આવી અનુમાનપદ્ધતિનો વિચાર મુખ્યપણે હોય છે, તે શાસ્ત્ર ન્યાય-સાહિત્યમાં સ્થાન લે છે. ન્યાયશાસ્ત્રમાં માત્ર ન્યાયની અનુમાનપદ્ધતિની જ ચર્ચા હોય તેમ કાંઈ નથી હોતું, તેમાં સમગ્ર પ્રમાણોનું નિરૂપણ હોય છે, એટલું જ નહિ, પણ તેમાં પ્રમેયોનું નિરૂપણ મુખ્ય હોય છે. છતાં એટલું ખરું કે તેવી જાતના સાહિત્યમાં પ્રમાણના નિરૂપણે અને તેમાંયે અનુમાનપદ્ધતિના નિરૂપણે મોટો ભાગ રોકેલો હોય છે તેથી જ તેવી જાતનું સાહિત્ય 'પ્રાધાન્યેન વ્યપદેશા ભવન્તિ' એ ન્યાયને અનુસરી ન્યાય-સાહિત્ય કહેવાય છે

પ્રસ્થાન વેદને પ્રમાણ માની તેને અનુકૂળ ચાલવામા છે બૌદ્ધ ન્યાયનુ પ્રસ્થાન વેદ કે અન્ય આગમ પ્રમાણને આશ્રિત ન રહી પ્રધાનપણે અનુભવને આધારે ચાલવામા છે જૈન ન્યાયનુ પ્રસ્થાન વેદના પ્રામાણ્યનો સ્વીકાર ન કર્યા છતા પણ શબ્દનુ પ્રામાણ્ય સ્વીકારી ચાલવામા છે તે ઉપરાંત આ ત્રણે મુખ્ય સંપ્રદાયના ન્યાયની ભિન્નતાનુ એક બીજુ પણ બીજ–કારણ છે, અને તે વિષયભેદ વૈદિક ન્યાય કોઈ પણ તત્ત્વને સિદ્ધ કરતો હોય ત્યારે તે સાધ્ય તત્ત્વોને અમુક એકરૂપે જ સિદ્ધ કરે છે, જેમ કે આત્મા વગેરે તત્ત્વોને વ્યાપક અથવા નિત્ય રૂપે જ અને ઘટ આદિ પદાર્થોને અનિત્ય રૂપે જ બૌદ્ધ ન્યાય આંતર કે બાહ્ય સમગ્ર તત્ત્વોને એક રૂપે જ સિદ્ધ કરે છે, પણ તે એક રૂપ એટલે માત્ર ક્ષણિકત્વ તેમા ક્ષણિકત્વના વિરુદ્ધ પક્ષ સ્થાયિત્વને કે નિત્યત્વને બિલકુલ અવકાશ નથી જૈન ન્યાય એ વૈદિક અને બૌદ્ધ ન્યાયની વચ્ચે રહી પ્રત્યેક સાધ્ય તત્ત્વને માત્ર એક રૂપે સિદ્ધ ન કરતા અનેક રૂપે સિદ્ધ કરે છે આ કારણથી જૈન ન્યાય બીજા ન્યાયો કરતા જુદો પડે છે સક્ષેપમા એમ કહી શકાય કે જે ન્યાય જૈનાચાર્યોએ રચેલો હોય, જે કેવળ પૌરુષેય આગમનુ પ્રામાણ્ય સ્વીકારી ચાલતો હોય અને કોઈ પણ તત્ત્વનુ સાપેક્ષ દૃષ્ટિએ નિરૂપણ કરતો હોય તે જૈન ન્યાય

એકબીજાના પ્રભાવથી થયેલ વિચારક્રાંતિ એક સપ્રદાય અમુક તત્ત્વો ઉપર વધારે ભાર આપતો હોય, ત્યારે જાણે કે અજાણે તેનો પ્રભાવ બીજાપાડોશી સપ્રદાયો ઉપર અનિવાર્ય રીતે પડે છે જો જૈન અને બૌદ્ધ સપ્રદાયની અહિંસાનો પ્રભાવ વૈદિક સપ્રદાય ઉપર પડ્યાની વાત માની લેવા તૈયાર થઈએ તો સત્ય ખાતર એ પણ માની લેવુ જોઈએ કે વૈદિક વિદ્વાનોની દાર્શનિક પદ્ધતિની અસર બીજા બે સપ્રદાયો ઉપર પડી છે જોકે આમાંના ન્યાય–સાહિત્યના વિકાસમા ત્રણે સમ્પ્રદાયોના વિદ્વાનોએ અને આચાર્યોએ ફાળો આપ્યો છે [illegible] પહેલેથી છેલ્લે સુધીના ન્યાય–સાહિત્યનો તથા પઠન-પાઠનનો પ્રતિભાસ જોતા એવા નિર્ણય ઉપર આપોઆપ આવી જવાય છે કે ન્યાયના તત્ત્વોની વ્યવસ્થા કરવામા પ્રધાનસ્થાન વૈદિક વિદ્વાનોનું છે. એ વિષયમા તેઓનો પ્રભાવ સ્પષ્ટ છે, એટલે જ [illegible] બૌદ્ધ અને જૈન વિદ્વાનો [illegible] પાલિ અને પ્રાકૃત ભાષા છોડી વૈદિક સંસ્કૃત [illegible] ન્યાયના ગ્રંથો રચવા માંડ્યા

જૈન સાહિત્યની પ્રધાન બે શાખાઓ

ભગવાન મહાવીરના સમયમાં જૈન સંઘ પ્રધાનપણે મગધ અને તેના આસપાસના પ્રદેશોમાં હતો. પછી લગભગ એક સૈકા બાદ તે સંઘ બે દિશામાં વહેંચાયો. એક ભાગ દક્ષિણમાં અને બીજો ઉત્તરમાં. ત્યાર બાદ થોડાક સૈકાઓ વ્યતીત થયા કે તે વહેંચાયેલા બે ભાગો સ્પષ્ટ રૂપે જુદા પડી ગયા. એક દિગંબર અને બીજો શ્વેતાંબર. દક્ષિણવર્તી શ્રમણસંઘ પ્રધાનપણે દિગંબર સંપ્રદાયી થયો, અને ઉત્તરવર્તી શ્રમણસંઘ પ્રધાનપણે શ્વેતાંબર સંપ્રદાયી થયો. આ રીતે વિભક્ત થયેલ શ્રમણસંઘે જે સાહિત્ય રચ્યું તે પણ બે ભાગમાં આપોઆપ વહેંચાઈ ગયું. પહેલું દિગંબરીય સાહિત્ય અને બીજું શ્વેતાંબરીય સાહિત્ય. મૂળમાં અવિભક્ત જૈન સાહિત્યના આ રીતે મુખ્ય બે ભાગલા પડી ગયા.

દિગંબરીય શ્રમણ સંઘનું પ્રાધાન્ય દક્ષિણમાં હોવાથી તે સંપ્રદાયનું મૌલિક સાહિત્ય ત્યાં જ ઉત્પન્ન થયું, પોષાયું, વિકાસ પામ્યું અને સંપ્રદાયે તે સાહિત્યના રચયિતા પ્રધાન પ્રધાન આચાર્યો જેવા કે કુંદકુંદ, સમંતભદ્ર વગેરે ત્યાં જ થયા. શ્વેતાંબર શ્રમણસંઘનું પ્રાધાન્ય પહેલાં તો ઉત્તર હિન્દુસ્તાન (મથુરાના)માં અને ક્રમે ક્રમે પશ્ચિમ હિન્દુસ્તાન (કાઠિયાવાડ ગુજરાત)માં વધતું ગયું. તેથી તે સંપ્રદાયનું સાહિત્ય ઉત્તર અને પશ્ચિમમાં ઉત્પન્ન થયું અને વિકસ્યું છે. તેમ જ તે સાહિત્યના રચયિતા આચાર્યો પણ તે જ અંશમાં થયેલા છે. ઉત્તર કરતાં પશ્ચિમ હિન્દુસ્તાનમાં શ્વેતાંબર સંપ્રદાયની સત્તા વધી તેથી છેલ્લાં લગભગ પંદરસો વરસનું તે સંપ્રદાયનું સાહિત્ય પ્રધાનપણે કાઠિયાવાડમાં અને ગુજરાતમાં રચાયું, વધ્યું, પોષાયું, વિકસિત થયું જે આજે પણ છે. આ રીતે જૈન સાહિત્યની મુખ્ય બે શાખાઓ આપણી નજરે પડે છે.

બન્ને શાખાઓના સાહિત્યમાં નવયુગ

આચાર્યોની પેઠે પોતાની આગમસિદ્ધ ભાષા ઉપરાંત સંસ્કૃત ભાષામાં ગ્રંથો રચવા લાગ્યા આ પહેલાં જૈન સાહિત્યમાં સંસ્કૃત ભાષાને સ્થાન નહોતું એમ માનવાને કોઈ ખાસ પ્રમાણ નથી પણ એટલું ખરું કે આ સંસ્કૃત યુગ પહેલા જૈન સાહિત્યમા પ્રાકૃત ભાષાનુ સામ્રાજ્ય હતુ જૈન સાહિત્યમાં સંસ્કૃત ભાષાને અને તર્કપદ્ધતિને પ્રથમ પ્રતિષ્ઠિત કરનાર શ્વેતાંબર આચાર્ય કે દિગંબર આચાર્ય?–એ કહેવુ કઠણ છે પણ એમ કહી શકાય છે કે, બન્ને સંપ્રદાયના આ પરિવર્તન વચ્ચે વધારે અંતર ન હોવુ જોઈએ

જૈન ન્યાયનું કાળમાન અને વિકાસની દૃષ્ટિએ તેના ચાર ભાગો

શાસ્ત્રપ્રદેશમા વિચારક્રાંતિ તથા ભાષા અને શૈલીભેદ થવાને પરિણામે જૈન સાહિત્યમા સ્વતંત્ર ન્યાયપદ્ધતિ જન્મી. તેથી પ્રથમ એ જોવુ જોઈએ કે આ જૈન ન્યાયનુ વય–કાળમાન કેટલુ છે અને તેના વિકાસક્રમને સમજવા માટે તેને કેટલા ભાગમા વહેંચી શકીએ

જૈન ન્યાયના જન્મસમયની પૂર્વસીમા વધારેમાં વધારે વિક્રમના પહેલા સૈકાથી આગળ લંબાવી શકાતી નથી અને તેના વિકાસની ઉત્તર સીમા વિક્રમના અઢારમા સૈકાથી આગળ આવતી નથી આ રીતે વધારેમાં વધારે જૈન ન્યાયનું કાળમાન અઢારસો વરસ જેટલું આંકી શકાય પણ ઉત્તર સીમા નિશ્ચિત છતા વિવાદાસ્પદ પૂર્વ સીમાને ઓછામાં ઓછી પાંચમી શતાબ્દીથી શરૂ કરીએ તોય તેનું કાળમાન તેરસો વરસ જેટલુ તો છે જ.

જૈન ન્યાયના વિકાસની ક્રમિક પાયરીઓના ભેદ સમજવા ખાતર તે કાળમાનને સ્થૂળ રીતે ચાર ભાગમા વહેંચી શકાય છે પહેલો ભાગ વિક્રમના પાંચમા સૈકા સુધીનો, બીજો છઠ્ઠા સૈકાથી દશમા સુધીનો, ત્રીજો ભાગ અગિયારથી તેરમા સુધીનો અને ચોથો ચૌદમાથી અઢારમા સુધીનો આ ચાર ભાગને અનુક્રમે બીજારોપણકાળ, પલ્લવિતકાળ, પુષ્પિતકાળ અને ફળકાળના નામે ઓળખીએ તો જૈન ન્યાયના વિકાસને વૃક્ષના રૂપકથી સમજી શકીએ

જૈન સાહિત્યમાં સંસ્કૃત ભાષાની પ્રતિષ્ઠા થતા જ શરૂઆતમા ક્યા વિષયો ઉપર ગ્રંથો લખાયા એ વિચાર પ્રસ્તુત નથી, પણ જૈન સાહિત્યમા ન્યાયનો સૂત્રપાત કોણે અને ક્યારે કર્યો એટલુ જ અહીં કહેવાનુ છે દિગંબર સાહિત્યમાં તર્કપદ્ધતિની સ્પષ્ટ પ્રતિષ્ઠા આચાર્ય સમંતભદ્રે અને શ્વેતાંબર સાહિત્યમાં તર્કપદ્ધતિની પ્રબળ પ્રતિષ્ઠા આચાર્ય સિદ્ધસેન દિવાકરે કરી આ બન્ને આચાર્યમા કોણ પૂર્વવર્તિ અને કોણ પશ્ચાત્વર્તિ એ હજી નિર્ણીત થયુ નથી., પણ તે બે વચ્ચે વિશેષ અંતર ન હોવું જોઈએ, એવી સંભાવના માટે

પ્રમાણો છે આ બે આચાર્યોની ઉત્તર સીમા ઈ સ. પાંચમા સૈકાથી આગળ લંબાવી શકાય તેમ નથી અને પૂર્વ સીમા લગભગ ઈ. સ ના આરંભ પહેલાં નિર્દિષ્ટ કરી શકાય તેમ નથી.

સિદ્ધસેન અને સમન્તભદ્ર : એ બન્નેની કૃતિઓ

સંપ્રદાયો જુદા હોવા છતાં એ બન્નેનું એક એવું પરંપરાગત સામ્ય છે કે જે તરફ ધ્યાન ગયા વગર રહેતું નથી. દિગંબર સંપ્રદાયમાં ગંધહસ્તિના નામથી સમંતભદ્ર પ્રસિદ્ધ છે અને તત્ત્વાર્થ ઉપરની ગંધહસ્તિમહાભાષ્ય ટીકા તેઓની કૃતિ તરીકે પ્રસિદ્ધ છે અને ઉપલબ્ધ આપ્તમીમાંસા તે જ મહાભાષ્યનુ મંગલ મનાય છે શ્વેતાંબર સંપ્રદાયમા સિદ્ધસેન દિવાકર ગંધહસ્તિ કહેવાય છે અને તત્ત્વાર્થ ઉપર તેઓએ ગંધહસ્તિમહાભાષ્ય રચ્યું હતુ એમ મનાય છે બન્ને સંપ્રદાયની આ માન્યતાઓ નિરાધાર નથી, કારણ કે બન્ને સંપ્રદાયના ઘણા ગ્રંથોમા તે બાબતના સૂચક ઉલ્લેખો મળી આવે છે.

આ બે આચાર્યોની વિશેષતા થોડામા આ પ્રમાણે બતાવી શકાય સંમતભદ્ર પોતાના દરેક ગ્રન્થોમાં જૈન દર્શન, તેના પ્રણેતા અર્હન્ અને તેનો સિદ્ધાંત અનેકાંત એટલાં તત્ત્વોની તર્કપદ્ધતિએ ઓજસ્વિની પ્રવાહબદ્ધ સંસ્કૃત ભાષામા સક્ષમ ચર્ચા કરે છે. અને સાથે સાથે અન્ય દર્શનો, તેના પ્રણેતાઓ અને એકાંતનો સોપહાસ પ્રતિવાદ કરે છે તેઓની ઉપલબ્ધ કૃતિઓ જોતા એમ જણાય છે કે, સમંતભદ્ર તર્કનિષ્ઠ દાર્શનિક મીમાંસા કરવામા સિદ્ધહસ્ત હતા સિદ્ધસેન દિવાકરે પણ જૈન દર્શન, તેના પ્રણેતા તીર્થંકર અને સ્યાદ્વાદ એ વિષયોની તાર્કિક પદ્ધતિએ પ્રતિષ્ઠા કરવા સાથે અન્ય દર્શનોના સપરિહાસ નિરાસ કર્યો છે તેઓની મધુર અને પ્રાસાદિક સ્વતઃસિદ્ધ સંસ્કૃત ભાષાના [illegible] જોઈ આચાર્ય હેમચંદ્રે તેમને કવિશ્રેષ્ઠ જણાવતા "અનુસિદ્ધસેનં કવયઃ" એ ઉદ્ગાર [illegible] છે સિદ્ધસેને જૈન ન્યાયનુ વ્યવસ્થિત સ્વરૂપ [illegible] તેના [illegible] માટે ન્યાયાવતાર નામનો [illegible] પ્રથમ [illegible] [illegible] [illegible]

તત્કાલીન ભારતીય સમસ્ત દર્શનોનું નિરૂપણ કરનાર બીજી કોઈ કૃતિ તેનાથી પ્રાચીન ન મળે ત્યાં સુધી દર્શનસંગ્રહ કરવાનું પ્રાથમિક ગૌરવ સિદ્ધસેનને આપવું જોઈએ. સિદ્ધસેનની એક વેદવાદ દ્વાત્રિંશિકા જોતાં એમ તુરત ભાસે છે કે, તેમણે વેદ અને ઉપનિષદનો મૌલિક તેમ જ તલસ્પર્શી અભ્યાસ કરેલો. સિદ્ધસેન દિવાકરનો પ્રસિદ્ધ ગ્રંથ સમ્મતિ તર્ક છે, જે પદ્યમય પ્રાકૃતમાં ત્રણ ભાગમાં કુંદકુંદના પ્રવચનસારની પેઠે પૂરો થયેલો છે. આ ગ્રંથ ઉપર શ્વેતાંબર અને દિગંબર એમ બન્ને આચાર્યોએ ટીકાઓ રચી છે. તેમાં વર્ણવેલા સિદ્ધાંતો એટલાં સતર્ક અને હૃદયગ્રાહી છે કે આગળના આચાર્યો પણ તેથી વધારે મૂળ વસ્તુ કહી શક્યા નથી. સમંતભદ્રની ઉપલબ્ધ કૃતિઓમાં સિદ્ધસેનના ન્યાયાવતાર જેવી કે વૈદિક જૈન દર્શન અને બૌદ્ધ દર્શનનું નિરૂપણ કરનાર બત્રીશીઓ જેવી કોઈ કૃતિ નથી વાચકોએ સિદ્ધસેનની ઉપલબ્ધ એકવીશ બત્રીશીઓ અને સંમતભદ્રની આપ્તમીમાંસા, યુક્ત્યનુશાસન અને સ્વયંભૂસ્તોત્ર એ એકસાથે સામે રાખી અવલોકવા, જેથી બન્નેનું પરસ્પર સાદૃશ્ય અને વિશેષતા આપોઆપ ધ્યાનમાં આવશે

બીજા ભાગનું પલ્લવિતકાળ એ નામ રાખ્યું છે, તેનો અભિપ્રાય એટલો છે કે, સિદ્ધસેન અને સમંતભદ્ર દ્વારા બન્ને સંપ્રદાયોમાં જે જૈન ન્યાયનું બીજારોપણ થયું, તેને જ આ યુગમાં પલ્લવિત કરવામાં આવ્યું છે. આ યુગમાં દિગંબર સંપ્રદાયમાં અનુક્રમે અકલંક, વિદ્યાનંદ અને પ્રભાચંદ્ર એ એ ત્રણ પ્રધાન આચાર્યોએ મુખ્યપણે જૈન ન્યાયને વિસ્તાર્યો અને વિશદ કર્યો છે શ્વેતાંબરમાં પણ પ્રધાનપણે ત્રણ આચાર્યોએ આ યુગમાં જૈન ન્યાયને વિસ્તૃત અને વિશદ બનાવ્યો છે મલ્લવાદી, હરિભદ્ર અને રાજગચ્છીય અભયદેવ—એ ત્રણેએ અનુક્રમે કાંઈ ને કાંઈ વધારે વિશેષતા અર્પી છે અકલંક આદિ ત્રણે દિગંબર આચાર્યોએ જૈન ન્યાયના સ્વતંત્ર ગ્રંથો લખ્યા છે, અને સમંતભદ્ર આદિ પૂર્વાચાર્યોની ન્યાયવાણીને પલ્લવિત પણ કરી છે. તેવી જ રીતે મલ્લવાદી વગેરે આ યુગના શ્વેતાંબર આચાર્યોએ જૈન ન્યાય ઉપર સ્વતંત્ર ન્યાયના ગ્રંથો લખ્યા છે અને પોતપોતાની પહેલાંની તર્કવાણીને પલ્લવિત પણ કરી છે તે ઉક્ત દિગંબર ત્રણ આચાર્યો અને ઉક્ત શ્વેતાંબર ત્રણ આચાર્યોની કૃતિઓ બરાબર સામે રાખી જોવામાં આવે તો એક બીજા ઉપર પડેલો પ્રભાવ, પરસ્પરનું સાદૃશ્ય અને વિશેષતા ધ્યાનમાં આવ્યા વિના રહે તેમ નથી.

ત્રીજા ભાગનું નામ પ્રતિષ્ઠાકાળ છે. [illegible]
[illegible]

છતાં પુષ્પ એ પલ્લવોની ઉત્તર અવસ્થા હોઈ તેમાં એક જાતનો વિશિષ્ટ પરિપાક હોય છે બીજા યુગમા જૈન ન્યાયનો જે વિસ્તાર અને સ્પષ્ટીકરણ થયા તેને પરિણામે ત્રીજો યુગ જન્મ્યો. આ યુગમાં અને આ પછીના ચોથા યુગમાં દિગંબર આચાર્યોએ ન્યાય વિષયક કેટલાક ગ્રંથો રચ્યા છે, પણ હજુ સુધી મારી નજરે એવો એકે ગ્રંથ નથી પડ્યો કે જેને લીધે જૈન ન્યાયના વિકાસમા તેને સ્થાન આપી શકાય ત્રીજા યુગના શ્વેતાંબર સંપ્રદાયમા વાદી દેવસૂરિ અને હેમચન્દ્ર એ બેનુ મુખ્ય સ્થાન છે એ ખરુ કે આચાર્ય હેમચન્દ્રની પરિચિત કૃતિઓમા જૈન ન્યાય વિષયક બહુ કૃતિઓ નથી, તેમ પરિમાણમા મોટી પણ નથી છતા તેઓની બે બત્રીશીઓ અને પ્રમાણમીમાંસા જોનારને પોતાની વિશિષ્ટતા ધ્યાનમાં આવ્યા સિવાય નહી રહે અને એમ આપોઆપ જણાશે કે મોટા મોટા અને લાંબા લાંબા ગ્રંથોથી કંટાળેલ અભ્યાસીઓ માટે સક્ષેપમા છતાં વિશેષતાવાળી રચનાઓ તેઓએ કરી અને ફૂલનુ સૌરભ તેમાં આણ્યું વાદી દેવસૂરિ કાંઈ કટાણે તેવા ન હતા તેઓએ તો રત્નાકરની સ્પર્ધા કરે એવો એક સ્યાદ્વાદરત્નાકર ગ્રંથ રચ્યો અને કોઈ અભ્યાસીને જૈન ન્યાય માટે તેમ જ દાર્શનિક ખંડનમંડન માટે બીજે ક્યાય ન જવાની સગવડ કરી દીધી.

ચોથો ફળકાળ

વાદી દેવસૂરિ અને હેમચન્દ્ર સુધીમાં જૈન ન્યાયનો આત્મા જેટલો વિકસિત થયો હતો, તે પૂરેપૂરો ઉપાધ્યાયજીના તર્કગ્રંથોમાં મૂર્તિમાન થાય છે, અને વધારામાં તે ઉપર એક કુશળ ચિત્રકારની પેઠે તેઓએ એવા સૂક્ષ્મતાના, સ્પષ્ટતાના અને સમન્વયના રંગો પૂર્યા છે કે જેનાથી મુદિતમના થઈ આપો-આપ એમ કહેવાઈ જાય છે કે પહેલા ત્રણ યુગનું બન્ને સંપ્રદાયનું જૈન ન્યાયવિષયક સાહિત્ય કદાચ ન હોય અને માત્ર ઉપાધ્યાયજીનું જૈન ન્યાય વિષયક સંપૂર્ણ સાહિત્ય ઉપલબ્ધ હોય તોયે જૈન વાઙ્મય કૃતકૃત્ય છે. ઉપાધ્યાયજીએ અધિકારી ભેદને ધ્યાનમાં રાખી, વિષયોની વહેંચણી કરી, તે ઉપર નાનામોટા અનેક જૈન ન્યાયના ગ્રંથો લખ્યા. તેઓએ જૈન તર્કપરિભાષા જેવો જૈન ન્યાયપ્રવેશ માટે લઘુ ગ્રંથ રચી જૈન સાહિત્યમાં તર્કસંગ્રહ અને તર્કભાષાની ખોટ પૂરી પાડી. રહસ્યપદાંકિત એકસો આઠ ગ્રંથો કે તેમાંના કેટલાક રચી જૈન ન્યાય-વાઙ્મયમાં નૈયાયિક પ્રવર ગદાધર ભટ્ટાચાર્યના ગ્રંથોની ગરજ સારી. નયપ્રદીપ, નયરહસ્ય, નયામૃતતરંગિણી સહિત નયોપદેશ, સ્યાદ્વાદકલ્પલતા, ન્યાયાલોક, ખણ્ડનખંડખાદ્ય, અષ્ટસહસ્રી-ટીકા આદિ ગ્રંથો રચી જૈન ન્યાય વાઙ્મયને ઉદયનાચાર્ય, ગંગેશ ઉપાધ્યાય, રઘુનાથ શિરોમણિ અને જગદીશની પ્રતિભાનું નૈવેદ્ય ધર્યું. અધ્યાત્મસાર, અધ્યાત્મોપનિષદ્ જેવા ગ્રંથોથી જૈન ન્યાય વાઙ્મયનો ગીતા, યોગવાસિષ્ઠ આદિ વૈદિક ગ્રંથો સાથે સંબંધ જોડ્યો. થોડામાં એટલું જ કહેવું બસ છે કે વૈદિક અને બૌદ્ધ સાહિત્યે દાર્શનિક પ્રદેશમાં સત્તરમા સૈકા સુધીમાં જે ઉત્કર્ષ સાધ્યો હતો, લગભગ તે બધા ઉત્કર્ષનો આસ્વાદ જૈન વાઙ્મયને આપવા ઉપાધ્યાયજીએ પ્રામાણિકપણે આખું જીવન વ્યતીત કર્યું અને તેથી તેઓના એક તેજમાં જૈન ન્યાયના બીજા બધા તેજો લગભગ સમાઈ જાય છે, એમ કહેવું પડે છે.

ઉપસંહાર

આ લેખમાં જૈન ન્યાયના વિકાસક્રમનું માત્ર દિગ્દર્શન અને તે પણ અપૂર્ણ રીતે કરાવવામાં આવ્યું છે. આ સ્થળે જૈન ન્યાયના વિકાસક [illegible] જે જે આચાર્યોનાં નામ લેવામાં આવ્યાં છે, તેઓનાં જીવન, તેઓનો સમય, તેઓની [illegible] વગેરેનો ઉલ્લેખ કરવામાં નથી કર્યો. તેવી જ રીતે તેઓના [illegible] કોઈ થોડુંઘણું [illegible] છે, તેની માહિતી માટે [illegible] આપવાના [illegible] નિર્દેશ કર્યો છે. આ નિબંધ [illegible] [illegible] આચાર્યોનાં

જીવન આદિની વિગત એટલી બધી લાંબી છે કે, તે આપતાં વિષયાંતર થઈ જાય તેથી જેઓ તે વિષયના જિજ્ઞાસુ હોય તેઓની જાણ ખાતર છેવટે એક એવું પરિશિષ્ટ આપવામાં આવે છે કે જેની અંદર ઉપર આવેલા આચાર્યોના સંબંધમાં માહિતી આપનાર ગ્રંથો નોંધેલા છે અને તેઓનું પ્રકાશિત થયેલું કેટલુંક સાહિત્ય નોંધેલું છે એ સાહિત્ય અને એ ગ્રંથો જોવાથી તે તે આચાર્યોના સંબંધમાં મળતી આજ સુધીની માહિતી ઘણેભાગે કોઈ પણ જાણી શકશે.

આ લેખમાં જૈન ન્યાયના પ્રણેતા અમુક જ વિદ્વાનોનો ઉલ્લેખ છે. બીજા ઘણાને છોડી દીધા છે. તેનું કારણ એ નથી કે તેઓનો જૈન ન્યાયના વિકાસમાં સ્વલ્પ પણ હિસ્સો નથી હોય છતાં તેવા નાના મોટા દરેક ગ્રંથકારના ઉલ્લેખ કરતાં લેખનું કલેવર કંટાળાભરેલ રીતે વધી જાય તેથી જે વિદ્વાનોનું જૈન ન્યાયના વિકાસમાં થોડું છતાં વિશિષ્ટ સ્થાન મને જણાયું છે તેઓનો જ ઉલ્લેખ કર્યો છે. બાકીનાઓના નામનું બીજું એક પરિશિષ્ટ અંતમાં આપી દેવામાં આવે છે

આ લેખ સમાપ્ત કરતાં એક વાત તરફ વાચકોનું ધ્યાન ખેંચું છું તે આ—હિંદુસ્તાનના કે બહારના વિદ્વાનો ગુજરાતના સાક્ષરોને એમ પૂછે છે કે ગુજરાતના વિદ્વાનોએ દાર્શનિક સાહિત્ય રચ્યું છે? અને રચ્યું હોય તો કેવું અને કેટલું? આ પ્રશ્નનો કોઈ પણ સાક્ષર [illegible] પ્રામાણિક ઉત્તર આપી ગુજરાતનું નાક રાખવા ઇચ્છે તો તેણે જૈન વાઙ્મય તરફ સપ્રેમ દૃષ્ટિપાત કરવો જ પડશે. એવી સ્થિતિમાં ગુજરાતના દાર્શનિક [illegible] ઉજ્જ્વલ કરવા ખાતર અને દાર્શનિક સાહિત્યની સેવામાં ગુજરાતનું વિશિષ્ટ સ્થાન જણાવવા માટે દરેક સાહિત્યપ્રેમી વિદ્વાનની [illegible] સાહિત્યોપાસનાની શુદ્ધ દૃષ્ટિથી જૈન [illegible] સાહિત્ય [illegible] અને અવચ્છિન્ન અનુવાદો કરી [illegible] જૈનોનું આ સંબંધમાં [illegible] પોતાના દાર્શનિક સાહિત્યને [illegible] છું.

પરિશિષ્ટ ન. ૧

નિબંધાંતર્ગત દાર્શનિકો

(क) શ્વેતાંબરીય

નામ	ન્યાય વિષયક કૃતિઓ	તેમની માહિતીના સાધનો
સિદ્ધસેન દિવાકર	સન્મતિતર્ક, ન્યાયાવતાર અને બત્રીશીઓ.	પ્રભાવક–ચરિત, પ્રબંધ ચિંતામણિ, ચતુર્વિંશતિ પ્રબંધ, જૈનસાહિત્ય સંશોધક વર્ષ ૧ ગુર્વાવલી, વીરવંશાવલી (જૈન સા૦ સં. વ ૧ અ ૩)
મલ્લવાદી	દ્વાદશાર નયચક્ર, સન્મતિ ટીકા.	પ્ર૦ ચ૦, પ્રબં૦ ચિ, ચતુ૦ પ્ર૦ ગુર્વાવલી, વીરવંશાવલી (જૈન સા સ વ. ૧ અં૦ ૩)
હરિભદ્ર	અનેકાંતજયપતાકા, ષડ્દર્શનસમુચ્ચય, લલિતવિસ્તરા, ન્યાય પ્રવેશ–પ્રકરણ ઉપર ટીકા, શાસ્ત્રવાર્તાસમુચ્ચય, લોકતત્ત્વનિર્ણય, ધર્મસંગ્રહણી, અને ન્યાયાવતાર–વૃત્તિ,	પ્ર ચ૦, ચતુ૦ પ્ર૦, શ્રી હરિભદ્રસૂરિચરિત્ર. જૈન દર્શન (પ બેચરદાસ કૃત)ની પ્રસ્તાવના, જૈન સા૦ સં૦ વ૦ અં૦ ૧ વીરવંશાવલી, ધર્મસંગ્રહણિની પ્રસ્તાવના, ઉપમિતિભવપ્રપંચાની પ્રસ્તાવના વગેરે.
અભયદેવ (રાજગચ્છીય)	સન્મતિટીકા.	પિટર્સન રિપોર્ટ ૪ માં લેખકોની અનુક્રમણિકા.
વાદી દેવસૂરિ	સ્યાદ્વાદ રત્નાકર.	પ્ર૦ ચ, પ્રબં ચિં., વીરવંશાવલી,
આચાર્ય હેમચંદ્ર	પ્રમાણમીમાંસા, અન્યયોગવ્યવચ્છેદદ્વાત્રિંશિકા.	પ્ર ચ, પ્રબ ચિં, ચતુ પ્ર, કુમારપાળપ્રતિબોધ, કુમારપાળ પ્રબંધ, કુમારપાળ ચરિત્ર, રાસમાળા વગેરે.

મલ્લિષેણ	સ્યાદ્વાદ મંજરી.	
ઉપાધ્યાય યશો-વિજયજી.	અધ્યાત્મમતપરીક્ષા સટીક, અધ્યાત્મસાર, અધ્યાત્મોપનિષદ, આધ્યાત્મિકમતદલન સટીક, અષ્ટસહસ્રી વિવરણ, ઉપદેશરહસ્ય સટીક, જ્ઞાનબિંદુ, જૈનતર્કભાષા, દ્વાત્રિંશદ્દ્વાત્રિંશિકા-સટીક, ધર્મપરીક્ષા સટીક, નયપ્રદીપ, નયામૃતતરંગિણી, ન્યાયખંડનખાદ્ય-સટીક, ન્યાયાલોક, પાતંજલ યોગદર્શન વિવરણલેશ, ભાષારહસ્ય સટીક, શાસ્ત્રવાર્તાસમુચ્ચય, નયરહસ્ય, તત્ત્વાર્થસૂત્ર-વૃત્તિ વગેરે.	યશોવિજય જીવન-ચરિત્ર (આ બુદ્ધિસાગરકૃત). આનંદઘન પદ્યરત્નાવલી પ્રસ્તાવના (મો ગિ કાપડીયા કૃત), આત્માનંદ પ્રકાશ પુ૦ ૩ અં. ૬, શાસ્ત્રવાર્તા-સમુચ્ચયની પ્રસ્તાવના, ધર્મસંગ્રહણીની પ્રસ્તાવના વગેરે

(ख) દિગમ્બરીય.

સમન્તભદ્ર.	દેવાગમસ્તોત્ર, તત્ત્વાનુશાસન, યુક્ત્યનુશાસન, સ્વયંભૂસ્તોત્ર.	જૈન હિતૈષી ભા. ૬-અં ૨, ૩, ૪, વિદ્વદ્ રત્નમાળા ભા ૧, અષ્ટસહસ્રીની પ્રસ્તાવના
અકલંક	રાજવાર્તિક, અષ્ટશતી, ન્યાયવિનિશ્ચય, લઘીયસ્ત્રયી.	લઘીયસ્ત્રયી આદિની પ્રસ્તાવના, વિદ્વદ્રત્નમાળા ભા ૨, રાજવાર્તિકની પ્રસ્તાવના.
વિદ્યાનંદ	પ્રમાણપરીક્ષા, અષ્ટસહસ્રી, શ્લોકવાર્તિક, આપ્તપરીક્ષા પત્રપરીક્ષા વગેરે	જૈન હિતૈષી ભા ૮ પૃ ૪૩૯, યુક્ત્યનુશાસનની પ્ર., અષ્ટસહસ્રીની પ્ર.
પ્રભાચન્દ્ર	ન્યાયકુમુદચંદ્રોદય, પ્રમેયકમલમાર્તંડ	વિદ્વદ્રત્નમાળા ભા ૨, પ્રમેય કમળ માર્તંડની પ્રસ્તાવના

નોટ: આ આચાર્યોના અનેક વિષયો ઉપર અનેક ગ્રન્થો બનાવ્યાના પ્રમાણો મળે છે, પણ અહીં ફક્ત તેઓના ન્યાયવિષયક [illegible] પ્રસ્તુત લેખમાં તો દરેક આચાર્યની ન્યાયવિષયક કૃતિઓનો જ ઉલ્લેખ કરેલો છે.

પરિશિષ્ટ નં. ૨

નિબંધ બાહ્ય જૈન ન્યાયના લેખકો

(क) શ્વેતાંબરીય.

ક્રમાંક	નામ	ન્યાયવિષયક ગ્રંથો
૧	શ્રી ગુણરત્નસૂરિ	ષડ્દર્શનસમુચ્ચયવૃત્તિ
૨	શ્રી ચંદ્રસેન	ઉત્પાદસિદ્ધિપ્રકરણ
૩	શ્રી ચંદ્રપ્રભસૂરિ	પ્રમેયરત્નકોષ
૪	શ્રી દેવભદ્ર મલ્લધારી	ન્યાયાવતારટિપ્પન
૫	શ્રી દેવચંદ્રજી	નયચક્ર
૬	શ્રી પદ્મસુંદર	પ્રમાણસુન્દર
૭	શ્રી બુદ્ધિસાગર	પ્રમાણલક્ષ્યલક્ષણ
૮	શ્રી મુનિચંદ્ર	અનેકાંતજયપતાકાટિપ્પન
૯	શ્રી રાજશેખર	સ્યાદ્વાદકલિકા, રત્નાકરાવતારિકાટિપ્પન
૧૦	શ્રી રત્નપ્રભ	રત્નાકરાવતારિકા
૧૧	શ્રી શુભવિજય	સ્યાદ્વાદભાષા
૧૨	શ્રી શાંતિસૂરિ	પ્રમાણપ્રમેયકલિકા વૃત્તિ

(ख) દિગંબરીય

ક્રમાંક	ગ્રંથકાર	ન્યાયવિષયક ગ્રંથો
૧	અનંતાચાર્ય	ન્યાયવિનિશ્ચયાલંકારવૃત્તિ
૨	શ્રી સન્મતિ	સિદ્ધસેનના સન્મતિતર્ક પર ટીકા, [illegible] શ્રવણ બેલગુલાની મલ્લિષેણ પ્રશસ્તિ તથા વાદિરાજ કૃત પાર્શ્વનાથચરિત
[illegible]	[illegible] દેવસેન	નયચક્ર આલાપપદ્ધતિ
[illegible]	[illegible]	નયચક્ર

૫	શ્રી ધર્મભૂષણ	ન્યાયદીપિકા, પ્રમાણવિસ્તાર
૬	શ્રી પ્રભાદેવસ્વામી	પ્રમિતિવાદ મુક્તિવાદ, અવ્યાપ્તવાદ, તર્કવાદ તથા નયવાદ
૭	શ્રી નરેન્દ્રસેન	પ્રમાણપ્રમેયકલિકા
૮	શ્રી પંડિતાચાર્ય	પ્રમેયરત્નાલંકાર, પ્રમેયરત્નમાલિકાપ્રકાશિકા, સપ્તભંગીતરંગિણી ટીકા.
૯	શ્રી ભાવસેનાચાર્ય	ન્યાયદીપિકા
૧૦	શ્રી ભાવસેન કવિ	વિશ્વતત્ત્વપ્રકાશ
૧૧	શ્રી વાદીરાજ મુનિ	વાદમંજરી
૧૨	શ્રી વાદીસિંહ	પ્રમાણનૌકા, તર્કદીપિકા
૧૩	શ્રી વિમળદાસ	સપ્તભંગીતરંગિણી
૧૪	શ્રી શ્રુતસાગરસ્વામી	સન્મતિતર્ક
૧૫	શ્રી શ્રુતસાગર	તર્કદીપક

પરિશિષ્ટ નં. ૩

જૈનેતર ન્યાય ઉપર લખનારા જૈનાચાર્યો

(क) શ્વેતાંબરીય

ક્રમાંક	નામ	ન્યાયવિષયક ગ્રંથો
૧	શ્રી અભયતિલક	ન્યાયાલંકારટિપ્પન
૨	શ્રી [illegible]	તર્કફક્કિકા
૩	શ્રી ગુણરત્ન	તર્કરહસ્યદીપિકા
૪	શ્રી જયસિંહ	ન્યાયસાર[illegible] (મૂળ ભાસર્વજ્ઞ કૃત)
૫	શ્રી જિનવર્ધન	સપ્તપદાર્થી-ટીકા
૬	શ્રી નરચંદ્રસૂરિ	કંદલીટિપ્પન (મૂળ શ્રીધરકૃત)
૭	શ્રી મલ્લવાદી	ન્યાયબિન્દુટિપ્પન (મૂળ [illegible]
૮	શ્રી ભુવનસુંદર	મહાવિદ્યાવિડંબનાવૃત્તિ [illegible]
૯	શ્રી [illegible]	[illegible]
૧૦	શ્રી [illegible]	[illegible]
૧૧	શ્રી [illegible]	[illegible]
૧૨	[illegible]	[illegible]

‘સંસાર અને ધર્મ’નું અનુશીલન

ખંડ પહેલો

૧ તત્ત્વજ્ઞાનના મૂળ પ્રશ્નો

આ લેખ એક ભાઈના પ્રશ્નનો ઉત્તર આપવાની દૃષ્ટિથી લખાયેલો છે, પણ વસ્તુત તે સ્વતંત્ર લેખ જ છે. તત્ત્વજ્ઞાન કોણ શોધી, ચલાવી કે વધારી શકે? તત્ત્વજ્ઞાન અને ભૌતિક વિજ્ઞાન વચ્ચે શુ શું સરખાપણું છે અને ક્યાંથી કેવો ભેદ દેખાય છે? તત્ત્વજ્ઞાનની શોધમા વાદો ક્યા સુધી સાધક થાય છે અને ક્યારે બાધક થાય છે? સત્યનો શોધક વાસનાનું નિયમન કરે કે તેનો ઉચ્છેદ કરે કે તેને વિશુદ્ધ કરે? ઇત્યાદિ પ્રશ્નોની સચોટ સમજણ અને છણાવટ આપી છે અને કરી છે. જગતદુ:ખવાદીઓએ જગતને દુ ખરૂપ કહ્યુ છે, જેમ કે સાંખ્ય, બુદ્ધ આદિએ પણ એ દુ ખરૂપતા ઐકાન્તિક નથી અને છે તે અપેક્ષાએ છે એ બાહુ સ્પષ્ટતાથી આ લેખમા સમજાવ્યું છે. ખરી રીતે જેણે જેણે જગતને દુ ખમય કહ્યુ છે તે બધાએ એક શરત મૂકી છે અને તે શરત તૃષ્ણાની જો તૃષ્ણા હોય તો સર્વત્ર દુ:ખ જ ભાસવાનું. જ્યાં સુખ હોય ત્યા પણ તૃષ્ણા આવી કે તે પ્રતિકૂલવેદનીય બની જવાનુ, પરિણામતાપસંસ્કાર —એ યોગસૂત્રમા દુ ખનુ કારણ તૃષ્ણાને જ કહ્યુ છે. જેણે વાસનાજય કે તૃષ્ણાજય કર્યો તે બુદ્ધ કે બીજો ગમે તે હોય અને છતાંયે તેને પોતાને દુ ખ ભાસે કે અનુભવાય તો તત્ત્વજ્ઞ, સાધક કે યોગી થવામાં શો લાભ? આથી સિદ્ધ છે કે એવા લોકો દુ ખી ન હતા, સદા સુખી અને સંતુષ્ટ હતા. જગતમા આપણી પેઠે જીવેલા પણ ખરા. એ જગતે એમને દુ:ખ કેમ ન આપ્યુ? ઉત્તર એક જ કે તૃષ્ણા ન હતી અને તૃષ્ણા ન હતા તેમનુ જીવન પણ દુ ખસંતપ્ત હોત તો તેઓ તૃષ્ણાત્યાગનો ઉપદેશ કરતા ને બદલે જીવનનો અંત જ આણવા કહેત. એટલે શ્રી. મશરૂવાળાએ જગતની [illegible] તે યથાર્થ છે. [illegible] દુ:ખરૂપ [illegible] અને [illegible] છે કે જે [illegible]—તૃષ્ણા [illegible] [illegible] છે અને

[illegible]

દુઃખરૂપ નથી લેખતો. આવો વિવેકી પણ આગમાં શૈત્યનો કે બરફમાં આગનો અનુભવ નથી કરતો તેની ઇન્દ્રિયો અન્યની પેઠે છે તે રૂપે જ વસ્તુને અનુભવે છે. પણ એમ બને કે એક અવિવેકી આગ ઝેર કે શૂળીથી પ્રતિકૂલ વેદના થતા જ જીવનમોહને લીધે હાયવોય પોકારી ઊઠે જ્યારે વિવેકી એ પ્રતિકૂળ વેદના અનુભવવા છતા મન ઉપર એટલો કાબૂ રાખે કે તેથી તેની પ્રસન્નતામાં ફેર ન પડે. સોક્રેટિસને ઝેર તો કડવુ જ લાગેલુ, એનો કેફ પણ ચડેલો, પણ કોઈ ઉચ્ચ સિદ્ધાન્ત અને આદર્શના પાલનની ખુમારીમાં તેને એ દુઃખ સહ્ય બનેલુ. એ જ વાત ક્રાઇસ્ટ અને બીજાને લાગુ પડે છે સુખદુઃખ એ માનસિક સવેદન છે મનને જેવું ઘડ્યુ હોય તે પ્રમાણે છેવટની અસર થાય એટલે જગતની સુખ કે દુઃખરૂપતા માનસિક ઘડતર પર અવલંબિત છે જગત પોતે નથી સુખરૂપ કે દુઃખરૂપ એ તો અવ્યક્ત અને અવક્તવ્ય જેવું છે. જીવનની ધારામાં અનેક સ્થૂળ સૂક્ષ્મ તત્ત્વોનો સમાવેશ છે તેમાથી કોઈ એક અશને પૂર્ણ જીવન માની પૂરા જીવનની વ્યાખ્યા કરી ન શકાય વળી, વ્યાખ્યા પણ અધિકારી પ્રમાણે જ થાય છે

આ લેખ જેટલો સમ્પૂર્ણ છે તેટલો જ સુપાઠ્ય અને ભ્રમનિવારક હોઈ પ્રથમથી અત સુધીના તત્ત્વજિજ્ઞાસુને માટે ઉપયોગી છે તે સ્ફૂર્તિ આપે છે ને નિરાશા નિવારી પુરુષાર્થ પ્રેરે છે

૨ જીવનનો અર્થ

મનુષ્યને પ્રાપ્ત છે જેમ શારીરિક તેમજ માનસિક જીવન પણ ન વેડફાય, એ કલા સિદ્ધ કરવાની રહે છે માનસિક જીવન વેડફાતા શારીરિક જીવન વેડફાય જ છે અને માનસિક જીવનને વેડફ્યા વિના—એને સુરક્ષિત રાખીને—શારીરિક જીવન વેડફી પણ ન શકે તેથી બંને જીવનનો સુસંવાદ સાધવાની કલા એ જ જીવનકલા છે. દરેક સંત કે સાધકે એ જ કલા ખીલવી હોય છે પછી એ પ્રશ્ન બહુ મહત્ત્વ નથી ધરાવતો કે જીવનના મૂળમાં શું છે અને તે ક્યાં જઈ થંભે છે અથવા તેને અંતે શું છે? આ પ્રશ્ન અનાદિત્વ અને અનંતત્વનો હોઈ જ્ઞાન-મર્યાદાની બહારનો પણ હોઈ શકે, પણ જીવનકલાનો પ્રશ્ન મધ્યકાલનો છે, તેથી તે એક રીતે સાદિ-સાન્ત છે. પણ એના સાદિ-સાંતપણાનો ઠીકઠીક સમાધાનકારી ઉકેલ મળે તો પેલા અનાદિ-અનંત પ્રશ્નનો પણ ઉકેલ ક્યારેક આવી જ જાય આ લેખનું ઉત્થાન વિનોદી રીતે થયું છે, પણ તે ઉત્તરોત્તર અનુભવ-મૂલક હોવાથી લેખ અંતે ગંભીરતામાં જ સરતો જાય છે અને છેવટે બુદ્ધિ અને હૃદયને સ્પર્શે છે

૨. સંસારમાં રસ

'સંસારમાં રસ' છે તે અનિવાર્ય છે. એને વિશુદ્ધ અને વિકસિત કરવો એટલું જ આપણાથી શક્ય છે એનો ઉચ્છેદ શક્ય નથી જો આ સાચું હોય તો જે સામાન્ય રીતે સંસાર ગણાય છે તે ઉપરાંત વ્યાપક સંસાર વિશેની દૃષ્ટિ જીવનકલા દરમ્યાન જ કેળવવી જોઈએ એ કેળવવાથી અનેક-જન્મનાં માપો અને દેશકાલની વિસ્તૃત મર્યાદાઓ જીવનદૃષ્ટિ પકડવાની એમ

ભૂત વર્તમાન અનાગત જીવનમાં જે રાગ કે રસ છે તે ફેલાઈ વધારે સૂક્ષ્મ અને વ્યાપક થવાનો એની સફળતા ઘટના જ એનું વ્યાપક તત્ત્વ એકસરખાનું જે રીતે એનો રસ સહજ રીતે જ પોષાવાનો અને વધવાનો અને આ એ સાંકડું અર્થમાં રસ ઉપરથી વૈરાગ્ય પણ સમાવાનો આગળ સ્વાર્થમાં વધારે જે સમાતો તે 'રસ' વિસ્તૃત બનવાનો અને આ-પરનું અંતર નહિ રહેવાનું. એ જ સંસારમાં રસની ગતિ અને મતિ છે.

સ્થાન' આ લેખ પણ વિશાળ જીવનની દૃષ્ટિએ મૃત્યુની ઉપકારકતા, આવશ્યકતા અને અનિવાર્યતા વર્ણવે છે. એ દેખીતું નિરાશા અને શોકજનક મરણ પણ વસ્તુતઃ તેવું નથી, ઊલટું, તે વિશાળ જીવનને વિકસવાનો તેમ જ વ્યવસ્થિત ચાલવાનો રસ્તો મોકળો કરે છે. આ વસ્તુ બિલકુલ સૂક્ષ્મ દૃષ્ટિથી વિચારતાં અનુભવસિદ્ધ જ લાગે છે. ખરી રીતે 'સંસારમાં રસ' અને 'જીવનમાં મૃત્યુનું સ્થાન' એ બન્ને મુદ્દાઓ પાછળ એક જ દૃષ્ટિ રહેલી છે, અને તે એ કે વૈયક્તિક તેમ જ સંકુચિત જીવન પૂરતી પોષાયેલી અને પોષાતી દૃષ્ટિને વિસ્તારવી અને અન્ય જીવન સાથે તેનો અભેદ અથવા સુમેળ સાધવો. ધર્મદૃષ્ટિ કે તત્ત્વદૃષ્ટિ આવા વિશાળ જીવનના અર્થમાંથી જ સ્ફુરે છે. વિશાળ જીવનનો અર્થ અને તેનો વૈયક્તિક જીવન સાથે મેળ અથવા તો સમષ્ટિ-જીવનથી વ્યષ્ટિજીવનની અભિન્નતા અને અભેદમૂલક પરિણામો ન સમજાય ત્યાં લગી સંસારમાં સત્ય વૈરાગ્યપૂત રસ અને મૃત્યુ-નિર્ભયતા આવે નહિ. વૈરાગ્ય એટલે વૈયક્તિક તૃષ્ણાનો વિલય કરી સર્વ સુખ માટે તેમ જ વિશાળ જીવનના વિકાસ માટે રસ કેળવવો અર્થાત્ તૃષ્ણાનું વ્યાપક અને શુદ્ધ ઊર્ધ્વીકરણ કરવું. એ જ રીતે મૃત્યુ નિર્ભયતા એટલે વિશાળ જીવનને ઉપકારક થવાની અગર તેની સાથે સુમેળ સાધવાની હોંશ અને તમન્ના. જેમ એકલો [illegible] સ્વપ્રવૃત્તિમાં સંતુષ્ટ હોય અને પછી તે બુદ્ધિપૂર્વક ગાર્હસ્થ્ય સ્વીકારે ત્યારે બ્રહ્મચર્યાશ્રમ પૂરતું તેનું મરણ પણ વસ્તુતઃ ગાર્હસ્થ્ય-જીવનનું ઉપકારક હોઈ અનેકના જીવન સાથે સુમેળ સાધે છે અને તેથી તે બ્રહ્મચર્યાશ્રમનો પરિત્યાગ દુઃખદ નથી લેખાતો. ઊલટું વધાવાલાયક [illegible] બીજી રીતે કહીએ તો [illegible] ત્યારે તેનો [illegible] મૃત્યુ વિશે છે

શકાય છે. જીવન અને મરણ સમ થઈ જાય છે, કારણ કે તે સમજે છે કે જીવીને સાધતો હતો તે મરીને પણ સાધીશ અને મરણ એ બીજાઓમાં વધારે પ્રેરણા મૂકશે. સાર્વજનિક કલ્યાણની સિદ્ધિ તો અનેકને હાથે જ થવાની, એટલે બીજાઓમાં તે માટેની પ્રેરણા જન્મે એ પણ જીવીને કરવા બરાબર જ છે. વળી વૈયક્તિક પુનર્જન્મ હોય તોપણ તે મરીને ફરી ફરી એ જ કરવાનો છે.

આ લેખમાં જલકણ, નાળા અને ગંગાનો જે સંબંધ વર્ણવ્યો છે, ગંગાના પ્રવાહની અખંડતા અને શાશ્વતતા માટે જે જલકણ અને નદી-નાળાનો ભોગ અપાતો વર્ણવ્યો છે તે દૃષ્ટાન્ત અતિ મનોરમ અને મૂળ મુદ્દાનું સમર્થક છે. અલબત્ત, લેખક વૈયક્તિક મોક્ષ અને પુનર્જન્મ પર ભાર ન આપતાં સામૂહિક મોક્ષ અને પુનર્જન્મ ઉપર જ ભાર આપે છે, પણ વૈયક્તિક મોક્ષ અને પુનર્જન્મ માની લઈએ તોપણ તે માન્યતાવાળો સાચો સાધક જીવનમરણમાં સમતોલ રહી શકે છે. બુદ્ધ અને મહાવીર એ તેવા મોક્ષ અને પુનર્જન્મમાં માનતા અને છતાં તેમને મરણમાં જીવન જેટલી જ શાંતિ હતી. મરણ અનિવાર્ય છે એમ સમજી જેણે જીવનનો સફલ ઉપયોગ કર્યો હોય અને વાસનાજય કર્યો હોય તે વ્યક્તિ સામૂહિક કલ્યાણની દૃષ્ટિએ કે વૈયક્તિક કલ્યાણની દૃષ્ટિએ પ્રયત્ન કરનાર હોય તોપણ સર્વત્ર જીવન-મરણમાં સમ રહી શકે અને મૃત્યુંજય સાધી શકે.

'આપૂર્યમાણમચલપ્રતિષ્ઠં' એનો ભાવ લેખકે પોતાની તત્ત્વદૃષ્ટિ પ્રમાણે અતિ અદ્ભુત રીતે બતાવ્યો છે. પણ તેનો ભાવ વૈયક્તિક મોક્ષની દૃષ્ટિએ પણ ઘટાવી શકાય. વસ્તુતઃ લેખકની દૃષ્ટિ મહાયાનની જ છે. એ દૃષ્ટિએ જ બધા પ્રશ્નોનું નિરાકરણ તે કરે છે.

૬. જીવન સુખમય કે દુઃખમય

ઢાળનો અને હિમાલયનો દાખલો સમર્થક છે તેથીયે વધારે સમર્થક તો ગરમ પાણીથી આગ ગરમ ન થાય ત્યારે ગરમ પાણીને ભાડવાનો દાખલો છે.

દુઃખને નિવારવા મથવુ અને સુખની સમૃદ્ધિ વધારવા યત્ન કરવો એનો અર્થ છેવટે તો એટલો જ છે કે આત્મા સુખસ્થિતિ જ પસંદ કરે છે—ભલે તે ઉત્તરોત્તર પ્રગતિશીલ હોય. અને દુઃખ નિવારવા મથે છે તેનો અર્થ સ્વગત વૈયક્તિક સ્થિતિને નિવારવા મથે છે એટલો જ થયો અને તે જ સ્થિતિ સંસાર છે. એટલે જો દાર્શનિકોએ સંસારને દુઃખરૂપ કહ્યો હોય તો તે ખોટું નથી. એમણે સંસારમા સુખનુ અસ્તિત્વ કબૂલ્યું છે પણ તે સુખને દુઃખ કોટિનું માન્યું છે, કારણ કે તે સ્થાયી સંતોષ નથી આપતું એટલે સ્થાયી સંતોષ કે વિકસતા સંતોષને જ દાર્શનિકોએ સુખ કહ્યુ છે કોઈએ એ જ વસ્તુને દુઃખાભાવરૂપે વિશેષ દૃષ્ટિએ વર્ણવી છે તો કોઈએ ભાવાત્મક સુખરૂપે પણ આ વર્ણન તો મુક્તિદશાનું છે. સંસારદશામાં તો બધાએ સુખ અને દુઃખ મિશ્રિત જ માન્યાં છે. એમા દુઃખભાવના કરવાનો ઉપદેશ વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન કરવા માટે છે. એટલે તે ઉપદેશ કોઈ ભૌતિક સુખનાં પૂર્ણતા માની તેમા રાચી રહેવાનો નિષેધમાત્ર કરે છે. વ્યવહારદશામા સાપેક્ષ સુખ અને દુઃખનું અસ્તિત્વ બધા જ સ્વીકારે છે અને બધા જ વિવેક અને પુરુષાર્થ ઉપર ભાર આપે છે અલબત્ત, આ ભાર આપવાની દૃષ્ટિ અત્યારે કર્મયોગમા પણ ઘટાવી શકાય પહેલા તે ભક્તિ અને જ્ઞાનયોગમા પણ ઘટાવાતી. સાર્વજનિક કલ્યાણને પરમ ધ્યેય અને શ્રેય માનો તે માટે જ વિવેક અને પુરુષાર્થ મેળવેલો હોય તોપણ તે [illegible] અને [illegible] છે. અને તે સત્કાર્ય—પછી તે વૈયક્તિક હોય કે સામૂહિક હોય—તેમા વિવેક અને પુરુષાર્થ આવશ્યક છે જ લેખકે આ [illegible] જ. એ વિશદીકરણ તાજગી તો આપે જ છે.

ભાવ છે. એને બહુ યોગ્ય રીતે લેખકે નવા ભજનમાં સ્ફુટ કર્યો છે. એ દિવસનું જીવન એ કથનનો તાત્પર્યાર્થ જ્યારે નવા ભજનમાં બહુ ખૂબીથી વ્યક્ત થાય છે ત્યારે જૂના અને નવા ભજન વચ્ચે વિરોધ નથી રહેતો. પહેલાનો વ્યંગ્યાર્થ બીજાનો વાચ્યાર્થ બને છે. એટલુ ખરું કે સ્થૂલદષ્ટિ લોકો 'એ દિવસનું જીવન' એટલાં કથન ઉપરથી વર્તમાન જીવન પ્રત્યે વૈરાગ્ય કે ઉદાસીનતા કેળવે તોયે તેમા સામષ્ટિક જીવનનું કલ્યાણ સાધવાની સ્ફૂર્તિ નથી પ્રગટતી. જ્યારે નવું ભજન એવો સંસ્કાર ઊભો કરે છે કે તે એવી સ્ફૂર્તિ પ્રગટાવે. ખરી રીતે પ્રાચીન ઉદ્ગારોના ગૂઢ અર્થો ન સમજાયાથી જે દોષો ઉત્પન્ન થાય છે તે આવા સ્પષ્ટીકરણથી જ દૂર થાય 'હંસલો નાનો ને દેવળ જૂનું રે થયું' એ ઉદ્ગાર કેટલો અર્થવાહી છે! પણ તેનુ લેખકે કરેલ ભાષ્ય ન હોય તો બહુ ન સમજાય, રૂપકથી આગળ ન વધી શકાય

ખંડ બીજો

૧. અવતારભક્તિ

આમા જે વિચાર મૂક્યો છે તે બહુ કામનો છે અવતાર અને ગુરુભક્તિને નામે જે વિકૃતિઓ જામી છે તેનુ નિવારણ થવું જ જોઈએ. અને આ લેખ તે માટે બહુ ઉપયોગી છે જ્યાં દેખો ત્યાં અવતાર અને ગુરુભક્તિને નામે સંપ્રદાયો ચાલે જ છે ખૂબી તો એ છે કે એક સંપ્રદાય બીજાના અવતાર અને ગુરુને ભક્તિપાત્ર નથી લેખતો, જ્યારે બધા અત્યંત વિરોધી રૂપે પ્રવર્તે છે. આ લેખમા બ્રાહ્મણમાનસની જે કલ્પનાચાતુરી, જે વિનોદક ગલ્પ અને જે રૂપકવર્ણનની હથોટીનો ઉલ્લેખ છે તે સાચો છે આ લેખ આપણા દરેકને—ખાસ કરી ભોળા શ્રદ્ધાળુને—માટે બહુ કામનો છે.

૨. બે દૃષ્ટિઓ

બે દૃષ્ટિમા એક નૈગમ યા વ્યવહાર યા મિશ્રિત કે આરોપિત દૃષ્ટિ છે, જ્યારે બીજી શુદ્ધ અને નિરાગ્રહદૃષ્ટિ છે. આરોપિત દૃષ્ટિ પ્રમાણે અવતાર અને ગુરુને પરમેશ્વર માનવામા આવે છે. એનો મૂળ ઉદ્દેશ તો અવતાર અને ગુરુનુ બહુમાન વધારવાનો અને ભક્તિ પોષવાનો છે, પણ આરોપ- [illegible] [illegible] આવે છે. [illegible] અને [illegible]

ભોગવનાર માન અને ભોગની લાલસામાં ભક્તોનું પતન નિહાળી નથી શકતા. ભક્તો પણ ગાડરિયા પ્રવાહથી વધારે ને વધારે પડતા જાય છે તેથી જાગ્રત કરવા માટેની બીજી શુદ્ધ દૃષ્ટિ છે, જે એવા પતનથી બચાવે ખરી ઈશ્વર કે ખુદા એ સાવ જુદી વસ્તુ છે એવું દૃષ્ટિબિંદુ ક્રિશ્ચિયન, મુસલમાન અને યહૂદીનું છે. જેઓ ઈશ્વરને સ્વતંત્ર વ્યક્તિ ન માનતાં માનવમાત્રમાં પ્રયત્ન-સાધ્ય ઈશ્વરત્વ માને છે તેઓ કોઈ ને અવતાર માને છે ત્યારે એનો અર્થ એટલો જ છે કે તેણે પ્રયત્નથી ઈશ્વરત્વ સિદ્ધ કર્યું બીજા પણ તેમ કરી શકે. એટલે તેના પ્રત્યે બહુમાન વધે છે, પણ તે સીમિત નથી રહેતુ ગુરુને તો તેઓ ત્યા લગી જ માને છે, જ્યા લગી તેનામાં ગુરુયોગ્ય સદ્‌ગુણો હોય. એટલે ગુરુમાં ઈશ્વરત્વનો વારસો માનવાની ભૂલથી બચી જાય છે ગુરુને ઈશ્વર જેવા માનવાને પરિણામે સર્વાર્પણની ભાવનામાથી અનાચાર પોષાયો છે, એટલે એ દૃષ્ટિનુ સંશોધન ઇષ્ટ છે

અવતાર કે ગુરુમા ઈશ્વરની માન્યતાનો જે લાક્ષણિક કે આલંકારિક અર્થ છે તે લેખકે બહુ સરસ રીતે સ્ફુટ કર્યો છે કનક-સુવર્ણ અને જલ-સમુદ્રના દૃષ્ટાન્તો સમર્થક છે

આ લેખમાં માન્યતા પાછળની દૃષ્ટિનુ સંશોધન છે તત્ત્વજ્ઞાન કે દૃષ્ટિ-સંશોધન આચાર ઘડે છે આચારનુ પરિણામ જ એ છે પણ એક વાર આચાર સ્થપાયા પછી તેની પ્રેરક દૃષ્ટિમાં ફરી કોઈ સંશોધન કરે ત્યારે નવા સંશોધન પ્રમાણે પુન આચાર જલદી જલદી બદલાતો નથી. એટલે દૃષ્ટિમાં સંશોધનો થતા રહે છે અને જૂની આચારપ્રણાલિકો પણ ચાલુ રહે છે. તત્ત્વજ્ઞાન આગળ વધે છે

સમાનતાનો વ્યવહાર સ્થપાયો નહિ આ બધું સૂચવે છે કે વિચારો વિદ્યુત્-વેગે ગતિ કરે છે અને આચાર રગશિયા ગાડાને વેગે

૩ ઉપાસનાશુદ્ધિ

આ લેખમાં સત્ય અને અવ્યભિચારિણી ભક્તિ ઉપર ભાર આપ્યો છે. ધાર્મિકતા માટે એ આવશ્યક છે માત્ર ધર્મગ્રન્થોનુ અધ્યયન કે પાંડિત્યપૂર્ણ અધ્યયન કે વિશાળ વાચન ધાર્મિકતા આણી શકતા નથી ઊલટું, એવી બહુશ્રુતત્વવૃત્તિ ધાર્મિકતાને રોકે પણ છે. ધાર્મિકતા એટલે ધર્મનિષ્ઠા, ધર્મ-નિષ્ઠા એટલે સદ્‌ગુણોની ખીલવણી અને કોઈ એક આદર્શ પ્રત્યે અનન્ય નિષ્ઠા આ એક નિગળી જ ભૂખ છે, જે અધ્યયનના ખોરાકથી સંતોષી ન શકાય આવો અંગત અનુભવ છે જ

લેખકે જોકે હિંદુધર્મની ઉપાસનાને ખીચડી રૂપ કહી છે અને ઇસ્લામની ઉપાસનાને સ્વચ્ચારિણી અનન્ય નિષ્ઠા કહી છે એ વાત સાચી પણ છે પરંતુ એમા જ્ઞાન ન હોવાથી બન્ને દોષાવહ બને છે. ખીચડી ઉપાસના એટલે કોઈ ત્યાંથી લાભ ઉઠાવવા કોઈ તેને વળગવાની વૃત્તિ અને એકનિષ્ઠ ઉપાસના એટલે એકને જ વળગવાની વૃત્તિ આ બન્નેમાં જો ચિત્ત જાગૃત હોય ને વિવેક હોય તો બંને ગુણાવહ નીપજે અનેક દેવોનો સમન્વય જ્ઞાનશુદ્ધ હોય તો મુસલમાનની પેઠે અન્ય પ્રત્યે અદેખાઈ કે દ્વેષ ન આવે મુસલમાનોએ જ અન્ય દેવોના ધ્વંસ કર્યા છે, તે અજ્ઞાનયુક્ત એકનિષ્ઠાને કારણે જો ખરેખર તલસ્પર્શી જ્ઞાન હોય તો એકનિષ્ઠ ઉપાસના હોય કે બહુનિષ્ઠ ઉપાસના હોય તોય તે ઉદાત્ત બને એટલે મારી દૃષ્ટિએ જો જરૂર હોય તો સમત્વ, ઉદારતા, ચિત્તશુદ્ધિ અને વિવેકની છે માત્ર ખુદાનો ઉપાસક પણ જો તે શુદ્ધચિત્ત હોય તો અન્ય દેવો પ્રત્યે સહિષ્ણુ તો થવાનો જ અને અનેક દેવોનો ઉપાસક પણ તેવો શુદ્ધચિત્ત હોય તો તે પણ ગમે ત્યાં ન [illegible] કે કોઈને રોકે નહિ ગાંધીજીના પ્રાર્થના સંમેલનો હતી તેટલા

જ્ઞાન અને સમચિત્તતાની હિમાયત છે જ. અને દેવ–સમન્વયમાં પણ જો એ તત્ત્વ હોય તો લેખકે સ્પષ્ટ કહ્યાં ન છતાં તે ગ્રાહ્ય ગણાવું જોઈએ. લેખકનો ધર્મવિકાસ થયો તે અમુક રીતે ખરું. પણ બધાનો વિકાસ કાંઈ એક જ રીતે નથી થતો. રામકૃષ્ણ ધાર્મિક હતા એમાં શંકા નથી. તેમની ઉપાસનામાં અનેકદેવનિષ્ઠા હતી અને છતાં વિકાસ થયો

૪. ઈશ્વરનિષ્ઠાનું બળ

સત્યને વળગી રહીને જ જીવનક્રમ ચલાવવાની અને પોતાનું ધ્યેય સિદ્ધ કરવાની જે શક્તિ તે જ સત્યાગ્રહ. આમાં સાધ્ય અને સાધન વચ્ચે સંબંધ સત્યનો જ હોય છે આ જ ઈશ્વરનિષ્ઠાનું બળ અગર અધ્યાત્મબળ છે

૫. પરોક્ષપૂજા

માત્ર પરોક્ષનો જ મહિમા ગાવો–સ્વીકારવો એ જીવનને પાંગળું અને આંધળું બનાવે છે ભૂતકાળના ગ્રંથો, આદર્શો કે સત્પુરુષો પ્રત્યેની શ્રદ્ધાએ વર્તમાન કાળના યોગ્ય પુરુષ પાસેથી તત્ત્વદૃષ્ટિ શીખવતાં અને વર્તમાન કર્તવ્યનું ભાન કરતા આડે આવવું ન જોઈએ એ પ્રાચીન શ્રદ્ધા વર્તમાન પ્રકટ પુરુષો પ્રત્યે નવે રૂપે જન્મવી જોઈએ. તો જ તેનું સંસ્કરણ થયું ગણાય, નહિ તો મરણ

૬. ખોટી ભાવિકતા

ચાલુ જીવન વ્યવહારમાંથી કોઈ નાની જેવી બાબત પકડી લઈ તેનું જ્યારે લેખક વિશ્લેષણ કરે છે અને પૃથક્કરણ તેમ જ માણસની નબળાઈ ઉપર પ્રહાર કરે છે ત્યારે તે સાચું હોવા ઉપરાંત બહુ મનોરંજન પણ બને છે એમની એ હથોટી છે. એ દૃષ્ટિવાળા લેખમાં પણ એ [illegible] ઘટનાના તાત્ત્વિક વિશ્લેષણનું [illegible] છે.

આચર્યું છે તેનો ટૂંકમાં પડઘો છે. એમણે તત્ત્વજ્ઞાન વિષે, સમાજ–સુધારા વિષે, જીવનના અર્થ વિષે, ઈશ્વરનિષ્ઠા વિષે કે સમ્પ્રદાયો વિષે જે કાંઈ વિસ્તારથી લખ્યું છે, તેનો સાર જ આમા આવ્યો હોય એમ લાગે છે. એટલે નવી દૃષ્ટિવાળો લેખ સૂત્રાત્મક છે. બીજા ઘણા લેખો એના ભાષ્યો છે. અભ્યાસી પ્રથમ નવી દૃષ્ટિ વાંચે અને પછી તે મુદ્દા કે નિયમ પરત્વે જે અન્ય લેખો હોય તેને વાંચે તો અભ્યાસમાં, સમજણમા સરળતા પડે દા. ત. ‘નવી દૃષ્ટિ’માં જીવનનો અર્થ નવેસર સમજવાનુ કહ્યુ છે આ માટે વાચકે ‘જીવનનો અર્થ’ એ લેખ વાંચવો ઘટે. કર્મ વ્યક્તિગત કે સમાજગત એનો ઉત્તર ‘ઈશ્વર વિષે કેટલાક ભ્રમો’ એ લેખમાંથી મળે એમ કહી શકાય કે આ લેખ નાની જીવનપોથી છે

૩ શાસ્ત્રદૃષ્ટિની મર્યાદા

આ લેખમા સતદૃષ્ટિની અગર તો અનુભવની કે વિવેકશક્તિની શ્રેષ્ઠતા સ્થાપી છે, જે સામર્થ્યયોગની કોટિમા આવે કેમકે એ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ છે. શાસ્ત્રાવલંબી દૃષ્ટિ ગમે તેવી વિદ્વત્તાવાળી હોય તોય તે પરોક્ષ છે અને આસપાસના દબાણથી કે અનુસરણથી મુક્તપણે વિચરી શકતી નથી. ગમે તેવો વિદ્વાન પણ પરંપરાને ઓળંગી નથી શકતો; જ્યારે સતમા એ સામર્થ્ય હોય છે. શાસ્ત્રાવલમ્બન લોકભક્તિમાં પરિણમે છે. તે અનુસ્રોત પ્રવૃત્તિ છે. જ્યારે સંતદૃષ્ટિ તેથી ઊલટી છે તેમાથી જ શાસ્ત્રો અને વિદ્વાનોને ખોરાક મળી રહે છે. લોકો સતની દૃષ્ટિને આવકારે છે ત્યારે એમ નથી જોતા કે એણે કેટલાં શાસ્ત્રો વાચ્યાં કે કેવો વિદ્વાન ? જ્યારે તેઓ વિદ્વાન પાસે તેની અપેક્ષા રાખે છે શાસ્ત્રદૃષ્ટિવાળા માણસોનુ આત્યંતિક સમર્થન કરીને પણ છેવટે સંતના પગમાં જ પડે છે, કેમ કે તે બંધનમુક્ત છે. આ લેખ દરેક સામ્પ્રદાયિક મનોવૃત્તિવાળા માટે ભાગે મનનીય છે

૪ શાસ્ત્રવિવેક

આમા અનુભવ અને શાસ્ત્ર, આપ્તવાક્ય તેમ જ અનુમાન વચ્ચેનું તારતમ્ય બતાવ્યું છે, જેને નહિ જાણવાથી ભ્રમણા આવે છે. આ અને શાસ્ત્રદૃષ્ટિવાળો લેખ બને એકબીજાના પૂરક છે અને દા. ત. ‘સામર્થ્યયોગનું જ મહત્ત્વ’ તાત્પર્ય છે અને તે માટે યોગની અનિવાર્યતા પણ સૂચવાય છે

૫ ધર્મસંમેલનની મર્યાદા

આ લેખમાં ધર્મસંમેલનની મર્યાદા એક સાચા મનાયેલ [illegible]

રીતે બતાવી છે. જાણે કે ગાંધીજી એકધર્મનિષ્ઠ રહીને અનેક ધર્મો પ્રત્યે સમભાવ પોષી દરેકમાં જે મહત્ત્વનો સુધારો કરવા જીવન જીવ્યા છે, તેનુ જ નિરૂપણ આમાં ન હોય? ખરી રીતે ગૂઢ અને વિવિધ સમસ્યાઓનો ખાસ કરી સર્વધર્મસમભાવને લગતી સમસ્યાઓનો ઉકેલ કરવો હોય તો તે માત્ર કલ્પનાથી નથી થઈ શકતો, પણ એ પ્રકારનુ કોઈ જીવન જીવ્યો હોય અને એવા જીવનનો આખો પટ નિહાળ્યો હોય અને પોતે પણ પછી એમા હૃદયથી રસ લેતો થયો હોય તો જ આવો ઉકેલ સ્પષ્ટપણે સૂચવી શકાય છે, કેમકે એક બાજુથી તેણે બીજાનુ એવુ જીવન નિહાળ્યુ હોય છે અને બીજી બાજુથી તેણે પણ એ માર્ગમા રસ લઈ અનુભવ સાધ્યો હોય છે આ જ કારણથી વર્તમાનની પેઠે અતીત ઘટનાઓ પણ સામે હોય તેમ લાગે છે આ લેખમા લેખક તેવુ જ નિરૂપણકૌશલ દર્શાવે છે

૬ સંકલ્પસિદ્ધિ

સંકલ્પસિદ્ધિના નિરૂપણ દ્વારા તો કર્મના કાયદાનુ જ નિરૂપણ કર્યું છે, તે અનુભવસિદ્ધ હોવાથી તાદૃશ છે એ વિચાર એમણે સાધના દરમિયાન કર્યો હશે

૭ જપ

જપ વિશે જે લખ્યુ છે તે તેમણે અનુભવ્યુ જ. પ્રાચીન [illegible] અનુભવ તો હતો જ. બાપુના જપે સૌને બતાવી આપ્યુ કે તે [illegible] ચિત્તની સ્થિરતા, ધ્યેયની સ્મૃતિ અને સંકલ્પની સિદ્ધિના ઉપયોગી [illegible] 'રામ' એ જ નામે તેમને સમાહિત ચિત્તે મરણને આવકારવા પ્રેર્યા

બુદ્ધિથી જ કરાય તે કર્મ એ વ્યાખ્યા સારરૂપ છે. વળી ચિત્તશુદ્ધિ અને તે માટેના યમ-નિયમ, ભાવના આદિ દ્વારા જીવન એ લક્ષ્ય હોય તો આત્મ-સાક્ષાત્કાર વગેરે હશે તો આપોઆપ સિદ્ધ થઈ જશે, અન્યથા સ્વરૂપનિષ્ઠા તો થશે જ

૯. બ્રહ્મચર્ય અને અપરિગ્રહ

બ્રહ્મચર્ય પાળતો પણ પરિગ્રહી દેખાય છે. મર્યાદિત બ્રહ્મચર્ય હોય છતા અપરિગ્રહી હોઈ શકે; બ્રહ્મચર્ય અને અપરિગ્રહ વચ્ચે કારણ-કાર્યભાવ નથી. પણ અપરિગ્રહની દૃષ્ટિએ બ્રહ્મચર્ય સ્વીકાર્યું હોય તો તે પોષક જરૂર બને. મર્યાદિત બ્રહ્મચર્યથી સંતતિ થાય તોય તે અમુક પ્રમાણમાં અપરિ-ગ્રહનુ પોષક બને છે. કેટલીક વાર અપરિગ્રહની શુદ્ધ ભાવનામાંથી બ્રહ્મચર્ય સાચી રીતે આવે છે કેટલીક વાર શુદ્ધ બ્રહ્મચર્યની દૃષ્ટિ હોય તો અપરિગ્રહ આપોઆપ પોષાય છે મૂળ વાત સાચી સમજણ અને વિવેકની છે

૧૫ કમજોર સાત્ત્વિકતા

ધર્મ અને સાધનયોગ વિષે અનેક ભ્રમો પ્રવર્તે છે. તે ભ્રમો મનમાં પડ્યા હોવા છતા જ્ઞાનથી મોક્ષ છે કે ચારિત્રથી મોક્ષ છે—એ સૂત્રને અવલંબી જ્ઞાન કે ચારિત્રસિદ્ધિનો પ્રયત્ન થાય છે. તેથી સાચુ જ્ઞાન તો મળતું નથી અને માત્ર ચાલુ વ્રતોમા જ ચારિત્રની ઇતિશ્રી સમજાય છે. તેથી જ્ઞાન, મોક્ષ, ચારિત્ર ઇત્યાદિ વિષે સાચા જ્ઞાનની જરૂર છે, અને ભ્રમ નિવારવાની પણ જરૂર છે. જ્ઞાન જેટલી જ બલ્કે તેથીયે વધારે સિદ્ધાંતને વળગી રહેવાની વૃત્તિ આવશ્યક છે જન્મ-મરણના કાલ્પનિક ભયો એ ભ્રમ છે. જપ-તપ કે વ્રતનાં સ્થૂળ રૂપો, જો એમા સૂક્ષ્મ વિવેક, ધૈર્ય અને સત્પુરુષાર્થ ન હોય તો, દ્રવ્યરૂપ બની જાય છે. આવા દ્રવ્યધર્મથી બચવાનુ દરેક સાચા ધર્માત્માએ કહ્યું છે જેનામા ભાવધર્મ જાગતો હોય તેનો બધો વ્યવહાર ધર્મરૂપ જ બની જાય છે ભાવધર્મ એટલે સૂક્ષ્મ વિવેક, તેને વધારવા અને શોધવાની ખંત, સતત જાગૃતિ અને પૌર્વાપર્યનુ ભાન. વિશાળ આદર્શ પ્રમાણે જીવન જીવ્યા વિના કૃતાર્થતાનો સમાવેશ થાય છે.

એમ કરતાં જ્ઞાન અને ચારિત્રની એવી સ્થિતિ આવે છે કે પછી કર્મ તેના ઉપર કોઈ પણ જાતની અસર કરી શકતાં જ નથી આ જ સ્થિતિ મોક્ષ છે.

આ લેખમાં સભાન દાન આપનાર અને સભાનપણે પામનાર વચ્ચે જે વૃત્તિભેદને કારણે ફેર બતાવ્યો છે તે જૈન પરંપરાના ગ્રન્થો સમજવામા ઉપયોગી છે. વળી ક ખ ગ ઘ એ ચારે દાનકર્માદિ છોડી દે અને પ ફ બ ભ ચારે અન્ન ન પામે, ભૂખ્યા રહે તો ત્યા પણ જુદી જુદી અસર દેખાય છે. એટલે પ્રવૃત્તિ કે પરાવૃત્તિમા ફેર નથી પડતો, પણ જો કોઈ શુદ્ધ આશયથી સભાનપણે એ ચારે દાન આપે અને ચારે લે તો તેના કાંઈ ભેદ નહિ જણાય ચારે લેનાર કે દેનારના જ્ઞાન કે ચારિત્ર ઉપર કુસંસ્કારની રજ નહિ પડે, ઊલટાં તે વધારે ઝળહળશે કારણ કે એની પાછળ વિવેક સમભાવ. કર્તવ્યબુદ્ધિ અને અનહંકાર છે આ લેખ બહુ જ ગેરસમજ દૂર કરનારો હોવાથી સર્વોપયોગી છે, અને એ ભ્રમણાનિરાસ કરાવનારો છે કમજોર સાત્વિકતાની પેઠે આ લેખ ધર્મવર્ગમા ચલાવવા જેવો છે, અથવા અધિકારીને વાચવાની ભલામણ કરવા જેવો છે

તત્ત્વજ્ઞાનના કેટલાક ગહન લેખો અમુકને માટે જ ઉપયોગી છે, ત્યારે કમજોર સાત્ત્વિકતા અને કર્તવ્યવાળા લેખ સર્વગમ્ય જેવા છે તેથી એ ઉચ્ચ વર્ગમા સમજાવવા લાયક છે આ બે અને બીજા એવા કેટલાક લેખો અમુક દશાના જિજ્ઞાસુની દૃષ્ટિએ જુદા તારવી છપાવવા અને ધર્મવર્ગના ચલાવવા જેવા છે. એમા સંકલ્પસિદ્ધિ અને જપ જેવા લેખોને પણ સ્થાન છે.

અનેક-સમાન-ચૈતન્યવાદી હોય—બંને સાચા મુમુક્ષુ હોય તો તેણે મહાયાની થવું જ રહ્યું. એમ લાગે છે કે આ જ કારણથી મહાયાનની ભાવના ઉદયમાં આપમેળે આવી હશે. વૈયક્તિક મોક્ષનો વિચાર કાં તો ચેતનવૈષમ્યના વિચારમાંથી, કાં તો પુણ્ય-પાપકૃત સહજ અને અનિવાર્ય વૈષમ્યના વિચારમાંથી જે જાતિવાદી કર્મકાંડ ચાલેલો તેના જ અવશેષરૂપે સંભવે છે. જ્યારે મોક્ષની કલ્પના ન હતી કે નહિ હોય ત્યારે પણ લોકો પુણ્ય દ્વારા ઉચ્ચ પદ પ્રાપ્ત કરવા પ્રયત્ન કરતા, પણ તે પ્રયત્ન પોતા પૂરતો જ હતો. આ સંસ્કાર વારસાગત થઈ ગયો. જ્યારે મોક્ષની ભાવના દાખલ થઈ ત્યારે પણ એ જ વૈયક્તિક ઉચ્ચતાપ્રાપ્તિના સંસ્કારને લીધે વૈયક્તિક મોક્ષનું જ વલણ રહ્યું ને હજી લગી ચાલુ છે. પણ આત્મસમાનતાવાદ અગર આત્મૈક્યવાદની સાથે એનો મેળ નથી. સમાનતા અને એકતાની અનુભૂતિ તો સર્વમુક્તિ દ્વારા જ થઈ શકે. એટલે સર્વમુક્તિની દૃષ્ટિએ જ મુમુક્ષુનો આચાર-વ્યવહાર હોવો ઘટે; એ જ આદર્શ હોઈ શકે. "આપણે મોટા વ્યક્તિવાદી બન્યા. જેને પોતાના જ હિતની વધારે ચિંતા લાગે અને જગતની બિલકુલ ન લાગે તે વધારે સાચો મુમુક્ષુ કહેવાય" (પૃ. ૧૮૮)

એ ઉપરથી મુદ્દો એ ફલિત થાય છે કે આધ્યાત્મિક સાધના વખતે અને સિદ્ધિ પછી પ્રથમ હિનયાની માનસ નિવારવું ઘટે.

વૈષમ્યની અવસ્થા વખતે તેની આપત્તિ માટે જે કર્મવાદ વૈયક્તિક દૃષ્ટિએ વિચારાયેલો તે જ સમાનતા અને અદ્વૈતની અવસ્થા વખતે પણ તે જ રીતે વિચારવામાં આવ્યો. અને એ સામાજિક કર્મફળ ભોગવાય છે. એકનું કર્મ બીજાને ફળ આપે છે. એ સામાજિક કર્મફળવાદ. કોઈ એકનું કર્મ માત્ર તેનામાં જ સમાપ્ત થાય છે અને બીજાને તેનો અનુભવ થતો જ નથી, આવો વિચાર તે વૈયક્તિક કર્મવાદ છે. આથી ઊલટું તે સામાજિક કર્મવાદ.

પૃ. નં. ૨૦૬. નં. ૩૬.

આચાર સામે ઉદ્દ્ભવી શક્યો નથી તત્ત્વજ્ઞાન આગળ વધતું ગયુ, પણ વૈયક્તિક કર્મવાદ અને આચારવાદ એની સાથે મારી મચડીને બેસાડવામા આવ્યો અથવા તેનો તે જ કાયમ રહ્યો અત્યારે એ આગળ વધેલ તત્ત્વજ્ઞાન પ્રમાણે જ ધર્મ ઘડાવો જોઈએ

આમા તત્ત્વજ્ઞાન અને ધર્મ બંનેને તદ્દન મુક્તદ્વાર કરવામા આવ્યા છે જેથી તે જે જે સમ્પ્રદાયને આશ્રયે ઉદ્દ્ભવ્યા હોય અગર પાછળથી વિકાસ પામ્યા હોય અને તેમા જ રૂંધાઈ ગયા હોય તે બધા સમ્પ્રદાયોથી મુક્તિ મેળવી એકબીજાને આલિંગે, ભેટે અને સમૂહવત્ વ્યાપક બને. વળી એમા એ પણ ઉદ્દિષ્ટ છે કે તત્ત્વજ્ઞાનનું પર્યવસાન ધર્માચારમા જ થવુ જોઈએ. જે તત્ત્વજ્ઞાન ધર્માચારમા ન પરિણમે તેને તત્ત્વજ્ઞાન કહેવાનો શો અર્થ? અને ધર્માચાર પણ તે જ મુખ્ય હોઈ શકે જેમા પ્રથમ માનવતાની શુદ્ધિ-વૃદ્ધિ અભિપ્રેત હોય ત્યાર બાદ જ અને તેનાથી સબદ્ધ જ સર્વભૂતહિતનો વિચાર યોગ્ય ગણાય. માનવતાનુ પૂરેપૂરુ પોષણ ન થતુ હોય ત્યારે સર્વભૂતહિતગામી ધર્માચાર પણ શુષ્ક થઈ જાય છે -

સાંપ્રદાયિકતા અને તેના પુરાવાઓનું દિગ્દર્શન

[૧૧]

હિન્દુસ્તાનની જનતા એમ માને છે અને દાવો કરે છે કે દુનિયામાં બીજી કોઈ પ્રજા એમના જેટલી ધાર્મિક નથી, અને ધર્મનો વારસો એમના જેવો અને જેટલો બીજી કોઈ પ્રજાને મળ્યો નથી જો આ માન્યતા સાચી હોય–અને અમુક અંશમાં તે સાચી છે જ—તો પ્રશ્ન થાય છે કે જેનાથી અકલ્યાણનો કશો જ સંભવ નથી, જેનું પાલન એ તેના પાલન કરનારને રક્ષે છે, નીચો પડતો અટકાવે છે, તેવા ધર્મનો વારસો મળ્યા છતાં હિન્દુસ્તાનની પ્રજા પામર કેમ છે? આ પ્રશ્ન સાથે જ નીચેના પ્રશ્નો ઉદ્ભવે છે. શું ધાર્મિકપણાનો વારસો મળ્યા વિષે હિન્દુસ્તાનની પ્રજાનો દાવો એ એક ભ્રમ જ છે? અથવા ધર્મની જે અમોઘ શક્તિ માનવામાં આવે છે તે કલ્પિત છે? અથવા બીજું એવું કોઈ તત્ત્વ ધર્મ સાથે ભળી ગયું છે કે જેને લીધે ધર્મ પોતાની અમોઘ શક્તિ પ્રમાણે કામ કરવાને બદલે ઊલટો પ્રજાના અધઃપાતમાં નિમિત્ત બને છે?

ઉપનિષદનું અદ્વૈત તત્ત્વજ્ઞાન, જૈન ધર્મના તપ અને અહિંસાના અનુષ્ઠાન, તથા બૌદ્ધ ધર્મનો સામ્યવાદ આ પ્રજાને વારસામાં [illegible] છે. એ બીના ઐતિહાસિક હોવાથી તેના ધાર્મિકપણાના વારસા વિષેનો દાવો ખોટો નથી જ. કલ્યાણ સાધવાની ધર્મની અમોઘ શક્તિ સાચી હોવાની સાબિતી પ્રાચીન અને અર્વાચીન અનેક મહાપુરુષોના ખરા જીવનથી મળે છે. ઉત્તરના આ બે મુદ્દા જો વાસ્તવિક હોય તો છેવટના પ્રશ્નનો જ ઉત્તર વિચારવાનો બાકી રહે છે. એનો વિચાર કરતાં અનેક પુરાવાઓ ઉપરથી આપણને એમ માનવાને કારણ મળે છે કે કોઈ બીજા એવા અનિષ્ટ તત્ત્વને લીધે જ ધર્મની સાચી શક્તિ કુંઠિત થઈ ગઈ છે અને તેથી તે [illegible] સાધવાને બદલે [illegible] અનિષ્ટ સાધતી દેખાય છે. એ બીજા અનિષ્ટ તત્ત્વ [illegible] પુરાવા ઉપરથી [illegible] માનવાના [illegible] છે તે [illegible] પ્રસ્તુત લેખમાં [illegible].

[illegible]

અનિષ્ટ માર્ગે બળ આપનાર બીજું તત્ત્વ એ સાંપ્રદાયિકતા. અહીં સાંપ્રદાયિકતાનો અર્થ અને તેને લગતી બીજી ખાસ મુદ્દાની હકીકત પહેલાં જણાવી દેવી અગત્યની છે.

વ્યાખ્યા —સંપ્રદાય શબ્દ એ માત્ર રૂઢ કે માત્ર યૌગિક નથી પણ મિશ્ર (રૂઢયૌગિક) છે. પાતંજલ મત બતાવતાં કુસુમાંજલિમાં તાર્કિક-પ્રવર ઉદયને સંપ્રદાય શબ્દનો માત્ર વેદ એટલો જ અર્થ લીધો છે.[1] કોશ અને વ્યવહાર બંને જોતાં એ શબ્દનો માત્ર વેદ અર્થ કરવો તે સંકુચિત છે. અમર એનો અર્થ 'ગુરુપરંપરાથી ચાલ્યો આવતો સદુપદેશ' એવો કરે છે.[2] અમરકોશનો આ અર્થ વિસ્તૃત અને પ્રથમ અર્થ કરતાં વધારે વાસ્તવિક છે.

વૈદિક સંપ્રદાય, બૌદ્ધ સંપ્રદાય, જૈન સંપ્રદાય, ગોરખ અને નાનક સંપ્રદાય ઇત્યાદિ પ્રામાણિક વ્યવહારને લક્ષમાં રાખી અમરકોશમાં જણાવેલ અર્થનું વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ કરવું હોય તો આ પ્રમાણે કરી શકાય. એક અગર અનેક અસાધારણ બળવત્ વ્યક્તિઓથી ઉતરી આવતો જ્ઞાન, આચાર કે વિચારનો વિશિષ્ટ વારસો તે સંપ્રદાય.

ગ્રંથોમા દૃષ્ટિરાગ અને બૌદ્ધગ્રંથોમાં દૃષ્ટિ શબ્દ છે તે આ મતમોહ કે સંપ્રદાયબંધનના જ સૂચક છે

માત્ર સંપ્રદાયનો સ્વીકાર એ જ સાંપ્રદાયિકતા નથી કોઈ એક સંપ્રદાયને સ્વીકાર્યા છતા તેમા દૃષ્ટિઉદારતાનુ તત્ત્વ હોય તો ત્યા સાંપ્રદાયિકતા નથી આવતી એ તો સંકુચિત અને એકપક્ષીય અંધદૃષ્ટિમાથી ઉદ્ભવે છે કોઈ પણ સંપ્રદાયની ધૂંસરી ન જ સ્વીકારવી અથવા સ્વીકાર્યા પછી તેના મોહમા અંધ થઈ જવુ એ બંને પરસ્પરવિરોધી છેડાઓ છે, અને તેથી તે એકાંતરૂપ છે એ બે છેડાઓની વચ્ચે થઈને નીકળતો પ્રામાણિક મધ્યમ માર્ગ દૃષ્ટિઉદારતાનો છે કારણ, એમા સંપ્રદાયનો સ્વીકાર છતા મિથ્યા અસ્મિતાનુ તત્ત્વ નથી કોઈ પણ જાતના સંપ્રદાયને ન માનવો એમા મનુષ્યની વિશેષતારૂપ વિચારશક્તિની અવગણના છે અને સંપ્રદાય સ્વીકારીને તેમા અંધપણે બદ્ધ થઈ જવુ એ સમભાવનો ઘાત છે, જ્યારે દૃષ્ટિઉદારતામા વિચાર અને સમભાવ બંને તત્ત્વો સચવાય છે જે રાગમા દ્વેષનું બીજ સમાતુ હોય તે રાગ, પછી તે ગમે તેવા ઉત્તમોત્તમ ગણાતા વિષયમા કેમ ન હોય છતા, વ્યામોહરૂપ હોઈ ત્યાજ્ય છે. અજ્ઞાન એ જેમ મનુષ્યને સત્યથી દૂર રાખે છે તેમ એવો વ્યામોહ પણ તેને સત્યની નજીક આવતા અટકાવે છે દૃષ્ટિઉદારતામા સત્યની સમીપ લઈ જવાનો ગુણ છે.

બાલમનુષ્ય પોતાની આજુબાજુના વાતાવરણમાંથી શ્રદ્ધા અને સંયમરૂપ ધર્મતત્ત્વને મેળવે છે, તેમ જ તે કુટુંબ, સમાજ, ધર્મસ્થાન અને પંક્તિ-સંસ્થાના સંકુચિત વાતાવરણમાંથી મતાંધતા મેળવે અને કેળવે છે. બાલ્ય-કાળથી ધીરે ધીરે જાણ્યે-અજાણ્યે સંચિત થયેલા મતાંધતાના સંસ્કારોનું સંશોધન જો ઉમર અને બુદ્ધિની વૃદ્ધિ થયા પછી પણ વિવેકશક્તિથી કરવામાં ન આવે તો ગમે તેટલી ઉમર થયા પછી અને ગમે તેટલું પુસ્તકીય શિક્ષણ મેળવ્યા છતાંય માણસ એમ માનતો થઈ જાય છે કે મારો ધર્મ એ જ સાચો અને સર્વશ્રેષ્ઠ, ઇતર ધર્મો કાં તો ખોટા અને કાં તો ઊતરતા; મારા ઉપાસ્ય દેવો અને તેની મૂર્તિઓ એ જ આદર્શ અને બીજાના કાં તો દૂષિત કે તદ્દન સાધારણ, મને પ્રાપ્ત થયેલું તત્ત્વજ્ઞાન અને ધાર્મિક સાહિત્ય એ જ પૂર્ણ તથા પ્રથમ પંક્તિનું અને બીજાઓનું તેમાંથી ચોરેલું અગર ઉધાર લીધેલું, અમારા ધર્મગુરુઓ અને વિદ્વાનો એ જ ખરા ત્યાગી તથા જ પ્રમાણભૂત, અને બીજાઓના ધર્મગુરુઓ ઢોંગી કે શિથિલ અને વિદ્વાનો અપ્રમાણભૂત. આવી મતાંધતા બંધાઈ જવાથી ધર્મનું શુદ્ધ અને ઉદાર [illegible] અશુદ્ધ તથા સાંકડે રસ્તે વહેવા લાગે છે અને તેમાં [illegible] ન હોય તોપણ તે ધર્મઝનૂનનું રૂપ લે છે. એ રૂપથી મનુષ્યની કર્તવ્ય-અકર્તવ્ય વિષયની બુદ્ધિ [illegible] થઈ જાય છે. આ સ્થિતિ [illegible] માત્ર વંશપરંપરા અને અન્યસંસર્ગથી પ્રાપ્ત થતા સંસ્કારોનું વિવેકપૂર્વકનું સંશોધન ન કરવું અને તે રીતે ચિત્તની જાગૃતિ [illegible] દેવી એ જ છે.

જે વિરોધી સંપ્રદાયની ટીકા કરતા હોય છે તે સંપ્રદાયના અભિમાનીઓને આવેશ ઉત્પન્ન કરે તેવા પણ છે છતાં એવા નમૂનાઓ આ લેખમાં રજૂ કરવાનો ઉદ્દેશ એ નથી કે તેથી કોઈને આઘાત પહોંચે અગર કોઈ પણ સંપ્રદાયની લેશ પણ અવમાનના થાય અહીં કેવળ ઐતિહાસિક દૃષ્ટિથી જ નિરૂપણ કર્યું છે અને અભ્યાસીઓને તે દૃષ્ટિથી જ વિચારવા વિનંતી છે.

પુરાવાઓના પ્રકારો —મતાંધતાના પુરાવાઓના નમૂનાઓ બે પ્રકારના મળે છે (૧) શાસ્ત્રોમાંથી અને (૨) વ્યાવહારિક જીવનમાંથી શાસ્ત્રો એ જીવનનું પ્રતિબિંબ છે, જે ભાવના, જે વિચાર, કે જે વર્તન જીવનમાં ન હોય તે શાસ્ત્રમાં ક્યાંથી આવે ? જે શાસ્ત્રમાં હોય તે ભાવી પેઢીના જીવનમાં ઊતરે છે

જનતાના સાંપ્રદાયિક જીવનમાં દાખલ થઈએ તો તમારે કાને અવિચારી અસહિષ્ણુતાનો ધ્વનિ પડશે કાશી, બિહાર, અને મિથિલાના બ્રાહ્મણોને જૈન સંપ્રદાય વિષે તે એમ કહેતા સાંભળશો કે જૈનો નાસ્તિક છે, કારણ, તેઓ વેદમાં માનતા નથી, બ્રાહ્મણોને ધર્મગુરુ લેખતા નથી ઊલટું બ્રાહ્મણોને અપમાનિત કરવા કે દુઃખ દેવા જૈનો પોતાનાં અનંતુ કરે છે બ્રાહ્મણને પોતાને ઘેર નોતરી માકડોથી ખદબદતા ખાટલામાં તેને સુવાડી તેના લોહીથી માકડોને તૃપ્ત કરી દયાવૃત્તિનું પાલન કરવું એ જૈનોનું કામ છે જૈનવા-સિમાંના ગૃહસ્થ કે ભિક્ષુને બ્રાહ્મણધર્મ વિષે એમ કહેતા જરૂર સાંભળશો કે તેઓ મિથ્યાત્વી છે જ્ઞાન ગમે તેટલું હોય તોપણ તેઓ તત્ત્વને પામ્યા જ નથી તેઓ દેવી અને સ્વાર્થી છે બૌદ્ધ ઉપાસક કે ભિક્ષુ પાસે જશો તો તે [illegible] કહેતા બીજા ધર્મો વિષે જરૂર સાંભળશો [illegible] આજના [illegible] ઉદાહરણોની [illegible] ઉદાહરણ [illegible] છે આ ઉપરાંત [illegible]

વૈદિક સંપ્રદાયના બે વૈષ્ણવ અને શૈવ પંથો વચ્ચે એટલે સુધી વિરોધ નજરે પડશે કે, 'શિવ'નું નામ ન લેવાય તે માટે વૈષ્ણવ દરજીને 'કપડું શીવ' એમ પણ નહિ કહે. આ રીતે ભિન્ન ભિન્ન સંપ્રદાયના લોકો એક જ દેશ અને એક જ કાળમાં સાથે રહેતા તથા અનેક હિતાહિતના પ્રશ્નમા સમાન ભાગીદાર હોવા છતા તેઓના જીવનમાં સાંપ્રદાયિક કટુકતા અને વિરોધની લાગણી પુષ્કળ રહેલી જણાશે

આ બે પ્રકારના વિરોધમા બ્રાહ્મણો અને શ્રમણોનો વિરોધ પ્રથમ પ્રકારમા વૈયાકરણોએ ગણેલો છે, એટલે તે વિરોધ જાતિ-શત્રુતારૂપ છે બ્રાહ્મણો એટલે સામાન્ય રીતે વેદપ્રતિષ્ઠાપક વર્ગ અને શ્રમણો એટલે વેદમા ન માનનાર કે વેદવિરોધી વર્ગ આ બન્ને વચ્ચેનો વિરોધ કારણિક જણાય છે છતા તે વિરોધને વૈયાકરણોએ જાતિવિરોધ કહ્યો છે એમાં ખાસ રહસ્ય સમાયેલુ છે. જેમ બિલાડી ઉંદરને જુએ કે તેનો પિત્તો ખિજે અથવા જેમ નકુલ સર્પને જુએ કે તેનો કાળ જાય તેમ બ્રાહ્મણો અને શ્રમણો એક-બીજાને જોઈ રોષાવિષ્ટ થઈ જાય છે એવો અભિપ્રાય વૈયાકરણોના જાતિ-વિરોધકથનમાં રહેલો છે

લઈએ. વિક્રમના પૂર્વવર્તી વૈદિક સાહિત્યમાં સાંપ્રદાયિક્તા નથી જ એમ તો ન જ કહી શકાય; પણ તે ત્યાર પછીના સાહિત્યમાં દેખાય છે તેવી ઉગ્ર અને સ્પષ્ટ નથી. વિક્રમના સમય દરમિયાનનું કે ત્યાર બાદનું પુરાણસાહિત્ય

બધા શ્રમણપક્ષીય છે. એઓને બ્રાહ્મણગ્રંથોમાં નાસ્તિક શબ્દથી પણ ઓળખાવ્યા છે

नास्तिको वेदनिन्दकः । मनुस्मृति० अ० २ श्लो० ११

આ બે વર્ગના વિરોધના ઇતિહાસનું મૂળ જોકે બહુ જૂનુ છે અને તે બન્ને વર્ગના પ્રાચીન સાહિત્યમાં દેખાય છે, છતા વ્યાકરણશાસ્ત્રમાં આ વિરોધનુ ઉદાહરણ સૌથી પહેલાં જિનેન્દ્રબુદ્ધિના ન્યાસમા અત્યારે જોવામાં આવ્યું છે જિનેંદ્રબુદ્ધિ એ બૌદ્ધ વિદ્વાન છે તેનો ન્યાસ કાશિકા ઉપર છે. કાશિકા એ વામન અને જયાદિત્ય ઉભયની બનાવેલી પાણિનીય સૂત્રો ઉપરની બૃહદ્‌-વૃત્તિ છે જિનેંદ્રબુદ્ધિનો સમય ઇસ્વી ૮ મો સૈકો મનાય છે. ત્યાર બાદ કૈયટના મહાભાષ્ય ઉપરના વિવરણમાં એ ઉદાહરણ મળે છે કૈયટનો સમય ૧૧ મો સૈકો મનાય છે જુઓ "શીસ્ટીમ્સ ઓફ સંસ્કૃત ગ્રામર એસ કે. બલ્વલ્કર પરિશિષ્ટ–૩" ત્યાર બાદ આચાર્ય હેમચંદ્રના સ્વોપજ્ઞ શબ્દાનુશાસનમા એ ઉદાહરણ મળે છે મહાભાષ્ય ચાંદ્ર કે કાશિકા જેવા પ્રાચીન વ્યાકરણગ્રંથોમાં એ ઉદાહરણ નથી પણ સાતમા સૈકા પછીના વ્યાકરણગ્રંથોમા એ ઉદાહરણ છે. એ બીના પણ ખાસ ધ્યાન ખેંચે તેવી છે આ સમય પૌરાણિક સમય, અને પૌરાણિક સમય એટલે સંપ્રદાયોના વિરોધનો સમય. તેથી જ તે વિરોધની અસરની નોંધ વૈયાકરણો પણ લીધા વિના રહેતા નથી

श्रमणब्राह्मणम् એવું ઉદાહરણ છે. તેની એક દક્ષિણની પ્રતિમાં ब्राह्मणश्रमण એવો પણ પાઠ છે જુઓ પૃ ૪૮૭, જિનેન્દ્રબુદ્ધિના ન્યાસમાં.

કૈયટ श्रमणब्राह्मण અને હેમચંદ્ર ब्राह्मणश्रमण ઉદાહરણ આપે છે. જુઓ અનુક્રમે महाभाष्य प्रदीपोद्योत २-४-९ પૃ ૭૬૮ [illegible] આવૃત્તિ सिद्ध० ३-१-१४१.

એ આપણને મતાંધતાના ઉગ્ર વિષના પ્રથમ નમૂનારૂપે જોવા મળે છે. આ પુરાણોનો પ્રભાવ સાધારણ જનતા ઉપર અપરિમિત હોવાથી તેમાં દાખલ થયેલી મતાંધતા વિશાળ જનતાના હૃદયપટ ઉપર ફેલાયેલી છે. એકવાર જનતાના હૃદયના ઊંડા ભાગમાં દાખલ થએલ મતાંધતાનું વિષ પછી ધીરે ધીરે ભાવી પેઢીઓના વારસામાં એવી રીતે ઉતરતું ગયું કે તેનું પરિણામ સાહિત્યની બીજી શાખાઓમાં પણ જણાય છે. નાટક અને ચંપૂ કે અલંકારના રસિક, પરિહાસપ્રિય (મશ્કરા) અને વિલાસી લેખકો એ વિષની અસરથી મુક્ત ન રહી શકે એ કદાચ સમજી શકાય તેવી બાબત છે, પણ તત્ત્વજ્ઞાન અને મોક્ષપથના પ્રતિનિધિ હોવાનો વિશ્વાસ ધરાવનાર મહાન આચાર્યો અને વિદ્વાનો સુદ્ધાં એ વિષના ઉગ્ર પરિણામથી મુક્ત નથી રહી શક્યા, એ આર્ય તત્ત્વજ્ઞાનના શ્રેષ્ઠપણાનું અભિમાન રાખનારને આજે તો કાંઈક શરમાવે છે જ.

પ્રસ્તુત નમૂનાઓ માટે અહીં ત્રણ જાતનું વૈદિક સાહિત્ય પસંદ કરવામાં આવે છે. (૧) પુરાણ, (૨) નાટક, (૩) દર્શનશાસ્ત્ર. આ ત્રણે પ્રકારના નમૂનાઓ અનુક્રમે જોઈ ત્યારબાદ જૈન, બૌદ્ધ સાહિત્યમાંથી તેવા નમૂનાઓ જોવાનું યત્ન કરીશું.

એતદ્દેશીય અને વિદેશીય બધા વિદ્વાનો પ્રચલિત પુરાણો પહેલાં પણ પુરાણસાહિત્ય હોવાનું સ્વીકારે છે. એ પ્રાચીન પુરાણસાહિત્યમાં મતાંધતા હશે કે નહિ તે આજે નિશ્ચયપૂર્વક ન કહી શકાય. પણ પ્રચલિત પુરાણોનાં મતાંધતાવિષયક નમૂના ઉપરથી પ્રાચીન પુરાણસાહિત્યમાં પણ તેવું કાંઈક હોવાનું સહજ અનુમાન થઈ આવે છે. પરન્તુ [illegible]

પડેલો એવો કોઈ વિષય ભાગ્યે જ હશે કે જેનુ પુરાણોમાં વર્ણન ન હોય. ધર્મ હોય કે તત્ત્વજ્ઞાન, આચાર હોય કે નીતિ, સગીત હોય કે ચિત્ર, ભૂગોળ હોય કે ખગોળ, ગમે તે લ્યો; તેનુ કાંઈક ને કાંઈક વર્ણન પુરાણોમાં મળે જ. તેથી પુરાણસાહિત્ય એ વહેતી નદીની પેઠે તીર્થસ્થાનની જેમ સર્વગ્રાહ્ય થઈ પડેલ છે લોકહૃદયના જળના સારા અને નરસા એ બને ભાગો પુરાણસાહિત્યની વહેતી નદીમા દાખલ થયા છે, અને એ દાખલ થયેલા ભાગો પાછા ફરી લોકહૃદયમા પ્રવેશતા જ જાય છે

ઉપપુરાણો અનેક છે, પણ મુખ્ય પુરાણો અઢાર કહેવાય છે તેની રચનાનો સમય સર્વાંશે નિશ્ચિત નથી, પણ સામાન્ય રીતે એની રચના વિક્રમ સવત પછીની મનાય છે પુરાણોના પૌર્વાપર્ય વિષે પણ અનેક મતો છે. છતાં વિષ્ણુપુરાણ પ્રાય પ્રાચીન ગણાય છે છ પુરાણોમા વિષ્ણુ, છમાં શિવ, અને છમા બ્રહ્માની પ્રધાનતા છે સપ્રદાય ગમે તે હોય પણ એ બધાં પુરાણો વૈદિક છે અને તેથી વેદ, સ્મૃતિ, યજ્ઞ, વર્ણાશ્રમધર્મ, બ્રાહ્મણ, દેવ, શ્રાદ્ધ, આદિને સર્વાંશે માનનારા હોઈ તેની પ્રતિષ્ઠા સ્થાપે છે આ કારણથી કેટલાક પુરાણોમા પ્રસગે પ્રસગે વૈદિકેતર સંપ્રદાયો વિષે ખૂબ વિરોધ નજરે પડે છે ઘણી જગ્યાએ તો એ વિરોધમા અસહિષ્ણુતાનુ જ તત્ત્વ મુખ્ય સ્થાન ભોગવે છે વૈદિકેતર સપ્રદાયોમા મુખ્યપણે જૈન, બૌદ્ધ અને ક્વચિત્ ચાર્વાક સંપ્રદાયની સામે જ પુરાણકારોએ લખ્યુ છે પણ મતાંધતા, અસહિષ્ણુતા કે દ્વેષ એ એક એવી ચેપી વસ્તુ છે કે એક વાર જીવનમા દાખલ થયા પછી તેનો ઉપયોગ ક્યા કરવો કે ન કરવો એ વિવેક જ રહી નથી શકતો આ કારણથી શુ વૈદિક, શુ જૈન, કે શુ બૌદ્ધ કોઈ પણ સપ્રદાયના સાહિત્યમા જેમ ઇતર સપ્રદાય પ્રત્યે અસહિષ્ણુતા નજરે પડે છે તેમ તેમાના કોઈ એક સંપ્રદાયના પેટાભેદો વચ્ચે પણ એવી અસહિષ્ણુતા નજરે પડે છે તેથી જ આપણે વિષ્ણુ સંપ્રદાયની પ્રધાનતાવાળા પુરાણોમા શૈવ આદિ સપ્રદાયો

ગૌરવ ઘટાડવાની પુરાણકારોની પદ્ધતિ મુખ્યપણે એક જ રૂઢિરૂપ કલ્પનાને આભારી છે તે કલ્પના એ છે કે કોઈ બે પક્ષ લડે, તેમાંથી એક હારે. હારનાર પક્ષ વિષ્ણુઆદિ પાસે મદદ મેળવવા જાય, એટલે વિષ્ણુઆદિ દેવો જીતનાર પક્ષને નિર્બળ બનાવવા તેના મૂળ (વૈદિક) ધર્મથી ભ્રષ્ટ કરી અવૈદિક ધર્મ સ્વીકારાવવા માયા પ્રગટાવે છેવટે જીતનાર પક્ષને અવૈદિક ધર્મ દ્વારા નિર્બળ બનાવી લડાઈમાં બીજા પક્ષને વિજય અપાવે અને એ રીતે અવૈદિક ધર્મો પ્રથમ વિજયી પણ પછી પરાજિત પક્ષની નિર્બળતાના સાધનરૂપે અસ્તિત્વમાં આવે આ કલ્પનાનો ઉત્પાદક ગમે તે હોય પણ તેનો ઉપયોગ પુરાણોમાં જુદે જુદે રૂપે થયેલો છે પ્રસંગ બદલી, વક્તા શ્રોતા અને પાત્રના નામમાં પરિવર્તન કરી ઘણેભાગે એ એક જ કલ્પનાનો ઉપયોગ જૈન બૌદ્ધ આદિ અવૈદિક ધર્મોની ઉત્પત્તિની બાબતમાં પુરાણકારોએ કરેલ છે.

૧ પહેલાં વિષ્ણુપુરાણ લઈએ તેમાં મૈત્રેય અને પરાશરનો સંવાદ મળે છે એ સંવાદમાં જૈન અને બૌદ્ધ ધર્મની ઉત્પત્તિ જણાવવામાં આવી છે. મૈત્રેય પરાશરને પૂછે છે કે નગ્ન એટલે શું? એના ઉત્તરમાં [illegible] પરાશરે દેવાસુરયુદ્ધનો પ્રસંગ લઈ નગ્નની વ્યાખ્યા આપી છે તેમાં કહ્યું છે કે જ્યારે દેવો હાર્યા અને અસુરોએ જય પામ્યા ત્યારે વિષ્ણુએ [illegible] નબળા પાડવા તેઓનું વેદમાર્ગરૂપ કવચ છીનવી લેવા એક માયામોહ ઉત્પન્ન કર્યો તેની મારફત જૈન અને બૌદ્ધ આદિ વેદબાહ્ય ધર્મો અસુરોમાં દાખલ કરાવ્યા એ વેદભ્રષ્ટ થયેલા અસુરો જ નગ્ન [illegible] [illegible]

૩. અગ્નિપુરાણમાં એ જ દેવાસુર યુદ્ધનો પ્રસંગ લઈ કહેવામાં આવે છે કે જીતેલા અસુરોને અધાર્મિક અને નિર્બળ બનાવવા ઈશ્વરે બુદ્ધાવતાર લઈ તેઓને બૌદ્ધ બનાવ્યા, અને પછી આર્હત અવતાર લઈ એ અસુરોને જૈન બનાવ્યા એ રીતે વેદબાહ્ય પાખંડધર્મો અસ્તિત્વમાં આવ્યા.

૪. વાયુપુરાણમાં બૃહસ્પતિ અને શયુનો સંવાદ છે બૃહસ્પતિ કહે છે કે નગ્નની નજરે પડેલી શ્રાદ્ધની કોઈ વસ્તુ પૂર્વજોને નથી પહોંચતી એ સાભળી શંયુ નગ્નનો અર્થ પૂછે છે ઉત્તરમાં બૃહસ્પતિ કહે છે કે વેદત્રયી છોડનાર તે નગ્ન આગળ વધી તે દેવાસુરયુદ્ધની કથાનો ઉલ્લેખ કરી તે યુદ્ધમાં હારેલ અનુચરો દ્વારા ચારે વર્ણોની પાખંડસૃષ્ટિ થયાનુ જણાવે છે

૫. શિવપુરાણમા જૈનધર્મની ઉત્પત્તિનુ વર્ણન આપતા પ્રસંગે વિષ્ણુના જ મુખથી પોતાના અને બ્રહ્માના કરતા શિવનુ મહત્ત્વ સ્થાપિત કરવામા આવ્યુ છે. અને વેદધર્મથી બળવાન બનેલા ત્રિપુરવાસીઓને અધર્મપ્રાપ્તિદ્વારા નિર્બળ બનાવવા વિષ્ણુ દ્વારા જ એક જૈનધર્મનો ઉપદેશક પુરુષ સર્જાવવામાં આવ્યો છે અને એ પુરુષ મારફત અનેક પાખડો ફેલાવવાનુ કહેવામા આવ્યું છે છેવટે એ પાખડધર્મના સ્વીકારથી અને વેદધર્મના ત્યાગથી નબળા પડેલા દૈત્યોના નિવાસસ્થાન ત્રિપુરનો શિવને હાથે દાહ કરાવવામાં આવ્યો છે અને વિષ્ણુને એ કાર્ય સાધવાની ખટપટ બદલ કૃતકૃત્ય રૂપે વર્ણવવામા આવ્યા છે

૬ પદ્મપુરાણમાથી અહી ચાર પ્રસગો લેવામા આવ્યા છે. પહેલો પ્રસગ વેનનો; બીજો દૈત્યો અને બનાવટી શુક્ર વચ્ચેના સંવાદનો; ત્રીજો બ્રહ્મા, વિષ્ણુ, અને મહેશ્વર એ ત્રણમા મોટા દેવ કોણ એ વિષેના ઋષિઓના વિવાદનો, અને ચોથો પ્રસંગ શિવ અને પાર્વતીના શુભ વાર્તાલાપનો

પહેલા પ્રસગમા માત્ર જૈનોપદેશક પાસેથી જૈનધર્મનુ સ્વરૂપ જાણી તેને વૈદિક ધર્મનો ત્યાગ કર્યાનુ વર્ણન છે

જૈન અને બૌદ્ધધર્મની ઉત્પત્તિ તથા પ્રચાર વિષે જે યુક્તિ અનેક પુરાણોમાં વારંવાર વિવિધ રૂપે કામમાં લીધી છે તે જ યુક્તિનો આશ્રય ચોથા પ્રસંગમાં કરેલો છે એટલે વૈષ્ણવધર્મથી બળવાન બનેલા દૈત્યોને નિર્બળ બનાવવા વિષ્ણુના આદેશથી રુદ્રે શૈવ ધર્મનું પાખંડ ચલાવ્યાનું અને અનેક તામસ પુરાણો, સ્મૃતિઓ અને દર્શનો રચ્યાનું તેમાં વર્ણન છે.

પદ્મપુરાણમાં છેલ્લા બે પ્રસંગોમાં વિષ્ણુ સિવાયના બ્રહ્મા, રુદ્ર આદિ દેવોનું નિકૃષ્ટપણું તથા વૈષ્ણવ ઉપાસના સિવાયના બીજા વૈદિક સંપ્રદાયોનું પાખંડીપણું સ્પષ્ટ રીતે બતાવવામાં આવ્યું છે તેમ જ વૈષ્ણવ ન હોય તેવા બ્રાહ્મણ સુધ્ધાં સાથે સંભાષણ કે દર્શન કરવાની સ્પષ્ટ મનાઈ કરવામાં આવી છે.

૭ સ્કંદપુરાણમાં મોઢ, ત્રિવેદી અને ચતુર્વેદીનો ઇતિહાસ આપવાના પ્રસંગમાં કાન્યકુબ્જના નરપતિ આમ તથા મોઢેરાના સ્વામી કુમારપાળ બન્નેને સંબંધ જોડેલો છે અને એ બે રાજાઓને જૈનધર્મના પક્ષપાતી અને બ્રાહ્મણ ધર્મના દ્વેષી રૂપે ચીતર્યા છે. એ ચિત્રણને બંધબેસતું કરવા માટે પ્રયોજન-વિરુદ્ધ અનેક કલ્પિત ઘટનાઓ આલેખી છે.

૮. ભાગવતમાં કોંક, વેંક અને કુટક દેશના રાજા [illegible] પાખંડ ધર્મ સ્વીકારવાની અને કલિયુગમાં [illegible] કરવાની ભવિષ્યવાણી છે.

૯ કૂર્મપુરાણમાં બૌદ્ધ, જૈન, [illegible], પાશુપત આદિ અનેક સંપ્રદાયો પાખંડી હોવાનું તથા તેને પાખંડી [illegible] વિધાન છે.

નમૂનાઓને વિશેષ સ્પષ્ટ જાણવા ખાતર પુરાણના તે દરેક સ્થળનો ભાવાત્મક સાર નીચે આપવામા આવે છે[૧]

નાટક સાહિત્યની રચના બે પ્રકારની છે: એક રચનામા રચનારનો પોતાના સંપ્રદાય કરતા બીજા વિરોધી સંપ્રદાયો પ્રત્યે મતાંધતાપૂર્વક આક્ષેપ કરવાનો મુખ્ય હેતુ છે અને બીજી રચનામા તેવો હેતુ મુખ્ય નથી, પણ કોઈ પણ સંપ્રદાયની રૂઢિગત અતિશયતાને લઈ ને નિમિત્તે હાસ્યરસ નિષ્પન્ન કરવાનો અથવા કોઈ પણ સંપ્રદાયના ધર્મગુરુને અમુક પાત્રરૂપે આલેખી કાંઈક નાટકીય વસ્તુ સિદ્ધ કરવાનો મુખ્ય પ્રયત્ન છે પહેલી રચનાનુ ઉદાહરણ પ્રબોધચંદ્રોદય છે બીજી રચનાના ઉદાહરણો ચતુર્ભાણી, મૃચ્છકટિક, મુદ્રારાક્ષસ, મત્તવિલાસપ્રહસન,[૨] લટકમેલક આદિ નાટકો અને પ્રહસનો છે.

પ્રબોધચંદ્રોદયનો રચયિતા વૈષ્ણવ હોઈ તેણે વૈષ્ણવ સિવાયના બધા ધર્મોને કા તો તામસ કા તો રાજસ ચિત્રિત કરવાનો અને વૈષ્ણવ સિદ્ધાંતને સાત્ત્વિક તથા સર્વોત્કૃષ્ટ બતાવવાનો પ્રયત્ન કર્યો છે. એ પ્રયત્નમા તેણે જૈન, બૌદ્ધ, પાશુપત આદિ સંપ્રદાયોને બની શકે તેટલા બીભત્સ રીતે વર્ણવવાનો પ્રયાસ કર્યો છે તેનો આ હેતુ સમજવા ખરી રીતે આખુ પ્રબોધચંદ્રોદય નાટક વાચવુ જોઈએ, પણ આ સ્થળે માત્ર મતાંધતાનો મુદ્દો સમજવામા ઉપયોગી થઈ પડે તે ખાતર ત્રીજા અંકના અમુક ભાગનો અનુવાદ આપવામા આવે છે એટલો પણ અનુવાદ વાચવાથી પ્રબોધચંદ્રોદયના રચયિતાનો સાંપ્રદાયિક અભિનિવેશ સ્પષ્ટ ધ્યાનમા આવી શકે તેમ છે[૩]

વૈદિક દર્શનસાહિત્યમાંથી મતાંધતાના નમૂના જણાવવા માટે ત્રણ ગ્રંથોમાંથી ઉતારા લેવામાં આવ્યા છે પહેલો ગ્રંથ તન્ત્રવાર્તિક, બીજો શાંકરભાષ્ય અને ત્રીજો સાંખ્યતત્ત્વકૌમુદી તન્ત્રવાર્તિક એ જૈમિનીય સૂત્ર ઉપરના શાબરભાષ્યની પ્રસિદ્ધ વિદ્વાન કુમારિલકૃત ટીકાનો એક ભાગ છે.

---

૧. જુઓ પરિશિષ્ટ ૧

શાંકરભાષ્ય એ અદ્વૈત વેદાન્તના પ્રતિભાસંપન્ન સૂત્રધાર આદિ શંકરાચાર્યની બાદરાયણ સૂત્રો ઉપરની વ્યાખ્યા છે અને સાંખ્યતત્ત્વકૌમુદી એ ઈશ્વરકૃષ્ણકૃત સાંખ્યકારિકા ઉપરની વાચસ્પતિમિશ્રકૃત વ્યાખ્યા છે. કુમારિલે વૈદિક કર્મકાણ્ડના વિરોધી કોઈ પણ સંપ્રદાય (પછી તે વેદનો વિરોધી હોય કે અવિરોધી) પ્રત્યે ઉગ્ર રોષ દાખવી તે સંપ્રદાયોની યજ્ઞીય હિંસા ન સ્વીકારવાને કારણે જ અપ્રામાણિકતા બતાવવાની ચેષ્ટા કરી છે, અને બૌદ્ધ ધર્મના પ્રવર્તક ગૌતમના વિષયમાં તો એટલે સુધી કહ્યું છે કે તેણે ક્ષત્રિય છતાં ઉપદેશ કરવાનું અને ભિક્ષા માગવાનું બ્રાહ્મણકૃત્ય સ્વીકાર્યું, એટલે એવા સ્વધર્મત્યાગીના સાચાપણા વિષે વિશ્વાસ જ કેવી રીતે રાખી શકાય?

શંકરાચાર્ય પણ કુમારિલની પેઠે ગૌતમબુદ્ધ ઉપર એક આરોપ મૂકે છે તે આરોપ પ્રજાદ્વેષનો. તેઓ કહે છે કે સઘળી પ્રજા આડે રસ્તે દોરાય એવો બુદ્ધનો પોતાના ધર્મ વિશે દુર્હેતુ હતો. જુદા જુદા બાર દર્શનો ઉપર ટીકા લખવાની ખ્યાતિ મેળવનાર, દાર્શનિકવિચાર અને ભાષામાં અસાધારણ કાબૂ ધરાવનાર વાચસ્પતિમિશ્ર વેદ સિવાયના બધા જ આગમોને મિથ્યા આગમો કહે છે અને તે માટે દલીલો આપતા એક એવી દલીલ આપે છે કે મ્લેચ્છ વગેરે કોઈ કોઈએ જ અને પશુ જેવા નિકૃષ્ટ પુરુષોએ જ વેદભિન્ન આગમો સ્વીકાર્યા છે માટે તે મિથ્યા આગમ છે.

પ્રમાણે: પહેલાં દેવ અને અસુરોનુ યુદ્ધ થયેલું તેમાં વૈદિકકર્મરત અસુરોએ દેવોને હરાવ્યા હારેલા દેવોએ વિષ્ણુ પાસે જઈ તેમની સ્તુતિ કરી વિષ્ણુએ પ્રસન્ન થઈ પોતાના શરીરમાંથી એક માયામોહ પુરુષ ઉત્પન્ન કરી દેવોને સહાયતાર્થે સોંપ્યો. માયામોહ દેવો સાથે અસુરોના તપસ્યાસ્થાન નર્મદાતટ ઉપર આવ્યો ત્યા તેણે માથુ મુંડાવી, નગ્નરૂપ ધારણ કરી, હાથમા મયૂરપિચ્છ રાખી તપસ્યા કરતા અસુરોને આ પ્રમાણે ઉપદેશ કરવા માંડ્યો તેણે અસુરોને સંબોધી કહ્યુ 'જો તમે પારલૌકિક ફ્લની ઇચ્છાથી તપ કરતા હો તો હુ કહુ તે જ માર્ગ યોગ્ય છે અને તમે જ તેના અધિકારી છો' એમ કહી તેઓને વેદમાર્ગથી ભ્રષ્ટ કર્યા, અને સશયાત્મક સ્યાદ્વાદનો ઉપદેશ આપ્યો માયામોહે ઉપદેશેલ નવા ધર્મને પામવા અર્હ (યોગ્ય) હોવાથી એ સ્વધર્મ-ભ્રષ્ટ અસુરો આર્હત કહેવાયા એકથી બીજા અને બીજાથી ત્રીજા એમ અનુક્રમે અનેક અસુરો સ્વધર્મ તજી નવા આર્હત મતમા આવ્યા ત્યાર બાદ માયામોહે લાલ કપડા પહેરી, આંખમા અજન આજી બીજા અસુરોને મધુર ઉપદેશ આપ્યો તેણે કહ્યુ 'મહાનુભાવો! તમે યાજ્ઞિક પશુહિંસા છોડો. તેથી સ્વર્ગ મળવાનુ નથી, આખુ જગત વિજ્ઞાનમય છે અને દુખના પ્રવાહમા તણાય છે' આ ઉપદેશથી અનુક્રમે અનેક દૈત્યો સ્વધર્મ ત્યજી નવા માર્ગ ઉપર આવ્યા ત્યાર બાદ માયામોહે નવા નવા સ્વાગ પહેરી અનેક જાતના ઉપદેશોથી બીજા પણ દાનવોને વેદવિમુખ કર્યા વેદભ્રષ્ટ થયેલ એ અસુરોએ વેદ, દેવ, યજ્ઞ અને બ્રાહ્મણોની નિંદા કરવી શરૂ કરી, તેઓ કહેવા લાગ્યા કે 'યજ્ઞથી સ્વર્ગ મળે નહિ, જેમાં હિંસા થાય તે કર્મ ધર્મ ન હોઈ શકે અગ્નિમા ઘી હોમવાથી સ્વર્ગ મળે એ કથન બાળક જેવું છે અનેક યજ્ઞો કરી ઇન્દ્રપદ મેળવ્યા બાદ જો સમિધ, કાષ્ઠ વગેરે ખાવાના હોય તો પશુ થઈ લીલોતરી ખાનારા ચરવો એ જ વધારે શ્રેષ્ઠ છે જો યજ્ઞમા હોમાયેલ પશુઓ સ્વર્ગમા જતા હોય તો સ્વર્ગ પમાડવા માબાપને ના માટે ન હોમતા! શ્રાદ્ધના વિષયમા જો એકને (બ્રાહ્મણને) જમાડવાથી બીજા (પિતરો)ને તૃપ્તિ થતી હોય તો પરદેશમાં જતી વખતે ભાતુ સાથે લેવાની શી જરૂર? એક જણ ઘેર બેઠો જમે અને તે પ્રવાસી (મુસાફરીએ જનાર)ને પહોંચી જાય' દાનવો આવા નિંદાથી જ્યારે બધા અસુરો કુપથગામી થયા, ત્યારે તેઓને

ઋષિ અને બ્રાહ્મણનો આદર ન કરનાર પાખંડીઓ સાથે કુશળ પ્રશ્ન કે વાર્તાલાપ સુધ્ધાં ન કરવો. તેઓનો સંસર્ગ સર્વાંશે ત્યાજ્ય છે. એ નગ્નો એટલા બધા પાપી છે કે જો કોઈ શ્રદ્ધાવાન શ્રાદ્ધ કરતો હોય અને તે તરફ નગ્નોની નજર પડે તો તે શ્રાદ્ધથી પિતરોને તૃપ્તિ થતી નથી

પાખંડીઓ સાથે માત્ર સંભાષણ કરવાથી શું અનિષ્ટ થાય છે તે સમજાવવા પરાશરે મૈત્રેયને એક પોતે સાંભળેલું પ્રાચીન આખ્યાન કહ્યું તે આ પ્રમાણે

શતધનુ રાજા અને શૈબ્યા નામે તેની ધર્મપત્ની એ બંને વેદમાર્ગરત હતાં એક વખત ગંગાસ્નાન કર્યા પછી તે રાજાએ પોતાના શિક્ષાગુરુના મિત્ર એક પાખંડી સાથે માત્ર ગુરુના દાક્ષિણ્ય ખાતર સંભાષણ કર્યું. તેને લીધે મરણ પછી તે રાજા શ્વાનયોનિમાં જન્મ્યો અને શૈબ્યા મૌન રહેલી હોવાથી મરણ પછી કાશી રાજાની પુત્રીરૂપે અવતરી. તે બિચારી પતિવ્રતા હોવાથી પોતાના પતિની દુર્દશા જ્ઞાનદૃષ્ટિએ જોઈ કુંવારી રહી. પેલો શ્વાન, શિયાળ, વરુ આદિ અનેક હલકી યોનિઓમાં ભટકતો છેવટે મોર યોનિમાં જનક રાજાને ત્યાં અવભૃથ સ્નાન (યજ્ઞને અંતે કરાતું, તેની સમાપ્તિસૂચક સ્નાન) થી પાપમુક્ત થઈ જનકના પુત્રરૂપે જન્મ્યો ત્યાર બાદ પેલી કુમારી કાશીરાજપુત્રી તેને પરણી માત્ર દાક્ષિણ્ય ખાતર સંભાષણ કરવાથી શતધનુ આ રીતે નીચ યોનિમાં રખડ્યો અને પાખંડી સાથે વાત ન કરતાં મૌન સેવવાથી એ શૈબ્યા રાજપુત્રી થઈ. વેદનિંદક પાખંડીઓનો વિશેષ પરિચય તો દૂર રહ્યો, પણ એની સાથે સંભાષણ થયું હોય ત્યારે તે પાપ નિવારવા સૂર્યદર્શન કરવું જોઈએ (બંગાળી આવૃત્તિ, અં. ૩. અ. ૧૭–૧૮)

હોય તે છતશે એમ બ્રહ્માએ જવાબ આપ્યો છેવટે દેવોએ રજિને પોતાની તરફ મેળવ્યો. રજિએ દેવોનું એવું કામ કર્યું કે તેથી ઇન્દ્ર પ્રસન્ન થઈ પોતે જ તેનો પુત્ર બન્યો પછી રજિ ઈન્દ્રને રાજ્ય સોંપી તપ માટે નીકળી ગયો પાછળથી પેલા સો રજિના પુત્રોએ ઇન્દ્રનો વૈભવ, યજ્ઞભાગ અને રાજ્ય એ બધુ છીનવી લીધુ. તેથી ઇન્દ્રે દુ:ખી થઈ વાચસ્પતિ પાસે જઈ રજિપુત્રો વિશે ફરિયાદ કરી, અને સહાયતા માંગી

બૃહસ્પતિએ ગ્રહશાંતિ અને પૌષ્ટિક કર્મદ્વારા ઇન્દ્રને બલિષ્ઠ બનાવી વેદબાહ્ય જૈનધર્મના આશ્રયથી તે રજિપુત્રોને મોહિત કર્યા બૃહસ્પતિએ બધા રજિપુત્રોને વેદત્રયભ્રષ્ટ કર્યા એટલે ઇન્દ્રે તે વેદબાહ્ય અને હેતુવાદી એવા રજિપુત્રોને વજ્રથી હણી નાખ્યા. (મત્સ્યપુ. આનંદાશ્રમ૦ અ૦ ૨૪. શ્લો૦ ૨૮-૪૮)

અગ્નિપુરાણ

અગ્નિ કહે છે—પાઠક અને શ્રવણ કરનારને લાભદાયક એવો બુદ્ધાવતાર હવે કહીશ. પહેલા દેવો અને અસુરોનુ યુદ્ધ થયેલુ તેમા દેવો હાર્યા. જ્યારે રક્ષણની ઇચ્છાથી દેવો ઈશ્વર પાસે ગયા ત્યારે ઈશ્વર પોતે માયામોહરૂપી શુદ્ધોદનપુત્ર બન્યો.

એ શુદ્ધોદનપુત્રે દૈત્યોને વેદધર્મ છોડાવો મોહિત કર્યા વેદધર્મ ત્યજેલ બધા દૈત્યો એ જ બૌદ્ધો બૌદ્ધોથી બીજા પણ વેદબાહ્ય થયા તે જ માયામોહ શુદ્ધોદનપુત્રનુ રૂપ છોડી આર્હત થયો, અને બીજાઓને આર્હત બનાવ્યા. આ રીતે બધા વેદવિમુખ પાખંડીઓ થયા, અને તેઓએ નરકગામ્ય કામો કર્યા। (આનંદાશ્રમ અ. શ્લો. ૧-૪)

વાયુપુરાણ

બૃહસ્પતિ—અવન્ચિત શ્રાદ્ધને નગ્નાદિ જોવા ન પામે, કારણ કે તેઓના દૃષ્ટિએ પડેલી વસ્તુઓ પિતામહોને પહોંચતી નથી

શંયુ—હે દ્વિજવર! નગ્નાદિ એટલે શું? એ મને યથાર્થ રીતે નિવેદન કરો.

એ શ્રાદ્ધમા ભોજન કરનાર, નિર્ગ્રંથ, શાક્ય, બુદ્ધિને કલુષિત કરનાર એવા જેઓ ધર્મને નથી અનુસરતા તે જ નગ્નાદિ છે (વડોદરા દેશી કેળવણી ખાતા તરફથી પ્રકાશિત વાયુપુ૦ પૃ૦ ૧૯૪-૧૯૫)

શિવપુરાણ

કાર્તિકેયે તારકાસુરને માર્યો, ત્યાર બાદ તેના પુત્રોએ દારુણ તપ કર્યું. એ તપોનુષ્ઠાનથી પ્રસન્ન થઈ બ્રહ્માએ જ્યારે વર માગવા કહ્યુ ત્યારે એ તારકપુત્રોએ વર માગ્યું કે ત્રણ પુરોનો આશ્રય લઈ અમે પૃથ્વી ઉપર વિચરીએ અને જે એક જ બાણથી એ ત્રણે પુરોનો નાશ કરે તે જ અમારો અંતક (મૃત્યુ) થાય. બીજા કોઈ અમને મારી શકે નહિ આ વર બ્રહ્માએ કબૂલ કર્યું, ને મયદાનવ પાસે ત્રણ ઉત્તમ પૂરો તૈયાર કરાવી આપ્યા. તેમા એ તારકપુત્રો જઈ વસ્યા અને પુરોના આશ્રયથી તથા વરદાનથી બહુ બળિષ્ઠ થઈ પડ્યા તેઓના તેજથી ઇન્દ્રાદિ બધા દેવો ઝાંખા પડ્યા. અને દુઃખી થઈ બ્રહ્મા પાસે ગયા, અને પોતાનું દુઃખ વર્ણવ્યુ.

સામે આવી ઊભા અને નમ્યા એ પ્રણત ભૂતગણોને હરિએ (વિષ્ણુએ) કહ્યું કે દૈત્યોના ત્રણ પુરને તોડી, ફોડી, બાળી પછી ;તમે આવ્યા તેમ પાછા જઈ શકો વિષ્ણુ શિવને પ્રણામ કરી ગણો સામે જોઇ વિચારમાં પડ્યા કે શુ કરીશુ ? તે દૈત્યોનુ બળ તોડી દેવકાર્ય શી રીતે સાધીશુ ? કારણ કે ધાર્મિકનો નાશ અભિચાર કર્મથી થઈ શકે નહિ એ ત્રિપુરવાસી બધા દૈત્યો તો ધર્મિષ્ઠ જ છે, અને તપોધર્મના બળથી જ અવધ્ય બનેલા છે. ગમે તેટલુ મહત્ પાપ કર્યું હોય છતા જો શિવપૂજન કરવામા આવે તો તે પાપ જતુ રહે છે શિવપૂજાથી મોટી ભોગસપત્તિ મળે છે એ બધા દૈત્યો લિંગપૂજાપરાયણ હોવાથી વૈભવશાળી થયેલા છે તે માટે હુ મારી માયાથી ધર્મમા વિઘ્ન કરીને તેઓના વિનાશ માટે ત્રિપુરનો ધ્વસ કરીશ આ પ્રમાણે વિચારી ભગવાન વિષ્ણુએ દૈત્યોના ધર્મમા વિઘ્ન નાખવા માટે નિશ્ચય કર્યો જ્યા સુધી વેદધર્મ, લિંગપૂજા, શ્રુતિવિહિત સ્નાન, દાન આદિ ધર્મ કૃત્યો રહેશે, ત્યાં સુધી તેઓનો નાશ થવાનો જ નથી—એવા નિશ્ચયથી વિષ્ણુએ દેવોને પોત પોતાને સ્થાને જવાની રજા આપી અને પોતે સર્વ પાપ વિનાશકારક એવા દેવકાર્ય માટેનો વિધિ આરભ્યો એ વિધિ શી તે હવે સાભળો.

સૂત—મહાતેજસ્વી માયાવી વિષ્ણુએ તે દૈત્યોના ધર્મમા વિઘ્ન નાખવા માટે માયામય એક પુરુષ પોતાના દેહમાથી સર્જ્યો, જે માથે મુડો, મલિન વસ્ત્રવાળો, કુંડીપાત્રયુક્ત થઈ હાથમા પુંજણીને ધારણ કરતો અને પગલે પગલે તે પુજણીને ફેરવતો તેમ જ વસ્ત્રયુક્ત હાથને નિરતર મોઢા ઉપર રાખતો અને ધર્મ (ધર્મલાભ) બોલતો વિષ્ણુને નમસ્કાર કરી ઊભો રહ્યો. ઉક્ત રૂપવાળા તે માયામય પુરુષે હાથ જોડી વિષ્ણુને કહ્યુ કે હે અરિહન્! હે પૂજ્ય ! ફરમાવો, મારુ શુ કર્તવ્ય છે ? એ સાભળી વિષ્ણુએ કહ્યુ કે હે પુરુષ ! જે કાર્ય માટે મે તને સર્જ્યો છે, તે કહુ છુ, બરાબર સમજી લે

અનેકવિધ પિશુનકલ્પના અને બીજા બધા વિચિત્ર કાર્યો એ બધું તું કરી શકીશ. વિષ્ણુનું એ કથન સાંભળી માયામય પુરુષે હરિને પ્રણામ કરી કહ્યું કે જે આદેશ કરવો હોય તે ફરમાવો. ત્યાર બાદ વિષ્ણુએ એ પુરુષને માયામય સૂત્ર (શાસ્ત્ર) ઉપદેશી તે ભણાવ્યું અને કહ્યું કે તારે આ શાસ્ત્ર એ ત્રિપુરવાસી દૈત્યોને ભણાવવું વિશેષમાં વિષ્ણુએ કહ્યું એ લોકોમાં શ્રૌતસ્માર્ત ધર્મ વર્તે છે. પણ તારે આ શાસ્ત્ર વડે તેનો ધ્વંસ કરવો; કારણ કે તેથી જ તે દૈત્યોનો વિનાશ શક્ય છે

હે માયામય પુરુષ ! તું એ રીતે નવીન ધર્મદ્વારા ત્રિપુરોનો નાશ કરી કલિયુગ આવે ત્યાં સુધી મરુદેશમાં જઈ રહેજે કલિ આવે કે તરત જ પોતાનો ધર્મ પ્રકાશવો. મારી આજ્ઞા છે કે એ તારો ધર્મ શિષ્ય, પ્રશિષ્ય આદિ પરિવાર દ્વારા બહુ વિસ્તાર પામશે ત્યાર બાદ તે મુનીએ વિષ્ણુની આજ્ઞાનું પાલન કરીને ચાર શિષ્યો કર્યા અને તેઓને તે માયામય શાસ્ત્ર ભણાવ્યું જેવી રીતે મુંડી તેવી રીતે તેના શિષ્યો પણ વિષ્ણુને નમસ્કાર કરીને ઊભા રહ્યા. એટલે વિષ્ણુએ તેઓને પ્રસન્ન થઈ કહ્યું કે તમો ધન્ય છો મારા આદેશથી જેવી રીતે તમારા ગુરુ તેવી રીતે તમે પણ [illegible] હાથમાં પાત્ર, મોઢે વસ્ત્રવાળા, મલિન કપડાં પહેરતા, અલ્પભાષી, ધર્મ તત્ત્વ એ પરમતત્ત્વ છે એમ બોલતા, વસ્ત્રના ખંડથી રચેલ માર્જનીને ધારણ કરતા, એવા એ પાખંડધર્મને આશ્રિત થયેલા ચાર મુંડો પૃથ્વીને [illegible] વિષ્ણુએ તેઓના ગુરુ માયામય પુરુષને સોંપ્યા અને કહ્યું કે જેવો તું તેવા આ

મુંડીની માયામાં ફસાયો અને કહ્યું કે મને દીક્ષા આપો એ સાંભળી મુંડીએ કહ્યુ, હે રાજન્! હું તારી પાસે જે માગુ છું તે કબૂલ કર, અને તે એ કે મારું વચન તારે અન્યથા ન કરવું રાજા મુંડીના પાશમાં સપડાયો અને કબૂલ કર્યું. એટલે મુંડીએ વિદ્યુન્માલીને બોલાવીને કહ્યુ કે હે રાજન્, તુ મારી પાસે આવ અને આ મંત્ર સાભળ એ. કહી મોઢેથી વસ્ત્ર હટાવી પોતાનુ એવુ તત્ત્વ રાજાને સભળાવ્યું કે જેનાથી તેના ધર્મનો નાશ થાય. મુંડીએ રાજાને દીક્ષા લેવા કહ્યુ કે તુરત જ તેણે અને અનુક્રમે બધા ત્રિપુર વાસીઓએ મુડી પાસે દીક્ષા લીધી અને એ મુનિના શિષ્યો-પ્રશિષ્યોથી બધુ ત્રિપુર વ્યાપી ગયું

વિષ્ણુની આજ્ઞાથી માયામોહે સ્ત્રીધર્મનુ અને શ્રાદ્ધધર્મોનું ખડન કર્યું, શિવપૂજા તેમ જ વિષ્ણુના યજ્ઞભાગોને ખડિત કર્યા, સ્નાન, દાન, તીર્થ આદિ સર્વે વેદધર્મો તેણે દૂર કર્યા ત્રિપુરમા અલક્ષ્મી (પડતી) આવી અને બ્રહ્માની કૃપાથી જે લક્ષ્મી થઈ હતી તે ચાલી ગઈ નારદે વિષ્ણુની માયાથી દૈત્યોને બુદ્ધિવ્યામોહ પમાડ્યો જેવો એ માયામોહ પુરુષ તેવો જ નારદ એવા શ્રૌતસ્માર્ત ધર્મો નાશ પામ્યા એટલે વિષ્ણુએ પાખડધર્મ સ્થાપ્યો

દૈત્યોમા શિવનો ત્યાગ થયો, લિંગપૂજા ગઈ, સ્ત્રીધર્મ નાશ પામ્યો, દુરાચાર સ્થિર થયો એટલે વિષ્ણુ પોતાને કૃતકૃત્ય માનતા, દેવોને સાથે લઈ, શિવ પાસે ગયા, અને તેઓની સ્તુતિ કરી દેવોએ પણ સ્તુતિ કરી અને કહ્યુ કે વિષ્ણુની માયાથી દૈત્યો મોહ પામ્યા છે હે શિવ! હવે તેઓનો નાશ કરો, અને અમારી રક્ષા કરો. શિવે કહ્યુ, કે મે દેવકાર્ય તથા વિષ્ણુ અને નારદનુ મહાબળ જાણી લીધુ છે. હુ દૈત્યોનો નાશ કરીશ અનુક્રમે શિવે તે ત્રિપુરને બાળી નાખ્યું એમાં જે દૈત્યો રુદ્રની પૂજા કરતા હતા તેઓ ગણપતિ થયા ફરીથી પેલા મુંડીઓ આવ્યા, અને બ્રહ્મા, વિષ્ણુ આદિ દેવોને નમન કરી બોલ્યા કે અમે શુ કરીએ? ઉત્તરમાં તેઓએ કહ્યુ જાવ, તમે કલિયુગ પૂરો થાય ત્યા સુધી મરુદેશમાં રહો મુંડીઓ તેઓના આદેશ પ્રમાણે મરુદેશમા ગયા. અને બીજા દેવો પોતપોતાને સ્થાને ચાલ્યા ગયા.
(આત્માનંદ જ્ઞાનમંદિર અં. ૧૯-૨૦-૨૧-૨૨)

ઋષિઓ—હે સૂત ! એ પ્રજાપાલનપરાયણ ધાર્મિક બ્રાહ્મણશ્રેષ્ઠ વેનની પાપબુદ્ધિ કેમ થઈ તે કહો.

સૂત—હે વિપ્રો ! સુશંખે જે શાપ આપેલો તે કેમ ટળે ? તે શાપથી તેણે જે પાપાચાર સેવ્યો તે હું કહું છું. સાંભળો. વેન ધર્મપૂર્વક પ્રજાપાલન કરતો હતો તેવામાં એક માયાવેશધારી પુરુષ આવ્યો જે મોટો કદાવર, નગ્નરૂપધારી, સિતમુંડ, મુંડેલા માથાવાળો મયૂરપિચ્છોની માર્જની બગલમાં રાખતો, હાથમાં નાળિયેરનું પાનપાત્ર ધારણ કરતો, વેદશાસ્ત્રને દૂષિત કરનાર અને મરુચ્છાશાસ્ત્રનો (?) પાઠ કરતો એવો હતો તે પાપી પુરુષ વેનની સભામાં જલદી દાખલ થયો તેને જોઈ વેને કહ્યું, આવા રૂપને ધારણ કરનાર તું કોણ છે અને મારી સભામા કેમ આવ્યો છે ? આ તારો વેશ કયા પ્રકારનો છે ? તારુ નામ શુ ? તારા ધર્મ અને કર્મ શુ છે ? તારો કયો વેદ, આચાર, શી જાતિ, શું જ્ઞાન, શો પ્રભાવ, અને ધર્મરૂપ સત્ય શું છે ? આ બધુ મારી આગળ યથાર્થ રીતે કહે વેનનું એ વચન સાંભળી તે પાપ પુરુષ બોલ્યો—વેન ! તુ ખરેખર વ્યર્થ રાજ્ય કરે છે હું ધર્મનું સર્વસ્વ છું, હુ દેવનો સવિશેષ પૂજ્ય છું હું જ્ઞાન છું. હું સત્ય છું હું સનાતન ધાતા છું હું ધર્મ છુ હુ મોક્ષ છું. હું સર્વદેવમય છુ અને બ્રહ્મદેહથી ઉત્પન્ન થયેલ હું સત્યપ્રતિજ્ઞ છું, એમાં કાંઈ ફેર નથી મારું રૂપ એ જિનનુ સ્વરૂપ છે, ને સત્યધર્મનુ કલેવર છે જેનું જ્ઞાનતત્પર યોગીઓ ધ્યાન કરે છે

વેન—તારો ધર્મ કેવો છે ? દર્શન કેવુ અને આચાર કેવો છે તે બધું કહે.

પાપ—પાંચભૌતિક દેહ એ જ આત્મા છે અને તે પાણીના પરપોટાની જેમ ઉત્પન્ન થાય અને નાશ પામે છે. અંતકાલે આત્મા ચાલ્યો જાય છે. પાંચ દૈહિક તત્ત્વો પાંચભૂતમાં મળી જાય છે. માણસો પરસ્પર મોહમુગ્ધ થઈ પ્રવૃત્તિ કરે છે. મોહથી શ્રાદ્ધ કરે છે. મોહથી જ મરણતિથિએ પિતૃતર્પણ કરે છે. મરેલો ક્યાં રહે છે, શી રીતે ખાય છે? હે નૃપ ! તેનું જ્ઞાન અને કાર્ય કેવાં છે તે કોણે જોયું છે? તે બધુ તુ અમને કહે શ્રાદ્ધ કોનું માનવું? મિષ્ટભોજન તો માત્ર બ્રાહ્મણોને પહોચે છે. તેની રીતે વૈદિક યજ્ઞોમાં અનેક જાતની પશુહિંસા કરવામાં આવે છે, તેથી શો લાભ છે? દયા વિનાનું કોઈ પણ ધર્મકૃત્ય નિષ્ફળ છે દયા વિનાના આ વેદો એ અવેદો છે. ચાણ્ડાલ હોય કે શૂદ્ર, જો તે દયાળુ હોય તો તે બ્રાહ્મણ છે અને બ્રાહ્મણ પણ નિર્દય હોય તો તે નિકૃષ્ટ છે એક જિનદેવની આરાધના હૃદયથી કરવી, તેને જ નમસ્કાર કરવો. બીજાની તો વાત શી, પણ માતાપિતા સુધ્ધાંને નમન ન કરવુ.

વેન—બ્રાહ્મણ, આચાર્યો, ગંગા આદિ નદીઓને તીર્થરૂપ વર્ણવે છે તો શુ તે સાચું છે? જો એ તીર્થોમા તુ ધર્મ માનતો હોય તો મને કહે

પાપ—આકાશથી પાણી પડે છે, એ જ પાણી બધાં જલાશયોમાં સરખી રીતે છે, પછી એમા તીર્થપણું શું? પહાડો પણ પથ્થરના ઢગલા છે. એમા પણ તીર્થપણું શું છે? સ્નાનથી સિદ્ધિ થતી હોય તો માછલાં સૌથી પહેલા સિદ્ધિ પામે એક જિનનું ધ્યાન જ શ્રેષ્ઠ છે. બીજુ બધું વેદોક્ત શ્રાદ્ધ-યજ્ઞાદિક કર્મ વ્યર્થ છે.

સૂત—તે પાપપુરુષના ઉપદેશથી વેન ભરમાયો, અને તે પાપના પગમાં પડી તેનો ધર્મ સ્વીકાર્યો તેથી યજ્ઞયાગાદિ વૈદિક ધર્મો લુપ્ત થયા અને સંપૂર્ણ પ્રજા પાપમાં પડી. પિતા અંગે અને માતા સુનીથાએ બહુ કહ્યું [illegible] વેને કશું ગણકાર્યું નહિ, અને તીર્થસ્નાન, દાન આદિ બધું ત્યજી [illegible] અંગના પૂછવાથી સુનીથાએ પોતાની બાલ્યાવસ્થામાં સુશંખ તપસ્વીનો જે કશાઘાતરૂપ અપરાધ કર્યો હતો, અને તેને પરિણામે તે તપસ્વીએ દુષ્ટ પુત્ર થવાનો જે શાપ આપ્યો હતો, એ બધું કહી સંભળાવ્યું. ત્યાર બાદ [illegible] અત્રિઋષિએ આવી આશ્વાસનપૂર્વક વેનને કહ્યું—[illegible] [illegible]

ક્ષત્રિય, વૈશ્ય એ ત્રણ દ્વિજ છે સઘળી પ્રજા વેદાચાર પાલનથી જ જીવે છે. તું બ્રાહ્મણનો પુત્ર હોઈ બ્રાહ્મણ છે, અને પછીથી પૃથ્વી ઉપર પરાક્રમી રાજા થયો છે. પ્રજા રાજાના પુણ્યથી સુખી અને પાપથી દુઃખી થાય છે; તેથી તું અધર્મ છોડી સત્યધર્મ આચર. તે જે ધર્મ સ્વીકાર્યો છે તે ત્રેતા કે દ્વાપરનો નથી પણ કલિનો છે. કલિમાં પ્રજા જૈનધર્મનો આશ્રય કરી પાપમુગ્ધ થશે અને દરેક માણસ વેદાચાર છોડી પાપમા પડશે જૈનધર્મ પાપનું મૂળ છે. જૈન ધર્મથી બધા જે પાપમાં પડ્યા છે તેઓને ગોવિંદ પોતે મ્લેચ્છરૂપ ધારણ કરી પાપમુક્ત કરશે અને મ્લેચ્છોના નાશ માટે એ ગોવિંદ કલ્કિરૂપે થશે. તુ કલિનો વ્યવહાર છોડી પુણ્ય આચર. વેને ન માન્યુ એટલે એ સાતે બ્રહ્મપુત્રો ગુસ્સે થયા એ જોઈ તેઓના શાપભયથી વેન વલ્મીકમા પેસી ગયો કુપિત ઋષિઓએ તે દુષ્ટને શોધી તેના ડાબા હાથનું મંથન કર્યું એટલે તેમાથી મહાહ્રસ્વ, નીલવર્ણ, રક્તનેત્ર એક બર્બર પેદા થયો, જે બધા મ્લેચ્છોનો પાલનહાર થયો. ત્યાર બાદ વેનના દક્ષિણ હાથનું તેઓએ મથન કર્યું, એટલે તેથી પૃથુ પ્રકટ્યો, જેણે આ પૃથ્વીનુ દોહન કર્યું. તેના પુત્ર-પ્રભાવથી વેન ધાર્મિક થઈ છેવટે વિષ્ણુધામમાં પહોંચ્યો (આનંદાશ્રમ અ૦ ૩૬ ભા૦ ૧)

દાનવ—હે ગુરો ! આ અસાર સંસારમા અમને કાંઈ એવું જ્ઞાન આપો કે જેથી મોક્ષ અમો પામીએ

ગુરુનું એ કથન સાંભળી બધા દાનવો સંસારથી વિરક્ત થઈ કહેવા લાગ્યા, હે ગુરુ ! અમને દીક્ષા આપો એ રીતે જ્યારે છન્ન (કપટરૂપધારી) ગુરુને દૈત્યોએ કહ્યું ત્યારે તે વિચારમાં પડ્યો કે આ દૈત્યોને મારે કેવી રીતે પાપી અને નરકગામી કરવા ? તેમ જ શ્રુતિબાહ્ય અને લોકમાં ઉપહાસાસ્પદ કેવી રીતે કરવા ? એમ વિચારી બૃહસ્પતિએ કેશવને સ્મર્યા, એ સ્મરણ જાણી વિષ્ણુએ મહામોહ ઉત્પન્ન કરી બૃહસ્પતિને આપ્યો અને આ પ્રમાણે કહ્યું. આ મહામોહ તમારી સાથે મળી બધા દૈત્યોને વેદમાર્ગ બહિષ્કૃત કરી મોહિત કરશે. એમ કહીને વિષ્ણુ અંતર્ધાન થયા. એટલે માયામોહ દૈત્યો પાસે આવી બૃહસ્પતિને કહેવા લાગ્યો

મહામોહ—હે શુક્ર ! હમણાં અહીં આવો, હું તમારી ભક્તિથી આકર્ષિત થઈ અનુગ્રહાર્થે અહીં આવ્યો છું. ત્યાર બાદ માયામોહ દિગમ્બર, મુણ્ડી, મયૂરપિચ્છધારી થઈને ફરી નીચે પ્રમાણે બોલ્યો. દિગમ્બર—હે દૈત્ય રાજા, તમે તપ કરો છો પણ કહો કે એ તપ ઐહિક ફળ માટે કે પારલૌકિક ફળ માટે કરો છો ? દૈત્યો—અમે પારલૌકિક લાભ માટે તપ આદર્યું છે. તે બાબત તમે શું કહેવા માગો છો ?

દાનવ—હે પ્રભો ! અમે તારા તત્ત્વમાર્ગમા દાખલ થયા છીએ. જો તુ પ્રસન્ન હોય તો અનુગ્રહ કર. અમે દીક્ષાયોગ્ય બધી સામગ્રી લાવીએ કે જેથી તારી કૃપાથી મોક્ષ જલદી હસ્તગત થાય. ત્યાર બાદ માયામોહે બધા દૈત્યોને કહ્યું. રક્તામ્બર—આ શ્રેષ્ઠિ ગુરુ (શુક્રરૂપ ધારી બૃહસ્પતિ) મારી આજ્ઞાથી તમને બધાને મારા શાસનમાં દીક્ષિત કરશે હે બ્રહ્મન્ ! આ બધા મારા પુત્રોને દીક્ષા આપ એમ કહી માયામોહ ઇષ્ટ સ્થાને ચાલ્યો ગયો. તે ગયા બાદ દૈત્યોએ ભાર્ગવ(શુક્ર)ને કહ્યું—હે મહાભાગ ! અમને સંસાર મોક્ષની દીક્ષા આપ શુક્રે તથાસ્તુ એમ કહી નર્મદા તટે જઈ બધા દૈત્યોને દિગંબર કર્યા. તેઓને મયૂરપિચ્છનો ધ્વજ, ચણોઠીની માળા આપીને શિરો-લુચન (કેશલોચન) કર્યું અને શુક્રે કહ્યું કે "અનનો ઇન્દ્ર [illegible] કેશલુચન અને વેષગ્રહણથી પરમ સિદ્ધિ પામ્યો. એ જ રીતે મુનિત્વ પ્રાપ્ત થાય છે. એવું અર્હંતો કહી ગયા છે. કેશોત્પાટન વડે માણસો દેવત્વને પામે છે તો પછી તમે કેશોત્પાટન કેમ નથી કરતા ?"

દૈત્યોના પણ મનુ [illegible] કે [illegible] મનોરથો એવા છે કે આ [illegible] [illegible] કળામાં ક્યારે જન્મ થશે ? અને કેશોત્પાટનપૂર્વક [illegible] આ મા [illegible] ક્યારે થશે ? [illegible] નહિ [illegible] ક્યારે પ્રાપ્ત થશે ? એમ જ ક્યારે [illegible]

થઇને પંચાગ્નિ તપ તપીશું? અથવા તપ કરતાં કરતાં મૃત્યુ પામીને પાષાણથી મસ્તક ક્યારે ભેદાશે? નિર્જન અરણ્યમા અમારો નિવાસ ક્યારે થશે? —ઈત્યાદિ અનેક પ્રકારે ઉપદેશ આપ્યો ત્યાર બાદ દાનવોએ કહ્યુ: હે શુક્ર! અમોને દીક્ષા આપ. તથાસ્તુ એમ કહી શુક્ર બોલ્યો "અન્ય દેવોને પ્રણામ ન કરવો એક વાર ભોજન હસ્તપાત્રમાં કરવું. કેશકીટ રહિત પાણી ઊભા ઊભા પીવું, અન્યની નજર ન પડે તેમ પ્રિય-અપ્રિય વસ્તુને સમાન ગણી વાપરવી-એમ નિયમો અને દીક્ષા આપી શુક્ર સ્વર્ગે ચાલ્યો ગયો ત્યાં જઈ તેણે બધી હકીકત દેવોને કહી એટલે દેવો નર્મદા તટે આવ્યા પ્રહ્લાદ વિનાના દૈત્યોને જોઈ સતુષ્ટ થઈ ઇન્દ્રે નમુચિ આદિ દૈત્યોને કહ્યું—હે દૈત્યો! પહેલાં તમે સ્વર્ગમાં રાજ્ય કર્યું. હવે આ નગ્નમુણ્ડી, કમણ્ડલુયુક્ત, વેદલોપક વ્રત કેમ શરૂ કર્યું છે? ઉત્તરમા દૈત્યોએ કહ્યુ—હવે અમે અસુરપણું છોડી ઋષિધર્મ સ્વીકાર્યો છે, દરેક પ્રાણીને ધર્મવૃદ્ધિકારક તત્ત્વ કહીએ છીએ. જા. તુ નિર્ભય થઇ સ્વર્ગમાં રાજ્ય કર. એ સાભળી ઇન્દ્ર સ્વર્ગમાં ગયો (આનંદાશ્રમ ભા૦ ૩, અ૦ ૧૩, પૃ૦ ૮૨૭)

જેમ લોકો ચડાળની સામે જોતા નથી તેમ અવૈષ્ણવ બ્રાહ્મણની સામે ન જોવુ કોઈ વૈષ્ણવ હોય, પછી ભલે તે વર્ણબાહ્ય હોય તોપણ, એના વડે સંસાર પવિત્ર થાય છે (અ ૨૪૫, શ્લો ૩૪ તથા અ. ૨૫૨. શ્લો. ૫૭)

જે બ્રાહ્મણે ચક્રની છાપ લીધી નથી તેનો સંગ દૂરથી પરિહરવો.
(અ ૨૫૨ શ્લો ૫૧)

આવી રીતે એ ઋષિઓ વચ્ચે મોટો વાદવિવાદ થયો અને છેવટે નિર્ણયને માટે ભૃગુઋષિને કહેવામાં આવ્યું કે, હે મુનિસત્તમ! તમે એ ત્રણે દેવો પાસે જાઓ અને ચોકકસ કરીને અમને જણાવો કે એ દેવોમાં કયો દેવ ઉત્તમ છે.

પછી ભૃગુઋષિ કૈલાસમાં વાસ કરતા મહાદેવજીને ઘેર સૌથી પ્રથમ ગયા. ત્યાં દ્વારપાળ તરીકે બેઠેલા મહારૌદ્ર નંદિને એ ભૃગુઋષિએ કહ્યું કે તુ ઘરમાં જઈને મહાદેવ(શંકર)ને ખબર આપ કે તમને મળવા માટે ભૃગુઋષિ આવેલા છે

નંદિએ ભૃગુઋષિને કહ્યુ કે અત્યારે તો શંકર દેવી સાથે ક્રીડા કરે છે માટે તુ એને નહિ મળી શકે. જો જીવતા રહેવું હોય તો જેવો આવ્યો તેવો જ પાછો જા

આ પ્રમાણે નંદિએ નકારો કર્યો છતાય એ તપસ્વી ઋષિ શંકરને બારણે ઘણા દિવસ સુધી બેઠી રહ્યા તો પણ શંકર તો બહાર જ ન આવ્યા. છેવટે ભૃગુએ શંકરને નારીસંગમમગ્ન જાણીને શાપ આપ્યો કે તેનુ સ્વરૂપ યોનિલિંગ જેવું થશે. એ શંકર અબ્રહ્મણ્યને પામેલો છે અને બ્રાહ્મણોને અપૂજ્ય છે જે લોકો રુદ્રના ભક્ત થશે તેઓ ભસ્મ, લિંગ અને અસ્થિઓને પહેરનાર થશે, અને વેદબાહ્ય પાખંડી ગણાશે

ત્યાથી ભૃગુ બ્રહ્માની પાસે ગયા, એ વખતે બ્રહ્મા દેવોની સાથે બેઠેલા હતા બ્રહ્માને પ્રણામ કરીને ભૃગુ ત્યા બેઠા. બ્રહ્માને ભૃગુએ તો પ્રણામ કર્યાં પણ સામું બ્રહ્માએ ભૃગુને પ્રણામ તો ન કર્યા પણ કુશળપ્રશ્ન પણ ન પૂછ્યા. એથી ભૃગુએ બ્રહ્માને શાપ આપ્યો કે ભૃગુનુ અપમાન કરનાર આ રાજસ પ્રકૃતિવાળો બ્રહ્મા સર્વલોકમા અપૂજ્ય થશે.

પછી છેવટે ભૃગુ વિષ્ણુલોકમા ગયા, જ્યાં કમલાપતિ નાગશય્યામા પોઢેલા હતા, અને લક્ષ્મીજી એમના ચરણને તળાસતાં હતાં કમલાપતિને આ સ્થિતિમાં જોઈ ભૃગુને રોષ આવ્યો અને પોતાનો ડાબો પગ એમની છાતી ઉપર મૂક્યો. પછી તુરત જ ભગવાન ઊઠ્યા, પોતાના હાથ વતી ભૃગુના ચરણને પંપાળવા લાગ્યા, અને બોલ્યા કે આજે જ હું ધન્ય છું કે મને તમારો ચરણસ્પર્શ થયો. પછી તો સપત્નીક વિષ્ણુએ ભૃગુની પૂજા કરી

આ રીતે ત્રણે દેવોની કસોટી કરી આવી ભૃગુએ તેમ ઋષિઓને કહ્યું કે ત્રણે દેવોમાં જો કોઈ ઉત્તમ હોય તો તે એકલા વિષ્ણુ જ છે.

જે કોઈ વિષ્ણુ સિવાય બીજા કોઈ દેવની પૂજા કરશે તે પાખંડીમા ગણાશે, અને લોક ગર્હાના ભાગી થશે (આનંદાશ્રમ અ૦ ૨૮૨, ભા૦ ૪, શ્લો૦ ૧–૫૬)

બ્રાહ્મણે વિષ્ણુ સિવાય અન્ય દેવની સામે પણ ન જોવુ, બીજા દેવની પૂજા ન કરવી, બીજા દેવનો પ્રસાદ ન લેવો, અને બીજા દેવના મદિરે પણ ન જવુ (શ્લો. ૬૩, અ. ૨૮૨)

'પાખંડ કોને કહેવુ' એ સંબધમા શિવ અને પાર્વતીનો સંવાદ.

પાર્વતી—મહેશ! આપે કહ્યુ કે પાખડોનો સંગ ન કરવો, તો તે પાખડો કેવા છે? એને ઓળખવાની કઈ કઈ નિશાની છે? વગેરે હકીકતને આપ જણાવો.

૨૬—જે લોકો જગન્નાથ નારાયણ સિવાય બીજા કોઈને દેવ કરીને માને છે તે લોકો પાખડી છે. કપાળ ભસ્મ અને અસ્થિને ધારણ કરનારા છે અને અવૈદિકની રીતે રહેનારા છે.

શખ, ચક્ર વગેરે ચિહ્નો જે હરિને વહાલામાં વહાલા છે તેનુ જેઓ ધારણ નથી કરતા તેઓ પાખંડી છે જે કોઈ બ્રહ્મા અને રુદ્રની સાથે વિષ્ણુની તુલના કરે તે પાખંડી છે વધારે શુ! જે બ્રાહ્મણો કપાળ ત્રિપુંડ્ર પહેરે છે તેઓ અસ્પર્શ્ય છે, સંભાષણીય નથી. અને જોવા લાયક પણ નથી.

પાર્વતી—મહેશ! આપનુ કહેવુ સમજી. પણ મારે આપને એક વાત જે બહુ જ છાની છે તે પૂછવી છે. અને તે આ છે: આપે કહ્યુ કે પાખંડી લોકો કપાળ, ભસ્મ અને અસ્થિ ધારણ કરનારા છે તો હે ભગવાન! આપ પોતે જ એ વસ્તુઓ નિત્ય શા માટે ધારણ કરો છો.

કરી શકો છો કણાદ, ગૌતમ, શક્તિ, ઉપમન્યુ, જૈમિનિ, કપિલ, દુર્વાસસ, મૃકંડુ, બૃહસ્પતિ અને જમદગ્નિ ભાર્ગવ એ દશ ઋષિઓ મારા ભક્ત છે તેઓમાં તમારી તામસ શક્તિનો આવિર્ભાવ કરો, જેથી તેઓ તામસ શાસ્ત્રોને રચે અને તમે પણ કપાળ, ભસ્મ અને ચર્મ વગેરે ચિહ્નોને ધારણ કરો અને પાશુપત ધર્મનો પ્રચાર કરો, કે જેથી એ શાસ્ત્રોને અને તમને જોઈ એઓ તમારા જેવુ આચરણ કરે અને પાખંડી બને." હે દેવી ! આ પ્રમાણે વિષ્ણુના આગ્રહથી મેં મારો પાખડ વેપ બનાવ્યો છે અને ગૌતમ, કણાદ વગેરે ઋષિઓ દ્વારા તામસ શાસ્ત્રોની રચના કરાવી છે.

પાર્વતી—આપે જે તામસ શાસ્ત્રોની રચના કરાવી છે તે તામસ શાસ્ત્રો કયા કયા છે?

રુદ્ર—જેના સ્મરણમાત્રથી જ્ઞાનીઓનો પણ અધ:પાત થઈ શકે છે તે તામસ શાસ્ત્રોના નામ આ છે પાશુપાત વગેરે શૈવ શાસ્ત્રો, કણાદરચિત, વૈશેષિક, ગૌતમરચિત ન્યાયશાસ્ત્ર, કપિલનું સાખ્યશાસ્ત્ર, બૃહસ્પતિરચિત ચાર્વાક શાસ્ત્ર, બુદ્ધપ્રણીત બૌદ્ધશાસ્ત્ર, અને નગ્નમત, નીલપટમત, માયાવાદ, તથા જૈમિનીયશાસ્ત્ર હે ગિરિજે ! એ બધાં તામસશાસ્ત્રો છે તામસ પુરાણો પણ છે જેનાં નામ આ છે

મત્સ્યપુરાણ, કૂર્મપુરાણ, લિંગપુરાણ, શિવપુરાણ, સ્કંદપુરાણ, અને અગ્નિપુરાણ આ ૭ તામસ પુરાણો છે. વિષ્ણુપુરાણ, નારદીય પુરાણ, ભાગવત, ગરુડપુરાણ, પદ્મપુરાણ, વરાહપુરાણ એ ૭ સાત્ત્વિકપુરાણો છે. અને બ્રહ્માંડ, બ્રહ્મવૈવર્ત, માર્કંડેય, ભવિષ્યતપુરાણ, વામન તથા બ્રાહ્મણપુરાણ એ ૭ રાજસ પુરાણો છે અને એ ૧૮ પ્રકારે સ્મૃતિઓ પણ ત્રણ પ્રકારની છે. વસિષ્ઠસ્મૃતિ, હારિત સ્મૃતિ, વ્યાસસ્મૃતિ, પરાશરસ્મૃતિ, ભારદ્વાજસ્મૃતિ, અને કાશ્યપસ્મૃતિ એ ૬ સાત્ત્વિક સ્મૃતિઓ છે. યાજ્ઞવલ્ક્ય, આત્રેય, તૈત્તિર, દક્ષ, કાત્યાયન અને વિષ્ણુ એ ૬ સ્મૃતિઓ રાજસ છે. તથા ગૌતમ, બૃહસ્પતિ, સંવર્ત, યમ, શંખ ઉશનસ એ ૭ સ્મૃતિઓ તામસ છે. (આનંદાશ્રમ૦ [illegible] અ. [illegible] શ્લોક ૯–૨૧)

સ્કંદપુરાણ

નારદ—[illegible] (હે [illegible]) [illegible] [illegible] નહિ, [illegible] છે, [illegible] આજ્ઞા [illegible]?

બ્રહ્મા—ત્રેતાથી દ્વાપરના અંત સુધી એટલે કળિ આવે ત્યા સુધી એક હનુમાન જ તેની રક્ષા માટે રામની આજ્ઞાથી નિયુક્ત થયેલ છે. ત્યા દ્વિજની તથા શ્રીમાતાની આજ્ઞા પ્રવર્તે છે. ત્યા વેદનું પઠનપાઠન, અનેક ઉત્સવો અને યજ્ઞો પ્રવર્તે છે

યુધિષ્ઠિર—શુ ક્યારેય તે સ્થાનનો ભગ થયો કે નહિ? તેમ જ ત્યોએ કે દુષ્ટ રાક્ષસોએ તે સ્થાન ક્યારે છીત્યુ?

વ્યાસ—કળિ પ્રાપ્ત થયા પછી પ્રથમ જ જે બન્યું તે સાભળ કલિપ્રાપ્ત થયે આમ નામનો રાજા થયો, જે કાન્યકુબ્જનો સ્વામિ હતો, તેમ જ નીતિજ્ઞ અને ધર્મતત્પર હતો

દ્વાપરનો અત હતો, હજી કળિ આવવાનો હતો, એટલામા કળિના ભયથી અને અધર્મના ભયથી બધા દેવો પૃથ્વી ત્યજી નૈમિષારણ્યમા ચાલ્યા ગયા રામ પણ પોતાના સાથીઓ સાથે સેતુબંધ ગયા.

યુધિષ્ઠિર—કળિમા એવો તે શો ભય છે કે જેને લીધે દેવોએ [illegible] પૃથ્વીને ત્યજી?

વ્યાસ—કળિયુગમા બધા અધર્મપરાયણ, બ્રાહ્મણદ્વેષી, [illegible]વિમુખ અને અસુગચારરત થાય

જે વખતે પૃથ્વી ઉપર કાન્યકુબ્જાધિપ આમ નામે રાજા હતો તે વખતે પ્રજાની બુદ્ધિ પાપથી મલિન થઈ અને તેણે [illegible] તેણે સ્વીકાર્યો અને [illegible] પ્રતિપાદિત થઈ એ પ્રજા તેને ([illegible]) અનુસરી એ જ કળિયુગનો ભય

વર્ણો જૈનધર્મપરાયણ થયા ત્યારે બ્રાહ્મણોની પૂજા બંધ પડી, શાંતિક કે પૌષ્ટિક કર્મ તેમ જ દાન બંધ પડ્યા. આ રીતે વખત વીતે છે તેવામાં રામચંદ્રજીથી ફરમાન મેળવેલ બ્રાહ્મણો પોતાનુ સ્વામિત્વ જવાથી રાતદિવસ ચિંતાવ્યગ્ર થઈ આમની પાસે કાન્યકુબ્જમા પહોચ્યા તે વખતે કાન્યકુબ્જ-પતિ પાખંડીઓથી ઘેરાયેલ હતો એ બધા મોઢ બ્રાહ્મણો કાન્યકુબ્જપુરમા જઈ પહેલાં તો ગગાતટે રહ્યા

ચાર–દૂત–દ્વારા માલૂમ પડવાથી રાજાએ બોલાવ્યા એટલે તે બધા પ્રાત કાલે રાજસભામા આવ્યા

રાજાએ નમસ્કારાદિ કાંઈ પ્રત્યુત્થાન–સ્વાગત ન કર્યું અને એમ ને એમ ઊભેલા બ્રાહ્મણોને પૂછ્યુ કે શા માટે આવ્યા છો ? શુ કામ છે ? તે કહો

વિપ્રો—હે રાજન્ ! ધર્મારણ્યથી અમે તારી પાસે આવ્યા છીએ તારા જમાઈ કુમારપાલે બ્રાહ્મણોનુ શાસન લોપ્યુ છે એ કુમારપાલ જૈન ધર્મી છે અને હેમસૂરિને વશ વર્તે છે

રાજા—હે વિપ્રો ! મોહેરકપુરમા તમને કોણે સ્થાપ્યા છે ? એ બધુ યથાર્થ કહો

વિપ્ર—અમને પહેલા બ્રહ્મા, વિષ્ણુ મહેશ્વરે સ્થાપ્યા છે ધર્મરાજ રામચંદ્રે એ શુભ સ્થાનમા પુરી વસાવી છે. ને ત્યાં બ્રાહ્મણોને નીમી શાસન આપેલુ રામચંદ્રનુ શાસન જોઈ બીજા રાજાઓએ તો એ શાસનને બરાબર માન આપ્યુ પણ હમણા તારો જમાઈ એ શાસન પ્રમાણે બ્રાહ્મણોને પાળતો નથી. એ સાંભળી રાજાએ કહ્યું, હે વિપ્રો ! જલદી જાઓ અને મારી આજ્ઞાથી કુમારપાલને કહો કે તું બ્રાહ્મણોને આશ્રય આપ. આમનુ એ વાક્ય સાંભળી બ્રાહ્મણો પ્રસન્ન થયા અને કુમારપાળ પાસે ગયા ને એના સસરાનુ વચન કહી સંભળાવ્યું.

કુમારપાળ—હે વિપ્રો ! હું રામનુ ફરમાન પાળવાનો નથી. [illegible] હિંસાપરાયણ ! એવા બ્રાહ્મણોને હું ત્યજુ છું. હે દ્વિજો ! હિંસક [illegible] મારો [illegible] થતો નથી

રાજા—અહિંસા એ પરમ ધર્મ, પરમ તપ, જ્ઞાન અને પરમ ફલ છે સૂક્ષ્મ અને સ્થૂલ બધા કીટ, પતંગ આદિ પ્રાણીઓમા જીવ સમાન જ છે હે વિપ્રો! તમે હિંસક પ્રવૃત્તિ શાને કરો છો? એ વચન સાંભળી બ્રાહ્મણો ગુસ્સે થયા અને આંખો લાલ કરીને બોલ્યા—હે નૃપ! અહિંસા પરમ ધર્મ છે, એ તો તે સાચું કહ્યું, પણ વેદવિહિત હિંસા હિંસા નથી એવો નિર્ણય છે. શસ્ત્રથી જે હિંસા થાય છે તે જ જંતુઓને પીડાકારી છે અને તેથી તે હિંસા અને અધર્મ કહેવાય છે, પણ શસ્ત્રો વિના વેદમંત્રોથી જ્યારે પ્રાણીઓને મારવામા આવે છે ત્યારે તે સુખદાયી હોવાથી અધર્મ નથી વૈદિક હિંસા કરવાથી પાપ લાગતુ નથી

રાજા—બ્રહ્માદિ દેવોનુ આ અનુપમ ધર્મક્ષેત્ર છે. પણ અત્યારે એ દેવો અહીં નથી તમે કહેલો ધર્મ પણ અહી નથી જે રામને દેવ કહો છો તે તો માણસ હતો. જેને તમારા રક્ષણ માટે મૂક્યો તે લંબપુચ્છ (હનુમાન) ક્યા છે? જો તમને મળેલુ શાસન મારા જોવામા નહિ આવે તો હુ તેને પાળનાર નથી બ્રાહ્મણો ગુસ્સે થઈ બોલ્યા "હે મૂઢ! તું ઉન્મત્ત થઈ આ શું બોલે છે? દૈત્યોના વિનાશ અને ધર્મના રક્ષણ માટે રામે ચતુર્ભુજ મનુષ્યરૂપ લીધું હતુ

રાજા—"એ રામ અને હનુમાન ક્યા છે? જો હોય તો તમારી મદદે આવે રામ, લક્ષ્મણ કે હનુમાનને બતાવો. તેઓના હોવાની ખાત્રી આપીને માગો

બ્રાહ્મણો બોલ્યા—હે નૃપ! અંજનીના સુતને ખુશ કરી રામદેવે ૧૦૪ ગામ આપ્યા. ફરી આ સ્થાને આવી ૧૩ ગામ આપ્યા અને ૧૪ મહાજનો આપ્યા તેમજ ૫૦ બીજાં ગામોનો પણ સંકલ્પ કર્યો ૩૬૦૦૦ બ્રાહ્મણ આપ્યા સવાલાખ વાણિયા આપ્યા જેની મોઢિય સંજ્ઞા હતી'

મુખીઓ સમિલિત ન થાય તેને દરેક વૃત્તિથી બહિષ્કૃત કરવો. એક દક્ષ બ્રાહ્મણે આ વૃદ્ધ કથનને સભામાં ત્રણ વાર ઉચ્ચ સ્વરથી તાળીપૂર્વક સૌને કહી સભળાવ્યું અને સૌને કહ્યું કે જે જવામા પરાઙમુખ થશે તેને માથે અસત્ય આદિનાં બધા પાપો છે. બધાને જતાં જોઈ કુમારપાલે બોલાવી કહ્યુ કે ભિન્ન ભિન્ન ગોત્રવાળા બધા બ્રાહ્મણોને કૃષિકર્મ અને ભિક્ષાટન જરૂર કરાવીશ એ સાભળી બધા વ્યથિત થયા, પણ ત્રણ હજાર બ્રાહ્મણોએ તો એમ ઠરાવ્યુ કે આપણે રામેશ્વર જવુ જ. એ નિશ્ચય માટે અંદરો અંદર દરેકે હસ્તાક્ષર કર્યાં. અહી વેદત્રયી નાશ પામે છે અને ત્રિમૂર્તિ કુપિત થાય છે, માટે અઢાર હજાર જણાએ રામેશ્વર જવુ આ ઠરાવ સાંભળી કુમારપાળે ગોભુજ વાણિયાઓને બોલાવી એ બ્રાહ્મણોને રોકવા કહ્યું.

વ્યાસ કહે છે કે જે ગોભુજ શ્રેષ્ઠ વાણિયાઓ જૈનધર્મમાં લિપ્ત ન હતા તેઓ આજીવિકાભંગના ભયથી મૌન રહ્યા અને રાજાને કહ્યું કે હે નૃપ! આ કુપિત બ્રાહ્મણોને કેવી રીતે રોકીએ? એ તો શાપથી બાળી નાખે. કુમાળપાળે અડાલય (અડાલજ) મા થયેલા શૂદ્રોને બોલાવી કહ્યું કે તમે બ્રાહ્મણોને રોકો. એ અડાલયજ શૂદ્રોમાં કેટલાક જૈન હતા, તેથી તેઓએ રામેશ્વર જવા તત્પર બ્રાહ્મણોને સબોધી કહ્યુ કે વર્તમાન કાળમા રામ ક્યા છે? લક્ષ્મણ ક્યાં છે? અને હનુમાન ક્યાં છે? અરે બ્રાહ્મણો! આવા ભયાનક જંગલમાં ઘરબાર, છૈયાંછોકરા મૂકી એ દુષ્ટ શાસનવાળા રાજ્યમા શા માટે જાઓ છો? આ સાંભળી કેટલાક બ્રાહ્મણો રાજભયથી અને લાલચથી ચલિત થઈ જુદા પડ્યા અને કહ્યુ કે બીજાઓ ભલે જાય આપણે તો કુમારપાળની આડે આવવાના નથી. ખેતી કરીશું, અને ભિક્ષાટન પણ કરીશું. આ રીતે પંદર હજાર જુદા પડયા. બાકીના ત્રણ હજાર ત્રિવેદી એટલે ત્રૈવિદ્યરૂપે વિખ્યાત થયા. બીજા પંદર હજારને રાજ્યનો ચોથો ભાગ અને થોડી પૃથ્વી આપી. એટલે તેઓ ચાતુર્વિદ્યરૂપે વિખ્યાત થયા. વળી રાજાએ કહ્યું. તમને યવનો કન્યા આપે, તમે કન્યા દ્યો. પેલા ત્રણ હજાર ત્રિવેદીઓને રાજાએ કહ્યું કે તમે મારું માનતા નથી માટે તમારી જ્ઞાતિ [illegible] નહિ [illegible]. આ સાંભળી પેલા ક્રુદ્ધ ત્રૈવિદ્યો સ્વસ્થાને ગયા. પેલા ચાતુર્વિદ્યોએ ત્રિવેદીઓને સમજાવ્યું કે તમે ન જાવ અથવા જાવ તો વહેલી પાછા આવો, જેથી [illegible] [illegible] એ સાંભળી [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

અહીંનું સાંભળીએ અને બંધાવાના કામની સિદ્ધિ માટે તમે ત્યાં જાઓ અંદર અંદર મળી સહાયક થઈશું તો વૃત્તિ જરૂર પાછી મેળવીશું એ નિશ્ચય પ્રમાણે પેલા ત્રૈવિદ્યો રામેશ્વર ગયા, અને ચાતુર્વિદ્યો ત્યાં જ રહ્યા ત્રૈવિદ્યોના ઉત્કટ તપથી રામે ઉદ્વિગ્ન થઈ હનુમાનને કહ્યું, તું જલદી જા એ બધા ધર્મારણ્યવાસી બ્રાહ્મણો હેરાન થાય છે એ બ્રાહ્મણોને દુઃખ આપનારને ઠેકાણે લાવવો જોઈએ એ સાંભળી બ્રાહ્મણરૂપ ધરી, હનુમાને પ્રકટ થઈ, આવેલા બ્રાહ્મણો-ની પરીક્ષા કરી અને પૂછ્યું કે શા માટે આવ્યા છો? તેઓએ કહ્યું કે સૃષ્ટિના આરંભમાં બ્રહ્મા આદિ દેવોએ ત્રિમૂર્તિ માટે અમને રચ્યા હતા અને પછી રામે જીર્ણોદ્ધાર કરતી વખતે ફરી અમને સ્થાપ્યા, અને હનુમાન ૪૪૪ ગામો વેતનરૂપે આપ્યાં સીતાપુર સહિત ૧૬ ગામ પૂજા માટે આપ્યાં. ગોભુજ નામના ૩૬ હજાર વાણિયાઓ બ્રાહ્મણનું પાલન કરવા નિયુક્ત થયા. તેમાંથી સવા લાખ શૂદ્રો થયા, જેના ત્રણ ભાગ ગોભુજ આસાલજ અને માંડલિય થયા હમણાં દુષ્ટ આમરાજા રામનું શાસન નથી માનતો તેના જમાઈ કુમારપાલ દુષ્ટ છે કારણ તે પાખંડીઓથી—ખાસ કરી બૌદ્ધધર્મી જૈન ચંદ્રસૂરિથી પ્રેરિત થઈ અત્યારે રામનું શાસન માનતો નથી, અને લોપે છે. કેટલાક વાણિયાઓ પણ તેના જેવા દુર્બુદ્ધિ થઈ રામ અને હનુમાનનું શાસન લોપે છે હવે અમે હનુમાન પાસે જઈએ છીએ. જો તે અમારું કષ્ટ નિર નહિ કરે તો અનાહાર વ્રત લઈ મરીશું બ્રાહ્મણનું કહેવું સાંભળી હનુમાને કહ્યું, હે દ્વિજો! કળિયુગમાં દેવ ક્યાં છે, પાછા જાઓ પણ બ્રાહ્મણોને તો [illegible] છે? ખરું રૂપ પ્રગટ કર તો માનીએ કે હનુમાન।

જોડી નગરી પર ત્યારે જમણી પડીકી નાખજે, તેથી સૈન્ય ખજાનો, વગેરે બધું બળી ગયેલું પાછું પ્રથમની જેમ હતું તેવું જ થઈ જશે હનુમાનનું એ વચન સાંભળી બ્રાહ્મણો ખુશ થયા ને જયધ્વનિ કર્યો પાછા જવા ઉત્સુક થયેલા બ્રાહ્મણોને હનુમાને એક મોટી વિશાલ શિલા ઉપર સૂવા કહ્યું એ સૂતા અને ઊંઘી ગયા એટલે હનુમાનની પ્રેરણાથી તેના પિતા વાયુએ તે શિલા છ માસમાં કાપી શકાય તેટલા લાંબા માર્ગને માત્ર ત્રણ મુહૂર્તમાં કાપી, ધર્મારણ્ય તીર્થમાં પહોંચાડી દીધી આ ચમત્કાર જોઈ એ બ્રાહ્મણો અને ગામના બધા લોકો બહુ જ વિસ્મિત થયા ત્યાર બાદ એ બધા બ્રાહ્મણો નગરમાં પહોંચ્યા જ્યારે ત્યાં રાજાને માલૂમ પડ્યું ત્યારે તેણે એ બ્રાહ્મણોને બોલાવી કહ્યું કે શું રામ અને હનુમાન પાસે જઈ આવ્યા? એમ કહી રાજાએ મૌન પકડ્યું એટલે ઉપસ્થિત થયેલા બધા બ્રાહ્મણો અનુક્રમે બેસી ગયા અને કુટુંબ તથા સંપત્તિ સૈન્ય વિશે કુશળ સમાચાર તેઓએ પૂછ્યા રાજાએ કહ્યું, અરિહંત પ્રસાદથી બધું કુશળ છે ખરી જીભ એ જ છે જે જિનેશ્વરની સ્તુતિ કરે છે, હાથ તે જ કે જેનાથી જિનપૂજા થાય, દૃષ્ટિ તે જ જે જિનદર્શનમાં લીન થાય, મન તે જ જે જિનેન્દ્રમાં રત હોય સર્વત્ર દયા કરવી સદા ઉપાશ્રયમાં જવું અને ગુરુવંદન કરવું જોઈએ નમસ્કાર મંત્રનો જપ અને પર્યુષણ પર્વ કરવું જોઈએ, અને શ્રમણો (મુનિઓ)ને દાન દેવું જોઈએ. રાજાનું એ કથન સાંભળી બધા બ્રાહ્મણોએ કાન મીંચ્યા, અને છેવટે રાજાને કહ્યું કે રામ અને હનુમાને કહેવરાવ્યું છે કે તું બ્રાહ્મણોની વૃત્તિ પાછી પૂર્વની જેમ કરી આપ હે રાજન્! રામના એ કથનને પાળ અને સુખી થા. રાજાએ જવાબમાં કહ્યું. જ્યાં રામ અને હનુમાન હોય ત્યાં જાવ રામ કે વૃત્તિ જે જોઈએ તે તેઓ પાસેથી મેળવો. હું તો તમને એક પણ કોડી દેનાર નથી એ વચન સાંભળી બ્રાહ્મણો ગુસ્સે થયા અને હનુમાને આપેલી ડાબી પડીકી રાજદ્વારમાં ફેંકી ચાલ્યા ગયા એ પડીકીને લીધે બધું સળગી ઊઠ્યું. રાજદ્વાર ભડક્યો તે વખતે નગ્ન ક્ષપણકો હાથમાં પાતરાઓ લઈ, નાગાઓ પડ્યા,

દાસ છું. આગ શમાવો. હું તમારી વૃત્તિ અને શાસનો ફરી સ્થિર કરી આપું છું. મારું વચન અન્યથા નહિ થાય. જો થાય તો બ્રહ્મહત્યા આદિના મહાપાપો મને લાગે. રામ 'અને બ્રાહ્મણો વિશે મારી ભક્તિ સ્થિર છે. તે વચનને બ્રાહ્મણોએ દયા કરી જમણી પડીકી નાખી એટલે બધું શાંત થયું, અને બળી ગયેલ [illegible] વસ્તુઓ ફરી હતી તેવી થઈ ગઈ. આથી રાજા અને પ્રજા પ્રસન્ન થયા. ફરી વૈષ્ણવ-ધર્મ સ્વીકાર્યો. બ્રાહ્મણોને નવીન ફરમાનો રાજાએ કરી આપ્યા. કૃત્રિમ નામના પ્રવર્તક વેદબાહ્ય પાખંડીઓને કાઢી મૂક્યા. પહેલા જે ૩૦૦૦૦ ગોભુજો સંગ હતા તેમાથી અડલીજ વાણિયા થયા. એ બધાને રાજાએ દેવ-બ્રાહ્મણોની સેવા માટે મુકરર કર્યા. તેઓ પાખંડધર્મ છોડી પવિત્ર વૈષ્ણવ બન્યા. વળી ક્રમે ત્રૈવિદ્ય અને ચાતુર્વિદ્ય જાતિનો રાજાએ ભેદ નક્કી કરી દરેકને જુદા જુદા નિયમો સ્વીકારાવ્યા. જે ગોભુજ શઠો જૈન થયા ન હતા અને બ્રાહ્મણોને [illegible] તેઓ ઉત્તમ ગણાયા અને જેઓએ જૈન ધર્મને [illegible] પણ તેઓ દ્વિજસમાજમાં બહિષ્કૃત ગણાયા.

રાજા કુમારપાળે પેલા ૧૫૦૦૦ બ્રાહ્મણો, [illegible] તેઓને વૃત્તિહીન કરી ગામ બહાર મોકલવાનું ફરમાવ્યું [illegible] ઓના સંસર્ગથી થયેલું મારું પાપ તમારા [illegible] વિપ્રો! તમે પ્રસન્ન થાઓ. એ સાંભળી [illegible] થાય છે. નીલકંઠ પણ નમ્ર થયા. મોઢ [illegible] ચાતુર્વિદ્ય [illegible] થયા. ચાતુર્વિદ્યો [illegible] ગામમાં [illegible]

ઇચ્છાનુસાર કરશે. કળિયુગ એટલે અધર્મનું પિયર તેથી લોકોની બુદ્ધિ ભ્રષ્ટ થઈ એટલે દેવ, વેદ, બ્રાહ્મણ યજ્ઞપુરુષ વિષે શ્રદ્ધાહીન નાસ્તિક થશે.

હે પરીક્ષિત! તે અરહત રાજાના કપોલકલ્પિત ધર્મને વેદનો આધાર હશે નહિ તે અર્વાચીન ધર્મો ઉપર અરહત રાજાની પછી પણ બીજા લોકો અંધ પરંપરાથી ચાલશે અને તેઓ પોતે જ પોતાની મેળે અંધતમ નરકમા પડશે.

(ભાગવત, સ્કંધ ૫, અ૦ ૬ નિર્ણયસાગરની આવૃત્તિ)

કૂર્મપુરાણ

વૃદ્ધ (બૌદ્ધ?) શ્રાવક, નિર્ગ્રંથ (જૈનમુનિ) પંચરાત્રજ્ઞ કાપાલિક, પાશુપત અને તેઓના જેવા જ બીજા પાખંડી માણસો, જેઓ દુષ્ટાત્મા અને તામસ સ્વભાવના છે તેઓ જેનું હવિ(શ્રાદ્ધભોજન) ખાય છે તેનું તે શ્રાદ્ધ આ લોક અને પરલોકમા ફલપ્રદ થતું નથી

નાસ્તિક, હૈતુક, વેદાન્તભિન્ન અને બધા પાખંડીઓને ધર્મજ્ઞ માણસે પાણી પણ આપવું ન જોઈએ

(કૂર્મપુરાણ, અ૦ ૨૧, શ્લો૦ ૩૨–૩૩ પૃ૦ ૬૦૨ તથા પૃ૦ ૬૪૧ શ્લો૦ ૧૫)

(નાટકવિષયક) પરિશિષ્ટ ૨

પ્રબોધચંદ્રોદય

જ્યારે તપ્યો હોય ત્યારે પિશાચોનો કેવી રીતે અવકાશ સંભવે?

શાંતિ—ત્યારે તરત જ નરકના ખાડામાથી ઉપર આવેલો કોઈ નારકી હશે (જોઈ અને વિચારપૂર્વક) અરે સમજાયું! મહામોહે પ્રવર્તાવેલો આ દિગમ્બર સિદ્ધાંત છે તેથી આનું દર્શન સર્વથા દૂરથી જ પરિહરવું યોગ્ય છે. (એમ ધારી પરાઙમુખ થાય છે)

કરુણા—સખિ! મુહૂર્ત માટે થોભ જ્યાં સુધી હું અહીં શ્રદ્ધાને શોધું. (બંને તેમ જ ઊભા રહ્યાં) (ત્યાર બાદ પ્રથમ વર્ણવ્યો તેવો દિગંબર સિદ્ધાંત પ્રવેશ કરે છે.)

દિગબર—ઓમ્! અરિહન્તોને નમસ્કાર! નવદ્વારવાળી પુરીની અંદર આત્મા દીવાની જેમ રહ્યો છે. આ જિનવરકથિત પરમાર્થ છે અને એ મોક્ષસુખનો દાતા છે. અરે શ્રાવકો! સાભળો. સંપૂર્ણ પાણીથી પણ મલમય પુદ્ગલપિંડમાં શુદ્ધિ કેવી? નિર્મલ સ્વભાવવાળો આત્મા ઋષિઓની સેવાથી જાણી શકાય? શું એમ કહો છો કે ઋષિઓની પરિચર્યા કેવી? લ્યો તે સાભળો;

ઋષિઓને દૂરથી ચરણોમાં પ્રણામ કરવા, સત્કારપૂર્વક મિષ્ટભોજન આપવું; તેમ જ સ્ત્રીઓની સાથે રમણ કરતા એવા તેઓની ઈર્ષ્યા ન કરવી. (નેપથ્ય સામું જોઈને) હે શ્રદ્ધે! પેલાં આ તરફ (બંને ભયપૂર્વક નિહાળે છે) (ત્યારબાદ તેના જેવા જ વેષવાળી શ્રદ્ધા પ્રવેશ કરે છે)

શ્રદ્ધા—રાજકુલ શું આજ્ઞા કરે છે?

(શાંતિ મૂર્છિત થઈ પડે છે)

દિગંબર સિદ્ધાન્ત—તમે એક મુહૂર્ત પણ ઉપાસકોના કુટુંબને ન તજશો.

શ્રદ્ધા—જેવી રાજકુલની આજ્ઞા

(શાંતિ અને કરુણા જાય છે.)

(પછી હાથમાં પુસ્તકધારી ભિક્ષુરૂપ બૌદ્ધાગમ પ્રવેશે છે.)

ભિક્ષુ—(વિચાર કરીને) હે ઉપાસકો! સર્વ પદાર્થો ક્ષણિક તથા નિરાત્મક છે. તેમ જ બુદ્ધિગત આંતરિક છતાં બહાર હોય એમ ભાસે છે. સંપૂર્ણ વાસના ગળી જવાથી તે જ બુદ્ધિસંતતિ હમણા વૈષયિક છાયા વિનાની ભાસે છે. (થોડું ફરીને) અહો! આ બૌદ્ધધર્મ સારો છે, કેમ કે એમા સુખ અને મોક્ષ બને છે મનોહર ગુફા એ નિવાસસ્થાન છે ઇચ્છાનુકૂળ વૈશ્ય સ્ત્રીઓ છે, જોઈએ ત્યારે મળે એવું ઇષ્ટ ભોજન, કોમળ પાથરણાવાળી સેજ, તરુણ યુવતીઓ દ્વારા શ્રદ્ધાપૂર્વક સેવાયેલી એવી ચાંદનીથી ઉજ્જ્વલ રાત્રીઓ, શરીર સમર્પણની ઉત્સવ ક્રીડાથી ઉત્પન્ન થતા આનંદ સાથે પસાર થાય છે

કરુણા—સખિ! આ કોણ? નવા તાડના ઝાડ જેવો લાંબો લટકતા ગેરુઆ કપડાવાળો અને માત્ર ચોટલી ગણી મુંડાવેલ માથાવાળો એવો આ તરફ જ આવે છે?

શાંતિ—સખિ એ બુદ્ધાગમ છે

ભિક્ષુ—(આકાશ સામું જોઈને) હે ઉપાસકો અને ભિક્ષુઓ! તમે બુદ્ધનાં વચનામૃત સાંભળો (પુસ્તક વાંચે છે) હું દિવ્યદૃષ્ટિથી લોકોની સુગતિ અને દુર્ગતિ જોઉં છું સર્વ સંસ્કારો ક્ષણિક છે સ્થિર એવો આત્મા છે જ નહિ. માટે સ્ત્રીઓ ઉપર આક્રમણ કરતા એવા ભિક્ષુઓ પ્રત્યે ઈર્ષ્યા ન કરવી કેમ કે ઈર્ષ્યા એ ચિત્તનો મળ છે. (નેપથ્ય સામે જોઈને) હે શ્રદ્ધે! આમ આવ.

શ્રદ્ધા—(પ્રવેશ કરીને) રાજકુલ! આપ ફરમાવો

ભિક્ષુ—ઉપાસકો અને ભિક્ષુઓને ચિરકાળ સુધી વળગી રહે.

શ્રદ્ધા—રાજકુલની જેવી આજ્ઞા (ચાલી ગઈ)

શાન્તિ—હે સખિ! આ પણ તામસી શ્રદ્ધા

કરુણા—એમ જ.

ભિક્ષુ—રે ક્ષપણક! શાસ્ત્રની વાત પણ જાણે છે? ભલે, જરા વાર પ્રતીક્ષા કરુ છું. (પાસે જઈને) શું પૂછે છે?

ક્ષપણક—કહે ને જરા, ક્ષણમાત્રમા નાશ પામનાર એવો તું શાને માટે આ વ્રત ધારણ કરે છે?

ભિક્ષુ—રે! સાભળ અમારી સંતતિમા પડેલો, કોઈ વિજ્ઞાનરૂપ બીજો, વાસના નષ્ટ કરી મુક્ત થશે.

ક્ષપણક—કોઈ પણ મન્વતરમા કોઈ પણ મુક્ત થશે! તેથી હમણા નષ્ટ થયેલા એવા તારા ઉપર તે કેવો ઉપકાર કરશે? બીજું પણ પૂછુ છુ. તને આવો ધર્મ કોણે ઉપદેશ્યો છે?

ભિક્ષુ—અવસ્ય સર્વજ્ઞ બુદ્ધ ભગવાને આ જ ધર્મ ઉપદેશ્યો છે

ક્ષપણક—અરે, અરે! બુદ્ધ સર્વજ્ઞ છે એમ તે શી રીતે જાણ્યું?

ભિક્ષુ—અરે, તેના આગમોથી જ બુદ્ધ સર્વજ્ઞ છે એમ સિદ્ધ છે

ક્ષપણક—હે ભોળી બુદ્ધિના! જો તેના જ કથનથી તેનુ સર્વજ્ઞપણુ તું માને છે તો તું પણ બાપદાદાઓ સાથે સાત પેઢી થયા અમારો દાસ છે એ હુ પણ જાણું છું

ભિક્ષુ—(ક્રોધથી) હે દુષ્ટ પિશાચ! મેલનો કાદવ ધારણ કરનાર! શું, હુ તારો દાસ?

ક્ષપણક—હે વિહારની દાસીઓના યાર! દુષ્ટ પરિવ્રાજક! આ દૃષ્ટાન્ત મેં જણાવેલ છે તેથી તને પ્રિય [illegible] વિજ્ઞાનરૂપ [illegible] છું. [illegible] શાસન [illegible]

ઘરની અંદર પણ રહેલા પદાર્થોને પ્રકાશિત કરે? તેથી બને લોકથી વિરુદ્ધ એવા આર્હત મતથી શ્રેષ્ઠ બૌદ્ધ મતને જ સાક્ષાત્ સુખજનક અને અત્યંત રમણીય અમે જોઈએ છીએ

શાંતિ—સખી! બીજે જઈએ.

કરુણા—ભલે એમ જ (બને ચાલે છે)

શાંતિ—(સામે જોઈને) આ સોમસિદ્ધાંત. ઠીક અહીં પણ અનુસરીએ (ત્યાર બાદ કાપાલિક રૂપધારી સોમસિદ્ધાંત પ્રવેશે છે.)

સોમસિદ્ધાંત—(ફરીને) મનુષ્યના હાડકાની માળાથી ભૂષિત, સ્મશાનવાસી, મનુષ્યની ખોપરીમા ભોજન કરનાર એવો હુ યોગાજનથી શુદ્ધ થયેલ નેત્ર વડે પરસ્પર ભિન્ન એવા જગતને ઈશ્વરથી અભિન્ન જોઉ છું

ક્ષપણક—આ કયો પુરુષ કાપાલિક વ્રતને ધારણ કરે છે? માટે એને પણ પૂછું. રે કાપાલિક! મનુષ્યઅસ્થિની માળા ધારણ કરનાર! તારો ધર્મ અને મોક્ષ કેવો છે?

કાપાલિક—હે ક્ષપણક! અમારા ધર્મને સમજી લે. અગ્નિમા મગજ, આતરડા, ચરબીથી પૂર્ણ માસની આહુતિઓ આપતા એવા અમારુ પારણ બ્રાહ્મણની ખોપરીમા ભરેલ દારૂ પીને થાય છે. તુરતના કાપેલ કઠોર ગળામાથી ઝરતા લોહીની ધારથી ચળકતા એવા પુરુષનાં બલિદાનોથી પૂજાવા યોગ્ય મહાભૈરવ અમારો દેવ છે

ભિક્ષુ—(કાન બંધ કરીને) બુદ્ધ! બુદ્ધ! અહો ભયંકર ધર્માચરણ!

ક્ષપણક—અરિહંત! અરિહંત! અહો, ઘોર પાપ કરનાર કોઈએ આ બિચારાને ઠગ્યો છે

કાપાલિક—(ક્રોધ સાથે) હે પાપ! હે નગ્ન પાખંડી! મૂંડેલ માથાના! ગુચ્છાદાર કેશવાળા! વાળ ઉખાડી ફેંકનાર! અરે! ચૌદ લોકની ઉત્પત્તિ, સ્થિતિ અને સંહારનો પ્રવર્તક, વેદાન્તમાં પ્રસિદ્ધ એવા સિદ્ધાન્તના વૈભવવાળા ભગવાન ભવાનીપતિ ઠગનાર છે! તારે આ ધર્મનો મહિમા બતાવીએ. હરિ, હર, ઇન્દ્ર વગેરે શ્રેષ્ઠ દેવોને હું ખેંચી લાવું છું, આકાશમા ચાલતા નક્ષત્રોની ગતિઓ પણ હું રોકું છું. પહાડ અને નગરો સહિત આ પૃથ્વીને જળમય કરીને ગાથું ન [illegible]

ક્ષપણક—હે કાપાલિક ! એથી જ હું કહું છું કે કોઈ ઇન્દ્રજાળિયાએ માયા બતાવી તને ઠગ્યો છે.

કાપાલિક—હે પાપ ! ફરી પણ પરમેશ્વરને ઇન્દ્રજાલિક કહી આક્ષેપ કરે છે ? તેથી આનુ દુષ્ટપણું સહન કરવુ યોગ્ય નથી. (તરવાર ખેંચીને) તો ખૂબ સારી રીતે આના આ વિકરાળ તરવારથી કાપેલ ગળાની નાળમાંથી નીકળતા ફીણદાર અને પરપોટાથી ભરેલા લોહીથી ડમડમ કરતા ડમરુના ખડખડાટથી આહ્વાન કરાયેલ ભૂતવર્ગોની સાથે મહાભૈરવીને તર્પણ આપુ છુ (એમ કહી તરવાર ઉગામે છે)

ક્ષપણક—(ભયથી) હે મહાભાગ ! અહિંસા એ પરમધર્મ છે. (એમ કહી ભિક્ષુના ખોળામા ગરી જાય છે)

ભિક્ષુ—(કાપાલિકને વારતો) હે ભાગ ! કુતૂહલમા થયેલ વાકકલહમાત્રથી એ બિચારા ઉપર પ્રહાર કરવો યોગ્ય નથી (કાપાલિક તરવાર પાછી ખેંચી લે છે.)

ક્ષપણક—(આશ્વાસન મેળવી) મહાભાગે જો પ્રચંડ કોપાવેગને શમાવ્યો હોય તો હું કાંઇક પૂછવા ઇચ્છુ છુ

કાપાલિક—પૂછ.

ક્ષપણક—તમારો પરમ ધર્મ સાંભળ્યો. હવે સુખ અને મોક્ષ કેવો છે ?

કાપાલિક—સાંભળ. ક્યાંય પણ વિષયો વિના સુખ નથી જોયું. આનંદાનુભવ વિનાની જીવદશારૂપ પાષાણ જેવી જડ મુક્તિને કોણ ચાહે ? મુક્ત પુરુષ પાર્વતી જેવી સુંદર સ્ત્રી સાથે સાનંદ આલિંગન પામી ક્રીડા કરે છે. એમ ચંદ્રશેખર ભવાનીપતિએ બતાવ્યું છે.

ભિક્ષુ—આચાર્ય ! આ દર્શન અત્યંત આશ્ચર્યકારી છે જેમાં ક્લેશ વિના જ ઇષ્ટ અર્થો સિદ્ધ થાય છે

(કેફથી સ્ખલનાપૂર્વક નાચે છે.)

ક્ષપણક—(અયિ પીનસ્તની ઇત્યાદિ પ્રથમનું જ બોલીને)

કાપાલિક—તું એ કેટલું આશ્ચર્ય જોયા કરે છે ?

\+ + + + + +

ક્ષપણક—મહારાજ મહામોહની આજ્ઞાથી સત્ત્વની પુત્રી શ્રદ્ધાને લાવો.

કાપાલિક—કહે, ક્યાં છે દાસીની પુત્રી ! આ હું તેને જલદી જ વિદ્યાબળથી લાવું છું.

ક્ષપણક—(ખડી લઇ ગણિત કરે છે.)

શાંતિ—સખિ ! અભાગિઆઓનું આ માતા વિશે જ સંભાષણ સાંભળું છું. તે ધ્યાનપૂર્વક સાંભળીએ.

કરુણા—હે સખિ ! એમ કરીએ

ક્ષપણક—(ગાથા ગણીને) જળમાં, સ્થળમાં, ગિરિગહ્વર કે પાતાળમાં નથી તે વિષ્ણુભક્તિની સાથે મહાત્માઓના હૃદયમાં વસે છે

કરુણા—(સહર્ષ) સખિ ! ભાગ્ય ચઢિયાતું છે કે શ્રદ્ધાદેવી વિષ્ણુભક્તિની પાસે જ છે

શાંતિ—(હર્ષ સૂચવે છે.)

ભિક્ષુ—કામથી મુક્ત એવા ધર્મની પ્રવૃત્તિ ક્યાં છે ?

ક્ષપણક—(ફરી ગણીને) જળ, સ્થળ, ગિરિગહ્વર કે પાતાળમાં નથી. તે તો વિષ્ણુભક્તિની સાથે જ મહાત્માના હૃદયમાં વસે છે.

શ્રદ્ધા—ત્યારબાદ હે દેવી ! દુષ્ટ મહામોહે પાખંડ તર્ક સાથે બધા પાખંડ આગમોને લડાઈ માટે પ્રથમ મોકલ્યા. એટલામાં અમારા પણ મનને ખોળે વેદ, ઉપવેદ, અંગ, ઉપાંગ, પુરાણ, ધર્મશાસ્ત્ર, આદિથી શોભતાં સરસ્વતી પ્રકટ થઈ.

વિષ્ણુભક્તિ—પછી, પછી !

શ્રદ્ધા—બાદ સાંખ્ય ન્યાય, કણાદ, મહાભાષ્ય, પૂર્વમીમાંસા આદિ દર્શનોથી વેષ્ટિત વેદત્રયી જાણે ત્રિનેત્ર કાત્યાયની હોય તેમ સરસ્વતી સન્મુખ પ્રકટ થઈ.

શાંતિ—એ વિરોધી દર્શનો એકત્ર કેમ મળ્યાં ?

શ્રદ્ધા—હે પુત્રી શાંતિ ! એ દર્શનો જો કે પરસ્પર વિરોધી છે. છતાં બધા વેદપ્રસૂત હોવાથી જ્યારે વેદનો કોઈ વિરોધ કરે ત્યારે બધા એકસંપી થઈ વેદવિરોધીની સામે થાય છે

વિષ્ણુભક્તિ—પછી. પછી !

શ્રદ્ધા—હે દેવી ! ત્યારબાદ મહામોહના એ પાખંડ દર્શનો અને અમારા આસ્તિક દર્શનો વચ્ચે ભયંકર યુદ્ધ થયું. તેમાં એ પાખંડીઓએ લોકાયતશાસ્ત્રને આગળ કર્યું હતું પણ તે તો અદ્વૈતશાસ્ત્રોના સંઘર્ષણથી જ નષ્ટ થયું અને બીજા પાખંડી આગમો તો સત્ય આગમરૂપ સમુદ્રના પ્રવાહમાં બિલકુલ છિન્નભિન્ન થઈ ગયા. બૌદ્ધો સિંધ, ગાંધાર, પારસિક, આન્ધ્ર, હૂણ, વંગ, કલિંગ આદિ મ્લેચ્છ-પ્રચુર દેશોમાં દાખલ થઈ ગયા પાખંડ, દિગમ્બર, કાપાલિક, વિગેરે તો પામર લોકોથી ભરેલા પંચાલ, માલવ, આભીર, આવર્ત ભૂમિમાં દરિયા નજીક છૂપી રીતે સંચરે છે. ન્યાયયુક્ત મીમાંસાના પ્રહારથી જર્જરિત થયેલા એ નાસ્તિકોના તર્કો તે જ પાખંડી આગમોની પાછળ પાછળ પલાયન કરી ગયા. (પ્રબોધચન્દ્રોદય અંક ૨ પૃષ્ઠ ૯૯)

(દર્શનવિષયક) પરિશિષ્ટ ૬

હેતુથી લખાયેલ ગ્રંથો આવે છે. અને ચોથામા પ્રમાણ–પ્રમેયાદિનુ તર્કપદ્ધતિએ નિરૂપણ કરનાર ગ્રંથો આવે છે.

શ્વેતામ્બર શાખાનું સાહિત્ય આ ચારે ભાગમા ઉપલબ્ધ થાય છે, અને દિગંબર શાખાઓનું ત્રણ ભાગમા એમાં આગમ ગ્રંથો નથી

જૈન સાહિત્યમા આગમ એ મુખ્ય છે. વેદો અને ત્રિપિટકોની પેઠે તેની પાઠસંકલના, વિભાગવ્યવસ્થા અને સંશોધન એ બધું જો કે રચનાના સમય પછી થયું છે, છતા તેની પ્રાચીનતા લુપ્ત થઈ નથી. વિશિષ્ટ વિચારપ્રવાહ, ભાષાના જૂના રૂપો અને કેટલાક વર્ણનો એ બધું મૂળ આગમો ગણધરોએ રચ્યા છે એવી જૈન પરંપરાનું સમર્થન કરે છે. એની રચનાનો સમય એટલે ભગવાન મહાવીરની નજીકનો સમય છે.

આ સમય એટલે દીર્ઘ તપસ્વી મહાવીરે જીવનમા ઉતારેલ અહિંસાપ્રધાન આચાર અને અનેકાંતપ્રધાન વિચારસરણીની સ્થાપનાનો સમય. એ સમયમા મહાવીરના જીવંત આચાર અને પોતપોતાના જીવનમા ઉતારી સ્વસિદ્ધાંત સ્થાપવાની જ ભાવના શિષ્યોમા મુખ્ય હતી આંતરિક યોગ્યતાને જ માન અપાતુ અને તે રીતે ક્રાંતિનુ કામ ચાલતુ. પોતાને વિરુદ્ધ લાગતા આચાર અને વિચારોનુ નિરસન આદર્શ જીવનથી થતુ, માત્ર શબ્દથી નહિ. એ વખતે ભગવાન મહાવીરના સિદ્ધાંતના રચનાત્મક કાર્યની જ મુખ્યતા હતી અને વિરોધી મંતવ્યોના ખંડનાત્મક કાર્યની ગૌણતા હતી અનુયાયીઓની સંખ્યા કરતા યોગ્યતાના પ્રમાણ તરફ વધારે ધ્યાન અપાતુ, ને તે રીતે સ્વપક્ષના નિર્માણનુ કાર્ય ચાલતુ પોતાના સિદ્ધાંત ઉપરની અચળ અને જાગતી શ્રદ્ધાને લીધે જો કે તે પ્રચલિત અને જ્ઞાત જમાનાના અનેક આચાર-વિચારવિષયક મંતવ્યોના સંબંધમાં પોતાનો વિરોધ સ્પષ્ટપણે બતાવવામાં આવતો, છતાં તે વિરોધી મંતવ્ય ધરાવનાર વ્યક્તિ કે સમુદાય વિશે દ્વેષવૃત્તિ ન કેળવતાં માત્ર ઉદાસીનતા દાખવવામાં આવતી.

ભાષ્ય, ચૂર્ણિ અને ટીકા એમાં નિર્યુક્તિ એ પ્રાચીન છે. નિર્યુક્તિના કર્તા આચાર્ય ભદ્રબાહુ મનાય છે. તેઓ મૌર્યસમ્રાટ ચંદ્રગુપ્તના સમકાલીન હતા. એ સમય એટલે ભગવાન મહાવીરના નિર્વાણ બાદ ૧૦૦ વર્ષ વ્યતીત થઈ ગયા પછીનો સમય. આ વખતે પ્રથમની પરિસ્થિતિ સંપૂર્ણપણે રહી ન હતી. એ સમયમાં સિદ્ધાંત સ્થાપનના કાર્ય સાથે પ્રથમ સ્થપાયેલ સ્વપક્ષના રક્ષણનું કાર્ય પણ આવી પડ્યું હતું અને તેટલા જ માટે વિરોધી પક્ષની હરીફાઈમાં ઊતરવાનું અને બનતે પ્રયત્ને તેને પરાસ્ત કરવાનું કાર્ય પણ ઉપસ્થિત થયું હતું. રાજસભામાં જવાનો અને રાજ્યાશ્રયમાં પક્ષની સલામતી જોવાનો પરાશ્રયી પ્રસંગ સહુને સમાન રીતે પ્રાપ્ત થયો હતો. પરપક્ષના વિજયમાં જ સ્વપક્ષનું તેજ છે એમ માનવા તથા મનાવવાની પરાવલંબી પ્રથા બધા સંપ્રદાયોમાં શરૂ થઈ હતી. વિરોધી મત ધરાવનાર વ્યક્તિ કે સમૂહની અવમાનના થાય એવા ભાવ અને અગ્નિનો જન્મ થઈ ગયો હતો. તત્કાલીન કોઈ પણ સંપ્રદાય એ પરિસ્થિતિથી મુક્ત ન હતો, જોકે હજી મધ્યકાળની સાંપ્રદાયિક કટુતા દાખલ થઈ ન હતી. તથાપિ સ્વપક્ષરાગ અને તજ્જન્ય પરપક્ષદ્વેષનું વિષ પણ [illegible] તૈયાર થયું હતું.

વાતો એ નિર્યુક્તના સંક્ષિપ્ત સૂચનોનો વિવિધ વિસ્તાર અને પુરવણી માત્ર છે. ભાષ્ય, ચૂર્ણિ અને ટીકાની રચના મધ્યકાળમાં થયેલી હોવાથી તેમા તે વખતના બ્રાહ્મણપુરાણની સાંપ્રદાયિક કટુકતા નજરે પડે છે અને પ્રાચીન આગમની તટસ્થતા ઓછી થાય છે.

ચરિત, ખંડનાત્મક અને તર્ક એ ત્રણ વિભાગના સાહિત્યની રચના પણ મધ્યકાળમા થયેલી હોવાથી તે સાહિત્ય એ વખતે પ્રસરેલ સાપ્રદાયિકતાની વિષવલ્લીના કટુકતમ ફળોથી મુક્ત રહે એ સંભવિત ન હતુ

આ બધી સાપ્રદાયિકતાના કેટલાક નમૂનાઓ માત્ર ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ આગળ આપવા ધાર્યા છે. પરંતુ તે આપતા પહેલા તેને વધારે સ્પષ્ટ રીતે સમજવા ખાતર કેટલીક અગત્યની હકીકત પ્રથમ જ જણાવી દેવી યોગ્ય ધારી છે

(૧)

બ્રાહ્મણ વર્ણની ઉત્પત્તિ[1]

તત્ત્વજ્ઞાન અને આચારને લગતી ઘણી બાબતો વિશે વૈદિક અને જૈન દર્શન વચ્ચે પ્રબળ મતભેદ છે, પંરતુ એ બધી બાબતોમા યાજ્ઞિક હિંસા એ મુખ્ય મતભેદની બાબત છે અને તેને લીધે જ વેદનુ પ્રામાણ્ય તથા બ્રાહ્મણ

૧. બ્રાહ્મણ શબ્દની ઉત્પત્તિ વિશે જૈનોની કલ્પના ખાસ ધ્યાન ખેંચે છે. ભરતે પોતાને કર્તવ્યનુ ભાન કરાવવા ખાતર વ્રતધારી શ્રાવકોને હમેશા પોતાને દરવાજે બેસી જે "માહણ માહણ" શબ્દ ઉચ્ચારવા કહેલુ તે જ શબ્દ માથી બ્રાહ્મણ નામની ઉત્પત્તિ થઈ છે એ એક જ કલ્પના અન્ય શ્વેતામ્બર ગ્રંથોમા છે જ્યારે નામ [illegible]ની કલ્પના પઉમચરિયમા તદ્દન જુદી જ છે એમા બ્રાહ્મણ નામની ઉત્પત્તિ તો માહણ શબ્દમાથી જ બતાવવામા આવી છે પણ એ માહણ શબ્દ જુદા જ ભાવમા ત્યા યોજાયો છે. જ્યારે ઋષભ દેવની ભવિષ્યવાણીથી લોકોને માલુમ પડ્યું કે ભરતે સ્થાપેલ બ્રાહ્મણો [illegible] આગળ જતાં અભિમાની થઈ સાચો માર્ગ લોપશે ત્યારે લોકોએ એઓને મારવા (પીટવા) માડ્યા એ લોકોને मा (न) हण (મારો) એમ કહી ઋષભે [illegible] ત્યારથી પ્રાકૃતમા माहण અને સંસ્કૃતમા બ્રાહ્મણ નામ પ્રચલિત [illegible] આદિપુરાણમા વળી દ્વિજ નામને ધટાવતાં કહેવામા આવ્યું છે કે [illegible]

વર્ણનું જન્મસિદ્ધ શ્રેષ્ઠત્વ એ પણ મતભેદની મુખ્ય બાબતો થઈ પડી છે. વૈદિક દર્શન સાથે જૈન દર્શનની પેઠે બૌદ્ધ દર્શનનો પણ આ ત્રણ બાબત પરત્વે મતભેદ છે જ. વેદના પ્રામાણ્ય વિશે બૌદ્ધો અને જૈનોનો સમાન મતભેદ હોવા છતાં તેમાં થોડો તફાવત પણ છે અને તે એ કે જ્યારે જૈન ગ્રંથો હિંસાપ્રધાન વર્તમાન વેદોને કલ્પિત માની તેની ઉત્પત્તિ પાછળથી માને છે અને અસલી વેદો લુપ્ત થયાનું કહે છે ત્યારે બૌદ્ધો એ વિષયમાં કશું કહેતા હોય એમ અદ્યાપિ જણાયું નથી. યજ્ઞોમાં ચાલતી પશુહિંસાના વિરોધનો વખત આવતાં જ બ્રાહ્મણ વર્ણના જન્મસિદ્ધ શ્રેષ્ઠત્વ અને વેદના પ્રામાણ્યનો પ્રશ્ન ઉપસ્થિત થયો. બ્રાહ્મણ એ માત્ર જન્મથી ઉચ્ચ નથી; ઉચ્ચતાનો આધાર ગુણ-કર્મની યોગ્યતા છે. ચંડાળકુળમાં જન્મેલ પણ જો ગુણ-ધર્મ વડે બ્રાહ્મણ જેટલો ઉચ્ચ હોઈ શકે—એ મતનું વૈદિક બ્રાહ્મણો પ્રત્યે થયેલું જૈનોનું આક્રમણ આપણે ઉત્તરાધ્યયન નામના જૈન આગમના હરિકેશબલ નામના અધ્યયનમાં જોઈએ છીએ. એ જ આગમના યજ્ઞીય નામક પચીસમા અધ્યયનમાં પણ તે જ મતનું સમર્થન છે. ધર્મ-માર્ગમાં ચારે વર્ણનો સમાન અધિકાર સ્થાપવા જતાં જૈનોએ [illegible] બ્રાહ્મણવર્ણની જન્મસિદ્ધ ઉચ્ચતાનો વિરોધ કર્યો [illegible] માની બ્રાહ્મણોએ તેમને નાસ્તિક, વેદનિંદક [illegible] આ સંઘર્ષ [illegible] બ્રાહ્મણો [illegible] જૈનોના પ્રતિ [illegible] સંઘર્ષનું પરિણામ [illegible] પ્રાચીનતા [illegible]

છે, અને ચરિતવિભાગમાં શ્રીવિમલસૂરિકૃત પઉમચરિય[૪] તથા આચાર્ય હેમચંદ્રનુ ત્રિષષ્ટિશલાકાપુરુષચરિત્ર[૫] છે દિગંબરીય સાહિત્યમા એ વર્ણન માટે પદ્મપુરાણ[૬] અને આદિપુરાણ[૭] મુખ્ય છે

એ ગ્રંથોમાના બ્રાહ્મણવર્ણની ઉત્પત્તિના વર્ણનનો ટૂંક સાર આ પ્રમાણે છે.

(क) આવશ્યકવૃત્તિ

પોતાના ભાઈઓએ પ્રવ્રજ્યા લીધી છે એ જાણી ચક્રવર્તી ખિન્ન થયો તેણે ધાર્યું કે હુ વૈભવ આપું તો કદાચ તેઓ સ્વીકારશે એમ ધારી વૈભવ ભોગવવા તેઓને પ્રાર્થના કરી, પણ જ્યારે તેઓએ ત્યક્ત ભોગોનો સ્વીકાર ન કર્યો ત્યારે ભરતે વિચાર્યું કે આ નિઃસગ ભ્રાતૃમુનિઓને આહાર

---

૪ આ ગ્રંથના લેખક વિમલસૂરિનો સમય હજી નિશ્ચિત થયો નથી પ્રો. યાકોબીનુ કહેવુ છે કે તે ચોથા સૈકાથી જૂના નથી [જો કે ગ્રંથકારના લખ્યા પ્રમાણે તેઓ વિક્રમના પહેલા સૈકામા થએલા હોવા જોઈએ] પદ્મપુરાણ એ પઉમચરિયનુ અનુકરણ છે એમ કેટલાક માને છે એ મતવ્ય સાચુ હોય તો પદ્મપુરાણના લેખક રવિષેણ, જેઓ વિક્રમના સાતમા–આઠમા સૈકામા થયા છે તે, પહેલા પઉમચરિયના કર્તા વિમલસૂરિ ક્યારેક થયા હોવા જોઈએ

૫ આ ચરિત્રગ્રથમા આચાર્યે ત્રેસઠ મહાન જૈન પુરુષોના જીવન આલેખેલા છે, તેથી તે ત્રિષષ્ટિશલાકાપુરુષચરિત્ર કહેવાય છે

૬ આ ગ્રથના લેખક દિગબરાચાર્ય રવિષેણ છે જેઓ વિક્રમના સાતમા–આઠમા સૈકામા થઈ ગયા છે તે વિશે જુઓ विद्वद्रत्नमाला (નાથુરામજી પ્રેમી લિખિત) પૃ ૪૩

૭. આ ગ્રંથ દિગંબરાચાર્ય જિનસેનનો બનાવેલો છે જેઓ વિક્રમના નવમા સૈકામા પ્રસિદ્ધ જૈન રાજા અમોઘવર્ષના સમકાલીન હતા આદિપુરાણ એ મહાપુરાણનો પૂર્વભાગ છે તેનો ઉત્તરભાગ ઉત્તરપુરાણ છે આદિપુરાણમાં શ્રી ઋષભદેવજીનું વર્ણન છે ઉત્તરપુરાણમાં બાકીના તીર્થંકરોનું

ઉત્તરપુરાણ ગુણભદ્રસ્વામીએ રચ્યુ છે ભટ્ટારક જિનસેનના શિષ્ય હતા અને તેમનો સમય વિક્રમનો નવમો સૈકો ગણવામા આવે છે. જિનસેન અને ગુણભદ્ર સ્વામીના સમય, ગ્રંથો આદિ વિશે વધારે માહિતી મેળવવા ઇચ્છનારે વિદ્વદ્રત્નમાળાનો પહેલો ભાગ જોવો

આપી ધર્માનુષ્ઠાન કરું. એ વિચારથી તેણે વિવિધ આહાર ભરેલાં પાંચસો ગાડાં મંગાવ્યાં, પણ યતિઓને તેવો સ્વનિમિત્ત બનેલો અર્થાત્ સદોષ આહાર ન ખપે એમ જ્યારે તેણે જાણ્યું ત્યારે વળી બીજા તદ્દન નિર્દોષ આહાર માટે તે યતિઓને આમન્ત્ર્યા. રાજપિંડ (રાજઅન્ન) પણ યતિઓ ન લે, એમ જ્યારે તેણે ભગવાન પાસેથી જાણ્યું ત્યારે તે બહુ ઉદ્વિગ્ન થયો અને વિચારવા લાગ્યો કે ભગવાને તો મને દરેક રીતે તજી જ દીધો છે. તે વખતે ભગવાન ઋષભદેવ પાસે ઉપસ્થિત થયેલ ઇન્દ્રે ભરતને ખિન્ન જોઈ તેને શાંત કરવા અવગ્રહની ચર્ચા ઉપાડી. ભરતે છેવટે વિચાર્યું કે બીજું કાંઈ નહિ તો આ ભિક્ષુકોને મારા દેશમાં વિચરવાની અનુમતિ આપી કૃતાર્થ થાઉં. એ વિચારથી તેણે પોતાના દેશમાં વિચરવાની ભિક્ષુકોને અનુમતિ આપી અને ત્યાં હાજર રહેલ ઇન્દ્રને પૂછ્યું કે આ અહીં આણેલ અન્નપાણીનું શું કરું? ઇન્દ્રે જવાબ આપ્યો કે એ અન્નપાણી ગુણશ્રેષ્ઠ પુરુષોને આપી તેઓનો સત્કાર કર. વધારે વિચારતાં ભરતને જણાયું કે સાધુ સિવાય તો [illegible] શ્રાવકો જ શ્રેષ્ઠ છે, કારણ કે તેઓ વિરત (ત્યાગધર્મી) છે અને વિરત હોવાથી ગુણશ્રેષ્ઠ છે. માટે એ વિચારથી તે અન્નપાન તેઓને જ આપી દીધું. વળી ભરતે શ્રાવકોને બોલાવી કહ્યું કે તમારે દરરોજ મારે ત્યાં જ અન્નપાન લેવું, ખેતી આદિ કામ ન કરવા અને શાસ્ત્રાભ્યાસમાં પરાયણ રહેવું. ખાધા પછી મારા દરવાર પાસે એની ઘોષણા કરો કે 'જિતો ભવાન્ વર્ધતે ભયં તસ્માત્ મા હન મા હન', અર્થાત્ આપ જિતાયા છો, ભય વધે છે, માટે આત્મગુણને ન હણો. એ શ્રાવકોએ તેમ જ કર્યું. શ્રાવકોના [illegible] અતિપાદનના [illegible] ભરતને સમજાયું કે [illegible] આદિ દોષોથી જિતાયો છું [illegible] છે. આથી આલોચનાથી તેને [illegible]

શિક્ષાવ્રત હોય છે. જ્યારે પાચકોએ આવા દ્વાદશ વ્રતધારી શ્રાવકોની ભરતને સૂચના કરી, ત્યારે ભરતે કાકિણીરત્ન વડે તેઓને ચિહ્ન કર્યું. ૭ ૭ મહિને પરીક્ષા કરી જે શ્રાવકો જણાયા તેઓને ચિહ્ન કર્યું. એ રીતે ચિહ્નવાળા તે જ બ્રાહ્મણો થયા. એ લોકો પોતાના છોકરાઓ સાધુઓને આપતા. તેમાંથી કેટલાક દીક્ષા લેતા અને જે ન લેતા તે શ્રાવક જ રહેતા. ભરતે શ્રાવકોને જમાડેલ, તેથી બીજા પણ લોકો તેઓને જમાડવા લાગ્યા. તેઓના સ્વાધ્યાય માટે ભરતે અર્હત્સ્તુતિ તથા મુનિ અને શ્રાવકોની સામાચારીવાળા (આચારપ્રથાવાળા) વેદો રચ્યા તેઓની કાકિણીરત્નની રેખા એ જ યજ્ઞોપવીત થઈ અને ક્રમે બધા 'મા હન'ને બદલે બ્રાહ્મણ કહેવાયા એ જ શ્રાવકો તે મૂળ બ્રાહ્મણ. આ મર્યાદા ભરતરાજ્યના વખતની

ત્યાર બાદ તેનો પુત્ર આદિત્યયશા થયો તેણે કાકિણીરત્ન ન હોવાથી સોનાની યજ્ઞોપવીત ચલાવી પછી મહાયશ વગેરે રાજાઓમાંથી કોઈએ રૂપાની અને કોઈએ વિચિત્રપટ્ટસૂત્રની જનોઈ ચલાવી. આ બ્રાહ્મણધર્મ આઠ પેઢી સુધી બરાબર ચાલ્યો આ ક્રમ અર્થાત્ ભરતે નિર્માણ કરેલી બ્રાહ્મણસૃષ્ટિ અને તેઓ માટે રચેલ આર્ય વેદો સુવિધિ નામક નવમા તીર્થંકર સુધી ચાલ્યાં. અનાર્ય વેદો તો પાછળથી સુલસ, યાજ્ઞવલ્ક્ય વગેરેએ બનાવેલા છે.

(પૃ ૧૫૬ થી ૧૫૮)

આ જ વસ્તુ સવિશેષ વિસ્તૃત અને આલંકારિકરૂપે ત્રિષષ્ટિશલાકાપુરુષચરિત્રમા વર્ણવાયેલી છે (જુઓ ગુજરાતી અનુવાદ પૃ ૨૨૩ થી ૨૨૭)

(ख) ત્રિષષ્ટિચરિત્ર

બ્રાહ્મણત્વનું પતન શ્રી સુવિધિસ્વામીના[૯] નિર્માણ પછી કેટલોક કાળ જતા કાળના દોષથી સાધુઓનો ઉચ્છેદ થઈ ગયો પછી જેમ માર્ગભ્રષ્ટ થયેલા વટેમાર્ગુઓ બીજા જાણીતા મુસાફરોને માર્ગ પૂછે તેમ ધર્મના અજ્ઞ લોકો સ્થવિર શ્રાવકોને ધર્મ પૂછવા લાગ્યા તેઓ પોતાને અનુસારે ધર્મ કહેવા લાગ્યા એવી રીતે પૂજા થવાથી દ્રવ્યાદિકમાં લુબ્ધ થઈને એ સ્થવિર શ્રાવકોએ તત્કાળ નવા કૃત્રિમ શાસ્ત્રો રચી તેમા વિવિધ જાતના મોટાં ફળવાળાં દાનો વર્ણવ્યાં તેમા પ્રતિદિન દ્રવ્યાદિકમા લુબ્ધ થઈને તેઓએ આ લોક તથા પરલોકમાં નિશ્ચિત મોટા ફળવાળાં કન્યાદાન, પૃથ્વીદાન, લોહદાન, તિલદાન, કપાસદાન, ગોદાન, સુવર્ણદાન, રૂપ્યદાન, ગૃહદાન, અશ્વદાન,

૯. જૈનોના ચોવીસ તીર્થંકરો પૈકી નવમા

ગજદાન અને શય્યાદાન વગેરે વિવિધ દાનોને મુખ્યપણે ગણાવ્યાં. અને મોટી ઇચ્છાવાળા તેમ જ દુષ્ટ આશયવાળા તેઓએ તે સર્વ દાન દેવા માટે યોગ્યપાત્ર પોતે છે અને બીજા અપાત્ર છે એમ જણાવ્યું. એવી રીતે લોકોની વંચના કરતાં છતાં-પણ તેઓ લોકોના ગુરુ થઈ પડ્યા વૃક્ષ વગરના દેશમા એરંડા-ના વૃક્ષને પણ લોકો વેદિકા રચાવે છે!

એવી રીતે શ્રી શીતલસ્વામીનુ[૧] તીર્થ પ્રવર્તતા સુધી આ ભરતક્ષેત્રમા સર્વ પ્રકારે તીર્થોચ્છેદ રહ્યો તેથી તે વખતમા રાત્રિએ ઘુવડ પક્ષીની જેમ કનિષ્ઠ બ્રાહ્મણોએ આ ભરતક્ષેત્ર ઉપર પોતાનુ એકછત્ર રાજ્ય ચલાવ્યું તે પછી બીજા ૭ જિનેશ્વરોના અંતરમા પણ, એટલે શાંતિનાથના અંતર સુધી, એવી રીતનું આંતરે આંતરે મિથ્યાત્વ પ્રવર્ત્યું અને તીર્થનો ઉચ્છેદ થવાથી તે સમયમા મિથ્યાદષ્ટિઓનો અસ્ખલિત પ્રચાર થયો (ત્રિષષ્ટિશલાકાપુરુષ ચરિત્ર ગુજરાતી ભાષાંતર પૃ. ૭૮)

(ग) पउमचरिय

શ્રી ઋષભદેવે ગામ-નગરાદિ વસાવી તેમની રક્ષા માટે જે વર્ગ યોજ્યો તે ક્ષત્રિય નામે પ્રસિદ્ધ થયો વ્યાપાર, ખેતી, પશુપાલન આદિ કરનારો વર્ગ તે વૈશ્ય તરીકે પ્રસિદ્ધ થયો અને જેઓ બીજાની આજ્ઞા ઉઠાવનાર તથા નીચકર્મરત હતા તે શૂદ્રવર્ગમા ગણાયા તેના અનેક ભેદો હતા. (તૃતીય ઉ ગા ૧૧૭ થી ૧૧૯ [illegible] ૧૨)

વ્રતધારી શ્રાવકોનો સત્કાર કર્યો હતો તેઓ શ્રી મહાવીરના અવસાન પછી કુતીર્થ પ્રવર્તક થશે. મિથ્યા વચનથી વેદ નામક શાસ્ત્ર રચી તે દ્વારા યજ્ઞમાં પશુવધ કરશે અને અનેક આરંભપરિગ્રહમાં બંધાઈ પોતે જ મૂઢ બની લોકોને મોહમા નાંખશે.”

આ વચન સાંભળી ભરત કુપિત થયો ને તે અભિમાની શ્રાવકોને નગર બહાર કરવા લોકોને કહ્યુ લોકો પણ ચિઢાઈ એ ભાવી બ્રાહ્મણોને પથ્થર આદિથી મારવા માડ્યા એ બિચારા શ્રી ઋષભદેવને શરણે ગયા. શ્રી ઋષભ દેવે ભરતને વારી કહ્યું **मा हण** અર્થાત્ એઓને ન હણ. ત્યારથી તેઓ માહણ (બ્રાહ્મણ) તરીકે પ્રસિદ્ધ થયા

જેઓ સૌ પહેલા પ્રવ્રજિત થઈ પાછા પ્રવ્રજ્યાથી ભ્રષ્ટ થયા હતા તેઓ જ તાપસ અને પાખડી થયા તેઓના જ ભૃગુ, અગીરા વગેરે શિષ્ય-પ્રશિષ્ય લોકોને કુશાસ્ત્રોથી મોહ પમાડતા સસારનુ બીજ થયા (જુઓ ચતુર્થ ઉ ગા. ૬૮ થી ૮૮ પૃ ૧૭)

(ઘ) પદ્મપુરાણ

આના પૃ. ૩૮ તથા પૃ ૪૬ મા પઉમચરિયની હકીકતને જ વિશદ કરી વર્ણવી છે તેમાં એટલુ ઉમેર્યું છે કે ભ્રષ્ટ વલ્કધારી તાપસો- માથી જ પરિવ્રાજક-દડિમત, સાંખ્ય-યોગમત પ્રવર્ત્યો

(च) આદિપુરાણ

ભગવાન ઋષભદેવે અસિ (શસ્ત્રધારણ), મષિ (લેખન), કૃષિ (ખેતી) વિદ્યા વાણિજ્ય અને શિલ્પ એ છ કર્મો વડે આજીવિકા કરવાનો લોકોને ઉપદેશ કર્યો, તે વખતે તેઓએ ત્રણ વર્ણ સ્થાપ્યા શસ્ત્ર ધારણ કરનાર ક્ષત્રિય કહેવાયા. ક્ષત્રિય અને વૈશ્યની સેવા કરનાર તે શૂદ્ર કહેવાયા શૂદ્રો પણ કારુ –અકારુ એમ બે પ્રકારના થયા ધોબી, હજામ વગેરે કારુ અને તે સિવાયના અકારુ કારુમાં પણ જે પ્રજાબાહ્ય તે અસ્પૃશ્ય અને બાકીના સ્પૃશ્ય થયા. દરેક વર્ણવાળા પોતપોતાનુ નિયત જ કર્મ કરતા. વિવાહ, જાતિસંબંધ આદિ બધો વ્યવહાર અને બધી નિર્દોષ આજીવિકા શ્રી ઋષભદેવે નક્કી કર્યા પ્રમાણે જ ચાલતા (પર્વ ૧૬ શ્લોક ૧૭૯ થી ૧૮૮)

ભગવાનના વર્ણનમાં—તે ઋષભદેવ ગંગાને હિમાલય ધારણ કરે તેમ કંઠમાં હાર, કેડમાં કટિસૂત્ર અને ખભે યજ્ઞોપવીત (જનોઈ) ધારણ કરતા શોભતા. (શ્લોક ૨૩૫)

ભગવાને પોતે હાથમાં શસ્ત્ર ધારણ કરી ક્ષત્રિયોનુ કર્મ, જંઘાથી યાત્રા કરી બતાવી વૈશ્યનુ કર્મ અને પગથી ચાલી શૂદ્ર કર્મા બતાવ્યું.[૧] આ ત્રણે વર્ણો ઋષભદેવે બનાવ્યા પાછળથી ભરતે શાસ્ત્રનું પાઠન કરાવી બ્રાહ્મણો બનાવ્યા અને દરેકના કર્મ, વ્યવહાર વગેરે નક્કી થયા તેથી પ્રથમની ભોગભૂમિ તે હવે કર્મભૂમિ થઈ (પર્વ ૧૬ શ્લો ૨૪૨ થી ૨૪૯)

ગૌતમે કહ્યુ, "હે શ્રેણિક! હુ અનુક્રમે બ્રાહ્મણોની ઉત્પત્તિ કહુ છું. તુ સાભળ ભરત દિગ્વિજય કરી પાછો ફર્યો ત્યારે તેને વિચાર થયો કે આ બધું ધન જૈન મહામહ યજ્ઞમા વાપરી વિશ્વને સંતુષ્ટ કરું. મુનિઓ તો નિસ્પૃહ છે. ગૃહસ્થોમા જે દાન, માન યોગ્ય હોય તેનો જ સત્કાર કરવો જોઈએ એવા યોગ્ય તો અણુવ્રતધારી શ્રાવકો જ છે. આ વિચારથી એવા શ્રાવકોની પરીક્ષા કરવા ભરતે ઉપસ્થિત રાજાઓને પોતપોતાના પરિવાર સાથે જુદા જુદા આવવા આમંત્ર્યા બીજી બાજુ ભરતે પોતાના મહેલના આંગણામા લીલી વનસ્પતિ, ફળ-ફૂલ આદિ ફેલાવ્યા અને દરેક આગંતુકને તે રસ્તે થઈ મહેલમા આવવા કહ્યુ. જેઓ અવ્રતી હતા તેઓ એ વનસ્પતિ ખૂંદી બેધડક મહેલમા ચાલ્યા ગયા. પણ કેટલાક તો બહાર જ ઊભા રહ્યા ભરતે તેઓને પણ અંદર આવવા કહ્યુ, પરંતુ તેઓએ સચિત્ત વનસ્પતિ ખૂંદી અંદર આવવા ના પાડી. ભરત તેઓને વ્રતધારી જાણી બીજે માર્ગેથી મહેલમા લાવ્યો. અને અનેક રીતે તેઓનો સત્કાર કર્યો. તેમ જ વ્રતની નિશાની તરીકે પદ્મનિધિમાંથી જનોઈ મંગાવી તે વડે તેઓને ચિહ્નિત કર્યા [illegible] [illegible] ને બે [illegible] અગિયાર [illegible] પ્રતિમા [illegible] હતા તેને એક, [illegible] હતી તેને બે, [illegible] પ્રતિમા હતો તેને [illegible] સુધી ચિહ્નિત કર્યા [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

ભરતે ઉપાસકાધ્યયન નામના સાતમા અંગ શાસ્ત્રમાંથી તે વ્રતીઓને ઇજ્યા (પૂજા), વાર્તા, દત્તિ,[1] સ્વાધ્યાય, સંયમ અને તપનો સવિસ્તાર ઉપદેશ આપ્યો. એમાં તેણે અનેક જાતના જૈન યજ્ઞો, દાનના પ્રકારો વગેરે સમજાવ્યા અને છેવટે જણાવ્યું કે જે જાતિ (જન્મ) થી દ્વિજ હોય, પણ તપ અને શ્રુતના સંસ્કાર ન મેળવે તો તે નામનો જ દ્વિજ કહેવાય તપ અને શ્રુતના સંસ્કાર મેળવનાર જાતિદ્વિજ એ જ ખરો દ્વિજ બને છે. એ દ્વિજોના સંસ્કાર દૃઢ કરવા ભરતે શ્રાવકાધ્યાયસંગ્રહમાંથી ત્રણ પ્રકારની ક્રિયાઓ ઉપદેશી ગર્ભાન્વય, દીક્ષાન્વય અને કર્ત્રન્વય એ ત્રણમા પહેલીના ૫૩, બીજીના ૪૮ અને ત્રીજીના ૭ પ્રકારો ભરતે બહુ વિસ્તારથી[2] કહી સભળાવ્યા એ

૧. દાન આપતાં એક વાર એક સાથે જેટલુ આપવામાં આવે તે એક દત્તિ, એમ બીજી વાર જેટલુ એક જ સાથે અપાય તે બીજી દત્તિ

૨ ગર્ભાધાનથી માંડી મોક્ષપ્રાપ્તિ સુધી ૫૩ સંસ્કારો કરવામા આવે છે. તે બધા ગર્ભાન્વય ક્રિયામાં ગણાય છે આવી જાતના સોળ સસ્કારો અને તેથી વધારે પણ સંસ્કારો બ્રાહ્મણ શાસ્ત્રમા વર્ણવાયેલા છે વ્રતના સ્વીકારથી માંડી મોક્ષપ્રાપ્તિ સુધી આચરવાની વિભાગવાર ક્રિયાઓ દીક્ષાન્વય ક્રિયા કહેવાય છે, જે અડતાલીસ છે એ રીતે સાત કર્ત્રન્વય ક્રિયાઓ પણ છે, જેને મોક્ષમાર્ગનો આરાધક મેળવે છે આ બધી ક્રિયાઓનું વિસ્તૃત વર્ણન ખાસ જોવા જેવું છે. તેમા સમગ્ર બ્રાહ્મણીય વર્ણાશ્રમ વ્યવસ્થાની છાપ છે (જુઓ આદિપુરાણ, પર્વ ૩૮–૩૯–૪૦)

ક્રિયામાં દૃઢ થયેલા પોતાના સ્થાપેલા દ્વિજો (શ્રાવકો)ને જોઈ ભરત પ્રસન્ન થયો.

દુ:સ્વપ્નનું ફળ : બ્રાહ્મણપૂજા—

એકવાર ભરતને કેટલાક દુસ્વપ્ન આવ્યાં. તેનુ અનિષ્ટ સામાન્ય રીતે તેણે જાણ્યું, છતા વધારે ખુલાસા માટે ભગવાન ઋષભદેવ પાસે જઈ એ સ્વપ્નો તેણે કહી સંભળાવ્યાં

એ વિલક્ષણ સ્વપ્નોમા એક સ્વપ્ન એવુ હતુ કે નૈવેદ્ય ખાતા શ્વાનની લોકો પૂજા કરે છે આ સ્વપ્નનુ ફળ જણાવતા ભગવાને કહ્યું કે જે અવ્રતી બ્રાહ્મણ હશે તેઓ ગુણી અને વ્રતીની પેઠે સત્કાર પામશે આ ફળશ્રુતિ કહ્યા પહેલાં ભગવાને ભરતને તેણે સ્થાપેલ બ્રાહ્મણ વર્ગ વિશે માર્મિક વિચારો સંભળાવ્યા. તેઓએ કહ્યું, "હે વત્સ! તેં ધર્માત્મા આ દ્વિજોની સાધુઓની પેઠે જે પૂજા કરી તે બહુ જ સારું કર્યું, પણ તેમા જે થોડો દોષ છે તે સાંભળ તેં જે ગૃહસ્થોની રચના કરી છે તે, કૃતયુગ હશે ત્યાંસુધી તો,

પોતપોતાના યોગ્ય આચરણો કરતા હશે, પરંતુ કળિયુગ નજીક આવતાં જ તેઓ બ્રાહ્મણજાતિના અભિમાનથી સદાચારભ્રષ્ટ થઈ મોક્ષમાર્ગના વિરોધી બની જશે. કળિયુગમાં પોતાની મહત્તાના અભિમાનમાં ફસાઈને એ લોકો ધનની ઇચ્છાથી મિથ્યાશાસ્ત્ર દ્વારા સર્વ લોકોને મોહિત કરતા રહેશે

'આદરસત્કારથી અભિમાન વધવાને લીધે તેઓ ઉદ્ધત થઈ મનગમતાં શાસ્ત્રો રચી લોકોને ઠગ્યા કરશે.

'આ અધાર્મિક બ્રાહ્મણો આગામી કાળમાં થશે અને, ખાસ બ્રાહ્મણોને પસંદ કરશે અને પ્રવૃત્તિરૂપ ધર્મની ઘોષણા કરશે. તેઓ અહિંસાધર્મના હેતુ બતાવી વેદોક્ત માર્ગને પોતાને પાપનિવારણરૂપ દર્શાવી ખોટું કરનારા તેઓ મિથ્યાત્વી થઈ ભવિષ્યમાં આ મોક્ષમાર્ગના વિરોધી થશે.

જાતીય. સજાતીયની વસ્તુ સ્વીકારવામાં દોષ નથી. ભરત કહે છે કે રાજાઓ આ પ્રમાણે નહિ વર્તે તો અન્ય મતવાળાઓ (બ્રાહ્મણો) મિથ્યાપુરાણનો ઉપદેશ કરી તેઓને ઠગી લેશે. (પર્વ ૪૨ પૃ. ૧૪૮૫ થી આગળ)

જૈન અગ્નિહોત્રનો ઉપદેશ

ભગવાનના નિર્વાણોત્સવ પછી ઇંદ્ર અને દેવોએ શ્રાવક બ્રહ્મચારીઓને ઉપદેશ આપતાં કહ્યુ કે તમારામાંથી જેઓ ઉપાસકાધ્યયન નામક સાતમા અંગના અભ્યાસી હોય અને સાતમી, આઠમી, નવમી, દશમી તેમ જ અગિયારમી પ્રતિમાના ધારક હોય તેઓએ ગાર્હપત્ય, પરમાહવનીયક અને દક્ષિણાગ્નિ નામના ત્રણ કુંડો કરી તેમાં ત્રિસંધ્ય અગ્નિ સ્થાપી જિનેંદ્રની સ્થાપના કરી પૂજા કરવી. તેથી તમો આદરસત્કાર પામી અતિથિપદ પામશો [પર્વ ૪૭ શ્લોક ૩૫૦ થી ૩૫૩ પૃ ૧૭૫૮]

(૨)

યજ્ઞમાં હિંસાની પ્રવૃત્તિ અને તેના પ્રતિપાદક વેદોની ઉત્પત્તિ

વૈદિકો કહે છે કે વેદ અપૌરુષેય હોઈ અનાદિ હોવાથી નિર્દોષ અને પ્રામાણિક છે. તે જ પ્રમાણભૂત પ્રાચીન વેદોમાં યાજ્ઞિક હિંસાનું વિધાન છે આની સામે જૈનો કહે છે કે યજ્ઞમાં હિંસાની પ્રવૃત્તિ પાછળથી થઈ છે, અને તેના પ્રતિપાદક વર્તમાન્ વેદો પણ પાછળથી જ રચાયા છે. પહેલાં તો દયામય યજ્ઞ થતો અને હિંસાવિધાન વિનાના આર્ય વેદો હતા.

હિંસાપ્રધાન અનાર્ય વેદો પાછળથી રચાયેલા છે. જૈનોનો આ પક્ષ શ્વેતામ્બર–દિગંબર બન્નેના ગ્રંથમાં છે. શ્વેતામ્બર ગ્રંથોમાં પઉમચરિય તથા ત્રિષષ્ટિશલાકાપુરુષચરિત્ર મુખ્ય છે અને દિગંબર ગ્રંથોમાં પદ્મપુરાણ તથા ઉત્તરપુરાણ[1] મુખ્ય છે. આ ગ્રંથોમાંનો પ્રસ્તુત પક્ષને લગતો ટૂંક સાર આ છે

(क) ત્રિષષ્ટિશલાકાપુરુષચરિત્ર

લાકડીઓના મારથી જર્જર થયેલ નારદે ‘ અન્યાય ! અન્યાય ! ’ એવો પોકાર કરી રાવણને કહ્યુ, “હે રાજન્ ! આ રાજપુર નગરમાં મરત નામનો રાજા છે. તે નિર્દય બ્રાહ્મણોના સહવાસથી યજ્ઞ કરવા પ્રેરાયો છે. તે માટે તેણે અનેક પશુઓને એકત્ર કર્યાં છે તેઓનો—પશુઓનો, પોકાર સાંભળી મને દયા આવી, તેથી આકાશમાંથી ઊતરી મેં મરતને પૂછ્યું કે ‘ આ શું આરંભ્યું છે ! ’ તેણે ઉત્તર આપ્યો : ‘ આ બ્રાહ્મણોએ કહ્યા પ્રમાણે દેવતૃપ્તિ અને સ્વર્ગપ્રાપ્તિ માટે ધર્મ્ય યજ્ઞ કરું છું, તેમાં પશુઓ હોમવાનાં છે.’

---

૧. આ ગ્રંથ ભટ્ટારક ગુણભદ્રની કૃતિ છે તે વિષે જુઓ પૃ ૬૫ પૃ. ૯૫ નોટ નંબર ૩

બન્નેને ફેંસલો આપનાર સત્યવાદી તરીકે પ્રસિદ્ધ થયેલ વસુ, અને પર્વતના પક્ષમાં ખોટો ચુકાદો આપવાથી આસન સાથે વસુનું નીચે ગબડી પડવું, અને નરકમા જવું—આટલી વસ્તુ ત્રિશષ્ટિશલાકાપુરુષચરિત્ર અને ઉત્તરપુરાણમાં સમાન છે. આ કથાવસ્તુના અંદરના પ્રસગોમા અને વર્ણનોમાં તે બન્ને ગ્રંથોમાં અલબત્ત ફેર છે, પણ વક્તવ્યમાં કશો જ ફેર નથી.

[પર્વ ૬૭, શ્લોક ૧૫૦ થી ૪૬૧ સુધી]

(ग) પદ્મપુરાણ

અજ શબ્દના અર્થ વિષે નારદ તથા પર્વતનો વિવાદ તથા વસુએ આપેલો પર્વતના પક્ષમાં ફેસલો અને ત્યારથી હિંસાત્મક યજ્ઞની પ્રવૃત્તિ થઈ છે એ મુદ્દો રવિષેણકૃત પદ્મપુરાણમાં પણ છે. એમા વક્તા ગૌતમ અને શ્રોતા શ્રેણિક રાજા છે. મુદ્દો એક જ હોવા છતા બીજી પ્રાસગિક વાતો અને અર્થઘટના થોડીઘણી ત્રિષષ્ટિશલાકાપુરુષચરિત્ર અને ઉત્તરપુરાણથી જુદી પડે છે.

पद्मपुराण—दोलतरामजी कृत हिंदी अनुवाद પૃ ૧૫૭ થી આગળ.

[घ] પદ્મપુરાણમાંનું બધું પ્રસ્તુત વર્ણન બરાબર પઉમચરિયને મળતું છે. એ બન્નેની કલ્પના, શબ્દસામ્ય વગેરે બહુ મળતુ છે. એ બન્ને ગ્રંથોમા પર્વત પોતે જ હિંસાત્મક યજ્ઞની પ્રવૃત્તિ કરે છે. પદ્મપુરાણમાં પર્વત તે જ જન્મમાં હિંસક યજ્ઞમાર્ગ પ્રવર્તાવે છે. અને પઉમચરિયમાં તે મરણ પામી રાક્ષસ થઈ પૂર્વજન્મના શત્રુ નારદનો બદલો લેવા હિંસક યજ્ઞ પ્રવર્તાવે છે. આ બન્ને ગ્રથોમાં મહાકાલ અસુરે પર્વત દ્વારા યજ્ઞવિધિ પ્રવર્તાવ્યાની વાત નથી, જેવી કે ઉત્તરપુરાણ અને ત્રિષષ્ટિશલાકાપુરુષચરિત્રમાં છે.

[પઉમચરિય એકાદશઉ. ગા. ૧ થી ૨૨ પૃ. ૬૨ થી.]

[ङ] મત્સ્યપુરાણ

ઉપર્યુક્ત જૈન વર્ણનનું મુખ્ય વસ્તુ નારદ અને પર્વતનો યજ્ઞમાં અહિંસા યા હિંસા વિષે વિવાદ તથા તેમાં વસુનું વચ્ચે પડવું, અને તેનું પર્વતના પક્ષપાતી થવું એ છે. આજ વસ્તુ મત્સ્યપુરાણમા છે, એમાં ફક્ત નારદ અને પર્વતને સ્થાને ઋષિ અને ઇંદ્ર છે. બાકી બધો પ્રસંગ એક સરખો છે. મત્સ્યપુરાણમાની એ વસુની કથા પ્રસ્તુત જૈનકથા સાથે સરખાવવા ટૂંકમાં નીચે આપવામાં આવે છે. આ સરખામણીમાં જેવરે વાચક જોઈ શકશે કે જૈન ગ્રથોમાં અને મત્સ્યપુરાણમાં જેવરે યાજ્ઞિકહિંસાને એકસરખી રીતે અવગણવામાં આવી છે અને તપને પ્રધાનતા આપવામા આવી છે. આટલી સમાનતા છતા એક મહત્ત્વનુ અંતર છે અને તે એક પ્રસ્તુત

પર્જન્ય, હવિધાનિ અને બીજાં અનેક રાજાઓ તપ દ્વારા સ્વર્ગે ગયા છે. રાજાઓ જ તપ વડે ઋષિ થઈ રાજર્ષિ કહેવાયા છે માટે દરેક રીતે જોતા યજ્ઞથી તપ જ ચઢી જાય છે. આ રીતે સ્વાયંભુવ સૃષ્ટિમા યજ્ઞપ્રવૃત્તિ થઈ ત્યારથી દરેક યુગો સાથે આ યજ્ઞ ચાલુ થયો છે.

[મન્વન્તરાનુકલ્પ-દેવર્ષિ સંવાદ નામક અધ્યાય પૃ ૨૭૦]

[૩]

આ લેખમા નવો મુદ્દો લઈ તે ઉપર ચર્ચા કરવા પહેલા ગયા લેખમાં લીધેલ 'યજ્ઞમાં હિંસાની પ્રવૃત્તિ અને તેના પ્રતિપાદક વેદોની ઉત્પત્તિ' એ બીજા મુદ્દા વિષે એક પ્રાસંગિક નોંધ કરવા ધારી છે અને તે એ કે ઉક્ત મુદ્દા પરત્વે જૈન સાહિત્યમાંથી અપાયેલી કથાઓમા નારદ, પર્વત અને વસુ નામનાં ત્રણ પાત્રો આવે છે. એ જ નામના ત્રણ પાત્રો વાલ્મીકિના રામાયણમાં પણ આવે છે આ ત્રિપુટીનુ નામસામ્ય છતા વાલ્મીકિની અને જૈન કથાની વસ્તુમાં કશું સામ્ય નથી સામ્ય હોય તો તે એટલુ જ કે એ નામનાં ત્રણ પાત્રો જેમ વાલ્મીકિના રામાયણમાં આવે છે તેમ જૈન કથામા પણ જૈન રામાયણમાં જ આવે છે. આ ઉપરથી લોકોમા કોઈ કાળે નારદ-પર્વત જેવા નામોની ખૂબ પ્રસિદ્ધિ હોવાનુ ભાન થાય છે. એ વાતની પુષ્ટિ વળી બીજા એક તેથીયે જૂના ઐતરેય બ્રાહ્મણમાના શુનઃશેપ આખ્યાનમા આવેલા નારદ-પર્વત નામયુગલના ઉલ્લેખથી થાય છે

દર્શનો અને તેના પ્રવર્તકોની ઉત્પત્તિ

વૈદિકધર્મમાથી જૈન, બૌદ્ધ આદિ સંપ્રદાયો કેવી રાતે નીકળ્યા એ હકીકત સૂચવતી અનેક આખ્યાયિકાઓ જુદા જુદાં પુરાણોમાથી લઈ આ લેખમાળાના પહેલા ભાગમા આપવામા આવી છે. જૈન સાહિત્યમાં પણ જૈન ધર્મમાથી જૈનેતર દર્શનો નીકળ્યાની તેવી જ વાતો મળે છે. તે આ લેખમાં આપવા ધારી છે. વૈદિક, પુરાણ અને જૈનસાહિત્યની વાતોમા એકજાતનું સામ્ય છતાં તેમાં અન્તર પણ મોટું છે. અને તે એ કે પુરાણની વાતો દેવ અને અસુરોની ઘટનાઓથી મિશ્રિત હોઈ માનવી બુદ્ધિને બુદ્ધિમાં ન આવે તેવા અલૌકિક છે, ત્યારે જૈન કથાઓ તેવી નથી. જોકે જૈનકથાઓ સંપૂર્ણ ઐતિહાસિક છે એમ તો તટસ્થ બુદ્ધિ ન જ કહી શકે, છતાં તેમાથી અપ્રાસંગિકતાનો ભાગ બાદ કરતા બાકીનો ભાગ ઐતિહાસિક બીના તેમા સમાયાનો સંભવ ખરો

છે. તેથી સાંપ્રદાયિકતાના પુરાવાની અને ઇતિહાસની[1] એ બન્ને દૃષ્ટિએ એ કથાઓ અગત્યની છે.

એકંદર જૈન સાહિત્ય જોતાં તેમાં જૈન દર્શનમાંથી ચાર જૈનેતર દર્શનો નીકળ્યાની હકીકત મળે છે: સાંખ્ય, બૌદ્ધ, આજીવક અને વૈશેષિક. એ ચારમાં સાંખ્યદર્શનની જૈનદર્શનમાંથી ઉત્પત્તિનું વર્ણન શ્વેતામ્બર-દિગમ્બર બન્ને સાહિત્યમાં છે. આજીવક અને વૈશેષિક દર્શનની ઉત્પત્તિનું વર્ણન દિગમ્બર સાહિત્યમાં નથી, ફક્ત શ્વેતાંબર સાહિત્યમાં છે. તે જ રીતે બૌદ્ધ-દર્શનની જૈનદર્શનમાંથી ઉત્પત્તિનું વર્ણન શ્વેતામ્બર સાહિત્યમાં નથી, ફક્ત દિગમ્બર સાહિત્યમાં છે. આ ચારે દર્શનોની ઉત્પત્તિ વિષેના સાહિત્યમાંના વર્ણનનો અનુક્રમે સાર આપું તે પહેલાં તે દર્શનોને લગતું કેટલુંક સ્પષ્ટીકરણ કરી દેવું યોગ્ય છે.

૧—સાંખ્યદર્શન એ અતિ પ્રાચીન ભારતીય દર્શનોમાંનું એક છે. એના આદિ પ્રવર્તક તરીકે કપિલઋષિનો નિર્દેશ વૈદિક સાહિત્યમાં સર્વત્ર મળે છે. મહાભારતમાં[2] કપિલને સાંખ્યદર્શનના વક્તા કહ્યા છે. ભાગવતમાં[3]

૧. આવી જૈનદર્શનમાંથી અન્ય દર્શનોની ઉત્પત્તિની [illegible] નથી પણ ઇતિહાસને લગતી [illegible] [illegible] તેના કેટલાક ભાગનું માત્ર [illegible] છે, [illegible]

૨ ‘ सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः पुरातनः ।
हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः ’’ ॥

પર્જન્ય, હવિર્ધાનિ અને બીજા અનેક રાજાઓ તપ દ્વારા સ્વર્ગે ગયા છે. રાજાઓ જ તપ વડે ઋષિ થઈ રાજર્ષિ કહેવાયા છે માટે દરેક રીતે જોતાં યજ્ઞથી તપ જ ચઢી જાય છે. આ રીતે સ્વાયંભુવ સૃષ્ટિમા યજ્ઞપ્રવૃત્તિ થઈ ત્યારથી દરેક યુગો સાથે આ યજ્ઞ ચાલુ થયો છે.

[મન્વન્તરાનુકલ્પ-દેવર્ષિ સંવાદ નામક અધ્યાય પૃ ૨૭૦]

[૩]

આ લેખમા નવો મુદ્દો લઈ તે ઉપર ચર્ચા કરવા પહેલા ગયા લેખમાં લીધેલ 'યજ્ઞમાં હિંસાની પ્રવૃત્તિ અને તેના પ્રતિપાદક વેદોની ઉત્પત્તિ' એ બીજા મુદ્દા વિષે એક પ્રાસંગિક નોંધ કરવા ધારી છે અને તે એ કે ઉક્ત મુદ્દા પરત્વે જૈન સાહિત્યમાંથી અપાયેલી કથાઓમાં નારદ, પર્વત અને વસુ નામનાં ત્રણ પાત્રો આવે છે એ જ નામનાં ત્રણ પાત્રો વાલ્મીકિના રામાયણમાં પણ આવે છે આ ત્રિપુટીનુ નામસામ્ય છતાં વાલ્મીકિની અને જૈન કથાની વસ્તુમાં કશું સામ્ય નથી. સામ્ય હોય તો તે એટલું જ કે એ નામનાં ત્રણ પાત્રો જેમ વાલ્મીકિના રામાયણમાં આવે છે તેમ જૈન કથામા પણ જૈન રામાયણમાં જ આવે છે. આ ઉપરથી લોકોમા કોઈ કાળે નારદ-પર્વત જેવા નામોની ખૂબ પ્રસિદ્ધિ હોવાનુ ભાન થાય છે એ વાતની પુષ્ટિ વળી બીજા એક તેથીયે જૂના ઐતરેય બ્રાહ્મણમાના શુનઃશેપ આખ્યાનમા આવેલા નારદ-પર્વત નામયુગલના ઉલ્લેખથી થાય છે

દર્શનો અને તેના પ્રવર્તકોની ઉત્પત્તિ

વૈદિકધર્મમાથી જૈન, બૌદ્ધ આદિ સંપ્રદાયો કેવી રીતે નીકળ્યા એ હકીકત સૂચવતી અનેક આખ્યાયિકાઓ જુદા જુદાં પુરાણોમાથી લઈ આ લેખમાળાના પહેલા ભાગમા આપવામા આવી છે. જૈન સાહિત્યમા પણ જૈન ધર્મમાથી જૈનેતર દર્શનો નીકળ્યાની તેવી જ વાતો મળે છે, તે આ લેખમા આપવા ધારી છે. વૈદિક, પુરાણ અને જૈનસાહિત્યની વાતોમા એકજાતનું સામ્ય છતાં તેમાં અન્તર પણ મોટું છે, અને તે એ કે પુરાણની વાતો દેવ અને અસુરોની ઘટનાવાળી મિશ્રિત હોઈ માનવી બુદ્ધિને ગ્રાહ્ય ન આવે તેવી અલૌકિક છે; જ્યારે જૈન કથાઓ તેવી નથી. જોકે જૈનકથાઓ સંપૂર્ણ ઐતિહાસિક છે એમ તો તટસ્થ બુદ્ધિ નજ કહી શકે, છતાં તેમાંથી સાંપ્રદાયિકતાને બાદ કરતા બાકીનું બધું ઐતિહાસિક જેવા તેમ માનવાને મન લલચાય

છે. તેથી સાંપ્રદાયિકતાના પુરાવાની અને ઇતિહાસની[1] એ બન્ને દૃષ્ટિએ એ કથાઓ અગત્યની છે.

એકંદર જૈન સાહિત્ય જોતાં તેમા જૈન દર્શનમાંથી ચાર જૈનેતર દર્શનો નીકળ્યાની હકીકત મળે છે: સાંખ્ય, બૌદ્ધ, આજીવક અને વૈશેષિક. એ ચારમાં સાંખ્યદર્શનની જૈનદર્શનમાંથી ઉત્પત્તિનું વર્ણન શ્વેતામ્બર–દિગમ્બર બન્ને સાહિત્યમા છે. આજીવક અને વૈશેષિક દર્શનની ઉત્પત્તિનું વર્ણન દિગમ્બર સાહિત્યમાં નથી, ફક્ત શ્વેતાંબર સાહિત્યમાં છે તે જ રીતે બૌદ્ધ-દર્શનની જૈનદર્શનમાંથી ઉત્પત્તિનું વર્ણન શ્વેતામ્બર સાહિત્યમાં નથી, ફક્ત દિગમ્બર સાહિત્યમાં છે. આ ચારેય દર્શનોની ઉત્પત્તિ વિષેના સાહિત્યમાંના વર્ણનનો અનુક્રમે સાર આપું તે પહેલાં તે દર્શનોને લગતું કેટલુંક સ્પષ્ટીકરણ કરી દેવું યોગ્ય છે.

૧—સાંખ્યદર્શન એ અતિ પ્રાચીન ભારતીય દર્શનોમાનું એક છે. એના આદિ પ્રવર્તક તરીકે કપિલઋષિનો નિર્દેશ વૈદિક સાહિત્યમા સર્વત્ર થયેલો છે મહાભારતમા[2] કપિલને સાંખ્યદર્શનના વક્તા કહ્યા છે. ભાગવતમાં[3]

---

૧. અહીં જૈનદર્શનમાંથી અન્ય દર્શનોની ઉત્પત્તિનો ઇતિહાસ વિવક્ષિત નથી પણ ઇતિહાસને લગતી બીજી અનેક બાબતોમાં એ કથાઓનું કે તેના કેટલાક ભાગનું ખાસ મહત્ત્વ છે, એવો ભાવ વિવક્ષિત છે.

૨ ‘ साङ्ख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः पुरातनः ।
हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः ” ॥

—મહાભારત-મોક્ષધર્મ.

૩. “પ્રજાપતિનો પુત્ર મનુ નામે સમ્રાટ બ્રહ્માવર્ત દેશમા રહી એ સપ્તાર્ણવ પૃથિવીનુ શાસન કરતો હતો શતરૂપા નામે તેની મહારાણી હતી, તેને પ્રિયવ્રત અને ઉત્તાનપાદ એ બે પુત્ર અને દેવહૂતિ નામે કન્યા હતી. તે સમયે કર્દમ નામે એક ઋષિ હતો. તેને બ્રહ્માએ પ્રજા ઉત્પન્ન કરવાની પ્રેરણા કરી તેથી તે ઋષિએ સરસ્વતી તીરે જઈને દસ હજાર વર્ષ સુધી તપ તપ્યું તપના પ્રભાવે ઋષિને [illegible] જેવા ભગવાન પુરુષોત્તમ સાક્ષાત્ દર્શન થયું [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

કપિલનું વિષ્ણુના અવતારરૂપે વિસ્તૃત જીવન આલેખી તેમણે પોતાની માતા

છે, આમ કહીને ભગવાન અંતર્ધાન થયા હવે કર્દમઋષિ બિંદુ સરોવરની પાસે રહીને મનુના આગમનની પ્રતીક્ષા કરવા લાગ્યા, એટલામાં મનુ પોતાની સ્ત્રી અને પુત્રી સાથે રથ ઉપર બેસીને ત્યાં આવી પહોંચ્યા અને કર્દમ ઋષિને પોતાની પુત્રીનુ પાણિગ્રહણ કરવા વિનંતિ કરી ઘણી ધામધૂમ સાથે કર્દમ અને દેવહૂતિનો વિવાહ થયો દેવહૂતિની માતા શતરૂપાએ એ દંપતીને ઘણાં કપડાં, ઘરેણાં અને ગૃહસ્થાશ્રમને યોગ્ય પુષ્કળ રાચરચીલાં દાનમા આપ્યાં. લગ્ન થઈ ગયા પછી મનુ પોતાની પત્ની સાથે બ્રહ્માવર્ત તરફ પાછા ફર્યા અને કર્દમઋષિ મનુએ વસાવેલી બર્હિષ્મતી નામની નગરીમા રહીને ગૃહસ્થાશ્રમ ચલાવવા લાગ્યા. કર્દમના સંગથી દેવહૂતિને નવ પુત્રીઓ થઈ. હવે કર્દમને પ્રવ્રજ્યા લઈને વનમાં જવાનો વિચાર થયો પણ તેની સ્ત્રી દેવહૂતિએ પોતે પુત્ર વિનાની હોવાથી દીનતા દર્શાવી ત્યારે કર્દમે કહ્યું કે હે રાજપુત્રિ ! તું ખિન્ન ન થા, તારા ગર્ભમા તો સ્વયં ભગવાન્ જે 'અક્ષર' છે તે પોતે જ અવતરવાના છે. આ રીતે ઘણો સમય વીત્યા બાદ ભગવાન્ મધુસૂદને પોતે દેવહૂતિની કુક્ષિમાં અવતાર ધારણ કર્યો —

"तस्यां बहुतिथे काले भगवान् मधुसूदन ।
कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव दारुणि" ॥

હવે સ્વયંભૂ પોતે મરીચિ વગેરે ઋષિઓની સાથે કર્દમના આશ્રમમા આવ્યા અને તેમણે કર્દમ ઋષિને કહ્યું કે, મુને ! તમારે ત્યાં જે આ બાળકનો જન્મ થયો છે તે પોતાના માયાથી અવતરેલા આદ્ય પુરુષ કપિલ છે હે દેવહૂતિ ! તારી કુક્ષિએ અવતરેલો આ બાળક કૈટભાર્દન છે. લોકોમાં કપિલના નામથી તેની ખ્યાતિ થશે અને સાંખ્યાચાર્યોને એ સુસંમત થશે દેવહૂતિની નવે કન્યાઓને માટે સ્વયંભૂએ નવ વરો નક્કી કર્યા. કલાને મરીચિ સાથે પરણાવી, અનસૂયાને અત્રિ સાથે, શ્રદ્ધાને અંગિરસ સાથે; હવિર્ભુવાને પુલસ્ત્ય સાથે, ગતિને પુલહ સાથે, સતીને ક્રતુ સાથે, ખ્યાતિને ભૃગુ સાથે, અરુંધતીને વસિષ્ઠ સાથે અને શાંતિને અથર્વણ સાથે પરણાવી. કર્દમ ઋષિએ વનવાસ લીધાં તે પછી મહર્ષિ કપિલે પોતાની માતાના શ્રેય માટે સાંખ્યતત્ત્વનો ઉપદેશ કર્યો."

—શ્રીભાગવત સ્કંધ ૩, અધ્યાય ૨૧-૨૪-૨૫-૨૦ કપિલોપાખ્યાન

"શ્રીભગવાન્ ઉવાચ–

"अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैर्विनिश्चितम
तद् विज्ञाय पुमान् सद्यो जह्याद् वैकल्पिकं भ्रमम्" ॥१॥

ઇત્યાદિ પ્રકારે ભાગવતના અગિયારમા સ્કંધના ચોવીસમા અધ્યાયમાં સાંખ્યવિધિનું નિરૂપણ છે."

દેવહૂતિને આપેલો સાંખ્યતત્ત્વજ્ઞાનનો ઉપદેશ વિસ્તારપૂર્વક વર્ણવવામાં આવ્યો છે. શ્વેતાશ્વતરોપનિષદ્[૪]માં કપિલનું હિરણ્યગર્ભના અવતારરૂપે સૂચન છે. રામાયણ[૫]માં વાસુદેવના અવતારરૂપે અને સગરના ૬૦૦૦૦ પુત્રોના દાહક તરીકે કપિલયોગીનું વર્ણન છે. બૌદ્ધકવિ અશ્વઘોષ બુદ્ધની જન્મભૂમિ કપિલવસ્તુને મહર્ષિ કપિલની વાસભૂમિ તરીકે ઓળખાવી[૬] તેનું મહત્ત્વ સૂચન કરવા જાણે એ જ પ્રસિદ્ધ મહર્ષિ કપિલનો નિર્દેશ કરતો હોય તેમ લાગે છે. ગમે તેમ હો, પણ એટલું ખરું કે ઓછામાં ઓછું વૈદિક સાહિત્યની પરંપરામાં તો સાખ્યદર્શનના આદ્ય પ્રવર્તક મહર્ષિ કપિલ જ ગણાય છે. અને "सिद्धानां कपिलो मुनिः" એમ કહી ગીતા[૭] ઋષિશ્રેષ્ઠ તરીકે એ જ કપિલનું બહુમાન કરે છે કપિલની શિષ્ય–પરંપરામા આસુરિ અને પંચશિખ એ મુખ્ય છે.[૮] છે પંચશિખનું ષષ્ટિતન્ત્ર[૯] જે સંપૂર્ણ સાંખ્યતત્ત્વજ્ઞાનનો સંગ્રાહક

---

૪. શ્વેતાશ્વતરોપનિષદ્ (૫–૨) – હિંદ તત્ત્વજ્ઞાનનો ઇતિહાસ, પૂર્વાર્ધ, પૃ. ૯૦.

૫. "આ સમગ્ર પૃથિવી ધીમાન્ વાસુદેવને વશ છે અને એ, એ માધવની મહિષી છે એ સમગ્ર પૃથિવીને નિરંતર ધારી રાખે છે અને એના કોપાગ્નિથી સગરના પુત્રો દગ્ધ થવાના છે" –શ્લોક ૨–૩, રામાયણ બાલકાંડ, સર્ગ ૪૦.

"હે પુરુષવ્યાઘ્ર ! તું શોક ન કર, તારા પુત્રોનો વધ લોકહિત માટે થયેલો છે અપ્રમેય એવા કપિલે 'મહાબળવાળા એ પુત્રોને દગ્ધ કરેલા છે' એમ વૈનતેય બોલ્યો.'– ૧૭–૧૮ રામાયણ, બાલકાંડ સર્ગ ૪૧

૬ "आसीद् विशालोत्तमसानुलक्ष्म्या पयोदपङ्क्त्येव परीतपार्श्वम् ।
उदग्रधिष्ण्यं गगनेऽवगाढं पुरं महर्षेः कपिलस्य वस्तु" ॥ २ ॥
અશ્વઘોષનું બુદ્ધચરિત સર્ગ—૧

૭ "अश्वत्थ सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारद ।
गन्धर्वाणां चित्ररथ सिद्धानां कपिलो मुनि —
गीता अ १०, श्लो० २६

૮ "एतत् पवित्रमग्र्यं मुनिरासुरयेऽनुकम्पया प्रददौ ।
आसुरिरपि पञ्चशिखाय तेन च बहुधीकृतं तन्त्रम्" ॥७०॥
૯ 'सप्तत्यां किल येऽर्थास्तेऽर्थाः कृत्स्नस्य षष्टितन्त्रस्य ।
आख्यायिकाविरहिताः परवादविवर्जिताश्चेति' ॥७२॥
सांख्यकारिका

[illegible]

એક મહાન્ ગ્રંથ હતો ને તો ક્યારનોયે નામશેષ થઈ ગયો છે.

નામક એક મોટો સાંખ્યગ્રંથ હતો. એના પ્રણેતા આચાર્ય પંચશિખ હતા. વાચસ્પતિ પ્રભૃતિ વિચારકોના અભિપ્રાય પ્રમાણે એ ષષ્ટિતંત્રશાસ્ત્ર વાર્ષગણ્યનું હતુ. ષષ્ટિતંત્રમાં આવેલા વિષયો સંબંધી માહિતી 'અહિર્બુધ્નસંહિતા'ના બારમા અધ્યાયમાંથી મળી આવે છે એ સંહિતામાં ષષ્ટિતંત્રના બે વિભાગ બતાવવામાં આવ્યા છે. પ્રથમ વિભાગ તે 'પ્રકૃતિમંડળ' અને દ્વિતીય વિભાગ તે 'વિકૃતિમંડળ' એ બન્ને વિભાગમાં નીચે જણાવેલા કુલ સાઠ વિષયોનું પ્રતિપાદન થયેલુ હતુ અને તેથી જ એ ગ્રંથને 'ષષ્ટિતંત્ર' નામ આપવામાં આવ્યું જણાય છે.

પ્રકૃતિમંડળમા ૩૨ વિષયો છે	વિકૃતમંડળમાં ૨૮ વિષયો છે.
૧ બ્રહ્મતંત્ર	૧–૫ કર્મકાંડ
૨ પુરુષતંત્ર	૬ ભોગકાંડ
૩ શાક્તતંત્ર	૭ વૃત્તકાંડ
૪ નિયતિતંત્ર	૮–૧૨ પંચક્લેશ કાંડ
૫ કાલતંત્ર	૧૩–૧૫ ત્રણ પ્રમાણકાંડ
૬–૭–૮ ત્રિગુણતંત્રો	૧૬ ખ્યાતિકાંડ
૯ અક્ષરતંત્ર	૧૭ ધર્મકાંડ
૧૦ પ્રાણતંત્ર	૧૮ વૈરાગ્યકાંડ
૧૧ કર્તૃતંત્ર	૧૯ ઐશ્વર્યકાંડ
૧૨ સામ્યતંત્ર	૨૦ ગુણકાંડ
૧૩–૧૭ પાંચ જ્ઞાનતંત્રો	૨૧ લિંગકાંડ
૧૮–૨૨ પાંચ ક્રિયાતંત્રો (કર્મેન્દ્રિયોને લગતાં)	૨૨ દૃષ્ટિકાંડ
	૨૩ આનુશ્રવિકકાંડ
૨૩–૨૭ પાંચ તન્માત્રાતંત્રો	૨૪ દુઃખકાંડ
૨૮–૩૨ પાંચ મહાભૂતતંત્રો	૨૫ સિદ્ધિકાંડ
	૨૬ કાષાયકાંડ
	૨૭ સમયકાંડ
	૨૮ મોક્ષકાંડ

—હિંદ તત્ત્વજ્ઞાનનો ઇતિહાસ,
પૂર્વાર્ધ, પૃ. ૯૫–૯૬.

જોકે આજે સાંખ્યદર્શન, એ વૈદિક દર્શનોમાંનું એક દર્શન ગણાય છે; પણ કોઈ કાળે સાંખ્યદર્શનના આચાર્યો અનેક બાબતમાં ચાલુ વૈદિક પરમ્પરા કરતાં સ્વતન્ત્ર મત ધરાવતા હોવાથી વૈદિક વિદ્વાનો દ્વારા નાસ્તિક

'ષષ્ટિતંત્ર'નો ઉલ્લેખ જૈન આગમોમાં અનેક સ્થળે કરવામાં આવેલો છે. જે સ્થળે કોઈ બ્રાહ્મણ કે પરિવ્રાજકની વિદ્વત્તાનું વર્ણન કરવામાં આવેલું છે તે સ્થળે આ 'ષષ્ટિતંત્ર' અને બીજા પણ બ્રાહ્મણ ગ્રંથોના નામો ઉલ્લેખવામાં આવ્યા છે જેમ કે, સ્કંદકપરિવ્રાજકના વર્ણનના પ્રસંગમાં જણાવેલું છે કે,

"तत्थ ण सावत्थीए नयरीए गद्दभालिस्स अंतेवासी खंदए नामं कच्चायणस्सगोत्ते परिव्वायगे परिवसइ रिउव्वेद-जजुव्वेद-सामवेद-अहव्वणवेद-इतिहास-पंचमाणं निघंटुछट्ठाणं चउण्हं वेदाणं संगोवंगाणं सरहस्साणं सारए वारए धारए पारए सडंगवी सट्ठितंतविसारए संखाणे सिक्खाकप्पे वागरणे छंदे निरुत्ते जोतिसामयणे अन्नेसु य बहुसु बंभण्णएसु परिव्वायएसु य नयेसु सुपरिनिट्ठिए यावि होत्था—"

—ભગવતીસૂત્ર, શતક ૨, ઉદ્દેશ ૧,
પૃ ૧૧૨, સમિતિ.

ત્યાં શ્રાવસ્તી નગરીમાં સ્કંદક નામે એક પરિવ્રાજક રહે છે જે ગર્દભાલિનો અંતેવાસી છે અને ઇતિહાસ તથા નિઘંટુ સહિત ઋગ્વેદ, યજુર્વેદ, સામવેદ, અથર્વવેદ એ ચાર વેદોનો સાંગોપાંગ જ્ઞાતા, છ અંગને જાણનારો, ષષ્ટિતંત્રમાં વિશારદ, ગણિત, શિક્ષા, કલ્પ, વ્યાકરણ, છંદ, નિરુક્ત જ્યોતિષ-શાસ્ત્ર વગેરે શાસ્ત્રોનો વેત્તા અને બીજા પણ બ્રાહ્મણનયોમાં અને પરિવ્રાજક નયોમાં સુપરિનિષ્ઠિત છે"

"ષષ્ટિતંત્ર" નો અર્થ કરતાં ભગવતીના ટીકાકાર જણાવે છે કે,

' 'सट्ठितंतविसारए' त्ति कापिलीयशास्त्रपण्डित. ' भ०
" षष्टितन्त्रं कापिलीयं शास्त्रम् " कल्पसूत्र.

કલ્પસૂત્રમાં (દેવાનંદાના સ્વપ્નફળનો અધિકાર કલ્પસૂત્ર વ્યાખ્યાન ૧-૨ ૧૫) ઋષભદત્ત બ્રાહ્મણ પોતાની સ્ત્રી દેવાનંદાને સ્વપ્નોનાં ફળ કહેતાં જણાવે છે કે, 'હે દેવિ' તમને એક સુંદર પુત્ર થશે અને તે ચાર વેદ અને ષષ્ટિતંત્ર વગેરે ગ્રંથોમાં નિપુણ થશે. એ ઉલ્લેખ પણ ... ઉપર્યુક્ત સૂત્ર પાઠને સમર્થન કરતો છે.

ગણાતા[10] અને સાખ્ય આચાર્યો પણ કપિલના તત્ત્વજ્ઞાનને વેદ, મહાભારત, પુરાણ અને મનુસ્મૃતિ આદિના જ્ઞાન કરતાં શ્રેષ્ઠ[11] સમજતા પરન્તુ એક બાજુ સ્વતન્ત્ર સાંખ્ય આચાર્યોની પરમ્પરા લુપ્ત[12] થઈ અને બીજી બાજુ વાચસ્પતિ

૧૦. આસુરિ નિરીશ્વર સાંખ્યમતના ઉપદેશક હોવાથી શ્રૌત વિચારપરંપરાના વિરોધી મનાયા છે તેને પરિણામે શતપથના વંશ બ્રાહ્મણમાંથી ઋષિ તરીકેની તેમની વંશપરંપરા બંધ પડ્યાનુ અનુમાન શ્રીયુત નર્મદાશંકર મહેતા બી. એ. કરે છે તે અવશ્ય વિચારણીય છે. જુઓ, હિંદ તત્ત્વજ્ઞાનનો ઈતિહાસ ભાગ ૧ લો, પૃ ૯૪

આદ્ય શંકરાચાર્ય પોતે જ કપિલને શ્રુતિવિરુદ્ધ તેમ જ મનુવચન વિરુદ્ધતંત્રના પ્રવર્ત્તક કહે છે. જુઓ બ્રહ્મસૂત્ર શાંકર ભાષ્ય ૨—૧—૧.

૧૧. માઠરવૃત્તિકાર મૂલકારિકાની વ્યાખ્યા કરતા કહે છે કે " આ કપિલ ઋષિએ ઉપદેશેલુ તત્ત્વજ્ઞાન વેદ, પુરાણ, મહાભારત અને મનુઆદિ ધર્મશાસ્ત્રો કરતાં પણ ચઢિયાતુ છે —જુઓ સાંખ્યકારિકા, ૭૦ ની માઠરવૃત્તિ.

૧૨ "સાંખ્યદર્શનને અનુસરનારા સંન્યાસીઓનો વેષ અને આચાર આ પ્રમાણે છે. તેઓ ત્રિદંડી કે એકદંડી હોય છે, અધોવસ્ત્રમા માત્ર કૌપીનને પહેરે છે. પહેરવાનુ વસ્ત્ર ગેરૂઆ રંગનુ રાખે છે. કેટલાક ચોટલીવાળા હોય છે, કેટલાક જટાધારી હોય છે અને કેટલાક ક્ષુરમુંડ હોય છે આસનમાં મૃગચર્મ રાખે છે, બ્રાહ્મણને ઘેર ભોજન લે છે કેટલાક માત્ર પાચ કોળીયા ઉપર રહે છે. એ પરિવ્રાજકો બાર અક્ષરનો જાપ કરે છે તેઓને નમસ્કાર કરનારા ભક્તો 'ॐ नमो नारायणाय' એમ બોલે છે અને તેઓ સામુ ફક્ત 'नारायण नम' કહે છે જૈન સાધુઓની પેઠે તેઓ પણ બોલતી વખતે મુખવસ્ત્રિકા રાખે છે. એઓની એ મુખવસ્ત્રિકા કપડાની નથી હોતી પણ લાકડાની હોય છે. મહાભારતમા એ મુખવસ્ત્રિકાને 'બીટા' કહેવામાં આવી છે. એઓ પોતે જીવદયા નિમિત્તે પાણી ગળવાનુ ગળણુ રાખે છે અને તેમ કરવા પોતાના અનુયાયીઓને પણ સમજાવે છે મેલા પાણીની માફે ખારું પાણી ભેળવવાથી હિંસા થયાનુ માને છે અને પાણીના એક બિંદુમા અનંત જીવોની વ્યાપ્તિ સ્વીકારે છે. એમના આચાર્યોના નામ સાથે 'ચૈતન્ય' શબ્દ જોડાયેલો હોય છે એઓની વધારે વસ્તી બનારસમાં છે ધર્મને નામે એઓ કોઈ પ્રકારની હિંસા કરવાનુ માનતા નથી"

જૈનદર્શન—ગૂજરાતી અનુવાદ—(પં. બેચરદાસનો) પ્રસ્તાવના પૃ ૧૭.

મિશ્ર જેવા પ્રસિદ્ધ વૈદિક વિદ્વાને સાંખ્યકારિકા ઉપર શ્રુતિને બાધ ન પહોંચે એવી વેદસમન્વયી સૌમ્ય ટીકા[૧૩] લખી એ કારણથી વૈદિક વિદ્વાનોને સાંખ્યદર્શન ઉપર નાસ્તિકતાનો કટાક્ષ નામશેષ થઈ ગયો છે.

જૈન ગ્રન્થોમાં સાંખ્યદર્શનને લગતી નોંધાયેલી હકીકત વૈદિક ગ્રંથોમાંની હકીકત સાથે કેટલીક બાબતોમાં મળે છે, તો કેટલીક બાબતોમાં જુદી પડે છે. મળતી આવતી બાબતો ત્રણ છે: (૧) સાંખ્યદર્શનનું પ્રાચીનત્વ તેમ જ કપિલનું ક્ષત્રિયત્વ, (૨) કપિલના શિષ્ય તરીકે આસુરિનું હોવું અને (૩) ષષ્ટિતન્ત્ર નામક સાંખ્યગ્રંથની રચના. જુદી પડતી બાબતોમાં મુખ્ય બાબત સાંખ્યદર્શનના આદિ પ્રણેતાની છે. વૈદિક ગ્રન્થો મતભેદ વિના જ કપિલને સાંખ્યદર્શનના આદિ પ્રણેતા વર્ણવે છે, ત્યારે જૈન કથા કપિલને આદિ પ્રણેતા ન કહેતા મરીચિને સાંખ્યદર્શનના મુખ્ય પ્રવર્તક તરીકે વર્ણવે[૧૪] છે. જૈન કથા પ્રમાણે એ મરીચિ, જૈનોના પરમ માન્ય અને અતિપ્રાચીન પ્રથમ તીર્થંકર શ્રીઋષભદેવના પૌત્ર અને ભરત ચક્રવર્તિના પુત્ર થાય એમણે પ્રથમ પોતાના પિતામહ પાસે જૈન દીક્ષા સ્વીકારેલી, પણ પાછળથી શિથિલાચાર થઈ એક નવો જ વેષ કલ્પી સાંખ્યદર્શનના પ્રસ્થાનનો પાયો નાખ્યો જૈન કથા સાંખ્ય આચાર્યોના અગ્રણી તરીકે કપિલનું અસ્તિત્વ સ્વીકારે છે: પણ તે મરીચિ બાદ મરીચિના શિષ્ય તરીકેનું. કપિલે મરીચિના શિષ્ય થઈ પોતાના મતનો વિસ્તાર કર્યો અને આસુરિ નામના શિષ્યને સાંખ્યતત્ત્વજ્ઞાનનો ઉપદેશ આપ્યો બીજી જુદી પડતી બાબત એ છે કે ષષ્ટિતન્ત્રગ્રન્થ જૈન કથા પ્રમાણે આસુરિનો રચેલો છે. જ્યારે વૈદિક પરમ્પરા અને ખાસ કરી સાંખ્યદર્શનની પરમ્પરા પ્રમાણે એ ગ્રન્થ પંચશિખનો છે

જૈન અને વૈદિક સાહિત્યમાંની કેટલીક હકીકતોમાં, ભાવનાઓમાં અને વર્ણનશૈલીમાં ખાસ ભેદ હોવા છતાં એક વાત સુનિશ્ચિત છે કે સાંખ્યદર્શનની પ્રાચીનતા બન્નેના સાહિત્યથી પુરવાર થાય છે સાંખ્યદર્શનનો અન્ય દર્શનો ઉપર જુદી જુદી બાબતોમાં ઓછોવત્તે અંશે પ્રભાવ પડેલો દેખાય છે તે વળી તેની પ્રાચીનતાનું આન્તરિક પ્રમાણ છે.

---

૧૩. ઉદાહરણ તરીકે સરખાવો માઠર સાંખ્યકારિકા ઉપરની ટીકા [illegible] વૈદિક શ્રુતિઓનો સન્દર્ભ પરિણામ [illegible] વિરોધ કરતી [illegible] સાથે [illegible] કારિકાની સાંખ્યતત્ત્વકૌમુદી [illegible] કારિકાની [illegible] સાથે [illegible] કારિકાની સાંખ્યતત્ત્વકૌમુદી

૧૪ જુઓ, પરિશિષ્ટ નંબર ૧.

૨—બૌદ્ધદર્શન, એ સાંખ્યદર્શનની પેઠે માત્ર સ્વલ્પસાહિત્યમા જ જીવિત નથી પણ એના સાહિત્યની અને અનુયાયીઓની પરમ્પરા જેમ અખંડ છે તેમ વિશાળ પણ છે એ દર્શનના પ્રસ્થાપક ગૌતમબુદ્ધ કપિલવસ્તુના વાસ્તવ્ય શુદ્ધોદનના પુત્રરૂપે ઈ સ. પહેલા છઠ્ઠા સૈકામાં થયેલા. તેમણે ઘર છોડી ત્યાગ સ્વીકાર્યો અને જુદા જુદા ગુરુઓની ઉપાસના કરી. અને છેવટે તે ગુરુઓને છોડી સ્વતન્ત્રપણે જ વિચાર કરતાં તેમને જ્ઞાન પ્રાપ્ત થયું. ભગવાન બુદ્ધે જ્ઞાન પ્રાપ્ત થયા પહેલાં કરેલી તપસ્યા અને ગુરુ ઉપાસનાનુ વર્ણન મળે છે[૧૫] તેઓ આળારકાલામ અને ઉદ્દકરામપુત્ત એ બેની પાસે જઈ યોગમાર્ગ શીખ્યા એવું વર્ણન છે અને તે વખતે પ્રચલિત અનેકવિધ તપસ્યાઓ કર્યાનું વર્ણન તો તેઓએ પોતે જ આપ્યું છે. એમાં તેઓએ પોતે જૈન પરમ્પરામા દીક્ષા લેવાનું કોઈ પણ સ્થળે સ્પષ્ટ કહ્યુ નથી અલબત્ત, તેમણે વર્ણવેલ પોતાના તપસ્યા અને આચારના અનુભવમા કેટલીક તપસ્યા અને કેટલોક આચાર જૈન[૧૬] હોય એમ લાગે છે. બુદ્ધ ભગવાન પોતે તો જૈન પરમ્પરામા દીક્ષિત થયાનુ નથી કહેતા પણ તેમના પછી લગભગ ૫ દરસો વર્ષ બાદ લખાયેલ એક જૈન સામ્પ્રદાયિક ગ્રન્થમા ગૌતમબુદ્ધનુ જૈનોના ત્રેવીશમા તીર્થંકર શ્રીપાર્શ્વનાથની પરમ્પરામાં દીક્ષિત થયાનું અલ્પ માત્ર વર્ણન છે એ વર્ણનમા ગ્રન્થકાર ગૌતમ બુદ્ધને જૈન દીક્ષા છોડી નવીન મતના પ્રવર્તાવનાર તરીકે સામ્પ્રદાયિક કટાક્ષની ભાવનાથી[૧૭] ઓળખાવે છે

જૈન આચાર્યોની પેઠે વૈદિક વિદ્વાનોએ પણ તથાગત ગૌતમબુદ્ધને તેમના વૈદિકપરમ્પરા સામેના ક્રાન્તિકારી વિચારોને લીધે નાસ્તિક તરીકે વર્ણવ્યા છે.[૧૮] તેમ છતાં જેમ જૈન આચાર્યોએ પોતાના સર્વસંગ્રાહક નયવાદમાં ગૌતમબુદ્ધના ક્ષણિક વાદનો એક નયરૂપે સમાવેશ કરી તે દર્શનનો સમન્વય[૧૯] કર્યો છે,

૧૫ આ માટે જુઓ, પુરાતત્ત્વ, પુસ્તક બીજું, પૃ. [illegible]
બુદ્ધચરિત્ર લેખમાળા

૧૬ આ માટે સરખાવો મજ્ઝિમનિકાયના મહાસિંહનાદસુત્તના પેરેગ્રાફ ૨૧ સાથે દશવૈકાલિકનુ ત્રીજું તથા પાંચમું અધ્યયન

૧૭ જુઓ, પરિશિષ્ટ, નં ૨

૧૮ જુઓ, આ લેખમાળાનો પહેલો લેખ. પુરાતત્ત્વ પુસ્તક ચોથું, પરિશિષ્ટ ૧ તથા ૩

૧૯ "जं काविलं दरिसणं एयं दव्वट्ठियस्स वत्तव्वं
सुद्धोअणतणयस्स उ परिसुद्धो पज्जवविअप्पो" ॥४९॥
—સંમતિતર્ક મૂળ, [illegible]

તેમ એક વાર બુદ્ધ ભગવાનને ધર્માતિક્રમી અને પ્રજાદ્વેષી તરીકે ઓળખાવનાર સમર્થ વૈદિક વિદ્વાનોના વંશજોએ બુદ્ધના આચાર અને વિચારની લોકપ્રિયતા વધતા જ પોતાના સર્વસંગ્રાહક અવતારવાદમા તેમનુ સ્થાન ગોઠવ્યું છે: અને વિષ્ણુના અવતારરૂપે તેઓની નિન્દા-સ્તુતિ પણ કરી છે.[૨૦]

૩—સાધારણ જનતાની વાત તો એક બાજુએ રહી પણ વિશિષ્ટ વિદ્વાનો સુદ્ધાં ભારતીય દર્શનોનો ઇતિહાસ લખતી વખતે જે દર્શનનું આજે સ્મરણ પણ કરતા નથી તે આજીવકદર્શન એક વખત હિન્દુસ્તાનમા બહુ જાણીતુ અને બહુ ફેલાયેલુ હતુ. જોકે અત્યારે તો એ આજીવક દર્શન પોતામાંથી ઉદ્ભવ પામેલા અનેક નાના સમ્પ્રદાયોના નામમા અને દેશ-કાળ પ્રમાણે બદલાયેલ આચાર-વિચારમા નામથી અને સ્વરૂપથી તદ્દન ભૂંસાઈ ગયું છે, છતાં ઈ સ. ના છઠ્ઠા સૈકા સુધી તે દર્શનના સ્વતન્ત્ર આચાર્યો હોવાનું અનુમાન પ્રોફેસર હોર્નલ વરાહમિહિરના બૃહજ્જાતક ઉપરથી કરે છે.[૨૧] સાહિત્યના પ્રદેશમા તો એનુ પોતાનુ કોઈ પણ સાહિત્ય આજે શેષ નથી. છતા જૈન, બૌદ્ધ અને વૈદિક ગ્રન્થોમા આજીવક મત, તેનાં મન્તવ્યો અને તેના પ્રવર્તકોના મહત્ત્વપૂર્ણ ઉલ્લેખો[૨૨] મળે છે વૈદિક ગ્રન્થો કરતા જૈન અને બૌદ્ધ ગ્રન્થોમા એ ઉલ્લેખો ઘણા પ્રમાણમા છે. માત્ર પાછળના ટીકાગ્રન્થોમા જ નહિ પણ જૈનોના મૂળ આગમ અને બૌદ્ધોના પિટકગ્રંથોમા સુદ્ધા આજીવક મત વિષે વર્ણન છે. આજીવક પંથના નન્દવચ્છ કિસ્સંકિચ્ચ અને મક્ખલિ એ ત્રણ નાયકોનો નિર્દેશ બૌદ્ધ વાઙ્મયમાં છે. તેમા પણ મક્ખલિનુ નામ બુદ્ધ ભગવાનના સમકાલીન છ મહાન પ્રતિસ્પર્ધીઓમાંના એક પ્રતિસ્પર્ધી તરીકે બૌદ્ધપિટક[૨૩]મા છે

૨૦ " निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं
सदयहृदयदर्शितपशुघातम् ।
केशव ! धृतबुद्धशरीर ! जय जगदीश ! हरे ! ॥९॥

૨૧ જુઓ. તેમનો 'આજીવિક' ઉપરનો નિબંધ

૨૨ [illegible] (આજીવિક [illegible] નામના નિબંધમા [illegible]—જુઓ [illegible] પૃ. ૨૫૯

૨૩. જુઓ, [illegible] પરિશિષ્ટ પૃ. ૯૦.

એ જ મખ્ખલિ તે જૈન ગ્રંથોમાં વર્ણવાયેલ મંખલિગોશાલ; આ ગોશાલક દીર્ઘતપસ્વી ભગવાન મહાવીરની તપસ્યા વખતે તેમનો ૭ વર્ષ સુધીનો સહચારી. એ ગોશાલકનું પ્રથમ ભગવાન મહાવીરના શિષ્યરૂપે, પછી આજીવક પંથના નેતા તરીકે અને ભગવાન મહાવીરના કટ્ટર પ્રતિસ્પર્ધી રૂપે પ્રસિદ્ધ જૈન આગમ ભગવતીમાં વર્ણન છે. ગોશાલકના અનુયાયી વર્ગ અને ભગવાન મહાવીરના અનુયાયી વર્ગ વચ્ચે થતી અથડામણોનુ મતપરિવર્તનનું અને એ બે મૂળ પ્રવર્તકો વચ્ચે થયેલી ચર્ચાનું વર્ણન જૈન આગમો[૨૪] પૂરું પાડ છે આજીવક પંથનું સાહિત્ય અને તેની સ્વતંત્ર શિષ્યપરમ્પરા સંપૂર્ણ નાશ પામ્યા છતાં તે પંથ અને તેના પ્રવર્તક આચાર્ય વિષે થોડી ઘણી છતા વિશ્વસનીય માહિતી જૈન-બૌદ્ધ બન્ને ગ્રંથોમાથી મળી આવે છે એ પંથના પ્રસિદ્ધ પ્રવર્તક મખ્ખલિ ગોશાલના જીવન વિષેની વિસ્તૃત માહિતી તો ફક્ત જૈન ગ્રંથમાં છે. એમાં ઐતિહાસિક તથ્યનો સંભવ ઘણો હોવા છતાં પાછળના જૈન ગ્રંથમાંના તે વર્ણનમાં સામ્પ્રદાયિકતાની ઊંડી અને વિસ્તૃત અસર પણ જણાય છે.

૪—વૈશેષિકદર્શન, એ વૈદિક ૭ દર્શનોમાનું એક છે.[૨૫] આજે તેની પરંપરા માત્ર વિચાર અને સાહિત્યમાં છે અને તે જેવી તેવી નથી, છતાં તેના સ્વતંત્ર આચાર્યોની પરંપરા તો ક્યારનીયે બીજા નવા ઉદ્‌ભવ પામેલા સંપ્રદાયોના રૂપમાં સમાઈ ગઈ છે અને નામશેષ થઈ ગઈ છે પણ એક કાળે[૨૬] એ દર્શનના પ્રચારક આચાર્યો જેમ વિચારમાં તેમ આચારમાં

---

૨૪. જુઓ સૂત્રકૃતાગ, બીજો શ્રુત સ્કંધ, આર્દ્રકીય અધ્યયન. ઉપાસકદશાંગ સદાલ પુત્રાધિકારી. ભગવતી શતક ૧૫.

૨૫ ન્યાય, વૈશેષિક, સાંખ્ય, પૂર્વમીમાંસા અને ઉત્તરમીમાસા એ વૈદિક ૭ દર્શનો છે.

૨૬ "આ દર્શનનુ બીજુ નામ 'પાશુપત' કે 'કણાદ' દર્શન પણ છે આ દર્શનને અનુસરનારા સાધુઓનો વેષ અને આચાર નૈયાયિકમતી સાધુઓની સમાન છે

નૈયાયિક મતીસાધુઓના વેષ અને આચાર આ પ્રમાણે છે : તે સાધુઓ દંડ રાખે છે, મોટી લંગોટી પહેરે છે, શરીરે કામળી ઓઢે છે, જટા વધારે છે, શરીરે રાખ ચોળે છે, જનોઈ પહેરે છે, જલપાત્ર-કમંડલુ-રાખે છે, રસકસ વિનાનું ભોજન લે છે, ઘણું કરીને વનમાં જ રહે છે, આત્મા તુંબા

પણ સ્વતંત્ર સ્થાન ભોગવતા વૈશેષિક દર્શનનું બીજું નામ પાશુપત કે શૈવ-દર્શન[27] પણ છે.

એ દર્શનનો મૂળ ગ્રન્થ કણાદસૂત્ર નામે આજે ઉપલબ્ધ છે, તેને દશાધ્યાયી પણ કહે છે. એના ઉપર અનેક ભાષ્ય, ટીકા, વિવરણ આદિ ગ્રન્થો લખાયા છે; અને તેમાંથી બીજાં બધાં ભારતીય દર્શનો ઉપર ઓછો વત્તો પ્રકાશ પાડતુ વિપુલ સાહિત્ય જન્મ્યું છે અને જીવિત પણ છે. એ મહત્ત્વ-પૂર્ણ વૈશેષિક સૂત્રના રચયિતા કાશ્યપ ગોત્રીય કણાદ. એ જ વર્તમાન વૈશેષિક દર્શનના આદ્ય પ્રવર્તક છે. ઋષિ કણાદનું બીજું નામ ઔલૂક્ય હોવાથી એ દર્શનને ઔલુક્યદર્શન પણ કહે છે. એ દર્શનની ઉત્પત્તિ વિષે બૌદ્ધ ગ્રંથોમાંથી તો કાંઈ વાંચવામા આવ્યું નથી, પણ એ કણાદ ઋષિ વિષે વૈદિક પુરાણોમા થોડી માહિતી છે. વાયુપુરાણ[28] આદિ પુરાણો કણાદને ઉલૂકના પુત્રરૂપે વર્ણવે છે અને રાજશેખર[29] તો કહે છે કે મહેશ્વરે ઉલૂક (ઘૂડ)નુ રૂપ લઈ એ તપસ્વી કણાદને ૭ પદાર્થનો ઉપદેશ આપ્યો, જે ઉપરથી એ ઋષિએ વૈશેષિક દર્શન રચ્યું અને ઔલૂક્યદર્શન તરીકે પ્રસિદ્ધિમાં આવ્યુ. કણાદનો એ દશાધ્યાયી પ્રમાણ સૂત્રગ્રન્થ ઈ. સ. ના પ્રારંભ પહેલાંનો લાગે[30] છે.

રાખે છે. કંદમૂળ અને ફળ ઉપર રહે છે અને પરોણાગત કરવામા ઉજમાળ રહે છે. તેઓ બે જાતનાં હોય છે. એક સ્ત્રીવિનાના અને બીજા સ્ત્રીવાળા. સ્ત્રીવિનાનાને ઉત્તમ માનવામાં આવે છે. જેઓ બ્રહ્મચારી છે તેઓ પંચાગ્નિ તપ તપે છે અને જ્યારે સંયમની પરાકાષ્ઠાએ પહોંચે છે ત્યારે તેઓ નગ્ન જ રહે છે. તેમને નમસ્કાર કરનારા ॐ નમઃ શિવાય' બોલે છે અને તે સાધુઓ ને નમસ્કાર કરનારાઓ પ્રતિ 'નમઃ શિવાય' કહે છે" ઇત્યાદિ

જુઓ- જૈન દર્શન-ગુજરાતી અનુવાદ-(પં૦ બેચરદાસનું) પ્રસ્તાવના પૃ. ૬૬ ટિપ્પણ ૫.

૨૭ આ માટે જુઓ. ગુણરત્નની ટીકા પૃ. ૧૦૫ તથા માધવાચાર્યનો સર્વદર્શનસંગ્રહ પૃ. ૨૧૦.

૨૮. વાયુપુરાણ પૂર્વખંડ અ૦ ૨૩, [illegible]

૨૯ પં૦ [illegible] ૨૧-૫૦

૩૦. જુઓ, હિંદ તત્ત્વજ્ઞાનનો ઇતિહાસ, [illegible]

સાહિત્યની તત્કાલીન સમગ્ર શાખાઓમા પ્રામાણિકપ્રકાંડ જૈનાચાર્ય હેમચંદ્ર પોતાના અભિધાનચિન્તામણિ કોષમાં, વૈશેષિક અને ઔલૂક્ય એ બે નામને સમાનાર્થરૂપે મૂકી તેની સ્વોપજ્ઞટીકામાં ઔલૂક્ય નામનો ખુલાસો કરતાં વૈદિક પુરાણોમાંની આખ્યાયિકાને જ કાંઈક અનુસરી કહે છે કે ઉલૂક-વેષધારી મહેશ્વરે જે દર્શન રચ્યું તે ઔલૂક્ય અથવા વૈશેષિક.[૩૧]

પરન્તુ જૈન ગ્રન્થોમાં એ ઔલૂક્ય દર્શન જૈનદર્શનમાથી નીકળ્યાનુ વર્ણન છે. જૈન ગ્રન્થોમાં જે સાત નિહ્નવો[૩૨] (પ્રથમ જૈન છતાં પાછળથી જૈનમત ત્યજી તેનો અપલાપ કરી જુદું મન્તવ્ય સ્થાપનારાઓ) નુ વર્ણન છે, તેમાં છઠ્ઠા નિહ્નવ તરીકે થયેલ વ્યક્તિથી ઔલૂક્યદર્શન નીકળ્યાની મનો-રંજક વાત નોંધાયેલી છે. એ છઠ્ઠા નિહ્નવ થયાનો અને તેનાથી ઔલૂક્ય દર્શન ચાલ્યાનો કાળ જૈન નોંધ પ્રમાણે વિક્રમની પહેલી સદી[૩૩]આવે છે

સાંખ્યદર્શનની ઉત્પત્તિ વિશે જૈન ગ્રંથોમા સૌથી પ્રાચીન વર્ણન આવશ્યકનિર્યુક્તિમાં છે એનો જ સાર આ સ્થળે પરિશિષ્ટ ન. ૧ માં આપ વામાં આવે છે. નિર્યુક્તિની એ જ હકીકતને આલંકારિક રૂપ આપી આચાર્ય હેમચંદ્રે પોતાના 'ત્રિષષ્ટિશલાકાપુરુષ ચરિત્ર' નામના પ્રસિદ્ધ ગ્રંથમાં સવિસ્તર વર્ણવી છે. દિગંબર ગ્રંથોમાં એ જ વર્ણન જૂનામાં જૂનુ આદિપુરાણમા જોવામા આવ્યું છે. તેમાં શ્વેતાંબર ગ્રથો કરતાં થોડો ફેર છે અને તે એ કે શ્વેતાંબર ગ્રંથોમાં મરીચિના શિષ્ય તરીકે કપિલનો અને તેનાથી સાંખ્ય મત ફેલાયાનો ઉલ્લેખ છે; જ્યારે આદિપુરાણમાં મરીચિથી જ ત્રિદંડી માર્ગ નીકળ્યાની વાત છે તેના શિષ્ય તરીકે કપિલનો નિર્દેશ જ નથી. (હિંદી અનુવાદ પૃ૰ ૬૩૭)

વિક્રમના દશમા સૈકામાં થયેલા દિગંબરાચાર્ય દેવસેને પોતાના દર્શન-સારમા બૌદ્ધમતની ઉત્પત્તિનુ જે વર્ણન આપ્યું છે તે અથવા તેને મળતું વર્ણન બીજા કોઈ ગ્રંથમાં અદ્યાપિ જોવામા આવ્યુ નથી તેથી એ ગ્રંથમાંના ટૂંક વર્ણનનો સાર પરિશિષ્ટ નં૰ ૨ માં આપવામાં આવે છે

૩૧ જુઓ અભિધાનચિંતામણિ કાંડ ૩, શ્લો. ૫૨૬ ની સ્વોપજ્ઞ ટીકા

૩૨ "बहुरय पएस अव्वत्त समुच्छेद दुग तिग अबद्धिया चेव ।
सत्तेए णिण्हगा खलु तित्थम्मि उ वद्धमाणस्स" ॥७७८॥
—આવશ્યકનિ૰ પૃ૰ ૩૧૨—૩૧૮

૩૩—આવશ્યકગાથા ૭૮૩, પૃ ૩૧૩.

આજીવકમત અને તેના નાયક, ગોશાલક વિશે ભગવતી, ઉપાસકદશા, આવશ્યકવૃત્તિ આદિ ગ્રંથોમાં વર્ણન છે તે બધાનો સંગ્રહ આચાર્ય હેમચંદ્રે 'ત્રિષષ્ટિશલાકાપુરુષચરિત્ર'ના દશમ પર્વમાં કર્યો છે જોકે એ સંગ્રહ બહુ વિસ્તૃત છે અને તેમાં અનેક સ્થળે અશ્લીલ જેવું વર્ણન પણ આવે છે. પરંતુ આ સ્થળે તેમાંથી જરૂર પૂરતો ટૂંકો સાર તારવી તેમાંથી અશ્લીલતા ઓછી કરી પરિશિષ્ટ નં૦ ૩ માં આપવામાં આવે છે.

વૈશેષિક દર્શનની ઉત્પત્તિની કથા સૌથી પહેલાં આવશ્યક નિર્યુક્તિ (ગા૦ ૭૮૦) માં નોંધાયેલી છે તેનો વિસ્તાર તેની વૃત્તિમાં અને વિશેષાવશ્યક ભાષ્યમાં નોંધાયેલો છે. આ સ્થળે વિશેષાવશ્યક ભાષ્યના એ ભાગનો સાર પરિશિષ્ટ નંબર ૪ માં આપવામાં આવે છે. ત્રૈરાશિક સ્થાપનામાંથી વૈશેષિક મત પ્રવર્તાવનાર રોહગુપ્તના સંબંધ વિશે બે પરંપરાઓ મળે છે. એક પરંપરા પ્રમાણે એ આર્યસ્થૂલિભદ્રના શિષ્ય આર્યમહાગિરિનો શિષ્ય થાય, અને બીજી પરંપરા પ્રમાણે તે શ્રીગુપ્તનામના આચાર્યનો શિષ્ય થાય. આ બન્ને પરંપરાઓ ઉપાધ્યાય વિનયવિજયજીએ પોતાની સુબોધિકા નામક કલ્પસૂત્રની ટીકામાં નોંધી છે. —અષ્ટમ વ્યાખ્યાન પૃ૦ ૧૬૫.

પરિશિષ્ટ નં. ૧

ભરત ચક્રવર્તીનો મરીચિ નામે પુત્ર પોતાના પિતામહ ઋષભદેવ ભગવાન પાસે દીક્ષા લઈ તેમની સાથે વિચરવા લાગ્યો. તે શ્રુતધર હતો. એક વાર ઉનાળાની સખત ગરમીમાં તે બહુ ગભરાયો. તેને એક બાજુ સાધુનો કઠિન માર્ગ છોડી ઘરે પાછા જવાનો વિચાર થયો ને બીજી બાજુ પોતાના કુલિનપણાના ખ્યાલથી તેને દીક્ષાનો ત્યાગ કરવામાં બહુ જ શરમ આવવા લાગી. છેવટે તેણે એ મૂંઝવણમાંથી વચલો માર્ગ કાઢ્યો. તેણે પોતાની બુદ્ધિથી એક એવો નવો વેષ કલ્પ્યો અને નવો આચાર ઘડ્યો કે જેથી ત્યાગમાર્ગ [illegible] અને જૈન આચારની કઠિનતા પણ ઓછી થાય. વેષ અને આચાર બદલતી વખતે તેણે જે વિચાર કર્યો તે આ પ્રમાણે. ભગવાનના આ સાધુઓ મનદંડ, વચનદંડ અને કાયદંડને જીતનારા છે અને હું તો તેઓથી જિતાયેલો છું માટે હું ત્રિદંડી થઈશ [illegible]

જોડાને ધારણ કરીશ. એઓ અઢાર હજાર શીળના અંગે યુક્ત એવા શિયળ-બ્રહ્મચર્ય-વડે અતિસુગંધિત છે અને હું તેથી રહિત હોવાને લીધે દુર્ગંધવાળો છું તેથી ચંદનાદિકને ગ્રહણ કરીશ. એ શ્રમણો મોહરહિત છે અને હું મોહથી આવૃત્ત છું તેથી તેના ચિહ્નરૂપ છત્રને મસ્તક ઉપર ધારણ કરીશ. એઓ નિષ્કષાય હોવાથી શ્વેત વસ્ત્રને ધરનાર છે અને હું કષાયથી કલુષ હોવાને લીધે તેની સ્મૃતિને માટે કષાય રંગના વસ્ત્ર ધારણ કરીશ. એ મુનિઓએ પાપથી ભય પામી ઘણા જીવવાળા સચિત્ત જળનો ત્યાગ કર્યો છે, પણ મારે તો પરમિત જળથી સ્નાન અને પાન કરવાનું છે. એવી રીતે પોતાની બુદ્ધિથી પોતાનું લિંગ કલ્પી તેવો વેષ ધારણ કરી મરીચિ ઋષભદેવ સ્વામીની સાથે વિહાર કરવા લાગ્યો.

નવો વેષ કલ્પી તે પ્રમાણે ત્રિદંડી પરિવ્રાજક થઈ એ મરીચિ ભગવાન ઋષભદેવ સાથે જ વિચરતો. તેનું નવું રૂપ જોઈ ઘણા લોકો કૌતુકથી તેની પાસે આવતા, તે ઉપદેશ તો જૈન આચારનો જ કરતો. જ્યારે કોઈ પૂછતું કે તમે જૈન આચારને શ્રેષ્ઠ વર્ણવો છો તો પછી આ નવો શિથિલાચાર શા માટે ધારણ કર્યો છે? મરીચિ પોતાની નિર્બળતા કબૂલતો અને ત્યાગના ઉમેદવારને ભગવાન ઋષભદેવ પાસે જ મોકલતો. ક્યારેક એમ બન્યું કે તે બહુ બીમાર પડ્યો પણ તેની સેવા કરનાર કોઈ ન હતું, જે સહચારી સાધુઓ હતા તે તદ્દન ત્યાગી હોવાથી આ શિથિલાચારીની સેવા કરી શકતા નહીં. તેમજ મરીચિ પોતે પણ તેવા ઉત્કટ ત્યાગીઓ પાસેથી સેવા લેવા ઇચ્છતો નહીં. કાળક્રમે તે સાજો થયો.

એકવાર કપિલ નામનો રાજપુત્ર આવ્યો, તેણે ભગવાનનો ઉપદેશ સાંભળ્યો પણ દુર્ભવ્યતાને લીધે તેને એ પસંદ ન આવ્યો. કપિલ મરીચિ પાસે આવ્યો અને તેના તરફ ઢળ્યો. પ્રથમના બીમારીના અનુભવથી ખેંચાઈ મરીચિએ કપિલને પોતાને લાયક ધારી શિષ્ય બનાવ્યો. શાસ્ત્રના તાત્ત્વિક અર્થજ્ઞાન વિનાનો એ કપિલ મરીચિએ બતાવેલ ક્રિયામાર્ગમાં રત થઈ વિચરતો. એણે આસુરી અને બીજા શિષ્યો બનાવ્યા અને શિષ્ય તથા શાસ્ત્રના અનુરાગને લીધે તે મરી પછી બ્રહ્મલોકમાં ઉત્પન્ન થયો. તેણે ત્યાં ઉત્પન્ન થતાં, વેત જ વિશિષ્ટ જ્ઞાનથી પોતાનો પૂર્વભવ જાણી વિચાર્યું કે મારો કોઈ શિષ્ય કાંઈ જાણતો નથી. તેથી એને તત્ત્વનો હું ઉપદેશ કરું. એમ વિચારી તેણે આકાશમાં ઊભી રહીને 'અવ્યક્ત (પ્રધાન) થી વ્યક્ત (બુદ્ધિતત્ત્વ) પ્રકટે છે,' ઇત્યાદિ ઉપદેશ આપ્યો. તેથી ષષ્ટિતંત્ર (સાંખ્યશાસ્ત્રવિશેષ) થયું.

આવશ્યક ટી૦ નિર્યુક્તિ ગા૦ ૩૫૦ થી ૪૩૯, પૃ૦ ૧૪૩ થી ૧૫૧.

પરિશિષ્ટ નં૦ ૨

શ્રી પાર્શ્વનાથ[૩૪] સ્વામીના શાસન વખતે સરયુ નદીના કિનારે પલાશ નામના નગરમાં પિહિતાસ્રવ સાધુનો શિષ્ય બુદ્ધકીર્તિ થયો જે બહુ શાસ્ત્રજ્ઞ હતો.

માછલાઓના આહારથી તે દીક્ષાભ્રષ્ટ થયો અને તેણે લાલ કપડાં પહેરી એકાંત (મિથ્યા) મત ચલાવ્યો

ફળ, દૂધ, દહીં, સાકર વગેરેની જેમ માંસમાં પણ જંતુ નથી તેથી તેને ઇચ્છવામાં કે તેનું ભક્ષણ કરવામાં પાપ નથી

જેવી રીતે પાણી એક પાતળી-વહે તેવી-વસ્તુ છે, તેવી રીતે દારૂ પણ છે તેથી તે ત્યાજ્ય નથી આ પ્રકારની ઘોષણા કરીને તેણે દુનિયામાં સંપૂર્ણ પાપકર્મની પરંપરા ચલાવી.

એક પાપ કરે છે અને બીજો તેનું ફળ ભોગવે છે આવા સિદ્ધાંતને કલ્પી તે વડે લોકોને વશ કરી તે મરી ગયો અને નરકગામી થયો.

દર્શનસાર ગા૦ ૬ થી ૧૦.

પરિશિષ્ટ નં. ૩.

ગોશાલકનો પિતા નામે મંખલી ચિત્રપટજીવી હતો ગોશાલક કલહપ્રિય અને ઉદ્ધત છતાં વિચક્ષણ હતો. ક્યારેક માતાપિતા સાથે લડી જુદો પડ્યો ને ચિત્રપટ ઉપર આજીવિકા કરતો. તે રાજગૃહી નગરમાં જ્યાં ભગવાન મહાવીર હતા તે મકાનમાં એક બાજુ આવી ઊતર્યો. ભગવાન મહિનાના ઉપવાસને પારણે ભિક્ષા લેવા નીકળ્યા વિજયનામક શેઠે ભિક્ષા આપી. એટલે તેને ત્યાં દેવોએ પાંચ[૩૫] દિવ્યોની વૃષ્ટિ કરી ભગવાન પારણું કરી

---

૩૪ ભગવાન મહાવીર એ જૈનોના ચોવીસમા તીર્થંકર અને ભગવાન પાર્શ્વનાથ એ ત્રેવીસમા મનાય છે [illegible] હોવાથી શ્રી પાર્શ્વનાથ તીર્થંકરનો સમય [illegible] આવે છે

૩૫ [illegible]

[illegible]

પાછા પ્રથમના જ મકાનમાં ધ્યાન કરી રહ્યા ભગવાનના પારણાને પ્રભાવે થયેલ દિવ્ય વૃષ્ટિની વાત સાંભળી ગોશાલક ભગવાન તરફ આકર્ષાયો. તે પોતાને શિષ્ય બનાવવા ભગવાનને વીનવ્યા. ભગવાનને મૌન જોઈ તે જાતે જ તેઓના શિષ્ય તરીકે સાથે સતત રહેવા લાગ્યો, અને ભિક્ષાથી નિર્વાહ કરવા માંડ્યો. કેટલાક વખત પછી તેને ભગવાનના જ્ઞાનીપણાની વિશેષ ખાતરી કરવાનુ મન થયું ને તેથી પૂછ્યું કે, હે ભગવન્! આજે મને ભિક્ષામાં શું મળશે? ભગવાન તો ધ્યાનસ્થ હોઈ મૌન રહ્યા પણ સિદ્ધાર્થ નામનો દેવ જે ભગવાનનો અધિષ્ટાયક છે તેણે ભગવાનના શરીરમા દાખલ થઈ ગોશાલકને જવાબ આપ્યો કે "ખાટા કોદરા આદિ અન્ન તથા દક્ષિણામાં ખોટો રૂપિયો તને મળશે." આ ઉત્તર ખોટો પાડવા ગોશાલકે આખો દિવસ મહેનત કરી પણ સારું ભોજન ન મળવાથી છેવટે સાંજે ક્ષુધાને લીધે તેણે કોઈ સેવકને ત્યાંથી અન્ન લીધુ, જે સિદ્ધાર્થના કહ્યા મુજબ ખાટું જ હતુ. દક્ષિણામાં મળેલ રૂપિઓ પણ ખોટો જ નીકળ્યો આથી ગોશાલકના મનમાં નિયતિવાદનુ બીજ રોપાયું અર્થાત્ તેણે સિદ્ધાંત બાંધ્યો કે "જે થનાર હોય તે થાય જ છે"

નાલંદાપાડામાં બીજુ ચોમાસું વ્યતીત કરી ભગવાને અન્યત્ર વિહાર કર્યો. ગોશાલક પણ પાછળથી તેમને આવી મળ્યો અને જાતે જ માથુ મૂડી નિર્વસ્ત્ર થઈ પોતાને શિષ્ય તરીકે સ્વીકારવા ભગવાનને બહુ વિનંતી કરી. ભગવાને તે કબૂલી અને તેને સાથે લઈ અન્યત્ર ચાલ્યા. રસ્તામાં ગોવાળિયાઓને ક્ષીર રાંધતા જોઈ તે મેળવવા તેણે ભગવાનને કહ્યુ, પણ ભગવાનના દેહમા અન્તર્હિત પેલા સિદ્ધાર્થે કહ્યુ કે "ક્ષીર બનશે જ નહિ." એ વચન જૂઠું પાડવા ગોશાલકે જોકે ગોવાળોને ચેતવ્યા. ગોવાળોએ હાંડી સાચવવા યત્ન કર્યો. કિંતુ અધવચ્ચે જ હાડી ફૂટી અને ગોશાલકને તેમાંથી કાંઈ ન મળ્યું. આ બનાવથી તેનો પ્રથમનો નિયતિવાદ–અવશ્યભાવિભાવવાદ અધિક સ્થિર થયો

એકવાર બ્રાહ્મણ નામક ગામમા એક મોટે ઘરે ભિક્ષા લેવા જતા વાસી અન્ન મળવાથી અને વખારામાં દાસીને હાથે તિરસ્કાર થવાથી તેણે ઘર બળવાનો શાપ આપ્યો. શાપ આપતા કહ્યું કે, "જો મારા ગુરુનું તપતેજ હોય તો આ ઘર બળી જાઓ–" ભગવાનના નામે અપાયેલો શાપ પણ ખોટો પડવો ન જોઈએ એમ ધારી નિકટવર્તિ દેવોએ તે દાસાનુ ઘર બાળી નાખ્યું.

ચંપાનગરીમાં ત્રીજું ચોમાસું પૂરું કરી ભગવાન કાલાય ગામમાં

ગયા. ત્યાં શૂન્ય ઘરમાં ધ્યાનસ્થ રહ્યા. ગોશાલક વાનરની જેમ ચપળ બની તેના દરવાજા પાસે બેઠો. "અહીં કોઈ છે?" એમ પૂછી જ્યારે કંઈ જવાબ ન મળ્યો ત્યારે એક જાર પુરુષ પોતાની રક્ષિત દાસી સાથે વિલાસ અર્થે તે શૂન્ય ઘરમાં દાખલ થયો. ભગવાન તો ધ્યાનસ્થ હતા પાછા નીકળતાં એ દાસીને ગોશાલકે હસ્તસ્પર્શ કર્યો એ જાણી તેને પેલા જાર પુરુષે ખૂબ પીટયો. ગોશાલકની ફરિયાદનો અધિષ્ઠાયક સિદ્ધાર્થે ભગવાનના દેહમાંથી જ ઉત્તર આપ્યો કે "તુ અમારી પેઠે શીલ કેમ નથી રાખતો? ચપળતા કેમ કરે છે? તને માર ન મળે તો બીજું શું થાય?"

ચોથુ ચોમાસું પૃષ્ઠચંપામાં વ્યતીત કરી ભગવાન કૃતમંગળ નામક ગામમા ગયા ત્યાં તેઓ એક દેવાલયમા ધ્યાનસ્થ રહેલ, તે વખતે રાત્રે ત્યાં કેટલાક કુળદેવતાના ભક્તો નાચગાન કરતા તેમા મદ્યપાન કરેલ સ્ત્રીઓ પણ શામિલ હતી આ નાચગાન કરનાર લોકો સાથે અડપલુ કરવાને લીધે ગોશાલકને કડકડતી ટાઢમાં તે દેવાલય બહાર અનેક વાર કાઢી મૂકવામાં આવેલો એક દિવસ તેણે ભગવાનને કહ્યું: "મધ્યાહ્ન થયો છે, ચાલો આહાર લેવા.' ભગવાન મૌન હતા તેથી સિદ્ધાર્થે ઉત્તર આપ્યો: "અમારે આજે ઉપવાસ છે." ગોશાલકે પૂછ્યુ· "આજે મને શુ ભોજન મળશે?" "માસ યુક્તપાયસ મળશે" એવો સિદ્ધાર્થે ઉત્તર આપ્યો તેને ખોટો પાડવા ગોશાલકે બહુ યત્ન કર્યો પણ છેવટે તેને માસવાળી ખીર જ મળી આ ખીર તેણે નિર્માંસ સમજી ખાઈ લીધી પણ ઊલટી દ્વારા પાછળથી તેમા માસ હોવાની ખાતરી થઈ એટલે ચિડાઈને તેણે દાન કરનાર ના ગૃહના તે પ્રદેશને ગુરુના તપના નામે બળી જવાનો શાપ આપ્યો. એટલે ભગવાનની મહત્તા સાચવવા ખાતર દેવોએ તે પ્રદેશ બાળી નાખ્યો આગળ જતા એક સ્થળે રમતા બાળકોને ગોશાલકે બિવડાવ્યા તે જોઈ તેઓના માબાપે ગોશાલકને માર્યો.

જુદો પડીશ અંતર્હિત સિદ્ધાર્થે જવાબ આપ્યો, "તારી જેવી ઇચ્છા. અમે તો અમારી રીત છોડવાના નથી." એ સાંભળી ગોશાલકે રાજગૃહનો માર્ગ લીધો, પણ રસ્તામાં ચોરોના હાથે ખૂબ માર પડવાથી પસ્તાઈ પાછો ભગવાનને મળવા નીકળ્યો ભદ્રિકાપુરીના છઠ્ઠા ચોમાસામાં ભગવાનને તે મળ્યો. આલંભિકા નગરીના સાતમા ચોમાસા પછી કુંડક ગામમાં વાસુદેવના મંદિરમાં ભગવાન ધ્યાનસ્થ રહ્યા નિર્લજ્જ ગોશાલકે વાસુદેવની મૂર્તિના મુખ સામે પુરુષચિહ્ન ધારણ કર્યું એ વાત જણાયાથી ગામના લોકોએ તેને ખૂબ પીટયો રાજગૃહમાં આઠમું અને મ્લેચ્છ ભૂમિમાં નવમું ચોમાસું કરી ભગવાન સિદ્ધાર્થપુરે આવ્યા. ત્યાંથી કૂર્મગામ તરફ ચાલતા રસ્તામાં તલનો એક છોડ જોઈ ગોશાલકે પૂછ્યું, "હે પ્રભો ! આ છોડ ફળશે કે નહિ ?" ભવિતવ્યતાવશ પ્રભુ પોતે જ બોલ્યા, "એ છોડ ફળશે ને બીજા છોડનાં પુષ્પોમા રહેલ સાત જીવ આ પ્રસ્તુત છોડમા તલરૂપે જન્મ લેશે" જોકે એ વચન ખોટું પાડવા ગોશાલકે એ છોડને ઉખેડી ફેંકી દીધો પણ ભક્તદેવોએ કરેલ વૃષ્ટિને પરિણામે ભગવાનના કહ્યા મુજબ તે છોડ ફળ્યો.

ક્યારેક કોઈ વૈશિકાયન તાપસને પજવવાથી ગોશાલક તે તાપસની તેજોલેશ્યા[૩૫]નો ભોગ થયો પણ ભગવાને બળતા ગોશાલકને પોતાની શીત લેશ્યા[૩૬]થી બચાવી લીધો. ગોશાલકે તેજોલેશ્યા કેમ પ્રાપ્ત થાય એમ પૂછ્યું. ભગવાને ઉત્તરમાં જણાવ્યું કે "નિયમધારી થઈ છઠ[૩૭]ને પારણે મૂઠી જેટલા અડદ અને અંજલિ પ્રમાણે પાણી લેવાથી છ માસને અંતે તેજોલેશ્યા ઉદ્ભવે છે." કૂર્મગ્રામથી સિદ્ધાર્થપુર જતા વચ્ચે તલના છોડવાળો પ્રદેશ આવવાથી ગોશાલકે કહ્યુ "પ્રભો ! પેલો છોડ ઊગ્યો નથી." પ્રભુએ કહ્યુ "ઊગ્યો છે" તપાસ કરતા ગોશાલકને ભગવાનના વચનની પ્રતીતિ થઈ. એટલે તેણે સિદ્ધાન્ત બાંધ્યો કે શરીરનુ પરાવર્તન કરી જીવો પાછા ત્યાં જ પેદા થાય છે. ત્યાર બાદ ભગવાનના કહ્યા મુજબ તેજોલેશ્યા સાધવા ગોશાલક ભગવાનને

---

૩૫ તપોજન્ય એક જાતની શક્તિ જેથી શાપની પેઠે [illegible] બાળી શકાય.

૩૬. જે વડે [illegible] [illegible] બચાય એવી તપો[illegible] એક જાતની શક્તિ

૩૭ [illegible] [illegible] અર્થાત્ આગલે દિવસે એક ટંક ખાવું, [illegible] ટંક [illegible] અને ચોથે દિવસે એક જ ટંક ખાવું.

છોડી શ્રાવસ્તી નગરમાં ગયો. ત્યાં એક કુંભારની શાળામા રહી વિધિવત્ તપ કરી ૭ માસમાં તેજોલેશ્યા સિદ્ધ કરી અને તેની પરીક્ષા કરવા તેણે કૂવાને કાંઠે કોઈ દાસીના ઘડા ઉપર કાંકરો ફેંક્યો. દાસીએ ગાળ દીધી કે તરત જ ગુસ્સે થઈ તેણે તેજોલેશ્યા મૂકી દાસીને બાળી દીધી. ત્યાર બાદ તેને શ્રી-પાર્શ્વનાથની પરંપરાના[૩૮] અષ્ટાંગ નિમિત્તજ્ઞ ૭ સાધુઓનો ભેટો થયો. તેઓ પાસેથી ગોશાલક અષ્ટાંગનિમિત્તવિદ્યા શીખ્યો આ રીતે તેજોલેશ્યા અને નિમિત્તવિદ્યાથી સંપન્ન થઈ તે પોતાને જિનેશ્વર તરીકે જાહેર કરતો પૃથ્વી પર સગર્વ વિચરવા લાગ્યો

(પર્વ ૧૦, સર્ગ ૩–૪, પૃ૦ પર થી ૭૫.)

એક તરફ ગોશાલક ભગવાનથી જુદા પડ્યા પછી પોતાનો સંપ્રદાય વધારવા પ્રયત્ન કરતો અને બીજી બાજુ ભગવાન સર્વજ્ઞ થયા પછી પોતાનુ શાસન પ્રવર્તાવતા. આમ કેટલોક વખત પસાર થયો. ગોશાલકના આજીવક સંપ્રદાયમાં એક સદ્દાલ નામક કુંભાર હતો અને તેની અગ્નિમિત્રા પત્ની હતી એ બન્ને ગોશાલકના ભક્ત દંપતીએ પણ ભગવાનના સત્સંગથી ગોશાલકમત છોડી દીધો આ વાતની જાણ થતાં ગોશાલક તે કુંભારને ફરી પોતાના મતમાં ખેંચવા અનેક સ્વસાંપ્રદાયિક લોકો સાથે તેને ઘેર ગયો પણ તે સદ્દાલ કુંભારે તેની સામે જોયું પણ નહિ. તેથી નિરાશ થઈ ગોશાલક ત્યાંથી પાછો ફર્યો.

---

૩૮ નિમિત્તના અષ્ટ અંગોનાં નામ આ પ્રમાણે છે.

(૧) ડાબી જમણી આંખ વગેરે અવયવોના ફુરણનું શુભાશુભ ફલકથન જે દ્વારા થઈ શકે છે તે અંગવિદ્યા. (૨) સ્વપ્નનાં શુભાશુભ ફલ બતાવનાર સ્વપ્નવિદ્યા (૩) વિવિધ પક્ષી આદિના સ્વરો ઉપરથી ભાવિનું સૂચન કરનાર સ્વરવિદ્યા (૪) ભૂમિકંપના વિષયવાળી ભૌમવિદ્યા (૫) તલ મસા વગેરે ઉપરથી ફળ સૂચવનાર વ્યંજનવિદ્યા. (૬) હસ્તરેખા આદિ ઉપરથી ફલકથન કરનાર લક્ષણવિદ્યા (૭) ઉલ્કાપાત વગેરે આકસ્મિક ઘટનાઓ. ભાવિ અર્થને બતાવનારી ઉત્પાતવિદ્યા (૮) ગ્રહોના [illegible] ઉપરથી [illegible] વિગેરે ભાવિ બતાવનાર અંતરિક્ષવિદ્યા.

આ આઠ અષ્ટાંગ વિદ્યાઓનાં નામનો સંગ્રહ [illegible] —

" अंगं स्वप्नं स्वरं चैव भौमं व्यञ्जन-लक्षणे ।
उत्पातमन्तरिक्षं च निमित्तं स्मृतमष्टधा ।

વળી ક્યારેક શ્રાવસ્તી નગરીમાં ભગવાન અને ગોશાલક બન્ને આવી ચડ્યા. ગોશાલક હાલાહલા નામની કુંભારણને ત્યાં ઊતર્યો હતો. તેની 'અરિહંત' તરીકેની ખ્યાતિથી અંજાઈ ભોળા લોકો તેની પાસે આવતા. ભગવાનના મુખ્ય શિષ્ય ગૌતમે ગામમાં ગોશાલકની સર્વજ્ઞ તરીકેની ખ્યાતિ સાંભળી પોતાના ગુરુ વીર ભગવાનને એ બાબત પૂછ્યું: ભગવાને કહ્યું "તે સર્વજ્ઞ નથી—મેં જ તેને દીક્ષા આપી છે એ અસર્વજ્ઞ છતાં છળથી પોતાને સર્વજ્ઞ અને જિન કહે છે" ભગવાનની આ વાત શહેરમાં ચોમેર પ્રસરતા ગોશાલકને કાને પણ આવી તેથી તે બહુ ગુસ્સે થયો દરમ્યાન ભગવાનનો આનંદ નામનો એક શિષ્ય તેની નજરે પડ્યો તેને ગોશાલકે કહ્યું, "આનન્દ! તારો ગુરુ મારી નિન્દા કરે છે તે મારી શક્તિ જાણતો નથી. હું તેને સપરિવાર બાળી નાંખીશ. માત્ર તને જીવતો છોડીશ. તે ઉપર એક દૃષ્ટાંત કહું તે સાભળ—

કોઈ પાંચ વાણિયાઓ વ્યાપાર માટે પરદેશ જતાં નિર્જળ વનમાં તરસ્યા થયા. પાણી શોધતાં એક પાંચ શિખરવાળો રાફડો મળ્યો તે ફોડતાં અનુક્રમે તેમાંથી પાણી, તાબાનાણું, રૂપાનાણું, સોનાનાણુ એ ચાર વસ્તુઓ ચાર શિખરમાથી નીકળી. પણ લોભવશ પાંચમું શિખર ફોડતા ઉગ્ર સર્પ નીકળ્યો તેણે એ પાચ વણિકમાંથી સંતોષી પ્રથમ વણિકને જીવતો છોડી બાકીના ચાર લોભીને વિષજ્વાળાથી ભસ્મ કરી નાંખ્યા. હે આનન્દ! તે પ્રમાણે માત્ર તને જીવતો છોડી તારા ગુરુને સપરિવાર હું બાળી નાંખીશ. આનંદે આવી આ વાત ભગવાનને જણાવી ભગવાને તેની શક્તિ વિષે સૌ મુનિને સચેત કરી મૌન રહેવા કહ્યું. દરમ્યાન ગોશાલક ત્યાં આવી ચડ્યો અને ભગવાનને યદ્વા તદ્વા કહેવા લાગ્યો તેણે કહ્યું "હે કાશ્યપ! તું મને મંખલિપુત્ર અને પોતાના શિષ્ય તરીકે વર્ણવે છે પણ હું તે નથી, તારો શિષ્ય ગોશાલક સ્વર્ગવાસી થયો છે. હું તો માત્ર તે મૃત ગોશાલકના દેહ શરીરમાં વાસ કરું છું અને મારું નામ તો ઉદાયમુનિ છે" ભગવાને કહ્યું "ગોશાલક! તણખલાથી ડુંગર ઢંકાય નહિ તેમ તું મારી સામે પોતાની જાતને અન્યથા છુપાવી નહિ શકે. તું જ ખરેખર મંખલિપુત્ર ગોશાલક છે" આ વિવાદ ચાલતો હતો તેવામાં ભગવાનના બે સર્વાનુભૂતિ અને સુનક્ષત્ર નામક શિષ્યો ગોશાલકને સમજાવવા વચ્ચે આવ્યા એટલે ગોશાલકે તેઓને તેજોલેશ્યાથી બાળી નાંખ્યા ભગવાન ઉપર તેજોલેશ્યા મૂકી પણ તે તેઓને કશું કરી ન શકી ઊલટી પાછી ફરી ગોશાલકને બાળવા લાગી ભગવાને ગોશાલકને કહ્યું, "તું તો હવે સાત

દિવસ જીવવાનો છે. આ લેશ્યાજ્વરથી જ તારું મૃત્યુ છે અને હું તો હજી સોળ વર્ષ જીવવાનો છું." આ સાભળી ગોશાલક લેશ્યાદાહથી પિડાતો હાલાહલા કુંભારણને ત્યાં પોતાને ઉતારે પાછો આવ્યો ને ત્યાં સન્નિપાતગ્રસ્તની પેઠે ઉન્મત્ત થઈ અનેક ચેષ્ટાઓ કરવા લાગ્યો. પ્રથમ તો તેણે શિષ્યોને કહ્યું, "મર્યા પછી મારા શરીરને ખૂબ ધામધૂમપૂર્વક ફેરવી આ ચોવીસમો તીર્થંકર મોક્ષે ગયેલો છે એવી ઘોષણા કરી તેનો અગ્નિસંસ્કાર કરજો–" પણ છેક મરણને દિવસે તેને કાંઈક શુદ્ધિ આવતા પસ્તાવો થયો એટલે તેણે શિષ્યોને ફરી કહ્યું કે, "હુ કોઈ સર્વજ્ઞ કે જિન નથી હું તો ખરેખર મંખલિપુત્ર અને ભગવાન મહાવીરનો જ શિષ્ય છું. મેં લોકોને આડે રસ્તે દોર્યા છે. તેથી મરણ બાદ મારા શરીરને પગે દોરડી બાંધી ભૂંડી રીતે ગામમાં ઘસડજો. અને મારા દંભની ખરી હકીકત જાહેર કરવા સાથે મારા શરીર ઉપર તિરસ્કાર દાખવજો" એમ કહી તે મૃત્યુ પામ્યો અને નરકે ગયો પાછળથી શિષ્યોએ ગુરુની આજ્ઞા પાળવા ખાતર મકાન બંધ કરી શ્રાવસ્તીનું ચિત્ર ખેંચી તેમાં ગોશાલકના શબને તેના કહ્યા મુજબ ફેરવી પ્રતિજ્ઞાનુ પાલન કર્યું અને પછી ભક્તોએ મહોત્સવપૂર્વક તેનો અગ્નિસસ્કાર કર્યો

(પર્વ ૧૦ મું. સર્ગ ૮, ગુજરાતી અનુવાદ પાનું ૧૮૪ થી ૧૯૪)

પરિશિષ્ટ નં. ૪

શ્રીગુપ્ત નામના એક જૈનાચાર્ય પોતાના રોહગુપ્ત નામક શિષ્ય સાથે અંતરંજિકા નગરીમા હતા. દરમિયાન કોઈ પરિવ્રાજક ત્યાં આવ્યો. એણે પેટ ઉપર લોઢાનો પાટો બાંધ્યો હતો અને હાથમા જાંબુડાના ઝાડની ડાળી રાખી હતી તે કહેતો કે પેટમાં જ્ઞાન સમાતું નથી માટે એ પાટો છે ને જંબુદ્વીપમાં કોઈ મારી બરાબરી કરે તેવો નથી એ સૂચવવા આ જંબુવૃક્ષની શાખા છે. તેણે ગામમા ઘોષણા કરી હતી કે બધાં દર્શનો શૂન્ય છે, મારા જેવો કોઈ બીજો એકે દર્શનમા નથી એ કારણથી પેટ બાંધેલું અને હાથમાં શાખા રાખેલી તેથી લોકોમા તે 'પોટ્ટશાલ' નામે પ્રસિદ્ધ થયો.

રોહગુપ્તે નગરીમા દાખલ થતી વખતે એ ઘોષણા સાંભળી અને ગુરુને પૂછ્યા સિવાય જ તેની સાથે વાદમા ઉતરવાનો નિર્ણય કરી એ ઘોષણાપટહ ત્યાં જ અટકાવ્યો. ગુરુને એ વાત કહી ત્યારે રોહગુપ્તને કહ્યું કે તેં ઠીક ન કર્યું. કારણ એ વાદી હારશે તોપણ પાછો એને ઘણી વિદ્યાઓ આવડે છે. જેમ કે— વીંછી, સર્પ, ઉંદર, મૃગી, વરાહી, કાક, અને શકુનિકા વગેરે—વિદ્યાઓમાં

કુશળ છે. રોહગુપ્તે કહ્યું શું હવે ક્યાંય નાશી જવું? જે થવુ હતું તે થયુ. ગુરુએ કહ્યું, ત્યારે મારી પાસે સિદ્ધ બીજી સાત વિદ્યાઓ છે, જે એ વાદીની ઉક્ત સાત વિદ્યાઓની અનુક્રમે પ્રતિપક્ષ (વિરોધિની) છે. તે વિદ્યાઓ હું આપું, તું લે, એમ કહી તેને વિદ્યાઓ આપી. તે વિદ્યાઓ આ છે—માયૂરી, નકુલી, બિડાલી, વ્યાઘ્ર, સિંહી, ઉલુકી અને ઉલાવકી પરિવ્રાજકની ઉપર્યુક્ત સાત વિદ્યાઓને અનુક્રમે બાધિત કરનારી આ વિદ્યાઓ આપી. તે ઉપરાંત ગુરુએ રોહગુપ્તને અભિમંત્રિત[૩૯] રજોહરણ આપી કહ્યુ કે જો તે વાદી વધારે બીજો કાંઈ ઉપદ્રવ કરે તો આ રજોહરણ માથા ઉપર ફેરવજે એટલે તું અજેય થઇ જઇશ.

રોહગુપ્તે રાજસભામા જઈ પેલા વાદીને યથેષ્ટ પૂર્વપક્ષ કરવા લલકાર્યો. વાદીએ વિચાર્યું, આ સાધુઓ કુશલ હોય છે માટે એને સંમત હોય એવો જ પૂર્વપક્ષ હુ મારા તરફથી રજૂ કરુ જેથી એ જૈનાચાર્ય તેનું ખંડન ન જ કરી શકે. આમ વિચારી તે ચાલાક વાદીએ પક્ષ રજૂ કર્યો કે, જીવ અને અજીવ એવી બે રાશિઓ છે, કારણ કે તેમ જ દેખાય છે. આ પક્ષ સાંભળી તે સર્વથા ઇષ્ટ હોવા છતાં પણ માત્ર વાદીનો પરાભવ કરવા ખાતર ચાલાક શિરોમણિ રોહગુપ્તે તેની સામે વિરોધી પક્ષ મૂકયો તેણે કહ્યુ, જેમ ઉત્તમ, મધ્યમ અને અધમ એવા ત્રણ વિભાગ છે તેમ પશુ વગેરે જીવ, પરમાણુ વગેરે અજીવ અને ગરોળીના તત્કાળ કપાયેલા પુચ્છ વગેરેનો જીવ (જીવાજીવ અથવા ઇષતજીવ) આવી ત્રણ રાશિઓ છે રોહગુપ્તની આ કલ્પનાથી નિરુત્તર થયેલ વાદીએ ક્રોધમાં ભરાઈ પોતાની સાતે વિદ્યાઓનો પ્રયોગ કર્યો રોહગુપ્તે અનુક્રમે વીંછીઓને મોર વડે, સાપને નોળિયા વડે રોકી પોતાની બધી બાધક વિદ્યાઓનો સામે પ્રયોગ કર્યો. છેવટે વાદીએ જ્યારે ગર્દભી બનાવી ત્યારે રોહગુપ્તે રજોહરણ ફેરવ્યું એટલે એ ગર્દભી ઊલટી તેના પ્રેરક વાદી તરફ જ ધસી અને તેના ઉપર મળમૂત્ર કર્યાં, આખરે એ વાદી તિરસ્કાર પામી ચાલ્યો ગયો

રોહગુપ્તે ગુરુને બધી વાત કહી ગુરુ વાદીને હરાવ્યા બદલ ખુશ તો થયા પણ રોહગુપ્તની એક વાતનો તેમણે વિરોધ કર્યો. તેમણે કહ્યુ જૈન શાસ્ત્રમાં બે રાશિનો સિદ્ધાંત છે, નોજીવરાશિ એ અપસિદ્ધાંત છે, માટે

૩૯. જૈન સાધુઓનું એક ધાર્મિક ઉપકરણ, જે જંતુઓની રક્ષા માટે રજ આદિ દૂર કરવાના કામ માટે હોય છે.

તારે વાદીને પરાજિત કર્યા પછી રાજસભામાં એ વાત પ્રગટ કરવી હતી. હજી પણ તું એ ભૂલ કબૂલ કર. રોહગુપ્તે તર્ક અને હઠના બળથી પોતાનો નોજીવ પક્ષ મજબૂત રીતે ગુરુ સામે જૈન સિદ્ધાંતરૂપે સ્થાપવા યત્ન કર્યો અને ગુરુએ કરેલ તેનો નિષેધ કોઈ પણ રીતે ન સ્વીકાર્યો. આ જોઈ જાહેરમાં જ તેને અપ્રામાણિક ઠરાવવા ગુરુએ રોહગુપ્ત સાથે રાજસભામાં ચર્ચા શરૂ કરી ૭ માસની લાંબી ચર્ચા પછી દરેક શ્રોતાને કંટાળો આવેલો જોઈ ગુરુએ ચર્ચાનો અંત આણવા વ્યવહારુ યુક્તિ યોજી. તે એ કે જ્યાં જગતમાંની સર્વ વસ્તુઓ અવશ્ય મળી શકે તેવી દુકાને જઈ નોજીવ વસ્તુની માંગણી કરવી, જો હશે તો મળશે અને નહીં હોય તો દુકાનદાર ના પાડશે. જો ના પાડે તો નોજીવરાશિ નથી એમ સમજવું. તે પ્રમાણે કરતાં નોજીવરાશિ તેવી દુકાને ન મળી એટલે રોહગુપ્તનું કથન મિથ્યા સિદ્ધ થયું; અને ગુરુ શ્રીગુપ્તનો પક્ષ સત્ય સિદ્ધ થયો અને ગુરુનો રાજા અને સભાએ સત્કાર કર્યો જૈનશાસનની પ્રશંસા થઈ. રોહગુપ્ત અપમાનિત થયો. તેણે છેવટે આગ્રહવશ એક દર્શન પ્રવર્તાવ્યું. એ દર્શન તે વૈશેષિક. એમાં તેણે દ્રવ્ય, ગુણ, કર્મ, સામાન્ય, વિશેષ અને સમવાય એવા ૭ પદાર્થો પ્રરૂપ્યા. રોહગુપ્ત ઉલૂક ગોત્રનો હતો અને ૭ પદાર્થનો પ્રરૂપક થયો તેથી તેનું બીજું નામ ષટ્લૂક પણ કહેવાય છે. તેણે પ્રવર્તાવેલું વૈશેષિકદર્શન તેની શિષ્ય-પરંપરા વડે આગળ જતાં વધારે ખ્યાતિ પામ્યું.

વિશેષાવશ્યકભાષ્ય, ગા ૨૪૫૨ થી આગળ (પૃ. ૯૮૨).

કથાપદ્ધતિનું સ્વરૂપ અને તેના સાહિત્યનું દિગ્દર્શન

[૧૨]

૧ પ્રાસ્તાવિક:—લેખનું નવા જેવું મથાળું જોઈ કોઈ વાચક ન ભડકે કારણ, એમાં મનુષ્યજાતિના બુદ્ધિબળ અને પૌરુષનો જ ઇતિહાસ છે અલબત, એ પૌરુષ શારીરિક પૌરુષ કરતાં કાંઈક જુદી જાતનું તો છે જ. મનુષ્યજાતિએ રાજ્યવિસ્તાર કે મહત્તાની આકાંક્ષાથી અગર માનાપમાનની લાગણીથી અનેક યુદ્ધો ખેલ્યા છે તેના અનુભવે યુદ્ધના શાસ્ત્રો પણ તેણે રચ્યા છે અને એ શાસ્ત્રીય નિયમાનુસાર તે વિષયની તેણે શિક્ષા પણ લીધી છે અને લે છે. તેના પૌરુષનું આ બધું પરિણામ ઇતિહાસે નોંધ્યુ છે તેના અનુભવે તદ્વિષયક નિયમોના શાસ્ત્રો પણ તેણે રચ્યા છે અને તે શાસ્ત્રોની શિક્ષા પણ લીધી છે. આ લેખમા મનુષ્યજાતિના એ બીજી જાતના પૌરુષનો જ ઇતિહાસ છે એટલે એ વિષય નવો જણાવા છતા વસ્તુત ચિરપરિચિત જ છે

૨ શબ્દાર્થ.—'કથા' શબ્દ સસ્કૃત 'कथ्' ધાતુમાથી બનેલો છે તેનો અર્થ 'કહેવું' અથવા 'બોલવુ' એટલો છે મનુષ્ય કોઈ એકલો એકલો બોલતો નથી, તેને બોલવાનો પ્રસંગ સમૂહમાં જ મળે છે સમૂહ મળવાનાં નિમિત્તો અનેક છે સામાજિક અને ધાર્મિક ઉત્સવો, ઉપદેશશ્રવણ વગેરે એ જાતના નિમિત્તો છે વીર અને આદર્શ પૂર્વ પુરુષોનાં ચરિત સાંભળવા લોકો એકઠા થતા. એ પ્રસંગ ઉપરથી 'કથા' શબ્દ તેવા 'ચરિત' અર્થમા જ વપરાવા લાગ્યો, જેમ કે 'રામકથા', 'કૃષ્ણકથા' ઇત્યાદિ એટલું જ નહિ પણ તેવા ચરિતની ખાસ વાચનપદ્ધતિના અર્થમાં પણ વપરાવા લાગ્યો; જેમ કે ભારતની કથા થાય છે, રામાયણની કથા થાય છે ઇત્યાદિ આવે પ્રસંગે એકત્ર થયેલ મનુષ્યોમા વિવિધ ચર્ચાઓ પણ થતી કોઈ વાર પ્રશ્નોત્તર ચાલતા તો કોઈ વાર અમુક વિષય પર મતભેદ ધરાવનાર વ્યક્તિઓ પોતપોતાના પક્ષની પુષ્ટિ અને બીજાના પક્ષનું ખંડન કરવા સારું [illegible] કરતા. આથી ચર્ચાના અર્થમાં પણ 'કથા' શબ્દ યોજાવા લાગ્યો. અને તે છેવટે એ અર્થમાં રૂઢ થઈ પારિભાષિક રૂપે દર્શનસાહિત્યમાં પ્રસિદ્ધ થયો

અને સચવાઈ રહ્યો આ લેખમાં એ શબ્દ પોતાના પારિભાષિક અર્થમાં જ સમજવાનો છે. **તેથી 'કથા' શબ્દનો 'કોઈ પણ વિચારણીય વિષયમાં મતભેદ ધરાવનાર બંને પક્ષકારોની નિયમસર ઉક્તિપ્રત્યુક્તિ રૂપ ચર્ચા'[1] એવો એક અર્થ રૂઢ થયો છે.**

૩ **ઉત્પત્તિબીજ**—કથાપદ્ધતિ મતભેદમાંથી જન્મે છે તેથી મતભેદ તેની ઉત્પત્તિનું પ્રાથમિક બીજ છે. પણ અમુક વિષયમા બે વ્યક્તિઓનો મતભેદ થયો એટલે તે મતભેદમાત્રથી જ કોઈ બને જણ તે વિષય ઉપર કથાપદ્ધતિ દ્વારા વિચાર કરવા મંડી જતા નથી પરંતુ જ્યારે એ મતભેદ પુષ્ટ બની માણસના ચિત્તમા વ્યક્તરૂપ પામે છે ત્યારે પક્ષભેદનું રૂપ ધારણ કરે છે, અને તે પક્ષભેદ પક્ષકારોને મતભેદના વિષયમા કથાપદ્ધતિદ્વારા ચર્ચા કરવા પ્રેરે છે. આ પક્ષભેદ ઘણીવાર શુદ્ધ, કોઈ પણ જાતની સાંપ્રદાયિક અસ્મિતાથી અદૂષિત હોય છે, તો ઘણીવાર કોઈ ને કોઈ જાતની અસ્મિતાથી દૂષિત થયેલો પણ હોય છે. શુદ્ધ પક્ષભેદમાથી ચાલતી કથાપદ્ધતિ અને દૂષિત પક્ષભેદમાંથી ચાલતી કથાપદ્ધતિ વચ્ચે ઘણું જ અંતર હોય છે. તેનું કારણ એ છે કે શુદ્ધ પક્ષભેદ હોય ત્યારે પક્ષકારોના મનમાં તત્ત્વનિર્ણય (સત્યજ્ઞાન) આપવાની કે મેળવવાની ઇચ્છા હોય છે, જ્યારે મલિન પક્ષભેદમા તેમ નથી હોતું. તેમા તો એકબીજાને જીતવાની અને જીત દ્વારા ખ્યાતિ પ્રાપ્ત કરવાની અગર બીજા કોઈ ભૌતિક લાભો મેળવવાની ઇચ્છા હોય છે તેથી મતભેદ એ કથાપદ્ધતિનું સામાન્ય કારણ અને તત્ત્વનિર્ણયની ઇચ્છા તથા વિજયની ઇચ્છા એ તેના વિશેષ કારણો છે એ સમજી લેવું જોઈએ

કરતા;[૨] જ્યારે ભારતીય વિદ્વાનો ધાર્મિક ક્રિયાકલાપો, આધ્યાત્મિક તત્ત્વો, સામાજિક નીતિપ્રથાઓ અને ધાર્મિક જીવન વગેરેના મતભેદથી ચર્ચા કરવા પ્રેરાતા.[૩] તેનુ પરિણામ પણ જુદું જુદું આવેલું બંને દેશના સાહિત્યમાં નજરે પડે છે. પ્રાચીન ગ્રીક સાહિત્યમા આધ્યાત્મિક દૃષ્ટિએ ઉપનિષદોની કક્ષામા મૂકી શકાય એવા સાહિત્યના અભાવ ઉપરથી આ ભેદ સહેજે કળી શકાય છે. સમય બદલાતાં વળી બંને દેશના વિદ્વાનોની માનસસૃષ્ટિમાં ફેર પણ પડેલો જણાય છે. ચર્ચાની ભૂમિકામા સોક્રેટીસનુ પદાર્પણ થતાં જ ગ્રીક વિચારસૃષ્ટિનુ વલણ સત્યદર્શન તરફ થાય છે,[૪] અને ભારતીય વિદ્વાનોનુ માનસ સાંપ્રદાયિક અસ્મિતાથી વિશેષ કલુષિત થતાં જ તેઓમાં શુષ્ક, તર્ક, છળ અને વાગાડંબરવૃત્તિ વધે છે.

૫. પ્રશ્નોત્તરપદ્ધતિ અને કથાપદ્ધતિ.—પ્રશ્નોત્તર અને કથા (ચર્ચા) એ બે પદ્ધતિના મૂળમાં ઘણી આકર્ષક સમાનતા છતાં પણ તેના બાહ્ય સ્વરૂપમાં ભેદ છે. પ્રશ્નોત્તર પદ્ધતિમાં એક પૂછે છે ને બીજો ઉત્તર આપે છે, એટલે એક શ્રોતાને અને બીજો વક્તાને પદે છે; જ્યારે ચર્ચાપદ્ધતિમાં વાદી પ્રતિવાદી બંને સમાન પદે છે પ્રશ્નોત્તરપદ્ધતિમાં પ્રશ્નકર્તા અને ઉત્તરદાતા એ બંને પોતાની વાત દલીલ સિવાય મુદ્દા પૂરતી પણ કહી શકે, જ્યારે ચર્ચાપદ્ધતિમાં તેમ ન ચાલે, તેમાં તો વાદી–પ્રતિવાદી બંનેને દાખલા–દલીલ આપવા અનિવાર્ય થઈ પડે છે પ્રશ્નોત્તરપદ્ધતિમા એ વકતા શ્રોતા વચ્ચે પક્ષભેદ અને અને સિદ્ધાંતભેદ હોવાનો કાંઈ નિયમ નથી, જ્યારે ચર્ચાપદ્ધતિમાં પક્ષભેદ અને સિદ્ધાંતભેદ હોવાનો જ. સારાંશ કે પ્રશ્નોત્તરપદ્ધતિમાં પ્રશ્નકર્તા અને ઉત્તરદાતાની વાક્યરચના ન્યાય (પંચાવયવ) થી યુક્ત હોવાનો નિયમ નથી, જ્યારે ચર્ચાપદ્ધતિમાં વાદી–પ્રતિવાદી બંનેની વાક્યરચના સ્પષ્ટ કે અસ્પષ્ટરૂપે ન્યાયયુક્ત હોય છે જ. બાહ્ય સ્વરૂપમાં આવો ભેદ હોવા છતાં તેના ઉદ્‌ગમમાં તો ભેદ નથી. જેમ પ્રશ્નોત્તર એ જ્ઞાનેચ્છા અને જયેચ્છામાંથી જન્મ પામે છે, તેમ ચર્ચા પણ તેમાંથી જ જન્મ પામે છે. જે વ્યક્તિ કોઈ વસ્તુનું સામાન્ય

૨. જુઓ, વિન્ડલબાન્ડની A His. of Philosophy, પૃ. ૮૭, વિભાગ ૮ અને આગળ

૩. આ કથનનો પુરાવો બ્રાહ્મણો, ઉપનિષદો, ગીતા, જૈન આગમો અને બૌ. પિટક જોતાં સહેજે મળી આવશે.

૪. જુઓ, ફૂટનોટ ૨

જ્ઞાન અગર વિશેષજ્ઞાન મેળવવા ઇચ્છે, તે જ બીજા તજ્જ્ઞને પ્રશ્નો કરે છે. આ જાતના પ્રશ્નોનો ઉદ્દ્ગમ જિજ્ઞાસામાંથી થાય છે. વળી બીજી કોઈ વ્યક્તિ પોતે કોઈ વસ્તુનુ જ્ઞાન મેળવવા ખાતર નહિ, પણ સામાને ચૂપ કરી પરાજિત કરવાની ઇચ્છાથી પ્રશ્નો કરે છે આવા પ્રશ્નોનો ઉદ્દ્ગમ જયેચ્છામાંથી થાય છે. તેવી જ રીતે ચર્ચાની બાબતમાં પણ છે કોઈ ચર્ચાકારો જ્ઞાન (શુદ્ધ જ્ઞાન) મેળવવાના ઇરાદાથી ચર્ચા કરવા પ્રેરાય છે, જ્યારે બીજાઓ કેટલાક અંદર અંદર એક બીજાને હાર આપવાના ઉદ્દેશથી ચર્ચા કરવા પ્રેરાય છે. આ રીતે પ્રશ્નોત્તર તથા ચર્ચાપદ્ધતિના ઉદ્દ્ગમમા જ્ઞાનેચ્છા અને જયેચ્છાનું તત્ત્વ સમાન હોવા છતાં એમનાં મૂળમાં એક સૂક્ષ્મ પણ જાણવા જેવો તફાવત છે. અને તે એ કે જ્ઞાનેચ્છામૂલક કોઈ પણ જાતનો પ્રશ્ન કરનાર માણસ પોતાના જ્ઞાન વિષે જેટલો અસ્થિર અને અચોક્કસ સંભવી શકે, તેટલો વધારે સ્થિર અને વધારે ચોક્કસ ચર્ચા કરનાર હોય છે. સારાંશ કે પ્રશ્નોત્તર પદ્ધતિમાં (જયેચ્છામૂલકપદ્ધતિ બાદ કરીએ તો) શ્રદ્ધા મુખ્ય હોય છે, અર્થાત્ તે ઉપદેશ-પ્રધાન બને છે, જયારે ચર્ચાપદ્ધતિમા પ્રજ્ઞા અને તર્ક મુખ્ય હોઈ તે હેતુપ્રધાન બને છે.[૫] આ ઉપરાંત બીજો ધ્યાન દેવા લાયક તફાવત એ છે કે પ્રશ્નોત્તર-પદ્ધતિના મૂળમા રહેલી જ્ઞાનેચ્છા અને કથાના મૂળમા રહેલી જ્ઞાનેચ્છા એ બંને જ્ઞાનેચ્છારૂપે સમાન હોવા છતાં પણ કાંઈક જુદા જુદા પ્રકારની હોય છે કારણ કે જે પ્રશ્નો વસ્તુના અજ્ઞાનથી જન્મ પામે છે તે તેનુ સામાન્ય જ્ઞાન મળતાં જ શમી જાય છે, પણ ચર્ચામાં તેમ નથી હોતુ. ચર્ચામા તો બંને પક્ષકારોને પોતપોતાના પક્ષનુ અમુક અંશે નિશ્ચિત જ્ઞાન હોવા છતાં વિશેષ પ્રકારના તત્ત્વનિર્ણયની જ ઇચ્છા ચર્ચાની પ્રેરક હોય છે, એટલે ચર્ચાના મૂળમાં રહેલી જ્ઞાનેચ્છા એ સામાન્ય જ્ઞાનેચ્છા ન હોતાં તત્ત્વનિર્ણયેચ્છારૂપ હોય છે આટલો તફાવત જાણી લીધા પછી આગળનુ વિવેચન સમજવું વધારે સરળ બને

૬. સમયવિભાગ—અહીં જે કથાપદ્ધતિનો ઇતિહાસ આલેખવા ધાર્યો છે, તેના બે ભાગો છે કથાના સ્વરૂપ(લક્ષણ)નો ઇતિહાસ અને તેના

સાહિત્યનો ઇતિહાસ. આ બંને પ્રકારનો ઇતિહાસ જે સાહિત્યમાંથી તારવવાનો છે તે સાહિત્યના સમયને ત્રણ વિભાગમાં અહીં વહેંચી નાખીશું આથી પ્રસ્તુત વિષયના ઇતિહાસમાં ઉત્તરોત્તર કેવાં કેવાં રૂપાન્તરો થતાં આવ્યા છે, વિદ્વાનોની બાહ્ય સૃષ્ટિ અને ગ્રન્થલેખકોની માનસસૃષ્ટિ કેવી કેવી બદલાતી ગઈ છે તે જાણવું સુગમ થશે. તે ત્રણ વિભાગો આ પ્રમાણે છે (क) વિક્રમ સંવત્ પહેલાંનો સમય, (ख) વિક્રમની પ્રથમ સદીથી નવમી સદી સુધીનો સમય, (ग) નવમી સદીના ઉત્તરાર્ધથી આજ સુધીનો સમય. આ ત્રણેને અનુક્રમે પૂર્વવર્તી સમય, મધ્યવર્તી સમય અને ઉત્તરવર્તી સમય એવાં નામોથી અહી ઓળખીશું. આ ત્રણે વિભાગના સાહિત્યમાં વૈદિક, જૈન અને બૌદ્ધ સંપ્રદાયનુ એટલે સમગ્ર ઉપલબ્ધ હિંદુ સાહિત્ય આવી જાય છે

૭ મહર્ષિ ગૌતમનાં ન્યાયસૂત્રો—અત્યારે ભારતવર્ષનુ વૈદિક, બૌદ્ધ અને જૈન એ ત્રણ સંપ્રદાયોમાં વહેંચાયેલું જેટલું સાહિત્ય ઉપલબ્ધ છે, તેમાં કથાપદ્ધતિના સ્વરૂપનુ સ્પષ્ટ નિરૂપણ હોય એવો સૌથી પ્રાચીન ગ્રન્થ મહર્ષિ અક્ષપાદ ગૌતમનો રચેલો છે. આ ગ્રન્થ 'ન્યાયસૂત્ર'ને નામે પ્રસિદ્ધ છે અત્યારે તે જ ન્યાયદર્શનનો આદિ ગ્રન્થ લેખાય છે, અને તે પાંચ અધ્યાયમા વહેચાયેલો હોઈ 'પંચાધ્યાયી' પણ કહેવાય છે દરેક અધ્યાયનાં બે એટલે કુલ તેના દશ આહ્નિક છે તેના સૂત્રો, પ્રકરણો, પદો અને અક્ષરોની સંખ્યા અનુક્રમે ૫૨૮, ૮૪, ૧૯૬, ૮૩૮૫ છે

૮. કથાપદ્ધતિની જ મુખ્યતા—કેટલાક વિચારકો આ ન્યાયસૂત્રોના સોળ પદાર્થોમા પ્રમાણનુ પ્રથમ સ્થાન જોઈ અને તેમાં પ્રમાણના નિરૂપણની અતિસ્પષ્ટતા જોઇ એ સૂત્રોને પ્રમાણપદ્ધતિના ગ્રન્થ તરીકે ઓળખે છે પણ એ સૂત્રોનો ટીકાકાર વાત્સ્યાયન તેને ન્યાય નામ આપે છે, અને ન્યાયપદ્ધતિના ગ્રન્થ તરીકે ઓળખવાની સૂચના કરે છે બારીકીથી વિચારતા એ સૂત્રોને કથાપદ્ધતિના ગ્રન્થ તરીકે જ ઓળખવામાં વિશેષ ઔચિત્ય છે

પંચાવયવરૂપ ન્યાયની પ્રથમ યોજના અક્ષપાદે કરી છે. સોળ પદાર્થમાંના ઘણાનો સંબંધ એ ન્યાય સાથે છે એવી ધારણાથી કે વાત્સ્યાયને એને ન્યાય એ નામ આપ્યું હોય તો એ એક રીતે ઠીક છે જ્યાં સોળે પદાર્થોના સંબંધ જોતી રીતે કથાપદ્ધતિ સાથે બંધ બેસે છે તેવો તો ન્યાય સાથે બંધ નથી જ બેસતો. તેથી સૂત્રકારની દૃષ્ટિમા કથાપદ્ધતિની જ પ્રધાનતા હોવાનો સંભવ છે અર્થાત્ સૂત્રકારે પોતાના ગ્રન્થમાં સોળ પદાર્થોનુ જે નિરૂપણ કર્યું છે તે કથાપદ્ધતિના જ્ઞાનની પરિપૂર્તિ માટે જ છે એમ માનવું જોઈએ.

૯. કથાપદ્ધતિ સાથે સોળ પદાર્થોનો સંબંધઃ—પ્રમાણ, પ્રમેય, સંશય, પ્રયોજન, દૃષ્ટાંત, સિદ્ધાંત, અવયવ, તર્ક, નિર્ણય, વાદ, જલ્પ, વિંતડા, હેત્વાભાસ, છલ, જાતિ અને નિગ્રહસ્થાનઃ આ ન્યાયસૂત્રના સોળ પદાર્થો છે.

પાંચ અવયવ એ જ ન્યાયવાકય અગર પરાર્થાનુમાન કહેવાય છે. ચારે પ્રમાણો તો ન્યાયવાકયમાં સમાઈ જાય છે પ્રમેય વિના તો ન્યાય ચાલી શકે જ નહિ. પ્રમેય એ તો ન્યાયનુ પ્રતિપાદ્ય વસ્તુ છે સંશય, પ્રયોજન અને દૃષ્ટાંત ન્યાયના પૂર્વાંગ તરીકે મનાયાં છે, કારણ કે એ ત્રણ વિના ન્યાયનુ ઉત્થાન જ થતુ નથી. સિદ્ધાત એ ન્યાયનો આશ્રય છે તર્ક અને નિર્ણયને ન્યાયના ઉત્તરાંગ માનેલ છે. વાદ, જલ્પ અને વિતંડાની પ્રવૃત્તિ ન્યાયને આધારે ચાલે છે એમ કહ્યુ છે. હેત્વાભાસ ન્યાયમા જ સંભવે છે છળ, જાતિ અને નિગ્રહસ્થાનનો સંબધ પણ જલ્પ દ્વારા ન્યાય સાથે છે. આ રીતે કોઈ ને કોઈ દૃષ્ટિએ પદરે પદાર્થોનો સંબંધ અવયાવાત્મક ન્યાય સાથે જોડી શકાય છે પણ ન્યાયનો ઉપયોગ શો એ પ્રશ્નનો ઉત્તર વિચારતા કહેવુ પડે છે કે તે કથાને અર્થે છે કોઈ જાતની કથા હોય તેમા ન્યાય સિવાય ચાલે જ નહિ એટલે ઉક્ત ન્યાયસૂત્રોમા પ્રતિપાદિત સોળે પદાર્થોને કથાપદ્ધતિના જ્ઞાનની સામગ્રી જ સમજવા જોઈએ. આ સોળ પદાર્થોના પરિચય માટે અને ખાસ કરી છળ, જાતિ અને નિગ્રહસ્થાનના વિશેષ ખુલાસા માટે જુઓ પરિશિષ્ટ ૧

૧૦. ન્યાયસૂત્ર પહેલાનું કથાપદ્ધતિવિષક સાહિત્ય—જોકે ઉપલબ્ધ સાહિત્યમા કથાપદ્ધતિનો સૌથી પ્રાચીન ગ્રન્થ ગૌતમની પંચાધ્યાયી જ છે પણ તેના પહેલાં તે વિષયના ગ્રન્થ કે ગ્રન્થો રચાયા નહિ હોય એમ માનવાને કાંઈ કારણ નથી તેથી ઊલટું આ પંચાધ્યાયી પહેલાં પણ તે વિષયના ગ્રન્થો જરૂર રચાયેલા હોવા જોઈએ એમ માનવાને નીચેના કારણો છે —

જે આપ્યાં છે તે પૂર્વકાલીન દાર્શનિક વિદ્વાનોની લાંબાકાળની વિદ્યાગોષ્ઠી અને પારસ્પરિક વાદવિવાદની પ્રવૃત્તિ અને તત્સંબંધી શિક્ષાની પરંપરાનો વારસો માન્યા સિવાય એકાએક ન જ સંભવી શકે

(ग) એ સૂત્રોમાં જે અનેક મતમતાંતરો નોંધી તેનું નિરસન વાદ પદ્ધતિએ કરવામાં આવ્યું છે તે ભિન્ન ભિન્ન દર્શનના પૂર્વકાલીન વિદ્વાનો એકબીજાના દર્શનનું જ્ઞાન કેટલુ સાવધપણે મેળવતા અને તેનું નિરસન કરવા કેટલુ ચિંતન કરતા, તથા પોતાનો પક્ષ બચાવવા કેટલી ચર્ચામાં ઊતરતા એનુ સૂચક છે.

આ તર્કના સમર્થનમાં નીચેના પુરાવા ટાંકી શકાય એમ છે. ઋગ્વેદના અને અથર્વવેદનાં પ્રશ્નાત્મક અને કોયડા રજૂ કરતાં સૂક્તો, બ્રાહ્મણોની વિવિધ વિષયો ઉપરની ચર્ચાઓ અને ઉપનિષદોના સંવાદો તત્કાલીન આર્યોની ચર્ચાપ્રવૃત્તિનો પુરાવો આપે છે. યાસ્કાચાર્યનું નિરુક્ત તો વાદપદ્ધતિથી લખાયેલો ગ્રંથ છે, એટલુ જ નહિ પણ પોતાથી પૂર્વકાલીન વ્યવસ્થિત ચર્ચાઓનો સૂચક છે.

આ ઉપરાત બૌદ્ધ ત્રિપિટક અને જૈન આગમોમા જે અનેક પ્રતિપક્ષોના ઉલ્લેખો આવે છે તે પણ આ પ્રવૃત્તિનો જ પુરાવો આપે છે.[૬] જૈનોના આગમો પૈકી ઔપપાતિક નામના ઉપાગમાં દીર્ઘ તપસ્વી મહાવીરના ૪૦૦ વાદકુશળ શિષ્યો હોવાનો ઉલ્લેખ છે.[૭] કલ્પસૂત્રમા પણ આ પરંપરા નોંધાઈ છે. તેમ જ રાયપસેણીય ઉપાગમા કેશી અને પ્રસેનજિત રાજાનો સંવાદ ચર્ચાપદ્ધતિનુ ભાન કરાવે છે બૌદ્ધોના સંયુત્ત નિકાયમાંના વંગીસસંયુત્ત નામના પ્રકરણના બારમા સુત્તની અટ્ઠકથામાં વંગીસની માતા વાદપટુ પરિવ્રાજિકા હતી, એને પાંચસો જાતના વાદો આવડતા હતા અને એ સર્વ પરિવ્રાજકોને હરાવતી એવો ઉલ્લેખ છે.[૮] બૌદ્ધસાહિત્યમાં વાદવિવાદમાં ગૂંથાયેલા [illegible] દત્યક શાકટપુત્રનો ઉલ્લેખ છે "બીજા પંથના પરિવ્રાજકો સાથે વાર્તાલાપ કરતી વખતે, એક વખતે પોતાનો અમુક મુદ્દો છે એમ કહી બીજી જ [illegible] એ મુદ્દો પોતાનો નથી જ એવું પ્રતિપાદન કરતો, અથવા એ વાત ઉડાવી દઈ બીજી જ વાત કરવા માંડતો અમુક વખતે અમુક [illegible] વાદ [illegible]

૬. જુઓ, પુરાતત્ત્વ, પુ. ૨, અં. ૧ અને પુ. ૩, અં. ૩

૭. ઔપપાતિક સૂ. સૂ. ૧.

૮. બૌદ્ધ સંઘનો પરિચય, પૃ. ૨૩૮

રહીશ એમ કહી તે વખતે હાજર થતો નહિ ઈતર પંથના પરિવ્રાજકો તેના આ વર્તન ઉપર ટીકા કરવા લાગ્યા "[૯]

ચાણક્યના અર્થશાસ્ત્રમાં આન્વીક્ષિકી વિદ્યાનો ઉલ્લેખ છે તે પૂર્વવર્તી ઘણા લાંબા સમયથી ચાલી આવતી અને બીજી વિદ્યાઓની પેઠે સ્થિરતા પામેલી આન્વીક્ષિકીનો જ સૂચક છે.

આ પુરાવા ચર્ચાપ્રવૃત્તિના સૂચક છે. તે ઉપરાત જેમા ચર્ચાને લગતા પદાર્થોનું એક અથવા બીજી રીતે વર્ણન હોય તેવા પણ પુરાવાનો અભાવ નથી જૈન આગમોમાં પણ પ્રાચીન ગણાતા અગિયાર અંગો પૈકી સ્થાનાંગ નામના ત્રીજા અંગમા કથા, દૃષ્ટાંત, હેતુ, વિવાદ અને દોષોનુ જે વર્ણન છે તે નિવૃત્તિપરાયણ જૈન નિગ્ગન્થોની કથાપદ્ધતિવિષયક અદ્ભુત માહિતીનો અને અક્ષપાદ ગૌતમથી વર્ણિત પદાર્થો કરતાં કથાપદ્ધતિના વિષયમાં બીજી કોઈ ભિન્ન પ્રાચીન પરંપરાનો પુરાવો છે. સ્થાનાંગ નામના મૂળ આગમમાનું એ વર્ણન વળી જૈનપરંપરા પ્રમાણે પ્રાચીન ગણાતા ભદ્રબાહુકૃત નિર્જુત્તિ નામના ગ્રન્થમાં પણ છે સ્થાનાંગ અને નિજ્જુત્તિના એ વર્ણનથી એમ જણાય છે કે પ્રાચીન જૈન સાહિત્યમા કથાપદ્ધતિવિષયક કોઈ ખાસ ગ્રન્થ અથવા પ્રકરણ પહેલાં હોવું જોઈએ. સ્થાનાંગના એ પદાર્થોની વિગત માટે જુઓ પરિશિષ્ટ ૨

બૌદ્ધ સંપ્રદાયના પ્રાચીન ગણાતા ત્રિપિટક સાહિત્યમા કથાપદ્ધતિવિષયક કોઈ ખાસ ગ્રન્થ રચાયો હોય તેનુ સ્પષ્ટ પ્રમાણ અદ્યાપિ મારી જાણમાં નથી છતાં અશોકના સમયમા રચાયેલ મનાતા કથાવત્થુનામક ગ્રન્થમા આપણે જોઈ શકીએ છીએ કે તેની વર્ણનપદ્ધતિ અને તેનુ નામ એ બન્ને કથાપદ્ધતિનાં જ સૂચક છે એટલુ જ નહિ પણ તેના નિગ્રહસ્થાન શબ્દનો ઉલ્લેખ સુધ્ધા છે અને તેનુ વર્ણન મોટે ભાગે [illegible] ભરેલું છે. એ બધું તે સમયના અને તેના પૂર્વવર્તી સમયના [illegible] માનસિક વૃત્તિ, વિચારદિશા અને [illegible] વ્યક્ત કરે છે

માત્ર ગૌતમના ન્યાયસૂત્રનું જ અનુકરણ ન હોવાથી કોઈક પૂર્વવર્તી ભિન્ન પરંપરાનું સૂચક માનવું જોઈએ. આ ગ્રંથમાં વર્ણવેલી ચર્ચાનુ વધારે ઉપયુક્ત વર્ણન જોવા માટે જુઓ પરિશિષ્ટ ૩.

૧૧. કથાનું વિશેષ સ્વરૂપ :—હવે આપણે જોઈએ કે ગૌતમ કથાના સ્વરૂપ વિશે શુ લખે છે. તે કથાના ત્રણ ભેદ કરે છે · વાદ, જલ્પ અને વિતણ્ડા. અને દરેક ભેદનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે વર્ણવે છે: (૧) જે વચન વ્યાપારમા પક્ષ અને પ્રતિપક્ષનો સ્વીકાર હોય અર્થાત્ જેમા એક જ પદાર્થના પરસ્પરવિરોધી એવા બે અંશોમાંથી એક એક અંશનો વાદીએ અને પ્રતિવાદીએ પોતપોતાના પક્ષ તરીકે નિયમપૂર્વક સ્વીકાર કર્યો હોય અને તેથી જેમાં વાદી-પ્રતિવાદી બને પ્રમાણ અને તર્ક દ્વારા પોતાના પક્ષનું સ્થાપન અને પરપક્ષનું નિરાકરણ કરતા હોય તેમ જ આ સાધન અને નિરાકરણનો પ્રકાર પ્રતિજ્ઞા વગેરે પાચ અવયવરૂપ ન્યાયવાક્યથી યુક્ત હોય અને જે સિદ્ધાન્તથી વિરુદ્ધ ન હોય એવો વચનવ્યાપાર તે વાદ. (૨) વાદનાં ઉક્ત બધાં લક્ષણો હોવા ઉપરાંત જેમા છળ, જાતિ અને નિગ્રહસ્થાનના પ્રયોગથી સ્વપક્ષનું સાધન અને પરપક્ષનુ નિરાકરણ કરી શકાતું હોય તેવા વચનવ્યાપારને જલ્પ કહેવામાં આવે છે (૩) એ જ જલ્પ પ્રતિપક્ષની સ્થાપનાને બાદ કરીએ તો વિતણ્ડા કહેવાય છે[૧૧]

૧૨ પરસ્પર સામ્ય-વૈષમ્ય—કથાકારોની નિયમપૂર્વક ચર્ચારૂપ તો વાદ, જલ્પ, વિતણ્ડા એ ત્રણે સમાન છે. છતા તેઓમાં મોટી અસમાનતા પણ છે. વાદાત્મક ચર્ચા, તત્ત્વનિર્ણયની ઇચ્છામાથી જન્મ લે છે અને જલ્પ અને વિતણ્ડાત્મક ચર્ચા વિજયની ઇચ્છામાંથી જન્મ લે છે. એટલે જલ્પ અને વિતણ્ડા એ બને વિજિગીષુકથારૂપે સમાન છે અને વાદ તેથી તત્ત્વ નિર્ણિનીષુ કથારૂપે તે બનેથી જુદો પડે છે વિજિગીષુ કથારૂપે સમાન હોવા છતા જલ્પ અને વિતણ્ડા વચ્ચે એક તફાવત છે અને તે એ કે વિતણ્ડાનો વૈતણ્ડિક વાદી સામાપક્ષનુ ખંડન જ કરતો જાય છે અને પોતાના પક્ષનું સ્થાપન કરતો જ નથી. સામાનુ ખંડન કરતા અર્થાપત્તિથી તેનો અમુક પક્ષ હોવે માની લેવામા આવે પણ તે વિધિરૂપે પોતાના પક્ષની સ્થાપના કરતો નથી અને તેથી તેને પોતાના [illegible] ખંડન કરવાની ફિકર હોતી જ નથી. [illegible]

૧૧. ન્યાય૦, અ ૧, આ ૨ સૂ ૧, ૨, ૩

તેમ નથી હોતું. તેમાં તો બંને પક્ષકારોએ પોતપોતાના પક્ષ સ્પષ્ટ રૂપે જ સ્વીકારી તેને સાધવાનું જોખમ વહોરેલું હોય છે જલ્પ અને વિતણ્ડા બંને કથાનો ઉદ્દેશ ગમે તે રીતે વિજય મેળવવાનો જ હોવાથી તેમાં બંને પક્ષકારોને સત્યાસત્ય જોવાનું નથી હોતું. કોઈ પણ રીતે વિપક્ષીને પરાભવ આપવો એ એક જ વૃત્તિથી આ કથા ચાલતી હોવાને લીધે તેમાં બંને પક્ષકારો જાણી જોઈ ને છળ અને જાતિરૂપ અસદુત્તરનો પ્રયોગ સુધ્ધાં કરી શકે છે અને દરેક જાતના નિગ્રહસ્થાનોનું ઉદ્ભાવન કરી સામાને પરાજયની નજીક લાવવાનો યત્ન પણ કરી શકે છે. વિજયેચ્છાથી ઉન્મત્ત થયેલ વાદીઓ કાંઈ પરાજય સ્વીકારવા તૈયાર ન હોય એટલે જલ્પ અને વિતણ્ડાત્મક કથાને પ્રસંગે અંકુશ મૂકે અને એક પક્ષને તેનો પરાજય સ્વીકારાવે તેવા પ્રભાવશાલી મધ્યસ્થ અને સભાસદોની પણ જરૂર હોય છે. પણ વાદમાં એમાનું કશુંયે હોતું નથી વાદકથા તત્ત્વનિર્ણયની ઈચ્છાથી પ્રેરાયેલ બે અથવા વધારે સહાધ્યાયીઓ વચ્ચે અગર તો ગુરુ-શિષ્ય વચ્ચે ચાલે છે તેથી તેમાં અસત્યને જાણી જોઈ ને અવકાશ નથી એટલે વાદમાં છળ, તથા જાતિનો બુદ્ધિપૂર્વક પ્રયોગ અગર નિગ્રહસ્થાનનું ઉદ્ભાવન સંભવતું જ નથી.

૧૩ પ્રયોજન—ઉપરના વર્ણનથી એ તો સ્પષ્ટ જ છે કે વાદકથાનું પ્રયોજન તત્ત્વનો નિર્ણય અને જલ્પ તથા વિતણ્ડાનું પ્રયોજન વિજયપ્રાપ્તિ એ છે છતાં મહર્ષિ ગૌતમ પોતાના શાસ્ત્રમાં વર્ણવેલા સોળ પદાર્થ, જેમાં છળ, જાતિ અને નિગ્રહસ્થાનનો પણ સમાવેશ થાય છે, તેના તત્ત્વજ્ઞાનને મોક્ષપ્રાપ્તિનું અંગ માને છે એ એક જાતનો વિરોધ છે. કયાં તે છળ, જાતિ અને નિગ્રહસ્થાનરૂપ અસત્ પ્રમાણો. અને કયાં જલ્પ અને વિતણ્ડામાં વિજયેચ્છાજનિત ચિત્તમાલિન્ય અને ક્યાં તેના ત્યાગથી તત્ત્વની પ્રાપ્તિ [illegible].

વિજિગીષુભાવે જરૂર પ્રયોગ કરવો. આનું સમર્થન કરતાં તે એક મજેદાર દાખલો આપે છે. તે કહે છે કે કાંટાઓ જાતે અનિષ્ટ હોઈ હેય છે, છતાં વાવેલ બીજની, અને અંકુરોની રક્ષા કરવા વાડ દ્વારા કાંટાનો પણ ઉપયોગ થાય છે.[૧૨] આ દાખલામાં બીજાંકુરની રક્ષા કરનાર કાંટાની વાડ સાથે તત્ત્વનિશ્ચયની રક્ષા કરનાર જલ્પવિતણ્ડા – કથાની સરખામણી મહર્ષિની સમર્થનકુશળતા સૂચવે છે. મહર્ષિ એમ સૂચવતા જણાય છે કે પ્રૌઢ દશાએ પહોંચેલા અને દૃઢમૂલ થયેલાં વૃક્ષો માટે કાંઈ કાંટાની વાડની જરૂર નથી હોતી. તેવું વૃક્ષ તો પોતાનાં ઊંડાં મૂળને બળે જ કેવળ પશુઓથી નહિ પણ વાયુ અને મેઘના ભયંકર ઝપાટાથી સુધ્ધાં સુરક્ષિત છે. તેવી રીતે જેઓને દૃઢ અને ઊંડો તત્ત્વનિશ્ચય થયેલો હોય છે તેઓ કોઈ પણ વિરોધીના ગમે તેવા આક્રમણથી ડગતા જ નથી. એટલે તેઓને જલ્પ કે વિતણ્ડાની મદદ લેવાની જરૂર નથી. પણ એવા તત્ત્વનિશ્ચયવાળા ગણ્યાગાંઠ્યા હોય છે. સામાન્ય જનસમુદાય તો હમેશા અમુક સંપ્રદાય પ્રમાણે તત્ત્વનિશ્ચય સ્વીકાર્યા છતાં ડગમગતી જ સ્થિતિમાં હોય છે, અને તેથી તેઓનો તત્ત્વનિશ્ચય માત્ર અંકુર જેવો કોમળ અને અસ્થિર હોય છે. એટલે સંપ્રદાયના તેવા લોકોને સ્થિર રાખવા ખાતર જલ્પ અને વિતણ્ડાકથા આવશ્યક છે અને તે રીતે તે મોક્ષનું અંગ પણ છે.

જલ્પ અને વિતણ્ડાના ઉપયોગની મહર્ષિની આ સૂચના એક બાજુ વિદ્વાનોમાં મનુષ્યસ્વભાવ પ્રમાણે ઉત્પન્ન થતી અઘટિત વિદ્યાસ્પર્ધા અને તજ્જન્ય દુષ્પરિણામો ઉપર અંકુશ મૂકે છે અને બીજી બાજુએ તત્કાલીન તથા પૂર્વકાલીન વિદ્વાનોની વિદ્યાગોષ્ઠી અને સાંપ્રદાયિક આવેશમાંથી સાંપ્રદાયિક ખેંચાખેંચી કેવી થતી હોવી જોઈએ એ તરફ લક્ષ ખેંચે છે. મહર્ષિ જાણે છે કે સંપત્તિ અને સંતતિની મમતા તો મનુષ્ય અને ઇતર પ્રાણી વચ્ચે એક સરખી સમાન છે જ, પણ મનુષ્યની વિશેષતા તેના વિચારની મમતામાં છે. મનુષ્ય જે વિચાર (પછી તે ગમે તેવો હોય) બાંધે અગર સ્વીકારે છે, તેમાં અસત્યનો દૃઢ આક્ષેપ થતાં તે તેને એકાએક છોડતો નથી. અને ઘણીવાર તો સંપત્તિ, સંતતિ અને પોતાને ભોગે પણ તે પોતાના વિચારને વળગી રહે [illegible] કે મનુષ્યની આ વિશેષતાને લીધે જ સંપ્રદાયો બંધાય છે અને વિચાર પરિવર્તન માટે મારામારી અને કાપાકાપી વિદ્વાનો સુધ્ધામાં થાય છે. આવી સ્થિતિમાં [illegible] તત્ત્વનિ[illegible]નું [illegible] આવશ્યક [illegible]

૧૨. [illegible]

ખ્યાતિથી પ્રેરાઈ વિજયની લાલસાથી બીજા ઉપર આક્રમણ કરી વૈરભાવ અને વિરોધ વધારી મૂકવો એ હાનિકારક પણ છે. તેટલા માટે જલ્પ અને વિતણ્ડાનો ઉપયોગ કરવાનુ કહ્યા છતા તેની મર્યાદા મહર્ષિએ સૂચવી છે.

૧૪. વખત સાથે વસ્તુસ્થિતિ કેવી બદલાય છે—પૂર્વવર્તી સમયનાં સાહિત્યના અવલોકન ઉપરથી જણાય છે કે વિક્રમ પહેલાંના પાંચમા અને છઠ્ઠા એ બે સૈકાનો વખત કાંઈક જુદો જ હતો. એમા તત્ત્વચિન્તા અને આત્મદર્શન, દીર્ઘ તપસ્યા અને ત્યાગ, ચિત્તશોધન અને સામાજિક પરિષ્કારની ભાવનાઓથી ભરેલુ શુભ્ર વાતાવરણ હતુ. એ વાતાવરણને પ્રભાવે ભારતીય મનુષ્યોનાં હૃદયમા દૈવી વૃત્તિઓને વેગ મળ્યો હતો શ્રદ્ધા અને મેધાની પ્રતિષ્ઠામાં તર્કવાદની (ખાસ કરી કુતર્કવાદની) કિંમત ઘટી હતી. તેથી જ આપણે ઉપનિષદોના તત્ત્વચિન્તનમા અને બ્રહ્મદર્શનમા ક્ષત્રિયવૃત્તિ પ્રવાહણ, અશ્વપતિ અને અજાતશત્રુ આદિની પાસે આરુણિ ગૌતમ, અને દૃપ્ત બાલાકિ જેવા અનેક બ્રાહ્મણવૃત્તિ અનૂચાનમાની જનોને શિષ્યભાવે જતા જોઈએ છીએ જૈન આગમોમા દીર્ઘ તપસ્વી અને ત્યાગમૂર્તિ જ્ઞાતપુત્ર મહાવીર ક્ષત્રિય પાસે ઇન્દ્રભૂતિ આદિ અનેક બ્રાહ્મણોને પ્રતિસ્પર્ધા છોડી, શિષ્યત્વ સ્વીકારતા જોઈએ છીએ. તેમ જ પિટકોમા ધ્યાનપ્રજ્ઞાના પરમ-પૂજારી અને સામાજિક સમભાવના નિર્ભય સચ્ચારક સિદ્ધાર્થ ગૌતમ પાસે ઉજ્જયિનીના પુરોહિતના પુત્ર મહાકાત્યાયન, વાસેટ્ઠ, કૃષિ ભારદ્વાજ, વગેરેને પોતાનુ માન ગાળી બુદ્ધં શરણં ગચ્છામિ, ધમ્મં શરણું ગચ્છામિ, સંઘં શરણું ગચ્છામિ બોલતા જોઈએ છીએ આ ગુરુશિષ્યભાવનું વાતાવરણ તે વખતે કેટલુ જામ્યુ હતુ તેની સાબિતી તે વખતની વસ્તુસ્થિતિ આલેખનાર સાહિત્યમાં મળે છે ઉપનિષદોની, આગમોની અને પિટકોની વર્ણનશૈલી જ શ્રદ્ધા અને વિનયભાવથી પૂર્ણ છે તેમાં જ્યાં જુઓ ત્યાં ગુરુશિષ્યભાવનાસૂચક પ્રશ્નોત્તરને ક્રમે જ વસ્તુનું વર્ણન છે

ક્યારેય પણ એક વૃત્તિની પ્રધાનતાવાળા વાતાવરણમાં વિરોધી બીજી વૃત્તિનો સર્વથા ઉચ્છેદ તો નથી જ થતો; માત્ર તેમાં ગૌણત્વ આવે છે. તેથી તેવા [illegible] જિજ્ઞાસાવૃત્તિની પ્રધાનતાવાળા [illegible] પ્રતિસ્પર્ધાભાવ [illegible] વિરોધી [illegible]

પૂર્વસહચર ગોશાલક અને પોતાનો જામાતા તથા શિષ્ય ક્ષત્રિયપુત્ર જમાલી દીર્ઘતપસ્વી મહાવીર સામે વિરોધી ભાવે આવી ઊભા રહે છે તેવી રીતે જ તથાગત ગૌતમ સામે તેનો પોતાનો સાળો અને શિષ્ય દેવદત્ત તથા બ્રાહ્મણ-ત્વાભિમાની અંબષ્ઠ વગેરે અનેક વિદ્વાનો પ્રતિસ્પર્ધા કરે છે. પણ એ બે સદીના ઇતિહાસવાળા સાહિત્યમાં આવા દાખલાઓ ગણ્યાગાંઠ્યા છે. મુખ્ય ભાગે તો તેમાં ટોળાબંધ માણસો આચાર્યો પાસે શિષ્યભાવે જ જાય છે અને કેટલાક પ્રતિસ્પર્ધાબુદ્ધિથી ગયેલા પણ છેવટે શિષ્યત્વ જ સ્વીકારે છે. તેથી એમ કહેવું જોઈએ કે એ બે સદીના મહાપુરુષોએ વાતાવરણને એટલું નિર્મળ કરી મૂક્યું હતું કે જનસમાજનો સંસ્કારી વર્ગ પોતપોતાના સંસ્કાર પ્રમાણે કાં તો તત્ત્વચિંતા અને આત્મદર્શનને પથે, કાં તો ઉત્કટ તપ અને અહિંસાના પરમ ધર્મને પંથે, કાં તો ચિત્તશુદ્ધિ અને સમાજસંશોધનના પંથે આપોઆપ વિચરતો. પરંતુ એ બે સદીઓનો સુવર્ણયુગ જતાં જ પ્રાચીન અને નવીન અનેક સંપ્રદાયો નવનવે રૂપે અસ્તિત્વમાં આવ્યા. તેથી તેના વિસ્તાર અને રક્ષણનું કામ પાછળના અનુયાયીઓ ઉપર આવી પડ્યું. આ અનુયાયીઓ ગમે તેટલા પૌરુષશાલી હોય છતાં તેઓ પોતાના પૂર્વ પુરુષની છાયામાં જ જીવે તેવા હતા. એટલે તેઓ સર્વથા આપબળી તો ન હતા આ કારણથી દરેકને સંપ્રદાયના વિસ્તાર અને રક્ષણ માટે પરાશ્રય જરૂરી હતો. રાજાઓની, અમલદારોની, ધનવાનોની અને બીજા પ્રભાવશાળી પુરુષોની મદદનો લાભ લેવા કોઈ ન ચૂકતા. જેના પૂર્વ પુરુષો આત્મબળની પ્રબળ દૃઢતાથી જ કોઈ પણ જાતની મદદ લેવા કદી રાજસભામાં નહિ ગયેલા, તેના અનુયાયીઓ હવે પ્રતિસ્પર્ધી સંપ્રદાયને ખસેડવા અને પોતાના સંપ્રદાયની વધારે પ્રતિષ્ઠા મેળવવા રાજસભામાં જતા નજરે પડે છે અને વળી ફરી એકવાર દરેક સંપ્રદાયના વિદ્વાનોમાં તથા આચાર્યોમાં ઓછાવત્તા પ્રમાણમાં વિજયતૃષ્ણાનું મોજું આવેલું દેખાય છે. ચંદ્રગુપ્તની વિશેષ સન્માન-ભક્તિનો લાભ જૈનાચાર્યોએ લીધો છે.[13] અશોકની વિરક્તિનું પ્રતિબિંબ બૌદ્ધ સંપ્રદાયમાં વ્યક્ત થાય છે, અને બૌદ્ધ ભિક્ષુઓ સંપ્રદાયના પ્રચાર માટે તેનો ઉપયોગ કરે છે. સંપ્રતિ રાજાની સેવા જૈન નિર્ગ્રન્થોની ઇચ્છાને અનુસરે છે. પુષ્યમિત્ર અને અગ્નિમિત્રની ભક્તિ બ્રાહ્મણોને ફરી તેજસ્વી બનાવે છે. એ બધું થોડેઘણે અંશે પરાપેક્ષાનું પરિણામ છે

૧૩. જૈનોની અનુશ્રુતિ પ્રમાણે. વિન્સેન્ટ સ્મીથ પણ આ પરંપરાને અસ્વીકાર્ય નથી ગણતા. જુઓ, અર્લી હિસ્ટ્રી ઑફ ઇન્ડિયા

એક બાજુ ત્રણ–ચાર સૈકામાં વિજયતૃષ્ણાને લીધે અનેક રાજ્યોની ચઢતી–પડતી અને ઊથલપાથલ થાય છે અને બીજી બાજુએ તે જ સૈકાઓમા ભિન્ન ભિન્ન સંપ્રદાયોની ચડતી પડતીની તુલા ઊંચીનીચી થાય છે રાજકીય ક્ષેત્રમાં, સામાજિક પ્રદેશમાં અને ધાર્મિક સંપ્રદાયોમાં જ્યાં દેખો ત્યાં અંતર્મુખ વૃત્તિનું જ પ્રાધાન્ય થાય છે. અને ફરી તર્કવાદ તથા વિજયલાલસાથી વાતાવરણ ભરાઈ જાય છે. આનું પરિણામ માત્ર ગૃહસ્થ વિદ્વાનો ઉપર જ નહિ પણ ત્યાગી ગુરુઓ ઉપર સુધ્ધાં એટલું બધું ભારે આવે છે કે દરેક વિદ્વાનનુ સાધ્ય કોઈ પણ રીતે પોતાના સપ્રદાયને પરના આક્રમણથી બચાવી લેવો અને બની શકે તો સામાને પરાભવ આપી તેને સ્થાને પ્રતિષ્ઠા મેળવવી એ થઈ જાય છે. આ સાધ્યની ચિંતાને લીધે વિદ્વાનોના માનસજગતમા કેટલો ક્ષોભ થતો, દરેક વિદ્વાન ભણ્યા પછી પોતાની વિદ્યાનુ સાધ્ય શું માનતો, તેમ જ વિવાદ તથા શાસ્ત્રાર્થના અખાડાના ઊતરી પ્રતિવાદીને વાણીની મલ્લકુસ્તીમાં હરાવવા વાદપદ્ધતિનું જ્ઞાન કેટલુ આવશ્યક સમજતો, અને તેથી વાદપદ્ધતિના દરેક નિયમ–ઉપનિયમનુ અને તત્ત્વોનુ જ્ઞાન કરાવી સભામા વિજય અપાવે એવા ગ્રંથોનુ નિર્માણ કેવી રીતે થવા લાગ્યુ હતુ તેમ જ અક્ષપાદ ગૌતમની લાભ અને ખ્યાતિ નિમિત્તે વિજયતૃષ્ણાથી પ્રેરાઈ વિવાદ કરવાની શિખામણ કેટલી ભૂલી જવાઈ હતી, એ બધું આપણે મધ્યવર્તી સમયના સાહિત્યમાં સ્પષ્ટ જોઈ શકીએ છીએ.

૬૫ વિજયવિસ્તાર.—મધ્યવર્તી સમયના સાહિત્ય તરફ વળતા સૌથી પહેલાં જૈન સાહિત્ય અને તેમાંયે સિદ્ધસેન દિવાકરની કૃતિઓ તરફ નજર દોડાવવી પડશે દિવાકર એ જૈન પરંપરા પ્રમાણે વિક્રમની પ્રથમ સદીના વિદ્વાન છે. દિવાકર પૂર્વવર્તી આશ્રમને લીધે બ્રાહ્મણોની વિદ્યાગોષ્ઠીના અને પાછળના બદલાયેલા જીવનને લીધે જૈનશ્રમણની નિવૃત્તિગતિના—એમ બંને સંસ્કારો ધરાવે છે. તેઓ ઉપાશ્રયમા અનુયાયીઓને ધાર્મિક ઉપદેશ પણ આપે છે, અને વિક્રમની સભામાં અનેક પંડિતોના વચ્ચે બહુમાનપૂર્વક

દ્વાત્રિંશિકામાં છે. વાદની ચિંતા અને વિજયની તૃષ્ણાથી વિદ્વાનો અને ત્યાગીઓની સ્થિતિ કેવી શોચનીય થઈ જાય છે તેનું ચિત્ર આઠમી વાદ દ્વાત્રિંશિકામા છે બારમી ન્યાયદ્વાત્રિંશિકામાં ન્યાયદર્શનના પદાર્થોનું અક્ષપાદના ન્યાયસૂત્રોને કાંઈક મળતુ વર્ણન છે. ન્યાયાવતારમાં જૈન સંપ્રદાય પ્રમાણે ન્યાયવાક્યની પદ્ધતિ કેવી હોવી જોઈએ તેનુ મુખ્યપણે વર્ણન છે. વિગત માટે જુઓ પરિશિષ્ટ. ૪.

એક બાજુએ, તે સમયના વિદ્વાનો રાજસભામાં વિજયપ્રાપ્તિ અને તદ્દ્વારા લાભ તથા ખ્યાતિ મેળવવી એને પોતાની વિદ્યાનુ ધ્યેય માનતા, અને તે માટે વિદ્યા મેળવવા જોઈતા શ્રમ ઉપરાંત વિજયસાધક વાદકથામાં કુશળતા મેળવવા વાદવિષયક શાસ્ત્રોનો ખૂબ અભ્યાસ કરતા, અને તે અભ્યાસનો પ્રયોગ પણ કરતા; આ કારણથી વાદમા વિજય અપાવે તેવા તેનાં રહસ્યોનુ સક્ષેપમાં વર્ણન કરે એવા ગ્રન્થોને તેઓ ચાહતા, ભણતા અને બનાવતા. બીજી બાજુ વિરક્તવૃત્તિના વિદ્વાનો આવી વિદ્યાગોષ્ઠીની એવી ધૂમાયમાન સ્થિતિ જોઈ, આધ્યાત્મિક વિદ્યાઓના દુરુપયોગની ફિકરથી નિસાસો મૂકતા, અને વિજય માટે રાત દિવસ અથાગ શ્રમ કરતા તેમ જ રાજસભામાં દોડતા વિદ્વાનોને વિસ્મય અને પરિહાસની દૃષ્ટિએ જોતા. આ બને બાજુનુ પ્રતિબિંબ દિવાકરના પ્રતિભાશાલી હૃદય ઉપર પડ્યુ અને તેઓએ તે પ્રતિબિંબને પોતાની પ્રખર કવિત્વશક્તિ દ્વારા મૂર્ત રૂપ આપ્યુ દિવાકરશ્રીએ જોયુ કે તર્કવાદ અને વિજયની તૃષ્ણા વિદ્વાનોને લક્ષ્યભ્રષ્ટ કરે છે અને તેનુ પરિણામ સૌને માટે હાનિકારક છે. તેથી તેઓએ તે સ્થિતિને વગોવી પણ જ્યા સુધી એ સ્થિતિ ચાલુ રહે અને બિલકુલ ન બદલાય ત્યા સુધી વિરક્ત થઈ એકાન્તમાં બેસી રહેવાથી સંપ્રદાયનું અસ્તિત્વ જોખમમા આવે અને તેના કેટલાક વિશિષ્ટ તત્ત્વો નામશેષ થાય એ કારણથી તેઓએ પોતાના જીવનના અનુભવમાં ઉતારેલ ઘણા વાદકથાના દાવપેચોની શિક્ષા આપવી પણ તેટલે જ અંશે યોગ્ય ધારી તેમ જ જૈન નિગ્રન્થો, જેઓ ધ્યાન ત્યાગ અને વિરક્તિને વરેલ ન્યાયવિદ્યા અને વાદકથાની વિશેષ ગડમથલમા નહોતા પડતા તેઓને પણ પરકીય અને સ્વકીય ન્યાયવિદ્યાનું જ્ઞાન મેળવવું આવશ્યક છે એમ તેઓએ જોયુ. નિવૃત્તિપ્રધાન મધ્યવર્તી સમયના પ્રારંભના જ વિદ્વાનોના મનમાં કેવી જાતના બાજુ રોપાયાં હતાં એ બધુ આથી સૂચવાય છે

આ બાજુને ઉદ્દેશીને વિક્રમના [illegible] જોઈએ છીએ. અને તેને [illegible] દર્શનચિંતનનું મધુર અને કડવું [illegible] [illegible] જોઈએ છીએ, [illegible]

ક્ષેત્રમાં જ નહિ પણ સામાજિક અને રાજકીય પ્રદેશમાં પણ આવેલાં ઇતિહાસે નોંધ્યાં છે.

કેમ જાણે દિવાકરની વાદોપનિષદના અભ્યાસથી જ વિજયકથામાં કુશળ થયા હોય તેમ હવે પછીના જૈનાચાર્યોને રાજસભામા વિજય મેળવતા આપણે જોઈએ છીએ

દિગમ્બરાચાર્ય સમંતભદ્ર વાદદ્વારા સભાઓ જીતવા ક્યાં ક્યાં ફર્યા તેની નોંધ નીચેના શ્લોકમાં છે —

काञ्च्यां नग्नाटकोऽहं मलमलिनतनुर्लाम्बुसे पाण्डुपिण्डः
पुण्ड्रोण्ड्रे शाक्यभिक्षुर्दशपुरनगरे मिष्टभोजी परिव्राट् ।
वाराणस्यामभूवं शशधरधवल पाण्डुराङ्गस्तपस्वी
राजन् यस्यास्ति शक्तिः स वदतु पुरतो जैननिर्ग्रन्थवादी ॥

આચાર્ય પાદલિપ્તના બ્રાહ્મણ વિદ્વાનો સાથેના પાટલીપુત્રમાં થયેલા વાદો, આચાર્ય મલ્લવાદીના ભરૂચ અને પાલીતાણામા બૌદ્ધ વિદ્વાનો સાથે થયેલા વાદો,[૧૪] અકલંક અને પ્રભાચંદ્રના ખંડનમંડનો, તેમ જ વિદ્યાનંદીનુ પાત્રકેસરીપણુ એ બધુ મધ્યવર્તી સમયના સાહિત્યે નોંધ્યુ છે[૧૫]

૧૪ જુઓ, પ્રભાવકચરિત્ર

૧૫ ભટ્ટારક અકલંકદેવે વાદકથાના વિષયમા ખાસ ગ્રંથ રચ્યો હોવો જોઈએ કારણ કે વાદી અને પ્રતિવાદી એ બંને કયે ક્રમે એકબીજાને દૂષણ આપે અને જીતવા પ્રયત્ન કરે એ વિષયનો તેઓનો રચેલો એક શ્લોક વાદીદેવસૂરી વિરચિત "પ્રમાણનયતત્ત્વાલોકાલંકાર'ની રત્નપ્રભકૃત રત્નાકરાવતારિકા ટીકામાં ઉદ્ધૃત છે તે આ પ્રમાણે—

विरुद्धं हेतुमुद्भाव्य वादिनं जयतीतर ।
आभासान्तरमुद्भाव्य पक्षसिद्धिमपेक्षते ॥

રત્ના [illegible], પરિચ્છેદ ૮, [illegible]

વિદ્યાનંદ સ્વામીનું તો જીવનકાર્ય જ વાદવિવાદમાં બૌદ્ધોને જીતવાનું અને જૈનધર્મની પ્રતિષ્ઠા કરવાનું હતું. તેઓએ અનેક સ્થળે પ્રતિવાદીઓને જીત્યાનો ઉલ્લેખ શિલાલેખ આપે છે [illegible]

બૌદ્ધ આચાર્યોની વાદકુશળતા અને તે વિષયની રસવૃત્તિ જેમ તેઓના પોતાના સાહિત્યમાં જોઈ શકાય છે, તેમ પ્રતિવાદી ગણાતા જૈન અને વૈદિક સાહિત્યમાં પણ તેઓ પ્રમાણપટુ તરીકે નોંધાયા છે. ચીની યાત્રી હુએન્તસંગ પણ પોતાના શ્રદ્ધાસ્પદ ગુરુ બૌદ્ધ ભિક્ખુઓની અનેક વાદકથાઓને અને તેમાં મળેલા વિજયોને નોંધે છે.

વૈદિક વિદ્વાનોમા વાત્સ્યાયન પછી શબરસ્વામી, કુમારિલ ભટ્ટ અને ઉદ્યોતકર એ બધાના સાહિત્યમાં વાદકથાનું જ બળ અને ખંડનમંડનની તૈયારી જણાય છે શ્રીમાન્ શંકરાચાર્યનો વાદકથા દ્વારા થયેલો દિગ્વિજય ચક્રવર્તીના શસ્ત્ર દ્વારા થયેલ દિગ્વિજય જેટલો જાણીતો છે અને રસપૂર્વક ગવાય છે [૧૬]

આ સમયના જૈન, બૌદ્ધ અને વૈદિક એ બધા સંપ્રદાયોના સાહિત્યની વર્ણનશૈલી પૂર્વવર્તી સમયના સાહિત્યની વર્ણનશૈલીથી બિલકુલ બદલાયેલી છે. આ વર્ણનશૈલીમા વાદપદ્ધતિનું તત્ત્વ મુખ્ય છે. પૂર્વની પ્રશ્નોત્તરપદ્ધતિ નામશેષ છે, તર્કનું સામ્રાજ્ય છે અને શ્રદ્ધા ગૌણપદે છે. ઘણાખરા ગ્રન્થોના અને તદ્‌ગત વિષયોના પ્રકરણોનાં નામ સુદ્ધાં વાદ શબ્દ સાથે જોડવામાં આવ્યાં છે. આ સમયનો કોઈ પણ દાર્શનિક ગ્રન્થ લ્યો તો તેમા મોટો અને રસ ભરેલો ભાગ તો પરમતના ખંડનથી જ રોકાયેલો હશે આખો મધ્યવર્તી સમય સામ્રાજ્યના અને સપ્રદાયના વિસ્તાર માટેની વિજયવૃત્તિથી જ મુખ્યપણે અંકિત થયેલો ઇતિહાસના પૃષ્ઠ ઉપર નોંધાયેલો છે

ખાસ દૂષિત કરી જૈન સપ્રદાયને સમત પત્ર (ન્યાયવાક્ય) ની સર્વશ્રેષ્ઠતા સિદ્ધ કરી છે અને બતાવ્યુ છે કે ન્યાયવાક્યમા બે, ત્રણ, ચાર, પાંચ, ... એ અનુક્રમે દશ સુધી અવયવો, અધિકારી શ્રોતાની અપેક્ષાએ, ... છે. ન્યાયવાક્યમા અમુક એક જ અવયવની સંખ્યા માનવી તે એકાન્ત ... એમ બતાવી તેઓએ ન્યાયવાક્યમા અવયવની સંખ્યા સુધ્ધાંમા અનેકાન્તદૃષ્ટિ ગોઠવી છે.

તેઓએ પત્રપરીક્ષામા કુમારનન્દી ભટ્ટારકના કેટલાક પદ્યો ઉદ્ધૃત કર્યાં છે. અને તે પદ્યો ન્યાયવાક્યની પરીક્ષાને લગતાં છે તેથી કુમારનન્દી ... કોઈ પ્રસિદ્ધ આચાર્ય તેઓ વિદ્યાનંદ પહેલાં થયેલા તેઓએ ... વિષયમા ... સૂચન થાય છે

[૧૬] શંકરદિગ્વિજય આદિ ગ્રંથો જોવાથી આ ... સ્પષ્ટ થશે

૧૬. છેલ્લો યુગ—વિજયવૃત્તિની પ્રધાનતાનું તત્ત્વ મધ્યવર્તી અને ઉત્તરવર્તી એ બંને સમયના વિદ્વાનોમા સમાન હોવા છતાં તેનુ સાહિત્ય અમુક લક્ષણોથી ખાસ જુદું પડે છે મધ્યવર્તી સમયનું સાહિત્ય ખંડન-મંડન પદ્ધતિથી ઊભરાય છે ખરું પણ તેમાં પ્રતિવાદીનુ ખંડન કરતાં ભાષામાં એટલી કટુકતા નથી આવી જેટલી ઉત્તરવર્તી સમયના સાહિત્યમા આવી છે. તેમ જ તે મધ્યવર્તી સાહિત્યના લખાણમા ભાષાનો પ્રસાદ અને અર્થનું ગાંભીર્ય હોય છે, જ્યારે ઉત્તરવર્તી સમયના સાહિત્યમા શાબ્દિક ચમત્કાર વધતો ગયો છે અને પરિણામે ઘણા ગ્રન્થોમા અર્થહીન શાબ્દિક પાંડિત્યને લીધે શુષ્કતા આવી ગઈ છે

ઉત્તરવર્તી સમયના સાહિત્યમાં પણ મધ્યવર્તી સમયની પેઠે વાદપદ્ધતિ વિષે સૌથી પહેલાં જૈન સાહિત્ય જ ધ્યાન ખેંચે છે તેનું કારણ એ છે કે પ્રસ્તુત વિષયને લગતુ બૌદ્ધ સાહિત્ય તો આ સમયમા અહીં રચાયુ જણાતુ નથી બ્રાહ્મણ સાહિત્ય પુષ્કળ રચાયુ છે ખરુ, પણ તે મોટે ભાગે અક્ષપાદ ગૌતમના કથાપદ્ધતિવિષયક સૂત્રોની વ્યાખ્યા અને વૃત્તિરૂપે હોઈ નવી પરિસ્થિતિ ઉપર વિશેષ પ્રકાશ પાડતુ નથી, જ્યારે જૈન સાહિત્યમા વાદપદ્ધતિવિષયક કેટલીક ખાસ કૃતિઓ એવી છે કે જેનાથી એ વિષયમા ઉત્પન્ન થયેલી પરિસ્થિતિ ઉપર થોડો પણ નવીન પ્રકાશ પડે છે.

આ સમયમા મુખ્ય ચાર આચાર્યોએ વાદપદ્ધતિ વિષે લખ્યુ છે (૧) હરિભદ્રસૂરિ, (૨) વાદી દેવસૂરિ, (૩) હેમચંદ્રસૂરિ અને (૪) વાચક યશો-વિજય વાચક યશોવિજયની કૃતિઓ–દ્વાત્રિંશિકાઓ–સ્વતન્ત્ર હોવા છતાં વસ્તુદષ્ટિએ તેને હરિભદ્રની કૃતિની સ્પષ્ટ અને વિસ્તૃત વ્યાખ્યા જ કહેવી જોઈએ. તેથી નવીનતાની દૃષ્ટિએ આદી પ્રથમના ત્રણ આચાર્યોની કૃતિઓ નો જ વિચાર કરવો પ્રાપ્ત થાય છે.

રાજસભામાં વિજય મેળવ્યો છે, તેમ જ તેવા વિજયના ઉલ્લાસમાં ખંડનમંડનાત્મક ગ્રન્થો લખી તેમા જૈન તત્ત્વજ્ઞાનના મૂળ સિદ્ધાન્ત સ્યાદ્વાદની જયપતાકા પણ ફરકાવી છે, છતા તેઓની સહજ પ્રશમવૃત્તિ અને સૂક્ષ્મ દૃષ્ટિએ તેઓને વસ્તુસ્થિતિનુ ભાન પણ કરાવ્યુ હોય તેમ પણ લાગે છે તેઓને એવો જાતિઅનુભવ થયેલો લાગે છે કે વાદોમા વિજયેચ્છામૂલક વાદો, જેને વિતણ્ડા કે જલ્પ કહીએ છીએ તે, ઉભય પક્ષને હાનિકારક છે, અને વાદકથા કરવાનું જેટલુ સામર્થ્ય હોય અને તે કરવી જ હોય તો તે નિર્ણયની ઇચ્છાથી જ કરવી

વાદપ્રિય વિદ્વાનોના પરિહાસદ્વારા વાદકથાની હેયતાનું જે સૂચન પોતાના પૂર્વજ અને શ્રદ્ધાસ્પદ આચાર્યે વાદદ્વાત્રિંશિકામાં કર્યું હતુ તે જ સૂચનને અત્યંત સ્પષ્ટ શબ્દોમા એક નાની કૃતિનુ રૂપ આપી આચાર્ય હરિભદ્રે વાદપદ્ધતિ વિષે પોતાના વિચારો બતાવ્યા છે આ આચાર્યે આઠ આઠ શ્લોક પ્રમાણ અષ્ટક એવાં બત્રીસ અષ્ટકોનો એક ગ્રન્થ લખ્યો છે, જેમાં અનેક પ્રકીર્ણ વિષયો ઉપર ગંભીર અને સમભાવયુક્ત વિચારો પ્રકટ કર્યા છે. એમાં ૧૨મું અષ્ટક વાદ વિષય ઉપર છે, જેની અંદર વાદના શુષ્કવાદ, વિવાદ અને ધર્મવાદ એવા ત્રણ ભેદ પાડેલા છે. જોકે આ ત્રણ નામો નવાં છે પણ તે અક્ષપાદની કથાપદ્ધતિના વિતણ્ડા, જલ્પ અને વાદના અનુક્રમે સૂચક છે. આ અષ્ટકમાંના નામકરણ અને વર્ણનમાં વિશેષતા એ છે કે તે ઉપરથી વિદ્વત્સમાજની પરિસ્થિતિનું ચિત્ર માનસ સામે આબેહૂબ ખડું થાય છે. ત્રણે વાદનુ સ્વરૂપ, પરિણામ અને હેયોપાદેયતા અષ્ટકમા આ પ્રમાણે છે. (क) અત્યન્ત માની, ક્રૂર ચિત્તવાળા, ધર્મદ્વેષી અને મૂઢ એવા પ્રતિવાદીની સાથે એક સાધુસ્વભાવવાળાનો જે વાદ તે શુષ્કવાદ (ख) ભૌતિક લાભ અને ખ્યાતિની ઇચ્છા રાખનાર દરિદ્ર અને અનુદાર ચિત્તવાળા પ્રતિવાદીની સાથે જે છલજાતિપ્રધાન વાદ તે વિવાદ (ग) પરલોકમા માનનાર કદાગ્રહ વિનાના અને સ્વશાસ્ત્રના તત્ત્વોને બરાબર જાણનાર એવા બુદ્ધિમાન પ્રતિવાદી સાથે જે વાદ તે ધર્મવાદ

પરિણામ—(क) શુષ્કવાદમા વિજય અને પરાજય એ બંનેનું પરિણામ અનિષ્ટ જ છે. જો પ્રતિવાદી સમર્થ હોઈ તેનાથી વાદીને પરાજય મળે તો પરાજિતને નીચું જોવુ પડે અને તેને લીધે તેના આખા સંપ્રદાયની નિંદા થે. જો પ્રતિવાદી પોતે જ હારે તો તે અત્યન્ત અભિમાની અને ક્રૂર સ્વભાવનો હોઈ [illegible] [illegible] પ્રયત્ન કરે [illegible] પરાજયને [illegible] નિદાન [illegible]

પ્રાણત્યાગ જેવું કાંઈક કરી બેસે (ख) વિવાદમા પણ વિજય અને પરાજય બંને હાનિકારક છે કારણ કે વિવાદ રાજસભા જેવાં પ્રસિદ્ધ સ્થળોમાં લાભ કે ખ્યાતિને અર્થે થતો હોવાથી જો તેમા પરાજય થાય તો પ્રતિષ્ઠા જાય છે અને વિજય તો સત્યવાદીને તેવા છળ અને અસત્યપ્રધાન વાદમા સત્યને માર્ગે મળવો કઠણ છે કદાચ સત્ય માર્ગે વિજય મળ્યો તોયે તે વિજય ધાર્મિક વ્યક્તિને ન ગમે. કારણ, પોતાના વિજયમા સામાનો પરાજય સમાયેલો છે અને સામાનો પરાજય એટલે તેની પ્રતિષ્ઠા અથવા આજીવિકાનો ઉચ્છેદ. આ રીતે પોતાના વિજયનું સામા ઉપર થતું અનિષ્ટ પરિણામ ધાર્મિક વાદીને તો અસહ્ય થઈ જ પડે છે. (ग) ધર્મવાદમાં વિજય અને પરાજય બને લાભદાયક હોય છે જો વિજય થાય તો સામો પ્રતિવાદી યોગ્ય હોવાને લીધે વિજેતાનો ધર્મ સ્વીકારે છે અગર તેનો ગુણગ્રાહી બને છે. અને જો પરાજય થાય તો પરાજિત વાદી યોગ્ય હોવાને લીધે પોતાનો ભ્રમ સુધારી તત્ત્વજ્ઞાન મેળવે છે.

આ પ્રકારનુ પરિણામ હોવાથી ધર્મવાદ જ ઉપાદેય છે અને બાકીના બે વાદો હેય છતાં કવચિત્ દેશકાલની દૃષ્ટિએ ઉપાદેય પણ છે. એટલુ ધ્યાનમા રાખવુ જોઈએ કે હરિભદ્રે જે ત્રણે પ્રકારના વાદોના પરિણામોનુ ચિત્ર આલેખ્યુ છે તે ધર્મશીલ અને સત્યવાદી વિદ્વાનને અનુલક્ષી આલેખેલુ છે.

તેઓ વિતણ્ડાને શુષ્કવાદ એવુ નામ આપી મિથ્યા બકવાદની કોટિમા મૂકે છે. જલ્પને વિવાદ કહી તેમાં વૃથા કલેશોપ સૂચવે છે અને વાદને ધર્મવાદ કહી તેની ઉપાદેયતા પ્રતિબોધે છે સાથે જ આ બધો વિચાર તેઓએ તપસ્વી (ધર્મશીલ) વાદીને અનુલક્ષી કરેલો હોવાથી એમ સૂચવના જણાય છે કે પહેલાંની લાંબા કાળથી ચાલતી અને જોશબંર વધતી વાદવિવાદની ગતિએ વિદ્વાનોમા દ્વેષ અને કલહના બીજ રોપ્યા હતા અને તેને લીધે ધાર્મિક વિદ્વાનોને સામ્પ્રદાયિક જીવન શાંતિપૂર્વક વ્યતીત કરવું બહુ જ ભારે થઈ પડ્યું હતું. વિદ્વાન થયો એટલે કોઈ પ્રતિવાદી સાથે વાદવિવાદમાં તે ન ઊતરે તો લોકો તો તેને અસમર્થ અને બીજા [illegible] સામ્પ્રદાયિક પ્રેમ વિનાનો માનતા. આથી અનુગામી લોકોની [illegible] સમ્પ્રદાયમાં દૃઢ થઈ ગયેલી (અપવાદ તેમ જ છે) તેને [illegible] હરિભદ્ર જેવા [illegible] ધર્મવાદને પ્રાધાન્ય [illegible] આપ્યું છે

ધર્મવાદ અષ્ટકમાં કરેલુ છે તેઓ સયમ અને ચારિત્રને જીવનની મુ[illegible]
વસ્તુ માનતા હોવાથી કહે છે કે ધર્મવાદમા પણ પ્રમાણ વગેરે અનુપયોગ[illegible]
વિષયો ઉપર વાદ ન કરવો. માત્ર સંયમનાં તત્ત્વો ઉપર ધર્મવાદ કરવો

હરિભદ્ર પછી દેવસૂરિનુ નામ આવે છે. તેઓ વાદીના વિશેષણ[illegible]
પ્રસિદ્ધ છે. તેઓએ પણ રાજસભામાં શાસ્ત્રાર્થ કર્યો છે અને જયલાભ ક[illegible]
છે. સિદ્ધરાજની સભામા લઘુવયસ્ક હેમચંદ્રાચાર્યને મદદમાં રાખી તેઓએ
કુમુદચંદ્ર નામના દિગમ્બરાચાર્ય સાથે વાદ કર્યાનુ અને તેમાં વિજય મેળવ્યાન[illegible]
વર્ણન શ્વેતામ્બર સાહિત્યમાં છે આ વિજયલાભ પછી તેઓએ એક
મહાન ગ્રંથ લખ્યો છે. પરિમાણમાં તેની બરાબરી કરનાર સસ્કૃત દર્શન-
સાહિત્યમાં બીજો કોઈ ગ્રન્થ રચાયો હોય તેવું મારી જાણમાં નથી. વાદી
દેવસૂરિનો એ, સ્યાદ્વાદરત્નાકર નામની વ્યાખ્યા સહિત પ્રમાણનયતત્ત્વાલોકા-
લકાર નામનો ગ્રન્થ આઠ પરિચ્છેદોમાં વહેચાયેલો છે તેમાં આઠમો પરિચ્છેદ
કેવળ વાદને લગતો છે અને તેમા વાદને લગતા વિષયોનુ અત્યન્ત સ્પષ્ટ અને
મનોરંજક વર્ણન છે. તે વાદકથાનો ઇતિહાસ જાણવા ઇચ્છનારનુ ખાસ
ધ્યાન ખેચે તેવો છે. તેમા વાદી, પ્રતિવાદી, સભ્યો અને સભાપતિ એ ચાર
અગોનુ સાંગોપાંગ વર્ણન છે. વાદી અને પ્રતિવાદીના ભેદ-પ્રભેદ કરી તેમા
સોળ પ્રકાર બતાવવામા આવ્યા છે. અને તેમા કઈ કઈ જાતના વાદીનો
કઈ કઈ જાતના પ્રતિવાદી સાથે વાદ સંભવી શકે અને કઈ જાતના સાથે
ન જ સંભવી શકે એ બતાવવામા આવ્યુ છે તેમા બતાવેલા વાદી અને
પ્રતિવાદીના કુલ સોળ પ્રકારોમા ફક્ત બાર પ્રકારોમા જ અરસપરસ વાદકથા
સંભવી શકે તેમ જણાવ્યુ છે વાદી અને પ્રતિવાદી એ બને વાદકથાના
પ્રાણ હોઈ તેઓનું શુ શુ કર્તવ્ય છે તે જણાવ્યુ છે. સાથે જ સભ્યો વિના
વાદકથા ન ચાલતી હોવાથી તેઓ કેવા પ્રકારની યોગ્યતાવાળા હોવા જોઈએ
અને તેઓનું સભ્ય તરીકે શુ કર્તવ્ય છે તે બતાવ્યુ છે કોઈ પણ વાદકથા
સભામા જ ચાલે અને સભા તો નાયક વિના ન જ હોય તેથી તેમાં શક્તિ-
વાળો સભાપતિ હોવો જોઈએ અને તેનું સભાપતિ તરીકે શુ કર્તવ્ય [illegible]
એ પણ તેઓએ વર્ણવ્યું છે આ રીતે વાદકથાના ચાર અંગો, તેઓનું
સ્વરૂપ અને કર્તવ્ય એ બધુ ખુલાસાવાર બતાવ્યા બાદ છેવટે વાદકથાની
મર્યાદા પણ બતાવવામાં આવી છે. વાદિ વિજય અને નિર્ણય બંનેની [illegible]
[illegible] એ બધાની કાલમર્યાદા સમાન ન જ હોઈ શકે [illegible]
વિશેષપૂર્વક [illegible] જાતના વાદની જુદી જુદી કાલમર્યાદા [illegible]
[illegible] સમાજ [illegible] [illegible] સર્વ [illegible]

માટે સભાના નિયમ-ઉપનિયમનું વર્ણન કરનારા પશ્ચિમીય પુસ્તકો હોય છે તેમ ધાર્મિક પ્રદેશમાંથી સૂક્ષ્મરૂપમા જન્મ પામેલી ચર્ચાપદ્ધતિનો વિકાસ થતાં થતાં તેનું વિકસિત રૂપ ભારતવર્ષમા ક્યાં સુધી પહોચ્યુ હતું તેનો કાંઈક ખ્યાલ વાદી દેવસૂરિના ચતુરંગ વાદના વિસ્તૃત વર્ણનથી આવી શકે છે વધારે વિગત માટે જુઓ પરિશિષ્ટ ૫, વિભાગ ૧.

વાદી દેવસૂરિ પછી આચાર્ય હેમચદ્ર આવે છે. આ આચાર્ય સાહિત્યની તત્કાલીન બધી શાખાઓમાં નિર્ભયપણે સંચાર કરનારા હતા તેથી જ તેઓએ એકલે હાથે ભારતીય સરસ્વતી મદિરની અનેક શાખાઓને પોતાની કૃતિઓથી અજબ રીતે દીપાવી છે તેઓની કૃતિઓ ન હોય તો ગૂજરાતનું સંસ્કૃતવાઙ્મય પોતાનુ વિશિષ્ટ તેજસ્વીપણું ન જ બતાવી શકે અને જૈનોના ભંડાર તો એક રીતે સૂના જ દેખાય. રાજગુરુ, ધર્મપ્રસારક અને સાહિત્ય-પોષક એ બહુશ્રુત લેખકનો એક ન્યાયવિષયક ગ્રંથ પણ ઉપલબ્ધ છે, જેનુ નામ પ્રમાણમીમાંસા છે

અક્ષપાદ ગૌતમની પચાધ્યાયી(ન્યાયસૂત્ર)ના જે બે અનુકરણો જોવામા આવ્યા છે તેમાંની એક દિગબરાચાર્ય અમૃતચદ્રની અને બીજી શ્વેતાંબરાચાર્ય હેમચંદ્રની પંચાધ્યાયી છે આ બંને પંચાધ્યાયીઓ પૂર્ણ ઉપલબ્ધ નથી અમૃતચંદ્રની પંચાધ્યાયી પદ્યમય છે અને તેમાં માત્ર સાંપ્રદાયિક તત્ત્વો છે. જ્યારે હેમચંદ્રની પચાધ્યાયીમા સૂત્ર અને વ્યાખ્યાનો ક્રમ છે અને તેમા પ્રમાણ, પ્રમેય આદિ દાર્શનિક તત્ત્વો છે તેથી તેનુ નામ પ્રમાણમીમાંસા રાખેલુ છે. આ પ્રમાણમીમાંસાનો દોઢ અધ્યાય એટલે ત્રણ આહ્નિક પણ પૂરા ઉપલબ્ધ નથી છતાં સદ્ભાગ્ય એટલુ કે ધર્માન્ધોની ક્રૂરતા અને અજ્ઞાનના સર્વનાશક પંજામાંથી જેટલો ભાગ બચી ગયેલો રહ્યો છે તેમા પ્રસ્તુત વિષય વાદને લગતું કેટલુંક વર્ણન સચવાઈ રહ્યું છે. હેમચંદ્રનું એ વર્ણન માત્ર ગ્રંથપાઠનુ પરિણામ નથી પણ તેની પાછળ જાગરૂક અનુભવ અને પોતાની પ્રતિભા છે વિક્રમ સંવત ૧૧૮૧ માં અણહિલપુર પાટણમાં થયેલા કુમુદચંદ્ર સાથેના દેવસૂરિના પ્રસિદ્ધ વાદ વખતે તરુણ હેમચંદ્ર હાજર હતા. એ ઉપર જણાવ્યુ છે. ત્યાર બાદ રાજસભા અને મઠોના અખાડામાં
:

હેમચંદ્ર જેમ પૂર્વવર્તી અંલકારશાસ્ત્રીઓએ માનેલા અંલકારોનુ કાવ્યાનુશાસનમાં ટૂકું વર્ગીકરણ કરે છે તેમ તે અક્ષપાદે અને ચરકે વર્ણવેલી કથાઓની સામે પ્રમાણમીમાંસામાં વાંધો લઈ માત્ર એક વાદકથાને જ સ્વીકારે છે, અને અસદુત્તર એટલે જાતિના પ્રયોગવાળા જલ્પને જુદું સ્થાન આપતા નથી પરાજય અધિકરણની સમીક્ષા કરતાં હેમચંદ્રે અક્ષપાદ અને તેના અનુગામી વાત્સ્યાયન તથા ઉદ્યોતકરે સ્વીકારેલા નિગ્રહસ્થાનના સામાન્ય અને વિશેષ સ્વરૂપને અધૂરું બતાવ્યું છે, તેમ જ ધર્મકીર્તિ આદિ બૌદ્ધ વિદ્વાનોએ માન્ય કરેલ નિગ્રહસ્થાનના સ્વરૂપને પણ તેમણે એકદેશીય સાબિત કર્યું છે, અને અકલક તથા વિદ્યાનંદી આદિ જૈનાચાર્યોએ વર્ણવેલ નિગ્રહસ્થાનના સ્વરૂપને તેમણે માન્ય રાખેલુ છે. વિદ્યાનંદીની પત્રપરીક્ષાનુ સ્મરણ કરાવે તેનુ પત્રપરીક્ષણ હેમચદ્રે આરંભ્યું છે પણ એ આરંભમાત્રમા જ ગ્રંથ ખંડિત થઈ જાય છે. વધુ વિગત માટે જુઓ પરિશિષ્ટ ૫, વિભાગ ૨

ઉત્તરવર્તી બ્રાહ્મણ સાહિત્યમાં પણ એક એવો ગ્રન્થ છે કે જે સ્વતંત્ર કૃતિ નથી કિન્તુ પ્રાચીન ગ્રન્થની વ્યાખ્યા છે. છતા તેમાં ભારતીય વિદ્વાનોની કથાપદ્ધતિના નિયમ–ઉપનિયમોનું અને દરેક અંગોનું પ્રગતિ પામેલું વર્ણન છે. આ ગ્રન્થ તે બંગાલી વિદ્વાન વિશ્વનાથ તર્કપચાનનની અક્ષપાદ ગૌતમના સૂત્રો ઉપરની વૃત્તિ એ વૃત્તિમા પણ સભાપતિ કેવો હોવો જોઈએ, તેનુ કર્તવ્ય શું, સભ્યો કેવા, અને શા કામ માટે હોવા જોઈએ, દરેક કથા કમે કમે ચાલવી જોઈએ એ બધું વર્ણન વાદી દેવસૂરિના વર્ણન જેવુ વિગતવાર છે.[૧૭] વિગત માટે જુઓ પરિશિષ્ટ ૬. આ રીતે કથાપદ્ધતિના સ્વરૂપનો અને તેના સાહિત્યનો સક્ષિપ્ત ઈતિહાસ અક્ષપાદના મૂળ સૂત્રોથી શરૂ થઈ તેની જ વૃત્તિમાં વિરમે છે.

પરિશિષ્ટ ૧

ન્યાયના સોળ પદાર્થો

છલ, જાતિ અને નિગ્રહસ્થાનોની સ્પષ્ટ માહિતી સાથે

૧ પ્રમાણ :-યથાર્થ જ્ઞાનનું સાધન. તે ચાર છે–પ્રત્યક્ષ, અનુમાન, ઉપમાન અને શબ્દ

૨ પ્રમેય.—યથાર્થ જ્ઞાનનો વિષય બની શકે તે તે બાર છે. આત્મા,

૧૭ જુઓ ન્યા સૂ અ ૧, આ ૨, સૂ. ૧–૨. વિશ્વનાથની વૃત્તિ

શરીર, ઇન્દ્રિય, અર્થ, બુદ્ધિ, મન, પ્રવૃત્તિ, પ્રેત્યભાવ, દોષ, ફલ, દુઃખ અને અપવર્ગ

૩ **સંશય** –એક જ વસ્તુઓમાં પરસ્પર વિરોધી એવા બે અંશોને સ્પર્શ કરતુ જ્ઞાન

૪ **પ્રયોજન**:–જે (હેય અગર ઉપાદેય) વસ્તુના ઉદ્દેશથી પ્રવૃતિ થાય છે તે વસ્તુ પ્રયોજન

૫ **દૃષ્ટાંત** –જે વિષે શાસ્ત્રજ્ઞ અને વ્યવહારજ્ઞનો મતભેદ ન હોય તે દૃષ્ટાન્ત.

૬ **સિદ્ધાંત** –અમુક વસ્તુ અમુક રૂપે છે એ રીતે જે સ્વીકારાય છે તે સિદ્ધાત તે ચાર છે સર્વતન્ત્ર, પ્રતિતન્ત્ર. અધિકરણ અને અભ્યુપગમ

૭ **અવયવ** –અનુમાનવાક્યના અવયવો. તે પાંચ છે . પ્રતિજ્ઞા, હેતુ, ઉદાહરણ, ઉપનય અને નિગમન.

૮ **તર્ક**·–જ્યારે કોઈ વસ્તુનુ સ્વરૂપ જ્ઞાત ન હોય ત્યારે તેનું સ્વરૂપ જાણવા માટે એક વસ્તુનું આપાદન કરી તેના ઉપરથી બીજી અનિષ્ટ વસ્તુનું આપાદન કરવું તે તર્ક.

૯ **નિર્ણય**.–સદેહ થયા પછી પક્ષ અને પ્રતિપક્ષ દ્વારા બેમાંથી એક અશનું નિર્ધારણ તે નિર્ણય

૧૦ **વાદ**, ૧૧ **જલ્પ**. ૧૨ **વિતણ્ડા** –જુઓ પૃ ૨૯૧.

૧૩ **હેત્વાભાસ**:–જે સાચો હેતુ ન હોવા છતા હેતુ જેવો જણાય તે હેત્વાભાસ. તે પાચ છે: સવ્યભિચાર. વિરુદ્ધ, પ્રકરણસમ. સાધ્યસમ, અને કાલાતીત

૧૪ **છલ** –વક્તાના વિવક્ષિત અર્થથી જુદા અર્થની કલ્પના કરી તેના વાક્યને દૂષિત કરવુ તે છલ તે ત્રણ જાતના છે વાક્છલ. સામાન્યછલ, ઉપચારછલ.

નીકળે છે. તેમાંથી વક્તાના અભિપ્રાયથી અન્ય અર્થની કલ્પના કરેલી છે.

સામાન્ય છલ – "આ બ્રાહ્મણ વિદ્યા અને આચરણથી સંપન્ન છે" એમ કહેતા છલવાદી કહે "બ્રાહ્મણમાં વિદ્યાચરણ સંભવે છે, ત્યારે વ્રાત્ય (વિદ્યાચરણહીન માત્ર જન્મથી બ્રાહ્મણ) પણ વિદ્યાચરણસંપન્ન હોવો જોઈએ, કારણ કે તે બ્રાહ્મણ છે અહીં બ્રાહ્મણત્વનું વિદ્યા અને આચરણ સાથે સાહચર્ય માત્ર વિવક્ષિત હતું એને છલવાદીએ વધારે ખેંચી વિદ્યાચરણની સાથે તેની વ્યાપ્તિ કલ્પી તેને દૂષિત કરેલ છે

ઉપચારછલ –જેમ કે "માચાઓ બૂમ પાડે છે' એમ કહેતાં છલવાદી કહે કે "માચા ઉપર બેસનારા બૂમો પાડે છે માંચાઓ ક્યા બૂમ પાડે છે?" એમ કહી વક્તાને ઉતારી પાડે તે ઉપચારછલ આમાં લક્ષણાથી થયેલા પ્રયોગમા વાચ્યાર્થ કલ્પી દોષ આપ્યો છે માટે ઉપચારછલ

૧૫ જાતિ:–સાધર્મ્ય અને વૈધર્મ્ય દ્વારા (સાદૃશ્ય અને વૈસદૃશ્ય દ્વારા) અનિષ્ટ પ્રસંગ આપવો તે જાતિ. તે ચોવીસ પ્રકારની છે. સાધર્મ્યસમ, વૈધર્મ્યસમ, ઉત્કર્ષસમ અપકર્ષસમ, વર્ણ્યસમ, વિકલ્પસમ, સાધ્યસમ, પ્રાપ્તિસમ, અપ્રાપ્તિસમ, પ્રસંગસમ. પ્રતિદૃષ્ટાન્તસમ, અનુત્પત્તિ સમ, સંશયસમ, પ્રકરણસમ, હેતુસમ, અર્થાપત્તિસમ, અવિશેષસમ, ઉપપત્તિસમ, ઉપલબ્ધિસમ, અનુપલબ્ધિસમ, નિત્યસમ, અનિત્યસમ કાર્યસમ.

(૧) કોઈ વાદી ઘટને દૃષ્ટાન્ત કરી કૃતકત્વ હેતુથી શબ્દને અનિત્ય સિદ્ધ કરે ત્યારે એમ દૂષણ આપવું કે જો અનિત્ય ઘટના કૃતકત્વ સાધર્મ્ય (સમાનધર્મ) થી શબ્દને અનિત્ય સિદ્ધ કરવામાં આવે તો નિત્ય આકાશના અમૂર્તત્વ સાધર્મ્યથી શબ્દ નિત્ય પણ કેમ ન સિદ્ધ થાય? આ રીતે સાધર્મ્ય દ્વારા દૂષણ આપવું તે સાધર્મ્યસમ

(૩) કોઈ વાદી ઘટને દૃષ્ટાંત કરી તેના કૃતકત્વ સાધર્મ્યથી શબ્દને અનિત્ય સિદ્ધ કરતો હોય ત્યારે કહેવું કે જો કૃતકત્વ સાધર્મ્યથી ઘટની જેમ શબ્દ અનિત્ય સિદ્ધ થતો હોય તો ઘટની પેઠે જ તે મૂર્ત પણ સિદ્ધ થાય અને જો શબ્દને મૂર્ત ન માનો તો અનિત્ય પણ ન માનો આ રીતે ઉત્કર્ષદ્વારા દૂષણ આપવું તે ઉત્કર્ષસમ

(૪) પૂર્વોક્ત જ પ્રયોગમા કહેવુ કે જો કૃતકત્વ સાધર્મ્યથી ઘટની જેમ શબ્દને અનિત્ય સિદ્ધ કરો તો તે જ સાધર્મ્યથી શબ્દ ઘટની જેમ અશ્રાવણ (શ્રવણેન્દ્રિયથી અગ્રાહ્ય) પણ સિદ્ધ થાય. અને જો શબ્દને અશ્રાવણ ન માનો તો પછી ઘટદૃષ્ટાંતથી તેને અનિત્ય પણ ન માનો; આ રીતે અપકર્ષદ્વારા દૂષણ આપવુ તે અપકર્ષસમ

(૫-૬) વર્ણ્ય એટલે વર્ણન કરવા યોગ્ય સાધ્ય ધર્મ અને અવર્ણ્ય એટલે વર્ણન કરવાને અયોગ્ય દૃષ્ટાંતધર્મ આ બન્ને વર્ણ્ય અને અવર્ણ્ય એવા સાધ્ય તથા દૃષ્ટાંતધર્મોનો વિપર્યાસ કરવાથી જે દૂષણ પ્રાપ્ત થાય છે તે વર્ણ્યસમ અને અવર્ણ્યસમ જાતિ. આ બન્નેનુ ઉદાહરણ –જેમકે કોઈ ઘટદૃષ્ટાંતથી કૃતકત્વ હેતુદ્વારા શબ્દને અનિત્ય સિદ્ધ કરતો હોય ત્યારે કહેવું કે શબ્દમાં જેવુ કૃતકત્વ છે તેવું કૃતકત્વ ઘટમા નથી અને ઘટમા જેવું છે તેવુ શબ્દમા નથી [illegible] દૃષ્ટાંતના ધર્મો તો સમાન જોઈએ અહીં તો શબ્દ [illegible] કૃતકત્વ જુદું છે કારણ કે ઘટ કુંભકાર વગેરે [illegible] અને શબ્દ [illegible] તાલુ આદિના વ્યાપારથી [illegible] વર્ણ્યસમ અને અવર્ણ્યસમ [illegible] જાતિ [illegible]

આ રીતે દૃષ્ટાંતમાં સાધ્યના (પક્ષના) સામ્યનું આપાદન કરવું તે સાધ્યસમ

(૯)–(૧૦) કૃતકત્વ હેતુ પોતાના સાધ્ય અનિત્યત્વને પ્રાપ્ત થઈને સિદ્ધ કરે છે કે અપ્રાપ્ત થઈને? જો પ્રાપ્ત થઈને સિદ્ધ કરે છે એમ કહો તો બંને વિદ્યમાનની જ પ્રાપ્તિ ઘટતી હોવાથી કોણ સાધન અને કોણ સાધ્ય એ નક્કી નહિ કરી શકાય. જો અપ્રાપ્ત થઈને સાધ્ય સિદ્ધ કરે છે એમ કહો તો અપ્રાપ્તહેતુ કદી જ સાધક ન હોઈ શકે આ રીતે પ્રાપ્તિ અને અપ્રાપ્તિનો વિકલ્પ કરી દૂષણ આપવાં તે અનુક્રમે પ્રાપ્તિસમ અને અપ્રાપ્તિસમ.

(૧૧) અનિત્યત્વ સિદ્ધ કરવા માટે કૃતકત્વને હેતુ કરવામાં આવે તો કૃતકત્વને સિદ્ધ કરવામાં હેતુ કયો? અને વળી તે કૃતકત્વસાધક હેતુને સિદ્ધ કરનાર બીજો હેતુ કયો? એ રીતે અનવસ્થાપ્રસંગનું આપાદન કરવું તે પ્રસંગસમ

(૧૨) જો પ્રયત્ન પછી જ ઉપલબ્ધ (પ્રયત્નાનન્તરીયક) હોવાને લીધે ઘટની જેમ શબ્દ અનિત્ય હોય તો કૂપખનન આદિ પ્રસંગે પ્રયત્ન પછી જ ઉપલબ્ધ એવા આકાશની જેમ તે શબ્દ નિત્ય કેમ ન સિદ્ધ થાય? આ રીતે પ્રતિદૃષ્ટાન્તથી (વિરોધી દૃષ્ટાંતથી) દૂષણ આપવું તે પ્રતિદૃષ્ટાન્તસમ.

(૧૩) કૃતકત્વ હેતુથી શબ્દને અનિત્ય સિદ્ધ કરો છો પણ તે હેતુ શબ્દ ઉત્પન્ન થયા પહેલાં ક્યાં રહે? અને જો હેતુને રહેવાનો આશ્રય ન હોય તો હેતુના (કૃતકત્વના) અભાવને લીધે સાધ્ય જ સિદ્ધ ન થઈ શકે. એ રીતે અનુત્પત્તિ દ્વારા દૂષણ આપવું તે અનુત્પત્તિસમ

(૧૪) ઘટના સાધર્મ્ય કૃતકત્વથી શબ્દને અનિત્ય માનવો કે ઘટના વૈધર્મ્ય અને આકાશના સાધર્મ્ય અમૂર્તત્વથી શબ્દને નિત્ય માનવો? આ રીતે સંશયનું આપાદન કરવું તે સંશયસમ

ડાબા અને જમણા બંને સમકાલીન શીંગડાઓની પેઠે કોઈ કોઈનું સાધ્ય ન હોઈ શકે. સમકાલીન તો બંને સમાન જ હોવા જોઈએ. તેમાં એક સાધક અને બીજું સાધ્ય એવી કલ્પના જ અઘટિત છે. આ રીતે ત્રણે કાળની અનુપપત્તિ ધારી હેતુને દૂષિત કરવો તે હેતુસમ.

) જો ઘટ આદિ અનિત્ય વસ્તુના કૃતકત્વરૂપ સમાનધર્મથી શબ્દને અનિત્ય સિદ્ધ કરવામાં આવે તો અર્થાપત્તિથી એમ પ્રાપ્ત થાય છે કે નિત્ય વસ્તુના સાધર્મ્યથી શબ્દ નિત્ય પણ સિદ્ધ થઈ શકે. આકાશ આદિ નિત્ય વસ્તુનું અમૂર્તત્વરૂપ સાધર્મ્ય શબ્દમા છે જ એટલે શબ્દ નિત્ય કાં સિદ્ધ ન થાય ? એ રીતે અર્થાપત્તિદ્વારા દૂષણ આપવુ તે અર્થાપત્તિસમ.

) જો કૃતકત્વ એ ધર્મ શબ્દ અને ઘટનો સમાન (એક) માનવામાં આવે તો તે ધર્મદ્વારા શબ્દ અને ઘટ એ બંનેની જેમ અવિશેષતા પ્રાપ્ત થાય છે તેમ કોઈ પણ સમાનધર્મ દ્વારા સમગ્ર પદાર્થોમાં અવિશેષતા પ્રાપ્ત થાય આ રીતે અવિશેષતાનુ આપાદન કરી દૂષણ આપવું તે અવિશેષસમ.

:) જો કૃતકત્વને લીધે શબ્દને અનિત્ય માનવામા આવે તો અમૂર્તત્વને લીધે નિત્ય શા માટે ન માનવામાં આવે ? આ રીતે બંને ધર્મની ઉપપત્તિ હોવાથી છેવટે શબ્દ અમુક જ પ્રકારનો છે એવો નિશ્ચય નહિ થઈ શકે એમ દૂષણ આપવું તે ઉપપત્તિસમ.

૦) કોઈ એમ કહે કે શબ્દ અનિત્ય છે, કારણ કે તે પ્રયત્નાનન્તરીયક (એટલે પ્રયત્નની પછી જ થનાર) છે તો તેને એમ કહેવું કે સાધન તો તેને જ કહી શકાય કે જેના વિના સાધ્ય ઉપલબ્ધ ન થાય. પરંતુ વિદ્યુત વગેરે વસ્તુઓ અનિત્ય છતાં પ્રયત્ન વિના જ ઉપલબ્ધ થાય છે, અગર સહજ રીતે ભાગતા લાકડા વગેરેનો શબ્દ પણ અનિત્ય છતા પ્રયત્ન વિના જ ઉત્પન્ન થતો દેખાય છે એટલે પ્રયત્નાનન્તરીયકપણું એ અનિત્યત્વનું સાધન કેવી રીતે થઈ શકે ? આ પ્રમાણે ઉપલબ્ધિ દ્વારા દૂષણ આપવું તે ઉપલબ્ધિસમ

૧) પૂર્વોક્ત જ પ્રયોગમા એમ કહેવું કે શબ્દ પ્રયત્નાનન્તરીયક હોવા છતાં અનિત્ય (જન્ય) તો નથી જ. કારણ કે તે શબ્દ ઉચ્ચારણપૂર્વે પ્રયત્નના પહેલા પણ છે જ. માત્ર આવરણ હોવાથી ઉચ્ચારણ પહેલા તેની ઉપલબ્ધિ થતી નથી. એટલે પ્રયત્નથી માત્ર આવરણભંગ જ થાય છે તેનાથી કોઈ શબ્દ ઉત્પન્ન થતો નથી શબ્દ તો પ્રથમથી જ છે આ રીતે અનુપલબ્ધિ દ્વારા દૂષણ આપવું તે અનુપલબ્ધિસમ

આ રીતે દૃષ્ટાન્તમાં સાધ્યના (પક્ષના) સામ્યનું આપાદન કરવું તે સાધ્યસમ

(૯)-(૧૦) કૃતકત્વ હેતુ પોતાના સાધ્ય અનિત્યત્વને પ્રાપ્ત થઈને સિદ્ધ કરે છે કે અપ્રાપ્ત થઈને? જો પ્રાપ્ત થઈને સિદ્ધ કરે છે એમ કહો તો બંને વિદ્યમાનની જ પ્રાપ્તિ ઘટતી હોવાથી કોણ સાધન અને કોણ સાધ્ય એ નક્કી નહિ કરી શકાય. જો અપ્રાપ્ત થઈને સાધ્ય સિદ્ધ કરે છે એમ કહો તો અપ્રાપ્તહેતુ કદી જ સાધક ન હોઈ શકે આ રીતે પ્રાપ્તિ અને અપ્રાપ્તિનો વિકલ્પ કરી દૂષણ આપવાં તે અનુક્રમે પ્રાપ્તિસમ અને અપ્રાપ્તિસમ.

(૧૧) અનિત્યત્વ સિદ્ધ કરવા માટે કૃતકત્વને હેતુ કરવામાં આવે તો કૃતકત્વને સિદ્ધ કરવામાં હેતુ કયો? અને વળી તે કૃતકત્વસાધક હેતુને સિદ્ધ કરનાર બીજો હેતુ કયો? એ રીતે અનવસ્થાપ્રસંગનું આપાદન કરવું તે પ્રસંગસમ

(૧૨) જો પ્રયત્ન પછી જ ઉપલબ્ધ (પ્રયત્નાનન્તરીયક) હોવાને લીધે ઘટની જેમ શબ્દ અનિત્ય હોય તો કૂપખનન આદિ પ્રસંગે પ્રયત્ન પછી જ ઉપલબ્ધ એવા આકાશની જેમ તે શબ્દ નિત્ય કેમ ન સિદ્ધ થાય? આ રીતે પ્રતિદૃષ્ટાન્તથી (વિરોધી દૃષ્ટાનથી) દૂષણ આપવું તે પ્રતિદૃષ્ટાન્તસમ

(૧૩) કૃતકત્વ હેતુથી શબ્દને અનિત્ય સિદ્ધ કરો છો પણ તે હેતુ શબ્દ ઉત્પન્ન થયા પહેલાં ક્યાં રહે? અને જો હેતુને રહેવાનો આશ્રય ન હોય તો હેતુના (કૃતકત્વના) અભાવને લીધે સાધ્ય જ સિદ્ધ ન થઈ શકે એ રીતે અનુત્પત્તિ દ્વારા દૂષણ આપવું તે અનુત્પત્તિસમ

(૧૪) ઘટના સાધર્મ્ય કૃતકત્વથી શબ્દને અનિત્ય માનવો કે ઘટના વૈધર્મ્ય પણ આકાશના સાધર્મ્ય અમૂર્તત્વથી શબ્દને નિત્ય માનવો? આ રીતે સંશયનું આપાદન કરવું તે સંશયસમ

ડાબા અને જમણા બંને સમકાલીન શીંગડાઓની પેઠે કોઈ કોઈનું સાધ્ય ન હોઈ શકે. સમકાલીન તો બંને સમાન જ હોવા જોઈએ. તેમાં એક સાધક અને બીજું સાધ્ય એવી કલ્પના જ અઘટિત છે. આ રીતે ત્રણે કાળની અનુપપત્તિ ધારી હેતુને દૂષિત કરવો તે હેતુસમ.

(૧૭) જો ઘટ આદિ અનિત્ય વસ્તુના કૃતકત્વરૂપ સમાનધર્મથી શબ્દને અનિત્ય સિદ્ધ કરવામાં આવે તો અર્થાપત્તિથી એમ પ્રાપ્ત થાય છે કે નિત્ય વસ્તુના સાધર્મ્યથી શબ્દ નિત્ય પણ સિદ્ધ થઈ શકે. આકાશ આદિ નિત્ય વસ્તુનું અમૂર્તત્વરૂપ સાધર્મ્ય શબ્દમાં છે જ એટલે શબ્દ નિત્ય કાં સિદ્ધ ન થાય? એ રીતે અર્થાપત્તિદ્વારા દૂષણ આપવું તે અર્થાપત્તિસમ.

(૧૮) જો કૃતકત્વ એ ધર્મ શબ્દ અને ઘટનો સમાન (એક) માનવામાં આવે તો તે ધર્મદ્વારા શબ્દ અને ઘટ એ બંનેની જેમ અવિશેષતા પ્રાપ્ત થાય છે તેમ કોઈ પણ સમાનધર્મ દ્વારા સમગ્ર પદાર્થોમાં અવિશેષતા પ્રાપ્ત થાય. આ રીતે અવિશેષતાનુ આપાદન કરી દૂષણ આપવું તે અવિશેષસમ.

(૧૯) જો કૃતકત્વને લીધે શબ્દને અનિત્ય માનવામા આવે તો અમૂર્તત્વને લીધે નિત્ય શા માટે ન માનવામાં આવે? આ રીતે બંને ધર્મની ઉપપત્તિ હોવાથી છેવટે શબ્દ અમુક જ પ્રકારનો છે એવો નિશ્ચય નહિ થઈ શકે એમ દૂષણ આપવું તે ઉપપત્તિસમ.

(૨૦) કોઈ એમ કહે કે શબ્દ અનિત્ય છે, કારણ કે તે પ્રયત્નાનન્તરીયક (એટલે પ્રયત્નની પછી જ થનાર) છે તો તેને એમ કહેવુ કે સાધન તો તેને જ કહી શકાય કે જેના વિના સાધ્ય ઉપલબ્ધ ન થાય પરન્તુ વિદ્યુત વગેરે વસ્તુઓ અનિત્ય છતા પ્રયત્ન વિના જ ઉપલબ્ધ થાય છે, અગર સહજ રીતે ભાગતાં લાકડા વગેરેનો શબ્દ પણ અનિત્ય છતા પ્રયત્ન વિના જ ઉત્પન્ન થતો દેખાય છે એટલે પ્રયત્નાનન્તરીયકપણું એ અનિત્યત્વનું સાધન કેવી રીતે થઈ શકે? આ પ્રમાણે ઉપલબ્ધિ દ્વારા દૂષણ આપવું તે ઉપલબ્ધિસમ.

(૨૧) પૂર્વોક્ત જ પ્રયોગમા એમ કહેવુ કે શબ્દ પ્રયત્નાનન્તરીયક હોવા છતા અનિત્ય (જન્ય) તો નથી જ. કારણ કે તે શબ્દ ઉચ્ચારણપૂર્વે પ્રયત્નના પહેલાં પણ છે જ. માત્ર આવરણ હોવાથી ઉચ્ચારણ પહેલાં તેની ઉપલબ્ધિ થતી નથી. એટલે પ્રયત્નથી માત્ર આવરણનો જ ભંગ થાય છે તેનાથી કંઈ શબ્દ ઉત્પન્ન થતો નથી શબ્દ તો અવસ્થિત જ છે. આ રીતે અનુપલબ્ધિ દ્વારા દૂષણ આપવું તે અનુપલબ્ધિસમ

(૨૨) શબ્દમાં અનિત્યત્વ સિદ્ધ કરનારને કહેવું કે અનિત્યતા પોતે અનિત્ય છે કે નિત્ય છે? જો અનિત્ય હોય તો અનિત્યતા પોતે જ નષ્ટ થવાની એટલે અનિત્યતાનો નાશ એજ નિત્યતા. આ રીતે શબ્દની અનિત્યતાનો નાશ થવાથી શબ્દ નિત્ય થયો અને જો અનિત્યતા પોતે નિત્ય હોય તો તે નિત્ય અનિત્યતાને રહેવા માટે તેનો આશ્રયભૂત શબ્દ પણ નિત્ય હોવો જ જોઈએ જ્યાં સુધી આશ્રય નિત્ય માનવામાં ન આવે ત્યાં સુધી તેના ધર્મને નિત્ય માનવાનો કંઈજ અર્થ જ નથી, એટલે અનિત્યતાને નિત્ય માનવા જતાં પણ શબ્દ નિત્ય જ સિદ્ધ થયો. એ પ્રમાણે સાધ્યને નિત્ય અને અનિત્ય માનવાનો વિકલ્પ કરી બંને રીતે નિત્યત્વ જ સિદ્ધ કરવું તે નિત્યસમ.

(૨૩) જો અનિત્યત્વ ધર્મ દ્વારા ઘટ અને શબ્દ વચ્ચે સાધર્મ્ય હોવાથી શબ્દને અનિત્ય માનવામાં આવે તો દરેક પદાર્થનું ઘટ સાથે કાંઈક નો સાધર્મ્ય છે જ એટલે દરેક પદાર્થ ઘટની જેમ અનિત્ય સિદ્ધ કાં ન થાય? અને જો તેમ ન થાય તો પછી શબ્દને પણ અનિત્ય કાં માનવામાં આવે? આ રીતે અનિત્યત્વ દ્વારા દૂષણ આપવું તે અનિત્યસમ.

(૨૪) પ્રયત્નાનન્તરીયક (પ્રયત્ન પછી થતા) હોવાથી શબ્દને અનિત્ય સિદ્ધ કરનાર પ્રત્યે કહેવું કે પ્રયત્નના કાર્ય અનેક પ્રકારના છે કોઈ અસત્ (અવિદ્યમાન) વસ્તુ જ પ્રયત્નથી થાય છે જેમ કે ઘટ વગેરે ત્યારે કેટલીક વસ્તુઓ સત્ (વિદ્યમાન) જ પ્રયત્નથી માત્ર વ્યક્ત થાય છે આ રીતે પ્રયત્નનું કાર્ય ઉત્પત્તિ અને અભિવ્યક્તિ, એ બે પ્રકારનું દેખાય છે. તો પછી અહીં શબ્દને પ્રયત્નજન્ય માનવો કે પ્રયત્નવ્યંગ્ય માનવો? આ રીતે કાર્યનું નાનાત્વ બતાવી દૂષણ આપવું તે કાર્યસમ.

ગણાવવામાં આવ્યા છે. જેમાં ૭ નિગ્રહસ્થાન અપ્રતિપત્તિ પક્ષમાં અને બાકીના સોળ વિપ્રતિપત્તિ પક્ષમાં આવે છે તે બાવીસ આ પ્રમાણે: (૧) પ્રતિજ્ઞાહાનિ (૨) પ્રતિજ્ઞાન્તર (૩) પ્રતિજ્ઞાવિરોધ (૪) પ્રતિજ્ઞા-સંન્યાસ (૫) હેત્વન્તર (૬) અર્થાન્તર (૭) નિરર્થક (૮) અવિજ્ઞાતાર્થ (૯) અપાર્થક (૧૦) અપ્રાપ્તકાલ (૧૧) ન્યૂન (૧૨) અધિક (૧૩) પુનરુક્ત (૧૪) અનનુભાષણ (૧૫) અજ્ઞાન (૧૬) અપ્રતિભા (૧૭) વિક્ષેપ (૧૮) મતાનુજ્ઞા (૧૯) પર્યનુયોજ્યોપેક્ષણ (૨૦) નિરનુયોજ્યાનુયોગ (૨૧) અપસિદ્ધાંત (૨૨) હેત્વાભાસો આમાં નંબર ૧૪, ૧૫, ૧૬, ૧૭, ૧૮ અને ૧૯ એ ૭ અપ્રતિપત્તિપક્ષીય છે.[૧] આ દરેકનું સોદાહરણ સ્વરૂપ નીચે મુજબ —

(૧) ઘટને દૃષ્ટાંત અને ઐન્દ્રિયકત્વ (ઇન્દ્રિયગ્રાહ્યત્વ) ને હેતુ રાખી શબ્દને અનિત્ય સિદ્ધ કરવાની વાદીએ પ્રતિજ્ઞા કરી હોય તેટલામાં પ્રતિવાદી કહે જે ઐન્દ્રિયકત્વ હેતુ તો સામાન્ય (જાતિ) માં છે જે કે નિત્ય છે. આ રીતે ઐન્દ્રિયકત્વ હેતુ વ્યભિચારી થાય છે. આ દૂષણ સાંભળતાં જ વાદી તો તેનો ઉદ્ધાર કરવાને બદલે (નિકાલ આણવાને બદલે) એમ કહે "ત્યારે ભલે, સામાન્યની પેઠે શબ્દ નિત્ય સિદ્ધ થાય." આમ કહેતાં તેણે નિત્યત્વ સ્વીકાર્યો એટલે પ્રથમ કરેલ અનિત્યત્વની પ્રતિજ્ઞા ગઈ. આ રીતે પ્રતિજ્ઞાહાનિ થવાથી તે પરાજય પામે છે માટે તે પ્રતિજ્ઞાહાનિ નિગ્રહસ્થાન

(૨) પૂર્વોક્ત જ પ્રયોગ કરનાર વાદીને પ્રતિવાદી કહે જે ઐન્દ્રિયકત્વ સામાન્યમાં છે છતાં તે નિત્ય છે એટલે હેતુ વ્યભિચારી છે. આ પ્રમાણે પ્રતિવાદી દ્વારા અપાયેલ વ્યભિચાર દોષનો ઉદ્ધાર કરવાને બદલે વાદી એમ કહે જે સામાન્ય નિત્ય અને ઐન્દ્રિયક છે પરંતુ તે તો સર્વગત (સર્વવ્યાપી) છે અને શબ્દ તો અસર્વગત છે. આ પ્રકારે કહેવામાં પ્રથમની અનિત્યત્વ સિદ્ધ કરવાની પ્રતિજ્ઞાથી ભિન્ન એવી શબ્દને અસર્વગત સિદ્ધ કરવાની અન્ય પ્રતિજ્ઞા પ્રાપ્ત થાય છે તેથી તે પરાજય પામે છે માટે આ પ્રતિજ્ઞાન્તર નિગ્રહસ્થાન

(૩) દ્રવ્ય ગુણોથી ભિન્ન છે, કારણ કે રૂપ આદિ ગુણોથી ભિન્ન એવી [illegible]

૧ આચાર્ય હેમચંદ્ર અને ગુણરત્નસૂરિ મતાનુજ્ઞા સિવાયનાં પાંચને જ અપ્રતિપત્તિમાં ગણે છે. જુઓ પ્રમાણમીમાંસા પત્ર [illegible] પૃ૦ ૨. તથા ષડ્દર્શનસમુચ્ચય ટીકા પત્ર [illegible] જાતિ અને નિગ્રહસ્થાનનું વર્ણન [illegible] ગુણરત્નની ટીકામાંથી લીધું છે

વસ્તુની ઉપલબ્ધિ થતી નથી. આ રીતે કહેનાર વાદીની પ્રતિજ્ઞા અને હેતુ એ બંને વચ્ચે દેખીતો વિરોધ છે. જો દ્રવ્ય ગુણોથી ભિન્ન જ હોય તો રૂપાદિથી ભિન્ન વસ્તુની ઉપલબ્ધિ થતી નથી એવો હેતુ સંભવે જ નહિ કારણ કે દ્રવ્ય પોતે જ ભિન્ન છે. અને જો ભિન્ન વસ્તુની ઉપલબ્ધિ નથી થતી એ હેતુ જ સત્ય હોય તો ગુણોથી દ્રવ્ય ભિન્ન છે એ પ્રતિજ્ઞા મિથ્યા છે. એ પ્રમાણે પ્રતિજ્ઞા (સાધ્ય) અને હેતુના પારસ્પરિક વિરોધવાળું કથન કરવાથી વાદી પરાજય પામે છે. માટે તે પ્રતિજ્ઞાવિરોધ નિગ્રહસ્થાન.

(૪) ઐન્દ્રિયકત્વ હેતુથી શબ્દમાં અનિત્યત્વ સિદ્ધ કરનાર વાદીને પ્રતિવાદી પ્રથમની જેમ નિત્ય સામાન્યદ્વારા વ્યભિચારનું દૂષણ આપે ત્યારે વાદી તે દૂષણ દૂર કરવાને બદલે એમ કહે કે કોણ શબ્દને અનિત્ય કહે છે? આ રીતે કહેવામાં પોતાની પ્રથમની પ્રતિજ્ઞાનો અપલાપ (પરિત્યાગ) થતો હોવાથી તે પરાજય પામે છે. માટે તે પ્રતિજ્ઞાસંન્યાસ નિગ્રહસ્થાન છે.

(૫) પૂર્વોક્ત જ ઉદાહરણમાં સામાન્યદ્વારા ઐન્દ્રિયકત્વ હેતુને વ્યભિચાર-દૂષણ આપતાં વાદી તે દૂષણનો ઉદ્ધાર કરવા માટે પ્રથમના હેતુમાં એક નવું વિશેષણ લગાડી કહે કે માત્ર ઐન્દ્રિયકત્વ એ અનિત્યત્વ-સાધક હેતુ નથી પણ જાતિવિશિષ્ટ ઐન્દ્રિયકત્વ અનિત્યત્વનો સાધક હેતુ છે. આમ કહેવામાં બીજા જ હેતુનું ઉપાદાન કરવાથી વાદી પરાજય પામે છે. માટે તે હેત્વન્તર નિગ્રહસ્થાન

(૧) વાદી પોતાના પક્ષનું સાધન કરતો હોય કે સામાના પક્ષનુ દૂષણ કરતો હોય પણ તે પોતાનુ વક્તવ્ય ત્રણ વાર કહે છતાં તેને સભા કે પ્રતિવાદી કોઈ ન સમજી શકે તો એ કથન કાં તો કિલષ્ટ શબ્દવાળું હોવુ જોઈએ અથવા તેના શબ્દો સર્વપ્રસિદ્ધ ન હોવા જોઈએ—અને કાં તો તે અત્યંત ધીરેથી બોલતો હોવો જોઈએ. ગમે તેમ હોય પણ ત્રણ વાર કહ્યા છતાં કોઈથી ન સમજાય તો તેવુ બોલનાર વાદી પરાજય પામે છે અને તે અવિજ્ઞાતાર્થ નિગ્રહસ્થાન કહેવાય છે

(૯) દાડમ દસ, ૭ પુડલા, કુંડું, અજચર્મ અને માસપિણ્ડ આ રીતે પરસ્પર સંબંધ વિનાના પદો ઉચ્ચારવાથી જ્યારે વાક્યનો અર્થ નિષ્પન્ન ન થવાથી વાદી પરાજય પામે ત્યારે અપાર્થક નિગ્રહસ્થાન

(૧૦) પ્રતિજ્ઞા, હેતુ, ઉદાહરણ, ઉપનય અને નિગમન એ ક્રમે બોલવા જોઈતા અનુમાનવાક્યનો વિપર્યાસ કરી ગમે તેમ આડુ અવળું બોલનાર વાદી અપ્રાપ્તકાળ નામનુ નિગ્રહસ્થાન પામે છે, કારણ કે તે જે કાંઈ બોલે છે તે કાળ પ્રાપ્ત થયા વિના જ બોલે છે

(૧૧) શ્રોતાને જ્ઞાન આપવામાં પાચે અવયવો ઉપયોગી છતા તેમાંથી એક પણ અવયવ ન બોલવામા આવે તો તે ન્યૂન નિગ્રહસ્થાન.

(૧૨) કોઈ પણ એક હેતુ કે ઉદાહરણથી સાધ્ય સિદ્ધ થતુ હોય છતા બીજા હેતુ કે ઉદાહરણોનો પ્રયોગ કરનાર અધિક નામના નિગ્રહસ્થાનથી પરાજિત ગણાય છે.

(૧૩) અનુવાદના પ્રસંગ સિવાય પણ તે જ શબ્દને અગર તે જ અર્થને ફરી કહેવામા પુનરક્ત નિગ્રહસ્થાન પ્રાપ્ત થાય છે એક વાર શબ્દ અનિત્ય છે એમ કહી ફરી તેમ જ કહેવું તે શબ્દપુનરુક્તિ-નિગ્રહસ્થાન અને શબ્દ અનિત્ય છે એમ કહી શબ્દ વિનાશી છે એ રીતે બીજા વાક્યથી તે જ અર્થ કહેવો તે અર્થપુનરુક્ત જ્યા અનુવાદનો પ્રસંગ હોય ત્યા પુનરક્તનિગ્રહસ્થાન નથી ગણાતુ, જેમ કે નિગમન વાક્યમાં હેતુ અને પ્રતિજ્ઞાવાક્યનો અનુવાદમાત્ર કરવામા આવે છે

(૧૪) જે વાત ત્રણ વાર વાદીએ કહી હોય અને સભા પણ તેને સમજી ગઈ હોય છતાં પ્રતિવાદી તેનુ પુનઃ ઉચ્ચારણ ન કરી શકે તો તે પ્રતિવાદી અનનુભાષણ નિગ્રહસ્થાનથી પરાજય પામે છે

(૧૫) વાદીએ કહેલ વસ્તુને સભા સમજી ગઈ હોય છતાં પ્રતિવાદી તેને ન જ સમજી શકે તો તે પરાજય પામે છે અને તે અજ્ઞાન નિગ્રહસ્થાન કહેવાય છે.

(૧૬) વાદીનો પક્ષ સમજાયો પણ હોય અને તેનું પુનઃ ઉચ્ચારણ કરવામાં આવ્યું હોય છતાં ઉત્તર ન સ્ફુરે તો પ્રતિવાદી હારે છે ત્યાં અપ્રતિભા નિગ્રહસ્થાન

(૧૭) સિદ્ધ કરવા ધારેલ વસ્તુનું સાધન અશક્ય જણાવાથી કોઈ પણ બહાનું કાઢી ચર્ચાનો ભંગ કરવામાં આવે, જેમ કે "મારું અમુક ખાસ કામ રહી ગયું છે" અગર "મારું ગળું બેસી ગયું છે" ઇત્યાદિ, તો તે વિક્ષેપ નિગ્રહસ્થાન

(૧૮) કોઈ કહે જે તું (કોઈ નામીચા) પ્રસિદ્ધ ચોરની જેમ "પુરુષ" હોવાથી ચોર છે (કારણ પેલો ચોર પણ "પુરુષ" છે) ત્યારે તે દૂષણ દૂર કરવાને બદલે સામાને કહેવું કે "તું પણ પુરુષ" હોવાથી તે પ્રસિદ્ધ ચોરની પેઠે ચોર છે આ કથનમાં સામાને ચોર સાબિત કરવા જતાં સામાએ પોતાની ઉપર મૂકેલો ચોરનો આરોપ સ્વીકારાઈ જાય છે. તેથી તે મતાનુજ્ઞા નિગ્રહસ્થાન કહેવાય છે

(૧૯) પોતાની સામે બોલનાર નિગ્રહસ્થાનને પ્રાપ્ત થયો હોય છતાં વાદી તેની ઉપેક્ષા કરે અર્થાત્ કે 'તું અમુક નિગ્રહસ્થાનને પ્રાપ્ત થયો છે' તેવું ઉદ્ભાવન ન કરે તો તે પર્યનુયોજ્યોપેક્ષણનિગ્રહસ્થાનને પ્રાપ્ત થઈ પરાજય પામે છે આ નિગ્રહસ્થાનનું ઉદ્ભાવન સભા કરે છે કારણ કે કોઈ પોતાની મેળે તો પોતાની હાર કબૂલી પોતાની [illegible]નો સ્વીકાર ખુલ્લો કરવા તૈયાર ન જ હોય.

(૨૦) નિગ્રહસ્થાનને નહિ પ્રાપ્ત થયેલ છતાં તેને નિગ્રહસ્થાનથી દૂષિત કરે તો તે નિરનુયોજ્યાનુયોગ નામનું નિગ્રહસ્થાન

પરિશિષ્ટ ૨.

જૈન આગમોમાં મળી આવતું કથાપદ્ધતિને લગતું વર્ણન

જૈન આગમ સાહિત્ય પાચ વિભાગમા વહેંચાયેલુ છે. (૧) સુત્ત, (૨) નિજ્જુત્તિ, (૩) ભાષ્ય, (૪) ચૂર્ણી, (૫) ટીકા આ પાચ વિભાગ મળી પંચાંગી કહેવાય છે સૂત્રમાંથી પ્રસ્તુત વર્ણન સ્થાનાંગમા છે તે નીચે પ્રમાણે.—

વિકથા અને ધર્મકથાના વર્ણનપ્રસગે ધર્મકથાના ચાર પ્રકારો પૈકી વિક્ષેપણી કથાના—એટલે શ્રોતાને કુમાર્ગેથી સુમાર્ગે લાવે તેવા કથાના—ચાર પ્રકારો[1] આ પ્રમાણે બતાવ્યા છે—

(૧) સ્વસિદ્ધાતને કહીને એટલે તેના ગુણોનુ પ્રતિપાદન કરીને પર-સિદ્ધાંત કહે—એટલે તેના દોષોનું દર્શન કરાવે.

(૨) પરસિદ્ધાત કહીને સ્વસિદ્ધાતનુ સ્થાપન કરે

(૩) સમ્યગ્વાદ કહીને મિથ્યાવાદ કહેવો, અર્થાત્ પરસિદ્ધાતમા રહેલુ અવિરુદ્ધ તત્ત્વ બતાવી તેનું વિરુદ્ધતત્ત્વ પણ દોષદર્શનપૂર્વક બતાવવુ.

(૪) પરસિદ્ધાતમાં દોષો બતાવી પછી તેના ગુણો પણ બતાવવા

જ્ઞાત એટલે દૃષ્ટાંત ચાર પ્રકારના છે. (૧) આહરણ (૨) આહરણતદ્દેશ (૩) આહરણતદ્દોષ (૪) ઉપન્યાસોપનય આ ચારેના ચાર ચાર પ્રકાર બતાવતા આહરણનો ત્રીજો ભેદ સ્થાપનાકર્મ અને ચોથો પ્રત્યુત્પન્ન વિનાશી એ બે ભેદ આવે છે[2] તે એક પ્રકારના વ્યાખ્યાનના અંગભૂત દૃષ્ટાંતો જ છે. તે નીચે પ્રમાણે—

કોઈ આરોપેલ અનિષ્ટ પ્રસંગને જે દૃષ્ટાંતદ્વારા દૂર કરી ઈષ્ટ તત્ત્વનુ સ્થાપન કરવામા આવે તે દૃષ્ટાંત સ્થાપનકર્મ.

પ્રત્યુત્પન્નવિનાશી એટલે તત્કાળ જ પ્રાપ્ત થયેલ અનિષ્ટ સ્થિતિનો નાશ જે દૃષ્ટાંતદ્વારા કરવામા આવે તે

---

१ विक्खेवणी कहा चउव्विहा पन्नत्ता तंजहा—ससमयं कहेइ, ससमयं कहित्ता परसमयं कहेइ, परसमयं कहेत्ता ससमयं ठावइत्ता भवति, सम्मावायं कहेइ, सम्मावायं कहेत्ता मिच्छावायं कहेइ, मिच्छावायं कहेत्ता सम्मावायं ठावइत्ता भवति। स्था. सू. २८२ पृ. २१० [illegible]

२. आहरणे चउव्विहे प. तं. अवाए उवाए, ठवणाकम्मे, पडुप्पन्नविणासी। स्था. सू. ३२८ पृ. २५२.

આ બંનેના ઉદાહરણ નીચે પ્રમાણે.

(૧) સ્થાપનાકર્મ—શબ્દને કૃતકત્વ હેતુથી અનિત્ય સિદ્ધ કરતા વાદીને કોઈ પ્રતિવાદી કહે કે વર્ણાત્મક શબ્દ તો નિત્ય છે, તેમાં કૃતકત્વ નથી. એ રીતે હેતુમા વ્યભિચારનો અનિષ્ટ પ્રસગ આવતાં જ તુરત વાદી ફરી હેતુનુ સમર્થન કરી લે કે વર્ણાત્મક શબ્દ અનિત્ય છે; કારણ જે તે કારણની ભિન્નતાથી ભિન્ન દેખાય છે–ઘટની જેમ. આ રીતે કૃતકત્વરૂપ હેતુ ઉપર આવી પડેલ વ્યભિચારનો અનિષ્ટપ્રસંગ દૂર કરવા ફરી તે હેતુનું સમર્થન (સ્થાપન) ઘટ દૃષ્ટાંતથી થતું હોવાને લીધે તે સ્થાપનાકર્મ દૃષ્ટાંત કહેવાય.

(૨) પ્રત્યુત્પન્નવિનાશી–કોઈ કહે જે અમૂર્ત હોવાથી આકાશની જેમ આત્મા અકર્તા જ છે. આ, જૈનવાદીને અનિષ્ટ છે. તેવુ તત્કાળ પ્રાપ્ત થયેલુ અનિષ્ટ દૂર કરવા તે કહે–આત્મા મૂર્ત હોવાથી દેવદત્તની પેઠે કથંચિત્ કર્તા છે. તો આ દેવદત્તનું દૃષ્ટાત ઉક્તનુ અનિષ્ટ નિવારક હોવાથી પ્રત્યુત્પન્ન વિનાશી દૃષ્ટાંત કહેવાય.[1]

હેતુના ચાર પ્રકાર ત્રણ રીતે બતાવવામા આવ્યા છે.[2]

(૧) યાપક, સ્થાપક, વ્યંસક અને લૂષક.

(૨) પ્રત્યક્ષ, અનુમાન, ઉપમાન અને શબ્દ

(૩) अस्ति तत् अस्ति सः । अस्ति तत् नास्ति सः ।
नास्ति तत् अस्ति सः । नास्ति तत् नास्ति सः ।

બીજી રીત પ્રમાણે પ્રત્યક્ષાદિ ચાર હેતુઓ એટલે ચાર પ્રમાણો પ્રસિદ્ધ છે. તેથી તેમનું વર્ણન અનાવશ્યક છે. બાકીનાનું નીચે પ્રમાણે—

પ્રસિદ્ધ ન હોવાથી વ્યાપ્તિસાધક અન્ય પ્રમાણની અપેક્ષાને લીધે સાધ્યસિદ્ધિમા વિલંબ થાય તે હેતુ **યાપક**[1]

(૨) પ્રસિદ્ધ વ્યાપ્તિને લીધે જે હેતુ જલદી સ્વસાધ્યનું સ્થાપન કરે તે **સ્થાપક.**

(૩) જે હેતુ પ્રતિવાદીને વ્યામોહમાં નાખે તે **વ્યંસક.**[2]

(૪) વ્યંસક હેતુથી પ્રાપ્ત થયેલ અનિષ્ટને દૂર કરનાર હેતુ તે **લૂષક.**[3]

આ ચારેનાં ઉદાહરણો ટીકામા આપેલાં છે. તેમ જ તેની વિશેષ સ્પષ્ટતા કરવા ટીકાકારે નિર્યુક્તિને આધારે નાની નાની કથાઓ આપી છે, જે પ્રાચીન કાળમાં વાર્તાદ્વારા વસ્તુસ્વરૂપ સમજાવવાની પદ્ધતિની સૂચક હોઈ અહીં આપવામાં આવે છે–

(૧) કોઈ અસતી સ્ત્રીએ પોતાના પતિને એમ કહી ઉજ્જન મોકલ્યો કે ત્યાં ઊંટના એક એક લીડાનો એક એક રૂપિયો ઊપજે છે, તેથી વેચવા જાઓ. લોભમાં પડેલા ધણીના ઉજ્જન ગયા બાદ તેણીએ પોતાના જાર સાથે કાળયાપન કર્યું. તેવી રીતે જે વાદી પ્રતિવાદીને મોહમાં નાખે તેવો હેતુ મૂકી તેના દૂષણથી બચી કાળયાપન કરે ત્યારે તે હેતુ યાપક કહેવાય

(૨) કોઈ ધૂર્ત પરિવ્રાજક દરેક ગામમાં એમ કહી ફર્યા કરતો કે લોકમધ્યમા આપેલુ દાન ફળ આપે છે અને તે હું જાણું છું. આમ કહી તે લોકો પાસેથી દાન મેળવતો આ જોઈ કોઈ શ્રાવકે તેને કહ્યુ કે લોકનો મધ્યભાગ તો એક જ છે. તે અનેક ગામમાં ક્યાંથી સંભવે? આ રીતે તે શ્રાવકે સિદ્ધ કર્યું કે લોકનો મધ્યભાગ એક છે તેથી પરિવ્રાજકના કહ્યા પ્રમાણે અનેક ગામમા ન હોઈ શકે તેવી રીતે જલદી જ સ્વપક્ષને સિદ્ધ કરે તે હેતુ સ્થાપક.

(૩-૪) ટીપ.—આ બે હેતુઓ માટે જે કથા આપવામા આવે છે તેમા શબ્દછળ છે. અને તેથી તેમાં છળવાળા બે શબ્દો આવે છે: (૧) શકટતિત્તિરિ અને (૨) તર્પણાલોડિકા. આ બંને શબ્દના બબ્બે અર્થ થાય છે એટલે વક્તા જે અર્થ કહેવા ધારે છે તેથી પ્રતિપક્ષી તેનો ઉલટો અર્થ લઈ તેને છળવા પ્રયત્ન કરે છે એ

૧. જુઓ સ્થાનાંગ ટીકા પૃ ૨૬૧.
૨. જુઓ સ્થા. ટી પૃષ્ઠ ૨૧૧
૩. ,, ,, ,, ૨૬૨

અર્થો આ પ્રમાણેઃ (૧) શકટતિત્તિરિ એટલે (क) ગાડામાં આણેલ તેતર (ग) ગાડા સહિત તેતર (૨) તર્પણાલોડિકા એટલે (क) સક્તુમાં (સાથવામાં) પાણી મેળવી આપવું તે (એટલે કે અહીંયા પાણીમિશ્રિત સાથવો) (ख) તેવું મિશ્રણ કરતી સ્ત્રી

તેતરવાળી ગાડી લઈ જતા કોઈ એક માણસને એક ધૂર્તે પૂછ્યું કે આ શકટતિત્તિરિનો શો ભાવ છે? પેલાએ ઉત્તર આપ્યો કે તર્પણાલોડિકા ધૂર્તે કેટલાકને સાક્ષીઓ તરીકે ગણી કહ્યું કે મને આ શકટતિત્તિરિ (શકટ સહિત તિત્તિરિ) તર્પણાલોડિકાથી આપવાનું આ માણસ કહે છે તે કિંમત આપવા હું તૈયાર છું માટે મને તે શકટ–તિત્તિરિ બન્ને મળવા જોઈએ આ સાંભળી શકટતિત્તિરિનો સ્વામી ગૂંચવણમાં પડ્યો પણ બીજા ધૂર્તે તેને સમજાવી દીધો અને તેના સમજાવ્યા પ્રમાણે તે માલિકે પ્રથમ ધૂર્તને કહ્યું: "ભલે, તર્પણાલોડિકા લાવો અને શકટતિત્તિરિ લો" પ્રથમ ધૂર્તે પોતાની સ્ત્રીને તર્પણાલોડિકા આપી શકટતિત્તિરિ લઈ લીધું. સ્ત્રી ધૂર્ત પતિની આજ્ઞા પ્રમાણે સક્તુમાં પાણી મેળવી હલાવી તર્પણાલોડિકા તૈયાર કરવા બેઠી કે તરત જ પેલા માલિકે સક્તુમાં પાણી મેળવતી તે સ્ત્રીને ઉપાડી અને કહ્યું "આ આ તર્પણાલોડિકા છે એટલે તેને લઈ હું શકટતિત્તિરિ આપું છું" આ સાંભળતાં પ્રથમ ધૂર્ત સમજી ગયો અને ચૂપ થયો

પ્રથમ ધૂર્તની સ્ત્રી માગી એટલે તે આપોઆપ શરમાઈ ચાલ્યો ગયો તેમ લૂષક હેતુ વ્યંસક હેતુદ્વારા આપાદિત અનિષ્ટને છે.[૧]

ત્રીજી રીત પ્રમાણે બતાવેલ ચાર હેતુઓની વ્યાખ્યા કરી ટીકાકાર જે ઉદાહરણો આપે છે તે બધામાં વાદીદેવસૂરિવર્ણિત હેતુના બધા પ્રકારો આવી જાય છે.[૨] આ વ્યાખ્યા પ્રમાણે હેતુ એટલે અનુમાન હેતુઓની વિવિધતાથી ચાર ભાગમાં વહેંચી નાખી અહીં ચાર હેતુઓ (અનુમાનો) કહેલ છે

(૩) (क)—અમુક એક પદાર્થ છે માટે અમુક બીજો પદાર્થ છે એવું અનુમાન તે अस्ति तत् अस्ति स । જેમ કે ધૂમ્ર છે માટે અગ્નિ છે જ.

(ख) અમુક એક પદાર્થ છે માટે તેનો વિરોધી બીજો પદાર્થ નથી જ એવુ અનુમાન તે अस्ति तत् नास्ति स । જેમ કે અગ્નિ છે માટે શીત નથી જ.

(ग) અમુક એક પદાર્થ નથી માટે તેનો વિરોધી પદાર્થ છે એવુ અનુમાન તે नास्ति तत् अस्ति स । જેમ કે અગ્નિ નથી માટે શીત છે.

(घ) અમુક એક પદાર્થ નથી માટે બીજો અમુક પદાર્થ છે પણ નથી એવુ અનુમાન તે नास्ति तत् नास्ति स । જેમ કે અહીં વૃક્ષ નથી માટે સીસમ પણ નથી

સ્થાનાંગમા છ પ્રકારના વિવાદો બતાવ્યા છે વિવાદને ટીકાકાર જલ્પ-કથા તરીકે ઓળખાવે છે અને તદનુસાર છએ ભેદોની વ્યાખ્યા પણ આપે છે, તે જોઈએ ·

(૧) બોલવાની પૂરી તૈયારી ન હોય ત્યારે તે તૈયારી માટે જોઈતો વખત મેળવવા ખાતર ગમે તે બહાને વિલંબ કરી જે વાદ થાય તે

(૨) પૂરતો અવસર મળવાને લીધે જયેચ્છુ પોતે જ જેમાં ઉત્સુકતાપૂર્વક બોલે અગર પ્રતિવાદીને ઉત્સુક કરી જેમાં બોલે તે

(૩) સામનીતિથી સભાપતિને અનુકૂળ કરીને અગર થોડા વાર પ્રતિવાદીના પક્ષ માની તેને અનુકૂળ કરી જેમા બોલવામાં આવે તે

(૪) બોલવાનું સામર્થ્ય હોય તો સભાપતિને [illegible] પ્રતિવાદીને [illegible] જેમા બોલવામાં આવે તે

---

૧ જુઓ, સ્થા [illegible]

૨ જુઓ પ્રમાણનયતત્ત્વાલોક [illegible]

(૫) અધ્યક્ષોને સેવીને–અનુસરીને જે વાદ થાય તે

(૬) પોતાના તરફદારો સાથે અધ્યક્ષોને મેળવી લઈ અગર અધ્યક્ષોને પ્રતિવાદીના વિરોધી બનાવી જે વાદ થાય તે.[1]

છેવટે સ્થાનાગમા જે દશ દોષો બતાવવામા આવ્યા છે[2] તેમા પણ ઘણા દોષો વાદકથા સાથે જ સંબંધ ધરાવે છે. તેમનો સાર નીચે પ્રમાણે :–

(૧) પ્રતિવાદી તરફથી થતા ક્ષોભને લીધે જે મોઢુ બંધ થાય તે તજ્જાત દોષ

(૨) બોલતા વિસ્મૃતિ થાય તે સ્વમતિભંગ દોષ.

(૩) મર્યાદા સાચવનાર અધ્યક્ષ કોઈ પણ કારણથી વાદી ઉપર દ્વેષ કરી કે તેના વિષયમાં બેદરકાર રહી પ્રતિવાદીને જય આપે અગર તેને સ્મૃતિની તક આપે તે પ્રશાસ્તૃદોષ

(૪) વાદીએ મૂકેલા દોષનો ખોટી રીતે પરિહાર કરવો તે પરિહરણ દોષ

(૫) સાધ્યવિકલત્વ આદિ દૃષ્ટાંતદોષ તે સ્વલક્ષણદોષ.

(૬) સાધ્યના પ્રત્યે સાધનમાં જે વ્યભિચારદોષ આવે તે કારણદોષ

(૭) અસિદ્ધ, વિરુદ્ધ આદિ હેત્વાભાસો તે હેતુદોષ

(૮) પ્રતિવાદીના મતમાં આવી જવું તે સંક્રમણ દોષ તેને પરમતાભ્યનુજ્ઞા પણ કહે છે

(૯) છળ આદિદ્વારા જે પરાજયના પ્રસંગો આવે તે નિગ્રહદોષ

(૧૦) પક્ષના બાધિતત્વ આદિ દોષો તે વસ્તુદોષ

કે ક્યાંક પાંચ અવયવરૂપ અને ક્યાંક દશ અવયવરૂપ ન્યાયવાક્યનો પ્રયોગ કરાય છે[1] આમાંના પાંચ અવયવો તો ગૌતમના ન્યાયસૂત્રમાં વર્ણિત પ્રતિજ્ઞા, હેતુ, ઉદાહરણ, ઉપનય અને નિગમન એ જ છે[2] નિર્યુક્તિકારે એ પાંચ અવયવોનો ઉપયોગ કરી ધર્મની સૂત્રોક્ત મંગળમયતા સિદ્ધ કરી બતાવી છે.[3]

ત્યાર બાદ તેઓએ દશ અવયવથી ઘટિત ન્યાયવાક્યનો પ્રયોગ પણ કરી બતાવ્યો છે, અને તે દશ અવયવો બે રીતે ગણાવ્યા છે પ્રતિજ્ઞા, પ્રતિજ્ઞાવિશુદ્ધિ, હેતુ, હેતુવિશુદ્ધિ, દૃષ્ટાંત, દૃષ્ટાંતવિશુદ્ધિ, ઉપસંહાર, ઉપસંહારવિશુદ્ધિ નિગમન અને નિગમનવિશુદ્ધિ—એ એક પ્રકાર.

બીજા પ્રકારમા દશ અવયવો આ પ્રમાણે છે (ગાથા ૧૩૭) પ્રતિજ્ઞા, પ્રતિજ્ઞાવિભક્તિ, હેતુ, હેતુવિભક્તિ, વિપક્ષ, પ્રતિષેધ, દૃષ્ટાંત, આશંકા, તત્પ્રતિષેધ, અને નિગમન આ બંને પ્રકારના ન્યાયનો પ્રયોગ ગાથા ૧૩૮ થી ૧૪૮ સુધીમા છે. વિશેષતા એ છે કે પ્રથમ પ્રકારના દશ અવયવો કોઈ એક જ ગાથામા સંકલિત ન કરતા માત્ર તેના નામો પ્રયોગમાં જ આવી જાય છે, જ્યારે બીજા પ્રકારના દશ અવયવો એક જ ગાથામાં ગણી બતાવ્યા છે અને પછી પ્રયોગમા તેઓને સમજાવ્યા છે ધ્યાન ખેંચે એવી એક બાબત એ પણ છે કે અક્ષપાદે નિગમનું हेत्वपदेशात् प्रतिज्ञायाः पुनर्वचनं निगमन (૧-૧-૩૯) એવુ જે લક્ષણ કર્યું છે એ જ નિર્યુક્તિમાં થોડાક ફેરફાર સાથે આ પ્રમાણે દેખાય છે दसमो एस अवयवो, पइन्नहेऊ पुणोवयण । (ગાથા ૧૪૪ પૃ. ૭૯). સારાંશ એ છે કે દશવૈકાલિક મૂળસૂત્રમા જે धम्मो मङ्गलमुक्किट्ठं એ સૂત્રથી ધર્મની મંગળમયતા અને ઉત્કૃષ્ટતા કહેવામા આવી છે તેને સિદ્ધ કરવા નિર્યુક્તિકારે ન્યાયવાક્યનુ નિરૂપણ કર્યું છે અને તે ન્યાયવાક્ય જેટલી રીતે સંભવી શકે તે બધી રીતે બતાવી તેના ઉપયોગ દ્વારા ધર્મની મંગળમયતા આદિ વ્યવસ્થિત રીતે સાધ્યું છે આ પ્રથમ અધ્યયનની નિર્યુક્તિ મુખ્યભાગે ન્યાયવાક્ય અને તેના ઉપયોગના નિરૂપણમા જ રોકાયલી છે, જેના ઉપરથી

---

૧. જુઓ, ગાથા ૫૦

૨ પાંચ અવયવોના નામોના સબંધમાં પણ બે પરંપરા દેખાય છે. એક તો ન્યાયસૂત્રની અને બીજી પ્રશસ્તપાદભાષ્યની અને [illegible] તરીકે ઓળખાયેલી તે આ પ્રમાણે–'अवयवाः पुनः प्रतिज्ञापदेशनिदर्शनानुसन्धानप्रत्याम्नाय' । प्र. भा. [illegible] પૃ. [illegible] [illegible] પૃ. ૬૨

૩ જુઓ. ગાથા ૮૯ થી ૯૧.

જાણી શકાય છે કે જૈન સમ્પ્રદાયમાં પ્રાચીન કાળમા પણ કથાપદ્ધતિ અને તેને લગતી અન્ય બાબતોનો વિચાર કેવો થતો અને પરંપરા કેવી ચાલતી

પરંતુ આપણે જોઈએ છીએ કે દશ અવયવો નિર્યુક્તિમા બતાવ્યા છે તેથી જુદા પણ મળે છે ન્યાયસૂત્રના ભાષ્યકાર વાત્સ્યાયને પણ પોતાના ભાષ્યમા મતાંતરથી ચાલતા દશ અવયવો બતાવ્યા છે તેમાના પ્રતિજ્ઞા, હેતુ, ઉદાહરણ, ઉપનય અને નિગમન એ પાચ તો નિર્યુક્તિમા પણ છે પરંતુ બાકીના પાચ એ નિર્યુક્તિમા નથી તે પાચ આ છે જિજ્ઞાસા, સંશય, શક્યપ્રાપ્તિ, પ્રયોજન, અને સંશયવ્યુદાસ આ પાચ અવયવોને ન્યાયવાક્યના અંગ તરીકે સ્વીકારવાની વાત્સ્યાયન ના પાડે છે અને ફક્ત પચાવયવાત્મક ન્યાયવાક્ય જે ન્યાયસૂત્રમા કહેલ છે તેનુ જ સ્થાપન કરે છે.

વાત્સ્યાયને કહેલ દશ અને નિર્યુક્તિમા બે પ્રકારે વર્ણવેલ દશ દશ, એમ કુલ ત્રણ પ્રકારના દશ અવયવો અત્યારે આપણને મળે છે આ ઉપરથી એટલુ જણાય છે કે દશ અવયવાત્મક ન્યાયવાક્યની પરંપરા પ્રાચીન હતી. ભલે તે જૈન ગ્રંથોમાં અન્ય રૂપે અને વાત્સ્યાયનભાષ્યમા અન્ય રૂપે દેખાય, પરંતુ અક્ષપાદે તે પરંપરામા સુધારો કર્યો અને પચ અવયવની જ આવશ્યકતા સ્વીકારી જૈનગ્રથમા તો પોતાના સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાન્ત પ્રમાણે અપેક્ષાવિશેષની દૃષ્ટિએ પચઅવયવાત્મક અને દશઅવયવાત્મક બને પ્રકારના ન્યાયવાક્યનો સ્વીકાર કરી બને પરંપરા સાચવવામા આવી છે અને આગળ જતા જૈન તર્કસાહિત્યમા જોઈએ છીએ કે તેમા તો એક અવયવવાળા અને બે અવયવ-વાળા ન્યાયવાક્ય સુધ્ધાનુ સમર્થન અપેક્ષાવિશેષથી કર્યું છે[1] જ્યારે કેટલાક

---

૧ પ્રમાણનયતત્ત્વાલોકાલંકાર પરિચ્છેદ ૩, સૂત્ર ૨૩. पक्षहेतुवचनात्मकं परार्थमनुमानमुपचारात् ।

સૂત્ર ૨૮—पक्षहेतुवचनलक्षणमवयवद्वयमेव परप्रतिपत्तेरङ्गं, न दृष्टान्तादिवचनम् । સૂત્ર ૪૨—मन्दमतींस्तु व्युत्पादयितुं दृष्टान्तोपनयनिगमनान्यपि प्रयोज्यानि [illegible] तथा [illegible] प्रतिज्ञा[illegible] तु भूमाग [illegible] हेतु[illegible] (પરિ ૩ સૂ. ૨૮ [illegible] ટીકા).

'[illegible] निग्रहस्थानं [illegible] [illegible] [[illegible] 'निग्रहस्थान' [illegible] છે તેનો [illegible] ' [illegible] ' એમ [illegible] કરી છે.] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ३ । [illegible] पृ. ८ ॥

બૌદ્ધ વિદ્વાનો ત્રણ અવયવોનો જ પ્રયોગ આવશ્યક સમજી[1] અને કોઈ બૌદ્ધો[2] માત્ર હેતુનો જ પ્રયોગ આવશ્યક સમજી વધારે અવયવોના પ્રયોગને અધિક નામનું નિગ્રહસ્થાન માનતા તેમ જ સાંખ્યો પ્રથમના ત્રણ અને મીમાંસકો ઉપનય સુધીના ચાર અવયવોનો જ પ્રયોગ માનતા, ત્યારે જૈન તાર્કિકોએ કહ્યું કે અપેક્ષાવિશેષથી બે પાંચ અને દશ અવયવ સુધ્ધાં યોજી શકાય છે; તેમાં કાંઈ દૂષણ નથી આ વિષયના લાંબા શાસ્ત્રાર્થો એ કથાપદ્ધતિના અંતર્ગત ન્યાયવાક્ય ઉપરનો વિદ્વાનોનો બુદ્ધિવ્યાયામ સૂચવે છે.

ભાષ્ય—નિર્યુક્તિ પછી આપણે ભાષ્ય ઉપર આવીએ છીએ નિર્યુક્તિમાં વર્ણવેલ વસ્તુ ભાષ્યમાં આવે તે સ્વાભાવિક છે. અને તેથી જ પ્રતિજ્ઞાવિશુદ્ધિ, હેતુવિશુદ્ધિ આદિ અવયવો કેવી રીતે ઘટાવવા એ દશવૈકાલિકનિર્યુક્તિના ભાષ્યમાં બતાવ્યું છે (પૃ ૬૩) તે ઉપરાંત કથાપદ્ધતિને લગતું વધારે વર્ણન ભાષ્યમાં હોવું જોઈએ એનું પણ સૂચન મળે છે આચાર્ય હરિભદ્રના વાદનામક બારમા અષ્ટક ઉપરની જિનેશ્વરસૂરિની ટીકામાં એક પ્રાકૃત ગાથા છે સંભવત આ ગાથા કોઈ ભાષ્યની હશે તેમાં કોની સાથે વાદ કરવો અને કોની સાથે ન કરવો તથા ક્યારે કરવો અને ક્યારે ન કરવો એ પ્રસંગમાં જણાવેલું છે કે . "ધનવાન, રાજા, પક્ષવાન, (લાગવગવાળો), બળવાન્, ઉગ્ર, ગુરુ, નીચ અને તપસ્વી" એટલાની સાથે વાદ ન કરવો ભાષ્યોના વધારે અવલોકનથી આ વિષયમાં વધારે પ્રકાશ પડવાનો ચોક્કસ સંભવ છે

ચૂર્ણિ—ભાષ્ય પછી ચૂર્ણિ આવે છે. જે નિર્યુક્તિ અને ભાષ્યમાં હોય તે ચૂર્ણિમાં આવે જ નિશીથચૂર્ણિમાં આ વિષયને લગતું વધારે વર્ણન છે એમ આચાર્યશ્રી જિનવિજયજી મહારાજ તરફથી મને માહિતી મળી છે. પણ તે ચૂર્ણિ હસ્તલિખિત અને વિસ્તૃત હોઈ અત્યારે તુરત તેનો પાઠ આપવો કે પૃષ્ઠાંક સૂચવવો શક્ય નથી.

ટીકા—અત્ર, નિર્યુક્તિ ભાષ્ય અને ચૂર્ણિ એ ચાર પ્રકારોમાં [illegible]

---

૧ જુઓ દિઙ્નાગના ન્યાયપ્રવેશસૂત્રો નં ૧૦ તથા પ્રમાણનયતત્ત્વાલોકાલંકાર પરિ ૩ સૂ ૨૮, સ્યાદ્વાદમંજરીટીકા નં [illegible] "[illegible]" પૃષ્ઠ ૮૪

૨ બૌદ્ધ માન્યતા વિષે [illegible] —

૩ [illegible]

થયેલું વિચારાત્મક જળ ટીકાની ગંગામાં વહે છે તેથી જ આપણે સ્થાનાંગની ટીકામા કથાપદ્ધતિને લગતુ નિર્યુક્તિ, ભાષ્ય આદિનું વર્ણન એક અગર બીજે રૂપે જોઈ શકીએ છીએ

પરિશિષ્ટ ૩

ચરકમાંથી મળતી કથાવિષયક માહિતી

અત્રે એ જણાવી દેવુ જોઈએ કે ચરકમાંનુ પ્રસ્તુત વર્ણન અત્યંત સ્પષ્ટ, મનોરંજક અને કલ્પનોત્તેજક છે તેમ જ અક્ષપાદના ન્યાયસૂત્રમા વર્ણવેલી ચર્ચાપદ્ધતિની પરંપરા કરતા અત્યંત ભિન્ન નહિ એવી, છતા પ્રાચીન કાળથી ચાલી આવતી કોઈ બીજી વ્યવસ્થિત ચર્ચાની પરંપરાનું સૂચક છે પણ તે અતિ લાંબુ હોવાથી વિસ્તારભયને લીધે અહીં તેનુ બધુ મૂળ અક્ષરશ આપવાનો લોભ અનિચ્છાએ રોકવો પડે છે વિશેષાર્થી તો તે મૂળ જ જોઈ લે અહીં તેનો સારમાત્ર આપ્યો છે આ સારમાં જ્યા જ્યા ન્યાયદર્શન સાથે તુલના કરી છે ત્યાં ત્યાં વિશેષાર્થીએ મૂળ ન્યાયદર્શન અગર તો પરિશિષ્ટ ક્રમાંક (૧) જોઈ લેવું

ચરક એ વૈદ્યકનો ગ્રંથ છે છતા તેમા કેટલાયે ન્યાયશાસ્ત્ર અને શાસ્ત્ર સામાન્યને લગતી કીમતી માહિતી છે. આ સ્થળે વાદને લગતી માહિતી પ્રસ્તુત હોવાથી બીજી કેટલીક સામાન્ય છતા અતિ ઉપયોગી માહિતી ઉપર વાચકોનુ માત્ર લક્ષ જ ખેંચવું યોગ્ય ગણાશે

કોઈ પણ વિષયનો અભ્યાસ કરવો હોય ત્યારે તે વિષયનુ ગમે તે પુસ્તક ન લેતા ખાસ પરીક્ષા કરીને જ તે વિષયનો ગ્રંથ પસંદ કરવો જોઈએ, જેથી અભ્યાસીનાં બહુમૂલ્ય શ્રમ, સમય અને શક્તિ વધારે સફળ થાય એ સુસસયા ચરકમા શાસ્ત્રપરીક્ષાના ઉપાયો બતાવ્યા છે. યોગ્ય શિક્ષકને અભાવે કોઈ ગ્રંથની પસંદગી પણ નિષ્ફળ જવાની તેથી તેમા આચાર્યની પરીક્ષા કરવાનુ પણ બતાવવામાં આવ્યુ છે યોગ્ય શિક્ષક છતા પણ તે અભ્યાસ દક્ષપણે કરવામાં ન આવે તો પરિણામ શૂન્યવત આવે છે તેથી તેમાં શાસ્ત્રની દક્ષતાના ઉપાયો પણ બતાવવામા આવ્યા છે. ચરકમા આત્રેય શાસ્ત્રાભ્યાસની દક્ષતાના ત્રણ ઉપાયો વર્ણવે છે. (૧) અધ્યયનવિધિ, (૨) અધ્યાપનવિધિ, અને (૩) તદ્વિદ્યસંભાષાવિધિ. અધ્યયન વિધિમાં શિષ્યના લક્ષણો, અધ્યયન [illegible] અને [illegible] કરવા [illegible] ઉપદેશ [illegible] આપવાનો ક્રમ [illegible] વર્ણવે છે. [illegible] માટે [illegible] (ચરક [illegible] વિમાન [illegible] ૮)

ત્રીજા ઉપાય તરીકે જે તદ્વિદ્યસંભાષાવિધિ ચરકમાં વર્ણવી છે તે જ મુખ્યપણે અહીં પ્રસ્તુત છે. તદ્વિદ્યસંભાષા એટલે સમાન વિદ્યાવાળાની અંદરોઅંદર વિદ્યાગોષ્ઠી અગર ચર્ચા. એ જ અર્થમાં ન્યાયસૂત્રકાર અક્ષપાદ 'तद्विद्यैश्च सह संवादः' એવું વચન ઉચ્ચારે છે (જુઓ, ન્યા૦ સૂ૦ અ૦ ૪, આ૦ ૨, સૂ૦ ૪૭) ચરકકાર તદ્વિદ્યસંભાષાને બે પ્રકારની વર્ણવે છે: (૧) સંધાયસંભાષા અને (૨) વિગૃહ્યસંભાષા. સંધાયસંભાષા એટલે મૈત્રીપૂર્વક ચર્ચા કરવી અને વિગૃહ્યસંભાષા એટલે વિરોધપૂર્વક ચર્ચા કરવી. અક્ષપાદ સંધાયસંભાષાને વાદ અને વિગૃહ્યસંભાષાને જલ્પ અને વિતણ્ડાને નામે ઓળખાવે છે. અક્ષપાદ અને ચરકકારનો કથાવિષયક વિભાગ કેટલેક સ્થાને માત્ર શબ્દથી જ જુદો પડે છે. અક્ષપાદનું ત્રિવિધ કથા વિષેનું વર્ણન અને ચરકકારનું દ્વિવિધ સંભાષા વિષેનું વર્ણન એ બંને એકબીજાની આવશ્યક પૂર્તિરૂપે હોઈ કથાપદ્ધતિના અભ્યાસીનું ખાસ ધ્યાન ખેંચે તેવાં છે. અક્ષપાદ જેટલું છલ, જાતિ અને નિગ્રહસ્થાનનું વિસ્તૃત વર્ણન ચરકકારે નથી કર્યું, પણ કેવા કેવા પ્રતિવાદી સાથે સંધાયસંભાષા કે વિગૃહ્યસંભાષા કરવી, કયે પ્રકારે કરવી, પહેલાં કેવી તૈયારી કરવી, કઈ જાતની સભામાં કરવી વગેરે અનેક બાબતોનું જે મનોરંજક અને અનુભવસિદ્ધ વર્ણન ચરકકારે આપ્યું છે તે અક્ષપાદના સૂત્રમાં કે તેના ભાષ્યમાં નથી. બીજી ખાસ વિશેષતા એ છે કે અક્ષપાદનો અનુગામી વાત્સ્યાયન કોઈ પણ દાર્શનિક વિષય લઈ અનુમાનવાક્ય યોજે છે, જે ઘણાને નીરસ પણ લાગે, જેમ કે 'આત્મા નિત્ય છે; કારણ કે તે અજન્ય છે' ત્યારે ચરકકાર વૈદ્યકના વિષયમાંથી અનુમાનવાક્ય ઘડે છે, જે ખાસ આકર્ષક લાગે છે જેમ કે 'અમુક વ્યક્તિમાં બળ છે, કારણ કે તે વ્યાયામ કરી શકે છે,' તેમ જ 'અમુક વ્યક્તિના જઠરાગ્નિ પ્રદીપ્ત છે, કારણ કે તેને ખાધેલું જરે છે,' ઇત્યાદિ.

ચરકકારે જે દ્વિવિધ સંભાષાનું ચિત્ર આપ્યું છે, તેનો ટૂંકાવીને ટૂંકમાં સાર નીચે મુજબ—

સંભાષા(ચર્ચા)થી થતા ફાયદા—જ્ઞાનપ્રાપ્તિનો આનંદ અને પ્રતિવાદી ઉપર આક્રમણ કરવાનો આનંદ, પ્રતિભા, વાક્પટુતા, યશોલાભ, પ્રાક્તન અભ્યાસ વખતે થઈ ગયેલા સંદેહનું નિરાકરણ અને જેને વખતે સંદેહ ન થયો હોય તોપણ તે વિષયનું દૃઢીકરણ, પહેલાં કદી નહિ સાંભળેલ, [illegible] પાઠોનું શ્રવણ, વિજયેચ્છાના રસને લીધે પ્રતિવાદ [illegible] [illegible] [illegible] દલીલો [illegible] [illegible] —આ [illegible]

૧

સંધાયસંભાષાના અધિકારીઓનું સ્વરૂપ—જેને ચર્ચાસ્પદ વિષયનું જ્ઞાન અને અન્ય વિષયની માહિતી હોય, જે પોતાનો પક્ષ રજૂ કરવા તથા સામાને ઉત્તર આપવાને સમર્થ હોય, જેને ગુસ્સો ન હોય, જેની વિદ્યા અધૂરી કે વિકૃત ન હોય, જે ગુણદ્વેષી ન હોય, જે પોતે સમજી શકે તેવો હોય અને બીજાને પણ સમજાવી શકે તેવો હોય, જે સહિષ્ણુ અને પ્રિયભાષી હોય તેવાની જ સાથે સંધાયસંભાષા થાય છે

સંધાયસંભાષા કરતી વેળાની ફરજો—વિશ્વસ્ત થઈને ચર્ચા કરવી, સામાને વિશ્વસ્ત ચિત્તે પૂછવું, અને વિશ્વસ્ત ચિત્તે પૂછના સામા પ્રતિવાદીને પોતાનું વક્તવ્ય સ્પષ્ટપણે કહેવું, પરાજયના ભયથી ગભરાવું નહિ અને સામાને પરાજિત કરી ખુશ ન થવું, સામે બોલનારાઓ વચ્ચે આત્મશ્લાઘા ન કરવી, અજ્ઞાનથી એકાન્તગ્રાહી (એકતરફી જ) ન થવું, અજ્ઞાત વસ્તુ ન કહેવી; પ્રતિવાદીના અનુનય (સમજાવટ)થી બરાબર સમજી જવું પ્રતિવાદીને પણ વખતે અનુનય કરવો—આ બધા કર્તવ્યોમા સાવધાન રહેવું અહીં સુધી અનુલોમ (સંધાય)સંભાષા વિધિ થઈ

૨

વિગ્રહસંભાષા (વિજયેચ્છામૂલક ચર્ચા)—જો પોતામા વિદ્યાનો ઉત્કર્ષ વગેરે ગુણો જોવામા આવે તો જ વિગ્રહસંભાષામા ઊતરવું આ ચર્ચાના અધિકારીનુ સ્વરૂપ સંધાયસંભાષાના અધિકારીના ઉપર્યુક્ત સ્વરૂપથી તદ્દન વિપરીત સમજવું એટલે કે અધૂરા જ્ઞાનવાળો, ક્રોધી અને હઠીલો હોય તે આ ચર્ચાનો અધિકારી હોય છે વિગ્રહસંભાષા (જલ્પ કે વિતંડા) શરૂ કર્યા પહેલા પ્રતિપક્ષીની ભાષણવિષયક વિશેષતાઓ, તે પ્રતિપક્ષી પોતાથી ચડિયાતો છે કે ઊતરતો છે એ વિશેષતાઓ અને ખાસ સભાની વિશેષતાઓ એ બધાની પરીક્ષા કરી લેવી કારણ કે સાચી પરીક્ષા જ અભિમાનને યોગ્ય પણ કાર્યમા પ્રવૃત્ત થવા કે નિવૃત્ત થવા પ્રેરે છે

પરીક્ષા કરવાના મુદ્દા—શાસ્ત્રાભ્યાસ, તેનું મનન જ્ઞાન, વાક્શક્તિ, પ્રતિભા, વાક્સ્ફૂર્તિ—આ મુખ્ય મુદ્દા છે

ગુસ્સો, અનિપુણતા, બીકણપણું, વિસ્મરણશીલતા, અસાવધાનપણું, —આ હલકા જ્ઞાનના ગુણો છે.

આ બંને પ્રકારના ગુણોને પારખી, સમજી તે બાબતમાં પોતાની અને પ્રતિવાદીની તુલના કરવી કે કોનામાં કયા કયા ગુણો ઓછાવત્તા છે.

પ્રતિવાદીના પ્રકારોઃ—પ્રતિવાદી ત્રણ પ્રકારના હોય છે. (૧) પર (પોતાનાથી શ્રેષ્ઠ) (૨) પ્રત્યવર (પોતાથી કનિષ્ઠ,) (૩) સમ (પોતાની બરાબરનો). આ ત્રણ પ્રકારો ઉપર્યુક્ત ગુણોની દૃષ્ટિએ સમજવા, નહિ કે ઉમર, વૈભવ આદિ સર્વાંશે

પરિષદના પ્રકારો—સભાના જ્ઞાનવતી અને મૂઢ એવા બે પ્રકારો મુખ્ય છે અને એ બેના પણ મિત્ર, શત્રુ અને ઉદાસીન એ ત્રણ પ્રકારો છે

જલ્પને યોગ્ય અને અયોગ્ય પરિષદ—જ્ઞાનશક્તિ સપન્ન હોય કે મૂઢ હોય, કોઈ પણ જાતની શત્રુસભા જલ્પને અયોગ્ય છે મિત્રસભા કે ઉદાસીનસભા જો મૂઢ હોય તો તે ગમે તેવાની સાથે અને ગમે તેવી સ્થિતિમા જલ્પ કરવાને યોગ્ય જ છે

વિગૃહ્યસભાષા કરતી વખતનાં કર્તવ્યો—કઠણ અને લાંબા લાંબા ન સમજાય તેવા વાક્યો બોલવા, અત્યત હર્ષમા આવી પ્રતિવાદીનો ઉપહાસ કરતા જવું, આકૃતિથી સભાનુ વલણ જોતા જવું; અને પ્રતિવાદી બોલવા લાગે તો એને અવકાશ જ ન આપવો, ક્લિષ્ટ શબ્દો બોલતાં બોલતાં સામાને એમ પણ કહેવુ કે 'તુ તો ઉત્તર જ નથી આપતો' અથવા 'તારી પ્રતિજ્ઞા તૂટી', પ્રતિવાદી જો ફરી વાદ માટે આહવાન કરે તો તેને કહેવુ કે 'અત્યારે આટલુ જ બસ છે એક વર્ષ ફરી ગુરુસેવા કર,' એમ કહી ચર્ચા બધ રાખવી, કારણ કે એકવાર હાર્યો તે હમેશને માટે હાર્યો એમ વિદ્વાનો કહે છે, એ હારેલ પ્રતિવાદીનો ફરી સબધ પણ ન કરવો આ બતાવેલ રીતે જલ્પ પોતાનાથી શ્રેષ્ઠની સાથે પણ કરવો એમ કેટલાક વિદ્વાનો કહે છે, જ્યારે બીજા વિદ્વાનો તેથી ઊલટુ કહે છે તેઓ કહે છે કે પોતાથી કનિષ્ઠ કે પોતાના સમાન પ્રતિવાદી સાથે મિત્ર કે ઉદાસીન પરિષદમાં જલ્પ કરવો ઘટે છે આ જલ્પ કરતી વખતે પોતાનુ અને પ્રતિવાદીનુ બલાબલ જોઈ જે બાબતમા પ્રતિવાદી ચઢિયાતો હોય તે બાબતની પોતાની અયોગ્યતા પ્રકટ કર્યા સિવાય જ કોઈ પણ રીતે તે બાબતને ટાળી દઈ, તેમા જલ્પ ન કરવો, અને જે બાબતમાં પ્રતિવાદી દુર્બલ હોય, તે જ બાબતમાં તેને જલ્પ દ્વારા શીઘ્ર દબાવવો

દુર્બલને જલ્દી પરાજિત કરવાના ઉપાયો—જેને શાસ્ત્રાભ્યાસ [illegible] ન હોય તેને મોટા મોટા સૂત્રપાઠ ઉચ્ચારીને, જે સર્વજ્ઞાન વિનાનો હોય તેને

લષ્ટ શબ્દવાળાં વાક્યો બોલીને, જેની ધારણાશક્તિ ઓછી હોય તેને મોટા ક્યો ઉચ્ચારીને, જેમાં પ્રતિભા ન હોય તેને અનેકાર્થક શબ્દવાળાં અનેક તનાં વચનો ઉચ્ચારીને, વાક્પટુ ન હોય તેને અર્ધવાક્ય અધ્યાહૃત જેવું ખીને, જેણે પહેલાં સભા ન જોઈ હોય તેને કે પંડિત ન હોય તેને લજ્જા-નક વાક્ય સંભળાવીને, ક્રોધીલાને થકવીને, બીકણને ડરાવીને, અને અસાવધાનને નિયમના પાશમાં નાખીને હરાવવો

વાદ શરૂ થયા પહેલા કરવાની ખટપટ--ગમે તે રીતે પરિષદને મળી ઈ તેની મારફત પોતાને સરળ અને પ્રતિવાદીને અતિ કઠણ એવા વિષયમા ર્ચાની રજા મળે તેવી ગોઠવણ કરવી આ પ્રમાણે પરિષદને ખાનગી રીતે ળી નક્કી કરી લીધા પછી કહેવું કે આપણાથી ન કહી શકાય માટે આ રિષદ્ જ યથાયોગ્યવાદનો વિષય અને વાદની મર્યાદા ઠરાવશે, એમ કહી ચૂપ રહેવું, અને પોતાને અભિમત બધું પરિષદને મોઢે જ નક્કી કરાવવું

વાદમર્યાદાનું સ્વરૂપ—આ બોલવું. આ ન બોલવું, આમ થાય તો હારેલો ગણાય ઇત્યાદિ વાદમાર્ગના જ્ઞાન માટે જાણવી જોઈતી વસ્તુઓ—(૧) વાદ, (૨) દ્રવ્ય, (૩) ગુણો, (૪) કર્મ, (૫) સામાન્ય, (૬) વિશેષ, (૭) સમવાય, (૮) પ્રતિજ્ઞા, (૯) સ્થાપના, (૧૦) પ્રતિષ્ઠાપના, (૧૧) હેતુ, (૧૨) દૃષ્ટાંત, (૧૩) ઉપનય, (૧૪) નિગમન, (૧૫) ઉત્તર, (૧૬) સિદ્ધાંત, (૧૭) શબ્દ, (૧૮) પ્રત્યક્ષ, (૧૯) અનુમાન, (૨૦) ઐતિહ્ય (૨૧) ઔપમ્ય, (૨૨) સંશય, (૨૩) પ્રયોજન, (૨૪) સવ્યભિચાર, (૨૫) જિજ્ઞાસા, (૨૬) વ્યવસાય, (૨૭) અર્થપ્રાપ્તિ, (૨૮) સંભવ, (૨૯) અનુયોજ્ય, (૩૦) અનનુયોજ્ય, (૩૧) અનુયોગ, (૩૨) પ્રત્યનુયોગ, (૩૩) વાક્યદોષ, (૩૪) વાક્યપ્રશંસા, (૩૫) છળ, (૩૬) અહેતુ, (૩૭) અતીતકાળ, (૩૮) ઉપાલંભ, (૩૯) પરિહાર, (૪૦) પ્રતિજ્ઞાહાનિ, (૪૧) અભ્યનુજ્ઞા, (૪૨) હેત્વંતર, (૪૩) અર્થાન્તર, (૪૪) નિગ્રહસ્થાન

ચરકમાં (૧) વાદ (વિગ્રહસભાના)નાં સ્વરૂપ અને વિભાગ એ એક છે અને તેનાં લક્ષણો ન્યાયસૂત્રમાં આપેલાં લક્ષણો જેવાં જ છે (૨) થી (૭) સુધીના ૭ પદાર્થો કણાદસંમત છ તત્ત્વો જ છે ચરકમાં (૮) પ્રતિજ્ઞાનું સ્વરૂપ ન્યાય જેવું જ છે પ્રતિજ્ઞા કર્યા પછી તેને સિદ્ધ કરવા હેતુ, દૃષ્ટાંત, ઉપનય અને નિગમન એ ચાર અવયવો કહેવામાં આવે છે તેને ચરકકાર (૯) સ્થાપના કહે છે, એક અનુમાન સામે બીજું વિરોધી અનુમાન તે (૧૦) પ્રતિસ્થાપના, જેને નૈયાયિકો પ્રતિપક્ષ કહે છે. (૧૧) થી (૧૪) હેતુ,

દૃષ્ટાંત, ઉપનય અને નિગમનની વ્યાખ્યા ન્યાયસૂત્રના જેવી જ છે ન્યાયશાસ્ત્રની ‘જાતિ’ એ જ ચરકનુ (૧૫) ‘ઉત્તર’ તત્ત્વ છે ફેર એટલો છે કે ચરકમાં ન્યાયદર્શન જેવા ચોવીસ ભેદો નથી અને ઉદાહરણો દાર્શનિક ન આપતાં ચિકિત્સાશાસ્ત્રનાં આપેલાં છે (૧૬) સિદ્ધાંતની વ્યાખ્યા અને સર્વતન્ત્ર આદિ ચાર ભેદો એ બધુ ચરકમાં ન્યાય જેવુ જ છે (૧૭) થી (૨૩) સુધીના બધા પદાર્થો ન્યાય પ્રમાણે જ છે ચરકનુ (૨૪) સવ્યભિચાર તત્ત્વ ન્યાયના અનૈકાન્તિક હેત્વાભાસને સ્થાને છે ચરકમા (૨૫) જિજ્ઞાસા અને (૨૬) વ્યવસાયને અનુક્રમે પરીક્ષા અને નિર્ણય કહે છે દાર્શનિકોની અર્થાપત્તિ એ જ ચરકની (૨૭) અર્થપ્રાપ્તિ છે. ચરકનુ (૨૮) સભવતત્ત્વ એટલે કારણ, તેમાં દાર્શનિકોના સંભવ પ્રમાણનો પણ સમાવેશ થઈ જાય છે. ચરક જે વાક્યમા વાક્યના દોષો હોય તે વાક્યને (૨૯) અનુયોજ્ય અને જેમા ન હોય તેને (૩૦) અનનુયોજન કહે છે ચરક પ્રશ્ન અને પ્રતિપ્રશ્નને અનુક્રમે (૩૧) અનુયોગ અને (૩૨) પ્રત્યનુયોગ કહે છે ચરકમાં ન્યૂન, અધિક, અનર્થક, અપાર્થક અને વિરુદ્ધ એ પાચ (૩૩) વાક્યદોષો બતાવ્યા છે, જેમાના પ્રથમ ચાર તો બાવીસ નિગ્રહસ્થાનો પૈકી (૧૧) (૧૨) (૭) અને (૯) નિગ્રહસ્થાનો જ છે અને વિરુદ્ધ એ અક્ષપાદનો બીજો હેત્વાભાસ છે. ન્યૂનાદિ ઉક્ત પાંચ દોષો ન હોય એવા વાક્યને ચરક વાક્યપ્રશંસા કહે છે. ચરકમાં વાક્છળ અને સામાન્ય છળ એ બે જ (૩૫) છળ છે તેમાં ન્યાયનુ ઉપચાર છળ નથી ચરકમા (૩૬) અહેતુ (હેત્વાભાસ)ના પ્રકરણસમ, સંશયસમ, અને વર્ણ્યસમ એ ત્રણ ભેદો છે, જે અનુક્રમે ન્યાયસૂત્રના પાચ હેત્વાભાસ પૈકી પ્રકરણસમ, સવ્યભિચાર અને સાધ્યસમને સ્થાને છે. ચરકના (૩૭) અતીતકાલ અને ન્યાયના કાલાતીત (કાલાત્યયાપદિષ્ટ) વચ્ચે ખાસ સામ્ય નથી હેત્વાભાસોનુ ઉદ્ભાવન કરવુ તે (૩૮) ઉપાલમ્ભ અને એનુ સમાધાન કરવું તે (૩૯) પરિહાર. (૪૦) થી (૪૩) સુધીના બધા ચરકકથિત તત્ત્વો ન્યાયના નિગ્રહસ્થાનો જ છે ફેર એટલો છે કે ન્યાયની મતાનુજ્ઞાને ચરક અભ્યનુજ્ઞા કહે છે (૪૪) નિગ્રહસ્થાન એ ન્યાયનુ નિગ્રહસ્થાન છે એના ન્યાયદર્શનવર્ણિત બાવીસ ભેદો ચરકમા નથી પણ ફેર [illegible] ન્યૂન અધિક આદિ અને પ્રતિજ્ઞાહાનિ આદિ થોડાક જ ભેદો ચરકમાં દેખાય છે

ઉપર પ્રમાણે ૪૪ તત્ત્વો [illegible] ચરકે [illegible] [illegible] જે પ્રમાણે [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] વિતાણ્ડ, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

નાંખે તેવું અને કાંઈપણ બોધ ન કરે તેવું વાક્ય વાદી ન જ બોલે તે જે બોલે તે હેતુયુક્ત જ બોલે, કારણ કે હેતુયુક્ત વાદવિગ્રહો વિશદ હોઈ, બુદ્ધિને પ્રશસ્ત બનાવે છે અને એવી પ્રશસ્ત બુદ્ધિ જ દરેક કાર્યની સિદ્ધિ કરે છે આ ઉપરાંત બીજાં કેટલાંક પ્રકરણો ચરકમાં વર્ણવ્યા છે, જે અહીં વિસ્તારભયથી ન આપી શકાય, પણ એ બધું ચરકનું વર્ણન એટલુ બધું સ્પષ્ટ, રોચક અને અનુભવસિદ્ધ છે કે તે વિશેષ જિજ્ઞાસુએ ખાસ જોવા જેવું છે જુઓ ચરક, વિમાનસ્થાન અધ્યાય ૮, રોગભિષગ્જિતીયવિમાન

પરિશિષ્ટ ૪

વિભાગ ૧

સિદ્ધસેનદિવાકરકૃત દ્વાત્રિંશિકાઓ

વાદોપનિષદ્ દ્વાત્રિંશિકા

धर्मार्थकीर्त्यधिकृतान्यपि शासनानि
न ह्यानमात्रनियमात् प्रतिभान्ति लक्ष्म्या ।
संपादयेन्नृपसभासु विगृह्य तानि
येनाध्वना तमभिधातुमविघ्नमस्तु ॥ १ ॥

જે દ્વારા ધર્મ, અર્થ અગર કીર્તિ મેળવવી ઇષ્ટ હોય એવાં શાસનો (માનપત્ર, દાનપત્ર અને આજ્ઞાપત્ર આદિ ફરમાનો) કેવળ સ્પર્ધાને લીધે કાંઈ શોભતાં નથી, તેથી જે માર્ગે રાજસભાઓમા વિગ્રહ કરીને તેવા શાસનો સંપાદન કરવા ઘટે તે માર્ગનું (વાદનું) કથન કરવામા નિર્વિઘ્નતા હો ॥ ૧ ॥

पूर्वं स्वपक्षरचना रभसः परस्य
वक्तव्यमार्गमनियम्य विजृम्भते यः ।
आपीड्यमाननमयः कृतपौरुषोऽपि
नोच्चैः शिरः स वदति प्रतिमानयत्नः ॥ २ ॥

પ્રથમ જ પોતાના પક્ષની સ્થાપનામાં તત્પર એવા પ્રતિવાદીના વક્તવ્યમાર્ગ ઉપર અંકુશ મૂક્યા સિવાય જે વાદી વાક્ચેષ્ટા કરે છે, તે પૌરુષવાળો છતાં પોતાનો અનય પુરવાર થવાથી પીડાતો સભામાં ઊંચું માથું કરી બોલી શકતો નથી ॥ ૨ ॥

વાદદ્વાત્રિંશિકા

ग्रामान्तरोपगतयोरेकामिषसंगजातमत्सरयोः ।
स्यात् सौ(? स)ख्यमपि शुनोर्भ्रात्रोरपि वादिनोर्न स्यात् ॥१॥

જુદા જુદા ગામથી આવી ચઢેલા અને એક જ માસના ટુકડા ઉપર તાકી રહેવાથી પરસ્પર મત્સરી બનેલા એવાં બે શ્વાનોનું પણ કદાચિત્ સખ્ય સંભવે ખરું; પરંતુ વાદીઓ જો બે સગા ભાઈ હોય તોપણ તેઓનું પરસ્પર સખ્ય રહેવું અસંભવિત છે ॥ ૧ ॥

क्व च तत्त्वाभिनिवेश क्व च संरम्भातुरेक्षणं वदनम् ।
क्व च सा दीक्षा विश्वसनीयरूपतानृजुर्वादः (?) ॥ १ ॥

ક્યાં તે તત્ત્વનો આગ્રહ અને ક્યાં આવેશથી આતુર (ચઢેલ) આંખવાળું (વાદીનું) મુખ ? ક્યાં તે વિશ્વાસની મૂર્તિસમી દીક્ષા અને ક્યાં એ કુટિલ વાદ ? ॥ ૨ ॥

तावद् बकमुग्धमुखस्तिष्ठति यावन्न रंगमवतरति ।
रंगावतारमत्त काकोद्धतनिष्ठुरो भवति ॥ ३ ॥

જ્યાં સુધી રંગ(વાદસ્થલી)મા નથી ઊતરતો ત્યાં સુધી વાદી બગલા જેવો મુગ્ધ દેખાય છે. પણ રંગમા ઊતરતા જ તે મત્ત થઈ કાગડા જેવો ઉદ્ધત અને કઠોર થઈ જાય છે. ॥ ૩ ॥

क्रीडनकमीश्वराणां कुर्कुटलावकसमान(?)बालेभ्यः ।
शास्त्राण्यपि हास्यकथां लघुतां वा क्षुल्लको नयति ॥ ४ ॥

ક્ષુલ્લક વાદી કુકડા અને તેતરની પેઠે પૈસાદારોનું રમકડું બની પોતાના શાસ્ત્રોને બાળકો મારફત ઉપહાસ અને લઘુતા પ્રાપ્ત કરાવે છે. ॥ ૪ ॥

अन्यैः स्वेच्छारचितानर्थविशेषान् श्रमेण विज्ञाय ।
कृत्स्नं वाङ्मयमित इति खादत्यंगानि दर्पेण ॥ ५ ॥

બીજાઓએ (અન્ય વાદીઓએ) સ્વેચ્છાપૂર્વક રચેલા વિશિષ્ટ અર્થોને કષ્ટપૂર્વક જાણીને વાદી, જાણે અહીં જ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રો છે એમ દર્પથી અંગોને કરડે છે. ॥ ૫ ॥

अन्यत एव श्रेयांस्यन्यत एव विचरन्ति वादिवृषाः ।
वाक्संरम्भ क्वचिदपि न जगाद मुनिः शिवोपायम् ।

કલ્યાણો બીજે જ તરફ છે, અને વાદીઓ બીજે જ તરફ વિચરે છે, મુનિઓએ તો વાણીના કલહને ક્યાંય મોક્ષનો ઉપાય કહ્યો નથી ॥ ૬ ॥

તે પુરુષોમાં ઉપહાસપાત્ર બને છે તેટલા માટે સભ્યોનાં મનમાં સ્થાન મેળવવા તત્પર થનારે શાસ્ત્ર કરતાં પ્રશમના વિષયમાં જ સોગણો પ્રયત્ન કરવો જોઈએ ॥ ૨૭ ॥

आक्षिप्य य. स्वसमयं परिनिष्ठुराक्ष ·
पश्यत्यनाहतमनाश्च परप्रवादान् ।
आक्रम्य पार्थिवसभा स विरोचमानः
शोकप्रजागरकृशान् द्विषत' करोति ॥ २८ ॥

જે પોતાના સિદ્ધાન્તનું સ્થાપન કરી નિર્ભય મન અને નિષ્ઠુર નેત્રવાળો થઈ પ્રતિવાદીઓ સામે જુએ છે તે રાજસભા ઉપર કાબૂ મેળવી તેજસ્વી બનેલો પોતાના શત્રુઓને શોક અને જાગરણના દુઃખથી દુર્બળ કરી મૂકે છે ॥ ૨૮ ॥

किं गर्जितेन रिपुषु त्वभितोमुखेषु
किं त्वेव निर्दयविरूपितपौरुषेषु ।
वाग्दीपितं तृणकृशानुवलं हि तेजः
कल्पात्ययस्थिरविभूतिपराक्रमोत्थम् ॥ २९ ॥

સમ્મુખ થઈ બેઠેલા શત્રુઓમાં ગર્જન કરવાથી શું થવાનું છે? તેમ જ નિર્દયભાવે જેઓ પૌરુષ નિહાળી રહ્યા હોય તેમની વચ્ચે પણ ગર્જન કરવાથી શું થવાનું છે? કારણ કે વાણીથી પ્રકટાવેલું તેજ માત્ર ઘાસના અગ્નિ જેટલું બળ ધરાવે છે કલ્પાંત સુધી સ્થિર રહે તેવું તેજ પરાક્રમથી જ પ્રકટી શકે છે. ॥ ૨૯ ॥

परिचितनय स्फीतार्थोऽपि श्रियं परिसंगतां
न नृपतिरलं भोक्तुं कृत्स्नां कृशोपनिषद्वल ।
विदितसमयोऽप्येवं वाग्मी विनोपनिषत्क्रियां
न तपति यथा विज्ञानारस्तथा कृतविग्रहा. ॥ ३२ ॥

જેમ સમૃદ્ધિશાળી અને નીતિનિપુણ હોવા છતાં પણ જે રાજા રહસ્ય-જ્ઞાનથી દુર્બળ હોય છે તે તે પ્રાપ્ત થયેલી સંપૂર્ણ સંપત્તિને ભોગવી શકતો નથી, તેમ શાસ્ત્રોનો જાણકાર હોવા છતાં (વાદના) રહસ્યને ન જાણતો હોય તો તે (સભામાં) દીપી શકતો નથી; કારણ કે જે (વાદી અગર રાજા) જે રીતે જાણતા હોય તે રીતે તે વિગ્રહ કરી શકે ॥ ૩૨ ॥

વાદદ્વાત્રિંશિકા

ग्रामान्तरोपगतयोरेकामिषसंगजातमत्सरयोः ।
स्यात् सौ(? स)ख्यमपि शुनोर्भ्रात्रोरपि वादिनोर्न स्यात् ॥१॥

જુદા જુદા ગામથી આવી ચઢેલા અને એક જ માંસના ટુકડા ઉપર તાકી રહેવાથી પરસ્પર મત્સરી બનેલા એવાં બે શ્વાનોનું પણ કદાચિત્ સખ્ય સંભવે ખરું; પરંતુ વાદીઓ જો બે સગા ભાઈ હોય તોપણ તેઓનું પરસ્પર સખ્ય રહેવું અસંભવિત છે ॥ ૧ ॥

क्व च तत्त्वाभिनिवेश क्व च संरम्भातुरेक्षणं वदनम् ।
क्व च सा दीक्षा विश्वसनीयरूपतानृजुर्वादः (?) ॥ १ ॥

ક્યાં તે તત્ત્વનો આગ્રહ અને ક્યાં આવેશથી આતુર (ચઢેલ) આંખવાળું (વાદીનું) મુખ ? ક્યાં તે વિશ્વાસની મૂર્તિસમી દીક્ષા અને ક્યાં એ કુટિલ વાદ ? ॥ ૨ ॥

तावद् बकमुग्धमुखस्तिष्ठति यावन्न रंगमवतरति ।
रंगावतारमत्त काकोद्धतनिष्ठुरो भवति ॥ ३ ॥

જ્યાં સુધી રંગ(વાદસ્થલી)માં નથી ઊતરતો ત્યાં સુધી વાદી બગલા જેવો મુગ્ધ દેખાય છે પણ રંગમાં ઊતરતા જ તે મત્ત થઈ કાગડા જેવો ઉદ્ધત અને કઠોર થઇ જાય છે. ॥ ૩ ॥

क्रीडनकमीश्वराणां कुर्कुटलावकसमान(?)वालेभ्यः ।
शास्त्राण्यपि हास्यकथां लघुतां वा क्षुल्लको नयति ॥ ४ ॥

ક્ષુલ્લક વાદી કુકડા અને તેતરની પેઠે પૈસાદારોનું રમકડું બની પોતાના શાસ્ત્રોને બાળકો મારફત ઉપહાસ અને લઘુતા પ્રાપ્ત કરાવે છે. ॥ ૪ ॥

अन्यै स्वेच्छारचितानर्थविशेषान् श्रमेण विज्ञाय ।
कृत्स्नं वाङ्मयमित इति खादत्यंगानि दर्पेण ॥ ५ ॥

બીજાઓએ (અન્ય વાદીઓએ) સ્વેચ્છાપૂર્વક રચેલા વિશિષ્ટ અર્થોને કષ્ટપૂર્વક જાણીને વાદી, જાણે અહીં જ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રો છે એમ દર્પ વડે અંગોને કરડે છે ॥ ૫ ॥

अन्यत एव श्रेयांस्यन्यत एव विचरन्ति वादिवृषाः ।
वाक्संरम्भं क्वचिदपि न जगाद मुनिः शिवोपायम् ।

કલ્યાણો બીજે જ તરફ છે, અને વાદીઓ બીજે જ તરફ વિચરે છે, મુનિઓએ તો વાણીના યુદ્ધને ક્યાંય કલ્યાણનો ઉપાય કહ્યો નથી ॥ ૬ ॥

यद्यकलहाभिजातं वाक्छलरंगावतारनिर्वाच्यम् ॥
स्वस्थमनोभिस्तत्त्वं परिमीमांसेन्न दोष स्यात् ॥ ८ ॥

વાકછલરૂપી રંગભૂમિમાં ઊતરીને જેનું નિર્વચન કરવાનું છે, એવા તત્ત્વની જો સ્વચ્છ મન વડે, અકલહથી સુંદર બને તેમ જો વિચારણા કરવામાં આવે તો તેમા કશો દોષ ન થાય. ॥ ૮ ॥

साधयति पक्षमेकोऽपि हि विद्वान् शास्त्रवित्प्रशमयुक्तः ।
न तु कलहकोटिकोट्याऽपि समेता (? संगता) वाक्यलालभुजः ॥९॥

શાસ્ત્ર જાણનાર વિદ્વાન જો શાંત હોય તો તે એકલો છતાં પણ પોતાનો પક્ષ સાધે છે, પરંતુ વાક્યોની લાળ ચાટનારા અનેક વિદ્વાનો એકઠા થઈને કલહ–પ્રધાન એવી કરોડો કોટિઓથી પણ પોતાનો પક્ષ સાધી શકતા નથી ॥ ૯ ॥

आर्तध्यानोपगतो वादी प्रतिवादितस्तथा स्वस्य ।
चिन्तयति पक्षनयहेतुशास्त्रवाग्बाणसामर्थ्यम् ॥ १० ॥

વાદી દુર્ધ્યાનમાં પડી પ્રતિવાદીના અને પોતાના પક્ષવિષયક, નયવિષયક, હેતુવિષયક, શાસ્ત્રવિષયક અને વચનબાણવિષયક સામર્થ્યની જ ચિંતા કરતો રહે છે. ॥ ૧૦ ॥

हेतुविदसौ न शब्दः (?शाब्द) शाब्दोऽसौ न तु विदग्धहेतुकथ ।
उभयज्ञो भावपटु पटुरन्योऽसौ स्वमतिहीन. ॥ ११ ॥

અમુક વાદી હેતુજ્ઞ (તર્કજ્ઞ) છે તો શબ્દશાસ્ત્ર નથી જાણતો વળી અમુક બીજો વાદી શબ્દશાસ્ત્રજ્ઞ છે તો તર્કકથામાં કુશળ નથી ત્રીજો વળી તર્ક અને શબ્દશાસ્ત્ર બન્ને જાણતો છતાં ભાવ પ્રકટ કરવામાં પટુ નથી તો બીજો વાદી પટુ છે પણ તેને પોતાની બુદ્ધિ નથી ॥ ૧૧ ॥

सा नः कथा भविन्नी तत्रैता जातयो मया योज्या ।
इति रागविगतनिद्रो वाग्मुखयोग्यां निशि करोति ॥ १२ ॥

'અમારા વચ્ચે તે કથા થવાની છે તેમાં માટે આ જાતિઓ (અસત્ ઉત્તરો) યોજવાની છે' આવા પ્રકારની ચિંતાથી નિદ્રાહીન થયેલો વાદી રાત્રે વખતે વચન અને મુખની કસરત કરે છે ॥ ૧૨ ॥

रागभवितर्कविभ्रमितहृदयः दृष्ट्वा क्षणमपि न शेते ।
कुप्यन्नदर्पं परिवदति गुणात्मकभावनोपहत ॥ १३ ॥

સભામાં જેનો ગર્વ તૂટી ગયો છે એવો વાદી પોતાની મિથ્યા આત્મ-સંભાવનાથી આઘાત પામી આખી રાત અશુભ વિતર્કોથી ઘેરાયેલા હૃદયવાળો થઈ ઊંઘ લઈ શકતો નથી. ॥ ૧૩ ॥

यदि विजयते कथञ्चित्ततोऽपि परितोषभग्नमर्याद ॥
स्वगुणविकत्थनदुषिक(?)स्त्रीनपि लोकान् खलीकुरुते ॥ १५ ॥
उत जीयते कथञ्चित् परिषत्परिवादिन स कोपान्ध ॥
गलगर्जनाक्रामन् वैलक्ष्यविनोदनं कुरुते ॥ १६ ॥

જો વાદી કોઈ પણ રીતે જીતે તો તેથી થતી ખુશીમા તે મર્યાદા તોડી આત્મપ્રશંસાથી ફુલાઈ જઈ ત્રણે લોકની અવજ્ઞા કરે છે પરંતુ જો હારે તો તે વાદી ક્રોધાંધ થઈ સભા અને પ્રતિવાદી ઉપર ઊંડી ગર્જના દ્વારા આક્રમણ કરતો પોતાની ઝાખપને દૂર કરે છે ॥ ૧૫ ॥ ॥ ૧૬ ॥

वाक्कथां न क्षमते दीर्घं निश्वसिति मानभंगोष्णम् ।
रम्येऽप्यपरतिज्वरित सुहृत्स्वपि वज्रीकरणवाक्यः ॥ १७ ॥

જ્યારે વાદી વાદકથા નથી સહી શકતો ત્યારે માનભંગના ભયથી ગરમ અને લાંબો નિસાસો મૂકે છે. અને તે રમ્ય સ્થાનોમા પણ બેચેનીથી સંતપ્ત થયેલો હોઈ મિત્રોના પ્રત્યે પણ વજ્ર જેવા તીક્ષ્ણ વચનો બોલવા લાગે છે. ॥ ૧૭ ॥

दुःखमहंकारप्रभवमित्यं सर्वतन्त्रसिद्धान्तः ।
अथ च तमेवारूढस्तत्त्वपरीक्षां किल करोति ॥ १८ ॥

સર્વ શાસ્ત્રકારોનો એ મત છે કે અહંકાર એ જ દુ:ખનું મૂળ છે, છતાં તે જ અહંકારનો આશ્રય લઈ વાદી તત્ત્વની પરીક્ષા કરવા ઇચ્છે છે. ॥ ૧૮ ॥

ज्ञेय परसिद्धान्तः स्वपक्षफलनिश्चयोपलब्ध्यर्थम् ।
परपक्षक्षोभणमभ्युपेत्य तु सतामनाचारः ॥ १९ ॥

પોતાના પક્ષફળના નિશ્ચયની ઉપલબ્ધિ (જ્ઞાન) માટે જ બીજાના સિદ્ધાંત જાણી લેવો આવશ્યક છે; પરંતુ સામાના પક્ષને ક્ષોભિત બનાવવાના ઉદ્દેશથી તેનો સિદ્ધાંત જાણવો એ તો સજ્જનો માટે અનાચાર જ છે. ॥ ૧૯ ॥

स्वहितायैवोत्थेयं को नानामतिविचेतनं लोकम् ।
यः सर्वज्ञैर्न कृतः शक्ष्यति तं कर्तुमेकमनाः । २०

પોતાના હિતની દૃષ્ટિએ જ પરાક્રમ કરવુ ઉચિત છે, કારણ કે અ
મતભેદોથી ભ્રાન્ત થયેલુ આ જગત સર્વજ્ઞોથી પણ એકમત ન થયુ
પછી તેને કયો વાદી એકમત કરી શકશે ? ॥ ૨૦ ॥

सर्वज्ञविषयसंस्थांश्छद्मस्थो न प्रकाशयत्यर्थान् ।
नाश्चर्यमेतदत्यद्भुतं तु यत्किंचिदपि वेत्ति ॥ २१ ॥

સર્વજ્ઞના જ વિષયભૂત એવા પદાર્થોને જો છદ્મસ્થ (અલ્પજ્ઞ) મ
પ્રકટ કરી શકતો નથી, તો તેમા કાંઈ આશ્ચર્ય પામવા જેવુ નથી એ
અલ્પજ્ઞો જે કાંઈ થોડું જાણી શકે છે તે જ આશ્ચર્ય માનવું જોઈએ ॥૨

परुषवचनोद्यतमुखैः काहलजनचित्तविभ्रमपिशाचैः ।
धूर्तैः कलहस्य कृतो मीमांसा नाम परिवर्तः ॥ २४ ॥

પામર જનોનાં ચિત્તને ભરમાવવા માટે પિશાચ જેવા અને કઠોર વ
બોલવા માટે જ જેઓના મુખ તત્પર હોય છે એવા ધૂર્તજનોએ કલ
મીમાસાના નામમા બદલી નાખ્યું છે

परनिग्रहाध्यवसितश्चितैकाग्र्यमुपयाति तद्वादी ।
यदि तत्स्याद्वैराग्ये न चिरेण शिवं पदमुपयातु ॥ २५ ॥

બીજાઓને નિગ્રહ આપવાના નિશ્ચયથી વાદી ચિત્તની જે એકાગ્ર
મેળવે છે તેવી જો વૈરાગ્યમાં મેળવે તો તે વાદી વગર વિલબે મુક્તિ પામે. ॥ ૨૫

एकमपि सर्वपर्ययनिर्वचनीयं यदा न वेत्त्यर्थम् ।
मां प्रत्यहमिति गर्वः स्वस्थस्य न युक्त इह पुंस ॥ २६ ॥

અહી આ લોકમાં, જ્યારે મનુષ્ય સર્વ અંગોથી નિર્વચન કર
યોગ્ય એવી એક પણ વસ્તુને પૂરી જાણી શકતો નથી તો પછી 'હુ'
'મારા પ્રત્યે !' એવા પ્રકારનો ગર્વ કરવો કયા સ્વસ્થ પુરુષને યોગ્ય ગ
શકે ? ॥ ૨૬ ॥

ન્યાયદ્વાત્રિંશિકા

दैवखातं च वदनं आत्मायत्तं च वाङ्मयम् ।
श्रोतारः सन्ति चोक्तस्य निर्लज्जः को न पण्डितः ॥ १ ॥

મોઢું દૈવે ખોદ્યું છે (અનાયાસે મળ્યું છે) અને વાણી પોતાને આધી

છે; જે કાંઈ પણ કહેવામાં આવે તેને સાંભળનાર પણ મળી જ આવે છે; એવી સ્થિતિમાં કયો નિર્લજ્જ પંડિત ન બની શકે? ॥ ૧ ॥

द्वितीयपक्षप्रतीघाः सर्व एव कथापथा ।
अभिधानार्थविभ्रान्तैरन्योऽन्यं विप्रलभ्यते ॥ ७ ॥

સર્વે કથા(વાદ)માર્ગો પરપક્ષના ઘાત માટે જ રચાયેલા હોય છે, છતાં શબ્દ અને અર્થમાં ભ્રાન્ત થયેલા વાદીઓ અંદરોઅંદર વિપ્રલાપ કર્યા જ કરે છે ॥ ૭ ॥

एकपक्षहता बुद्धिर्जल्पवाग्यन्त्रपीडिता ।
श्रुतसंभावनावैरी वैरस्यं प्रतिपद्यते ॥ १६ ॥

જલ્પરૂપ વચનયંત્રમાં પીડિત થયેલી બુદ્ધિ એક પક્ષમાં હણાઈ જાય છે; અને શાસ્ત્રસંભાવના (બહુમાન)ની શત્રુ બની નીરસપણું પ્રાપ્ત કરે છે. ॥૧૬॥

न नाम दृढमेवेति दुर्बलं चोपपत्तित ।
वक्तृशक्तिविशेषात्तु तत्तद्भवति वा न वा ॥ २८ ॥

ઉપપત્તિ (યુક્તિ)થી કાંઈ બળવાન્ કે દુર્બળ છે જ નહિ, વક્તાની વિશિષ્ટ શક્તિને લીધે જ તે તેમ બને અથવા ન બને ॥ ૨૮ ॥

तुल्यसामाद्युपायास्तु शक्त्या युक्तो विशेष्यते ।
विजिगीषुर्यथा वाग्मी तथाभूयं (?) श्रुतादपि ॥ २९ ॥

સામ આદિ ઉપાયો સમાન હોવા છતાં જેવી રીતે શક્તિશાલી વિજિગીષુ ચઢી જાય છે તેવી રીતે વક્તા પણ શાસ્ત્ર કરતાં શક્તિના યોગે ચઢી જાય છે. ॥ ૨૯ ॥

प्राश्निकेश्वरसौमुख्यं धारणाक्षेपकौशलम् ।
सहिष्णुता परं धार्ष्ट्यमिति वादचक्राणि षट् ॥ ३२ ॥

સભ્ય અને સભાપતિનો સદ્ભાવ, ધારણાશક્તિ અને આક્ષેપશક્તિનું કૌશલ, સહનશીલતા અને પરમ ધૃષ્ટતા—આ છ વાદચક્ર કહેવાય છે ॥ ૩૨ ॥

વિભાગ ૨

હરિભદ્રસૂરિનાં વાદ અને ધર્મ [illegible]

[illegible] ૧૨ માં જે [illegible] [illegible] તે [illegible] આવે છે —

शुष्कवादो विवादश्च धर्मवादस्तथापरः ।
इत्येष त्रिविधो वादः कीर्तितः परमर्षिभिः ॥ १ ॥

अत्यन्तमानिना सार्धं क्रूरचित्तेन च दृढम् ।
धर्मद्विष्टेन मूढेन शुष्कवादस्तपस्विनः ॥ २ ॥

विजयेऽस्यातिपातादि लाघवं तत्पराजयात् ।
धर्मस्येति द्विधाप्येष तत्त्वतोऽनर्थवर्धनः ॥ ३ ॥

लब्धिख्यात्यर्थिना तु स्याद् दुःस्थितेनामहात्मना ।
छलजातिप्रधानो यः स विवाद इति स्मृतः ॥ ४ ॥

विजयो ह्यत्र सन्नीत्या दुर्लभस्तत्त्ववादिनः ।
तद्भावेऽप्यन्तरायादिदोषोऽदृष्टविघातकृत् ॥ ५ ॥

परलोकप्रधानेन मध्यस्थेन तु धीमता ।
स्वशास्त्रज्ञाततत्त्वेन धर्मवाद उदाहृतः ॥ ६ ॥

विजयेऽस्य फलं धर्मप्रतिपत्त्याद्यनिन्दितम् ।
आत्मनो मोहनाशश्च नियमात्तत्पराजयात् ॥ ७ ॥

देशाद्यपेक्षया चेह विज्ञाय गुरुलाघवम् ।
तीर्थकृज्ज्ञातमालोच्य वादः कार्यो विपश्चिता ॥ ८ ॥

विषयो धर्मवादस्य तत्तत्तन्त्रव्यपेक्षया ।
प्रस्तुतार्थोपयोग्येव धर्मसाधनलक्षणः ॥ १ ॥

पंचैतानि पवित्राणि सर्वेषां धर्मचारिणाम् ।
अहिंसा सत्यमस्तेयं त्यागो मैथुनवर्जनम् ॥ २ ॥

क्व खल्वेतानि युज्यन्ते मुख्यवृत्त्या क्व वा न हि ।
तन्त्रे तत्तन्त्रनीत्यैव विचार्यं तत्त्वतो ह्यदः ॥ ३ ॥

धर्मार्थिभिः प्रमाणादेर्लक्षणं न तु युक्तिमत् ।
प्रयोजनाद्यभावेन तथा चाह महामतिः ॥ ४ ॥

"प्रसिद्धानि प्रमाणानि व्यवहारश्च तत्कृतः ।
प्रमाणलक्षणस्योक्तौ ज्ञायते न प्रयोजनम्" ॥ ५ ॥

प्रमाणेन विनिश्चित्य तदुच्येत न वा ननु ।
अलक्षितात् कथं युक्ता न्यायतोऽस्य विनिश्चितिः ॥ ६ ॥

सत्यां चास्यां तदुक्त्या किं तद्वद्विषयनिश्चितेः ।
तत एवाविनिश्चित्य तस्योक्तिर्ध्यान्ध्यमेव हि ॥ ७ ॥
तस्माद्यथोदितं वस्तु विचार्यं रागवर्जितैः ।
धर्मार्थिभिः प्रयत्नेन तन इष्टार्थसिद्धित ॥ ८ ॥

પરિશિષ્ટ ૫

વાદી દેવસૂરિનો તથા આચાર્ય હેમચંદ્રનો વાદવિચાર

વિભાગ ૧.

વાદસ્વરૂપ[1]—પરસ્પર વિરુદ્ધ એવા બે અંશોમાંથી એક અનિષ્ટ અંશનું નિરાકરણ કરી બાકીના બીજા ઇષ્ટ અંશનું સ્થાપન કરવા માટે વાદી અને પ્રતિવાદી જે પોતપોતાના પક્ષનું સાધન અને સામેના પક્ષનું નિરસન કરે કરે છે તે વાદ. આ લક્ષણમાં અક્ષપાદના વાદ અને જલ્પનો સમાવેશ થાય છે, વિતણ્ડાનો નહિ

હેમચંદ્ર કહે છે કે પ્રાશ્નિક (સભ્ય), સભાપતિ અને પ્રતિવાદીની સમક્ષ તત્ત્વનિશ્ચયની રક્ષા માટે પોતાના પક્ષનું સાધન અને પરપક્ષનું દૂષણ કહેવું તે વાદ.[2] હેમચંદ્ર પણ પોતાના એ વાદના લક્ષણમાં અક્ષપાદકથિત વાદ અને જલ્પ એ બને કથાનો સમાવેશ કરે છે અને લાંબી ચર્ચા પછી કહે છે કે વાદથી જલ્પની કાંઈ ભિન્નતા[3] નથી. વિતણ્ડા માટે તો તે કહે છે કે પ્રતિપક્ષસ્થાપના વિનાની વિતણ્ડા એ તો કથા જ નથી, કારણ કે વૈતણ્ડિક પોતાનો પક્ષ લઈ તેને સ્થાપન ન કરતાં જે કાંઈ પણ બોલી પરપક્ષને જ દૂષિત કરે તો તેનું કથન કોણ સાંભળે ? તેથી વૈતણ્ડિકે પોતાના પક્ષનું સ્થાપન તો કરવું જ રહ્યું; અને એમ કરે એટલે તેની કથામાં વિતણ્ડાપણું રહેતું જ નથી, કાં તો તે કથા વાદ અને કાં તો જલ્પ બની જાય છે માટે જ વિતણ્ડા એ કથાકોટિમાં આવી શકતી નથી[4]

---

१ विरुद्धयोर्धर्मयोरेकधर्मव्यवच्छेदेन स्वीकृततदन्यधर्मव्यवस्थापनार्थं साधनदूषणवचनं वादः । प्रमाणनयतत्त्वा. परि ८, सू. १

२ तत्त्वसंरक्षणार्थं प्राश्निकादिसमक्षं साधनदूषणवदनं वादः । प्रमाणमीमांसा ॥ २-१-३० ॥

३ तन्न वादात् जल्पस्य कश्चिद्विशेषोऽस्ति । प्रमाणमीमांसा

४ प्रतिपक्षस्थापनाहीनाया वितण्डायाः कथात्वायोगात् । वैतण्डिको हि स्वपक्षमभ्युपगम्यास्थापयन् यत्किञ्चिद्वादेन परपक्षमेव दूषयन् कथमवधेयवचनः । प्रमाणमीमांसा

વાદી (પ્રારંભક) પ્રતિવાદી (પ્રત્યારંભક)—વાદી બે પ્રકારના હોય છે. એક વિજયેચ્છુ અને બીજો તત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ. તત્ત્વનિર્ણયેચ્છુના વળી બે પ્રકારો છે. કોઈ પોતે જ તત્ત્વનિર્ણય મેળવવા ઇચ્છે છે તે સ્વાત્મનિ તત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ કહેવાય, જ્યારે બીજો સ્વયં નિર્ણયવાન્ હોઈ બીજાને તત્ત્વનિર્ણય કરાવી આપવા ઇચ્છે છે તે પરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ કહેવાય આ બેમાંથી પરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુના પણ બે પ્રકાર સંભવે છે એક અસર્વજ્ઞ અને બીજો સર્વજ્ઞ આ રીતે (૧) વિજયેચ્છુ (૨) સ્વાત્મનિતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ (૩) અસર્વજ્ઞપરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ (૪) સર્વજ્ઞપરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ, એમ ચાર પ્રકારના વાદી થયા

પ્રતિવાદી પણ ઉપરની રીતે જ ચાર સભવી શકે તેમાથી કઈ કઈ જાતના વાદીનો કઈ કઈ જાતના પ્રતિવાદી સાથે વાદ સંભવે અને કઈ જાતના સાથે ન સંભવે એનો વિસ્તાર નીચે પ્રમાણે છે

(૧) વિજયેચ્છુ વાદીનો સ્વાત્મનિતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ પ્રતિવાદી સાથે, (૨) સ્વાત્મનિતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ વાદીનો વિજયેચ્છુપ્રતિવાદી સાથે, (૩) સ્વાત્મનિતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ વાદીનો સ્વાત્મનિતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ પ્રતિવાદી સાથે અને (૪) પરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ સર્વજ્ઞ વાદીનો પરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ સર્વજ્ઞ પ્રતિવાદી સાથે--આ પ્રમાણે ચાર વાદ ન સંભવે.

જે (વાદ) સભવે તે આ પ્રમાણે —

(૧) વાદી અને પ્રતિવાદી બન્ને વિજયેચ્છુ, (૨) વાદી વિજયેચ્છુ અને પ્રતિવાદી અસર્વજ્ઞ પરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ; (૩) વાદી વિજયેચ્છુ અને પ્રતિવાદી સર્વજ્ઞપરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ, (૪) વાદી સ્વાત્મનિતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ અને પ્રતિવાદી અસર્વજ્ઞ-પરત્ર-તત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ; (૫) વાદી સ્વાત્મનિતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ અને પ્રતિવાદી સર્વજ્ઞ-પરત્ર-તત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ, (૬) વાદી અસર્વજ્ઞ-પરત્ર-તત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ અને પ્રતિવાદી વિજયેચ્છુ (૭) વાદી અસર્વજ્ઞ પરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ અને પ્રતિવાદી સ્વાત્મનિતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ; (૮) વાદી અસર્વજ્ઞ પરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ અને પ્રતિવાદી અસર્વજ્ઞ-પરત્ર-તત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ, (૯) વાદી અસર્વજ્ઞ પરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ. (૧૦) વાદી સર્વજ્ઞ-પરત્ર-તત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ અને પ્રતિવાદી વિજયેચ્છુ, (૧૧) વાદી સર્વજ્ઞ પરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ અને પ્રતિવાદી સ્વાત્મનિ તત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ (૧૨) વાદી સર્વજ્ઞપરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ અને પ્રતિવાદી અસર્વજ્ઞ પરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ

અંગનિયમ—વાદકથાનાં ચાર અંગો માનવામા આવ્યાં છે (૧) વાદી, (૨) પ્રતિવાદી, (૩) સભ્ય, (૪) સભાપતિ વધારેમાં વધારે આ ચાર જ અંગો વાદ માટે આવશ્યક છે પણ વાદી પ્રતિવાદીની વિશેષતાને લઈને કેટલાક વાદો ઓછાં અંગોથી પણ ચાલે છે. તેથી વાદને લગતો અંગનો નિયમ પણ બતાવવામાં આવ્યો છે, જેમ કે વાદી અને પ્રતિવાદી વચ્ચે વાદના જે ઉપર્યુક્ત બાર પ્રકાર બતાવવામાં આવ્યા છે તેમાંથી વિજયેચ્છુ વાદી સાથે (૧) વિજયેચ્છુ પ્રતિવાદીનો (૨) અસર્વજ્ઞ પરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ-પ્રતિવાદીનો તથા (૩) સર્વજ્ઞ પરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ પ્રતિવાદીનો–એ પ્રમાણે ત્રણ વાદો બને છે. તે વાદો પૂર્વોક્ત ચારે અગ હોય તો જ ચાલી શકે. કારણ કે જ્યા વાદી કે પ્રતિવાદી–એમાંથી એક પણ વિજયેચ્છુ હોય ત્યા સભ્ય અને સભાપતિ સિવાય વ્યવસ્થા રહી શકે જ નહિ જ્યારે સ્વાત્મનિતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ વાદીનો અસર્વજ્ઞ પરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ પ્રતિવાદી સાથે વાદ ચાલે છે ત્યારે તેમાં બે અથવા ત્રણ અંગ હોય છે. જો વાદી અને પ્રતિવાદી બંને અંદરોઅંદર સમજી શકે તો તે પોતે જ બે અંગ અને જો પ્રયત્ન કર્યા છતા પણ પ્રતિવાદી વાદીને ન સમજાવી શકે તો સભ્યની આવશ્યકતા પડે એટલે ત્રણ અગ થયાં. એમાં વાદી–પ્રતિવાદી બંને નિર્ણયેચ્છુ હોવાથી કલહ આદિનો સંભવ ન હોવાને લીધે સભાપતિ રૂપ અંગ આવશ્યક જ નથી.

પરંતુ જો સ્વાત્મનિતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ વાદીનો સર્વજ્ઞ–પરત્ર–તત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ પ્રતિવાદી સાથે વાદ હોય તો તેમાં સભ્યની આવશ્યકતાનો પ્રસંગ ન પડવાથી વાદી અને પ્રતિવાદી બે જ અંગો હોય છે

અસર્વજ્ઞ પરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ વાદિનો વિજયેચ્છુ–પ્રતિવાદી સાથે વાદ હોય તો તેમા ચારે અંગ જોઈએ પણ જો તે અસર્વજ્ઞપરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ વાદીનો સ્વાત્મનિતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ પ્રતિવાદી સાથે અથવા પરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ અસર્વજ્ઞ પ્રતિવાદી સાથે વાદ હોય તો તેમા બે (વાદી–પ્રતિવાદી) અથવા ત્રણ જ અંગ જોઈએ (સભાપતિ નહિ). પણ જો એ અસર્વજ્ઞ–પરત્રતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ વાદીનો સર્વજ્ઞ પ્રતિવાદી સાથે વાદ હોય તો તેના બે જ અંગ હોય

સર્વજ્ઞ વાદીનો વિજયેચ્છુ પ્રતિવાદી સાથે વાદ [illegible] જ હોય પણ તે સર્વજ્ઞ વાદીનો સ્વાત્મનિતત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ પ્રતિવાદી સાથે અથવા પરત્ર–તત્ત્વનિર્ણયેચ્છુ અસર્વજ્ઞ પ્રતિવાદી સાથે વાદ હોય તો બે જ [illegible] [illegible] વાદમાં વાદી કે પ્રતિવાદી કોઈ પણ એક વિજયેચ્છુ [illegible]

કલહ આદિ દૂર કરવા, વ્યવસ્થા રાખવા, સભ્ય અને સભાપતિ આવશ્યક હોય જ એ ઉપર કહેવામા આવ્યું છે

અંગોનું સ્વરૂપ અને કર્તવ્ય.—(૧) વાદ કથામાં બે પક્ષકારો હોય છે તેમાં એક વાદી અને બીજો તેની સામે થનાર તેની અપેક્ષાએ પ્રતિવાદી, તેવી રીતે બીજાની અપેક્ષાએ તેની સામે પડનાર પહેલો પ્રતિવાદી કહેવાય છે. વાદી અને પ્રતિવાદી બનેનુ કામ પ્રમાણપૂર્વક પોતપોતાના પક્ષનુ સ્થાપન અને પરપક્ષનુ ખંડન એ છે.

(૨) વાદી અને પ્રતિવાદી બનેના સિદ્ધાન્તોના રહસ્યનુ જ્ઞાન, ધારણાશક્તિ બહુશ્રુતપણું, ક્ષમા, મધ્યસ્થપણું—એ ગુણોને લીધે જેઓ વાદી અને પ્રતિવાદી બનેને માન્ય થઈ શકે તે સભ્ય[1] તેઓનુ કામ નીચે પ્રમાણે —

વાદી અને પ્રતિવાદીને ચોક્કસ પક્ષનો સ્વીકાર કરાવવો તેઓને જે પદ્ધતિએ ચર્ચા કરવાની હોય તે પદ્ધતિનો પણ સ્વીકાર કરાવવો, પહેલો કોણ બોલશે તે ઠરાવવુ, વાદી અને પ્રતિવાદીએ પોતપોતાના પક્ષના સાધનમા અને વિરુદ્ધ પક્ષના નિરાકરણમા જે કહ્યું હોય તેના ગુણ અને દોષોનો નિશ્ચય કરવો, વખત આવ્યે સત્ય (તત્ત્વ) પ્રકાશન કરી ચર્ચાને બધ કરવી અને યથાર્થપણે સભામા ચર્ચાનું ફળ (જય અગર પરાજય) નિવેદન કરવું.

સભાપતિનું સ્વરૂપ અને તેનું કાર્ય–પ્રજ્ઞા (વિવેકશક્તિ) આજ્ઞા, ઐશ્વર્ય (પ્રભાવ), ક્ષમા, અને મધ્યસ્થતા (નિષ્પક્ષપણું) એટલા ગુણોથી યુક્ત હોય તે સભાપતિ થઈ શકે.

તેનું કાર્ય બન્ને વાદીઓ અને સભ્યોએ જે કહ્યુ હોય તે સમજી લેવું અને તકરારનો નીવેડો લાવવો વગેરે હોય છે

કાળમર્યાદા—જો જયેચ્છુ વાદીઓની ચર્ચા હોય તો તેનો સમય સભ્યોની ઇચ્છા અને બોલનારની સ્ફૂર્તિ (કથનસામર્થ્ય) ઉપર આધાર રાખે

---

1 वादिप्रतिवादिसिद्धान्ततत्त्वनदीष्णत्वधारणाबाहुश्रुत्यप्रतिभाक्षान्तिमाध्यस्थ्यैरुभयाभिमताः सभ्याः । प्रमाणनयतत्त्वा. परि. ८, सू. १८ ।

સભ્યના સ્વરૂપ વિષે હેમચંદ્રે આપેલું નીચે એક સુંદર પદ્ય છે :

स्वसमयपरसमयज्ञाः कुलजाः पक्षद्वयेप्सिताः क्षमिणः ।

वादपथेष्वभियुक्तास्तुलासमाः प्राश्निकाः प्रोक्ताः ॥ प्रमाणमीमांसा पृ. ३४, पं. १

છે; અને જો તત્ત્વનિર્ણયેચ્છુઓની ચર્ચા હોય તો તેનો સમય તત્ત્વનિર્ણયના અવસાન અને બોલનારની સ્ફૂર્તિ ઉપર અવલંબે છે.

જોકે દેવસૂરિના ઉપરોક્ત વર્ણન જેટલુ વિસ્તૃત વર્ણન બીજા કોઈ ગ્રંથમા અદ્યાપિ જોવામા નથી આવ્યું, છતાં અક્ષપાદના ન્યાયસૂત્ર ઉપરની વિશ્વનાથ તર્કપંચાનનકૃત વૃત્તિમાં થોડુંક આને લગતુ જાણવા જેવુ વર્ણન છે. દેવસૂરિ અને તર્કપંચાનન બંનેનુ વર્ણન ઘણે અંશે એકબીજાની પૂર્તિ રૂપ હોઈ તેને અહીં જ આપી દેવુ યોગ્ય છે વૃત્તિમાંથી ચાર મુખ્ય બાબતો અહીં નોંધવા જેવી છે

(૧) ચર્ચા સામાન્યના અધિકારીઓ કેવા હોવા જોઈએ તે.
(૨) વાદકથાના (વિશિષ્ટ ચર્ચાના) અધિકારીઓ કેવા હોવા જોઈએ.
(૩) સભા કેવી હોવી જોઇએ તે.
(૪) ચર્ચાનો ક્રમ કેવો હોવો જોઇએ.

કથાધિકારી(વાદી પ્રતિવાદી)નું સ્વરૂપ.—

તત્ત્વનિર્ણય અગર વિજય એ બેમાંથી કોઈ પણ એકની ઇચ્છા રાખનાર, સર્વજન સિદ્ધ અનુભવની અવગણના ન કરનાર, સાભળવા વગેરે કામમા પટુ; તકરાર નહિ કરનાર અને ચર્ચામાં ઉપયોગી થાય તેવું પ્રવર્તન કરવામાં સમર્થ વાદી પ્રતિવાદી હોવા જોઈએ.

વાદાધિકારી.—

તત્ત્વજ્ઞાનને ઇચ્છનાર, પ્રસ્તુત વિષય સાથે સંબદ્ધ જ બોલનાર, નહિ ઠગનાર, યથાસમયસ્ફૂર્તિવાળા, અપેક્ષા (લાભેચ્છા) વિનાના, અને યુક્તિયુક્ત વાતનો સ્વીકાર કરનાર–વાદકથાના અધિકારી હોય.

સભા.—

સ્થેયાન્ (મધ્યસ્થ) એવા અનુવિધેય (રાજાદિ સભાપતિ) તથા સભ્યથી યુક્ત સભા હોય પણ વીતરાગકથા (વાદ)મા તે આવશ્યક નથી તે માત્ર વાદી અને પ્રતિવાદીથી પણ ચાલી શકે છે

ક્રમ.—

વાદી સ્વપક્ષનો સાધક હેતુ મૂકી, આ મારો હેતુ હેત્વાભાસ નથી એમ સામાન્ય રીતે અને આ અસિદ્ધ વગેરે હેત્વાભાસ નથી એમ વિશેષ રીતે દૂષણનો ઉદ્ધાર કરે એટલે પ્રતિવાદી વાદીના કથનનો અનુવાદ કરી યથાસંભવ હેત્વાભાસ વડે વાદીના કથનને દૂષિત કરી

સ્વપક્ષનો ઉપન્યાસ કરે, ત્યાર પછી ત્રીજી કક્ષામાં વાદી, પ્રતિવાદીના કથનનો અનુવાદ કરી પ્રતિવાદીએ આપેલ દૂષણ ઉદ્ધરી યથાસંભવ હેત્વાભાસ દ્વારા પ્રતિવાદીનો પક્ષ દૂષિત કરે. આ સાધન અને દૂષણનો જે ક્રમ આપ્યો છે તે પ્રમાણે ચર્ચાની વ્યવસ્થા ફક્ત ત્યારે જ રહી શકે છે, જ્યારે વાદી અગર પ્રતિવાદીને કોઈ નિગ્રહ-સ્થાન ન મળે અને તે દ્વારા વિપક્ષને પરાભવ આપવાની તક ન મળે. જો વાદી અગર પ્રતિવાદીને એવું નિગ્રહસ્થાન મળી આવે કે જેના દ્વારા વિપક્ષને પરાજિત કરી શકાય તો તે પોતાના પક્ષનું સાધન અને સામાના પક્ષનું દૂષણ અગર સામા પક્ષકારે આપેલ દૂષણ ઉદ્ધરવાની બીજી કોઈ ભાંજગડમાં ન પડતાં તે નિગ્રહસ્થાન-દ્વારા જ સામાને પરાજિત કરી દે છે આ સ્થિતિ જલ્પ અગર વિતણ્ડાની હોય છે–નહિ કે વાદની. (ન્યા સૂ ૧ ૨ ૧ બીજી વિગતો માટે જુઓ પરિશિષ્ટ ૬)

આ પ્રમાણેનો ક્રમ વૃતિમાં આપેલો છે પણ ક્રમનું વિશેષ સ્વરૂપ વાદી દેવસૂરિએ પોતાના ગ્રંથમાં વર્ણવ્યું છે તે પણ જિજ્ઞાસુએ જોવા જેવું છે તેમાં વાદી અને પ્રતિવાદીઓએ કેવી રીતે દાવપેચ ખેલવા અને જય પ્રાપ્ત કરવો એનું સ્પષ્ટ વર્ણન છે. (જુઓ પરિચ્છેદ ૮, સૂ ૨૦, રત્નાકરાવ-તારિકા ટીકા)

વિભાગ ૨

ચર્ચામાં છળ અને જાતિનો પ્રયોગ કરવા વિષે મતભેદ

વાદ અને જલ્પકથા વચ્ચેનું અંતર બતાવતાં અક્ષપાદના અનુગામી કોઈ કહે છે[1] કે વાદમાં તો છલ અને જાતિ અસત્ય ઉત્તરરૂપ હોવાથી નથી યોજાતી, પણ જલ્પમાં તે યોજાય છે, કેમ કે દુઃશિક્ષિત, કુતર્કી વાચાળ, અને વિતણ્ડાકુશળ પંડિતો છલ આદિ સિવાય બીજી રીતે કેમ જીતી

1. ननु छलजातिप्रयोगोऽसदुत्तरत्वाद्वादे न युक्तः। जल्पे तु तत्त्वसंरक्षणार्थत्वा-त्प्रयोक्तव्य एव, यदाह "दुःशिक्षितकुतर्कांशलेशवाचालिताननाः। शक्याः किमन्यथा जेतुं वितण्डाटोपपण्डिताः ॥१॥ गतानुगतिको लोकः कुमार्गं तत्प्रतारितः। मा गादिति छलादीनि प्राह कारुणिको मुनिः ॥२॥ प्रमाणमीमांसा पृ ३४ टि. ५

શકાય? તેટલા માટે અને ગતાનુગતિક સાધારણ જનતા તેવા વિતણ્ડાકુશળ પંડિતોથી ઠગાઈ કુમાર્ગે ન જાય એમ વિચારી કારુણિક મુનિએ છળ, જાતિ વગેરેનો ઉપદેશ કર્યો છે.

આના ઉત્તરમા હેમચદ્ર[1] કહે છે કે અસત્ય ઉત્તરથી પ્રતિવાદીનું ખડન કરવું એ યોગ્ય નથી. કારણ કે મહાત્માઓ અન્યાય વડે જય કે યશ મેળવવા ઇચ્છતા નથી માટે છલાદિનો પ્રયોગ કરવો અનુચિત હોવાથી જલ્પ એ વાદથી જુદી કથા સિદ્ધ થતી નથી આ જ વાત તેણે છલ, જાતિ આદિના ઉપદેશક અક્ષપાદનો પરિહાસ કરતાં अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका મા રૂપાન્તરથી કહી[2] છે.

'પ્રાકૃત લોકો સ્વભાવથી જ વિવાદઘેલા હોય છે તેમા વળી તેઓને છલ, જાતિ, અને નિગ્રહસ્થાન જેવા માયિક તત્ત્વોનો ઉપદેશ કરવો અને તે વડે પ્રતિવાદીના મર્મોને ભેદવાનુ સાધન પૂરુ પાડવુ એ અક્ષપાદમુનિની ખરેખર વિરક્તિ છે!'

હેમચદ્રના આ ઉત્તર ઉપર અક્ષપાદનો અનુગામી આગળ વધી દલીલ[3] કરે છે કે કોઈ પ્રબળ પ્રતિવાદીને જોવાથી અગર તેના જયને લીધે થતા ધર્મનાશની સંભાવનાથી પ્રતિભા કામ ન કરે ત્યારે ધૂળની પેઠે અસત્ય ઉત્તરો ફેંકવામા આવે, તે એવી બુદ્ધિથી કે તદન હાર કરતા સંદેહદશામા જેવું એ ઠીક છે તો એમાં શો દોષ? આ દલીલનો ઉત્તર હેમચંદ્ર આપે[4] છે કે

---

१ नैवम् असदुत्तरैः परप्रतिक्षेपस्य कर्तुमयुक्तत्वात् न ह्यन्यायेन जयं यशो धनं वा महात्मानः समीहन्ते । प्रमाणमीमांसा पृ ३८, टि प. ५

२ स्वयं विवादग्रहिले वितण्डापाण्डित्यकण्डूलमुखे जनेऽस्मिन् । मायोपदेशात्परमर्म भिन्दन्नहो विरक्तो मुनिरन्यदीयः ।

३ अथ प्रबलप्रतिवादिदर्शनात् [illegible] धर्म[illegible] प्रतिभाक्षयेण सम्यगुत्तरस्याप्रतिभासादसदुत्तरैरपि पांसुभिरिवा[illegible] सन्देह [illegible] न दोषमावहतीति । प्रमाणमीमांसा पृ ३८ टि [illegible]

४. न, असदुत्तराद्विवक्षया [illegible] एव [illegible] [illegible] । प्रमाणमीमांसा पृ ३८, टि [illegible]

આવી રીતે અસત્ય ઉત્તરનો પ્રયોગ દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, ભાવ જોઈ અપવાદરૂપે વાદમાં પણ વિરુદ્ધ નથી. આ ઉત્તર આપતા જોકે હેમચંદ્ર જલ્પને વાદથી જુદી કથારૂપે નથી સ્વીકારતા, છતાં છલ, જાતિના પ્રયોગ કરવા વિષેના અક્ષપાદના મતને તો તે કોઈ ને કોઈ રીતે સ્વીકારી જ લે છે

નિગ્રહનું સ્વરૂપ—ન્યાયદર્શન વિપ્રતિપત્તિ અને અપ્રતિપત્તિને નિગ્રહ કહે[1] અને બૌદ્ધ વિદ્વાનો સાધનાંગના અકથન અને દોષના અપ્રદર્શનને નિગ્રહ કહે[2] છે ત્યારે જૈન તાર્કિકો પરાજયને જ નિગ્રહ માને[3] છે અને પરાજયનું સ્વરૂપ પતાવતાં કહે છે કે પોતાના પક્ષની સિદ્ધિ ન થવી એ જ પરાજય છે

પરિશિષ્ટ ૬

વિભાગ ૧

ન્યાયસૂત્રવૃત્તિમાંનું કથાપદ્ધતિવિષયક કેટલુંક વર્ણન

ગૌતમના ન્યાયસૂત્ર ઉપર બે વૃત્તિનામક ગ્રંથો મળે છે. તેમાં પહેલો ગ્રંથ જયંતની ન્યાયમંજરી અને બીજો વિશ્વનાથની ન્યાયસૂત્રવૃત્તિ આ બેમાં ન્યાયમંજરી પ્રાચીન છે પહેલાં તેનો પઠનપાઠનમાં વધારે પ્રચાર હતો એમ લાગે છે કે કારણ, સ્યાદ્વાદરત્નાકર, રત્નાકરાવતારિકા, સ્યાદ્વાદમંજરી આદિ જૈન ગ્રંથોમાં ન્યાયમંજરીનો અનેક વાર ઉલ્લેખ આવે છે. પણ હમણાં તે પ્રચારમાં નથી આજકાલના અભ્યાસક્રમમાં વિશ્વનાથની ન્યાયસૂત્રવૃત્તિ નિયત

---

૧ विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानम । न्यायद. अ. १, आ. २, सू १९.

૨. આ વિષયની ચર્ચા અકલંકે અષ્ટશતીમાં અને વિદ્યાનંદીએ અષ્ટસહસ્રીમાં સવિસ્તર કરી છે જુઓ અષ્ટસહસ્રી પૃ ૮૧. અકલંક અને વિદ્યાનંદીના એ શાસ્ત્રાર્થને હેમચંદ્રે સૂત્રબદ્ધ કરી તેની વિસ્તૃત ટીકા પણ લખી છે

नासाधनाङ्गवचनादोषोद्भावने ॥ २-१-३५ ॥ स्वपक्षासिद्धिरेव पराजयः नासाधनाङ्गवचनमदोषोद्भावनं च, यथाह धर्मकीर्तिः —' असाधनाङ्गवचनमदोषोद्भावनं द्वयोः । निग्रहस्थानमन्यत्तु न युक्तमिति नेष्यते ।'' प्रमाणमीमांसा पृ. ६२, टि. प ९५ વિશેષાર્થીએ આ બન્ને ગ્રંથો અભ્યાસવા અહીં વિસ્તારભયથી બધા પૂરા ઉલ્લેખો ન આપી શકાય

૩. असिद्धिः पराजयः । प्रमाणमीमांसा २-१-३१; स निग्रहो वादिप्रतिवादिनोः ॥ प्रमाणमीमांसा २-१-३२.

હોવાથી તેનો જ પઠનપાઠનમાં પ્રચાર છે આ સ્થળે એમાંથીજ કથાપદ્ધતિને લગતા કેટલાક મુદ્દા ઉપરનુ વર્ણન ટૂંકમા આપવા ધાર્યું છે.

કથાનું લક્ષણ—તત્ત્વનિર્ણય અગર વિજયને લાયક એવી જે ન્યાયવાક્યયુક્ત વચનરચના તે કથા

કથાના અધિકારીઓ—જેઓ તત્ત્વનિર્ણય અગર વિજયને ઇચ્છતા હોય, સર્વજનસિદ્ધ અનુભવની અવગણના કરનાર ન હોય, સાંભળવા આદિ (સમજવા, બોલવા)ની ક્રિયામા પટુ હોય, કલહકારી ન હોય, અને ચર્ચામાં ઉપયોગી થાય તેવી પ્રવૃત્તિ કરવામા સમર્થ હોય તે કથાના અધિકારી થઈ શકે

વાદ, જલ્પ અને વિતણ્ડા એ ત્રિવિધ કથામાંથી ફક્ત વાદના અધિકારીઓ—જેઓ તત્ત્વ (સત્ય)ના જિજ્ઞાસુ હોય, ચાલુ વિષયને લગતું જ બોલનાર હોય, ઠગનાર ન હોય, વખતસર વિચારવાની સ્ફુરણાવાળા, ખ્યાતિ કે લાભની ઇચ્છા વિનાના અને યુક્તિયુક્ત વાતો સ્વીકારનાર હોય, તેઓ વાદ કરી શકે.

સભાનું સ્વરૂપ અને તેની આવશ્યકતા—જેમા રાજા આદિ પ્રભાવશાલી વ્યક્તિ અનુવિધેય (શાસનકારી) હોય અને નિષ્પક્ષ સભ્યો હોય તે જ સભા ચર્ચાને યોગ્ય સમજવી. આવી સભા પણ વાદકથામા આવશ્યક નથી કારણ એ કથા નિર્મત્સર વાદીઓ વચ્ચે ચાલે છે પણ મત્સરી વાદીઓ વચ્ચે ચાલતી જલ્પકથામાં તો તે આવશ્યક છે જ.

ચર્ચાના ક્રમનું સ્વરૂપ—સૌથી પહેલાં વાદી પોતાના પક્ષનો સાધક હેતુ મૂકે. બાદ આ હેત્વાભાસ નથી એમ કહી સામાન્ય રૂપે તેને જ અસિદ્ધ, વિરુદ્ધ આદિ હેત્વાભાસ નથી એમ કહી વિશેષ રૂપે પોતાના પક્ષના દૂષણનો ઉદ્ધાર કરે. અહી સુધી પહેલી કક્ષા થઈ ત્યાર બાદ વાદીએ કહેલું બધું પોતે સમજી ગયો છે એમ જણાવવા પ્રતિવાદી સભા સમક્ષ વાદીના [illegible] કથનનો અનુવાદ કરી જાય અને વાદીએ [illegible] ન સૂઝે તો છેવટે હેત્વાભાસ વડે વાદીના સાધનને દૂષિત કરી પોતાનો પક્ષ રજૂ કરે અહીં સુધી બીજી કક્ષા [illegible] વાદી પ્રતિવાદીના બધા કથનનો અનુવાદ કરી [illegible] પ્રતિવાદીદ્વારા મૂકાયેલ દૂષણનો ઉદ્ધાર કરે [illegible] ન સૂઝે તો છેવટે હેત્વાભાસ [illegible]

આ રીતે ત્રીજી કક્ષા પૂરી થાય ત્યાર પછી સભામાં ચર્ચાનું હારજીત રૂપ પરિણામ પ્રકાશિત થાય.

નિગ્રહ સ્થાનનો પ્રકાર—અજ્ઞાન, અનનુભાષણ અને અપ્રતિભા, એ ત્રણ નિગ્રહસ્થાન અનુક્તગ્રાહ્ય એટલે ન બોલવાથી પ્રાપ્ત થાય તેવાં છે અપ્રાપ્તકાળ, અર્થાન્તર, નિરર્થક, અપાર્થક એ ચાર નિગ્રહ–સ્થાન ઉચ્યમાન–ગ્રાહ્ય એટલે બોલતાં જ પકડાય તેવા છે. પ્રતિજ્ઞાહાનિ, પ્રતિજ્ઞાન્તર, પ્રતિજ્ઞા-વિરોધ, પ્રતિજ્ઞાસંન્યાસ, હેત્વન્તર, અવિજ્ઞાતાર્થ, વિક્ષેપ, મતાનુજ્ઞા, ન્યૂન, અધિક, પુનરુક્ત, નિરનુયોજ્યાનુયોગ, અપસિદ્ધાન્ત એ તેર નિગ્રહસ્થાન ઉક્તગ્રાહ્ય એટલે બોલ્યામાંથી પકડાય તેવા છે

ઉપર કહેલ અનુક્તગ્રાહ્ય, ઉચ્યમાનગ્રાહ્ય અને ઉક્તગ્રાહ્ય એ વીસ નિગ્રહ-સ્થાનોનું વાદી ઉદ્‌ભાવન કરી વાદી પ્રતિવાદીને અગર પ્રતિવાદી વાદીને પરાજિત કરી શકે જ્યારે આ વીસમાંથી એક પણ નિગ્રહસ્થાનના ઉદ્‌ભાવનનો સંભવ ન હોય ત્યારે વાદી કે પ્રતિવાદી સામેના પક્ષને હેત્વાભાસનું ઉદ્‌ભાવન કરે. પર્યનુયોજ્યોપેક્ષણ નિગ્રહસ્થાન તો વાદી કે પ્રતિવાદીદ્વારા ઉદ્‌ભાવિત થતું નથી, કારણ કે મધ્યસ્થ એવા સભ્યો વડે જ ઉદ્‌ભાવિત થઈ શકે છે

વિભાગ ૨

નીલકણ્ઠદીક્ષિતનું કલિવિડમ્બન.

અપ્પયદીક્ષિતના ભત્રીજા અને નારાયણ દીક્ષિતના પુત્ર નીલકણ્ઠદીક્ષિતે હૃદયહારી અનેક શતકો લખ્યાં છે જેમાં એક કલિવિડમ્બન શતક પણ છે આ શતકમાં જ્યોતિષી, નૈમિત્તિક, વૈદ્ય, માન્ત્રિક, પણ્ડિત, ધનિક આદિનો ખૂબ મનોરમ પરિહાસ કર્યો છે તેમાં વાદીને પણ છોડ્યો નથી એ વાદીનો પરિહાસ જાણવા યોગ્ય હોવાથી નીચે આપ્યો છે

न भेतव्यं न बोद्धव्यं न श्राव्यं वादिनो वचः ।
झटिति प्रतिवक्तव्यं सभासु विजिगीषुभिः ॥ १ ॥

વિજિગીષુએ ડરવું નહિ, સમજવું નહિ, વાદીનું વચન સાંભળવું નહિ, અને ઝટપટ જ સભામાં ઉત્તર આપી દેવો.

असंभ्रमा विलज्जत्वमवज्ञा प्रतिवादिनी (!)
हासो राज्ञः स्तवश्चेति पञ्चैते जयहेतव ॥ २ ॥

સ્વસ્થતા, લજ્જાનો ત્યાગ, પ્રતિવાદીની અવજ્ઞા, હાસ્ય અને રાજસ્તુતિ એ પાચ જયપ્રાપ્તિનાં નિમિત્તો છે.

उच्चैरुद्घोष्य जेतव्यं मध्यस्थश्चेदपण्डितः ।
पण्डितो यदि तत्रैव पक्षपातोऽधिरोप्यताम् ॥ ३ ॥

જો મધ્યસ્થ પડિત ન હોય તો ઊંચે સ્વરે ઘોષણા કરીને અર્થાત્ બુમરાણ કરી મૂકીને જય મેળવવો, અને જો મધ્યસ્થ પડિત હોય તો તેના ઉપર પક્ષ-પાતનો આરોપ મૂકવો

लाभो हेतुर्धनं साध्यं दृष्टान्तस्तु पुरोहितः ।
आत्मोत्कर्षो निगमनमनुमानेष्वयं विधिः ॥ ४ ॥

લાભ એ હેતુ, ધન એ સાધ્ય, પુરોહિત એ દૃષ્ટાન્ત, અને આત્મોત્કર્ષ એ નિગમન—(બસ) અનુમાનોમા આ વિધિ છે

+अलभ्यं शास्यमानेन तत्त्वं जिज्ञासुना चिरम् ।
जिगीषुणा ह्रियं त्यक्त्वा कार्यं कोलाहलो महान् ॥ ५ ॥

જયની ઇચ્છાવાળા વાદીએ શરમ છોડી મોટો કોલાહલ કરવો.

—પુરાતત્ત્વ, પુસ્તક ૩

+ 'लल्लाप्यमानेन' इति 'अलभ्यं लप्यमानेन' इति च पाठः

અર્ઘ્ય

કરુણા અને પ્રજ્ઞામૂર્તિનું મહાપ્રસ્થાન

[૧]

બાપુજીના આખા જીવનની નાનીમોટી સમગ્ર પ્રવૃત્તિઓનાં પ્રેરક એ જ તત્ત્વો હતાં, એમ વિચાર કરનારને જણાયા સિવાય નહિ રહે. એ એમાંનું પ્રથમ તત્ત્વ કરુણા અને બીજું પ્રજ્ઞા પ્રાણીમાત્રમાં અને ખાસ કરી મનુષ્યવર્ગમાં ઓછેવત્તે અંશે કરુણા હોય જ છે અને ગણ્યાગાંઠ્યા માણસોમાં પ્રજ્ઞા પણ હોય છે. પરંતુ બાપુજીની કરુણા અને તેમની પ્રજ્ઞા વિશ્વની વર્તમાન વિભૂતિઓ તેમ જ ભૂતકાળની વિભૂતિઓ કરતા પણ સાવ નોખી તરી આવે છે સાધારણ માણસો પોતાના સ્વલ્પ પણ દુઃખને પચાવી નથી શકતા તેથી તેઓ પોતાનું દુઃખ સમજવા અને તેને નિવારવા બનતું બધું જ કરી છૂટે છે, જ્યારે તેઓ બીજાના દુઃખને પચાવી શકે છે. એટલે બીજાઓ દુઃખી છે એમ જોવા છતાં તે દુઃખ નિવારવા તેમની બુદ્ધિ જાગરિત થતી નથી કેટલાક અસાધારણ કોટિમાં આવે એવા સંતો બીજાના દુઃખને, પોતાના દુઃખની જ જેમ, પચાવી નથી શકતા, તેથી તેઓ પોતાનું દુઃખ નિવારવા માટે પ્રયત્ન કરે તેવી રીતે બીજાઓનું દુઃખ નિવારવા માટે પણ પ્રયત્ન કરે છે પરંતુ એમ તો એ પ્રયત્ન અને એ તાલાવેલી મર્યાદિત હોય છે કેમકે એ પ્રયત્ન અને એ તાલાવેલી પોતાના જીવનને ભોગે અગર પોતાના જીવનને હોડમાં મૂકીને નથી સેવાતાં, જ્યારે બાપુજીનું માનસિક બંધારણ સાવ જુદા પ્રકારનું હતું તેઓ બીજા હરકોઈના દુઃખને પોતાના અંગત દુઃખની જેમ જ પચાવી શકતા નહિ તેથી તેઓ હરકોઈ દુઃખીનું દુઃખ જોતાં તેનું કારણ શોધતા, તેને નિવારવાના ઉપાયો શોધતા અને તે ઉપાયોને અમલી રૂપ આપવા તથા અપાવવા એટલો બધો ઉગ્ર પ્રયત્ન અને ઉગ્ર તાલાવેલી સેવતા કે એને લીધે તેમનું [illegible] હોડમાં મુકાતું હોય એમ લાગતું.

બીજી એક રીતે વિચારીએ તો પણ બાપુજીની કરુણા [illegible] કરુણા કરતા જુદી કોટિની હતી એમ લાગે છે. [illegible] તેઓ બીજાનું શારીરિક-આધિભૌતિક દુઃખ [illegible] ને દુઃખને નિવારવા [illegible]

પણ કરુણાવંત હોય છે કે જેઓ બીજાના માનસિક–આધિદૈવિક દુઃખને આધિભૌતિક દુ.ખ કરતાં વધારે અગત્ય આપી તેને નિવારવા ઉપર જ વધારે ભાર મૂકે છે. ત્રીજા વળી એવા પણ કરુણાવંત સંતો હોય છે કે જેઓ તૃષ્ણા જેવી વાસનાઓ કે જે સકળ દુ ખનુ મૂળ છે તેને જ ખરું–આધ્યાત્મિક દુ ખ લેખી તેના નિવારણ માટે પુરુષાર્થ કરે છે. પરંતુ બાપુજીની કરુણાને આવી કોઈ મર્યાદા ન હતી એમ તેમની આખી જીવન-કથા કહે છે બાપુજી હરકોઈનાં આધિભૌતિક, આધિદૈવિક અને આધ્યાત્મિક દુ ખને નિવારવા માટે જ જાણે જન્મ્યા અને મૃત્યુને ભેટ્યા ન હોય તેથી જ તેમની કરુણા મહાકરુણા કોટિની હતી એમ માનવું રહ્યુ.

એમ તો કોઈ ને કોઈ જાતની પ્રજ્ઞા સાચા કવિઓ, લેખકો, કલાકારો અને સંશોધકોમા હોય જ છે; પણ જેને યોગશાસ્ત્રમા ઋતભરા તરીકે ઓળખાવવામાં આવી છે તેવી પ્રજ્ઞા પ્રજ્ઞાશાળી ગણાતા વર્ગમાં પણ મોટે ભાગે નથી જ હોતી ઋતંભરા પ્રજ્ઞાની મુખ્ય ખાસિયત એ છે કે તે સત્ય સિવાય બીજા કશાને સંગ્રહી કે પચાવી નથી શકતી અસત્યનો છાટો કે અસત્યની છાયા પણ તે સહી કે જીરવી નથી શકતી જ્યા અસત્ય, અપ્રામાણિકતા કે અન્યાય જોવામા આવે ત્યાં તે પ્રજ્ઞા પૂર્ણ રૂપે ભભૂકી ઊઠે છે અને અન્યાયને મિટાવી દેવાના દૃઢ સંકલ્પમા જ પરિણમે છે બાપુજીની દરેક પ્રવૃત્તિ એમની ઋતંભરા પ્રજ્ઞાની સાબિતી છે, તેથી જ તેમની પ્રજ્ઞાને પણ મહાપ્રજ્ઞા કહેવી પડે છે

પ્રશ્ન એ છે કે બાપુજી આપણા જ જેવું માટીનું પૂતળું હતા. તેમનો શરીર–જન્મ પણ બીજાની પેઠે અમુક દેશ અને અમુક કુળમા થયેલો તેમ છતા બીજા કોઈમા નહિ અનુભવાયેલ એવી મહાકરુણા અને મહાપ્રજ્ઞા તેમને સહજ રીતે ક્યાથી વરી? આનો ઉત્તર શરીર–જન્મમાથી મેળવી નથી શકાતો સંસ્કાર–જન્મ, ચિત્ત-જન્મ કે આત્મ–જન્મની વિચારણામા જ એ પ્રશ્નનો સહજ ઉત્તર મળી રહે છે જન્મ–જન્માન્તરની સાધનાનુ ફલિત પરિણામ ન હોય તો આકાશમાંથી આવી કરુણા અને પ્રજ્ઞાના બીજ આવવાં અસંભવ છે.

વળવાની અને અન્યાયનો સામનો કર્યા વિના ચેન નહિ પડવાની એમની વૃત્તિએ એમને માટે એટલાં બધાં વિવિધ અને એટલાં બધાં મોટા કાર્યક્ષેત્રો સર્જ્યાં કે કોઈ પણ એક માનવીના જીવનમાં ઇતિહાસે એવી ઘટના નોંધી નથી. કરુણા અને પ્રજ્ઞાનાં જન્મસિદ્ધ સૂક્ષ્મ બીજોએ માત્ર કબીરવડનુ જ રૂપ ધારણ કર્યું ન હતું, પણ તેણે વિશ્વવટનુ રૂપ ધારણ કર્યું હતુ એમ તેમના છેલ્લા ઉપવાસો અને દિલ્હીમા પ્રાર્થના વખતે થતાં પ્રવચનો જોતાં કહેવું જોઈએ.

કરુણા અને પ્રજ્ઞા એ આધ્યાત્મિક તત્ત્વો છે, શાશ્વત છે એનો વિકાસ અને એની દૃશ્યમાન પ્રવૃત્તિ જો કે મર્યાદિત શરીરવાટે જ થાય છે, પણ તે તેટલા મર્યાદિત શરીરમાં સમાઈ નથી રહેતી એનાં આંદોલનો અને એની પ્રતિક્રિયાઓ ચોમેર પ્રસરે છે બાપુજીની કરુણા અને પ્રજ્ઞાનાં આંદોલનો માત્ર અમુક કોમ કે અમુક દેશ પૂરતા જ રહ્યાં નથી, દુનિયાના દરેક ભાગમાં વસતી દરેક કોમમાં એના પડઘા પડ્યા છે અને તેથી જ આખી દુનિયા આજે આંસુ સારી રહી છે.

જો કે બાપુજીનુ શરીર વિલય પામ્યું છે, પણ તેમની મહાકરુણા અને મહાપ્રજ્ઞા ઊલટાં વધારે વિકાસ પામી વિશ્વવ્યાપી બન્યાં છે. સઘળા માનવમા વસતા જીવનતત્ત્વની અંદર જે બ્રહ્મ અથવા જે સચ્ચિદાનંદનો અંશ ગૂઢ રૂપે વાસ કરે છે તે જ સકળ જીવધારીનો અંતરાત્મા છે બાપુજી વિદેહ થયા એટલે બ્રહ્મભાવ પામ્યા. આનો અર્થ એ છે કે એમની કરુણા અને પ્રજ્ઞાના વિકસિત ફણગાઓ અનેકના અંતરાત્માના ઊંડાણમા રોપાઈ ગયા અને એકરસ થઈ ગયા

બાપુજીની કૃશ કાય ક્યાં! તેમની પળેપળની વિવિધ પ્રવૃત્તિઓ [illegible] મૂંઝવી નાખે એવી જવાબદારીઓ અને જટિલ સમસ્યાઓ ક્યાં? [illegible] બધો ભાર શેના અને જગતના બાપુજી પ્રસન્ન વદને [illegible] [illegible] તે કોને બળે? આ પ્રશ્નનો ઉત્તર એમની કરુણા અને પ્રજ્ઞાના વિકાસમાં રહેલો છે તેમણે કરુણા અને પ્રજ્ઞાની જે એકધારી ઉપાસના કરી, જે આધ્યાત્મિક જીવન ખીલવ્યું, જે બ્રહ્માનંદ અનુભવ્યો, જે [illegible] [illegible] તાદાત્મ્ય સાધ્યું, તેણે જ એમને પ્રવૃત્તિઓ અને [illegible] [illegible] ઉપાડવાની તાકાત આપી. ગાંધીજીની સદા હસતી [illegible] [illegible] આધ્યાત્મિક તત્ત્વના [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] સર્વના તેમની [illegible] [illegible] પ્રસન્નતા [illegible] [illegible]

દૃષ્ટિવિહીન અંધને માટે તે કશા કામનુ નથી. ઊલટું એવા તેજથી અંધ દૃષ્ટિ વધારે ગૂંગળાય છે આથી જ તો બાપુજીની દુ:ખોદ્ધારની અને અન્યાય-પ્રતીકારની વૃત્તિ જેમ જેમ ઉગ્ર બની તેમ તેમ આધ્યાત્મિક દૃષ્ટિવિહોણા અંધ વધારે મૂંઝાયા અને રોષે ભરાયા. પણ એ રોષ બહુ તો દેહને હણી શકે કરુણા અને પ્રજ્ઞાને તો તે સ્પર્શી પણ ન શકે. જે મહાકરુણા અને જે ઋતંભરા પ્રજ્ઞા થોડો વખત પહેલાં એક મર્યાદિત દેહની વાટે કામ કરી રહી હતી, તે કરુણા અને પ્રજ્ઞા પોતાને અવલંબન આપનાર કૃશ કાયનો અંત થતાં માનવતાના મહાદેહમાં સમાઈ ગઈ,–તેમાં વસતા અંતરાત્માના શુદ્ધ તત્ત્વોને સ્પર્શી તે પોતાનુ કામ સદા અનંતમુખે જારી રાખશે એમાં શંકા નથી સૂર્ય અસ્ત થાય ત્યારે તેનો નાશ નથી થતો, માત્ર તે અન્યત્ર પ્રકાશે છે, તેમ બાપુજીની કરુણા અને પ્રજ્ઞા હવે એ કૃશકાય દ્વારા ન પ્રકાશતાં માનવતાની વિરાટ કાયા દ્વારા પ્રકાશવાની જ. માનવતાનો વિરાટ દેહ જ એમની કરુણા–પ્રજ્ઞાનું તેજ વહન કરવા જાણે સમર્થ ન હોય અને તે માટે જ જાણે તે એમાં એકરસ થઈ ગઈ ન હોય—એમ ઘટનાક્રમ અને બાપુજીની નિર્ભયતા જોતા લાગે છે હવે આપણે અંતરાત્મામાં એમની કરુણા અને પ્રજ્ઞાના અંશો ઝીલીને જ ખરી શ્રદ્ધાંજલિ અર્પી શકીએ.

–સંસ્કૃતિ

---

* મેં તા. ૧૨–૨–'૪૮ને દિવસે ગુજરાત વિદ્યાપીઠમા બાપુજના શ્રાદ્ધપ્રસગે મળેલ પ્રાર્થનાસભામા આપેલ ભાષણ

અંતે આશ્વાસન કોનાથી મળે છે?

[૨]

બાપુજી બ્રહ્મભાવ પામ્યાને આટલા દિવસ વીત્યા પણ આપણાં આંસુ બંધ પડતા નથી, રુદન અટકતુ નથી રેડિયો ઉપર કોઈની આપેલી અંજલિ સાંભળીએ અગર કોઈ પણ પ્રકારનુ છાપુ સાંભળીએ,—પછી ભલે દૈનિક, સાપ્તાહિક, માસિક કે અન્ય પ્રકારનું હોય, કોઈ પણ ભાષાનુ હોય, કોઈ પણ કોમ, પંથ કે રાષ્ટ્રનુ હોય,—તો-તેમાંથી બાપુજીના નિધનથી વ્યાપેલ શોકને જ વાચીએ છીએ અને વાચતાંવેંત જ આપણુ હૃદય ભરાઈ આવે છે. કોઈ બીજાને દિલાસો આપનાર બાકી રહેતું જ નથી આવુ રુદન અદ્ભુત જગતે એના ઇતિહાસમા કદી પણ જોયુ હોય તેમ જાણમા નથી

આવુ મહારુદન શા માટે? ઉત્તર મળે છે કે મહાકરુણાનો વિયોગ પડ્યો છે. બાપુજીની કરુણા કોઈ પણ સંત કે મહંતની કરુણા કરતા નોખા જ પ્રકારની હતી ત્રિવિધ દુ ખના તાપથી તપી ગ્હેલ માનવનાને શાન્તિ આપવા માટેની તેમની ધગશ અને તેમના પ્રયત્નો એ પણ જગને આજ સુધી નહિ જોયેલ એવી જ વસ્તુ છે એનુ વર્ણન કરવા માટે બુદ્ધિ અને વાણીના સાધનો सर्वमिदमत्यल्प भवति—એ ન્યાયે અલ્પમાત્ર બની જાય છે, અધૂરા પડે છે.

જ્યારે હિજરતીઓને કોઈ આશ્વાસન કે દિલાસો આપવા અશક્ત હોય, જ્યારે અપહૃત સ્ત્રીઓને કોઈ પણ ખૂણામાંથી ઉદ્ધારની આશાનું કિરણ ન દેખાતુ હોય, જ્યારે કોઈ પણ એક વર્ગ ઉપર તેના વિરોધી વર્ગ દ્વારા અકથ્ય સતામણી ચાલી રહી હોય, અને જ્યા સરકારો કે બીજા સંસ્થાઓના કોઈ પણ પ્રયત્નો કારગત ન થતા હોય ત્યાં તે દરેક દુખીને પોતાના અંગત ચરિત્રબળ કે તપશ્ચર્યાથી મદદનો હાથ [illegible] તો બાપુજીની [illegible] અને અવિરામ કામ કરતી કરુણા જ હતી. બાપુજી અભાગા માટે કાંઈક કરશે જ એવી ખાતરી દરેક દુ:ખીને દિલાસો આપતી.

અને બાપુજીનો દુ:ખની [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

રીતે શમાવે તો દિલ્હીના મહાદાવાનળને બીજી રીતે આગમાં રહીને આગ બૂઝવવાના પ્રયત્નો ચાલુ હોય ત્યારે પણ પાકિસ્તાનના દૂર દૂરના ભાગોમાં સળગી રહેલ જ્વાળાને કેવી રીતે શમાવવી, એની સક્રિય વિચારણાઓ પણ એકસરખી ચાલતી હોય. આવુ મહાકરુણાનું વિરાટ દૃશ્ય શુ જગતે કદી જોયું હતુ? તેથી જ તો આજ બધા રડી રહ્યા છે, સહુને અનાથતા લાગે છે,–પછી ભલે તે ગમે તેવો સમૃદ્ધ કે શ૨ હોય, અગર નમ્ર સેવક કે મહાન અધિકારી હોય,–એમ લાગે છે કે જે કામ આપણા ગજાની બહારનુ હતું અને છે, તે કામને એક જ માણસ પોતાની સૂઝથી પહોંચી ,વળતો આ લાગણી જ સૌને રડાવી રહી છે

હિંદુસ્તાનની બહારના સમજદાર લોકો પણ એમ માનતા કે આપણા વિશ્વશાંતિના પ્રયત્નો રેતી ઉપરના મહેલ જેવા છે. એ પ્રયત્નો પાછળ કોઈ નક્કર ભૂમિ નથી. વિશ્વશાન્તિ માટે જે નક્કર ભૂમિ જોઈએ તે કોઈને સમજાતી નથી અને સમજાય તો તે અવ્યવહારુ લાગતી, એવે વખતે આવી નક્કર ભૂમિકા સુઝાડનાર અને તેને એકલે હાથે વ્યવહારુ સિદ્ધ કરી બતાવનાર પુરુષને હિંદે જન્મ આપ્યો છે, એ જ ક્યારેક કલેશકલહથી ટેવાયેલ માનવતાને સ્થાયી શાન્તિના સંસ્કારે પગ પાડશે. આવો આશાસ્તંભ પડે ત્યારે તેઓ કેમ ન રડે? અને આપણે જોઈએ છીએ કે હજી રુદન કરતાં કોઈ થાકતુ નથી.

જો બાપુજી મહાન કરુણાની વિગટ મૂર્તિ હોય તો તેમના વિયોગનું દુઃખ તેથીયે પણ વિરાટ હોય જ. આ ઉપરાંત બીજા કારણે પણ આપણા દુ:ખમા ગધિ થાય છે.

આપણે જાણતા હતા કે સૉક્રેટિસની હત્યા એથેન્સને હાથે થાય, ક્રાઈસ્ટની હત્યા ત્યાંના લોકોને હાથે થાય, પણ હિંદુ માનસ તો એમના જેવા મહાસંત કે ઋષિ કે તપસ્વીના ખૂનનો વિચાર સુદ્ધાં કરી શકે નહિ હિંદુ માનસના આવા ગૌરવથી આપણું મન ઉન્નત હતું ગજગ્રાહના કારણે અને બીજાં કારણોએ હિંદુ જાતિમાં પણ અનેક ખૂન થયાં છે પણ કોઈ મહાન તપસ્વી કે સાચા સંતનું ખૂન તેના ધર્મમાં માનનાર હિંદુએ કર્યું હોય એવું. હિંદુને હાથે કદી પણ થયું નથી હિંદુ માનસમાં આવો જે અભિમાન અને ગર્વનો ઊંડો સંસ્કાર હતો તે સંસ્કારના પાયાથી–તેને ખોટો ઠરાવ્યાથી આખું હિંદુ માનસ ભારે શરમાઈ ગયું છે અને એ જ ઊંડી શરમ પણ તેનાં આંસુની વાટે બહાર વહી રહી છે

હિંદુ કલ્પના પ્રમાણે માનવતારૂપ પુરુષનુ મુખ બ્રાહ્મણ. બ્રાહ્મણ મુખ બન્યો તે એના ગુણોને કારણે. કયા ગુણો? શું ઘાતકતાના? નહિ, નહિ, કદી નહિ નરમેધ–પશુમેધ–ની પ્રાકૃત ભૂમિકામાંથી બ્રાહ્મણ ક્યારનો ય ઊંચે ચઢ્યો હતો અને તેણે તો યજ્ઞમા પિષ્ટમય પશુને સ્થાન આપી અહિંસાની ઉચ્ચ ભૂમિકા પણ સિદ્ધ કરી હતી. એણે सर्वभूतहिते रत નો પાઠ પણ સૌને શીખવવા માંડ્યો હતો એ બ્રાહ્મણ સર્વ ભૂતોના હિતમાં દરેક રીતે રત થયો હતો. એનુ જીવન તન્મય થયુ હતુ. આવા બ્રાહ્મણત્વને કલંકિત કરનાર કોઈ એક પણ બ્રાહ્મણ વ્યક્તિમા કે નાનામોટા તેવા વર્ગમાં કેમ સંચર્યો હશે? શુ હિંદુત્વ અને બ્રાહ્મણત્વનો હવે શતમુખ વિનિપાત શરૂ થયો હશે કે જેથી તે सर्वभूतहिते रतની જ હત્યાનો સંકલ્પ કરે? મહાકરુણાનુ અવસાન કરવાનો સંકલ્પ પણ મહાન એ ખરુ, પણ એ સંકલ્પ ક્રૂર અને કઠોર કોઈ અનાર્ય જ હોવાનો અને જો પુરુષના મુખસ્થાને વિરાજવા લાયક ગણાયેલ બ્રાહ્મણમા અને તે પણ ચિત્તને પાવન કરવાની ખ્યાતિ પામેલ બ્રાહ્મણ-વંશમા તેવો અનાર્ય સંસ્કાર ઉદ્ભવે તો પછી હિંદુજાતિ અને બ્રાહ્મણશ્રેષ્ઠ માટે કયુ સારુ તત્ત્વ બચવા પામ્યુ ગણાય? આ વિચારથી પણ સમજદારો કકળી ઊઠે છે અને આંસુ ખાળી શકતા નથી

હવે દિલાસો કોણ આપશે?—એ જ એકમાત્ર આપણી ઝંખના છે જે દિલાસો આપવા આવે તે જ દિલગીરી, ગમગીની અને શોકનો ભોગ બને છે. પ્રસન્ન વદને અને હિમ્મતભરેલ હૃદયે આવીને કોઈ આશ્વાસન આપે એવું નજરે નથી પડતુ ત્યારે પણ છેવટે બાપુજી જ પોતાના વિયો-ગથી કકળી ઊઠેલ દુનિયાને આશ્વાસન આપતા દેખાય છે જાણે બાપુજી અદૃશ્ય રહી સહુને એકસરખી રીતે કહેતા ન હોય કે તમે શું મને નથી ઓળખ્યો? અને ઓળખ્યો હોય તો રડો છો કેમ? શું હું કાયર હતો? શુ મેં તમને પ્રસન્ન વદને કર્તવ્ય કરવા અને મરી ફીટવા નથી કહ્યું? મેં જે તમને કહ્યું હતુ તે જ જો મેં આચર્યું છે એમ તમને લાગતુ હોય અને તમે મારા ઉપર સ્નેહ જ [illegible] [illegible] તો પછી રડો છો શાને? ગળગળા થાઓ છો શાને? [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] લવરી એ [illegible] કે કોઈ પણ [illegible] [illegible] જ [illegible] તમે મને [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] કરુણાનું આસ્વાદન કરવાના [illegible] [illegible] છો.

ગાંધીજીનો જીવનધર્મ

[૩]

જેમ ગાંધીજી એક પણ હિંદીની આર્થિક, સામાજિક કે રાજકીય બાબતમાં ગુલામી સહી શકતા નથી અને તેથી જ તેઓ જેમ સમગ્ર હિંદની સ્વાતંત્ર્યસિદ્ધિ અર્થે જીવનમાં એક એક શ્વાસ લે છે, તેવી જ દેશની ગુલામી પ્રત્યે વૃત્તિ ધરાવનાર અને દેશની એકમાત્ર પૂર્ણ સ્વતંત્રતા માટે જ દીક્ષા લીધી હોય એવા બીજા પણ અનેક દેશનાયકો અત્યારે આ હિંદમાં જેલની બહાર અને જેલમાં છે. હિંદ બહારના મુલકો તરફ દૃષ્ટિપાત કરીને વિચારીએ તોપણ ગાંધીજીની જેમ પોતપોતાના રાષ્ટ્રની સ્વતંત્રતા જતી ન કરવા, તેને સાચવવા તેમ જ વિકસાવવાની આ નખશિખ લગનીવાળા સ્ટેલિન, હિટલર, ચર્ચિલ કે ચાંગ કાઈ શેક જેવા અનેક રાજપુરુષો, આપણી સન્મુખ ઉપસ્થિત થાય છે તેમ છતાં હિંદ કે હિંદ બહારના બીજા કોઈ પણ નેતાનું જીવન આપણને તેના જીવનમાં કયો ધર્મ ભાગ ભજવે છે, એવો વિચાર કરવા પ્રેરતું નથી, જ્યારે ગાંધીજીની બાબતમાં તેથી સાવ ઊલટું છે ગાંધીજીની પ્રવૃત્તિ ગ્રામ્ય ઉદ્યોગોને પગભર કરવાની હોય કે પશુપાલન, ખેતીવાડી, ગ્રામ સુધરાઈ, સામાજિક સુધાર, કોમી એકતા કે રાજકીય સ્વતંત્રતા વિષેની હોય, તેઓ લખતા હોય કે બોલતા હોય, ચાલતા હોય કે બીજું કાંઈ પણ કામ કરતા હોય ત્યારે આપણે તેમની બધી જ પ્રવૃત્તિમાં લૌકિક લાભાલાભની દૃષ્ટિએ તોલ બાંધવા ઉપરાંત એક બીજા પણ રહસ્ય વિષે વિચાર કરવા પ્રેરાઈએ છીએ અને તે રહસ્ય એટલે ધર્મનું.

કયો ધર્મ શક્તિ સીંચે છે

વિચારક પોતે ખરો ધાર્મિક હોય કે નહિ તેમ છતાં ગાંધીજીની જીવનકથા વાંચીને કે તેમનું જીવન પ્રત્યક્ષ નિહાળીને તેના મનમાં તેમના જીવનગત ધર્મ વિષે અનેક પ્રશ્નો ઉઠે છે. તે એમ વિચારે છે કે ગાંધીજી જેવો કેટલીક પ્રવૃત્તિમાં સંપૂર્ણપણે રોકાયેલ આ માણસનું જીવન ધાર્મિક હોઈ શકે કે નહિ? અને જો તે ધાર્મિક હોય તો તેમના જીવનના આ ધર્મને સ્થાન ક્યાં? ઉપરના [illegible] પ્રસિદ્ધ ધર્મોમાંનો કયો ધર્મ એ પુરુષના જીવનમાં સંઘરવાની શક્તિ ધરાવે, એમની વિવિધ [illegible] પ્રવૃત્તિનું સમાધાન [illegible] છે?

દરેક ધાર્મિક સમાજના અનુયાયીઓના સામાન્ય રીતે ત્રણ વર્ગ છે. પહેલો વર્ગ કટ્ટરપંથીઓનો, બીજો દુરાગ્રહ ન હોય એવાઓનો અને ત્રીજો તત્ત્વચિંતકોનો. જૈન સમાજમાં પણ વત્તેઓછે અંશે આવા ત્રણ વર્ગો છે જ. જેમ કોઈ કટ્ટર સનાતની, કટ્ટર મુસલમાન કે કટ્ટર ક્રિશ્ચિયન ધર્મ તરીકે પોતે માનતો હોય તેવા પોતપોતાના ધર્મના આચાર, વ્યવહાર કે માન્યતાના ખોખાને અક્ષરસ. ગાંધીજીના જીવનમા ન જોઈ નિશ્ચિતપણે એમ માની જ લે છે કે ગાંધીજી નથી ખરા સનાતની, ખરા મુસલમાન કે ખરા ક્રિશ્ચિયન. તેની જ રીતે કટ્ટર જૈન ગાંધીજીના જીવનમા જૈન આચાર કે જૈન રહેણી-કરણીનુ ખોખું અક્ષરસ ન જોઈ પ્રામાણિકપણે એમ માને છે કે ગાંધીજી ભલે ધાર્મિક હોય પણ તેમના જીવનમા જૈન ધર્મનુ સ્થાન તો નથી જ, કેમકે તેઓ ગીતા, રામાયણ આદિ દ્વારા બ્રાહ્મણ ધર્મને જે મહત્ત્વ આપે છે તેવુ જૈન ધર્મને નથી જ આપતા. બીજો વર્ગ ઉપરના ખોખા માત્રમાં ધર્મની પ્રતિષ્ઠા માનતો ન હોઈ તેમ જ કાંઈક અંતર્મુખ ગુણ-દર્શી અને વિચારક હોઈ ગાંધીજીના જીવનમાં પોતપોતાના ધર્મનુ સુનિશ્ચિત અસ્તિત્વ જુએ છે આ પ્રકૃતિનો વિચારક જો સનાતની હશે તો ગાંધીજીના જીવનમાં સનાતન ધર્મનુ સંસ્કરણ જોશે, જો મુસલમાન કે ક્રિશ્ચિયન હશે તો તે પણ તેમના જીવનમા પોતાના જ ધર્મની નાડ ધબકતી જોશે એવી જ રીતે આવું વલણ ધરાવનાર જૈન વર્ગ ગાંધીજીના જીવનમાં જૈન ધર્મના પ્રાદુર્ભૂત અહિંસા, સંયમ અને તપની નવેસર પ્રતિષ્ઠા જોઈ તેમના જીવનને જૈન ધર્મમય લેખશે. ત્રીજો વર્ગ જે અંતર્મુખ અને ગુણદર્શી હોવા ઉપરાંત સ્વ કે પરના વિશેષણ વિના જ ધર્મના તત્ત્વનો વિચાર કરે છે તેવા તત્ત્વચિંતક વર્ગની દૃષ્ટિએ ગાંધીજીના જીવનમાં ધર્મનુ અસ્તિત્વ તો છે જ પણ તે ધર્મ કોનો—આ સંપ્રદાયનો કે તે સંપ્રદાયનો, એમ નહિ પણ તે સર્વ સંપ્રદાયોના પ્રાણરૂપ, તેમ છતાં સર્વ સંપ્રદાયોથી પર એવો [illegible] સ્વતંત્ર ધર્મ છે ભલે ગણ્યાગાંઠ્યા પણ આવા તત્ત્વચિંતકો જૈન સમાજમાં છે, જેઓ ગાંધીજીના જીવનગત ધર્મને એક [illegible] તેમ જ [illegible] એવો ધર્મ માનતા છતાં તેને સાંપ્રદાયિક પરિભાષામાં જૈન ધર્મ માનવાની ભૂલ તો નહિ જ કરે.

સંપ્રદાયનો ધર્મ નથી

[illegible]
[illegible]

બહાર અન્ય ધર્મોને અવલંબી ખાસ ચર્ચા કરી ન શકું. હું પોતે સ્વતંત્ર દૃષ્ટિથી એમ મક્કમપણે માનું છું કે ગાંધીજીના જીવનમાં ઊગેલો, વિકસેલો અને વ્યાપેલો ધર્મ એ કોઈ આ કે તે સંપ્રદાયનો ધર્મ નથી પણ તે બધા સંપ્રદાયોથી પર અને છતાં બધા જ તાત્ત્વિક ધર્મોના સારરૂપ છે કે જે તેમના પોતાના વિવેકી સાદા પ્રયત્નથી સધાયેલ છે.

ગાંધીજીનો ધર્મ કોઈ એક સંપ્રદાયમાં સમાતો નથી, પણ એમના ધર્મમાં બધા સંપ્રદાયો સમાઈ જાય છે, આ વિધાનને મધુકર દૃષ્ટાંતથી વધારે સારી રીતે સમજાવી શકાય. આંબલી અને આંબા, બાવળ અને લીંબડો, ગુલાબ અને ચંપો જેવા એક બીજાથી વિરુદ્ધ રસ અને ગંધવાળાં પુષ્પો અને પત્રો ઉત્પન્ન કરનાર વૃક્ષો જ્યાં હોય ત્યાં ભ્રમર એ બધાંમાથી જુદો જુદો રસ ખેંચી એક મધપૂડો તૈયાર કરે છે મધુપટલની સ્થૂળ રચના અને તેમાં સંચિત થતા મધુરસમાં તે દરેક જાતનાં વૃક્ષોના રસનો ભાગ છે પણ તે મધ નથી હોતું આંબલીની પેઠે ખાટું કે આંબાની પેઠે ખાટું તૂરું. તે નથી હોતું લીંબડા જેવું કડવું કે નથી હોતું બાવળના રસ જેવું. તે નથી હોતું ગુલાબના રંગ કે સ્વાદવાળું અગર તો ચંપાના રંગ કે સ્વાદવાળું મધ એ ત્યાં રહેલી વૃક્ષ-વનસ્પતિની સામગ્રીમાંથી નિષ્પન્ન ભલે થયું હોય પણ તેમાં મધુકરની ક્રિયાશીલતા અને પાચનશક્તિનો ખાસ હાથ હોય છે. મધુકર ન હોય અને બીજા કોઈ યંત્રથી કે બીજી રીતે તેમાંથી રસ ખેંચે તો તે બીજું ગમે તે બને, છતાં તે મધુર તો નહિ જ હોય જો કે એ મધ વિવિધ વૃક્ષ-વનસ્પતિઓના રસમાંથી તૈયાર થયેલું છે જેમ મધની મીઠાશ કે તેનું પરમપોષક તત્ત્વ એ કોઈ વનસ્પતિમાં નથી વિવિધ વનસ્પતિ-રસો ઉપર મધુકરની પાચક-શક્તિએ અને ક્રિયાશીલતાએ જે અમર ઉપજાવી તે જ મધુરૂપે એક અખંડ સ્વતંત્ર વસ્તુ બની છે તે જ રીતે ગાંધીજીના જીવનવરેણમાં જુદા જુદા ધર્મોના અંશ ભલે મળ્યા હોય, પણ તે બધા અંશો પોતાનું નામરૂપ ફેરી તેમના જીવન-પટલમાં સંપૂર્ણતમ રૂપે એક નવીન અને અપૂર્વ ધર્મરૂપ [illegible] ગયા છે. કારણ કે ગાંધીજીએ તે તે ધર્મોના [illegible] ઉધાર લીધેલા નથી કે [illegible] નથી [illegible] એ બધાને પોતાના વિવેક અને ક્રિયાશીલતાથી [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

પણ તેમાં વિહિત શસ્ત્રદ્વારા દુષ્ટદમનમા નહિ માને. તેઓ કુરાન ને આદર કરશે પણ કોઈને કાફર નહિ માને. તેઓ બાઈબલનો પ્રેમધર્મ સ્વીકારશે પણ ધર્માંતરને સાવ અનાવશ્યક સમજશે તેઓ સાંખ્ય, જૈન અને બૌદ્ધોના ત્યાગને અપનાવશે પણ જગતરૂપ મિથિલા કે માનવરૂપ મિથિલા દુ:ખાગ્નિથી દાઝી કે બળી રહી હોય ત્યારે મહાભારત અને બૌદ્ધજાતકના વિદેહજનકની પેઠે અગર તો જૈનોના નમિરાજર્ષિની પેઠે ‘મારું કશું જ બળતુ નથી’ એમ કહી એ બળતી મિથિલાને છોડી એકાન્ત અરણ્યવાસમાં નહિ જાય

જૈન વલણથી જુદી અહિંસા

કેટલાક એમ ધારે છે કે ગાંધીજીનો નિરામિષ ભોજનનો આગ્રહ એ એક જૈન સાધુ પાસેથી લીધેલ પ્રતિજ્ઞાનુ પરિણામ છે અને તેમનો અહિંસા વિષેનો પાકો વિચાર શ્રીમદ્ રાયચદની સોબતનુ પરિણામ છે તેથી ગાંધીજીનો જીવનપથ મુખ્યપણે જૈન ધર્મપ્રધાન છે હુ એ પ્રતિજ્ઞા અને સંસર્ગની હકીકત કબૂલ રાખુ છુ, પણ તેમ છતા એમ માનુ છુ કે ગાંધીજીનુ અહિંસાપ્રધાન વલણ એ અહિંસાના જૈન વલણથી જુદું જ છે. માંસત્યાગની પ્રતિજ્ઞા આપનાર કે લેવડાવનાર આજે જીવિત હોય તો તેઓ ગાંધીજીના નિરામિષ ભોજનના આગ્રહથી પ્રસન્ન જરૂર થાય પણ સાથે જ ગાંધીજીને એમ માનતા જુએ કે ગાય અને ભેંસ વગેરે પશુઓનુ દૂધ તેમના વાછરડાં કે પાડાંના મોઢેથી છીનવી પીજવુ એ સ્પષ્ટ હિંસા જ છે, તો તેઓ જરૂર એમ કહે કે આવી તે કાંઈ અહિંસા હોય! શ્રીમદ્ રાયચંદ જીવિત હોય અને ગાંધીજીને [illegible] કરતા જુએ તો આજે જ તેઓ પ્રસન્ન થાય પણ [illegible] તેઓ ગાંધીજીને એવુ આચરણ કરતા માનતા કે મનાવતા જુએ કે જ્યારે [illegible] અસહ્ય સંકટમાં હોય, બચાવવુ અને તેમ ન હોય [illegible] વગેરેથી પ્રાણમુક્ત કરવામાં પણ પ્રેમધર્મ અને અહિંસા [illegible] તેઓ ગાંધીજીના માન્યતા અને આચરણને [illegible] જૈન-અહિંસા [illegible], નહિ જ કહે તે જ રીતે શ્રીમદ્ રાયચંદ [illegible] ખેતીવાડીનો નાશ કરનાર વાંદરાઓના [illegible] અહિંસાની દૃષ્ટિએ સમર્થન કરતા ગાંધીજીને [illegible] પોષક [illegible] કે જૈન ધર્મના [illegible]

ગયેલ અને લાંબા ઉપવાસોની હારમાળામાં નામ કાઢનાર ગાંધીજીના સંયમ અને તપને જૈન સંયમ કે તપરૂપે ભાગ્યે જ કોઈ માનશે કોઈ પણ જૈન-ત્યાગી સાધુ કરતાં બ્રહ્મચર્યનું સર્વદેશીય મૂલ્યાંકન વધારે કરવા છતાં જ્યારે ગાંધીજી કોઈનાં લગ્ન જાતે જ કરાવી નવદંપતીને આશીર્વાદ આપતા હશે, અગર તો કોઈ વિધવાને સૌભાગ્યનું તિલક કરાવતા હશે કે કોઈના છૂટાછેડામાં સંમતિ આપતા હશે, ત્યારે હું ધારું છું કે ભાગ્યે જ કોઈ એવો જૈન હશે જે ગાંધીજીના બ્રહ્મચર્યને પૂર્ણ બ્રહ્મચર્ય માનવા તૈયાર હોય ગાંધીજી ગમે તેટલા લાંબા ઉપવાસો કરે પણ તેઓ લીંબુનું પાણી લે અગર તો તે ઉપવાસો આત્મશુદ્ધિ ઉપરાંત સામાજિક શુદ્ધિ અને રાજકીય પ્રગતિનું પણ અંગ છે એમ સાચા દિલથી માને-મનાવે ત્યારે એમના એ કિંમતી ઉપવાસોને પણ જૈનો ભાગ્યે જ જૈનતપ કહેશે

અહિંસા અને સંયમ તત્ત્વો

પરંપરાગત જૈન ધર્મનો ઉદાર દૃષ્ટિએ અભ્યાસ કરનાર પણ કોઈ વિચારક જ્યારે ગાંધીજીના જીવનધર્મ વિષે મુક્ત મને વિચાર કરે છે ત્યારે તે એટલું સત્ય સ્વીકારી લે છે કે ગાંધીજીનો જીવનવ્યવહાર અહિંસા અને સંયમના તત્ત્વો ઉપર પ્રતિષ્ઠિત છે અને પ્રામાણિકપણે જૈન ધર્મને આચરનાર ભૂતકાલીન કે વર્તમાનકાલીન પુરુષોનો આચાર-વ્યવહાર પણ અહિંસા સંયમમૂલક છે આ રીતે તો તે વિચારક એમ માની જ લે છે કે જૈન ધર્મનાં પ્રાણભૂત અહિંસા, સંયમ અને તપ ગાંધીજીના જીવનમાં કામ કરી રહ્યાં છે. પણ આથી આગળ વધી જ્યારે તે વિચારક વિગતોનો વિચાર કરે છે ત્યારે તેને ખરેખરી મૂંઝવણ ઊભી થાય છે ગાંધીજીની અનેકમુખી પ્રવૃત્તિઓમાં તે જે રીતે અહિંસાનો અમલ થતો જુએ છે, અને ઘણીવાર પરસ્પર વિરુદ્ધ દેખાય એવા વિધાનો તેમ જ આચરણો અહિંસાને નામે થતાં તે ગાંધીજીના જીવનમાં નિહાળી જૈન પરંપરામાં પ્રથમ [illegible] થયેલી અને અત્યારે પણ મનાતી આચરણાઓ સાથે સરખાવે [illegible] તેનું ઉદાર ચિત્ત પણ પ્રામાણિકપણે એવી શંકા કર્યા વિના [illegible] નથી કે જૈન સિદ્ધાંતરૂપે અહિંસા અને સંયમનું તત્ત્વ એક જ [illegible] ત્યાગી હોય એવા જૈનના જીવનમાં અને ગાંધીજીના જીવનમાં [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

દૃષ્ટિબિંદુનું સામ્ય

જૈનધર્મનુ દૃષ્ટિબિંદુ આધ્યાત્મિક છે, અને ગાંધીજીનુ દૃષ્ટિબિંદુ પણ આધ્યાત્મિક છે આધ્યાત્મિકતા એટલે પોતામા રહેલ વાસનાઓની મલીનતા દૂર કરવી તે બહુ પ્રાચીનકાળના તપસ્વી સતોએ જોયું કે કામ, ક્રોધ, ભય આદિ વૃત્તિઓ જ મલીનતાનુ મૂળ છે અને તે જ આત્માની શુદ્ધતાને હણે છે, તેમ જ શુદ્ધતા મેળવવામા વિઘ્નો નાખે છે તેથી તેમણે એ વૃત્તિઓના ઉન્મૂલનનો માર્ગ લીધો એવી વૃત્તિઓનું ઉન્મૂલન કરવુ એટલે કે પોતામાં રહેલ દોષોને દૂર કરવા. એવા દોષો તે હિંસા અને તેને પોતામા સ્થાન લેતા રોકવા તે અહિંસા. એ જ રીતે એવા દોષોમાથી ઉદ્ભવનારી પ્રવૃત્તિઓ તે હિસા અને એવી પ્રવૃત્તિઓનો ત્યાગ તે અહિંસા. આમ અહિંસાનો મૂળમા દોષત્યાગરૂપ અર્થ હોવા છતા તેની સાથે તન્મૂલક પ્રવૃત્તિઓનો ત્યાગ એ બીજો અર્થ પણ સંકળાઈ ગયો જેઓ પોતાની વાસનાઓ નિર્મૂળ કરવા ઇચ્છતા હોય તેઓ એવી વાસનાઓનો જેમા જેમા સભવ હોય એવી પ્રવૃત્તિઓનો પણ ત્યાગ કરતા આ સાધના કંઈ સહેલી ન હતી તેવી લાબી સાધના માટે અમુક દુન્યવી પ્રપચોથી મુક્ત થવુ અનિવાર્ય હતુ, એટલે દુન્યવી પ્રવૃત્તિઓથી અલગ થઈ આધ્યાત્મિક સાધના કરવાની પ્રથા પડી દેખીતી રીતે જ આ સાધનાનો હેતુ મૂળમા દોષોથી નિવૃત્ત થવાનો અને ગમે તેવે પ્રસગે પણ દોષોથી અલિપ્ત રહી શકાય એટલુ બળ કેળવવાનો હતો અહિંસાની પ્રાથમિક અને મુખ્ય નિવૃત્તિ સિદ્ધ કરવા જે જે સયમના અને તપના વિવિધ અનેક પ્રકારો અસ્તિત્વમા આવ્યા તે બધા મોટે ભાગે નિવૃત્તિલક્ષી જ યોજાયા અને તેથી અહિંસા, સયમ કે તપની બધી વ્યાખ્યાઓ મોટે ભાગે નિવૃત્તિલક્ષી બની બીજી બાજુ આધ્યાત્મિક શુદ્ધિની સાધના માત્ર વ્યક્તિગત ન રહેતા એણે સંઘ અને સમાજમા પણ સ્થાન લેવા માંડ્યું જેમ જેમ તે સઘ અને સમાજના જીવનમા પ્રવેશતી ગઈ તેમ તેમ તે વિકસતી ગઈ, પણ [illegible] [illegible] સઘ અને સમાજમા [illegible] [illegible] ટકાવવા માટે અહિંસા, સયમ અને તપના અર્થો [illegible] તેમાં જે [illegible] [illegible].

જૈન પરંપરા અને [illegible] ધર્મ

[illegible]

સમાજગત કરવા યત્નશીલ હતા. બુદ્ધે પોતાના જીવનમાં અહિંસા અને સંયમ પૂરેપૂરાં વણ્યાં હતાં અને છતાંય તેમણે અહિંસા અને સંયમનો અર્થ લંબાવી પ્રવૃત્તિ દ્વારા વ્યાવહારિક લોકસેવાનાં બીજ પણ નાખ્યા. આ બાબતમાં જૈન પરંપરા બૌદ્ધ પરંપરા કરતાં કાંઈક પછાત રહી, અને તેમાં સંજોગબળે પ્રવૃત્તિનુ પરિમિત તત્ત્વ દાખલ થયા છતા નિવૃત્તિનુ જ રાજ્ય મુખ્યપણે રહ્યું. બુદ્ધે પોતાના જીવન અને ઉપદેશ દ્વારા જે લોકસંગ્રહના બીજો નાખ્યા હતા તે આગળ જતાં મહાયાનરૂપે વિકાસ પામ્યા. મહાયાન એટલે બીજાંઓના લૌકિક અને લોકોત્તર કલ્યાણ માટે પોતાની જાતને ગાળી નાખવાની વૃત્તિ–બીજી બાજુ આ મહાયાની ભાવનાનાં પ્રબળ મોજાંને લીધે કે સ્વતંત્રપણે પણ કોઈ સાખ્યાનુયાયી દીર્ઘદર્શી વિચારકે વાસુદેવ ધર્મ, જે તે વખતે ઠીક ઠીક પ્રતિષ્ઠા પામ્યો હતો અને વિસ્તરતો જતો હતો તેને કેન્દ્રસ્થ બનાવી અત્યાર લગી ચાલ્યા આવતા પ્રવૃત્તિ અને નિવૃત્તિના સંઘર્ષનું સમાધાન કરી એમ સ્થાપ્યું કે કોઈ પણ સમાજગામી ધર્મ દુન્યવી નિવૃત્તિ બાહ્યનિષ્ક્રિયતા ઉપર ટકી ન શકે. ધર્મ–જીવન વાસ્તે પણ પ્રવૃત્તિ અનિવાર્ય છે અને સાથે સાથે એણે એમ પણ સ્થાપ્યુ કે કોઈ પણ પ્રવૃત્તિ સમાજને ત્યારે જ હિતાવહ નીવડે જો તે વૈયક્તિક વાસનામૂલક ન હોઈ સ્વાર્થથી પર હોય.

નિવૃત્તિલક્ષી આચાર

અહિંસા અને બીજા તન્મૂલક બધા આચારોની પહેલી ભૂમિકા નિવૃત્તિલક્ષી હોવાથી તેની વ્યાખ્યાઓ પણ નિવૃત્તિલક્ષી જ હતી જે કાળક્રમે બૌદ્ધ પરંપરા અને વાસુદેવ પરંપરાને પ્રભાવે પ્રવૃત્તિલક્ષી તેમ જ લોકસંગ્રહપરાયણ બની. અહિંસાનો અર્થ માત્ર અભાવાત્મક ન રહેતાં તેમાં વિધાયક પ્રવૃત્તિ બાજુ પણ ઉમેરાઈ ચિત્તમાંથી રાગદ્વેષ દૂર કર્યા પછી પણ જો તેમાં પ્રેમ જેવા ભાવાત્મક તત્ત્વને સ્થાન ન મળે તો તે ખાલી પડેલું ચિત્ત પાછું રાગદ્વેષના વાદળોથી ઘેરાઈ જવાનું, એમ સિદ્ધ થયું તે જ રીતે માત્ર [illegible] બ્રહ્મચર્યનો પૂર્ણ અર્થ ન [illegible] [illegible]

જ્યારે નિવૃત્તિગામી વ્યાખ્યાઓ પ્રવૃત્તિ પર પણ થવા લાગી ત્યારે એ પ્રભાવથી જૈન પરંપરા છેક જ અલિપ્ત તો રહી શકી નહિ, પણ તેમાં સાધુ સંસ્થાના બંધારણે અને બીજાં અનેક બળોએ એવો ભાગ ભજવ્યો કે જૈન પરંપરાનો વ્યવહાર મુખ્યપણે નિવૃત્તિગામી જ રહ્યો, અને શાસ્ત્રની વ્યાખ્યાઓ પણ લગભગ નિવૃત્તિપોષક જ રહી જો કે ઇતિહાસ સમાજને જુદી રીતે ઘડી રહ્યો હતો અને તે જૈન પરંપરાના વ્યવહારમાં તેમ જ શાસ્ત્રીય વ્યાખ્યાઓમાં ફેરફાર માગતો હતો, છતાં એ કામ આજલગી અધૂરું જ રહ્યું છે

સંસ્કારની અસર

જ્યારે કોઈ વિચારક જૈનપરંપરાના આચાર-વિચારનું અનુસરણ કરે છે અને જૈન શાસ્ત્રોનો અભ્યાસ કરે છે ત્યારે તેના મન ઉપર હજારો વર્ષ પહેલાં ઘડાયેલ એ નિવૃત્તિપ્રેરક ધોરણ અને વ્યાખ્યાઓના સંસ્કારો એટલા બધા સચોટ પડે છે કે તે તેને ભેદી ભાગ્યે જ વિચાર કરી શકે છે. સિદ્ધાંત એક જ હોય પણ તે સંજોગો પ્રમાણે કેવી રીતે અનેક મુખે કામ કરે છે એ તત્ત્વ સમજવું તે સ્થિતિમાં અઘરું થઈ પડે છે

ગાંધીજીને આધ્યાત્મિકતા સિદ્ધ કરવી છે. તેની ભૂમિકારૂપે તેમણે પોતાના જીવનમાં અહિંસા વગેરે તત્ત્વોને સ્થાન આપ્યું છે. પણ તેમનું દૃષ્ટિબિંદુ મહાયાનમાર્ગી હોઈ તેઓ બીજાને સુખી કર્યા સિવાય પોતાને સુખી માની શકતા નથી. ગાંધીજીનું દૃષ્ટિબિંદુ મહાયાની અને તેમાં અહિંસાનું તત્ત્વ ઉમેરાયું એટલે સ્વાભાવિક રીતે જ તેમનું જીવન લોકકલ્યાણ તરફ વળ્યું અને તેમની આધ્યાત્મિક શુદ્ધિની દૃષ્ટિએ તેમને અનાસક્ત કર્મયોગ સુઝાડ્યો તેમનામાં મૂળથી જ અહિંસાના સંસ્કાર [illegible] હતા એટલે તેમણે પોતાની અહિંસાને પ્રવૃત્તિના બધા જ ક્ષેત્રોમાં [illegible] અને ગીતાના અનાસક્ત કર્મયોગ પ્રમાણે જીવન ઘડવા પ્રયત્ન શરૂ કર્યો અને એ રીતે તેમણે ગીતાના [illegible].

પ્રેરે છે, જો કે વસ્તુત તે અવિરોધી જ ગણી શકાય ગાંધીજીએ જૈન પરંપરાને માન્ય એવી નિવૃત્તિપક્ષી દેખાતી અહિંસા અપનાવી છે ખરી, પણ તેમણે પોતાના સર્વ કલ્યાણકારી સામાજિક ધ્યેયની સિદ્ધિ અર્થે તે અહિંસાના અર્થનો એટલો બધો વિસ્તાર કર્યો છે કે આજની સ્થિતિમાં ગાધીજીનો અહિંસા ધર્મ એ એક પોતાનો જ અહિંસા ધર્મ બની ગયો છે. એ જ રીતે આ દેશ અને પરદેશની અનેક અહિંસાવિષયક માન્યતાઓને તેમણે પોતાના લક્ષની સિદ્ધિને અનુકૂળ થાય એવી રીતે જીવનમા વણી છે અને તે જ તેમનો સ્વતંત્ર ધર્મ બની તેમની અનેકમુખી પ્રવૃત્તિઓના દ્વાર ખુલ્લા કરે છે આ દૃષ્ટિએ વિચારતા એમ કહેવુ જ પડે કે ગાધીજીના જીવનમા જૈન ધર્મ એના મૂળ અર્થ કે પારિભાષિક અર્થમા નથી જ. એ રીતે એમ પણ કહી શકાય કે તેમના જીવનમા બૌદ્ધ કે બીજા કોઈ ધર્મો તેના સાપ્રદાયિક અર્થમાં નથી જ અને છતા તેમના જીવનમાં જે જાતનો ધર્મ સક્રિયપણે કામ કરી રહ્યા છે તેમા બધા જ સાપ્રદાયિક ધર્મોનો યોગ્ય રીતે સમન્વય છે

મહાન આત્મા

ગાંધીજી આપણા જેવા જ એક માણસ છે પણ તેમનો આત્મા મહાન કહેવાય છે અને વસ્તુત મહાન સિદ્ધ થયો છે, અહિંસા ધર્મના લોકાભ્યુદયકારી વિકાસને લીધે જ.

ગાધીજીને એક વાટકી ઉટકવાના કામથી માંડી મોટામા મોટી સલ્તનત સામે ઝૂબેશ ઉઠાવવાની પ્રવૃત્તિ કરવી પડી ન હોત અથવા તો એ પ્રવૃત્તિમા અહિંસા, સયમ અને તપનો વિનિયોગ કરવાની સૂઝ પ્રકટી ન હોત તો તેમનો અહિંસાધર્મ કદાચ પેલી નિર્માંસ ભોજનની પ્રતિજ્ઞા જેવી મર્યાદાઓના સ્થૂલરસ પાલનની બહાર ભાગ્યે જ આવ્યો હોત એ જ રીતે બાકી કે કોઈ સમર્થતમ જૈન ત્યાગી હોય અને તેના હાથમાં સમાજની મહત્ત્વના માગવવા અને ચલાવવાના સૂત્રો સોંપાય, તેથી [illegible]

અને તે એ કે જૈનપરંપરાના એક માત્ર નિવૃત્તિ પ્રધાન સંસ્કારોને બદલી તે અહિંસાની એવી વ્યાખ્યા કરે, સર્વ વિકસાવે કે જેથી તેમાં ગમે તેટલું સમાજલક્ષી અને વ્યાવહારિક પરિવર્તન છતાં અહિંસાનો મૂળ આત્મા જે વાસનાઓનો ત્યાગ અને સદ્‌ગુણોનો વિકાસ તે સુરક્ષિત રહી શકે.

ગાંધીજીનો ધર્મ નવીન છે

જો કોઈ પણ સાધક માનવજીવનના વિધવિધ ક્ષેત્રોમાં નિત્યનવા ઊભા થતા કોયડાઓનો ઉકેલ ધાર્મિક દૃષ્ટિથી કરવા ઇચ્છે તો તે સહેલાઈથી ગાંધીજીના જીવનધર્મની દિશા જાણી શકે તેથી જ હું માનુ છું, કે ગાંધીજીનો જીવનધર્મ જીવત અને નવીન છે નવીન એટલે તે જૂના ઉપર અભૂતપર્વ મહેલ છે એ જ કાગળ, એ જ પીછી અને એ જ રગ છતાં તે અદૃષ્ટ-પૂર્વ ચિત્ર છે સારેગમના એ જ સ્વરોનુ અભૂતપૂર્વ સગીત છે. અગો કે અવયવો એ જ છતાં એ અપૂર્વ તાડવ અને અલૌકિક નૃત્ય છે, કારણ કે ગાંધીજીની દૃષ્ટિમાં આ લોક અને પરલોક વચ્ચેની ભેદરેખા ભૂસાઈ ગઈ છે. તેમને મનુષ્ય જીવનરૂપ કે બળતી મિથિલાની અંદર જ રહી તેની આગ શમાવવાના પ્રયત્નમા જ પારલૌકિક નરકયત્રણા નિવારવાનો સતોષ છે, અને માનવજીવનમાં જ સ્વર્ગ કે મોક્ષની શકયતા સિદ્ધ કરવાની તાલાવેલી છે.

બન્ને કલ્યાણકારી : જીવન અને મૃત્યુ

[૪]

ગાંધીજી ‘મહાત્મા’ લેખાયા. કારણ તેમનુ જીવન મહત્ હતુ જેનુ જીવન જ મહત્ હોય તેનુ મૃત્યુ પણ મહત્ જ હોવાનુ ગાધીજીનુ જીવન મહત શા માટે? એ પ્રશ્નનો ઉત્તર એક જ છે અને તે એ કે બાલ્યકાળથી ઠેઠ મૃત્યુની ઘડી સુધી એકમાત્ર પ્રેમવૃત્તિ, સત્ય અને બીજાનુ ભલુ કરવાની વૃત્તિ તેમ જ પ્રવૃત્તિ જ અખડપણે તેમ જ ઉત્તરોત્તર વિકસિત રૂપમા અને વધારે ને વધારે વ્યાપક રૂપમા સેવી છે. બુદ્ધના મૃત્યુ વખતે લોકોમા શોક વ્યાપેલો, પણ એ શોક મોટે ભાગે તેમના અનુગામી ભિક્ષુગણ તેમ જ ગૃહસ્થવર્ગ પૂરતો હતો એમ કહી શકાય મહાવીરના નિર્વાણ વખતે વ્યાપેલ શોક પણ એ જ કોટિનો હતો અલબત્ત, તે વખતે અત્યારના જેવા સમાચાર ફેલાવવાનાં સાધનો ન હતા ગાંધીજીના મૃત્યુસમાચાર અત્યારના સાધનોને લીધે વિશ્વવ્યાપી બન્યા છે એ એક જ કારણ વિશ્વવ્યાપી શોકનુ નથી પણ એમનુ આતર અને બાહ્યજીવન એવુ વિશ્વવ્યાપી બની ગયેલુ કે તે સ્થૂળ દેહે ગમે ત્યાં રહેતા હોય છતા દુનિયાના દરેક ભાગમાં તેમનો સદેશ એકધારો પહોચી જતો અને ભણેલ કે અભણ, આ ધર્મના કે તે ધર્મના, આ કોમના કે તે કોમના, આ દેશના કે તે દેશના, દરેક માનવી ગાધીજી વિષે એટલુ તો માની જ લેતા કે તેઓ જે કહે છે, જે સદેશ આપે છે તે તેમના આચરણનુ પરિણામ છે. સૌનો એકસરખો વિશ્વાસ એ જ કે ગાધીજી વિચારે કાંઈ, બોલે કાંઈ અને કરે કાંઈ એવા નથી અને નથી જ. વિશ્વભરમા ગાંધીજીની પ્રતિષ્ઠા [illegible] ઉપરના કારણે જ હતી. તેઓ સૌના [illegible] નામ [illegible] તે માત્ર [illegible] અને [illegible] કારણે [illegible] જ [illegible] જીવનને મહત્ [illegible]

કેવળ એક જ બાજુએ વળ્યો છે એ વિશ્વવિદિત બીના છે અને તે એક બાજુ પણ માત્ર કલ્યાણની જ. ગાંધીજીએ પોતાની સમગ્રશક્તિનો પ્રવાહ લોકકલ્યાણને માર્ગે જ વાળ્યો છે. આ માટેની તૈયારી કરવા ગાંધીજી નથી ગયા કોઈ મઠમાં કે નથી ગયા કોઈ જંગલમાં કે પર્વતની ગુફામા મનના સહજ અધોગામી વલણ તેમ જ અકલ્યાણગામી સસ્કારોના વહેણને ઊર્ધ્વ-ગામી વલણમાં અને એક માત્ર કલ્યાણગામી પ્રવૃત્તિના વહેણમાં ફેરવી નાખવા એ કામ નથી શ્રગને માટે સહેલુ કે નથી સત્તાધારીને માટે સહેલુ. એ કામ ભલભલા સાધકોની પણ કસોટી કરાવે તેવુ અઘરું છે. પરંતુ ગાંધીજીની સત્ય તેમ જ પ્રેમની અનન્ય નિષ્ઠા અને સત્યપ્રેમમય ઇશ્વર ઉપરની અચળ શ્રદ્ધાએ તેમને માટે એ કામ તદ્દન સહેલા જેવુ કરી નાખ્યુ હતું તેથી જ ગાંધીજી સૌને એકસરખી રીતે ભારપૂર્વક કહેતા કે હુ તમારામાંનો જ છુ અને હુ જે કરુ છુ કે કરી શક્યો છુ તે સ્ત્રી-પુરુષ, યુવા વૃદ્ધ સૌને માટે (તેઓ ધારે તો) સુકર છે ગાંધીજી માત્ર વિવેક અને સત્પુરુષાર્થ ઉપર જ ભાર આપતા. એમનો ઈશ્વર એમા જ સમાઈ જતો દરેક માનવમા વિવેક અને પુરુષાર્થનાં બીજ હોય જ તેથી દરેક માનવ ઈશ્વર અને બ્રહ્મરૂપ છે ગાંધીજી દરેકના આત્મામા વસતા એવા જ સચ્ચિદાનંદમય અંતર્યામીને પોતાના વર્તન અને વિચારથી જાગ્રત કરવા રાતદિવસ મથતા અને તેમાં જ અખંડ આનંદ અનુભવતા

માણસ સુમાર્ગને અનુસરે કે નહિ પણ તેના મનમા એક અથવા બીજી રીતે સુમાર્ગની પ્રતિષ્ઠા તો હોય જ છે તેથી ગાંધીજીના સન્માર્ગ-દર્શનને ન અનુસરનાર પણ—અને ઘણીવાર તેથી સાવ [illegible] ચાલનાર પણ—તેમના આ વલણ તરફ આકર્ષાતો અને એક અથવા બીજી રીતે ગાંધીજીના પ્રશંસક બની જતો તેથી કરીને આપણે કહી શકીએ કે બીજી કોઈ પણ વિભૂતિના કરતાં માનવોના હૃદયમા સ્થાન [illegible] તે કરતાં [illegible] વધારે માણસોના હૃદયમા ગાંધીજીના કરતાં સ્થાન [illegible] સ્થાનને લીધે જ લોકોએ તેમને મહાન [illegible] મહત્ લેખ્યા.

અમુક ભાગ પૂરતો જ હતો, અને કેટલીક વખતે તો તે ઔપચારિક પણ હોય. પરંતુ ગાંધીજીની મૃત્યુકથા જ સાવ નિરાળી છે દુનિયામા એકેએક ભાગમાં વસતી જનતાના સાચા પ્રતિનિધિઓએ ગાંધીજીના મૃત્યુ ઉપર આંસુ સાર્યાં છે અને અત્યારે પણ ગાંધીજીની જીવનગાથા મનમાં આવતાં જ કે કાને પડતાં જ કરોડો માણસો આંસુ ખાળી શકતા નથી તેથી જ ગાંધીજીનુ મૃત્યુ જીવનના જેટલુ જ મહાન છે એમ કહી શકાય

ગીતા એ દુનિયાના ધર્મગ્રથોમાં એક અદ્ભુત અને અપૂર્વ ગ્રથ છે. તેને રચનાર વ્યક્તિ પણ તેવી જ અદ્ભુત અને આર્ષદૃષ્ટિવાળી હોવી જોઈએ. જેના મુખમાથી ગીતાનો ઉપદેશ આપવામા આવ્યો છે તે કલ્પનામૂર્તિ કે ઐતિહાસિક કૃષ્ણ પણ અદ્ભુત વ્યક્તિ છે એમાં શંકા નથી ગાધીજીને સાચી રીતે ઓળખનાર કોઈ પણ એટલુ તો સમજી શકે તેમ છે કે ગીતાને તેના આધ્યાત્મિક અને વ્યાવહારિક અર્થમાં જેટલે અશે ગાધીજીએ જીવનમાં પચાવી હતી તેટલે અંશે ગીતાને પચાવનાર વ્યક્તિને શોધી કાઢવાનુ કામ બહુ અઘરુ છે. ગીતામા કર્મયોગનુ જ પ્રતિપાદન છે આ મુદ્દાનુ સમર્થન લોકમાન્ય તિળક કરતાં વધારે સચોટ રીતે બીજા કોઈએ કર્યું હોય તો તે હુ જાણતો નથી, પણ એ અનાસક્ત કર્મયોગનુ પચાસથી વધારે વર્ષો લગી સતત અને અખડ પરિપાલન ગાધીજીએ જ કરી બતાવ્યુ છે તેમણે ગીતાના કર્મયોગનુ સમર્થન જેટલે અશે જીવન જીવીને કર્યું છે તેટલે અંશે ગ્રંથ લખીને નથી કર્યું ગીતાના અનાસક્ત કર્મયોગમાં બે બાજુઓ સમાય છે લોકજીવનની સામાન્ય સપાટી ઉપર રહીને તેને ઉન્નત કરવાની લોક-સંગ્રહકારી વ્યવહાર બાજુ, અને ત્રણે કાળમા એકસરખા ટકી શકે એવાં શાશ્વત મૂલ્ય ધરાવનાર સત્ય, અહિંસા, અને ઈન્દ્રિયનિગ્રહ જેવા તત્ત્વોને સ્પર્શીને જ જીવન જીવવાની પારમાર્થિક બાજુ ગાંધીજીનુ જીવન શરૂ થયુ ત, એ પારમાર્થિક સત્યને આધારે અને તે ઉત્તરોત્તર વધારે ને વધારે

વિષય પણ બની જતુ જેમ જેમ ગાંધીજી પારમાર્થિક સત્યને આધારે વ્યાવહારિક ક્ષેત્રો વધારે ને વધારે ખેડતા ગયા, જેમ જેમ તેમની સામે કઠણ અને કઠણતર વ્યાવહારિક સમસ્યાઓ આવતી ગઈ, ધર્મ, કોમ, સમાજ, અર્થશાસ્ત્ર, રાજકારણ-આવા અનેક વિષયોની જમાનાજૂની જટિલ સમસ્યાઓ ઉકેલવાનો ભાર તેમના ઉપર આવતો ગયો તેમ તેમ તેમને પોતાના જીવનના ઊંડાણમાથી પારમાર્થિક સત્યની મંગળમય અને કલ્યાણકારી બાજુએ વધારે ને વધારે બળ આપ્યુ એ બળ જ ગાંધીજીનુ અમોઘ બળ હતુ. ગાંધીજી ગમે તેવા ક્ષીણ હોય કે તપસ્યાથી કૃશ હોય ત્યારે પણ તેમના જીવનમાંથી જે આશ્ચર્યકારી તેજ અને બળ સ્ફુરતુ તેને સમજવાનુ કામ કોઈને માટે પણ સહેલુ નહોતુ તે બળ અને તેજ તેમના પારમાર્થિક સત્ય સાથેના તાદાત્મ્યનુ જ પરિણામ હતુ. એમની વાણી કે એમની લેખિનીમાં, એમની પ્રવૃત્તિ કે એમની દેહસ્ફૂર્તિમાં એ જ પારમાર્થિક સત્ય પ્રકાશતુ

ગાધીજીના અનુયાયી ગણાતા માણસો પણ ગાધીજીના જેવી જ દુન્યવી અને વ્યાવહારિક પ્રવૃત્તિ કરતા, પણ તેમને બધાનેય એમ લાગ્યા જ કરતુ કે તેમના જીવનમાં ગાધીજીનુ તેજ નથી આમ શા માટે? એનો ઉત્તર ગાધીજીની પારમાર્થિક સત્ય સાથેની પોતાના જીવનની વધારે ઊંડી એકરૂપતામાથી મળી જાય છે આવી એકરૂપતાએ દુન્યવી લોકજીવનના ઘણા પાસાંને સુધાર્યાં છે, ઉન્નત કર્યાં છે. આ બીના આપણને જેટલી વિદિત છે તે કરતા વધારે પ્રમાણમા હવે પછીની પેઢીઓને વિદિત થશે પ્રકૃતિનું

શક્ય હોય, છતાં તેને સમજવા અને પચાવવા જેટલી માનવ-સમાજની ભૂમિકા તૈયાર ન હતી. ગાંધીજીએ સમાજના ખૂણેખૂણામાં પહોંચી લોકોની સદ્બુદ્ધિ જાગૃત કરવા ભગીરથ પ્રયત્ન કર્યો. તેને પરિણામે લાખો માણસો એમનું કથન સમજવા તરફ અને એમનું જીવન ઓછેવત્તે અંશે જીવવા તરફ વળ્યા પણ સમાજનો એક મોટો ભાગ એવો ને એવો જ રહ્યો, અને ગાંધીજીના નવજીવનમય સંદેશની તીવ્રતા અને વિશેષ પ્રચારની સાથે સાથે તે વધારે ને વધારે વધતો ગયો કે જે ગાંધીજીના સંદેશને ઝીલી ન શક્યો, એટલું જ નહિ પણ તેને એ સંદેશ સાવ ઘાતક તેમજ અવ્યવહારુ લાગ્યો. જેઓ ગાંધીજીના નવજીવનસંદેશને શ્રદ્ધાપૂર્વક સાંભળતા અને યથાશક્તિ તે પ્રમાણે વર્તવા ઇચ્છતા તેઓના મનમાં પણ કેટલીકવાર ગાંધીજીના પારમાર્થિક સિદ્ધાંતો વિશે શંકા ઊઠતી, અને પૂરતું સમાધાન ન થતું. એવો પણ વર્ગ વધતો ગયો કે જે ગાંધીજીને સાંભળવાનું જતું કરી શકે જ નહિ પણ મનમાં એક જ વાત પોષ્યા કરે કે એ તો સંત રહ્યા, વ્યવહારમાં એમની વાત ન ચાલે. પણ આથી યે વધારે મોટો વર્ગ તો એવો નિર્માણ થતો ગયો કે જે ગાંધીજીના પારમાર્થિક સત્યના સિદ્ધાંતને તત્ત્વત માનવા છતાં વ્યવહારમાં તેની તદ્દન અવગણનાપૂર્વક અવ્યવહારિતામાં જ માનતો. આ છેલ્લો વર્ગ એ જ ગાંધીજીના નવજીવનસંદેશ માટે ભયાનક હતો. ગાંધીજી પોતાને હિંદુ કહેતા અને હિંદુ ધર્મ આચરવાનો દાવો કરતા. પણ તેમનો હિંદુ ધર્મ સમગ્ર પ્રજામાંથી ઉદ્ભવેલ અને પોષાયેલ હોવાથી એટલો બધો વિશાળ બન્યો હતો કે તે એક બાજુથી દુનિયાના સમગ્ર સાચા ધર્માનુયાયીઓને 'ગાંધીજી સમગ્ર જ ધર્મનો મર્મ સર્વત્ર સાચી રીતે પ્રગટ કરી રહ્યા છે' એમ માનવા લલચાવતો, ત્યારે બીજી બાજુથી તે સાંકડા મનના રૂઢિચુસ્ત અને સ્વાર્થી ધાર્મિકોના મનમાં તે જરા પણ સ્થાન ન પામતો અને તેમને અનેક રીતે [illegible]

ન હતુ તેઓ મનમા સમસમતા અને ગાધીજી પ્રત્યે જાહેરમાં નહિ તો ખાનગીમાં રોષ સેવતા અને ફેલાવતા. આવા લોકોમા કેટલાક બુદ્ધિપટુ છતા માત્ર સત્તાલોલુપ અને અસહિષ્ણુ લોકોનો એક વર્ગ પહેલેથી જ હતો. ગાધીજીની વધતી જતી વિશ્વપ્રિય પ્રવૃત્તિ અને દેશોધ્ધારક પ્રવૃત્તિના તેજ સામે તેવા વર્ગનુ બહુ ઓછા લોકો સાભળતા. પણ ગાધીજીનો હિંદુત્વશોધક કાર્યક્રમ જેમ જેમ ઉગ્ર અને વિશાળ બનતો ગયો તેમ તેમ તે અસહિષ્ણુ વર્ગને ભોળા, અજ્ઞાની અને સ્વાર્થી લોકોને પોતાના તરફ આકર્ષવાની વધારે તક સાપડતી ગઈ મુસલમાનોની માગણીઓ વધતી ચાલી ગાધીજી તેમને કોરો ચેક આપવાની દીર્ઘદૃષ્ટિ ભરેલી વાત કરે તો પેલો અસહિષ્ણુ વર્ગ હિંદુ લોકોને ઉશ્કેરે કે જુઓ, ગાધીજી પોતાને હિંદુ કહેવડાવે છે, હિંદુ ધર્મના અનુયાયી હોવાની વાત કરે છે, ગીતાને અક્ષરસ આચરવાની વાત કરે છે, અને છતાય આતતાયી મુસલમાનો સામે બીરુ થઈ નમી પડે છે સામાન્ય લોકો જેઓ લેવડદેવડના પાઈએ પાઈનો હિસાબ ગણતા હોય અને જેઓના મન ઉપર આતતાયીને પ્રહાર કરીને જ ઠેકાણે લાવવાનો સસ્કાર હોય તેઓ ગાધીજીની દીર્ઘદૃષ્ટિ ભરેલી ઉદારતાનો અવળો અર્થ લે તો એ સ્વાભાવિક જ હતુ ગાધીજીની દીર્ઘદૃષ્ટિ એ હતી કે પહેલા માગ ઘરનુ શોધન થાય તો બીજાને શોધન માટે કહેવાનું કામ સરળ થાય. અને દુનિયામા પણ પોતાની પ્રતિષ્ઠા વધે જ્યા લગી મુસ્લિમ લીગ અને હિંદુ મહાસભા વચ્ચે રસાકસી ચાલી ત્યા લગી પેલા અસહિષ્ણુ વર્ગે દેશના ભોળા લોકોમા એક જ જાતનુ વિષ ફેલાવ્યુ કે હિંદુ જાતિ અને હિંદુ ધર્મ ગાધીજીના હાથે જોખમાય છે દુર્ભાગ્યે દેશના ભાગલા પડ્યા અને એમાથી અરસપરસ કાપાકાપીનો દાવાનળ પ્રગટ્યો મુસ્લિમ લીગે તો ગાધીજીને ઇસ્લામ અને મુસલમાનના શત્રુ નહિ માનેલા જ હતા પણ

જ્યારે ગાંધીજીને તો આવા લાંબા કાળના રૂઢ માનસને સમજાવટ અને વિવેકથી સુધારવુ હતુ ડૂબતો અને આપદ્ગ્રસ્ત માણસ તૂટી જાય એવા તત્કાળસુલભ તણખલાનું અવલંબન લેતો હોય ત્યારે એને કાંઈક ખમી ખાઈ, સંકટ સહી વધારે સ્થિર ઉપાયનું અવલંબન કરવા કહેવામાં આવે તો બહુ ઓછી સફળતા મળે છે એટલે દેશના ભાગલા પડતાં જે જે કોમી દાવાનળ ભભૂકી ઉઠ્યો તેમા હિંદુ તેમ જ શીખોને એક જ બચવાનો ઉપાય જણાયો ગાંધીજી એ ઉપાયનુ અવલંબન કરવામા લાંબે ગાળે બહુ જ અહિત જોઈ શક્યા. તેથી તેમણે હિન્દુ અને શીખોને એ બદલાની વૃત્તિ અજમાવતા પ્રથમ રોક્યા. આને લીધે જેમ જેમ મુસલમાનો ગાંધીજીને પ્રશંસવા લાગ્યા તેમ તેમ હિન્દુઓ અને શીખો વધારે છેડાયા અને ખુલ્લંખુલ્લા પ્રચાર કરવા લાગ્યા કે જુઓ ! મુસલમાનો જ ગાંધીજીને પોતાના હિતૈષી ગણે છે જે મુસલમાનનો હિતૈષી હોય તે તો હિન્દુદ્રોહી હોય જ

ઉશ્કેરણીજનક બન્યે જતા નવનવા બનાવોમાં બધે જ એકસરખી રીતે સાંત્વન આપવાનું અને સમજાવટ કરવાનું કામ ગાંધીજી માટે ઘણુ અઘરુ. હતુ છતા તેમણે અનશન જેવા જલદ ઉપાયો અને રેડિયો ઉપરના સર્વગમ્ય પ્રવચનો દ્વારા પોતાનું કામ જારી રાખ્યું અને બદલા લેવાની વૃત્તિ જે ભયકર રૂપમા હિંદુ તેમ જ શીખ ભાઈઓમા ફાટી નીકળી હતી તે કાંઈક અંશે કાબૂમા લીધી. પણ આવે વખતે પેલો અસહિષ્ણુ અને સત્તાલોલુપ વર્ગ લોકોને આડે રસ્તે જ દોર્યો જતો અને ખુલ્લંખુલ્લા કહેતો કે ગાંધીજી તો અહિંસાદ્વારા છેવટે હિંદુઓ અને શીખોની જ કતલ કરાવી રહ્યા છે જ્યારે ગાંધીજી વિરુદ્ધ લોકમાનસ ઠીક ઠીક પ્રમાણમા કેળવાયુ ત્યારે જે રૂઢિચુસ્તો અને નામધારી ધાર્મિકો પહેલેથી જ ગાંધીજીની વિરુદ્ધ હતા અને અત્યારસુધી પોતપોતાના આંગણામાં જ રહી તેમને ભાંડતા તે બધા પેલા બુદ્ધિપટુ સત્તાલોલુપ વર્ગના ટેકેદાર થઈ ગયા એ

આ સ્થિતિએ જ કોંગ્રેસવિરોધી ષડ્યંત્ર રચાવ્યું અને કોંગ્રેસને તેમ જ દેશને વર્તમાન સ્થિતિએ પહોંચાડનાર મહાન જીવનને ખતમ કરવાનો સંકલ્પ પોષ્યો, જેનું ગોડસે તો એક પ્રતીક માત્ર છે

ગાંધીજી ગોડસેને હાથે વીંધાયા એમ કહેવા કરતાં એમ કહેવું વધારે સાચું છે કે ગાંધીજીની ઉત્તરોત્તર વિકસતી અને શુદ્ધ થતી જતી અહિંસાને ન પચાવી શકનાર માનસે જ ગાંધીજીની હિંસા કરાવવામાં ભાગ ભજવ્યો. પણ ગાંધીજી જો સાચે જ અહિંસક હતા અને તેમની પ્રજ્ઞા એક માત્ર સત્યને જ ધારણ કરતી હતી અને જીરવતી હતી તો તેમની હિંસા શક્ય જ નથી. ઊલટું એમણે આચરેલી અહિંસા અને સેવેલી સત્યપ્રજ્ઞા એ બંને જે નાનકડાશા સ્થૂળદેહ પૂરતી મર્યાદિત હતી તે અનેક મુખે વિસ્તરી છે જે લોકો ગાંધીજીની અહિંસા અને સત્યભરી પ્રજ્ઞાને પૂરી રીતે નહોતા સમજતા તેઓ પણ હવે વધારે તાલાવેલી સાથે તેને સમજવા મથી રહ્યા લાગે છે આથી જ તો અનેક માણસો જે કોઈના ભરમાવ્યા આડે રસ્તે દોરાયા હતા તે ટપોટપ પાછા સીધે રસ્તે આવવા લાગ્યા છે અને ગોડસેના પ્રેરક માનસને હૃદયથી નિંદી રહ્યા છે પુનર્જન્મ વ્યક્તિગત હો કે સામાજિક હો, બન્ને રીતે તેનો અર્થ એક તો છે જ કે કોઈ પણ સંકલ્પ વૃથા જતો નથી જ. ગાંધીજીનો વજ્રસંકલ્પ તો વ્યર્થ જઈ જ ન શકે સોક્રેટિસ અને ક્રાઈસ્ટના સંકલ્પો તેમના જીવન પછી વધારે વેગવાન અને વધારે દૃઢમૂળ થયા છે એ જાણીતું છે ગાંધીજીનું મૃત્યુ એ પામર જંતુનું મૃત્યુ નથી એ મૃત્યુએ માણસજાતને શોકાતુર કરી છે તેનો અર્થ એ છે, કે તેને પોતાનું અંતર નિરખવા અંતર્મુખ કરી છે અને છેવટે ગાંધીજી [illegible] તે તો હંમેશા એક જ વાત કહેતા કે તમે પોતાનું અંતર તપાસો અને પોતાની જાતને પ્રથમ સુધારો. જીવનના તેમણે પોતાના [illegible] પ્રમાણમાં [illegible] તે [illegible] તેમણે પોતાના [illegible]

પોતાને જ ખભે આવેલ જવાબદારીનું પૂર્ણ ભાન થતું જાય છે જે મુસલમાન ભાઈઓને ગાંધીજી પોતાનું ઘર સુધાર્યા બાદ દૂર બેઠા કે પાકીસ્તાનમાં જઈ સમજાવવાના હતા તે મુસલમાનોમાં પણ એ ભાન બળવત્તર થતું જાય છે કે ગાંધીજી જે કહેતા તે જ સાચું છે અને મુસ્લિમ લીગ જે ધર્માંધતાને નામે ઉશ્કેરતી હતી તેમાં કશું જ તથ્ય નથી આ રીતે જોવા જઈએ તો ગાંધીજીનું જીવન જેટલું મહત્ અને કલ્યાણકારી હતું તેટલું જ તેમનું મૃત્યુ પણ મહત્ અને કલ્યાણકારી છે એ વિષે શંકા નથી

ગાંધીજી ગુરુત્વાકર્ષણના નિયમ જેવા હતા. તેમણે આખું જીવન પરસ્પર વિરોધી એવાં વિવિધ બળોને એક જ ઉદ્દેશની સિદ્ધિ માટે સાંકળી રાખવામાં અસાધારણ સફળતા મેળવી છે રાજાઓ, મઠધારીઓ, મૂડીવાદીઓ અને ઉચ્ચત્વાભિમાની વર્ગ ઉપર સામ્યવાદનું જે સંહારકારી મોજું વેગપૂર્વક આવી રહ્યું હતું તેને અહિંસાના પૂરદ્વારા નિવારવા અને એ મોજાનું પ્રાણદાયક તત્ત્વ માત્ર પ્રતિષ્ઠિત કરવા ગાંધીજીએ પોતાની કાર્યસાધનાદ્વારા છેલ્લી ઘડી સુધી પ્રયત્ન કર્યો તેઓ સૌને નિર્ભય બનાવવા જ મથતા અને જે જે ભયના કારણો જે જે વર્ગ સેવતો હોય તે તે વર્ગને તે ભયનાં કારણો જ ફેંકી દેવા સમજાવતા રાજાઓને ટ્રસ્ટી થઈ રાજ્ય કરવા કહેતા, તો મૂડીવાદી તથા ઉદ્યોગપતિઓને પણ ટ્રસ્ટી થઈ લોકહિત અર્થે ઉદ્યોગધંધો વિકસાવવા કહેતા. દરેક ધર્મપંથના દીવામાં તેજ ન હતું, કારણ કે તેમાં તેલ અને બત્તી જ ખૂટી ગયા હતા ગાંધીજીએ પોતાનાં આચરણદ્વારા દરેક ધર્મપંથના દીવામાં તેલ-બત્તી પૂરવાનું કામ કર્યું અને સમજદાર દરેક ધાર્મિક એમ માનતો થયો કે આપણો પંથ પણ મઝહબ કે ધર્મ તેમાં પણ કાંઈક મહત્ત્વ છે સર્વોમાં જાતિગત ઉચ્ચતાના અભિમાનનો વીં

શક્યું ન હતુ તેનાં મૂળ ગાંધીજીએ હચમચાવી મૂકયા અને તેના પરિપાકરૂપે એકવાર અસ્તિત્વમાં આવેલ અસ્પૃશ્યતા હવે તો છેલ્લા શ્વાસ જ લઈ રહી છે. હિન્દુ ધર્મ અને હિન્દુ સસ્કૃતિ જેટલાં જૂના તેટલા જ તે ભવ્ય ગણાય છે પણ તેનુ અસ્પૃશ્યતાકલંક પણ તેટલુ જ જૂનુ અને તેટલુ જ અભવ્ય છે આ કલક હોય ત્યા લગી હિન્દુ ધર્મને ધર્મ કહેવો અગર હિદુ સંસ્કૃતિને સસ્કૃતિ કહેવી એ માત્ર ભાષાવિલાસ છે એમ સમજી ગાધીજીએ હિદુ ધર્મ અને હિંદુ સસ્કૃતિને નિષ્કલંક બનાવવા ભગીરથ પ્રયત્ન કર્યો, અને તે પણ પોતાની અહિંસાવૃત્તિથી તેમનુ આ કામ એવુ છે કે દુનિયાના દરેક ભાગમા તે હિદુ ધર્મ અને સંસ્કૃતિને ભવ્યતા અપાવી શકે, અને હિદુ કહેવડાવનાર દરેક જણને જે નીચુ જોવાપણુ હતુ તે દૂર કરી તેને માથુ ઊચું રાખવાની હિમ્મત આપી શકે આજે જેઓ પોતાના કટ્ટરપણાને લીધે અસ્પૃશ્યતા–નિવારણમા આડે આવી ગયા છે તેઓ પોતાની નવી પેઢી અને દુનિયાના ટીકાકારોને હિંદુ ધર્મના અસ્પૃશ્યતાના લાંછન વિશે જો કાંઈ પણ સાચો જવાબ આપવા તયાર થશે તો તેમને ગાધીજીનુ શરણ લીધે જ છૂટકો છે તેઓને કહેવુ પડશે કે ના, ના, અમારો હિંદુ ધર્મ અને અમારી હિંદુ સસ્કૃતિ એવાં છે કે જેણે ગાધીજીને જન્મ આપ્યો અને ગાધીજી–દ્વારા આત્મશોધન કર્યું ગોડસેના હાથને લોહિયાળ કરાવનાર વક્રમતિ વર્ગને પણ પોતાની નવી પેઢીમા પ્રતિષ્ઠા મેળવવી હશે તો તે ગાંધીજીની અહિંસાને આગળ ધરીને જ મેળવી શકશે ગાંધીજીએ કોઈનું કદીય અહિત ચિતવ્યુ જ નથી આવી કલ્યાણ–ગુણ–ધામ–વિભૂતિ પોતાના સ્થૂળ મૃત્યુ દ્વારા પણ કલ્યાણવૃત્તિ પ્રસારવાનુ જ કામ કરવાની [illegible] કે તે રીતે સૌને સદ્બુદ્ધિનો જ પાઠ શીખવે છે વક્રમતિ અને [illegible] એક રીતે તો બીજાઓને બીજી રીતે [illegible] એટલે આપણે દૃઢ વિશ્વાસ સેવવો જોઈએ કે ગાંધીજીની [illegible] કલ્યાણમૂર્તિ [illegible]

પ્રાચીન કાળથી આજલગી યુદ્ધપ્રિય લોકોને ઉત્તેજવા અને પાનો ચડાવવા માટે એક ચમત્કારી ઉક્તિ ગીતામાં છે. તે કહે છે કે 'અરે બહાદુર, તું કમર કસ! તૈયાર થા! રણમાં જા! અને પછી પીઠ ન ફેરવ. દુશ્મનોથી ન ડર! જો દુશ્મનોને હાથે મરણ પામીશ તો કશું નુકસાન નથી ઊલટું એ રીતે મરીને તું અહીંના રાજ્ય કરતાં મોટું સ્વર્ગનું રાજ્ય પામીશ, અને જો દુશ્મનોને જીતીશ તો અહીંનું રાજ્ય છે જ. જીવીને કે મરીને તું રાજ્ય જ ભોગવવાનો છે. શરત એટલી કે લડતાં પાછી પાની ન કરવી.' આ ઉત્તેજનાએ આજ લગી હિંસક યુદ્ધો પોષ્યાં છે કેમકે તે ઉત્તેજના કોઈ એક પક્ષ પૂરતી હોતી નથી બન્ને પક્ષો તેની ઉત્તેજનાથી બળ મેળવી પ્રાણાન્ત યુદ્ધ ખેલે છે અને પરિણામે નાશની પ્રક્રિયા અટકતી નથી. ગાંધીજીએ આ ઉત્તેજનાને મિટાવી નહિ તેનું બળ કાયમ રાખ્યું એટલું જ નહિ પણ તેને ઘણે અંશે વધાર્યું પણ છે. માત્ર તેને અહિંસાનો નવો ઝોક અને નવો પુટ આપ્યો અને તે ઉત્તેજનાને અમર રસાયણ બનાવ્યું. હજારો વર્ષ થયાં ચાલી આવતી પાશવી હિંસક ઉત્તેજનાને તેમણે માનવીય કે દિવ્ય ઉત્તેજનામાં ફેરવી નાખી, અને તે કેવી રીતે? ગાંધીજીએ ઉપરની ઉત્તેજનાને નવો અર્થ આપતાં કહ્યું કે 'શાસ્ત્રનો સિદ્ધાન્ત તો એવો છે કે કોઈ પણ કલ્યાણ કરનાર દુર્ગતિ પામતો નથી. તેથી હે બહાદુર! તું કલ્યાણ માર્ગે નિર્ભયપણે વિચર! આગળ અને આગળ વધ્યે જા! પાછો ન હઠ! કોઈનું અકલ્યાણ ચિંતવવામાં કે કોઈનું બગાડવામાં ન પડ! એમ કલ્યાણમાર્ગે ચાલતાં અને ઝૂઝતાં મરી જઈશ, બચાઈ જઈશ તો યે શું? તેથી તો તને [illegible] ઉગ્ર અભિલાષા જ મળવાની છે, કેમકે કલ્યાણકારી સદ્‌ગતિ જ પામે છે. તે દુર્ગતિ કદીયે પામતો નથી. [illegible] કલ્યાણમય [illegible] કરતાં [illegible] આ જન્મે જ [illegible] તો તું [illegible] [illegible]."

લગીના કોઈ પણ આચાર્યે અર્પ્યો ન હતો. આવી તો ગાંધીજીની અનેક સિદ્ધિઓ છે એવી સિદ્ધિવાળો માનવ સામાન્ય નથી, એ મહામાનવ છે, કેમકે એનું જીવન મહત્ છે અને તેથી જ એનું મૃત્યુ પણ મહત્ છે, કેમકે તે મૃત્યુંજય છે. કેમકે તેની સામે મૃત્યુ જ મરી જાય છે અને તે સમગ્ર માનવ-જાતિની ચેતનાના ઊંડામાં ઊંડા સ્તરમાં પ્રવેશ કરી ચેતનાની સપાટીને જ ઊંચે આણે છે

—પ્રબુદ્ધ જૈન, ૧ માર્ચ ૧૯૪૮.

વિભૂતિ વિનોબા

[૫]

પરિવ્રાજક, જૈન અને બૌદ્ધ એ ત્રણ જીવિત મુખ્ય પરંપરાઓમાં ભારતની બધી જ ત્યાગલક્ષી પરંપરાઓનો સમાવેશ થઈ જાય છે. તૃષ્ણા, પરિગ્રહ કે સંચયવૃત્તિના ત્યાગને એ બધી પરંપરાઓએ જુદી જુદી શૈલીમાં પણ એકસરખી રીતે મહત્ત્વ આપ્યું છે.

પરિવ્રાજકપણું સ્વીકારી વનમાં જવા ઇચ્છતા ઋષિ યાજ્ઞવલ્કયની એક પત્ની મૈત્રેયીના જે ઉદ્ગારો બૃહદારણ્યક ઉપનિષદમાં નોંધાયેલા છે તે સમગ્ર પરિવ્રાજક-પરંપરાના વિચારનો એક પડઘો માત્ર છે. યાજ્ઞવલ્કયે મૈત્રેયીને કહ્યું કે 'તને અને કાત્યાયનીને સંપત્તિ વહેંચી આપી હું એનો નિકાલ કરવા ઇચ્છું છું.' મૈત્રેયીએ પતિને જવાબમાં કહ્યું કે 'સુવર્ણથી પરિપૂર્ણ પૃથ્વી મળે તો શું હું તેથી અમર થાઉં ખરી?' યાજ્ઞવલ્કયે જવાબમાં જણાવ્યું છે કે 'એથી તો તારું જીવન એવું જ રહેવાનું જેવું કે સાધનસામગ્રીમાં રચ્યાપચ્યા રહેનાર ઇતર લોકોનું જીવન છે. સંપત્તિથી અમૃતત્વની આશા નકામી છે,' ઇત્યાદિ

જીવનમાં કોઈ મૂલ્ય જ નથી, અથવા એ માત્ર સ્વાપ્નિક છાયા છે. પણ એનો અર્થ, જે આખા ઇતિહાસકાળમાં સિદ્ધ થયો તે તો, એ છે કે પાર્થિવ સંપત્તિ એ માત્ર સાધન છે. એને જ જીવનસર્વસ્વ માની જે પોતાની જાતને ભૂલી જાય છે તે સ્વત સિદ્ધ અમરપણાને વીસરી વિનાશી અને મર્ત્ય વસ્તુને અમર માની પોતે દુ ખી થાય છે ને બીજાને દુ ખ ઉપજાવવામાં નિમિત્ત પણ બને છે. બુદ્ધે તૃષ્ણાત્યાગની વાત કહી, અગાર (ઘર) છોડી અનગાર બનવાની હાકલ કરી ત્યારે એ ઘર, બાહ્ય વસ્તુ, કુટુંબ અને સમાજ એ બધાનુ મૂલ્ય નથી જ આંકતા એમ માનવુ તે બુદ્ધને પોતાને અને તેમના ધર્મને અન્યાય કરવા બરાબર છે. બુદ્ધનુ તાત્પર્ય એટલુ જ છે કે અંગત સુખની લાલસામાં ઇતરના સુખદુ.ખની પરવા જ ન કરવી અને અંગત મમતા પોષવી એ વ્યક્તિ તેમ જ સમાજ માટે બંધનરૂપ છે. મહાવીરે પરિગ્રહત્યાગની વાત કહી ત્યારે પણ તેઓ એટલુ તો જાણે જ છે કે વૈયક્તિક અને સામૂહિક જીવનમા ધનધાન્ય જેવી બાહ્ય વસ્તુઓનુ પણ સ્થાન છે જ. તેમ છતા જ્યારે તેઓ સુદ્ધા અનગારપદની વાત કરે છે ત્યારે કોઈ પણ જાતના અંગત પરિગ્રહમા બંધાવાનો જ નિષેધ કરે છે સાચો ત્યાગી અને સાચો વિચારક હોય તે એટલુ તો જાણે જ કે કોઈ પણ વ્યક્તિનું જીવન ભોજન, આશ્રય અને બીજી એવી જરૂરી વસ્તુઓ વિના કદી ચાલી શકે જ નહિ. એટલુ જ નહિ પણ સ્થૂળ અને જડ કહેવાતી બાહ્ય સામગ્રીની ઉચિત મદદ વિના જીવનનું ઊર્ધ્વીકરણ પણ શક્ય નથી. આ રીતે જોતાં બધી જ પરંપરાના મુખ્ય પ્રવર્તકોનો સૂર મમતાત્યાગનો છે, એટલે કે અંગત અને વૈયક્તિક મર્યાદિત મમતાને વિસ્તારી એ મમતાને સાર્વજનિક કરવાનો છે. સાર્વજનિક મમતા એટલે બીજા સાથે અભેદ સાધવો કે આત્મૌપમ્ય સાધવું તે એનું જ બીજું નામ સમતા છે. મમતા અનુચિત મટી વ્યાપક બને ત્યારે જ તે સમતારૂપે ઓળખાય છે. બન્નેના મૂળમાં [illegible] છે. [illegible] સંકીર્ણ અને સંકુચિત હોય ત્યારે તે [illegible] તે મમતા. [illegible]

અપાય છે એવો યજ્ઞ રઘુને હાથે કરાવ્યો અને માત્ર માટીનું પાત્ર જ હાથમાં બાકી રહ્યું હોય એવા રઘુને રઘુવંશમાં વર્ણવી ગુપ્તકાલીન દાન-દક્ષિણા ધર્મનું મહત્ત્વ સૂચવ્યું. હર્ષવર્ધને તો એકત્ર થયેલ ખજાનાને દર ત્રણ વર્ષે દાનમાં ખાલી કરી કર્ણનું દાનેશ્વરીપણું દર્શાવી આપ્યું. દરેક ધર્મ-પંથના મઠો, વિહારો, મંદિરો અને વિદ્યાધામો જ નહિ પણ સેંકડો હજારો અને લાખોની સંખ્યામાં અગાર છોડી અનગાર થયેલ ભિક્ષુ કે પરિવ્રાજકોની સંપૂર્ણ જીવનયાત્રા એ બધું પરિગ્રહત્યાગ અને દાનધર્મને જ આભારી રહ્યું છે. તેની સાક્ષીરૂપે અનેક દાનપત્રો, અનેક પ્રશસ્તિઓ આપણી સામે છે.

જે મઠો, વિહારો, મંદિરો અને ધર્મસંઘો પરિગ્રહત્યાગની ભાવનામાંથી જ અસ્તિત્વમાં આવ્યાં હતાં અને જે દાનદક્ષિણાને લીધે જ પોષાયે જતાં હતાં તેઓ દાનદક્ષિણા દ્વારા મેળવેલ અને બીજી અનેક રીતે વધારેલ પૂંજી અને પરિગ્રહની માલિકી ધરાવવા છતાં સમાજમાં ત્યાગીની પ્રતિષ્ઠા પામતાં રહ્યાં અને સાથે સાથે ઉત્પાદક શ્રમનું સાર્વજનિક મૂલ્ય સમજવાની બુદ્ધિ ગુમાવવાને લીધે એક રીતે અકર્મણ્ય જેવા બનતા ચાલ્યાં. બીજી બાજુ સાચી-ખોટી ગમે તે રીતે ધનસંપત્તિ કે ભૂમિસંપત્તિ મેળવનાર વ્યક્તિઓ પણ, દાનદક્ષિણા દ્વારા પોતાના પાપનું પ્રક્ષાલન થાય છે એમ માની દાનદક્ષિણા આપતા ગયા અને સમાજમાં વિશેષ અને વિશેષ પ્રતિષ્ઠા પામતા પણ રહ્યા. આમ સમાજમાં પ્રતિષ્ઠા પામનાર મુખ્યપણે બે વર્ગ અસ્તિત્વમાં આવ્યા. એક ગમે તેટલું અને ગમે તે રીતે અપાયેલું દાન લેનાર, એનો સંગ્રહ અને વધારો કરનાર છતાં ત્યાગી મનાતો બ્રાહ્મણ-શ્રમણવર્ગ અને બીજો ન્યાયઅન્યાય ગમે તે રીતે મેળવેલ સંપત્તિનું દાન કરનાર ભોગી વર્ગ. આ બે વર્ગ વચ્ચે એક ત્રીજો વર્ગ પણ હતો કે જેના આધારે ઉપરના બન્ને વર્ગોનું અસ્તિત્વ હોવા છતાં સમાજમાં જેનું આત્મિક ગૌરવ લેખાતું નહિ. તે વર્ગ એટલે નહિ કોઈના દાન ઉપર નભનાર કે નહિ કોઈ દાન-દક્ષિણા દ્વારા નામના મેળવનાર, પણ માત્ર હાડમહેનત ઉપર નભનાર વર્ગ.

સ્થાપના માટે સબળ વિચારો રજૂ કર્યા. દક્ષિણ અને ઉત્તર હિન્દુસ્તાનમાં થયેલ અનેક સંતોએ એ વિચારનું પોષણ પણ કર્યું. જ્યાં ત્યાં એની સારી અસર પણ થઈ. પરન્તુ એ અસર છેવટે ન તો સ્થાયી બની અને ન તો સર્વદેશીય તેથી કરીને સમાજમાં છેવટે રાજસત્તા અને ધનસંપત્તિનો મહિમા, દાન અને ત્યાગનો મહિમા એ જેવા ને તેવા ચાલુ જ રહ્યા અને સાથે સાથે ગરીબી તેમ જ જાતમહેનત પ્રત્યેની સૂગ પણ ચાલુ રહી.

ઊંચ–નીચના ભેદની, સંપત્તિ અને ગરીબીની, નિરક્ષરતા અને સાક્ષરતાની, તેમ જ શાસક અને શાસિતની, એમ અનેકવિધ વધતી જતી વિષમતાને લીધે દેશનું સામૂહિક બળ ક્ષીણ જેવું થયું અને અંતે વિદેશી રાજ્ય પણ આવ્યું. એણે પહેલાની વિષમતામાં અનેક નવી વિષમતાઓ અને સમસ્યાઓ ઉમેરી. ચોમેરથી પ્રજા ત્રાહિ ત્રાહિ પોકારવા લાગી. કવિઓ ઇશ્વરનું આહ્‌વાહન કરવા લાગ્યા. જ્યારે આ વિષમતા નિવારવાનું કામ શસ્ત્રબળ અને શાસ્ત્રબળ બન્ને માટે અસાધ્ય જેવું દેખાતું હતું ત્યારે પાછો એ જ જૂનો અપરિગ્રહ અને અહિંસાનો માર્ગ એક વિશિષ્ટ વ્યક્તિને સૂઝ્યો

અહિંસા અને અપરિગ્રહની અધૂરી તેમ જ અવિવેકી સમજણથી જે અનિષ્ટ પરિણામો માનવજાતે અનુભવ્યા છે, તેમ જ રંગભેદ, આર્થિક અસમાનતા અને જાતિ કે રાષ્ટ્રના મિથ્યા અભિમાનને લીધે પેદા થયેલાં જે દુઃસહ અનિષ્ટો માનવજાત ભોગવી રહી છે તે બધાનો સામટો વિચાર કરી તે વિચારના પ્રકાશમા બધા જ અનિષ્ટોના ઉપાય લેખે એ વિશિષ્ટ વ્યક્તિએ અહિંસા અને અપરિગ્રહનું મૂલ્ય આંક્યું ને તેમાંથી જ માનવ-જાતના ઉદ્ધારનો કે સર્વાંગીણ સમતા સ્થાપનાનો માર્ગ જોયો. [illegible] સઘળા અનિષ્ટો નિવારવાનો આ નવો માર્ગ હતો [illegible] શરૂઆતના એના ઉપર ભાગે જ [illegible] એ અહિંસા અને અપરિગ્રહના [illegible] આચરણમાં જ [illegible] બતાવ્યો [illegible] આસપાસ એક નવ [illegible]

હતો અને જે માત્ર નિવૃત્તિની એક જ ખુટ્ટી બાજુને રજૂ કરતો હતો તે ધર્મે અસહકારની નિવૃત્તિ બાજુ અને સત્યાગ્રહની પ્રવૃત્તિ બાજુ—બન્ને બાજુ સ્પષ્ટ સમજાય તે રીતે અને સર્વક્ષેત્રે લાગુ કરી શકાય એ રીતે રજૂ કરી. પ્રજાને, દરેક બાબતમાં દબાયેલી અને લાચાર પ્રજાને, શસ્ત્ર અને શાસ્ત્ર વિના પણ પોતાની જ પાસે રહેલું પણ આજ સુધી અજ્ઞાત એવું એક સહજ અમોઘ બળ લાધ્યું પ્રજા જાગી અને કલ્પનામાં ન આવે એ રીતે એ નવા અમોઘ બળે સ્વરાજ્ય મેળવી આપ્યું. જે શસ્ત્ર રાજકીય વિજય અને રાજકારણમાં સફળતા આણનાર સિદ્ધ થાય છે તે શસ્ત્ર ઇતિહાસ-કાળથી સર્વોપરી મનાતું આવ્યું છે. અત્યાર અગાઉ શસ્ત્રબળ અને કાવાદાવાના શસ્ત્રબળને એવી પ્રતિષ્ઠા મળેલી જ્યારે આ નવા ઋષિએ એ પ્રતિષ્ઠા અહિંસા અને અપરિગ્રહના નવા શાસ્ત્રને આપી અને એક રીતે એ પ્રતિષ્ઠા માત્ર ભારતમાં નહિ પણ દેશદેશાન્તરમા વિસ્તરવા લાગી.

ગાંધીજીએ રાજકારણ ઉપરાંત જીવનનાં લગભગ તમામ ક્ષેત્રોમા પોતાના એ આધ્યાત્મિક બળનો પ્રયોગ કર્યો અને એનાં મધુર ફળો સમજદાર લોકોની સામે જોતજોતામા આવ્યાં સામાજિક જીવનના ખૂણેખૂણામાં સમતા સ્થાપી વિષમતા નિવારવાનો કાયાકલ્પ પૂરજોશમા ચાલતો જ હતો અને લોકો પણ એને સાથ આપતા હતા, ત્યાં તો ગાંધીજીએ વિદાય લીધી. જેઓ પાછળ રહ્યા અને જેઓ તેમના સાથી હતા અને છે તેમને એ આધ્યાત્મિક બળ વિષે શ્રદ્ધા નથી એમ તો ન કહી શકાય, પણ તે શ્રદ્ધા કંઈક બહારથી આવેલી અને કંઈક અંદરથી ઊગેલી. એટલે એને સંપૂર્ણ જીવની એમ તો ભાગ્યે જ કહી શકાય. તેમ છતા સ્વરાજ્ય મળ્યા પછી રાજ્યતંત્ર તો એ શ્રદ્ધાના પાયા ઉપર જ ચાલતું આવ્યું છે

રહ્યો હતો કે જે તેના અહિંસક સંસ્કારને અનુરૂપ અને ગાંધીજીએ તૈયાર કરેલ ભૂમિકાને જ અનુસરી આર્થિક સમાનતાનો પ્રશ્ન ઉકેલે. એ ઝંખનાનો જવાબ ગાંધીજીના જ અનુગામી વર્તુળમાંથી એવી વ્યક્તિએ વાળ્યો કે જેણે આખી જિંદગી ધર્મ તેમ જ કર્મનો સુમેળ સાધવામા અને શાસ્ત્રીય જ્ઞાનરાશિને પ્રજ્ઞાનરૂપે પરિણમાવવામાં ગાળી છે. તે વ્યક્તિ બીજી કોઈ નહિ પણ જેના ઉપર આખા દેશની અને કેટલેક અંશે દેશાન્તરની પણ નજર ચોંટી છે તે વિભૂતિ વિનોબા.

વિનોબાએ જોયું કે પરંપરાગત સામંતો અને રાજાઓ ગયા પણ મૂડીવાદને પરિણામે દેશમાં અનેક નવા રાજાઓ અસ્તિત્વમા આવ્યા છે અને આવ્યે જાય છે વિનોબાએ એ પણ જોયુ કે લોકતંત્ર સ્થપાયા જ્યાં એમાં જૂની જ અધિકારશાહી અને અમલદારશાહી કામ કરી રહી છે. તેમાં સેવાનુ સ્થાન સત્તાની હરીફાઈએ લીધું છે એમણે એ પણ જોયુ કે ભિન્નભિન્ન રાજકારણી પક્ષોમાં પુરાઈ રહેલો, બુદ્ધિમાન વર્ગ પણ પોતપોતાના પક્ષની નબળાઈ અને અકર્મણ્યતા જોવા કરતા સામા પક્ષની ત્રુટિઓ તરફ જ વધારે ધ્યાન આપે છે. અને પરિણામે એ પક્ષોની સાઠમારીમા જનતાનુ હિત બહુ ઓછુ સધાય છે તેમ જ કાંઈક સારું કરવાની વૃત્તિવાળા એવા બુદ્ધિમાન લોકોની શક્તિનો પ્રજાના ઉત્કર્ષમા બહુ ઓછો ઉપયોગ થાય છે વિનોબાની પ્રજ્ઞાએ અર્થોપાર્જન અને અર્થરક્ષણના જુદા જુદા માર્ગોમાં પ્રવર્તતી અન્યાયપૂર્ણ તેમ જ અસામાજિક ગેર-રીતિઓનું પણ આકલન કર્યું. એમણે એ જોઈ લીધુ કે તત્કાળ વિધાયક અહિંસાને અને લોકોની બુદ્ધિ વાળવામા નહિ આવે તો અત્યારલગી થયેલું બધુ કામ ધૂળધાણી થઈ જશે અને લોકો હિંસા ભણી વળશે આ મથામણમાંથી તેમને ભૂમિદાનનો માર્ગ લાધ્યો જોતજોતામાં એમને જેટલી સફળતા મળી અને જેટલી મળી રહી છે તે ઉપરથી જ આપણે તે માર્ગનું મૂલ્ય આંકી શકીએ [illegible] રાષ્ટ્રપતિ હોય કે મહામાત્ય હોય, ઉપરાષ્ટ્રપતિ હોય કે ગવર્નર હોય દરેક આ ભૂદાન-પ્રવૃત્તિને જીવનનાં નવા મૂલ્યો સ્થાપનાર પ્રવૃત્તિ લેખે. [illegible] એ નાનીસૂની બાબત નથી. વિનોબાજીની પ્રવૃત્તિ [illegible] ભૂમિના દાનમા જ નથી સમાતી. એ તો સામાજિક, આર્થિક અને રાજકીય એમ બધા ક્ષેત્રે માનવીય સમતા સ્થાપવાના [illegible] પ્રવૃત્તિનો આત્મા વિનોબાજી પોતે જ [illegible] બુદ્ધિનું દાન, શ્રમદાન અને જીવનનું દાન [illegible] જીવંત મૂર્તિ પોતે [illegible] જ છે.

ગાંધીજીએ અહિંસાની સર્વાંગીણતાનું જે દર્શન અને આચરણ કર્યું હતુ તેનો જ વિકાસ અને વિસ્તાર વિનોબાજીના યજ્ઞમાર્ગ દ્વારા થઈ રહ્યો છે, એવી મારી દૃઢ પ્રતીતિ છે. તેથી જ તો વિનોબા કોઈ આ કે તે પક્ષના વાડામા પુરાઈ શકતા નથી, સમાતા નથી. ઊલટું, એમની પ્રવૃત્તિ બધા જ પક્ષોના અવરોધનો દૃઢ પાયો નાખી રહી છે. ભૂમિદાન પ્રવૃત્તિ પક્ષાતીત પણ સર્વપક્ષસગ્રાહી હોઈ, સાચી સમજણ ધરાવનાર સેવાકાંક્ષી વર્ગ તેમને સાથ આપવા ચોમેરથી એકત્ર થઈ રહ્યો છે.

જ્યાં તથાગત બુદ્ધે બોધિ પ્રાપ્ત કરેલ ત્યાં જ જીવનદાનના પીંપળાનું બીજ રોપાયુ છે. એની શાખા–પ્રશાખાઓ બોધિવૃક્ષની શાખા–પ્રશાખાઓની પેઠે જ જગ્યાએ જગ્યાએ વિસ્તરવાની એમાં લેશ પણ સદેહ નથી. જે ઉત્તર બિહારમાં અહિંસામૂર્તિ મહાવીરે જન્મ લીધેલો અને જ્યાં તથાગત બુદ્ધનાં પગલાં પડેલા ત્યાનો વિનોબાજીનો વિહાર એ અત્યારના જલસંકટ પ્રસગે એક આશીર્વાદરૂપ છે ગાધીજીએ વિચારેલ અને શરૂ કરેલ અનેક પ્રવૃત્તિઓમાથી કોઈ એક યા બીજી પ્રવૃત્તિને વરેલા પણ માત્ર તેને જ સર્વસ્વ માની બેઠેલા હરકોઈ સેવકને માટે વિનોબાજીનું જીવન બોધપ્રદ નીવડે તેવુ છે તેથી તેમની જન્મજયતી પ્રસગે આપણે સૌ તેમનાં વિવિધ લખાણો, વિવિધ પ્રવૃત્તિઓ,—એ બધાનું આકલન કરીએ અને તેઓ શતાયુ થાઓ એવી હાર્દિક પ્રાર્થના કરીએ।

—પ્રબુદ્ધ જીવન, ૧૫ સપ્ટેંબર ૧૯૫૪

આજનો યથાર્થ માર્ગ : ભૂદાન

[૬]

એક વાત મારે સ્પષ્ટ કહેવી જોઈએ કે સામુદાયિક પદયાત્રાના મૂળમાં વિનોબાજી છે. હુ તેમને કઈ રીતે જોઉં છુ તે તમને કહુ.

મારો વ્યવસાય અભ્યાસ, ચિંતન અને પરિશીલન છે. તમે જેમ પ્રત્યક્ષ કાર્ય કરો છો તેમ હું નથી કરી શકતો, છતાં અભ્યાસ મારફતે હુ વિનોબાજીને જાણું છુ તેમના પ્રત્યે મારી જે શ્રદ્ધા છે તે જાગરૂક શ્રદ્ધા છે. હુ ઘણીવાર જોઉ છુ કે ગાંધીજી પછી એવી કઈ વ્યક્તિ છે કે જેને દેશની આટલી બધી પડી હોય? જવાહરલાલજી ઘણા ઉજાગરા કરે છે, એરોપ્લેનમાં દોડાદોડ કરે છે, ખૂબ મહેનત કરે છે તે વાત સાચી છે પણ ગાંધીજીની કાર્ય-પદ્ધતિનો જો કોઈએ યોગ્ય વિકાસ કર્યો હોય તો તે વિનોબાજીએ—અને તે પણ કોઇ મોટી સંસ્થાની કે મોટા માણસની મદદ વગર ગાંધીજીની પ્રણાલી એવી હતી કે તેઓ નાનામા નાની બાબત તરફ બહુ ધ્યાન આપતા. અલબત્ત, મોટામા મોટી યોજનાઓ પણ થતી, પરંતુ ઝીણામાં ઝીણી બાબતોનેય તેઓ ખૂબ ઊંડાણથી જોતા આથી તેમની આસપાસ મોટું મંડળ એકઠું થતુ.

સાધનામૂર્તિ

વિનોબાજીની વાત આજ સાંભળવી પડે છે. વિનોબાજીને એક વ્યક્તિ તરીકે નહીં પણ એક સાધનામૂર્તિ તરીકે જોતાં તેમની પ્રવૃત્તિ તરફ માત્ર શ્રદ્ધા જ નહીં પણ 'જાગરૂક શ્રદ્ધા' પેદા થાય છે. એ દૃષ્ટિએ માત્ર શાસ્ત્ર-પરિશીલન પૂરતુ નથી. જ્ઞાન જ્યાં સુધી કાર્યમાં પર્યવસાન પામે નહીં ત્યાં સુધી તે ઉપયોગી નહીં થાય.

ભૂદાનનો વિચાર

હું જ્યારે વિચારું છું, ત્યારે મને લાગે છે કે, કામ તો આ દેશમાં ઘણાં ચાલે છે, પરંતુ તે બધાંમાં કંઈક ને કંઈક ખામી હોય છે જેને જનતાનું કામ કરવુ છે, ગરીબોનાં દુ:ખો નિવારવાં છે, તેને માટે આજે પક્ષો ઊભા કરવામાં આવે છે. પક્ષો ઊભા થાય તેનો પણ વાંધો નથી, પરંતુ જે ભૂમિકા પર પક્ષો છે તેમાં એક બીજા માટે આદર નથી. તમે જુદી જુદી ટુકડીઓમાં (પદયાત્રામાં) જાઓ છો તેથી કાંઈ જુદા પડતા નથી. એક બીજા પ્રત્યે આદર, સદ્ભાવ ને પ્રેમ રહે છે. પક્ષોમાં એવું નથી બનતું. બધા નામ તો દેશહિતનું, ગાંધીજીનું લે છે, પણ તે બધામાં અંદર અંદર એક સ્પર્ધા ચાલી રહી છે 'કયા મુદ્દા પર ચૂંટણી લડવી' તે કરતાં 'સામા પક્ષને કેમ ઉતારી પાડવો, ચક્રવર્તી વ્યાજ સાથે દોષો કેમ જણાવવા,' એવુ જોવાય છે. અમદાવાદમાં કે દેશના કોઈ પણ ભાગમાં, બીજાના દોષદર્શન, નિંદા અને પોતાની ત્રૂટિઓ નહીં જોવાની વૃત્તિ-આટલું બધે દેખાય છે. વિનોબાજી આની વચ્ચે એક નવું માર્ગદર્શન આજે આપી રહ્યા છે. દેશના વિકાસ માટે રસ્તાઓ બાંધવા જોઈએ તે કબૂલ, ગામની સ્વચ્છતા રાખવી જોઈએ તે કબૂલ, કચરો સાફ કરવો જોઈએ તે કબૂલ, પણ દેશમા જેઓ કામ કરે છે તેમનામાં જે કચરો છે તે કોણ સાફ કરે? બધાના મનનો મેલ કોણ કાઢે? અશોક મહેતા ગમે તેવું સારું ભાષણ આપે પણ તે બોલે તેથી બીજાના મનનો મેલ નહીં નીકળે. કૃપાલાનીજી જેવા મોટા વિચારક પણ બોલે તેથી કોઈના મનનો મેલ નહીં નીકળી શકે. પણ જેના મનમા કોઈને માટે મેલ નથી, જેને સૌ સરખા છે, જેને કોઈ માટે પણ પૂર્વગ્રહ નથી, એવી વ્યક્તિ વિનોબાજી છે તેથી જ સૌના મનનો મેલ કાઢી શકશે. એમને કોઈની પડી નથી: કોંગ્રેસની, સમાજવાદની કે સામ્યવાદની. એમને બાપુના પડી છે, બીજા કોઈની નથી પડી. આજે [illegible] કામ કરે ત્યારે એમને જોઈતું [illegible] [illegible]

વૃત્તિ વધુ છે તે પ્રજ્ઞાવાન છે. દેશમાં જેટલા સંતો થયા તેમનાં જીવન વિનોબાજીએ વાંચ્યાં, વિચાર્યાં અને અનુભવ્યાં. એ જ તેમની પ્રજ્ઞા છે. અને એ પ્રજ્ઞામાંથી ભૂદાનનો વિચાર આવ્યો છે.

અહીં જે બહેનોએ પોતાના અનુભવોની વાતો કરી તે બહુ સહજ, સુસ્થિત અને હૃદયસ્પર્શી હતી યુનિવર્સિટીઓની વક્તૃત્વ–સ્પર્ધાઓમાં જેઓ ભાગ લે છે તેમાં પણ આવી સહજતા નથી આવતી. એ ક્યાંથી આવે છે? માણસ કામ કરવા જાય છે, બુદ્ધિ અને મન જાગૃત રાખે છે, તો આપોઆપ જ એ ઝરો પ્રગટે છે. ગાંધીજીએ સ્ત્રીશક્તિ જાગૃત કરી તે પછી બહેનોમા ધારાસભા વગેરેમાં જવાની પ્રવૃત્તિ વધી વિનોબાજીએ પાછો જુદો રસ્તો લીધો. તેમા બહેનો આજે આગળ આવી રહી છે

ભૂદાન શું છે?

તમને આ કામ કરવાની જે તક મળી છે, તેથી ગાંધીજીના રસ્તે ચાલવાનો અવસર પ્રાપ્ત થયો છે આથી ચડિયાતો આનંદ કદાચ બીજો ન હોઈ શકે. વિનોબાજી કહે છે કે, 'હું બુદ્ધને ખભે ચડ્યો છું' તેમા કેટલી નમ્રતા છે! જૂના વખતમા છોકરાઓ ભવાઈ અને રામલીલા જોવા જતા ત્યારે તેઓ તે જોઈ ન શકે માટે વડીલો તેમને પોતાના ખભા પર બેસાડતા. ખભે ચડવાથી બાળક બાપ કરતા ઊંચે જાય છે અને તે બાપના આધારે. તેમ જૂનાના આધારે વિનોબાજી ભૂતકાળમા જે કાંઈ થયું છે તેના કરતાં ઊંચી ભૂમિકાએ કામ કરી રહ્યા છે—પણ તે પોતાની દૃષ્ટિએ

મહેનત કરે તો પાકે. ભૂમિ જેના હાથમાં હશે તેને તે ભારરૂપ થશે, સિવાય કે તેનો તે ઉપયોગ કરે! ભૂમિ એ નક્કર વસ્તુ છે. તેની સાથે સંપત્તિનો, બુદ્ધિનો ઉપયોગ હોય. બુદ્ધિ એટલે શું? બુદ્ધિ એટલે સમજણ તેનો ઉપયોગ કરો તો જ કંઈક નિર્માણ થાય દાનનો અર્થ વિનોબાજીએ સ્પષ્ટ કર્યો છે 'દાન એટલે એક આપે અને બીજો લે એમ નહીં પણ સમાનપણે જીવવાનો અધિકાર મેળવવો તે.'

દુનિયાના કોઈ દેશમાં કોઈને આ વિચાર સૂઝયો છે? ત્યા તો હુસાતુસી ચાલે છે. સુએઝનો પ્રશ્ન આવ્યો અને તરત જ યુદ્ધની તૈયારી થઈ અને ખંજર ખખડવા માંડયાં!

દેશમાં જાગૃતિ

હિંદુસ્તાનમાં હવે ગરીબી અને અમીરી સાથે સાથે નહીં ચાલી શકે. જેમ જેમ ગરીબો, આદિવાસીઓ, ભીલો વગેરે જાગતા જશે તેમ તેમ ક્રાંતિ ઝડપી બનશે જ્યા જ્યા ગરીબી વધારે છે ત્યાં ત્યાં જાગૃતિ વધુ આવશે તે જાગૃતિને યોગ્ય રસ્તે વાળવાનો ભૂદાન એક માર્ગ છે. તેમાં ગરીબીની વહેંચણી નથી થતી, પણ બીજાના દુ:ખના ભાગીદાર થવાનો અવસર પ્રાપ્ત થાય છે. ગરીબ માણસમાં ઘણી વાર સાત્વિક મન હોય છે. તેના પર ભાર પડે છે, એ રીતે નહી પણ સહજ રીતે ભૂદાનની આ વાત તેમને સમજાવવી જોઈએ તેઓ બીજા ગરીબોની સ્થિતિ જાણે છે એટલે તેઓ સાચી રીતનું દાન આપે છે ગાંધીજી કહેતા કે, 'કરોડપતિના દાન કરતા મારે મન ગરીબની કોડીનું દાન મોટું છે' રવિશંકર મહારાજ ઘણી વાર કહે છે, 'જ્યારે ગરીબોના દાનની નદીઓ વહેશે ત્યારે પૈસાદારરૂપી બેખડો તો આપોઆપ ફસાઈ પડશે'

લોકોનાં મનમાં વિચાર થઈ રહ્યો છે કે, આપણે દાન ક્યાં કરવું? આપણે જોયું કે માણસો જીવતા રહે ત્યાં! પાંજરાપોળ તો ઘણી છે પણ માણસપોળો ક્યાં? આનો અર્થ એમ નથી કે પશુપક્ષીઓ પર દયા ન રાખવી. આજે પ્રથમ માણસનો પ્રશ્ન આવે છે. પહેલાં યજ્ઞોમાં ઘી હોમાતાં, આર્યસમાજીઓએ યજ્ઞોને બદલે હવનમાં ઘી હોમાવાં શરૂ કર્યાં. [illegible] 'યજ્ઞમાં ને હવનમાં ઘી હોમાય છે [illegible] ઘી [illegible] તેમ કરવું જોઈએ' [illegible]

સામુદાયિક પદયાત્રાના કારણે તમારામાં ઘણી નિર્ભયતા આવશે. અનુભવો થશે, લોકોનો સંપર્ક થશે. લોકોને ઉપયોગી થવા માટે ભૂદાનના કાર્યકર્તાઓને ખેતી, આરોગ્ય, અર્થકારણ વગેરે બીજા ઘણા વિષયોનો અભ્યાસ હોવો જરૂરી છે. તેથી કામ સારી રીતે થશે

અનુભવોથી વધુ જ્ઞાન મળે છે

આજે તમે પદયાત્રાના ભાઈ-બહેનોએ પોતપોતાના જે અનુભવો કહ્યા તે જોતાં એમ લાગે છે કે, કંઈક અદ્‌ભુત થઈ રહ્યું છે. જૂના વખતમાં પરિવ્રાજકો હતા તે વખતોવખત વિચારની આપ-લે કરતા. બૌદ્ધ, જૈન, સાંખ્ય વગેરેમાં આવા પરિવ્રાજકોની પરંપરા હતી એક આચાર્યની નીચે થોડા ભિક્ષુકો રહેતા હતા પણ જ્યારે આચાર્યમા શિથિલતા આવતી ત્યારે એ સંઘો તેજહીન થતા. આ પણ એક નવો સંઘ છે. આમા વિશેષતા એ છે કે દરેક યાત્રી-ટુકડી પદયાત્રા કરીને પાછી આવે છે, પોતાના અનુભવો કહે છે અને વિચારોની આપ-લે કરે છે મને લાગે છે કે સેંકડો પુસ્તકો વાંચવા કરતાં આવા અનુભવો તમે કહો છો તેમ વધુ જ્ઞાન આપે છે. પુસ્તકોમા તો ઘણા ભાગે કલ્પનાઓ હોય છે.

જે ધર્મવિચાર આજે ચાલી રહ્યો છે તેની અથડામણ જૂના વિચારો સાથે થશે. કોઈ દિવસ એવું નથી થયું કે જૂના વિચારોએ લડાઈ ન કરી હોય! તેમ તમારે પણ લડાઈ કરવી પડશે. વખત આવ્યે સરકારનો પણ વિરોધ કરવો પડશે

ભાવના પ્રમાણે વર્તો નહીં, તો સ્વરાજ ક્યાંથી થાય?' વિનોબાજીએ ૧૯૫૭ સુધીનું કહ્યું તેની પાછળ આવી ભાવના છે. વિનોબાજીએ બી વાવેલ છે તે નક્કર છે. આપણે (આપણા કાર્યરૂપી ક્ષેત્રમાં) ભૂમિ બરોબર છે, બીજ બરોબર છે—એ બધું જોવુ રહ્યુ. આ પાક તો પૂરો થતો નથી. પાચ વર્ષ પછી પણ નવા પ્રશ્નો હશે. અત્યારનુ કરેલુ ત્યારે ઓછુ લાગશે. બધે ચાલી રહેલી ખેંચતાણમાંથી આવો કોઈ નવો માર્ગ કાઢ્યા વગર ગતિ જ નથી. નહીંતર તો નેતાઓ બુદ્ધિનો યોગ્ય ઉપયોગ ભૂલશે બુદ્ધિ આજે ગમે એમ વેડફાઈ રહી છે. વિનોબાજીએ તો બુદ્ધિ, શક્તિ વગેરે બધા માટે એક ચાવી શોધી છે તેને આ રીતે જેટલા અંશે કોઈ કામમા લેશે તેટલે અંશે સાર્થક થશે.

—પ્રસ્થાન, કારતક ૨૦૧૩.

ક્રાન્તપ્રજ્ઞ શ્રી કિશોરલાલભાઈ

[૭]

કિશોરલાલભાઈએ પોતે જ પ્રસંગે પ્રસંગે પોતા વિશે થોડુંક લખેલુ છે. તેમના પરિચય માટે જો કે એ પૂરતું નથી, તોપણ તે તેમની વિશિષ્ટ ઝાંખી કરાવે છે. 'કેળવણીના પાયા'ની પ્રસ્તાવનામાં શિક્ષણ અને કેળવણીનો ભેદ દર્શાવતા તેમણે પોતાની ધર્મ્યજીવનાભિમુખ દૃષ્ટિની ઝાંખી કરાવી છે 'સ્વામી સહજાનંદ'મા તેમની અસાંપ્રદાયિક ધર્મવૃત્તિની ઝાંખી થાય છે 'સ્ત્રી–પુરુષ–મર્યાદા'મા તેમના સહજસિદ્ધ સંસ્કારોનો પરિચય થાય છે શ્રી ચંદ્રશંકર શુક્લે 'પ્યારા બાપુ'મા તેમનો પરિચય આપવા થોડો પ્રયત્ન કર્યો છે. પણ થોડા શબ્દોમા છતા સમર્થ રીતે તેમનો વ્યાપક પરિચય તો બાપુજીએ જ આપ્યો છે. ૧૯૪૦ના માર્ચની ૩૦ તારીખના 'હરિજનબંધુ'મા 'સાચું પગલુ' એ મથાળા નીચે બાપુજીએ જે લખ્યુ છે તે અહીં તેમના જ શબ્દોમા આપણે સાભળીએ

'કિશોરલાલ મશરૂવાળા આપણા વિરલ કાર્યકરોમાના એક છે. એ અવિશ્રાન્ત પરિશ્રમ કરનારા છે એમની ધર્મબુદ્ધિ કોઈ વાર પજવણી કરે એટલી હદ સુધીની છે. ઝીણામા ઝીણી વિગત પણ એમની નજર બહાર જતી નથી તેઓ તત્ત્વદર્શી ફિલસૂફ અને ગુજરાતીમા લોકપ્રિય લેખક અને ગ્રંથકાર છે ગુજરાતીના જેટલા જ મરાઠીના વિદ્વાન છે જ્ઞાતિજાતના, પ્રાન્તીયતાના કે કોમી અભિમાનોથી કે વહેમોથી સર્વથા મુક્ત છે, એ તો સ્વતંત્ર વિચારક છે એમનો [illegible] નથી. એમના [illegible] સર્વ ધર્મોના અભ્યાસી છે ધર્મ [illegible]

સારુ આને હું ગુણરૂપ નથી લેખતો) તેઓ તમામ સાધકો અને શોધકોના હમેશાં ને હરપ્રસંગે ભેરુ થઈ પડ્યા. અથાગ પરિશ્રમ અને કાળજી લઈને તેમણે સઘતુ જે બંધારણ તૈયાર કર્યું છે તે આવી હર કોઈ સંસ્થાને સારુ નમૂનારૂપ થઈ પડે એવુ છે.

આ બધી વિગતો કિશોરલાલનો મહિમા વધારવા હું નથી લખતો. એમને મહિમાની કે ગૌરવગાનની મુદ્દલ જરૂર નથી. મારા આત્મસંતોષને ખાતર હુ તે લખી રહ્યો છુ.'

પણ ઉપર જે કાંઈ કહ્યુ તે એક રીતે બીજાનો અનુવાદ જ કહેવાય અનુવાદનુ પ્રામાણ્ય ઓછુ નથી, પણ શ્રોતાઓ, ખાસ કરી શિક્ષિત શ્રોતાઓ મુખ્યપણે કંઈક વિધિની અપેક્ષા રાખે વિધિનો અર્થ છે કે, અપૂર્વ અર્થનુ પ્રતિપાદન—અજ્ઞાતનુ જ્ઞાપન કિશોરલાલભાઈના પરિચયની બાબતમાં વિધિવચન તરીકે કાંઈ પણ કહેવુ હોય તો તે સ્વાનુભવમાંથી જ કહી શકાય આ દૃષ્ટિથી હુ તેમના પરિચયમાં ક્યારે અને કેમ આવ્યો, ને પરિચય કેવી રીતે વધતો ગયો, એ વિષે થોડું પણ કહુ તો તે યોગ્ય કહેવાય

૧૯૨૧ની સ્વરાજ્યની હિલચાલના જુવાળ વખતે એક સાંજે હુ આશ્રમમા સાંજની પ્રાર્થનામાં જઈ ચડેલો. પ્રાર્થનાને અંતે બાપુજીને એમ કહેતા સાભળ્યા કે, 'મારે મન સ્વરાજ્ય કરતા આધ્યાત્મિક રાજ્યની કિંમત વધારે છે, તેથી કિશોરલાલે આધ્યાત્મિક સાધના માટે જે એકાંત જીવન સ્વીકાર્યું છે. તેની ઉપયોગિતા મારી દૃષ્ટિએ બહુ વધારે છે આપણે આશ્રમ વાસીઓ એમની સાધનામાં દૂર રહ્યા રહ્યા પણ ઉપયોગી થઈએ અને તે દૂર પણ ક્યાં છે? આશ્રમથી થોડેક દૂર એમની ઝૂંપડી છે. ગોમતીએ તો વિશેષ પ્રસન્ન થવાનુ છે,' ઇત્યાદિ આ ભાવના બાપુના શબ્દો સાંભળી મારી જિજ્ઞાસા સતેજ થઈ હુ કિશોરલાલભાઈનુ નામ પણ ન જાણતો કિશોરલાલ કોણ? સાધના શી? ઝૂંપડું શું? ગોમતી કોણ? વગેરે પ્રશ્નો મનમા ઊઠ્યા તરત જ મિત્રો પાસેથી ખુલાસો મેળવ્યો, પણ કિશોરલાલભાઈ વિષેની જિજ્ઞાસા ઉત્તરોત્તર વધતી ગઈ એકાંતવાસમાંથી પાછા તેઓ [illegible] આશ્રમ આવે પણ હુ આશ્રમમાં તો ક્વચિત જ અને મોટે ભાગે તેમના સમા [illegible] ન [illegible] મિત્રને [illegible], પણ ઉત્કટ જિજ્ઞાસા હતાં કિશોરલાલ [illegible] અનુભવનો [illegible] આધ્યાત્મિક અનુભવી સાથે [illegible] શું છે [illegible]

યોગ એવો આવી મળ્યો કે પરિચયનાં દ્વાર ખુલ્લાં થયાં. કિશોરલાલભાઈ પાછા વિદ્યાપીઠના મહામાત્રપદે આવ્યા. તેઓ રોજ (મને યાદ છે ત્યાં સુધી) આશ્રમથી ચાલી એલિસબ્રિજ નજીકના મકાનમા આવેલ વિદ્યાપીઠની ઓફિસમા આવતા. હુ પણ ત્યા પુરાતત્ત્વમંદિર પુસ્તકાલય અને કાર્યાલયમાં રહેતો અને કામ કરતો. શાસ્ત્રીય વાચન અને સ્વયચિંતનથી કેટલાક પ્રશ્નો વિશે વિચારો તો બાંધી રાખેલા, તેમાં વજૂદ છે કે નહીં અને સુધારવા જેવુ હોય તો તે કઈ રીતે અને શુ સુધારવુ, એવી જિજ્ઞાસા મને હમેશા રહેતી. જ્યા લગી બાધેલા વિચારો સમવાદની કસોટીએ ન કસાય ત્યાં લગી મુક્તપણે લોક સમક્ષ ન મૂકવા, એવી ઊડે ઊડે મનોવૃત્તિ હતી હવે ઉત્કટ જિજ્ઞાસા અને તેમના પ્રત્યે બંધાયેલી પરોક્ષ શ્રદ્ધા પણ પરિપક્વ થઈ હતી. એટલે સહેજે જ મેં અવારનવાર માગ પ્રશ્નો તેમની સમક્ષ મૂકવાનુ શરૂ કર્યું એના સ્પષ્ટ અને સુશ્લિષ્ટ ઉત્તરોથી હું તેમના પ્રત્યે વધારે આકર્ષાયો, અને પછી તો આશ્રમમા જાઉ ત્યારે તેમને મળવાનુ ભાગ્યે જ ટાળતો.

હવે તેમનો પ્રત્યક્ષ પરિચય વધતો ગયો અને સાથે સાથે તેમના પ્રસિદ્ધ થતાં નાના મોટા લખાણો પણ સાભળતો ગયો પ્રથમ પ્રથમ 'જીવન શોધન'ની હસ્તલિખિત નકલ જોઈ જવાનુ યાદ છે. એ વાચને તેમના પ્રત્યે મને ઓર આકર્ષ્યો આ આકર્ષણ આજ લગી વધતું જ ગયું છે.

કિશોરલાલભાઈમા વિદ્વત્તા કરતા પ્રતિભાનુ તત્ત્વ વધારે છે, એમ મને લાગે છે. કાવ્યની મીમાસામા—प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता । એવુ પ્રતિભાનુ લક્ષણ આપ્યુ છે, તે કાવ્યતત્ત્વ માટે પૂરતુ છે. પણ હુ કિશોરલાલભાઈની પ્રજ્ઞાની વાત કહુ છું તે પ્રજ્ઞા તેથી જુદી જ છે. તથાગત બુદ્ધે જે પ્રજ્ઞા ઉપર વારંવાર ભાર આપ્યો છે અને 'પ્રજ્ઞાપારમિતા'મા જે પ્રજ્ઞા વિવક્ષિત છે તે પ્રજ્ઞાની હુ વાત કરું છુ

છે. યોગશાસ્ત્રમાં શ્રદ્ધા, વીર્ય, સ્મૃતિ, સમાધિ અને પ્રજ્ઞા એ પાંચને યોગનાં અંગ લેખ્યાં છે. આમાં પહેલાંનાં ચાર એ પ્રજ્ઞાની આવશ્યક ભૂમિકા છે. હું કિશોરલાલભાઈના લખાણો અને જીવન, બન્ને વિશે જ્યારે જ્યારે વિચાર કરું છું ત્યારે ત્યારે એમની પ્રજ્ઞાનો ખુલાસો મને બુદ્ધ અને યોગશાસ્ત્રના કથનમાંથી જ મળી જાય છે.

કિશોરલાલભાઈની પ્રજ્ઞા નાનામુખી છે તેમણે 'ઊધઈનું જીવન,' 'વિદાય-વેળાએ', 'તિમિરમાં પ્રભા', 'માનવી–ખંડિયેરો' જેવા કૌશલપૂર્ણ અનુવાદો કર્યાં છે. 'ગીતાધ્વનિ' અને બીજાં છૂટક પદ્યો પણ રચ્યાં છે સ્વતંત્ર લખાણો તો એમનાં ઢગલાબંધ છે, અને એમનાં લખાણોના વિષયો કોઈ એક નથી ધર્મ, સમાજ, રાજકારણ, અર્થકારણ, સાહિત્ય, કલા, શિક્ષણ આદિ અનેક વિષયોને લગતા અનેક મુદ્દાઓ ઉપર તેમણે વિચારપૂત લખ્યું છે. એમનું લખાણ એટલું મનનપૂર્વકનું અને મૌલિક છે કે આટલા બધા વિષયો અને મુદ્દાઓ ઉપર આવું સૂક્ષ્મ પૃથક્કરણપૂર્વક ભાગ્યે જ કોઈ લખી શકે જો અંતઃપ્રજ્ઞાનો સ્રોત ઊઘડ્યો ન હોય તો તેમના જેવા જીર્ણશીર્ણ, કૃશકાય, પથારીવશ પુરુષને હાથે આવો વિશદ વિચારરાશિ ભાગ્યે જ લખાય

કિશોરલાલભાઈ જેવું માતૃભાષા ગુજરાતીમાં લખે છે તેવું જ હિંદીમાં અને તે જ રીતે મરાઠી તેમ જ અંગ્રેજીમાં લખે છે. આજે તો 'હરિજન,' 'હરિજનબંધુ', 'હરિજનસેવક' એ બધાંમાં એમનો જ પ્રાણ ધબકે છે દેશ વિદેશમાં ગાંધીજીના વિચારને જાણવા અને સમજવા મથનાર તેમની કાર્યપદ્ધતિ વિશે ઊભા થતા નવા નવા પ્રશ્નોનો ખુલાસો મેળવવા ઇચ્છનાર બધા જ કિશોરલાલભાઈની લેખિનીની પ્રતીક્ષા કરે છે એમનો સૌથી મોટો અને વિરલ ગુણ એ તટસ્થતાનો છે જેટલી એમનામાં તટસ્થતા છે તેટલી જ નિર્ભયતા અને સાથે તેટલી જ મધુરતા આ વિશિષ્ટ ગુણોને લીધે તેઓ આપણને પણ ગાંધીજીનું પ્રતિનિધિત્વ ધરાવવાના અધિકારી છે. તેમની [illegible] 'જનુની ક્રાંતિ' [illegible] તેમને ગુજરાતના અને મહારાષ્ટ્ર [illegible] નિર્ભય ગુજરાત [illegible] [illegible] જ [illegible] [illegible] જ [illegible] છે.

પ્રો. અનંતરાયની, 'માનસી'માં અંબાલાલ પુરાણીની, અને 'પ્રસ્થાન'માં રસિકલાલ વકીલની

પહેલી બે 'સમૂળી ક્રાંતિ'ને યથાર્થ રીતે 'સમૂળી ક્રાંતિ' તરીકે વર્ણવે છે અને સચોટપણે એનુ મૌલિકત્વ દર્શાવે છે. અમુક વિધાનોમાં થોડો મતભેદ કે સદેહ હોય તો એ સમાલોચનાઓ 'સમૂળી ક્રાંતિ'ને એક વિરલ કૃતિ તરીકે સ્થાપે છે, જ્યારે શ્રી પુરાણીની સમાલોચના સાવ જુદી બાજુ રજૂ કરે છે, એ એને સમૂળી તો શુ પણ ક્રાંતિ સુદ્ધાં માનવા તૈયાર નથી આવો છેક સામા પાટલાનો વિરોધ જોઈ હુ શ્રી પુરાણીની સમાલોચના બે વાર સાંભળી ગયો. સભવ છે કે એને સમજવા પૂરતો મારો અધિકાર ન લેખાય, પણ મને લાગે છે કે એ સમાલોચના નથી સમ્યક્ આલોચના કે નથી સગત આલોચના. પણ એ આલોચના પરથી હુ અનુમાન ઉપર આવ્યો છુ કે એ 'સમૂળી ક્રાંતિ'નુ યથાર્થપણુ સાબિત કરે છે 'સમૂળી ક્રાંતિ'માં જે અનેક વિધાનો છે તેને લીધે કોઈ એક જ જાતના વર્ગ ઉપર અસર નથી થતી. શિક્ષિત ગણાતા, સાધક મનાતા એવા વર્ગની માન્યતાઓને પણ આઘાત પહોચાડે છે એટલે એવા જ કોઈ આઘાતનુ પરિણામ એ સમાલોચના હોય તો નવાઈ નહી અને એમ હોય તો એ ક્રાંતિ જ છે.

ચોથી સમાલોચના તે વિશેષ વિશ્લેષણ અને ઊહાપોહપ્રધાન છે તે 'સમૂળી ક્રાંતિ'ના મુખ્ય બધા જ ભાગોને સ્પર્શે છે, અને છૂટથી લેખકનાં અવતરણો ટાંકી તેના ગુણદોષના બળાબળની સમીક્ષા કરે છે સમાલોચક શ્રી વકીલ માર્ક્સના સામ્યવાદનુ દૃષ્ટિબિંદુ ધરાવે છે, એટલે સ્વાભાવિક રીતે જ સમાલોચનામા દૃષ્ટિબિદુની પ્રધાનતા આવે અને જ્યા સામ્યવાદના મૂળ પાયારૂપ આર્થિક વ્યવસ્થા કિશોરલાલભાઈના ચારિત્ર્યપ્રધાન પ્રતિપાદનો સામે ગૌણ થતી દેખાય ત્યા તેઓ પોતાની દૃષ્ટિની સયુક્તિક [illegible] કરે છે. એટલે એ સમાલોચના વાચકને રસપ્રેરનારી બને છે

કસોટીએ ઇતિહાસના અધ્યયનનું મૂલ્ય પણ આંકવામાં આવે તો એમ કહી ન શકાય કે ઇતિહાસનું જ્ઞાન અનર્થકારી છે. એનુ અજ્ઞાન, એનો વિપર્યાસ કે એના જ્ઞાન સાથે મળેલી બીજી સ્વાર્થી વૃત્તિઓ ભલે અનર્થકારી નીવડે, પણ તેથી ઇતિહાસનુ જ્ઞાન નકામુ છે એમ હુ પણ માનતો નથી.

‘સમૂળી ક્રાંતિ’ સમજવાનો પૂરો અધિકાર સામાન્ય વાચકોનો નથી પણ જે જે સમજદાર અધિકારીએ એને ધ્યાનપૂર્વક વાંચી વિચારી હશે, તેના કેટલાય રૂઢ સંસ્કારો અને જન્મસિદ્ધ ગ્રંથિઓ મૂળમાંથી હચમચ્યા વિના ભાગ્યે જ રહ્યાં હશે. એ જુદી વાત છે કે સંસ્કારોનાં મૂળ હચમચ્યા છતા માણસ ફરી પાછો એ ને એ ધરેડમાં ચાલ્યા કરે. આમ થવાના અનેક કારણો છે. ગ્રંથિઓ શિથિલ થયા પછી પણ પડખું બદલવાનો સવાલ બીજા કેટલાક વિશિષ્ટ ગુણોની અપેક્ષા રાખે છે. જો તે વાચકમા હોય તો તે ક્રાંતિ કરી શકે, ન હોય તો નહી. પણ ‘સમૂળી ક્રાંતિ’નુ કામ તો વાચકને તેના રૂઢ સંસ્કારો વિશે મૂળથી વિચાર કરતા કરી મૂકવાનું છે એ દૃષ્ટિએ આ પુસ્તક કોઈને પણ વિચાર પ્રેર્યા વિના રહે એમ હું નથી ધારતો. એ જ એનુ મૌલિક ક્રાંતિકારક તત્ત્વ છે

ઉપનિષદ્ના ઋષિ અને બુદ્ધ, મહાવીર, કપિલ આદિ સંતમુનિઓએ જુદા જુદા શબ્દોમાં અને કંઈક જુદી જુદી રીતે પણ એક જ વાત તરફ સંકેત કર્યો છે, કે ત્રિવિધ તાપનુ મૂળ અવિદ્યા, અજ્ઞાન, મોહ કે દર્શનમોહ છે. જ્યાં લગી આ અવિદ્યા કે અવિવેક હશે ત્યાં લગી આધિદૈવિક, આધિભૌતિક અને આધ્યાત્મિક એકે દુ:ખ દૂર થવાનો સંભવ નથી તેથી જ ઋષિમુનિઓએ અવિદ્યા કે અવિવેકને નિવારવા ઉપર જ ભાર મૂક્યો છે. અને એનાથી જ ઉત્પન્ન થનાર દુ:ખોનું ત્રણ ભાગમા વર્ગીકરણ કરી દુ:ખ વિશેનુ નિરૂપણ ટૂંકાવ્યુ છે.

પછી તે કારણ નિવારવા માટે તેમને જે વિધાનો સૂઝ્યાં છે અને જે ઉપર તેમણે ઠીક ઠીક ઊંડો વિચાર કર્યો છે તે વિધાનો રજૂ કરે છે.

આમ 'સમૂળી ક્રાંતિ' ઘટનાઓમા અનુભવાતાં દુઃખના વિશ્લેષણ દ્વારા એના મૂળ કારણ સુધી પહોંચે છે. તેથી પ્રાચીન ધર્મગ્રંથોમા જે ત્રિવિધ તાપના કારણ તરીકે અવિવેકનો નિર્દેશ છે તે જ 'સમૂળી ક્રાંતિ'મા છે, એમ મને લાગે છે. ફેર હોય તો એટલો જ છે કે બધા જ ધર્મગ્રંથો દુઃખોનો સક્ષેપમા નિર્દેશ કરે છે, જ્યારે 'સમૂળી ક્રાંતિ' વર્તમાન જમાનાના સળગતા પ્રશ્નોની વિગતવાર ઊંડી મીમાંસા કરે છે અને પછી તેના કારણ, અજ્ઞાન કે અવિવેક ઉપર માણસનુ ધ્યાન એકાગ્ર કરી તે ઉપર કુઠારાઘાત કરવા કહે છે

દાક્ષિણાત્ય તર્કતીર્થ લક્ષ્મણ શાસ્ત્રીએ 'હિંદુધર્માચી સમીક્ષા' નામનુ પુસ્તક લખ્યુ છે તેઓ વાઈની પાઠશાળાના મુખ્ય અધ્યાપક તો છે જ, અને ક્રાંતિકારી વિચાર પણ ધરાવે છે. તેઓ પોતે બ્રાહ્મણપ્રધાન સંસ્કૃત પાઠશાળાના મુખ્ય કર્તાહર્તા અને તર્કશાસ્ત્રના વિદ્વાન છે. તેમનુ જીવન હિંદુત્વના સંસ્કારથી રંગાયેલુ અને મુખ્યપણે બ્રાહ્મણવર્ગ વચ્ચે જ વ્યતીત થતુ આવ્યુ છે. તેમ છતાં તેમણે પોતાના પુસ્તકમાં હિંદુધર્મની એવી સૂક્ષ્મ, ઉગ્ર અને તલસ્પર્શી સમીક્ષા કરી છે કે હું જાણુ છું ત્યા લગી બ્રાહ્મણ પરંપરામાં થયેલ, બ્રાહ્મણધર્મમા જ રહીને, બ્રાહ્મણધર્મ ઉપર આટલી બધી ઉગ્ર, સૂક્ષ્મ અને ગામ્ભીર ટીકા બીજા કોઈએ અત્યાર સુધીમા કરી નથી

અને માનવતાનિષ્ઠા છે. ખરી રીતે પરમાત્મામાં માનવતા અને માનવતામાં પરમાત્મા જોવાની તેમની એક નવદૃષ્ટિ છે. જ્યારે તેઓ એમ કહે છે કે 'જે મોટામાં મોટી ક્રાંતિ કરવાની છે તે આપણે જડ જાહોજલાલી કરતાં માણસાઈને સૌથી વધારે મહત્ત્વ અને જીવ માટે સૌથી વધારે આદર આપતાં શીખવવાની છે એને અભાવે કોઈ પણ પ્રકારનું રાજતંત્ર કે અર્થવાદ કે ધર્મ મનુષ્યને સુખશાંતિ આપશે નહીં,' ત્યારે તેમની માનવતાના ઉત્કર્ષની ઝંખના વ્યક્ત થાય છે. તેમને નિરાશા તો સ્પર્શી જ નથી આખું નિરૂપણ દુઃખોનું વિશ્લેષણ કરે છે. સાધારણ માણસ દુઃખના વિચાર અને વિશ્લેષણ દ્વારા નિરાશ થઈ જાય, જ્યારે એમને વિશે એથી ઊલટું છે તેમનો આશાવાદ ઓર તેજસ્વી બને છે. જો પરમાત્મા પ્રત્યેની અનન્ય નિષ્ઠા અને માનવતાના ઉત્કર્ષમાં અનન્ય શ્રદ્ધા ન હોય તો આમ કદી ન બને

કિશોરલાલભાઈ માત્ર રુક્ષ અને કંટાળો આપે એવું વિશ્લેષણ જ નથી કરતા, પણ વચ્ચે વચ્ચે એમની પ્રસન્ન પ્રકૃતિમાંથી કેટલાક વિનોદો એવી રીતે સરી પડે છે કે વાચનારમાં સ્મિત પ્રેર્યા વિના નથી રહેતા એથી ઘણી વાર એમની શૈલી એવી હળકીફૂલ બને છે કે ચોપડીને પૂરી વાંચ્યા વિના છોડવાનું મન જ નથી થતું જેમ વિનોદો તેમ તેમાં કટાક્ષો પણ આવે છે પણ એ કટાક્ષો કોઈ આગ્રહમાં, દ્વેષ કે અપમાનવૃત્તિમાંથી આવેલા નથી હોતા એમ વાંચતાં તરત જ સમજાઈ જાય છે

'न को विवेकना क्षेत्रथी पर.' બીજા પ્રતિપાદનનુ તેમણે જે નિખાલસ અને નિર્ભયપણે સાહજિક વિવેચન કર્યું છે તે વાચતાં સિદ્ધસેન દિવાકરની એક સૂક્તિ યાદ આવી જાય છે.

'मनुष्यवृत्तानि मनुष्यलक्षणै·
मनुष्यहेतोर्नियतानि तै· स्वयम् ।
अलब्धपाराण्यलसेषु कर्णवान्
अगाधपाराणि कथ गृहीष्यति ॥ "

આનો સાર એ છે કે મનુષ્ય દેહધારીઓએ પોતે જ મનુષ્યોનાં ચરિતો–વ્યવહારો મનુષ્ય જાતિને માટે જ કર્યાં છે, વ્યવસ્થિત કર્યાં છે, પણ આળસુ, જડ અને અવિવેકી વર્ગમાથી જ્યારે માણસો પોતે જ વ્યવહારો અને વ્યવસ્થાનુ તત્ત્વ ન પામ્યા, એનો સાર ન સમજ્યા, ત્યારે તેમણે પોતે જ તે માનવકૃત વ્યવસ્થાઓને પાર પામી ન શકાય એવી અગાધ માની લીધી, ચંચુપાત ન થઈ શકે તેવી અફર માની લીધી પરંતુ જે વિચારક અને વિદ્વાન છે તે એ વ્યવસ્થાપ્રતિપાદક શાસ્ત્રોને ચચુપાત ન થઈ શકે તેવાં કે અફર શી રીતે સમજશે? કિશોરલાલભાઈ પણ બીજા પ્રતિપાદનદ્વારા એ જ ભાવ સ્પષ્ટ કરે છે, એમ લાગે છે સત્યની કેવી બલિહારી છે કે તે હજારો વર્ષને અંતરે થયેલ બે જુદી જુદી વ્યક્તિઓની વિચારભૂમિકાઓમાંથી એકસરખી રીતે આવિર્ભાવ પામે છે!

વિચારાતું થાય તો તે દ્વારા શરૂઆતમાં શિક્ષિત ગણાતા વર્ગની ઘણી જ પરંપરાગત, રૂઢ અને અવિવેકમૂલક માનસગ્રંથિઓ શિથિલ થવા પામે અને એનો ચેપ સાધારણ–શિક્ષિત અને અશિક્ષિત સુદ્ધાંને પણ લાગ્યા વિના ન રહે. જ્ઞાન એક એવું અખંડ અને ગ્રંથિભેદક ઝરણું છે કે તે એક વાર ગમે તે સ્થાને ઉદ્ભવ્યા પછી ઉત્તરોત્તર વધારે ને વધારે પ્રસરતું જાય છે અને વચ્ચે આવતા અંતરાયોને ભેદી તે લોકમાનસને વિવેકના ઊંચા સ્તર ઉપર મૂકે છે. તેથી હું એવી વિનતિ કરું છું કે દરેક સમજદાર 'સમૂળી ક્રાંતિ' એક વાર તો વાંચે જ.

એક વાર મારા મિત્ર એક આઈ સી એસ મહાશયે મને કહ્યું કે તમે આર્યસંસ્કૃતિ વિશે કાંઈક લખો તો ઠીક. મેં કહ્યું, 'હું આર્ય-સંસ્કૃતિનો એવો વિશિષ્ટ અભ્યાસી તો નથી, અલબત્ત, એના એકાદ અંશને સ્પર્શવાનો થોડો ઘણો પ્રયત્ન કર્યો છે. ક્યારેક એ વિશે લખવાના પણ વિચારો આવે છે, પણ પાછો સંકોચાઉં છું.' તેમણે પૂછ્યું, 'સંકોચ શા માટે?' આનો ઉત્તર આપતાં મેં મારા વિચારો દર્શાવ્યા તે અહીં ટૂંકમાં નોંધવાની તક લઉં છું.

'સંસ્કૃતિ વિશે લખવું એટલે શું? અત્યારે જેઓ પોતાને આર્ય-કુલોદ્ભવ સમજે છે અને જે જે વસ્તુઓને તેઓ મહત્ત્વની માને છે માત્ર તેની જ ગાથા ગાવી એટલું જ, કે સાથે સાથે તેમણે જે વિકૃતિઓ નિર્માણ કરી છે, પોષી છે અને જેના ઉપર સંસ્કૃતિનો ઢોળ ચડાવ્યો છે તેને પણ ખુલ્લી કરવી તે? જો માત્ર સંસ્કૃતિ-વર્ણનને નામે પ્રિય જ કહેવાનું હોય અને સત્યનો બીજો અપ્રિય અંશ કહેવાનો ન હોય તો એ સંસ્કૃતિનો [illegible] નહીં પણ વિકૃતિઓને છુપાવવાનો એક પ્રયત્ન થશે એમ મને લાગે છે.

વાંચનાર બધાના કાન પોતપોતાની માની લીધેલી સંસ્કૃતિની કીર્તનકથા સાંભળવા એકાંતથી ટેવાઈ જાય છે, અને તેની વિરુદ્ધ સોળે સોળ આની સાચું કહેવામાં આવે તો તે સંસ્કૃતિપ્રિય લોકો મરવા કે મારવા તૈયાર થઈ જાય છે.'

મારા આ કથનથી તે ભાઈ મૌન રહ્યા પણ મારી અંગત વાતચીત અહીં નોંધુ છું. તે તો એ દર્શાવવા કે હું જે આર્યવર્ગની વિકૃતિઓ અને ત્રુટિઓને અંશથી પણ વર્ણવતાં કે લખતાં સંકોચ સેવતો હતો તે ત્રુટિઓ અને તે વિકૃતિઓ કિશોરલાલભાઈએ ખૂબ મોકળા મનથી 'સમૂળી ક્રાંતિ'માં રજૂ કરી છે. જ્યાં સુધી હું સમજવા પામ્યો છું ત્યાં સુધી એમ કહી શકાય કે તેમણે 'સમૂળી ક્રાંતિ'માં બધા વર્ગોની ધર્મ, સમાજ, અર્થકારણ, રાજકારણ અને શિક્ષણ વિશેના પ્રશ્નો વિશેની ગેરસમજૂતી અને ખોડ-ખામીઓ રૂપે વિકૃતિઓ જ વર્ણવી છે.

તેમણે જોઈ લીધું હોવું જોઈએ કે જે સદ્‌ગુણો જીવનમાં સંસ્કૃતિરૂપે પચી ગયા છે તે તો છે જ એને કહી, મોટા રૂપમાં બતાવી, લોકોને ફોસલાવવાની, ફુલાવવાની કે મોટાભા બનાવવાની શી જરૂર છે?

જરૂર હોય તો તેમની ખોડખામીઓ અને ભૂલો બતાવવાની જ છે. આ દૃષ્ટિથી 'સમૂળી ક્રાંતિ'એ પ્રજાજીવનનું નબળું પાસું રજૂ કરે છે ને તેને નિવારવા સંકેત કરે છે.

—મુનિ પ્રકાશ

સર્વ–મિત્ર ગૃહસ્થ–સંત

[૮]

પંખી આકાશમાં ઊડે ત્યારે એની છાયા નીચે દેખાય છે. ઊડવાનું બંધ પડ્યું કે છાયા અદૃશ્ય થઈ. કાળપટમાં આવતા માણસો વિશે પણ એમ જ છે તેઓ મૃત્યુવશ થયા ને તેમની છાયા ગઈ. આ સામાન્ય નિયમનો પણ અપવાદ છે. કેટલાક પુરુષો કાળપટમાં આવી અદૃશ્ય થાય છે, ત્યારબાદ પણ તેમની છાયા લોપાતી નથી. એટલું જ નહીં પણ ઉત્તરોત્તર તેમની છાયા વધારે ગાઢ અને સ્થિર પણ બનતી જાય છે. બુદ્ધ, મહાવીર, ઈસુ આદિ પ્રાચીન પુરુષો આ કોટિના છે. આપણે હમણાં જ ગાંધીજીને પણ જોયા કે તેઓ એ જ કોટિના છે. શ્રી કિશોરલાલભાઈ નથી અવતારી કે નથી કોઈ આચાર્ય, છતાં તેમની કોટિ પણ એ જ છે. તેમનું સૂક્ષ્મ પૃથક્કરણપ્રધાન તેમ જ દલીલવાળું વિવેકી લખાણ જેમ જેમ વધારે વંચાતું અને સમજાતું જશે, તેમ જ તેઓ કેવી અનોખી રીતે જીવન જીવી ગયા એની જાણ વધતી જશે તેમ તેમ તેમની છાયા વાચકોના મનમાં વધારે ને વધારે પડવાની અને સ્થિર થવાની.

જ સમાતો હોય એમ મનાયુ છે. આવી અધૂરી સમજને લીધે લાંબા વખતથી પ્રજાજીવન અત્યત વિસંવાદી બની ગયુ છે, એમ છતાં સમયે સમયે આપણા દેશમાં એવા સમજદાર અને વ્યાપકદષ્ટિ ધરાવનાર પુરુપાર્થી પાકતા રહ્યા છે કે જેઓએ પોતાની જીવનકળાથી લોકોને સાચું માર્ગદર્શન આપ્યું હોય ગાંધીજી એવા અંતિમ મહાપુરુષ થઈ ગયા તેમણે જે ગૃહસ્થ-સંન્યાસી કે ગૃહસ્થ-સંતનો પદાર્થપાઠ પોતાના જીવનથી આપ્યો તેને પચાવનાર એક નાનકડું પણ સમર્થ મડળ દેશમાં તૈયાર થયુ એ મંડળમાં શ્રી કિશોરલાલ મશરૂવાળાનું સ્થાન મુખ્ય અને ઊચુ છે તેઓ આખું જીવન રહ્યા તો ગૃહસ્થ, પણ સાથે સાથે એ જીવન સંન્યાસનુ જ વિતાવ્યુ તેમણે ગૃહસ્થનાં યોગ્ય કર્તવ્યો પ્રત્યે ક્યારે પણ ઉપેક્ષા ન સેવી અને સંન્યાસના ખરા અર્થને જીવનમા મૂર્ત કર્યો

ગીતાના તાત્પર્ય વિષે અનેક પક્ષો પ્રવર્તે છે. કોઈ જ્ઞાનમા, તો કોઈ ભક્તિમાં, તો કોઈ કર્મમા ને કોઈ ધ્યાનમાં—એમ એનુ તાત્પર્ય વર્ણવે છે. શ્રી કિશોરલાલભાઈના જીવનમા આપણે એ બધા તાત્પર્યોનો સુમેળ પૂર્ણપણે જોયો છે તેઓ એક ક્ષણ પણ આવશ્યક અને યોગ્ય કર્મ વિના રહ્યા હોય એવુ કોઈએ જોયુ, જાણ્યુ નથી એમના પ્રત્યેક કર્મમાં જ્ઞાનયોગ કેટલો હતો એ તો એમના લખાણો જ કહી દે છે વિચાર અને તદનુસારી આચાર પ્રત્યે તેમની જે નિષ્ઠા હતી અને જે એકાગ્રતા હતી તેનો [illegible] ભાગ્યે જ જોવામા આવે છે 'ગીતામંથન'મા તો તેમણે ગીતાનો અર્થ રજૂ કર્યો છે, પણ તેમનુ પોતાનુ સ્વતંત્ર જીવન-દર્શન તો 'ગીતામંથન'ના ઉપોદ્‌ઘાતમા જોવા મળે છે તેમણે જે જે લખ્યુ છે તે માત્ર [illegible] ખાતર કે બીજાને ઉપદેશવા ખાતર નહી, પણ જે પોતે જીવનમાં ઉતાર્યું પચાવ્યુ તે રજૂ કરવા ખાતર આ બાબતમા તેઓ ગાંધીજીના [illegible] પૂર્ણપણે અનુસર્યા છે તેમણે એ રીતે અનાસક્ત કર્મયોગ, [illegible] બતાવ્યો છે.

'હરિજન' પત્રોનું તંત્રીપદ સંભાળતા. તેમની સામે પરસ્પરવિરોધી એવા અનેક વાદોના પ્રશ્નો આવે, અનેક પક્ષોના પ્રશ્નો ઉપસ્થિત થાય, દેશપરદેશને લગતા સવાલો ચર્ચવાના આવે, આર્થિક અને ઔદ્યોગિક પ્રશ્નો બાબત પણ માર્ગદર્શન આપવાનું પ્રાપ્ત થાય—આ બધા કામને તેઓ પથારીવશ જેવા છતાં પૂર્ણપણે છેવટ સુધી ન્યાય આપી શકતા તેનું મુખ્ય કારણ તેમની સત્ય અને અહિંસાની સતત ઉપાસના હતી. ગમે તેવા મોટા મનાતા રાજપુરુષ કે સંન્યાસીને સુદ્ધાં સ્પષ્ટ સત્ય કહેવામા તેઓ લેશ પણ સંકોચાતા નહીં, અને નિર્ભય કથન કરવા છતાં કોઈ દુભાય એવું વચન પણ ઉચ્ચારતા નહી જેમને જેમને એમનુ કથન રુચતુ નહીં તેઓ પણ એકસ્વરે તેમની તટસ્થતા અને માયાળુતાની મુક્તકંઠે પ્રશંસા જ કરતા

બુદ્ધનુ વિશ્લેષણ વિશ્વવિદિત છે. મહાવીરની અહિંસા પણ અજાણી નથી શંકરાચાર્યનો અદ્વૈત-પેગામ અપૂર્વ છે વાચસ્પતિની સર્વ વૈદિક દર્શનોને સ્પર્શતી બુદ્ધિ ગવાય છે એમ દરેક યુગે થયેલા તે તે પુરુષોનું ગૌરવ જેવું તેવું નથી. તેમ છતાં તે પુરુષોના વિચારો અને સિદ્ધાંતો તેમના પોતાના સંપ્રદાયના કોચલામાં જ ગૂંગળાઈ કાંઈક અંશે વિકૃત પણ બન્યા છે અને બીજા સંપ્રદાયના લોકોમા તેની સારવતા જોવાની દૃષ્ટિ ભાગ્યે જ દેખાય છે એ વિચારો અને સિદ્ધાંતો સમયે સમયે બદલાતા માનવજીવનની સાથે મેળ બેસે અને તેને ઉપયોગી થઈ પડે, એ રીતે પુનઃસંસ્કરણ ન પામે તો એ માત્ર ભૂતકાળની યશોગાથા જેવા જ બની જાય છે પ્રત્યેક સંપ્રદાયના અનુયાયીની પોતાના માન્ય પુરુષના વિચાર અને સિદ્ધાંતો પ્રત્યે એવી કાંઈક ગૂઢ શ્રદ્ધા હોય છે કે, તે એ શ્રદ્ધા-ગ્રંથિને લીધે તેનુ પરીક્ષણ કે પુનઃસંસ્કરણ કરી નથી શકતો કિશોરલાલભાઈમાં પણ ક્યારેક એવી જ સંપ્રદાય-ગ્રંથિ હતી. તેઓ પોતે જ એવી મતલબનું કહે છે કે, સ્વામિનારાયણ

તેમને પૂછેલુ કે, 'તમે આટઆટલા બીમાર અને કોઈ બીજો ઉકેલી ન શકે એટલા બધા ભિન્ન ભિન્ન વિષયોના, ભિન્ન ભિન્ન પ્રશ્નો કયા અભ્યાસ, કયા વાચન અને કયા બળને લીધે ઉકેલો છો?' આવી મતલબના પ્રશ્નનો ઉત્તર તેમણે નમ્ર વાણીમાં એટલો જ આપ્યાનુ યાદ છે કે, 'મારું વાચન અતિ અલ્પ છે પણ મારી પાસે એકમાત્ર કસોટી સત્ય અને અહિંસાની છે એ કસોટીએ હુ બધુ વિચારું છુ અને જે કાંઈ સૂઝે તે લખું છુ' એમના આખા જીવનની ચાવી જ આ છે ગાંધીજીએ નવજીવન ઘડવાના વિચારો અને સિદ્ધાતો પૂણી રૂપે મૂક્યા કિશોરલાલભાઈએ પોતાના અનેક લખાણોમાં એ પૂણીઓને કાંતી માપી ન શકાય એટલા સૂતરની ફાળકીઓ પીરસી કિશોરલાલભાઈ રૂઢ ગુરુ-શિષ્ય ભાવમા ન માનતા એટલે તેઓ જેમ બીજાને પોતાના વિચારોમા મૂંડવાનો જરાય આગ્રહ ન સેવતા, તેમ બીજાના વિચારોમા માત્ર શ્રદ્ધાથી મૂડાવાની વૃત્તિ પણ ન સેવતા તેથી જ, આપણે જોઈએ છીએ કે, તેમણે પોતાના ધાર્મિક, આધ્યાત્મિક વિવેચન-વાળા લખાણોમાં પોતાને માન્ય હોય એવા મોટા મોટા પુરુષની પણ સાદર સમીક્ષા કરી છે તેઓ સાંપ્રદાયિક ગ્રથિથી પર થયા ને તેમની સામે માનવજાતિના ભૂષણરૂપ બધા જ ધર્મપુરુષો સમાન ભાવે ઉપસ્થિત થયા. એ જ વિરલ ક્ષણે તેમણે રામ-કૃષ્ણ, બુદ્ધ-મહાવીર, ઈશુ ખ્રિસ્ત, સહજાનંદ જેવા સાંપ્રદાયિક લેખાતા મહાન પુરુષોની જીવનકથા વિવેચક ભક્તને ગોઠે એવી પ્રતીતિકર રીતે લખી છે

બ્રાહ્મણ–શ્રમણ ધ્રુવજી

[૯]

ગુજરાતમાં ધ્રુવ ઘણા છે અને હતા, પણ ધ્રુવજી તો એક જ. જેમ ગાંધી ઘણા પણ ગાંધીજી એક, માલવીય ઘણા પણ માલવિયજી એક મદનમોહન, તેમ ધ્રુવજી કહેતાં જ આનંદશંકરભાઈનો બોધ સૌને થઈ જાય. આ 'જી' પદનું મહત્ત્વ ધ્રુવસાહેબના જીવનમાં જે જોવા મળે છે, તે અહીં બતાવવાનો ઉદ્દેશ છે.

ધ્રુવજી જન્મે બ્રાહ્મણ અને તેમાંય મુત્સદ્દી નાગર એટલે વિદ્યાપ્રીતિ, ડહાપણ અને ભાષાસૌષ્ઠવ પરંપરાગત હોય એ તો સામાન્ય તત્ત્વ થયું. પણ એમણે એ તત્ત્વનો બીજાઓએ નહિ સાધેલ એવો અસાધારણ વિકાસ સાધ્યો હતો. શ્રમણદીક્ષા લે તેનામાં કર્મકાંડી અહિંસાવૃત્તિ ઊતરવા માંડે છે અને પરંપરાગત તપોવ્રતો પણ સહેજે હોય છે. પણ ધ્રુવજીની અહિંસાવૃત્તિ અને તપોવૃત્તિ જુદા પ્રકારની હતી. તે અંદરથી ઊગેલી અને બ્રાહ્મણદર્શનથી પરિમાર્જિત થયેલી હતી, જેને લીધે તેમનું વ્યક્તિત્વ ઘડાયું.

લગભગ ત્રીસ વર્ષ પહેલાં અધ્યયન કરી પહેલવહેલો હું કાશીથી ગુજરાતમાં ગયો ત્યારે 'વસંત'માંનાં થોડાંક ધ્રુવજીનાં લખાણો જોયાં અને એમના તરફ ખેંચાયો. ક્રમે ક્રમે એમના 'નીતિશિક્ષણ', 'હિન્દુ ધર્મની બાળપોથી,' 'ધર્મવર્ણન,' 'આપણો ધર્મ,' 'હિન્દુ વેદધર્મ' આદિ પુસ્તકો જોયાં, અને તેમની મારા ઉપર એવી ઊંડી અસર થઈ, જે આજ લગી કાયમ છે, કે પછી તો મને કોઈ પણ ધાર્મિક પાઠક્રમ બાબત પૂછે ત્યારે

વૈયક્તિક મુલાકાતમા કાંઈક રૂખાપણું છે ઇત્યાદિ. આવી મતલબના એ લખાણે હુ એમ માનતો થયો કે ત્યારે તો ધ્રુવજીને મળવા ઘેર ન જવુ. આ માન્યતાથી પ્રેરાઈ હુ તે વખતે અમદાવાદમા જતો આવતો અને રહેતો છતા ધ્રુવજીને મળેલો નહિ એમને વિશે એવો પૂર્વગ્રહ બંધાયા છતાં એમની વિદ્વત્તા પ્રત્યે તો ઉત્તરોત્તર મારો આદર વધ્યે જ જતો હતો, અને સાથે સાથે તેમના લખાણોના વાચનનો પ્રચાર પણ કર્યે જતો હતો

દરમિયાન ૧૯૨૦–૨૧ આસપાસ ફરી હુ કાશીમા આવ્યો અને મારા ઉતારા પાસે જ આવેલ દિગબર જૈન વિદ્યાલયમા પ્રમુખસ્થાનેથી ધ્રુવજીનુ ભાષણ થઈ રહ્યુ છે એ જાણતા જ તે સાભળવા ગયો. ધ્રુવજી અહિંસા અને તપના મહત્ત્વ વિશે તેમની વિકસિત વિચારસરણીમા પણ ગુજરાતી ટોન–લય–વાળી હિન્દીમા બોલ્યે જતા હતા. અને પ્રસગે ‘ઉત્તરાધ્યયન’ તેમ જ ‘આચારાગસૂત્ર’નો આધાર લેતા તેમની મધુર વાણી અને સ્પષ્ટ વિચારસરણીથી હુ વધારે આકર્ષાયો સભા પૂરી થતા જ તેમને હુ મળ્યો અને સાદર નમસ્કાર કરી મે કહ્યું કે ‘હુ આજ લગી આપનો પરોક્ષ શિષ્ય હતો. હવે પ્રત્યક્ષ શિષ્ય બનીશ’ તેમણે સ્મિત સાથે કહ્યુ, ‘તમે ગુજરાતી છો? અને બગલે જરૂર આવજો’ એ ‘જરૂર’ શબ્દે મારામા બધાયેલ તેમના વિશેના પૂર્વગ્રહને બહુ શિથિલ કરી નાખ્યો જ્યારે હુ તેમને બગલે ગયો ત્યારે તેઓ એટલી સહૃદયતાથી [illegible] મને વાત કરી કે પેલા પૂર્વગ્રહનો રહ્યોસહ્યો અશ પણ મારા મનમાથી તદ્દન વિલીન થઈ ગયો તેમણે અહિંસા વિશેની ચર્ચામા તે વખતે મને કહ્યું કે ‘ગાંધીજી દેશમા અહિંસાના પાયા ઉપર સરકાર સાથે બાથ ભીડવાનો [illegible], પણ શુ દેશમા પ્રજાની અહિંસાવૃત્તિ એટલા બધા પ્રમાણમા [illegible] જેથી તે ગાંધીજીને પૂરો સાથ આપે?’ તેમણે [illegible] કહ્યુ કે ‘હજી તો દેશને વધારે તાલીમ આપવાની [illegible] નથી’ ઇત્યાદિ

અથવા બીજી રીતે મળતી જ આવી છે દેશની મનોભૂમિકા અને બીજી પરિસ્થિતિ એવી છે કે દેશવ્યાપિ સક્રિય પગલું ભરવા સાથે જ એની ખરી તાલીમ શરૂ થાય છે. એટલે એક બાજુ પ્રત્યક્ષ ક્રિયા દ્વારા અને બીજી બાજુ તેની સમજૂતી દ્વારા જ આખા દેશમાં અહિંસા વિશેની જાગરિત શ્રદ્ધા અને અપેક્ષિત અહિંસા સમજૂતી ઉત્પન્ન કરી શકાય—પહેલું શાબ્દિક શિક્ષણ અને પછી ક્રિયા, એ ક્રમ આખા દેશ માટે વ્યવહારુ નથી. હું તો એમને સાદર સાંભળવા જ ગયો હતો. અમારા વિશેષ પરિચયના આ શ્રીગણેશ થયા.

હું અમદાવાદ ગુજરાત પુરાતત્ત્વમંદિરમાં 'સન્મતિતર્ક'નું સંપાદન કરતો. એનો પહેલો ભાગ ધ્રુવજીને મળ્યો ત્યારબાદ તેઓ જ્યારે અમદાવાદ આવે ત્યારે મોટા ભાગે પુરાતત્ત્વમંદિરમાં આવે અને મળે. હું સંશોધન વિશે એમને પૃચ્છા પણ કરતો. એક વાર અનેક પ્રતો ફેલાવી હું મારા ખંડમાં કામ કરી રહ્યો હતો અને અણધાર્યા જ ધ્રુવજી પધાર્યા અને ચટાઈ ઉપર બેસી ગયા. થતું કામ જોઈ રહ્યા હતા. દરમિયાન એક અધ્યાપક ત્યાં આવી ચડ્યા. વાતચીત શરૂ થતાં જ એ આવનાર અધ્યાપકે નિખાલસ દિલે પણ રોષપૂર્વક ધ્રુવજીને તીખુંતમતમતું સંભળાવ્યું. હું તો મૂંઝવણમાં પડ્યો. એક તરફ આવા દિવ્ય અતિથિ અને બીજી બાજુ સહવાસી અધ્યાપક. એ અધ્યાપક તો ચાલ્યા ગયા, પણ પાછળથી મેં જોયું કે ધ્રુવજી એ કડવો ઘૂંટડો એટલી કુનેહથી પી ગયા અને પચાવી ગયા કે તેની અસર જ તેમની પાછળની વાતચીતમાં મેં ન જોઈ. મને લાગ્યું કે ધ્રુવજીમાં અહિંસાવૃત્તિ સ્થિરપદ છે. ક્યારેક ગુજરાતના એક જાણીતા કવિએ મહાતડા કહેલું કે વર્ણનું તેનો જવાબ આપતા તેમણે પોતાની વ્યંગવાણીમાં એવી મતલબનું લખેલું યાદ છે કે 'ધમ્મપદ'નું નિત્ય પરિશીલન કરવાથી પણ એમણે કરેલા શબ્દો ભૂલ।

'આ બાબત હવે હું ઉદાસીન છું.' પ્રસંગે અમે બન્ને જ્યારે મળ્યા ત્યારે એમણે મને કહ્યું કે 'તમારા પત્રમાં કાંઈક રોષની છાંટ મને લાગી.' મેં કહ્યું, 'જરાય નહિ આપ એ જ પત્રમાં મારું એ લખેલ યાદ કરો કે જો આપ ગુજરાત જવાના અને ગુજરાત વાસ્તે કાંઈક કરવાના છો તો આદેશ મળતાં હું આપને શિષ્યભાવે અનુસરીશ અને કાશીનો મોહ છોડીશ.' તેઓ એકદમ ખીલી ઊઠ્યા સારાંશ એ છે, કે તેઓ પોતાના તરફથી કોઈ શત્રુ બનવાનું નિમિત્ત પૂરું ન પાડવા પૂરતા અજાતશત્રુ હતા એ જ રીતે એમણે અહિંસાવૃત્તિ વિકસાવી હતી

આ કથનની પુષ્ટિ માટે એક પ્રસંગ નોંધપાત્ર છે. થોડા વર્ષ અગાઉ દક્ષિણમા ક્યાંક યજ્ઞ થયેલ, તેમા બકરાઓનો શાસ્ત્રીય વધ પણ થયેલો આ વિશેની ચર્ચામા એઓશ્રીએ મને સબોધી કહ્યું, કે 'હવે તો અમારે બૌદ્ધ યા જૈન થવુ કે શુ ?' ધ્રુવજી વૈદિક અને તેમાય સનાતની હતા. તેમનુ વેદ-વેદાંત વિશેનુ જ્ઞાન અગાધ હતુ તેમની શ્રદ્ધા પણ વ્યાપક અર્થમા વેદાન-ગામિની જ હતી. પરંતુ ધ્રુવજી તેમ છતાં સ્પષ્ટપણે ઐતિહાસિક બળોને જાણતા તેઓ સમજતા કે બૌદ્ધ, જૈન આદિ અહિંસક પ્રબલ હિલચાલોને પરિણામે જૂના હિંસાપ્રધાન વૈદિક કર્મકાંડની ભૂમિકા નામશેષ થઈ છે અને એને સ્થાને વ્યવહારમાં અહિંસક વૈદિક ધર્મનું રૂપાન્તર થયુ છે, જે કાલ અને માનવજાતિના વિકાસને અનુરૂપ છે. હવે આવી સિદ્ધ થયેલ અહિંસાની ભૂમિકામાથી વૈદિક કર્મકાંડીઓ પ્રાચીનતાને મોહે પાછી પાની કરી હિંસા તરફ વળે, તો જેઓ માનસિક અહિંસાની ભૂમિકાવાળા પરંપરાથી વૈદિક ધર્માવલંબીઓ છે તેમણે શુ કરવું ? શુ બુદ્ધિગમ્ય અહિંસાની ભૂમિકાને છોડી તેમણે કાળજૂના હિંસાપ્રધાન કર્મકાંડ તરફ વળવું, કે કુલધર્મનો મોહ છોડી અહિંસાપ્રધાન [illegible] પંથોમાં ભળી જવું ? ધ્રુવજીના સંક્ષિપ્ત કથનનો એ પ્રમાણે મારો સમજેલો ભાવ [illegible] ઠીક હોય તો ધ્રુવજીની અહિંસાવૃત્તિની [illegible] અને કલ્પના વિશે [illegible] વધારે ભાગ્યે જ કહેવાનુ રહે છે.

ગાંધીજીના આશીર્વાદ જોઈએ. હુ તપસ્વીના આશીર્વાદમાં માનનાર છુ.' ઇત્યાદિ. ક્યાં જન્મે નાગર બ્રાહ્મણ અને શિક્ષણે તથા કાર્યે નવા રંગથી રંગાયેલ અને ક્યાં આવી તપસ્વીના આશીર્વાદની બુદ્ધિશુદ્ધ શ્રદ્ધા! અહિંસા અને તપની બુદ્ધિશુદ્ધ ભૂમિકામાંથી જ તેમનામાં સમન્વયવૃત્તિ કે જૈન પરિભાષામાં અનેકાંતવૃત્તિનો ઉદય થયેલો. તેમનાં ગમે તે વિષયનાં લખાણો કે ગમે તે વિષય પરત્વેનાં ભાષણો જુઓ તો તરત સમજાશે કે એમણે પોતાના વિચારમાં પોતાની જ ઢબે અનેકાંત ઘટાવેલો હતો, જેમ ગાંધીજીએ પોતાના વિચાર અને કાર્યમાં પોતાની ઢબે ઘટાવેલો છે

ધ્રુવજીએ કુલપરંપરાગત વિદ્યાસંસ્કારને કેટલા વિશાળ પ્રમાણમા અને કેટલી વિશદ રીતે વિકસાવ્યો હતો એ તેમના પરિચયમાં આવનાર અને તેમનુ સાહિત્ય વાચનાર સૌ જાણે છે પણ તેમની સંસ્કારશુદ્ધિ અને ભાષા-સૌષ્ઠવ વિશે કાંઈક લખવુ આવશ્યક છે. ખાસ કરી જેઓ નવાં વહેણોમા વગર વિચાર્યે ઘસડાઈ જાય છે, તેમને વાસ્તે તો લખવુ સવિશેષ પ્રાપ્ત થાય છે ધ્રુવજી કૉલેજમાં ભણ્યા, કૉલેજમા અને યુનિવર્સિટીમા ઊંચા હોદ્દાઓ ઉપર રહ્યા માત્ર અંગ્રેજ જ નહિ પણ ગવર્નર અને વાયસરૉય જેવા ઊંચા અધિકારીઓને પણ મળવાના એમને અનેક પ્રસંગ આવ્યા. દેશદેશના વિદ્વાનો પણ મળતા જ કોટ-પાટલૂન અને ટોપીના આ નખશીખ દેશી–પરદેશી વાતાવરણમાં તેઓ આજન્મ રહ્યા, છતાં હુ નથી જાણતો કે કોઈએ તેમને પોતાનો નક્કી કરેલ ગુજરાતી વેશ બદલી બીજા વેશમા સજ્જ થયેલ જોયા હોય જેમ પોષાકનુ તેમનુ પોતાનુ જ સાત્ત્વિક સૌષ્ઠવ હતું, તેમ તેમનો ખાનપાન અને પૂજાવિધિનો પણ એક ખાસ સંસ્કાર હતો આ સંસ્કારો બીજા બ્રાહ્મણોની પેઠે એમને આપમેળે પોતા

જ્યારે તેમણે હિંદુ યુનિવર્સિટીમાંથી વિદાય લીધી ત્યારે પંડિતો કે પ્રોફેસરો, વિદ્યાર્થીઓ, કર્મચારીઓ એ બધાને એવો અનુભવ થયો કે હવે આવો માણસ યુનિવર્સિટીમાં મળવો સુલભ નથી મોટા હોદ્દેદારને ત્યાં ગમે તે માણસ સરળતાથી જઈ શકતો નથી, પણ ધ્રુવજી વિશે એમ ન હતું જ્યારે જાઓ ત્યારે એમની બેઠક મુક્તદ્વાર કોઈ પટાવાળો ગેટ જ નહિ, જનાર સાધારણ વિદ્યાર્થી હોય, પંડિત હોય કે પ્રોફેસર હોય. મારા કાશી આવ્યા પછી તેઓ લગભગ પાંચેક વર્ષ અહીં રહ્યા. યુનિવર્સિટીમાં અનેક કોલેજો, અનેક નાની મોટી સંસ્થાઓ અને અનેક વિદ્યાર્થી મંડળો, જાતીય મંડળો અને સાંપ્રદાયિક મંડળો. જ્યારે જુઓ ત્યારે મિટિંગોનો પ્રવાહ ચાલતો જ હોય અને હમેશાં પ્રોફેસરોની કલણમાં તો કાંઈક ને કાંઈક હોય જ પણ એક દિવસમાં થતી અનેક મિટિંગોમાં પણ ધ્રુવજી તો હોય જ અને તે મોટે ભાગે પ્રમુખસ્થાને જ હોય તેમને અનેક વિષયોમા પ્રસંગાનુરૂપ બોલવાનુ પણ હોય. પરંતુ મેં કદી જોયુ કે સાભળ્યુ નથી કે ધ્રુવજી કાંઈ અપ્રસ્તુત બોલ્યા હોય અગર વધારે પડતું બોલી નાખવાના આ યુગના અભખરાને વશ થયા હોય આ બ્રાહ્મણસુલભ વિદ્યાવૃત્તિ અને શ્રમણસુલભ વિકસિત સંયમવૃત્તિ એ જ ધ્રુવજીની વિશેષતા છે અને તેથી જ તેઓ ‘જી પદે પહોંચ્યા.

બીજીનો અચાનક ભેટો થયો. એટલે મારી જિજ્ઞાસા સતેજ બની તેમ જ કૌશાંબીજી પ્રત્યે વિશેષ આકર્ષાયો. પણ તે વખતે મારી ઇચ્છા સિદ્ધ ન થઈ અને હું આગ્રા ચાલ્યો ગયો. એકાદ વર્ષ પછી ફરી હું પૂનામાં ગયો. પણ ઘણું કરી તે વખતે કૌશાંબીજી ત્યાં ન હતા. તેમના એક પ્રતિભાશાળી શિષ્ય પ્રો. રાજવાડે મળેલા પણ એમની મુલાકાત મારા માટે તો કૌશાંબીજી પ્રત્યેના આકર્ષણમાં જ પરિણમી. જો કે હું મળે ત્યાંથી મરાઠીમાં પ્રસિદ્ધ થયેલ બૌદ્ધ વાઙ્મય મેળવી મારી જિજ્ઞાસા અલ્પાંશે સંતોષતો હતો, છતાં તક મળે ત્યારે કૌશાંબીજી પાસે જ બૌદ્ધ વાઙ્મય શીખવાની ઉત્કટ વૃત્તિનાં બીજો રોપાયે જતાં હતાં.

હું કાશી છોડી ૧૯૨૧માં અમદાવાદ આવી ગયેલો અને ગુજરાત પુરાતત્ત્વમંદિરમાં રહેતો, પણ હજી લગી હું એ સંસ્થામાં સેવક તરીકે જોડાયો ન હતો. પુરાતત્ત્વમંદિરના બધા જ વિશિષ્ટ અધિકારીઓ મને એમાં જોડાવા કહેતા, પણ હજી લગી હું એ સંસ્થામાં તટસ્થ રહીને જ કામ કર્યે જતો. ૧૯૨૨ના છેલ્લા ભાગમાં પૂના બેઠાં મને સમાચાર મળ્યા કે કૌશાંબીજી પુરાતત્ત્વમંદિરમાં નિમાયા છે. આ સમાચારે વીજળિક અસર કરી અને હું પુરાતત્ત્વમંદિરમાં જોડાવાના નિર્ણય ઉપર આવી ગયો ને જોડાયો. હવે હું કૌશાંબીજીનો સહવાસી બન્યો. મારું પુરાતત્ત્વમંદિરમાંનું કામ તો જુદું જ હતું, પણ આ સહવાસની તકે મને એમનો અંતેવાસી પણ બનાવ્યો. કૌશાંબીજી પાસે બૌદ્ધ પાલી ગ્રંથો શીખવાની શરૂઆત તો પુરાતત્ત્વમંદિર અને મહાવિદ્યાલયના કેટલાક અધ્યાપકોએ કરેલી, પણ હું જાણું છું ત્યાં લગી તેમની પાસેથી સતત શીખવાનો યોગ માત્ર મારા જ ભાગ્યમાં લખાયો હતો. એક બાજુ તે એમની પાસે બૌદ્ધ ગ્રંથો શીખતો અને બીજી બાજુ અનેક વિષે

વ્યવહારના અનેક પ્રસંગોમાં મિત્રની પેઠે મહત્ત્વની સૂચના આપતા. નાહવા કે ખાવામાં કે એવી બીજી બાબતોમાં કાંઈ પણ કહેવું હોય તો તેઓ નિ:સંકોચ કહેતા. કૌશાંબીજીના સ્વભાવમાં કડકાઈનું તત્ત્વ બહુ ઉગ્ર હતું. એને લીધે કેટલીક વાર ઘણા નિકટના મિત્રો સાથે પણ તેઓ અથડામણીમા આવતા. હુ પણ એ અથડામણીનો સાવ અપવાદ રહ્યો છુ એમ તો ન જ કહી શકાય, પણ એવે પ્રસગે હુ સાવ મૌન રહી જતો, કારણ કે મે એમની કડક પ્રકૃતિમાં નિખાલસપણાનુ અને ક્ષણિકપણાનુ તત્ત્વ બરાબર જાણી લીધેલુ કૌશાંબીજી પણ થોડી વારમા ઠેકાણે આવી જતા, મોળા પડી જતા અને ઘણીવાર ‘પડિતજી’ એવા મધુર આમંત્રણથી સબોધી માફી પણ માગતા.

કૌશાંબીજી મૂળે ગોવાના, અને મહારાષ્ટ્રમાં વિશેષ રહેલા. તેમના જીવન-વ્યવહારમાં પણ મહારાષ્ટ્રીય ઉપરાત ભિક્ષુક ધર્મનું તત્ત્વ હતું. તેઓએ બૌદ્ધ ભિક્ષુ તરીકે સીલોન, બર્મા અને ભારતમા જીવન ગાળેલુ. બૌદ્ધ-પરંપરાના ક્ષણિકવાદની એમના જીવનમા સજીવ છાપ હતી વિદેશના વિશેષે કરી અમેરિકામા એમણે જીવન ગાળેલુ એટલે પાશ્ચાત્ય રહેણી-કરણીના પણ એમનામાં સંસ્કારો હતા ક્ષણિકવાદના અને પશ્ચિમના સસ્કારોએ તો તેમના આખા જીવનમા કામ કર્યું છે એમ મને છેક સુધી લાગતુ રહ્યું કોઈ પણ સ્થાન કે કોઈ પણ કામને સનાતનની પેઠે ચોટી રહેવાની તેમની પ્રકૃતિ જ ન હતી પ્રત્યેક ક્ષણે નવુ નવુ વાચે અને વિચારે તેમ જ [illegible] વખત લગી સેવેલા સંસ્કારોને એક ક્ષણમાત્રમા ફેકી દેતા [illegible] પણ કરે એમને જાણનાર દરેક એ સમજતો કે કૌશાંબીજી [illegible]
[illegible]

કૌશાંબીજીને નોતરવા કે તેમની પાસે બેસવું એટલે ટૂચકા, ઇતિહાસ, વિજ્ઞાન, તત્ત્વજ્ઞાન, રાજકારણ, સામાજિક જીવન વગેરે જ્ઞાનગંગાની અનેક ધારાઓ વચ્ચે સ્નાન કરવું; તેથી અનેક મિત્રો તેમને નોતરતા, અનેક તેમની પાસે ચર્ચા અર્થે જતા અને તેમનાથી સાવ જુદું દષ્ટિબિન્દુ ધરાવનાર પણ તેમની સાથેના વાર્તાલાપ માટે લલચાતો. કૌશાંબીજી જેટલા ઉગ્રપ્રકૃતિ તેટલા જ સ્પષ્ટભાષી એમને કાંઈ છુપાવવાનુ ન હતું. ગમે તેવી વિરોધી અને સમર્થ વ્યક્તિને પણ પોતાની વાત ચોખ્ખા શબ્દોમાં સંભળાવતા લોકમાન્ય તિલકે ગીતા–રહસ્યમાં ધમ્મપદના એક પદ્યનો અર્થ અન્યથા કરેલો. કૌશાંબીજીએ તેમને પૂરી રીતે ઠીક ઠીક પકડ્યા અને ભૂલ કબૂલ કરાવી. ત્રિપિટકાચાર્ય તરીકે પ્રસિદ્ધ શ્રી રાહુલજીએ ધમ્મપદનો અનુવાદ કર્યો છે, જેમા એમની મૌલિક ભૂલ રહી ગઈ છે કૌશાંબીજીએ એમને એકવાર આડે હાથે લીધા અને રાહુલજી તેમને નમી પડ્યા તથા પોતાની ભૂલ પણ કબૂલ કરી. લખાણ, ઉચ્ચારણ, વાચન, પ્રૂફ આદિ કોઈ પણ બાબતમાં પોતે સહેજ પણ ભૂલ ચલાવી ન લે. કોઈ એવી ભૂલ કરે તો તેને જરાય ન સાંખી લેતાં ચોખ્ખે ચોખ્ખું કહી દે એટલી એમની ચોકસાઈ. મર્હૂમ ગાયકવાડ મહારાજ સયાજીરાવ કૌશાંબીજીના અનન્ય ભક્ત પણ. એવા ચકોર, સમર્થ અને સહાયક રાજવી સુધ્ધાંને કૌશાંબીજી તેમની ભૂલો કે કુટેવો વિષે ખખડાવી નાખતા શ્રીમંત સયાજીરાવ અને તેમનાં પત્ની ચીમનાબાઈ સાથેના અનેક કટુ-મધુર સ્મરણો તેઓ મને કોઈ પ્રસંગે પ્રસંગે સંભળાવતા. તે ઉપરથી હું તેમની નિર્ભયતા, સત્યવાદિતા અને નિસ્પૃહતા પામી જતો

બીજી ગાંધીજીની ટીકા કરતા. કેટલીકવાર તેઓ એ ટીકા બહુ સખત પણ કરતા. ગાંધીજી ઉપવાસ અને બીજા દેહદમનો ઉપર જે ભાર મૂ[illegible] તેને કૌશાંબીજી બુદ્ધિની દૃષ્ટિએ નિહાળી અયોગ્ય લેખતા. અને તેથી [illegible] વાર કહેતા કે, ગાંધીજીમાં જે ત્યાગ, જે અહિંસાવૃત્તિ છે તેની સાથે આ[illegible] તપનો કોઈ મેળ નથી. કૌશાંબીજી આ ટીકા સૌની સમક્ષ પણ ક[illegible] જેઓ ગાંધીજીના પ્રત્યેક વ્યવહાર અને વિચારને અક્ષરશઃ માનતા [illegible] અનુસરતા તેઓ કેટલીકવાર ગાંધીજીની ટીકાથી કૌશાંબીજી પ્રત્યે અરુ[illegible] પણ ખમ, છતાં સૌમાં કૌશાંબીજીની નિષ્ઠા અને પ્રામાણિકતા વિશે એકસ[illegible] શ્રદ્ધા જોઈ શકાતી. દરેક એમ સમજતો કે કૌશાંબીજી માને છે તેમ ક[illegible] અને કોઈની શેહમાં લેશ પણ આવે તેવા નથી. દરેક જણ એમ સમ[illegible] કે કૌશાંબીજીને બુદ્ધિથી સમજાવી શકાય, પણ દબાણ કે લાલચથી [illegible] ગાંધીજી દ્વારા પ્રાર્થના ઉપર જે ભાર અપાતો અને ગીતાનું જે અ[illegible] મહત્ત્વ અંકાતું તેની સામે કૌશાંબીજી અનેક દલીલો સાથે મનોરંજક ટીકા ક[illegible] કોઈ બચાવમાં ઊતર્યો કે એનું આવી બન્યું. તે વખતે કૌશાંબીજીની [illegible] અને દલીલશક્તિનો પ્રવાહ કેવો વહેતો એ તો ત્યાં હાજર હોય તે જ સ[illegible] શકે. કૌશાંબીજી માત્ર અન્ય સંપ્રદાયો કે ધર્મોના જ ટીકાકાર નહોતા [illegible] બૌદ્ધ હોવા છતાં બૌદ્ધ-પરંપરાની ત્રુટીઓની પૂર્ણપણે ટીકા કરતા [illegible] તેમનું 'અહિંસા આણિ સંસ્કૃતિ' પુસ્તક વાંચ્યું છે તે [illegible] કૌશાંબીજી વહેમો અને ધાર્મિક દંભોના કેટલા વિરોધી હતા [illegible] તેમણે કાશીમાં [illegible] અને મને આશ્રમમાં જ [illegible]

શ્રી. શિવપ્રસાદ ગુપ્તાએ કાશી વિદ્યાપીઠમાં કૌશાંબીજી માટે તેમની જ સૂચના પ્રમાણે નાનકડું પણ સગવડિયું મકાન બાંધી આપેલું. તેમાં રહી કૌશાંબીજીએ 'અહિંસા આણિ સંસ્કૃતિ' એ પુસ્તક લખેલું. મેં તેમને પહેલેથી જ કહેલું કે આ પુસ્તક પૂરું થાય કે સ્થાનાંતર કરવું અને જોવું કે બહુ ચાહકો પણ એને પ્રગટ કરે છે કે નહિ? તેમણે એમ જ કર્યું. શેઠ જુગલકિશોર બિરલા જેવા પૈસાદાર છે તેવા જ દાની અને ઉદાર છે. હિન્દુ સંસ્કૃતિ પ્રત્યે તેમની અનન્ય નિષ્ઠા જાણીતી છે. બિરલાજી જ એક એવા છે કે જેમણે હિન્દુ પરંપરામાં બૌદ્ધોને સમ્મિલિત કરી લેવાનો સજીવ પ્રયત્ન કર્યો છે. બિરલાજી જેટલા ગીતાભક્ત તેટલા જ બૌદ્ધગ્રંથોના ભક્ત છે. બૌદ્ધ-ગ્રંથોના હિન્દી અનુવાદો રસપૂર્વક વાંચે અને સારનાથ જેવા વિશ્વવિખ્યાત બૌદ્ધતીર્થમાં એકાન્તમાં બેસી તે ઉપર મનન પણ કરે છે, એટલું જ નહિ પણ તેમણે કલકત્તા, દિલ્હી અને હિન્દુ યુનિવર્સિટીમાં બૌદ્ધશાસ્ત્રોના અધ્યયન માટે તેમ જ બૌદ્ધ મંદિર અને ધર્મશાળા માટે અનેકવિધ એટલો મોટો ખર્ચ કર્યો છે અને હજી કરે છે કે તે જાણનાર જ બિરલાજીની હિન્દુસ્તાનમાં ફરી બૌદ્ધ પરંપરા પ્રતિષ્ઠિત કરવાની ધગશ જાણી શકે. આવી વૃત્તિ ધરાવનાર શ્રીયુત જુગલકિશોર બિરલાએ મુંબઈ-પરેલમાં એક બૌદ્ધ-વિહાર બંધાવી આપ્યો ને તેમાં કૌશાંબીજીને રહેવા તેમ જ કામ કરવાની સગવડ કરી આપી. કૌશાંબીજી ગરીબ અને દલિત જાતિઓની સેવા કરવા ઇચ્છતા, તેથી તેઓ એ વિહારમાં રહેતા અને તેમણે તેનું 'બહુજન વિહાર' એવું નામકરણ કર્યું. 'બહુજન' શબ્દની પસંદગી તેમણે પાલી-ગ્રંથોને આધારે કરેલી, જેનો આધુનિક ભાષામાં સાધારણ જનતા અથવા લોકસમાજ એવો અર્થ થઈ શકે. કૌશાંબીજી એ વિહારમાં રહી પરેલના વિભાગમાં વસતા મજૂરો અને દલિતોમાં સંસ્કાર સિંચવાનું કામ કરતા. કૌશાંબીજીના એ નાના આશ્રમ-વિહારમાં અનેક જનોના ધાર્મિક તેમ જ બીજા પ્રકારના મિલન-સંમેલન થતા. આ [illegible]

દુભાતી હોય તો તેમની કોઈપણ સગવડ લઈ દબાણ તળે રહેવું તે કરતાં બીજે ગમે ત્યાં રહેવું એ જ હિતાવહ છે ખુદ ગાંધીજીએ પણ તેમને કહેલું કે તમે 'બહુજન વિહાર' શા માટે છોડો છો? પણ તેમણે એ વિહાર છોડ્યો તે છોડ્યો જ. તેમને પોતાના લખાણ વિષે એટલી જાગ્રત પ્રતીતિ હતી કે, તે ખાતર તેઓ ગમે તે સહવા તૈયાર રહેતા. એ જ પુસ્તકનુ ગુજરાતી ભાષાંતર પ્રસિદ્ધ થવાનુ હતુ ત્યારે તેમણે મને પ્રસ્તાવના લખવા સૂચવ્યુ. મારે માટે આ પ્રસંગ 'નદીવ્યાઘ્રન્યાય' જેવો હતો. એક તરફ કૌશાંબીજી સાથે મારો ગાઢ સંબંધ અને બીજી તરફ એમના પ્રતિપાદનો વિષે ક્યાક ક્યાક મારુ જુદું પડતુ દૃષ્ટિબિંદુ હુ ગમે તેટલા મૃદુભાવે લખુ તોય કૌશાબીજીના અમુક વિચારોનો વિરોધ થતો જ હતો. તેમ છતાં તેમના આગ્રહથી મેં આમુખ ઉપર કાઈક પ્રાસ્તાવિક લખી કાઢ્યું જો કે મે એમા કૌશાબીજીની અમુક એકાંગી ઉગ્ર વૃત્તિનો પ્રતિવાદ કર્યો જ હતો, છતા અમારા બે વચ્ચે ક્યારેય અતર પડ્યું નહિ ઊલટુ હુ મારા પ્રત્યે તેમનો ઉત્તરોત્તર પ્રેમ જ નિહાળી શકતો એક અથવા બીજા કારણે મારું એ પ્રાસ્તાવિક નથી છપાયુ તે નોખી વાત છે, પણ અહીં તો પ્રશ્ન કૌશાંબીજીની મક્કમ વૃત્તિ અને નિખાલસતાનો છે

વાનદાસ. ડૉ સાહેબ એમને એમની વિદ્વત્તા, વિચારસમૃદ્ધિ અને ત્યાગ-ને કારણે ગાંધીજીની પેઠે જ માનતા. આચાર્ય નરેન્દ્રદેવજી વગેરે બધા વિદ્યાપીઠના કાર્યકર્તાઓ તેમને મેળવવામાં ગૌરવ લેખતા.

કૌશાંબીજી પુરાતત્ત્વમંદિરમાં હતા ત્યારે જ તેમની સામે જૈન પરં-નો પુણ્યપ્રકોપ પ્રગટેલો. પ્રાચીનકાળમાં જૈન ભિક્ષુઓ પણ બૌદ્ધભિક્ષુઓની પ્રસંગે માંસાદિ લેતા એવું તેમણે બુદ્ધ વિષેની લેખમાળામાં લખેલું આ ાનને લીધે માત્ર કૌશાંબીજી જ નહિ પણ તેમને આશ્રય આપનાર ગાત વિદ્યાપીઠ અને તેમના સહવાસમાં રહેનાર કે આવનાર બધા જ મિત્રો કે પંડિતો પણ જૈન પરંપરાના પુણ્યપ્રકોપના પાત્ર બન્યા હતા. વસ્તુ સંપૂર્ણપણે ભુલાઈ ન હતી ત્યાં ફરી નવો ધડાકો થયો. કૌશાંબીજીએ ઠીમાં 'બુદ્ધચરિત' લખ્યું તેમાં પણ એ વિધાન તેમણે કર્યું. પહેલાં ના લેખો ગુજરાતીમાં પ્રસિદ્ધ થયેલા અને ગુજરાતમાં તો મુખ્યપણે ામ્બર જૈનો જ એટલે તેમના પુણ્યપ્રકોપે બહુ ભિંડા મૂળ ઘાલ્યાં ન , પણ મરાઠી બુદ્ધચરિત પ્રસિદ્ધ થતાં પછી તો જુદી જ સ્થિતિ આવી. ાષ્ટ્ર અને સી પી–બિરારમાં મરાઠીનો પ્રચાર વિશેષ, ત્યાં દિગમ્બર ની પ્રધાનતા અને તેમાંય વિશેષ કટ્ટરપણું, એટલે દિગમ્બર સમાજે ાંબીજી વિરુદ્ધ જિહાદી આંદોલન શરૂ કર્યું. એ આંદોલનમાં ગાજ્યાન ેનાશું સી. પી. અને બંગાળમાં પણ જૈના પડઘા પડ્યા. એક રીતે નવ્યાપી આખો જૈનસમાજ કૌશાંબીજી અને ઊકળી ઊઠ્યો. કૌશાંબીજીનો ાદ કરવા અનેક સ્થળે મંડળો અને પરિષદો ભરાયાં તેમને ઠેઠ

આંદોલન શમ્યું; પણ શ્વેતામ્બર સમાજમાં એ આંદોલન બેવડા વેગે શરૂ થયું. ગુજરાતમાં તો પહેલાં પણ આંદોલન જાગેલું. હવે એનાં મોજાં રજપૂતાના, યુ. પી, પંજાબ અને બંગાળના શ્વેતામ્બર સમાજ સુધી ફરી વળ્યાં આના છાંટા મને પણ સ્પર્શવા લાગ્યા પહેલાં મહારાષ્ટ્ર અને સી. પી માંથી અનેક દિગમ્બર ભાઈઓના મારા ઉપર પત્રો આવતા કે ‘ તમે આનો જવાબ લખો તમે કૌશાંબીજીના પરિચિત છો અને કદાચ તમે જ જૈનશાસ્ત્ર વિષે તેમને માહિતી આપી હશે ’ મુનિશ્રી જિનવિજયજી ઉપર પણ એવી જ મતલબના પત્રો આવતા કેટલીક વાર કેટલાક લેખકો અમને એવી પણ ધમકી આપતા કે તમે જવાબ નહિ લખો તો તમને પણ દોષપાત્ર ગણવામાં આવશે ઇત્યાદિ હવે યુ. પી, રજપૂતાના અને ગુજરાતમાંથી પણ અનેક પરિચિત–અપરિચિત જૈન ગૃહસ્થોના અને ત્યાગીઓના પત્રો મારા ઉપર આવવા લાગ્યા એમાં કાંઈક દબાણ, કાંઈક અનુરોધ અને કાંઈક ધમકી પણ રહેતાં. એકાદ એવા પત્રને બાદ કરી મેં કોઈને યદ્યપિ ઉત્તર વાળ્યો નથી ઘણા મિત્રો આ મુદ્દા વિષે મને મોઢે પૂછતા અને ચર્ચા પણ કરતા. કૌશાંબીજી આ વખત દરમ્યાન કાશી વિદ્યાપીઠ અને સારનાથમાં રહેતા. છેવટે તેઓ ૧૭૪૫માં મુંબઈ મળ્યા તેમણે પોતાની વિરુદ્ધ જૈનોમાં ઊભા થયેલ વ્યાપક આંદોલન વિષે મને વાત કરી અને તેમને કાશીમાં કેવી રીતે લલચાવવામાં અને શરમાવવામા આવ્યા તથા કેવી રીતે ધમકીઓ આપવામાં આવી એ વિષે બધી વાત કરી હવે તેઓ મુંબઈમા જ હતા અને મુંબઈમા તો સેંકડો જૈનો, તેમના ચાહકો તેમ જ વિરોધીઓ પણ હતા. જે તેમના ચાહકો હતા તેઓ પણ તેમના વિચારથી

સહમત થયા અને પોતાના સુધારા સાથે તેમણે એક નિવેદન પ્રગટ કર્યું. તેનો આશય એ હતો કે તેમનું વિધાન નિષ્પક્ષ પંચ તપાસે. એ પંચમાં હાઈકોર્ટના સંસ્કૃતજ્ઞ ન્યાયાધીશ હોય અને તે ગુજરાતી જ હોય. પંચ જે ફેંસલો આપે તે બંને પક્ષને માન્ય રહે. કૌશાંબીજીના આ નિવેદન પછી આગળ આંદોલન ચાલ્યું હોય તો તે હું નથી જાણતો. જ્યારે ચોમેર કૌશાંબીજીની વિરુદ્ધ આંદોલનનો દાવાગ્નિ સળગી રહ્યો હતો ત્યારે કૌશાંબીજી તેમના સ્વભાવ પ્રમાણે વિનોદમાં ક્યારેક કહેતા કે અહિંસક જૈનો મારી હિંસા તો નહિ કરે ને? આ સાથે જ કૌશાંબીજી કહેતા કે ગમે તેમ હોય છતાં હું જૈનોનો મારા પ્રત્યે પ્રેમ તો એવો જ જોઉં છું. મને આમંત્રણ-નિમંત્રણ આપનારાઓમાં મોટો ભાગ જૈનોનો જ છે અને મદદ કરનાર પણ મોટે ભાગે જૈનો જ છે, અને મારી સામે વિરોધ કરનાર પણ જૈનો મને ખૂબ મળે છે, ચાહે છે અને સત્કારે છે ત્યારે હું તેમને એટલું જ કહેતો કે જૈનોનું આંદોલન પણ અહિંસક જ હોય છે. કૌશાંબીજીએ શ્રી જુગલકિશોર બિરલાના આશ્રયનો ત્યાગ કર્યો પછી ફરી તેમની કોઈ પણ જાતની મદદ સ્વીકારી નહિ ત્યારે જૈન સમાજના કેટલાક ગૃહસ્થો ઉગ્ર વિરોધ હોવા છતાં તેમણે જૈન મિત્રોની અનેકવિધ મદદ કૃતજ્ઞતાપૂર્વક સ્વીકારી છે. તેનો હું સાક્ષી છું. એનું એકમાત્ર રહસ્ય એ જ છે કે કૌશાંબીજી જાતના [illegible] અનુરાગવાળા હતા અને એમ માનતા કે [illegible]

છેલ્લે છેલ્લે કૌશાંબીજીએ બે પુસ્તકો મરાઠી ભાષામા લખી મને સોંપ્યાં ને કહ્યુ કે આની ઘટે તે વ્યવસ્થા કરો એક પુસ્તક 'પાર્શ્વનાથનો ચતુર્યામ ધર્મ' ઉપર છે જેમા એમની પાર્શ્વનાથ પ્રત્યે ભારોભાર શ્રદ્ધા ઉભરાય છે, અને બીજું પુસ્તક 'બોધિસત્ત્વ' વિષે છે. એ નાટક રૂપે લખેલુ છે અને બૌદ્ધ વાઙ્મયના આખી જિંદગી સુધી કરેલા પરિશીલનનુ ગંભીર દોહન છે. એમની સંમતિથી મેં એ લખાણો મુબઈ શ્રી નાથુરામ પ્રેમીજીને ઘટતી સૂચના સાથે ગયા વર્ષમા કાશીથી મોકલાવી આપ્યા છે

છેલ્લાં બે-ત્રણ વર્ષ થયા કૌશાંબીજી જ્યારે મળતા ત્યારે એક માત્ર જીવનાન્તની જ ચર્ચા કરતા. તેઓ કહેતા કે 'મે મારું કામ પૂરું કર્યું છે. લખવાનુ બને તેટલુ લખ્યુ છે મળ્યા તે પાત્ર છાત્રોને શીખવવામા પણ કચાશ રાખી નથી છોકરા-છોકરીઓને પૂરતુ શિક્ષણ આપ્યુ છે અને સ્વાવલબી બનાવ્યા છે તો પછી હવે વધારે જીવી મોઘવારીમા ઉમેરો શા માટે કરવો? અને વધારે ઘડપણ ભોગવી, બિમ્તરે પડી અનેક લોકોની સેવાશક્તિનો નકામો ઉપયોગ શા માટે કરવો? તેથી હવે જીવનનો અંત કરવો એ જ મારી ચિતાનો વિષય છે' ઇત્યાદિ તેમના આ વિચારો સાભળી અમે બધા પરિચિતો અકળાતા અને કહેતા કે 'તમારા જીવનનો,

રીતે હસતે મોઢે જન્મ્યા, હસતે મોઢે આખી જિંદગી ગાળી, તેવી જ રીતે પ્રસન્ન ચિત્તે કોઈના ઉપર ભાર નાખ્યા સિવાય મૃત્યુને ભેટવા માગે છે. તેઓ મને કહેતા, કે 'જુઓને શિવપ્રસાદ ગુપ્તા કેવી રીતે બેભાન દશામા બિસ્તરે વર્ષો થયા પડ્યા છે અને તેમની શારીરિક હાજતો માટે પણ અનેક નોકરોને કેવુ રોકાવુ પડે છે! તેઓ એમ પણ કહેતા કે, 'પંડિત માલવિયજી જેવા પણ અતિ લાંબા જીવનથી કેટલુ દુઃખ અનુભવે છે?' બૌદ્ધગ્રંથો અને બીજાં શાસ્ત્રો-માથી તેઓ અનેક ઉદાહરણો ટાકી મને કહેતા કે, 'જુઓ! પાકું પાન ખરી પડે તે રીતે પ્રાચીન સતો અને તપસ્વીઓ વૃદ્ધાવસ્થામાં ખરી પડતા જીવનનો અંત બહાદુરીથી કરતા, મૃત્યુથી ન ડરતા અને કર્તવ્ય કર્યાનો સતોષ મેળવ્યા પછી તેઓ જીવવા માટે તડફડિયાં ન મારતા. તેથી હુ પણ વીરતા, સ્મૃતિ અને જાગૃતિપૂર્વક મૃત્યુને ભેટવા ઇચ્છુ છુ ' હુ બધુ સાભળી ચૂપ રહેતો; અને બચાવની દલીલોમાં ન ઊતરતો. ક્યારેક ક્યારેક મારા ધર્મભગિની મોતીબહેન જીવરાજ જેમના ઉપર કૌશાબીજીની બહુ શ્રદ્ધા હતી તે–પોતાની દલીલો કૌશાબીજી સામે આદરપૂર્વક પણ ભારપૂર્વક વહેતી મૂકતા છતાં હુ જોઈ શકતો કે કૌશાબીજીના વલણમા કાઈ ફેર ન પડતો.

સ્થાનની પસંદગીમાં તેમની મુખ્ય શરત એ હતી કે જ્યાં તેઓ સંલેખના શરૂ કરે ત્યાં દર્શનાર્થીઓની ધમાલ ન રહે, કોઈ જાણે નહિ, અને એમની એવી પણ ઇચ્છા હતી કે મરણ પછી કોઈપણ જાતનો આડંબર કરી ધન-શક્તિ કે જનશક્તિ ન વેડફવી મને તો ત્યા લગી કહેલું કે મૃતશરીર બાળવા માટે કરવો જોઈતો લાકડાનો ખર્ચ ન કરતાં તમે બધા એને જમીનમાં જ દાટજો અગર જળપ્રવાહમાં વહેવડાવી દેજો આ વિચારો પાછળ એમને હૈયે ગરીબો પ્રત્યેની લાગણી વસેલી હતી તેઓ ઇચ્છતા કે તેટલો ખર્ચ ગરીબોને મદદ કરવામાં થાય. એમ લાગે છે કે બુદ્ધ પ્રત્યેની તેમની અનન્ય ભક્તિએ તેમને બુદ્ધના જીવનમાંથી જાતે દુઃખ વેઠી બીજાનુ ભલું કરવાની કરુણા-વૃત્તિનો સંસ્કાર અર્પ્યો હોય ગમે તેમ હો છતા તેમણે જીવન-વિલોપનનો નિશ્ચય તો કરી જ લીધો હતો અને તે પણ મારણાન્તિક સંલેખના દ્વારા.

વ્યક્તિગત દૃષ્ટિએ જીવનશુદ્ધિ માટે પ્રયત્ન કરી સંતોષ મેળવ્યો હોય અને સામુહિક દૃષ્ટિએ સંઘ પ્રત્યેનાં કર્તવ્યો બજાવી કૃતાર્થતા સિદ્ધ કરી હોય એવો સાધુ અમુક પરિસ્થિતિમા સમાધિ-મરણની દૃષ્ટિએ આજીવન અનશન કરે એવું જે અતિ જૂનું જૈન વિધાન છે અને જે આજે પણ જૈનપરંપરામાં ક્યારેક ક્યારેક જીવતુ જોવામાં આવે છે તે વિધાન કૌશાંબીજીને બહુ ગમી ગયું અને પોતાના નિશ્ચય માટે ઉપયોગી લાગ્યું, તેથી તેઓ જ્યારે જીવનાન્તના નિર્ણય વિષે વાત કરતા ત્યારે જૈનપરંપરાના મરણાન્તિક 'સંથારા'નું હૃદયથી સમર્થન કરતા મેં અનેક વાર [illegible]

ન હતું; તેથી તેઓ અનશનદ્વારા સમાધિ-મરણ સાધવાના નિશ્ચય ઉપર આવ્યા હતા પણ તેઓ એવા સ્થાન અને એવી પરિસ્થિતિની શોધમાં હતા કે જ્યાં અનશન લેવાથી સમાધિ-મરણ સધાય અને સાથે જ આડંબર કે વ્યર્થ વ્યયથી મુક્ત રહી શકાય. આવા સ્થાનની શોધ ચાલતી જ હતી ત્યાં અનુકૂળ સંયોગ લાધ્યો.

ગયા જુલાઈ માસના અંતમાં જ્યારે મેં કોશાંબીજીને દોહરીઘાટ વિશે વાત કરી અને કહ્યું કે હું ત્યાં જવાનો છું ત્યારે તેમણે પણ જો હું જાઉં તો એકવાર આવવાની ઇચ્છા દર્શાવી. દોહરીઘાટ એ કાશીથી ૫૦-૬૦ માઈલ દૂર આવેલ એક સરયૂનદીનો પ્રસિદ્ધ ઘાટ છે અને ત્યાં જવાનું ખાસ આકર્ષણ મુખ્યપણે સ્વામી સત્યાનંદજીને લીધે હતું. સ્વામીજી મૂળે એ પ્રદેશના બ્રાહ્મણ અને આર્યસમાજી, પણ પાછળથી લાલા લજપતરાયદ્વારા સ્થાપિત લોક-સેવક-સમાજના આજીવન સભ્ય થયેલા. તેઓ ગ્રેજ્યુએટ છે અને સ્વભાવથી જ સેવાની જીવિત મૂર્તિ છે. તેમણે તે ઘાટ ઉપર સ્થાપેલ 'હરિજન-ગુરુકુળ' એક પ્રાણવાન સંસ્થા છે, જ્યાં યુ. પી. જેવા કટ્ટર જાતિભેદવાળા પ્રદેશના કેટલાક બ્રાહ્મણો કોઈ પણ જાતના ભેદભાવ સિવાય

૧૯૪૬ના એપ્રિલની ૨૦મી તારીખે કલકત્તાથી પાછા ફરતાં કાશી ઊતરેલો ને ત્યાં જ રોકાયેલો. દરમ્યાન ચૈતન્યજી જે ક્યારેક ચુનીલાલજી નામે સ્થાનકવાસી મુનિ હતા અને જે લગભગ ૧૩–૧૪ વર્ષ થયાં મુનિવેષ છોડી સંતબાલની પેઠે રાતદિવસ સમાજ–સેવાનું કઠણ તપ આચરે છે તે હાપુરથી મારા બોલાવ્યા કાશી આવ્યા હતા. તેમની સેવાવૃત્તિ અને સજ્જળતાથી હું તદ્દન પરિચિત હતો તેઓ પ્રાકૃતિક ચિકિત્સાના અભ્યાસી અને તે વિષે ઊંડો રસ ધરાવનાર છે. ઉપવાસ, અનશન આદિ પ્રસંગે કેમ વર્તવું એ બધું તેઓ સહેજે જાણે છે. અને વધારામાં કૌશાંબીજીના પરિચિત પણ ખરા મે તેમને જ કૌશાંબીજી સાથે જવાનુ કહ્યું અને તેઓ ગયા પણ ખરા દોહરીઘાટ જતાવેંત કૌશાંબીજીએ પ્રથમ તો એકાશન શરૂ કર્યાં પછી ધીરે ધીરે માત્ર દૂધ ઉપર આવ્યા ક્રમે ક્રમે દૂધનુ પ્રમાણ પણ ઘટાડતા ગયા અને છેવટે એનો પણ ત્યાગ કર્યો. માત્ર પાણી લેતા; અને પાછળથી ચૈતન્યજીએ તેમને પાણીમાં લીંબુનો રસ પણ આપવા માંડ્યો એકાશનની શરૂઆતથી અનશનના પ્રારંભ અને તેના ત્યાગ સુધીના રોજેરોજના બધા સમાચાર ચૈતન્યજી અમને પોસ્ટથી પાઠવતા અને કાંઈક સૂચના પણ માગતા. સાથે સાથે તેઓ કૌશાંબીજીના શારીરિક અને માનસિક બધા ફેરફારોની નોંધ રાખતા જેની ડાયરી હજી તેમની પાસે છે ચૈતન્યજીએ પરિચર્યાનો એવો સુંદર અને સર્વાંગીણ પ્રબંધ કર્યો હતો કે કૌશાંબીજીની ઉગ્ર પ્રકૃતિ પણ તેથી પૂર્ણપણે સંતોષાઈ હતી ચૈતન્યજી ડૉ. સુશીલા નાયર અને ગાંધીજી પાસેથી કેટલીક સૂચનાઓ મંગાવતા કૌશાંબીજી ગમે તેટલું ગોપવવા મથે, છતાં એમના જેવો વિશ્વવિખ્યાત માણસ અનશન [illegible]

જાગૃતિ અને પ્રસન્નતામાં કાંઈ ફેર પડ્યો ન હતો. છેવટે લાંબા ઉપવાસો પછી કૌશાંબીજી ગાંધીજીના દબાણને વશ થયા ને પારણું કર્યું. પારણા પછી ઉત્તરોત્તર માંદગી વધી ચૈતન્યજી પણ મૂંઝાયા. છેવટે એમને કાશી લાવવામાં આવ્યા. મને કૌશાંબીજી કહે, 'પંડિતજી! હું ઘરનો કે ઘાટનો રહ્યો નથી. ઉપવાસ તો છોડ્યા પણ માંદગી વધી અને બીજા પાસેથી સેવા ન લેવાની જે વૃત્તિએ મને અનશન તરફ ધકેલ્યો હતો તે જ વૃત્તિને દબાવી આજે અનેક પાસેથી વિવિધ સેવા લેવી પડે છે.' અમે એમને લેશ પણ ઓછું ન આવે તે જ રીતે બધો વ્યવહાર કરતા. એમના સદાના યજમાન પ્રો. પવાર અને બીજા અનેક ડૉક્ટર-વૈદ્ય આદિ મિત્રો એમને માટે શ્રદ્ધાપૂર્વક ખડે પગે રહેતા. એમના પુત્ર અને પુત્રી તરફથી અમારા ઉપર ઉપરાઉપર અનેક પત્રો આવતા કે અમારા પિતાની કીમતી જિંદગી ગમે તે રીતે બચાવો અને જોઈતો બધો ખર્ચ છૂટથી કરો. એમના પુત્ર એક મોકલ્યે જ જતા. અમે પાસેના મિત્રો પણ કશી ગણતરી કર્યા વિના જ તેમને આરામ આપવા બધું કરતા. છેવટે ત્રણેક માસ પછી તેઓ કાંઈક બેસતા-ઊઠતા થયા, ખોટાં પડેલ અંગો કાંઈક ક્રિયાશીલ થયાં. મેં તેમને

સંક્રાંત થએલા સંસ્કારોનો વિચાર કરું છું ત્યારે મને તેઓ અનેક રીતે જીવતા જ દેખાય છે. પુનર્જન્મનો વ્યવહારુ અને સૌની બુદ્ધિમા સહેલાઈથી ઊતરે એવો આ એક જ ખુલાસો છે એમનુ આટઆટલુ લખાણ, એમના આટઆટલા સંસ્કારગ્રાહી શિષ્યો, એમની આટઆટલી સેવા અને ત્યાગવૃત્તિ, એમનો સંસ્કારી વિશાળ પુત્ર–પુત્રી–પરિવાર–આ બધુ હોવા છતાં જો સ્થૂળ દેહનો અભાવ જ પૂર્ણ મૃત્યુ ગણાતુ હોય તો એવુ મૃત્યુ અનિવાર્ય હોઈ તે લેશ પણ ચિંતાનો વિષય હોવો ન જોઈએ

હુ અને બીજા મિત્રો મુબઈ પર્યુપણ વ્યાખ્યાનમાળામા કૌશાબીજીને આમંત્રણ આપતા ત્યારે તેઓ તેમાં વ્યાખ્યાન આપવા આવતા જ્યારે જ્યારે મે એમની પાસેથી કાઈપણ વિદ્યાકૃત્ય સાધવા ઇચ્છેલુ ત્યારે તેઓએ પ્રસન્નતાપૂર્વક મને મદદ આપેલી છે તેમની સાથેના મારા નાનામોટા અનેકવિધ સ્મરણો અને તેમણે કહેલા પોતાના જીવન–પ્રસગો જેમ તત્કાળ સ્મૃતિપથમા નથી આવતાં તેમ તે આ મર્યાદિત લેખમાં સમાવેશ પણ પામી નથી શકતાં કૌશાબીજીના બધા જ પરિચિત મિત્રોએ પોતપોતાનાં સ્મરણો અને તેમની સાથેના પ્રસગો લખી તે ઉપરથી પુનરુક્તિ વિનાની એક કૌશાબીજી–સ્મૃતિપોથી તૈયાર કરી હોય તો જ તેમનુ સમગ્ર ચિત્ર કાઈક અંશે આલેખી શકાય

—પ્રબુદ્ધ જૈન, ૧૫ જુલાઈ ૧૯૪૭

શાંતિદેવાચાર્ય અને અધ્યાપક કોશાંબીજી

[૧૧]

બૌદ્ધ વિદ્વાન શાંતિદેવાચાર્ય, તિબેટના ઇતિહાસકાર તારાનાથના કહેવા પ્રમાણે, સૌરાષ્ટ્રના નિવાસી હતા એમની જીવનવિષયક અન્ય માહિતી કેટલી યથાર્થ છે અને કેટલી અધૂરી છે તેની ચોકસાઈ કરવાનું કામ સરળ નથી. પણ એટલું ખરું કે, તે લગભગ સાતમા સૈકામાં થયેલા અને એમનો ગાઢો પરિચય એમના બે ગ્રંથો દ્વારા થયેલો છે. એમના ત્રણ ગ્રંથો પૈકી 'સૂત્રસમુચ્ચય' મેં જોયો નથી કદાચ સંસ્કૃતમાં અદ્યાપિ સુલભ પણ નથી પરંતુ 'શિક્ષાસમુચ્ચય' અને 'બોધિચર્યાવતાર' એ બે ગ્રંથો એકાધિક વાર સાંભળ્યા છે

'શિક્ષાસમુચ્ચય' તો અનેક મહાયાની સંસ્કૃત ગ્રંથોના અવતરણો અને નામોલ્લેખોથી ભરપૂર છે. એ જોતા મારા મન ઉપર ન ભૂંસાય એવી છાપ એ પડી કે, શાન્તિદેવ બહુશ્રુત અને મહાયાન પરંપરાના અસાધારણ વિદ્વાન હતા.

વિષયને લગતા વિવાદના નિર્ણય વખતે ભાગ એક નિબંધમાં કરી છે, જે નિબંધ હિંદીમાં 'શ્રી જૈન સંસ્કૃતિ સંશોધન મંડળ' કાશી તરફથી પ્રકાશિત થયેલી પત્રિકા નં. ૧૪–૧૫ રૂપે પ્રસિદ્ધ થયો છે

શાંતિદેવનો બીજો ગ્રંથ છે 'બોધિચર્યાવતાર'. તે છે પદ્યબંધ એના ઉપરની અનેક ટીકાઓ પૈકી માત્ર પ્રજ્ઞાકરમતિની પંજિકા મુદ્રિત છે તે જોઈ છે. 'બોધિચર્યાવતાર'ના દશ પરિચ્છેદો છે, ને તે પ્રવાહબદ્ધ સંસ્કૃત પદ્યરચના છે. પ્રજ્ઞાકરમતિએ પંજિકામાં જે શાસ્ત્રદોહન અને સૂક્ષ્મ ચર્ચાઓ ગોઠવી છે, તે 'બોધિચર્યાવતાર'ની મહત્તામા ખરેખર વધારો કરે છે

'બોધિચર્યાવતાર'નો પરિચ્છેદ તત્ત્વજ્ઞાનથી પરિપૂર્ણ છે અને એ શૂન્યવાદીનુ માયાવાદીને મળતું તત્ત્વજ્ઞાન તત્ત્વજ્ઞોને અનેક વિચારબિંદુઓ પૂરાં પાડે છે પરંતુ શાંતિદેવની વેગભરી કવિતાશક્તિ તો પારમિતાઓના વર્ણનમા મુક્ત વિચરે છે તે ઉત્તમ કાવ્યનો આસ્વાદ પૂરો પાડવા ઉપરાંત ઉત્ક્રાંતિશીલ જીવન જીવવાની વ્યવહારુ પ્રેરણા આપે છે આધ્યાત્મિક સાધકે કયા કયા ગુણોનો કઈ કઈ રીતે વિકાસ કરવો, એ બધુ કાવ્યમા તાદૃશ રજૂ થાય છે. જો કે, શાંતિદેવ બૌદ્ધ ભિક્ષુ હોઈ તેમની પ્રસ્તુત કવિતા બુદ્ધ અને બોધિસત્ત્વ જેવા સાંપ્રદાયિક નામો સાથે સંકળાયેલી છે. પરંતુ એનો ભાવ તદ્દન અસાંપ્રદાયિક છે એટલે કોઈ પણ સાધક પોતાને ઇષ્ટ એવા ઉપાસ્યને નજર સામે રાખી તે ક્રમનો જીવનમા ઉપયોગ કરી શકે આ રીતે જોતાં શાંતિદેવે વર્ણવેલી પારમિતાઓ એક માનવમાત્ર મેળવવા જેવી સિદ્ધિઓ છે

ખરી રીતે તથાગત બુદ્ધે બ્રહ્મવિહારરૂપે મૈત્રી આદિ ચાર ભાવનાઓનો ભારપૂર્વક વારંવાર ઉપદેશ કર્યો, ત્યારે તેમણે સમગ્ર વિશ્વમાં મૈત્રીયુક્ત ચિત્તને ભરી દેવાનું કહ્યું અને એવી મૈત્રીને પરિણામે જગતવ્યાપી કરુણા આચરવાનું પણ કહ્યું. શાન્તિદેવ એ જ બ્રહ્મવિહારના તંતુને મહાયાન ભાવના રૂપે પોતાની કવિતામાં ગૂંથે છે.

જેમ ગાંધીજીની દૈનિક પ્રાર્થનામાં

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनाम् आर्तिनाशनम् ॥

એ મૈત્રી અને કરુણાપૂર્ણ ભાવના આવે છે, તેમ જ શાન્તિદેવે 'બોધિચર્યાવતાર'માં એવી ભાવના કરી છે. 'બોધિચર્યાવતાર' વાંચતા એ છાપ નથી પડતી કે શાન્તિદેવ શૂન્યવાદી છે; પણ છાપ એ ઊઠે છે કે, તેમની ધગશ આખા વિશ્વનું કલ્યાણ કરવાની છે અને તે માટે બોધિના સદ્‌ગુણો કેળવવાની છે.

હતી, અને તેમનુ મન સંપ્રદાયથી પર હતું. એટલે તેમના નામ સાથે આવુ એક લઘુ પણ નિત્યપાઠ્ય પુસ્તક ગુજરાત વિદ્યાપીઠ પ્રસિધ્ધ કરે તે આવકારદાયક છે હુ એમ માનુ છુ કે, ધર્મની ઉત્તરોત્તર વધતી જતી વ્યાપક ભાવના સાથે આ પારમિતાઓનો પૂરેપૂરો સુમેળ છે.

પ્રો૦ વિન્ટરનિત્ઝે શાંતિદેવ વિષે લખ્યું છે.[૧] તેમણે 'બોધિચર્યાવતાર'ને લક્ષીને જે વર્ણન કર્યું છે, તે તેમના મન ઉપર શાંતિદેવ વિષે કેવી અસર થયેલી એનો પુરાવો છે. આવા એક ગ્રંથનુ સળંગ ભાષાંતર ગુજરાતીમા હોય તો તે ઇચ્છવા જેવુ છે, પણ એવો સમય આવે તે પહેલાં પ્રસ્તુત લઘુ પુસ્તિકા ગુજરાતી વાચકોને શાંતિદેવ તરફ આકર્ષિત કરશે એ નિ:શંક છે.

મહાયાની ભાવનાની આપણા દેશના અનેક સંપ્રદાયો ઉપર ભારે અસર થઈ છે. ભગવદ્‌ગીતા ખરી રીતે ભાગવત પરંપરાને આશરી અનાસક્ત કર્મયોગનો ઉપદેશ કરે છે, ત્યારે તે પોતાની રીતે આવી ભાવના જ ઉપસ્થિત કરે છે

એ જ રીતે શાંતિદેવ પછી લગભગ સો વર્ષ બાદ થયેલ સુપ્રસિદ્ધ જૈન આચાર્ય હરિભદ્ર પણ મહાયાની ભાવનાથી રંગાયેલા છે આમ તો જૈન પરંપરા વૈયક્તિક મોક્ષવાદી જ રહી છે તેમ છતાં શાંતિદેવ જેવાના ગ્રંથોમાંની મહાયાની ભાવનાએ હરિભદ્રનું મન [illegible] લાગે છે, એનો પુરાવો એમના 'યોગબિંદુ' ગ્રંથમાં છે હરિભદ્ર જૈન પરંપરાસંમત ભિન્નગ્રંથી અર્થાત્ જેણે મોહગ્રંથી તોડી હોય એવા સમ્યક્-દૃષ્ટિ સાધકની બોધિસત્ત્વ સાથે તુલના કરે છે, અને કહે છે કે, [illegible] ભિન્નગ્રંથી [illegible] જગદુદ્ધારનો સંકલ્પ કરે તો તે તીર્થંકર—[illegible] [illegible] સ્વજન આદિનો ઉદ્ધાર કરવાનો સંકલ્પ કરે તો તે [illegible] અનુગામી થાય છે, અને જે પોતાના જ [illegible] સંકલ્પ કરે [illegible] [illegible]—[illegible]

રીતે મહાયાન ભાવનાનું પ્રાધાન્ય દર્શાવ્યું, જે જૈન પરંપરાએ પણ ધડો લેવા જેવુ છે.

હવે રાજકારણ, સમાજકારણ કે અર્થકારણ એકેએક ક્ષેત્રમાં સંકુચિત થયે પોસાય તેમ નથી. એવી સ્થિતિમાં જો ધર્મ પણ પંથ અને સંપ્રદાયની સંકુચિત સીમાઓમાં પુરાઈ તદનુસારી જ વિચાર–આચાર કરે તો તે પણ હવે ટકી ન શકે. ગાધીજીએ જીવનના પ્રત્યેક ક્ષેત્રમા મહાયાની માનસ જીવી બતાવ્યુ છે, અને આજે આપણે જોઈએ છીએ કે આચાર્ય વિનોબા એ ભાવનાને કેવી રીતે વિકસાવી રહ્યા છે તેમ જ કેવી રીતે જીવી બતાવે છે. આવી અનુકૂળ પરિસ્થિતિમાં પ્રસ્તુત લઘુ પુસ્તિકાનુ મૂલ્ય વધારે અકાશે એ નિશક છે. અને તે રીતે 'આત્મસિદ્ધિ' પછી આ પુસ્તકની પસદગી સવેળાની છે.

એમ તો શ્રી મુકુલભાઈએ કૌશાબીજીનુ જીવનચરિત્ર સક્ષેપમા જુદું આપ્યુ છે એમની 'આપવીતી' અને બીજી સામગ્રીને આધારે એ ચરિત ટૂકમા પણ કૌશાંબીજી વિષે બધી જરૂરી માહિતી પૂરી પાડે છે કૌશાબીજીનુ જીવન જે વાચે તેને નિરાશા તો સ્પર્શી જ ન શકે નિરાશા અને અંધકારના ઊડા ખાડામાથી સતત સ્વપ્રયત્ને કૌશાંબીજી કેવી રીતે પ્રકાશના માર્ગ ઉપર આવ્યા અને અનેકોના ગુરુ બન્યા એનું ચિત્ર એમના સક્ષિપ્ત જીવનચરિત્રમાથી પણ અવગત થાય છે એટલે તે વિષે અહીં મારે કાઈ લંબાવવુ નથી.

તેમ છતા, તેમની સાથે મારો જે અનેક વર્ષો લગી સતત પરિચય રહ્યો, તેમની પાસે મેં જે કાઈ બૌદ્ધ શાસ્ત્રો વિષે મેળવ્યુ, અને છેવટે ૧૯૪૬મા તેમના અનશનના સાક્ષી થવાનો પ્રસંગ આવ્યો, તે બાબત કાંઈક લખું તો તે વાચકોને ઉપયોગી પણ થશે, અને એમના જીવન અગે કેટલીક હજી લગી કદાચ અનાત રહેલી બાબતો પ્રકાશમાં આવશે

ઈ સ ૧૯૧૭મા એમને ઘેર જ હુ પૂનામાં કૌશાંબીજીને પ્રથમ વાર મળ્યો, જ્યારે કૃપલાનીજી પણ હતા ચર્ચા અહિંસાથી શરૂ થઈ, અને મારો ઘણા વખત પહેલાથી બૌદ્ધ પિટકો ગુરુમુખથી શીખવાનો સંસ્કાર જાગ્યો. પણ એ વાત તે વખતે ત્યા જ રહી

૧૯૨૨માં કૌશાંબીજી ગુજરાત વિદ્યાપીઠમા પુરાતત્ત્વ મદિર ખાતે જોડાયા મને આ તક મળી. મેં પણ ગુજરાત વિદ્યાપીઠમાં સીતમગ જોડાવાનું

નક્કી કર્યું. હાથમાં લીધેલ કામ ઉપરાંત કૌશાંબીજી પાસે બૌદ્ધ ગ્રંથોનું અધ્યયન શરૂ કર્યું સાથે રહેવાનું, જમવાનું અને ફરવાનું હોવાથી કૌશાંબીજીની અનેક વિષયસ્પર્શી વિનોદી પ્રતિભાનો પણ લાભ મળતો ગયો. કૌશાંબીજી તે વખતે વિદ્યાપીઠ માટે અમુક પુસ્તકો તૈયાર કરતા હતા. મરાઠીમાં લખે અને તેનો ગુજરાતી અનુવાદ પેણ સાંભળે હું તો લગભગ બધામાં સાક્ષી બનતો અને એમની પાસે શીખેલ 'અભિધર્મ' જેવા ગ્રંથનો વર્ગ પણ લેતો ૧૯૨૫ સુધી આમ ચાલ્યું.

ફરી ૧૯૨૭થી ૨૯ સુધીમાં તેઓ ગુજરાત વિદ્યાપીઠમાં આવ્યા ત્યારે પણ આવો જ ક્રમ ચાલ્યો કૌશાંબીજી શાસ્ત્રાભ્યાસી તો હતા જ, પણ તેમની ઇતિહાસ અને સંશોધનની દૃષ્ટિ બહુ સ્પષ્ટ હતી વિશેષતા એમની એ હતી કે, તેઓ પોતાને સત્ય લાગે અને સમજાય એ વાત અપ્રિય હોય તોય મિત્રો કે બીજા મળનારને કહેતા કદી ખમચાતા નહીં. તેથી કેટલીક વાર અનેકોનો વિરોધ પણ વહોરતા પણ દરેક જણ સમજી જતો કે કૌશાંબીજી છે ચોખ્ખા દિલના, એટલે પાછું અનુસંધાન થતાં વાર ન લાગતી કૌશાંબીજીને જે મળે તે તેમના પ્રત્યે આકર્ષાય.

ગુજરાતમાં રહ્યા પછી કૌશાંબીજીને મહારાષ્ટ્ર કરતાં જુદો જ અનુભવ થયો. તેઓ કહેતા કે, મહારાષ્ટ્ર [illegible] અને [illegible] કે, જ્યારે ગુજરાતમાં એવું તત્ત્વ ઘણું ઓછું છે તેથી તેમણે ગુજરાતમાં અનેક વર્ગના અનેક મિત્રો મેળવ્યા.

પ્રજ્ઞાનો મને પરિચય થયો. હું પૂછું કે, 'જૈન નય અને નિક્ષેપના સ્થાનમાં બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં શું છે?' તો કૌશાંબીજી થોડીવારમાં જ પ્રથમ મોઢેથી કહી દે કે આનો ઉત્તર આવો છે અને અમુક ગ્રંથમાંથી મળશે. પછી તરત જ એ બૌદ્ધ ગ્રંથોના અંબારમાંથી કોઈ ને કોઈ ગ્રંથમાંથી મને પોતે કહેલ વાતનો પુરાવો કાઢી આપે. મારા સહચારી ભાઈ ખુશાલદાસ તે પુરાવાનું સ્થાન લખી લે. આમ રોજ સવારે બે કલાક વિદ્યાવ્યાસંગ ચાલે. મારી ધારણા એ હતી કે કૌશાંબીજીના બૌદ્ધ જ્ઞાન-ખજાનામાંથી મળે તેટલી વસ્તુ મેળવી, નોંધી લઈ, ક્યારેક જૈન અને બૌદ્ધ મંતવ્યોનો તુલનાત્મક અભ્યાસ રજૂ કરવો, અને સાથે સાથે વૈદિક દર્શનોની પણ યથાસંભવ તુલના કરવી. કૌશાંબીજીએ સામગ્રી એટલી બધી આપી હતી કે જો એ ગુમ થયેલ નોટ હજી પણ મળી આવે, તો તુલનાનો મનોરથ સિદ્ધ થાય.

આમ છ માસના સહવાસ પછી કૌશાંબીજી જરાક દૂર ગયા, દૂર એટલે કાશી વિદ્યાપીઠ. ત્યાં તેમણે 'હિંદી સંસ્કૃતિ આણિ અહિંસા' એ પુસ્તક લખ્યું. જ્યારે તેઓ એ પુસ્તક લખતા હતા, ત્યારે પણ અમે બન્ને તો અવારનવાર મળતા જ. તેઓ પોતાનું લખવાનું અને લખેલું મને મોઢે કહી જાય અને સંમતિ માગે. વળી ક્યારેક કહે કે, મારું આ પુસ્તક કોઈ પ્રગટ નહીં કરે, એટલું જ નહીં પણ કોઈ કંપોઝ સુધ્ધાં નહીં કરે. કારણમાં તેઓ કહેતા કે, વૈદિક, બૌધ્ધ અને જૈન એ બધાની તીવ્ર સમાલોચના એમાં કરી છે. અને જે કંપોઝીટર કે પ્રકાશક હશે તે પણ કોઈ ને કોઈ ઉક્ત પરંપરામાંનો હોઈ મારી વિરુધ્ધ જ જશે. પણ હું હમેશાં કહેતો કે, એવું કાંઈ નથી. દરમ્યાન તેમના મિત્ર બાબુ શિવપ્રસાદ ગુપ્તા જેઓ પથારીવશ જ હતા, તેમણે કહેલું કે, એ પુસ્તક હું હિંદીમાં કરાવી પ્રસિધ્ધ કરીશ. તેમણે હિંદી અનુવાદનું કામ તેમના ઓળખીતાને આપ્યું પણ ખરું. પરંતુ મને લાગે છે કે આ બાબતમાં કૌશાંબીજી જ સાચા હતા. એ પુસ્તક એમ ને એમ પડી રહ્યું. અને છેવટે એનો ગુજરાતી અનુવાદ ગુજરાતમાં જ પ્રથમ પ્રસિદ્ધ થયો, અને હિંદી અનુવાદ તો કૌશાંબીજીના સ્વર્ગવાસ પછી જ.

કાશી વિદ્યાપીઠ છોડી કૌશાંબીજી મુંબઈના એક વિભાગ પરેલમાં 'બહુજન વિહાર'માં પછાત જાતિને સંસ્કાર આપવા રહ્યા. જ્યારે તેમને એમ લાગ્યું કે, તેમની ગીતાની સમાલોચનાથી અમુક દાતાઓને માઠું લાગ્યું છે, ત્યારે તેમણે આપમેળે પરેલ છોડ્યું.

પાછા અમદાવાદ અને સારનાથ આદિમાં રહી તેઓ મુંબઈ આવ્યા.

પણ એમને એવો સંકલ્પ ઊઠ્યો કે, હવે મારું જીવનકાર્ય મેં પૂરું કર્યું છે, ઉંમર થઈ છે, વધારે કરવાનુ રહ્યું નથી, તો પછી જીવન નકામુ ગાળવું અને ઘડપણમાં બીજાઓની સેવા લેવી, એ આ મોંઘવારી અને ગરીબીના સમયમા યોગ્ય નથી માટે આમરણાંત અનશન કરવુ

અમે મિત્રો મુબઈમાં એમને સમજાવવા મથતા કે, તમે હજી શક્ત છો, તમારી પાસે હજી ઘણું દેવા જેવુ છે, અને તમારો સમગ્ર જીવનભાર અમે સહર્ષ વહીશુ. તેમને અમારા બધા ઉપર વિશ્વાસ તો હતો, પણ પોતાના સંકલ્પથી ચ્યુત થવા તેઓ તૈયાર ન હતા તેઓ સંકલ્પના બચાવમાં જૈન પરપરામાં જાણીતી મારણાંતિક સંલ્લેખનાની વાત કરતા; અને તથાગત બુદ્ધના કથનમાંથી પણ ટેકો આપતા પ્રથમ પ્રથમ કોશાંબીજી જૈનોની ઉગ્ર તપસ્યાના સખત વિરોધી હતા. છતા આ વખતે તેઓ એટલું કહેતા કે, એવી મારણાતિક તપસ્યાનુ પણ જીવનમા ક્યારેક સ્થાન છે જ. એમણે આવા વિચારથી પોતાનો સંકલ્પ અડગ બનાવ્યો

૧૯૪૬મા તેઓ અને હું ફરી કાશીમા મળ્યા હવે એ સંકલ્પ પાર પાડવાની ઘડી તેમને મન આવી લાગી હતી. દેશમા રમખાણો અને જ્યા ત્યાં મારકાપ ચાલતા હતા એમનાથી આ દુ ખ સાભળ્યું પણ જતુ નહીં. છેવટે અમે મિત્રો તેમના અડગ સંકલ્પને જોઈ ગેળા પડ્યા અને અમે વિચાર્યું કે, હવે આમને રસ્તો કરી આપવો અનશન ક્યા કરી કરવું, પરિચર્યામા કોણ રહે, તે વખતે કોઈ ભીડ ન કરે અને કોઈ પણ જાતનો પ્રચાર ન થાય—આ બધા મુખ્ય પ્રશ્નો હતા. મને અને પં. શ્રી દલસુખ માલવણિયાને એનો ઉત્તર મળી ગયો અને અમે કોસાંબીજીને ક...

ઉપવાસો શરૂ થયા. દિવસની નોંધ ચૂનીલાલ અમને કાશીમાં મોકલે અને જરૂરી સાધન કાશીથી પૂરાં પડાય.

કૌશાબીજીએ વચન લીધેલું કે, આ અનશનના સમાચાર તેમનાં પુત્ર-પુત્રીઓ વગેરેને ન આપવા અને અન્યત્ર પ્રચાર પણ ન કરવો. પરંતુ એ વાત થોડી જ છાની રહે ? છેવટે દિલ્હી સુધી વાત પહોચી. શ્રી. પુરુષોત્તમ ટંડનજી વગેરેની વિનવણીઓ વ્યર્થ ગઈ ગાંધીજી તરફથી ઉપવાસ બંધ કરવા માટે આવતા તારો પણ વ્યર્થ ગયા. ગાધીજીએ સૂચના આપી કે, કૌશાંબીજી તેમને દિલ્હીમા મળે જવાબમા કૌશાંબીજીએ જણાવ્યુ કે, જો તમે મને અહી આવીને અનશનની અયોગ્યતા સમજાવશો, તો હુ છોડી દઈશ. પણ તે વખતે એક ક્ષણ માટે પણ ગાંધીજી દિલ્હી છોડી શકે તેમ ન હતુ આ રીતે ઉપવાસો લબાતા ગયા. કૌશાબીજીને કેટલાક દિવસો પછી વેદના પણ થવા લાગી. છેવટે ગાંધીજીની વિનતિને માન આપી, ઘણુ કરી ઓગણીસમા દિવસે તેમણે અનશનથી દેહત્યાગનો વિચાર પડતો મૂકયો તેમને પારણું કરાવ્યુ અને મિત્રો તેમને કાશીમા લઈ આવ્યા

કાશીમાં તેમની પરિચર્યા કરનાર અનેક હતા અધ્યાપક પવારને ત્યાં તેઓ રહેતા તેઓ કહેતા કે, જવા લાયક સ્વાસ્થ્ય આવે તો મુબઈ જઈશ અને ત્યાથી વર્ધા. એ પ્રમાણે તેમણે છેવટે વર્ધા પાસે સેવાગ્રામમાં જ જીવન પૂર્ણ કર્યું. છેવટના દિવસોમા કાકાસાહેબની યોજના પ્રમાણે આશ્રમવાસીઓએ તેમની સપૂર્ણ પરિચર્યા કરી.

તેમણે 'પાર્શ્વનાથાચા ચાતુર્યામ ધર્મ' અને 'બોધિસત્ત્વ' નાટક એ બે લખેલ પુસ્તકો સોપી મને કહ્યું હતુ કે, આ છપાય નહીં તોયે એની નકલો સુરક્ષિત રહે છેવટે આ બને મરાઠી પુસ્તકો કાકાસાહેબની પ્રસ્તાવના સાથે ધર્માનદજીની સ્મારક-માળામાં પ્રસિદ્ધ થયાં છે અને તે હિંદી તેમ જ ગુજરાતીમા પ્રસિદ્ધ થવા યોગ્ય છે

કૌશામ્બીજીને એક પુત્ર અને ત્રણ પુત્રીઓ. તેમના પુત્ર કૌશાંબીજી જેવા જ પ્રતિભાશાળી છે અને પૂનાની ફર્ગ્યુસન કૉલેજમા ગણિતના અધ્યાપક છે તેમની પુત્રીઓ પણ વિદ્યામા એક એકથી ચડિયાતી એમની સંતતિ એમના માટે બધુ કરી છૂટવા તૈયાર. તે ઉપરાંત બધી જ કોમના, બધા જ પંથના અને બધી જ કક્ષાના અનેક સામાન્ય જન, વિદ્વાન અને શ્રીમાન તેમના ચાહક; અને તે પણ કાંઈક કરી છૂટવુ એવી વૃત્તિવાળા ચાહક, છતા કૌશાંબીજી પોતાના બુદ્ધિપૂર્વક સંકલ્પથી જરા પણ ચલિત ન થયા તેમનું

બ્રહ્મદેશ, સારનાથ અને કુશિનારા આદિમા બૌદ્ધ પરંપરાને અનુસરી સમાધિ ભાવનાઓ પણ કરેલી. તેમણે ચિત્તનિરીક્ષણનો અભ્યાસ તો એટલો બધો વધારેલો કે હુ જ્યારે જ્યારે યોગશાસ્ત્ર અને જૈન તથા બૌદ્ધ પરંપરાના ધ્યાનમાર્ગની શાસ્ત્રીય વાતો કાઢું ત્યારે તેઓ એ વિષેનુ જાણે સ્વાનુભૂત ચિત્ર જ ન હોય તેમ નિરૂપણ કરે.

આવા એક વિદ્યા, પ્રજ્ઞા અને સમાધિના આરાધકનુ ટૂંકું પણ પ્રેરક એવુ જે જીવનચરિત આ પુસ્તિકા સાથે સંકળાયેલુ છે, તેનુ મૂલ્ય 'બોધિચર્યાવતાર'માં નિરૂપેલી પારમિતાઓ અંગેના શ્લોકોથી જરાય ઓછુ નથી. વાચકો એને માણે *

---

* 'બોધિચર્યાવતાર' (નવજીવન પ્રકાશન)નું પુરોવચન.

ઉપવાસો શરૂ થયા. દિવસની નોંધ ચૂનીલાલ અમને કાશીમાં મોકલે અને જરૂરી સાધન કાશીથી પૂરાં પડાય.

કૌશાંબીજીએ વચન લીધેલું કે, આ અનશનના સમાચાર તેમનાં પુત્ર-પુત્રીઓ વગેરેને ન આપવા અને અન્યત્ર પ્રચાર પણ ન કરવો. પરંતુ એ વાત થોડી જ છાની રહે? છેવટે દિલ્હી સુધી વાત પહોંચી શ્રી. પુરુષોત્તમ ટંડનજી વગેરેની વિનવણીઓ વ્યર્થ ગઈ. ગાંધીજી તરફથી ઉપવાસ બંધ કરવા માટે આવતા તારો પણ વ્યર્થ ગયા. ગાંધીજીએ સૂચના આપી કે, કૌશાંબીજી તેમને દિલ્હીમા મળે જવાબમાં કૌશાંબીજીએ જણાવ્યુ કે, જો તમે મને અહી આવીને અનશનની અયોગ્યતા સમજાવશો, તો હુ છોડી દઈશ. પણ તે વખતે એક ક્ષણ માટે પણ ગાંધીજી દિલ્હી છોડી શકે તેમ ન હતુ. આ રીતે ઉપવાસો લંબાતા ગયા કૌશાંબીજીને કેટલાક દિવસો પછી વેદના પણ થવા લાગી. છેવટે ગાંધીજીની વિનતિને માન આપી, ઘણુ કરી ઓગણીસમા દિવસે તેમણે અનશનથી દેહત્યાગનો વિચાર પડતો મૂક્યો તેમને પારણુ કરાવ્યુ અને મિત્રો તેમને કાશીમા લઈ આવ્યા

કાશીમાં તેમની પરિચર્યા કરનાર અનેક હતા. અધ્યાપક પવારને ત્યાં તેઓ રહેતા. તેઓ કહેતા કે, જવા લાયક સ્વાસ્થ્ય આવે તો મુબઈ જઈશ અને ત્યાથી વર્ધા. એ પ્રમાણે તેમણે છેવટે વર્ધા પાસે સેવાગ્રામમા જ જીવન પૂર્ણ કર્યું. છેવટના દિવસોમાં કાકાસાહેબની યોજના પ્રમાણે આશ્રમવાસીઓએ તેમની સપૂર્ણ પરિચર્યા કરી

તેમણે 'પાર્શ્વનાથાચા ચાતુર્યામ ધર્મ' અને 'બોધિસત્ત્વ' નાટક એ બે લખેલ પુસ્તકો સોંપી મને કહ્યું હતુ કે, આ છપાય નહીં તોયે એની નકલો સુરક્ષિત રહે છેવટે આ બને મરાઠી પુસ્તકો કાકાસાહેબની પ્રસ્તાવના સાથે ધર્માનંદજીની સ્મારક-માળામા પ્રસિદ્ધ થયા છે અને તે હિંદી તેમ જ ગુજરાતીમાં પ્રસિદ્ધ થવા યોગ્ય છે.

કૌશાંબીજીને એક પુત્ર અને ત્રણ પુત્રીઓ. તેમના પુત્ર કૌશાંબીજી જેવા જ પ્રતિભાશાળી છે અને પૂનાની ફર્ગ્યુસન કૉલેજમા ગણિતના પ્રાધ્યાપક છે તેમની પુત્રીઓ પણ વિદ્યામા એક એકથી ચડિયાતી એમની સંતતિ એમના માટે બધુ કરી છૂટવા તૈયાર. તે ઉપરાંત બધી જ કોમના, બધા જ પંથના અને બધી જ કક્ષાના અનેક સામાન્ય જન, વિદ્વાન અને શ્રીમાન તેમના ચાહક; અને તે પણ કાંઈક કરી છૂટવું એવી વૃત્તિવાળા ચાહક, જ્યારે કૌશાંબીજી પોતાના બુદ્ધિપૂર્વક સંકલ્પથી જરા પણ ચલિત ન થયા. તેમને

બ્રહ્મદેશ, સારનાથ અને કુશિનારા આદિમાં બૌદ્ધ પરંપરાને અનુસરી સમાધિ ભાવનાઓ પણ કરેલી. તેમણે ચિત્તનિરીક્ષણનો અભ્યાસ તો એટલો બધો વધારેલો કે હુ જ્યારે જ્યારે યોગશાસ્ત્ર અને જૈન તથા બૌદ્ધ પરંપરાના ધ્યાનમાર્ગની શાસ્ત્રીય વાતો કાઢું ત્યારે તેઓ એ વિષેનુ જાણે સ્વાનુભૂત ચિત્ર જ ન હોય તેમ નિરૂપણ કરે.

આવા એક વિદ્યા, પ્રજ્ઞા અને સમાધિના આરાધકનુ ટૂંકું પણ પ્રેરક એવુ જે જીવનચરિત આ પુસ્તિકા સાથે સંકળાયેલુ છે, તેનુ મૂલ્ય 'બોધિચર્યાવતાર'માં નિરૂપેલી પારમિતાઓ અંગેના શ્લોકોથી જરાય ઓછુ નથી. વાચકો એને માણે *

---

* 'બોધિચર્યાવતાર' (નવજીવન પ્રકાશન)નું પુરોવચન.

આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી

[૧૨]

આજે જે હું કહેવા ઇચ્છું છું તેની જવાબદારી બીજા કોઈ ઉપર નથી. શ્રદ્ધેય આચાર્યશ્રી વિષે બોલવાનો મારો અધિકાર જો કાંઈ હોય તો તે ફક્ત એટલો જ છે કે લગભગ ૨૫૦ વર્ષથી બંધ પડ્યા જેવા શ્રુત અભ્યાસનો જે વિશાળમાર્ગ ન્યાયાંભોનિધિ શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શરૂ કર્યો અને જેમાં સમયને છાજે એવું તેજ મૂક્યું તે માર્ગનો હું સાધારણ પથિક છું. મહારાજશ્રીના જીવન વિષે ફક્ત બે બાબત ઉપર મુખ્ય દૃષ્ટિ અત્યારે મેં રાખી છે. ૧. જૈન ઇતિહાસમા મહારાજજીનો દરજ્જો અને તેના કારણો ૨. તેમની જગ્યા કોણ લઈ શકે?

૧. મહારાજજીનો દરજ્જો અને તેનાં કારણો

૨૫૦૦ વર્ષના જૈન ઇતિહાસમાં શ્વેતાંબર–દિગંબર બન્ને સંપ્રદાયે કેટલીક વિભૂતિઓ એવી જન્માવી છે કે ઇતિહાસના લેખક અને અભ્યાસીનું ધ્યાન તેની તરફ ગયા વિના રહે જ નહિ. એવી વિભૂતિઓમા કેટલીક વિરલ વિભૂતિઓ છેલ્લા હજાર વર્ષમાં શ્વેતાંબર સંપ્રદાયે અર્પી છે તેમા મહારાજશ્રીનુ સ્થાન આવે છે. વાચક યશોવિજયજી પછી તો બસો વર્ષે બહુશ્રુતપણાનુ સ્થાન મહારાજજીએ જ વાસ્તવિક રીતે સંભાળી લીધુ છે. તેથી છેલ્લા અઢીસો વર્ષના ઇતિહાસમા તો શ્વેતાંબર કે દિગંબર બન્ને પંથમા એક મહાન વિભૂતિ તરીકે મહારાજજી જ નજરે આવે છે તેમને આ દરજ્જો પ્રાપ્ત થયાનાં ખાસ વિશેષ કારણો છે, તેની ટૂંકમા નોંધ લઈએ.

(૧) શ્રદ્ધા અને બુદ્ધિ

મહારાજજીમા ગમે તેટલી અડગ શ્રદ્ધા હોત અને ગમે તેટલો શાસન અનુરાગ હોત છતાં જો તેમણે બુદ્ધિદ્વાર ખુલ્લું ન મૂક્યુ હોત અને મેળવી શકાય તેટલા સમગ્ર જ્ઞાનને મેળવવા અખંડ પુરુષાર્થ કર્યો ન હોત તો તેઓ આચાર્ય પરંપરામા માત્ર નામના જ દાખલ થયા હોત. તેમણે પોતાની બુદ્ધિને શાસ્ત્રવ્યાયામની કસોટીએ જિંદગીભર કસી. અને જે વખતે છાપેલા પુસ્તકો બહુ જ ઓછાં હતાં તે વખતે અત્યારના જમાનાનો માલુમ ન હતી

શકે તેટલા જૈન જૈનેતર દર્શનોના અનેક વિષયોનાં સંખ્યાબંધ પુસ્તકો વાંચી કાઢ્યા. જે વખતે જૈન પરંપરામાં ઐતિહાસિક દૃષ્ટિ આવી ન હતી અને જૈન પુસ્તકો ઉપરાંત શિલાલેખો, તામ્રપત્રો, ભૂગોળ, ભૂસ્તર આદિ વિદ્યાઓને પણ બહુશ્રુતપણામા સ્થાન છે એ કલ્પના જ જાગી ન હતી તે વખતે મળેલા બધાં સાધનો જાણી ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ જૈનદર્શનની પ્રાચીનતા અને મહત્તા સ્થાપિત કરવાનો પ્રયત્ન એમણે જ પહેલવહેલા કર્યો હતો. એમનુ આશ્ચર્ય પમાડે એવુ વિશાળ વાચન, અદ્‌ભુત સ્મરણશક્તિ અને ઉત્તર આપવાની સચોટતા એમના સ્મરણીય પુસ્તકોમા પદે પદે દેખાય છે. એ જ બુદ્ધિયોગે તેમને વિશિષ્ટ દરજ્જો આપ્યો છે

(૨) ક્રાંતિકારિતા

તેમનામાં બુદ્ધિયોગ ઉપરાત એક બીજુ તત્ત્વ હતુ, કે જે તત્ત્વે એમને મહત્તા અર્પી છે તે તત્ત્વપરીક્ષક શક્તિનુ અગર તો ક્રાંતિકારિતાનુ. ઘણા વર્ષ અપાર પૂજાના ભાર નીચે એક સપ્રદાયમા બદ્ધ થયા પછી તેને કાચળીની પેઠે ફેંકી દેવાનુ સાહસ એ તેમની ક્રાંતિકારિણી શક્તિ સૂચવે છે. એમના આત્મામા કોઈ એવી સત્યશોધક શક્તિ હોવી જોઈએ કે જેણે તેમને રૂઢિના ચીલા ઉપર સંતુષ્ટ રહેવા ન દીધા એમનુ જીવન બીજા ત્રીસેક વર્ષ લબાયુ હોત તો તેમની ક્ષત્રિયોચિત ક્રાતિકારિણી પ્રકૃતિએ તેમને કઇ ભૂમિકાએ પહોચાડ્યા હોત એની કલ્પના કરવી એ કઠણ છે પણ એટલું તો એમના તરવરતા જીવનમાંથી ચોખ્ખુ દેખાય છે કે તેઓ એકવાર પોતાને જે સાચું લાગે તેને કહેવા અને આચરવામાં કોઈ મોટા ખાનખાનાની પરવા કરે કે પ્રતિષ્ઠાથી લલચાઈ જાય તેવા ન હતા

(૩) વારસામાં ઉમેરો

જૈનશ્રુતનો જે વારસો મળ્યો તે જ વારસો સંભાળી બેસી રહ્યા હોત અને બહુશ્રુત કહેવાયા હોત તો પણ તેમનુ આ સ્થાન ન હોત એમણે દેશકાળની વિદ્યાસમૃદ્ધિ જોઈ, નવા સાધનો જોયા અને ભાવિની જોખમદારી જોઈ, અને આત્મા તનમની ઊઠ્યો તે સાથે જ તે માટે જેટલુ પોતાથી થઈ શકે તે કરવા મંડ્યા એમણે વેદો વાચ્યા, ઉપનિષદો જોયા, શ્રૌતસૂત્રો સ્મૃતિઓ અને પુરાણોનુ પારાયણ કર્યુ. નવું ઉદ્‌ભવતુ સામયિક સાહિત્ય જોયુ. મૃત અને જીવતી બધી જૈન શાખાઓનુ સાહિત્ય, તેમનો ઇતિહાસ અને તેમની પરંપરાઓ જાણી, અને ત્યારબાદ પોતાને જે કહેવું હતુ તે કહ્યુ. એમના કથનમા શાસ્ત્રનો પ્રચંડ સંગ્રહ છે. વ્યવસ્થાની પ્રતિભા છે

અને અભ્યાસની જાગૃતિ છે. એમણે મળેલ વારસામાં આટલો ઉમેરો કરી હવે પછી આચાર્યપદે આવનાર વ્યક્તિઓને સૂચવી આપ્યું કે જૈન-શાસનની ખરી સેવા દત્તક લીધેલ ગ્રંથોથી અગર ખરીદેલ પદવીઓથી નહિ થાય.

(૨) એમની જગ્યા કોણ લઈ શકે?

એ પ્રશ્નનો ઉત્તર એ જ આજની સમસ્યાનો ઉકેલ છે. જેનામાં સ્વતંત્ર બુદ્ધિ વિનાની શ્રદ્ધા એટલે આજકાલ ચાલતી વ્યાખ્યા પ્રમાણે આસ્તિકતા માત્ર હશે અને ચિકિત્સા કરવાની, દેશકાળ પ્રમાણે પૂરવણી કરવાની, નવાં બળો પચાવવાની અને કિંમતી જૂના બળો સાચવવાની, એક પણ બાધક બંધન સ્વીકાર્યા સિવાય–સંકુચિતતા રાખ્યા સિવાય બધી વિદ્યાઓને અપનાવવાની અને બદલાતા સંયોગો પ્રમાણે નવા નવા યોગ્ય ઇલાજો લેવાની નાસ્તિકતા જેનામા નહિ હોય તે જો આચાર્યપદે આવશે તો પણ ભાવિ ધર્મસમાજ ઘટનામાં તેનું સ્થાન કશું જ નહિ હોય. મહારાજશ્રીને પદે આવનારમા લોયમાન અને યાકોબી જેવી વિદ્યાનિષ્ઠા તથા ચિકિત્સાશક્તિ જોઈશે. આ આનંદશંકર ધ્રુવ કે ડૉ. શીલ જેવો તાત્ત્વિક અને તટસ્થ વિશાળ અભ્યાસ જોઈશે, કવિ ટાગોરની કલ્પનાશક્તિ જોઈશે અને ગાંધીજીની નિર્ભયતા તેમ જ નિખાલસતા જોઈશે. આટલા ગુણો ઉપરાંત એમનુ સ્થાન લેવા ઇચ્છનાર અને જૈન સમાજને જીવિત રહેવામા ફાળો આપવા ઇચ્છનાર વ્યક્તિમા પંથનો નહિ પણ અંદરનો ત્યાગ જોઈશે એનામા ક્રાઈસ્ટની સેવાભાવનાની તપસ્યા અને એનીબિસેંટનો 'આગળ વધો'નો ઉત્સાહ જોઈશે પોતાની પરિસ્થિતિમા રહી નવા નવા માર્ગો યોજવાની અને તે દ્વારા જ્ઞાન અને ત્યાગની સમૃદ્ધિ વધારવાની શક્તિ જોઈશે

જયંતીની પુષ્પાંજલિ માત્ર ગુણાનુવાદમા પૂરી થાય છે પણ તેથી જે જે કૃત્રિમતા–અવાસ્તવિકતાનો કચરો એકઠો થવાનો સંભવ ઊભો થાય છે તે લાભના પ્રમાણમા બહુ જ મોટો છે તેથી કોઈ પણ પૂજ્ય વ્યક્તિની જયંતી વખતે ગુણાનુવાદમા ભાગ લેનાર ઉપર યથાર્થતા સામે દૃષ્ટિ રાખવાની ભારે જવાબદારી ઊભી થાય છે. એ વાત ધ્યાનમા રાખી મારે કહેવું જોઈએ કે મહારાજશ્રીએ બહુશ્રુતપણાની ગંગા શરૂ કરી છે તે નવી પરિસ્થિતિ જોતા માત્ર ગંગોત્રી છે અને સંપ્રદાયની ભૂમિકા ઉપર ઊભા રહી તેમણે જે સંશોધનવૃત્તિ તેમ જ ઐતિહાસિકવૃત્તિ દાખવી છે તે ભાવી સંશોધકો અને ઐતિહાસિકોને ઇતિહાસનો મહેલ બાંધવા માટે પાયામા મૂકવાના એક

પથ્થરની ગરજ પૂરી પાડે છે. સંશોધનો, ઐતિહાસિક ગવેષણાઓ અને વિદ્યાઓ ક્યાં પૂરી થાય છે તે કોઈ ન જ કહી શકે, તેથી તે દિશામાં સમગ્ર પુરુષાર્થ દાખવી પગલું ભરનારનો નાનકડો શો ફાળો પણ બહુ જ કિંમતી ગણાવો જોઈએ આ દૃષ્ટિએ 'અજ્ઞાન તિમિર ભાસ્કર' ઉપર વિશેષ કામ કરવા ઇચ્છનાર પ્રૌઢ સંશોધક અને ઐતિહાસિકને પુષ્કળ અવકાશ છે.

[સવત ૧૯૮૫ના જ્યેષ્ઠ સુદ ૮ શુક્રવારે શ્રી મહાવીર જૈન વિદ્યાલયમા શ્રી વિજયવલ્લભસૂરિના અધ્યક્ષપણા નીચે ઉજવાયેલી શ્રી આત્મારામજીની જયંતી પ્રસગે આપેલ વ્યાખ્યાન]

આચાર્ય જિનવિજયજી

[૧૩]

ગુજરાત પુરાતત્ત્વ મંદિરના આચાર્ય શ્રીમાન જિનવિજયજી ગઈ તા. ૧૨મી મેએ જર્મની સિધાવ્યા તેમના આચાર્ય તરીકેના જીવનમાં સીધી રીતે પરિચયમાં આવનાર કે એમની સાહિત્ય કૃતિઓ દ્વારા પરિચયમાં આવનાર બધા મોટે ભાગે તેમને ગુજરાતી તરીકે ઓળખે છે અને જાણે છે. અને તેથી દરેક એમ માનવા લલચાય કે ગુજરાતની વ્યાપારજન્ય સાહસ વૃત્તિએ જ એમને દરિયાપાર મોકલ્યા હશે, પણ ખરી બિના જુદી જ છે. તેવી જ રીતે, તેમની સાથે સીધા પરિચય વિનાના માણસો, માત્ર તેમના નામ ઉપરથી તેમને જૈન અને તેમાં પણ જૈન સાધુ માને અને તેથી જ કદાચ તેમને વૈશ્ય તરીકે ઓળખવા પણ પ્રેરાય, પરંતુ તે બાબતમાં પણ બિના જુદી છે

આચાર્ય જિનવિજયજીના જીવનમાં આ વિદેશ યાત્રાના પ્રસંગથી તદ્દન નવુ પ્રકરણ શરૂ થાય છે અને તેથી આ પ્રસગે તેમના અત્યાર સુધીના જીવનનો અને તેના મુખ્ય પ્રેરક બળોનો પરિચય આપવો ઉચિત ગણાશે

તેમનુ જન્મસ્થાન ગુજરાત નહિ પણ મેવાડ છે તેઓ જન્મે વૈશ્ય નહિ પણ ક્ષત્રિય રજપૂત છે. પરદેશમાં જનાગ ઘણાખરાઓ પાછા આવી અહીં ઈષ્ટ કારકીર્દિ શરૂ કરવા જાય છે. આ જિનવિજયજીનુ તેમ નથી. તેમણે ઇષ્ટ દિશાની એટલે પ્રાચીન સશોધનની કારકીર્દિ અહીં ક્યારની શરૂ કરી દીધી છે. પોતાની નોધો, લેખો, નિબધો દ્વારા આ દેશમાં અને પરદેશમા તેઓ મશહૂર થઈ ગયા છે અને હવે, તેમને પોતાના અભ્યાસમાં જે કાંઈ વધારો કરવો આવશ્યક જણાયો તે કરવા તેઓ પરદેશ ગયા છે

તેમનો જન્મ અજમેરથી કેટલેક દૂર રૂપેલી નામના એક નાના ગામડામા થયેલો. તે ગામમા એકસો વરસથી વધારે ઉંમરના જૈન યતિ રહેતા તેમના ઉપર તેમના પિતાની પ્રબળ ભક્તિ હતી, કારણ કે એ જૈન યતિશ્રી વૈદ્યક-જ્યોતિષ આદિના પરિપક્વ અનુભવનો ઉપયોગ માત્ર નિષ્કામ ભાવે જનસેવામાં કરતા. જિનવિજયજીનુ મૂળ નામ કિસનસિંહ હતું. કિસનસિંહના

પગની રેખા જોઈને એ યતિએ તેમના પિતા પાસેથી તેમની માગણી કરી. ભક્ત પિતાએ વિદ્યાભ્યાસ માટે અને વૃદ્ધ ગુરુની સેવા માટે ૮–૧૦ વરસના કિસનને યતિની પરિચર્યામાં મૂકયા. જીવનના છેલ્લા દિવસોમાં યતિશ્રીને કોઈ બીજા ગામમાં જઈ રહેવુ પડ્યું. કિસન સાથે હતો. યતિજીના જીવન અવસાન પછી કિસન એક રીતે નિરાધાર સ્થિતિમાં આવી પડયો માબાપ દૂર, અને યતિના શિષ્ય પરિવારમાં જે સંભાળનાર તે તદ્દન મૂર્ખ અને આચારભ્રષ્ટ કિસન રાતદિવસ ખેતરમાં રહે, કામ કરે અને છતાં તેને પેટપૂરું અને પ્રેમપૂર્વક ખાવાનુ ન મળે એ બાળક ઉપર આ આફતનું પહેલુ વાદળું આવ્યુ અને તેમાંથી જ વિકાસનું બીજ નંખાયુ. કિસન બીજા એક મારવાડી જૈન સ્થાનકવાસી સાધુની સોબતમાં આવ્યો એની વૃત્તિ પ્રથમથી જ જિજ્ઞાસાપ્રધાન હતી નવુ નવુ જોવુ, પૂછવુ અને જાણવુ એ તેનો સહજ સ્વભાવ હતો એ જ સ્વભાવે તેને સ્થાનકવાસી સાધુ પાસે રહેવા પ્રેર્યો જેમ દરેક સાધુ પાસેથી આશા રાખી શકાય તેમ તે જૈન સાધુએ પણ એ બાળક કિસનને સાધુ બનાવ્યો હવે એ સ્થાનકવાસી સાધુ તરીકેના જીવનમાં કિસનનો અભ્યાસ શરૂ થાય છે

એમણે કેટલાંક ખાસ જૈન ધર્મ–પુસ્તકો થોડા સમયમા કંઠસ્થ કરી લીધા અને જાણી લીધાં; પરતુ જિજ્ઞાસાના વેગના પ્રમાણમાં ત્યાં અભ્યાસની સગવડ ન મળી અને પ્રકૃતિ સ્વાતંત્ર્ય ન સહન કરી શકે એવા નિરર્થક રૂઢિબંધન ખટકયાં તેથી જ કેટલાંક વર્ષ બાદ ઘણા જ માનસિક મંથનને અંતે છેવટે એ સપ્રદાય છોડી જ્યાં વધારે અભ્યાસની સગવડ હોય તેવા કોઈ પણ સ્થાનમાં જવાનો બલવાન સકલ્પ કર્યો

ઉજ્જયિનીનાં ખડેરોમાં ફરતાં ફરતાં સંધ્યાકાળે સિપ્રાને કિનારે તેણે સ્થાનકવાસી સાધુવેષ છોડ્યો અને અનેક આશંકાઓ તેમ જ ભયના સખત દાબમા રાતોરાત જ પગપાળા ચાલી નીકળ્યા મોઢે સતત બાધેલ મુમતીને લીધે પડેલ સફેદ ડાઘાને કોઈ ન ઓળખે માટે ભૂંસી નાખવા તેમણે અનેક પ્રયત્નો કર્યા પાછળથી કોઈ ઓળખી પકડી ન પાડે માટે એક બે દિવસમા ઘણા ગાઉ કાપી નાખ્યા. એ દોડમા રાતે એકવાર પાણી ભરેલ કૂવામાં તેઓ અચાનક પડી ગયેલા

રતલામ અને તેની આજુબાજુના પરિચિત ગામોમાથી પોતાની જાતને બચાવી લઈ કયાંક અભ્યાસયોગ્ય સ્થાન અને સગવડ શોધી લેવાના

ઉદ્વેગમાં તેમણે ખાવાપીવાની પણ પરવા ન રાખી. પણ પુરુષાર્થીને બધુ અચાનક જ સાંપડે છે કોઈ ગામડામાં શ્રાવકો પજુસણમાં કલ્પસૂત્ર વંચાવવા કોઈ યતિ કે સાધુની શોધમાં હતા દરમિયાન કિસનજી પહોંચ્યા. કોઈમાં નહિ જોયેલું એવુ ત્વરિત વાચન એ ગામડિયાઓએ એમનામાં જોયુ અને ત્યાં જ તેમને રોકી લીધા પજુસણ બાદ થોડી દક્ષિણા બહુ સત્કારપૂર્વક આપી કપડા અને પૈસા વિનાના કિસનજીને મુસાફરીનુ ભાતુ મળ્યુ અને તેમણે અમદાવાદ જવાની ટિકિટ લીધી એમણે સાંભળેલુ કે ગુજરાતમાં અમદાવાદ મોટુ શહેર છે અને ત્યા મૂર્તિપૂજક સપ્રદાય મોટા છે. એ સપ્રદાયમાં વિદ્વાનો બહુ છે અને વિદ્યા મેળવવાની બધી સગવડ છે. આ લાલચે ભાઈ અમદાવાદ આવ્યા, પણ પુરુષાર્થની પરીક્ષા એક જ આફતે પૂરી થતી નથી અમદાવાદની પ્રસિદ્ધ વિદ્યાશાળા આદિમાં ક્યાંય ઘડો થયો નહિ પૈસા ખૂટ્યા એક બાજુ વ્યવહારની માહિતી નહિ અને બીજી બાજુ જાતને જાહેર ન કરવાની વૃત્તિ અને ત્રીજી બાજુ ઉત્કટ જિજ્ઞાસા, એ બધી ખેંચતાણમાં એમને બહુ જ સહેવું પડ્યું અંતે ભટકતા ભટકતાં મારવાડમા પાલી ગામમા એક સુદરવિજયજી નામના સવેગી સાધુનો ભેટો થયો. જેઓ અત્યારે પણ વૃદ્ધાવસ્થામા વિચરે છે, અને અત્યાર સુધીનાં બધા પરિવર્તનોમા સરળ ભાવે એમ કહેતા રહે છે કે તે 'જે કરશે તે ઠીક જ હશે. એમની પાસે તેમણે સંવેગી દીક્ષા લીધી અને જિનવિજયજી થયા. એમના ગુરુ તરીકેનો આશ્રય તેમણે વિદ્વાનની દૃષ્ટિએ નહિ પણ તેમના આશ્રયથી વિદ્યા મેળવવામાં વધારે સગવડ મળશે એ દૃષ્ટિએ લીધેલો આ બીજુ પરિવર્તન પણ અભ્યાસની ભૂમિકા ઉપર જ થયુ થોડા વખત બાદ માત્ર અભ્યાસની વિશેષ સગવડ મેળવવા માટે જિનવિજયજી એક બીજા જૈન સુપ્રસિધ્ધ સાધુના સહવાસમાં ગયા પરતુ વિદ્વત્તા અને ગુરુપદના મોટા પટ્ટ ઉપર બેઠેલ સાપ્રદાયિક ગુરુઓમાથી બહુ જ ઓછાને એ ખબર હોય છે કે કયુ પાત્ર કેવુ છે અને તેની જિજ્ઞાસા ન પોષવાથી કે પોષવાથી શુ શુ પરિણામ આવે ? જો કે એ સહવાસથી તેમને જોવા-જાણવાનુ વિસ્તૃત ક્ષેત્ર તો મળ્યુ પણ જિજ્ઞાસાની ખરી ભૂખ ભાગી નહિ. વળી એ ઉદ્વેગે તેમને બીજાના સહવાસ માટે લલચાવ્યા અને પ્રસિધ્ધ જૈન સાધુ પ્રવર્તક કાતિવિજયજીના સહવાસમા તેઓ રહ્યા ત્યા તેમને પ્રમાણમાં ઘણી જ સગવડ મળી અને તેમની સ્વતઃસિદ્ધ ઐતિહાસિક દૃષ્ટિને પોષે અને તુષ્ટ કરે એવા ઘણા જ મહત્ત્વનાં સાધનો મળ્યાં ગમે ત્યા અને ગમે તેવા પ્રતિકૂળ કે અનુકૂળ સહવાસમા તેઓ રહેતા ત્યાં પોતાની જન્મભૂમિ (

મિતભાષિત્વ અને એકાંતપ્રિયતાની પ્રકૃતિ પ્રમાણે, અભ્યાસ, વાચન અને લેખન ચાલુ જ રાખતા

એક બાજુ સાધુજીવનમાં રાત્રીએ દીવા સામે વંચાય નહિ અને બીજી બાજુ વાંચવાની પ્રબળ વૃત્તિ કે લખવાની તીવ્ર પ્રેરણા રોકી શકાય પણ નહિ. સમય નિરર્થક જવાનુ દુ.ખ એ વધારામાં આ બધાં કારણોથી તેમને એકવાર **વીજળીની બેટરી** મેળવવાનુ મન થયુ આજથી લગભગ ૧૩ વર્ષ પહેલાં જ્યારે હું તેઓના પરિચયમાં પહેલવહેલો આવ્યો ત્યારે તેમણે મને બેટરી લેતા આવવાનું કહ્યું હુ બેટરી અમદાવાદથી પાટણ લઈ ગયો, અને એને પ્રકાશે તેમણે તદ્દન ખાનગીમાં કોઈ સાધુ કે ગૃહસ્થ ન જાણે તેવી રીતે લખવા અને વાચવા માંડ્યું જો હુ ન ભૂલતો હોઉં તો તિલકમંજરીના કર્તા ધનપાળ વિશે એમણે જે લેખ લખેલો છે તે એ જ બેટરીની મદદથી તે સિવાય બીજુ પણ તેમણે તેની મદદથી ઘણુ વાંચ્યુ અને લખ્યુ, પરંતુ દુર્દૈવે બેટરી બગડી અને વિઘ્ન આવ્યુ આખો દિવસ સતત વાંચ્યા–વિચાર્યા પછી પણ તેમને રાતે વાંચવાની ભૂખ રહેતી તે ઉપરાત અભ્યાસનાં આધુનિક ઘણાં સાધનો મેળવવાની વૃત્તિ પણ ઉત્કટ થતી હતી છાપા, માસિકો અને બીજુ નવીન સાહિત્ય એ બધુ તેમની નજર બહાર ભાગ્યે જ રહે તેઓ અન્ય જૈન સાધુઓની પેઠે કોઈ પંડિત પાસે ભણતા પણ ભણવાનો આરામ અને અંત લગભગ સાથે જ થતો. સંસ્કૃત સાહિત્ય હોય કે પ્રાકૃત એ બધુ એમણે મુખ્યપણે સ્વાશ્રિત વાચન અને સ્વાશ્રિત અભ્યાસથી જ જાણ્યુ છે જેની દૃષ્ટિ તીક્ષ્ણ હોય અને પ્રતિભા જાગરુક હોય એ ગમે તેવાં પણ સાધનોનો સરસ ઉપયોગ કરી લે છે એ ન્યાયે તેઓ ભાવનગર, લીમડી, પાટણ આદિ જે જે જૈન સ્થળોમા ગયા અને રહ્યા ત્યાથી તેમણે અભ્યાસનો ખોરાક ખૂબ મેળવી લીધો પરતુ જૂની શોધખોળોને અંગે જ્યારે તેઓ આધુનિક વિદ્વાનોનાં લખાણો વાચતા ત્યારે વળી તેમની જિજ્ઞાસા ભભૂકી ઊઠતી અને જૈન સાધુજીવનનુ–રૂઢિબંધન ખટકતુ તેઓ ઘણીવાર મને પત્રમાં લખતા કે તમે ભાગ્યશાળી છો તમારી પાસે રેલવેની લબ્ધિ છે, ગમે ત્યા જઈ શકો છો અને ગમે તે રીતે અભ્યાસ કરી શકો છો. એ લખાણ શોખીન મનોવૃત્તિનું નહિ પણ અભ્યાસપરાયણ જીવનનુ પ્રતિબિંબ છે, એમ મને તો તે વખતે જ લાગેલુ, પણ આજે એ સૌને પ્રત્યક્ષ છે પાટણના લગભગ બધા ભંડારો, જૂના કલામય મંદિરો, અને બીજી જૈન સંસ્કૃતિની અનેક પ્રાચીન વસ્તુઓના અવલોકને એમની જન્મસિદ્ધ ગવેષણાવૃત્તિને ઉત્તેજી અને ઊંડો અભ્યાસ કરવા તેમ જ લખવા

પ્રેર્યા. મહેસાણા અને પાટણ પછી ત્રીજુ ચોમાસું મેં વડોદરામાં તેમની સાથે ગાળેલુ હુ જોતો કે સેન્ટ્રલ લાયબ્રેરીનાં પુસ્તકોનાં પુસ્તકો અને જૈન ભંડારની પોથીઓની પોથીઓ ઉપાશ્રયમાં તેમની પાસે ખડકાયેલી રહેતી. અને જો કોઈ જાતે જઈને ન બોલાવે તો તેઓ મકાનમાં છે કે નહિ તેની ખબર માત્ર લેખણના અવાજથી જ પડતી. સદ્‌ગત ચિમનલાલ એ એમના જેવા જ વિદ્યાવ્યસની અને શોધક હતા ચિમનલાલ અંગ્રેજીના વિદ્વાન એટલે તેમનો માર્ગ વધારે ખૂલ્યો શ્રી જિનવિજયજી અંગ્રેજી ન જાણે એટલે તે એ બાબતમા પરાધીન છતાં જિજ્ઞાસા માણસને સૂવા દઈ શકતી નથી. તેથી ધીરે ધીરે તેઓ અંગ્રેજી તરફ ઢળ્યા દરમ્યાન પોતાના વિષયનુ અંગ્રેજી ભાષામાં કે જર્મન ભાષામાં પુસ્તક લખાયુ હોય તો તેને મેળવી ગમે તે રીતે તેનો અનુવાદ કરાવી મતલબ સમજી તેનો ઉપયોગ કરતા, પણ આ રીતે એક અભ્યાસનિષ્ઠ માણસ લાંબા વખત સુધી સંતુષ્ટ રહી શકે નહિ. હુ જાણું છુ ત્યા સુધીમાં કૃપારસકોશ, વિજ્ઞપ્તિત્રિવેણી, શત્રુંજય તીર્થોદ્ધાર પ્રબંધ, વગેરે પુસ્તકો લખવાનો પાયો વડોદરામા જ નખાયો. અને તેમની સાહિત્ય વિષયક આકર્ષક કારકિર્દી ત્યાંથી શરૂ થઈ જેમ જેમ વાચન વધ્યું અને લખવાની વૃત્તિ તીવ્ર બની તેમ તેમ વધારે ઊણપ ભાસતી ગઈ અને જૈન સાધુજીવનના બંધનો તેમને સાલવા લાગ્યાં કાલક્રમે મુબઈ પહોંચ્યા અનેક જૈન સાધુ સાથે હતા. મુબઈમા સમશીલ વિવિધ વિદ્વાનોના પરિચયે અને ત્યાંના સ્વતંત્ર વાતાવરણે તેમની અભ્યાસવૃત્તિને અનેક મુખે ઉદ્દીપ્ત કરી. એ એમનો મંથનકાળ હતો હુ વાલકેશ્વરમાં તેઓને એકવાર મળ્યો ત્યારે જોયું કે તે સતત વાચવા–વિચારવામા મગ્ન છતા ઊડા અસતોષમાં ગરક હતા. થોડા માસ પછી તેમની વૃત્તિ પૂનાના વિદ્યામય વાતાવરણે આકર્ષી. તેઓ પૂજ્ય બુદ્ધસાધુઓનો સાથ છોડી દુખિત મને એકલા પડયા, અને પગે ચાલતા પૂના પહોંચ્યા અહીં ભંડાર અને વિદ્વાનોના ઇષ્ટતમ પરિચયથી તેમને ખૂબ ગોઠી ગયુ ત્યાની પ્રાકૃતિક રમણીયતા, સાદુ જીવન અને વિદ્યાર્થી તથા વિદ્વાનોની બહુલતાએ તેમને પૂનાના સ્થાયી નિવાસ માટે લલચાવ્યા. ભારત જૈન વિદ્યાલયની ચાલુ સંસ્થાને તેમણે સ્થાયી રૂપ આપવા પ્રયત્ન કર્યો, અને બીજી બાજુ ભાંડારકર ઇન્સ્ટીટ્યૂટમાંનો લિખિત જૈન પુસ્તક સંગ્રહ નોંધી કાઢ્યો. આમાંથી તેમની શોધક બુદ્ધિને પુષ્કળ સામગ્રી મળી

અત્યાર સુધી તેઓ મને કે કમને દૃઢ જૈનત્વના આશ્રય તળે વિદ્યાવ્યાસંગ પોષી રહ્યા હતા, તે જૈનત્વ હવે પૂનાના રાષ્ટ્રીય વાતાવરણમાં, અને દેશવ્યાપી રાષ્ટ્રીય હીલચાલના વાવાઝોડામા ઓગળવા માંડ્યુ અને

કારના મંડાણના દિવસો આવ્યા, અને તેમની વધુ વિશાળ કાર્યક્ષેત્ર શોધવાની વૃત્તિને જોઈતું નવું કાર્યક્ષેત્ર મળી આવ્યું. આ એમનો ત્રીજો મંથનકાળ. અને તે સૌથી વધારે મહત્ત્વનો. કારણ, આ વખતે કાંઈ નાની ઉંમરમાં જૈન સાધુવેષ ફેંકી દીધો તેવી સ્થિતિ ન હતી. અત્યારે તેઓ જૈન અને જૈનેતર વિદ્વાનોમાં એક પ્રસિદ્ધ લેખક તરીકે જાણીતા થયા હતા જૈન સાધુ તરીકેનુ જીવન સમાપ્ત કરવુ અને નવુ જીવન શરૂ કરવુ, તે કેમ અને કેવી રીતે તથા શા માટે એ વિકટ પ્રશ્નોએ ઘણા દિવસ તેમને ઉજાગરો કરાવ્યો.

ઉજાગરાનાં આ કારણોમાં એક વિશેષ કારણ હતુ જે નોંધવા યોગ્ય છે. પિતા તો પહેલાં ગુજરી ગયેલા તેની તેમને ખબર હતી પણ માતા જીવિત તેથી તેમનુ દર્શન કરવુ એ ઇચ્છા પ્રબળ થઈ હતી એકવાર તેઓએ મને કહેલુ કે 'હુ માને કદી જોઈ શકીશ કે નહિ ! અને જાઉ તો માતાજી ઓળખશે કે નહિ ? શું મારે માટે એ જન્મસ્થાન તદ્દન પુનર્જન્મ જેવુ થઈ ગયુ નથી ? સ્વપ્નની વસ્તુઓ જેવી પણ જન્મસ્થાનની વસ્તુઓ મને આજે સ્પષ્ટ નથી ' માતાને મળવા ટ્રેનમા બેસવાનુ જે પગલુ ભરી શક્યા નહિ તે પગલુ રાષ્ટ્રીયતાના મોજાના વેગમા ભર્યું જૈન સાધુજીવનનાં બંધનો છોડી દેવાનો પોતાનો નિશ્ચય તેમણે વર્તમાનપત્રોમાં પ્રસિદ્ધ કર્યો અને ગુજરાત વિદ્યાપીઠની સ્થાપના સાથે પુરાતત્ત્વ મંદિરની યોજનાને અંગે તેમને અમદાવાદ બોલાવ્યા ત્યારે તેઓ રેલવે ટ્રેનથી ગયા અને ત્યારથી તેમણે રેલવે-વિહાર શરૂ કર્યો છે મહાત્માજીએ અને વિદ્યાપીઠના કાર્યકર્તાઓએ તેમની પુરાતત્ત્વ મંદિરમાં નીમણૂક કરી અને તેમના જીવનનો નવો યુગ શરૂ થયો. જૈન સાધુ મટી તેઓ પુરાતત્ત્વ મંદિરના આચાર્ય થયા

મંદિર શરૂ કરવાના કામમા તેઓ માતાજીને મળવા તરત તો ન જઈ શક્યા, પણ એકાદ વર્ષ પછી ગયા ત્યારે માતાજી વિદેહ થયેલાં. જિનવિજયજી આ આઘાતથી રડી પડ્યા જિનવિજયજીએ સંસાર પરાઙ્મુખ સન્યાસનાં આટલા વરસ ગાળ્યા છે પણ તેમનામાં માનવતાના સર્વ કુમળા ભાવો છે. તેમને અનુયાયીઓ કરતાં સહૃદય મિત્રો વધારે છે તેનું આ કારણ છે.

લગભગ આઠ વર્ષના પુરાતત્ત્વ મંદિરના કાર્યકાળ દરમિયાન તેઓની ભાવના અને વિચારણામા તેમના ક્રાન્તિકારી સ્વભાવ પ્રમાણે મોટું પરિવર્તન થયુ

પુરાતત્ત્વ મંદિરનો મહત્ત્વનો પુસ્તકસંગ્રહ મુખ્યપણે તેમની પસંદગીનુ પરિણામ છે. અહી આવ્યા પછી પણ તેમનુ વાચન અને અવલોકન સતત

ચાલુ જ રહ્યું. અનેક દિશાઓમાં તેમની કાર્ય કરવાની વૃત્તિ તેમના પરિચિતો જ જાણે છે. તેમનો પ્રિય વિષય પ્રાચીન ગુજરાતનો ઇતિહાસ અને ભાષા એ છે. તેને અંગે તેમણે જે જે ગ્રંથો છપાવવા શરૂ કર્યા તેમાં તેમને જર્મન ભાષાના જ્ઞાનની ઊણપ બહુ જ સાલવા લાગી અને સંયોગ મળતાં એ જ વૃત્તિએ તેમને જર્મની જવા પ્રોત્સાહિત કર્યા. તેમના ઉત્સાહને તેમના આત્મજ્ઞ વિદ્યાપ્રિય મિત્રોએ વધાવી લીધો એક બાજુ મિત્રો તરફથી પ્રોત્સાહન મળ્યુ અને બીજી બાજુ ખુદ મહાત્માજીએ એમની વિદેશ ગમનની વૃત્તિને સપ્રેમ સીંચી દરમિયાન જર્મન વિદ્વાનો અહીં આવી ગયા તેમની સાથે નિકટ પરિચય થઈ ગયો બીજી બાજુ તેમની ઐતિહાસિક ગવેષણાથી સંતુષ્ટ થયેલ પ્રો યાકોબીએ તેમને પત્રદ્વારા જર્મની આવવા આકર્ષ્યા અને લખ્યુ કે તમે જલદી આવો તમારી સાથે મળી હુ અપભ્રંશ ભાષામાં અમુક કામ કરવા ઇચ્છુ છુ

આ રીતે આંતરિક જિજ્ઞાસા અને સાહસની ભૂમિકા ઉપર બહારનુ અનુકૂળ વાતાવરણ રચાયુ અને પરિણામે જૈન સાધુવેષનાં રહ્યાંસહ્યાં ચિહ્નોનુ વિસર્જન કરી તેમણે અભ્યાસ માટે યુરોપયોગ્ય નવીન દીક્ષા લીધી.

વાચક જોઈ શકશે કે આ બધાં પરિવર્તનોની પાછળ તેમનો ધ્રુવ સિદ્ધાન્ત વિદ્યાભ્યાસ એ જ રહ્યો છે જૈન તત્ત્વજ્ઞાનમા કહ્યુ છે, કે પ્રત્યેક વસ્તુમા ધ્રુવત્વ સાથે ઉત્પાદ અને નાશ સંકળાયેલ છે. આપણે આ સિદ્ધાન્ત આચાર્ય જિનવિજયજીના જીવનને અંગે બરોબર લાગુ પડેલો જોઈ શકીએ છીએ છેક નાની ઉમરથી અત્યાર સુધીમા તેમના ક્રાન્તિકારી અનેક પરિવર્તનોમા તેમનો મુખ્ય પ્રવર્તક હેતુ એક જ રહ્યો છે, અને તે પોતાના પ્રિય વિષયના અભ્યાસનો એ તો કોઈ પણ સમજી શકે તેમ છે કે જો તેઓ એકને એક સ્થિતિમા રહ્યા હોત તો જે રીતે તેમનુ માનસ વ્યાપકપણે ઘડાયેલુ છે તે કદી ન ઘડાત અને અભ્યાસની ઘણી બારીઓ બંધ રહી જાત, અથવા અદર જ વિકાસગામી સસ્કારો ગૂંગળાઈ જાત

આજકાલની સામાન્ય માન્યતા છે કે ઉચ્ચ અભ્યાસ તો યુનિવર્સિટીની કૉલેજોમા અને તે પણ અગ્રેજી પ્રોફેસરોના ભાષણો સાંભળીને જ થઈ શકે, અને ઐતિહાસિક ગવેષણા તો આપણે પશ્ચિમ પાસેથી શીખીએ તો જ શીખાય આચાર્ય જિનવિજયજી કોઈ પણ નિશાળે પાટી પર ધૂળ નાખ્યા વગર હિંદી, મારવાડી, ગુજરાતી, દક્ષિણી ભાષાઓમા લખી-વાંચી-બોલી શકે છે અને અંગ્રેજી પણ તેમને પરિચિત છે. આટલી નાની વયમાં તેમણે

વીસેક ગ્રંથો સંપાદિત કર્યા છે. પ્રાચ્યવિદ્યાપરિષદમાં 'હરિભદ્રસૂરિનો સમય-નિર્ણય' એ ઉપર એમણે એક લેખ વાંચ્યો જેથી પ્રખર વિદ્વાન યાકોબીને પણ પોતાનો અભિપ્રાય આયુષ્યમાં પહેલી જ વાર બદલાવવો પડ્યો છે. જૂના દસ્તાવેજો, શિલાલેખો, સંસ્કૃત, પ્રાકૃત કે જૂની ગુજરાતીના ગમે તે ભાષાના લેખો તેઓ ઉકેલી શકે છે અને વિવિધ લિપિઓનો તેમને બોધ છે ખારવેલનો શિલાલેખ બેસાડવામાં પ્રો. જયસ્વાલે પણ તેમની સલાહ અનેકવાર લીધી છે તેમને શિલ્પ અને સ્થાપત્યની ઘણી માહિતી છે. પર્યટન કરીને પશ્ચિમ હિંદની ભૂગોળનુ તેમણે એવુ સારુ નિરીક્ષણ કર્યું છે કે જાણે જમીન તેમને જવાબ દેતી હોય તેમ તેઓ ઇતિહાસના બનાવો તેમાંથી ઉકેલી શકે છે. પુરાતત્ત્વમાં પણ તેમણે એક પ્રાચીન ગુજરાતી ભાષાનો 'ગદ્યસંદર્ભ' સંપાદિત કર્યો છે. કોઈ પણ ચાલુ ભાષાના એના જેટલા જૂના ગ્રંથો હિંદમાં વિરલ જ છે. ઉપરાંત ગુજરાતના ઇતિહાસના સાધનોના ગ્રંથો બહાર પાડવા માંડ્યા છે, જે કામ તેઓ જર્મની જઈ આવ્યા પછી વધારે વેગથી આગળ ચલાવશે

તેમણે ચલાવેલ જૈન સાહિત્ય સંશોધક નામના ત્રૈમાસિક પત્રનુ બીજું વર્ષ પૂરુ થવા આવે છે જૈન સમાજના કોઈપણ ફિરકામા એ કોટિનુ પત્ર અદ્યાપિ નીકળ્યુ નથી એ પત્ર જૈન સાહિત્યપ્રધાન હોવા છતા તેની પ્રતિષ્ઠા જૈનેતર વિદ્વાનોમા પણ ઘણી છે તેનુ કારણ તેમની તટસ્થતા અને ઐતિહાસિક નિષ્ણાતતા છે જૈન સમાજના લોકો તેમને જાણે છે તે કરતાં જૈનેતર વિદ્વાનો તેમને વધારે પ્રમાણમાં અને માર્મિક રીતે પિછાને છે

જો કે જૈન સમાજ તદ્દન રૂઢ જેવો હોવાથી બીજા બધા લોકો જાગ્યા પછી જ પાછળથી જાગે છે, છતા સંતોષની વાત એ છે કે મોડા મોડા પણ તેનામા વિદ્યાવૃત્તિના સુચિહ્નો નજરે પડવા લાગ્યા છે એક તરફથી, અંગ્રેજી ભાષા અને પાશ્ચાત્ય વસ્તુમાત્રનો બહિષ્કાર કરવા તત્પર એવો સંકીર્ણ વર્ગ, જે મુબઈમા રહે છે તે જ મુબઈમા, બીજો વિદ્યારુચિ અને સમય-સૂચક જૈન વિદ્વાન વર્ગ પણ વસે છે વિદાયગીરીના મિત્રોએ કરેલા છેલ્લા નાનકડા મેળાવડા પ્રસગે મેં જે દૃશ્ય અનુભવ્યુ તે જૈન સમાજની ક્રાન્તિનુ સૂચક હતું. જે લોકો આચાર્ય જિનવિજયજીને આજ સુધી બળવાખોર માની તેમનાથી દૂર ભાગતા અગર તો પાસે જવામા પાપનો ભય રાખતા તેવા લોકો પણ તેમની વિદાયગીરીના મેળાવડા પ્રસંગે ઉપસ્થિત થઈ સાક્ષી પૂરતા હતા કે હવે જૂનું કાશ્મીર અને જૂની કાશી એ વિદેશમાં વસે છે.

આચાર્ય હરિભદ્રે બૌદ્ધ મઠમાં શિષ્યોને ભણવા મોકલેલા. આચાર્ય હેમચન્દ્રે કાશ્મીરની શારદાની ઉપાસના કરેલી. ઉપાધ્યાય યશોવિજયજીએ કાશીમાં ગંગાતટને સેવેલું હવે પરિસ્થિતિ પ્રમાણે જો જૈન સાહિત્યે અને જૈન સંસ્કૃતિએ માનપૂર્વક સ્થાન મેળવવું હોય તો દેશનાં પ્રસિદ્ધ સ્થળો ઉપરાંત વિદેશમાં પણ જ્યાંથી મળે ત્યાંથી દરેક ઉપાયે વિદ્યા મેળવવી અને હરિભદ્ર, હેમચન્દ્ર કે યશોવિજયજીની પેઠે નવીન પરિસ્થિતિ પ્રમાણે નવી વિદ્યાઓ દેશમાં આણવી આ વસ્તુ તદ્દન રૂઢ ગણાતા જૈન સાધુ વર્ગમાં પણ કેટલાકને સમજાઈ ગઈ હોય એમ લાગે છે તેથી જ અભ્યાસને અંગે થતા આ વિદેશગમનને કેટલાક પ્રતિષ્ઠિત જૈન સાધુઓએ પત્રથી અને તારથી અભિનંદન મોકલ્યાં હતા

અત્યારસુધી આત્માના કોઈ અદમ્ય સાહસથી જ તેમણે અભ્યાસ આગળ ચલાવ્યો છે અને અત્યારે પણ અંગ્રેજીના અધૂરા અભ્યાસે અને ફ્રેંચ કે જર્મનના અભ્યાસ વિના યુરોપની મુસાફરી સ્વીકારી છે એમનું આ સાહસ પણ અત્યાર સુધીનાં તેમનાં બધા સાહસની પેઠે સફળ નીવડશે.

—પ્રસ્થાન જ્યેષ્ઠ, ૧૯૮૪.

સ્મૃતિશેષ દાદા

[૧૪]

આજે દેશનુ એવુ કોઈ પણ પ્રસિદ્ધ છાપુ નથી જેમાં દાદાસાહેબ વિશે કાંઈ ને કાંઈ લખાયુ ન હોય. 'હિન્દુસ્તાન ટાઇમ્સ'ના તા. ૨૮–૨'–૫૬ના અંકમા પં. શ્રી નેહરુએ લોકસભામાં આપેલી ભવ્ય શ્રદ્ધાંજલી છપાયેલી છે. એથી વધારે સારો ખ્યાલ દાદાસાહેબ વિશે બીજો ભાગ્યે જ આપી શકે

હુ તો અત્રે તેમના વિશે જે કાંઈ લખવા ધારું છુ તે મારા ઉપર તેમની સીધા પરિચયથી ઊપજેલી અસર જ છે. તે પ્રમાણમાં મર્યાદિત અને લગભગ અંગત જેવી છતાં અનેક રીતે સૌને બોધપ્રદ થઈ પડે તેવી મને લાગી છે ગાધીજીએ સ્વરાજનો શંખ ફૂંક્યો અને દેશના ખૂણે ખૂણે સૈનિકો ઊભરાવા લાગ્યા. અમદાવાદ એ તો મુખ્ય છાવણી હતી ૧૯૨૧–૨૨માં હુ અમદાવાદ આવી રહ્યો, અને જી. વી માવળંકરનું નામ પ્રથમવાર જ સાળળ્યુ. ભણકારા સંભળાતા કે જી વી માવળકર એક ઓજસ્વી તરુણ છે, વકીલ છે અને ગાંધીજીના ચુસ્ત અનુયાયી છે એ સાથે એમ પણ સાંભળ્યાનુ કાઈક યાદ છે કે બીજા એક માવળંકર છે, તે કટ્ટર સનાતની છે અને ગાંધીજીની હિલચાલના વિરોધી પણ છે આ બધુ સાભળવા પૂરતું હતુ, પણ આગળ જતા એક સમય એવો આવ્યો જ્યારે જી વી. માવળંકરને સાંભળવાની તક મળી ઘણુ કરી ગુજરાત કોલેજના વિદ્યાર્થીઓએ હડતાળ પાડેલી એ દિવસો હતા. સાબરમતીના ખુલ્લા આકાશમા વિદ્યાર્થીઓ અને નાગરિકોનો મોટો સમુદાય મળેલો. સૌ રાહ જોતા હતા કે માવળંકર ક્યારે ઊભા થાય. તેઓ ઊભા થયા અને અંગ્રેજીમાં ભાષણ ચાલ્યું હુ અંગ્રેજી તે વખતે ન જાણતો, એટલે તેમના સ્વર અને આરોહ–અવરોહથી જ કાઈક કલ્પના કરતો એ સ્વરમાં જેટલી મધુરતા હતી તેટલો જ અસ્ખલિત વેગ હતો. આથી વધારે પરિચય ત્યારે તો ન સધાયો, પણ ઘણે લાંબે ગાળે એવો અવસર અણધારી રીતે લાધ્યો. ઘણું કરી ૧૯૪૫ ની વાત છે. શેઠ શ્રી ભોળાભાઈ જેશિંગભાઈ દલાલને ત્યાં ગિરિકુંજ (મુંબઈ)મા મળવાનું બન્યું. ચર્ચાનો વિષય હતો શ્રી ભોળાભાઈએ ગુજરાત વિદ્યાસભામાં આપવા

ધારેલ રકમનો કેવી રીતે ઉપયોગ કરવો તે જે પાંચ–સાત જણ મળેલ તેમાં દાદા ઉપરાંત સદ્‌ગત રામનારાયણ પાઠક તથા ભાઈશ્રી રસિકલાલ માણેકલાલ દલાલ અને શ્રી રસિકલાલ છો પરીખ પણ હતા. ચર્ચામા દાદા સાહેબે એક અગત્યની વાત કહી જે આગળ જતાં તેમની સાથે લંબાયેલ પરિચયને આધારે કહુ તો એમના અનેક જીવનસૂત્રો પૈકી એક અફર જીવનસૂત્ર જેવી હતી. તે એ કે માત્ર વ્યાજ ઉપર જ સંસ્થાએ કામ કદી ન કરવું જરૂર જણાતાં સસ્થાની દૃઢતા અને વિકાસ માટે મૂળ બધી રકમ ખરચી નાખતાં કદી ખચકાવુ જોઈએ નહિ આ સૂત્ર પાછળ એમની દૃષ્ટિ મુખ્યત્વે એ હતી કે પ્રાપ્ત થયેલી રકમો સંસ્થા સભાળ્યા કરે અને માત્ર એના વ્યાજને જ કામમા લે તો ઘણી વાર એ સંસ્થાનો વિકાસ જ રૂંધાઈ જાય, એવો પણ સમય આવે દાદાની દૃષ્ટિ મુખ્યપણે કામના પાયા પાકા કરવાની, તેનો વિકાસ અને વિસ્તાર કરવાની હોઈ તે ફડની રકમને માત્ર સાચવવાની તરફેણ કરતી ન હતી હુ અત્યાર લગી લગભગ મૌન હતો, પણ એમની એ દૃષ્ટિ મને તરત જ ગળે ઊતરી, કારણ કે, અતિ નાના ક્ષેત્રમાં પણ મારો અનુભવ એવો જ હતો કે જો ખરેખર કામ જમાવવુ અને વિકસાવવુ હોય, કામ કરનાર પણ સાચા અને જાગતા હોય તો જમા ફડને જેમનુ તેમ સાચવી માત્ર વ્યાજનો જ ઉપયોગ કરવાથી ધારેલી નેમ બર નથી જ આવતી તેથી મે એમની દૃષ્ટિનુ સમર્થન કર્યું કે છોડ ઉપર ફળ આવે ત્યારે જ વાવેતર સફળ છે એમ માનવુ એ સ્થૂળ દૃષ્ટિ છે, ખરી રીતે જમીન–ખેડાણ, ખાતર આદિ પ્રાથમિક ક્રિયાઓ સુયોગ્ય રીતે થાય તો એમા પણ એ ભાવિ દૃશ્ય–ફળ સમાયેલુ જ છે, કેમકે, એવા ફળનો આધાર મુખ્યપણે પાકી પ્રાથમિક તૈયારીમા છે આમ સીધી રીતે પરસ્પરની વાતચીત વિના પણ અમે બંને અંદરથી એક જ દિશામા છીએ એવુ મને ભાન થયું છે.

વચલા દિવસો બનારસમા વીત્યા, પણ વળી અણધારી રીતે ૧૯૪૭ના જૂન માસમા અમદાવાદ આવી રહેવાનુ બન્યુ. હવે દાદાસાહેબને મળવાના સીધા પ્રસગો આવતા ગયા. તેઓ ગુજરાત વિદ્યાસભાના પ્રમુખ. એ સભાને આશ્રયે ચાલતા બો. જે. વિદ્યાભવનના પણ પ્રમુખ એટલે વિદ્યાસભાની [illegible] સભા હોય તોય મળવાનુ બને અને બો. જે. વિદ્યાસભાની કાર્યવાહક સમિતિની બેઠક હોય તોય મળવાનુ બને ગુજરાત વિદ્યાસભાની સભા તો એ સભાના મકાનમાં મળે; પણ બો. જે. વિદ્યાભવનની કાર્યવાહક સમિતિ દાદાના પોતાના [illegible] [illegible]માંના મકાનમા મળે. એમને મકાને

સમિતિ મળે ત્યારે જ એમનો ખરો પરિચય સાધવાની તક સાંપડે. વર્ષમાં અનેક વાર એ સમિતિ મળે. છેલ્લે છેલ્લે ૯-૨-૫૬ના રોજ પણ એમને ત્યાં જ સમિતિ મળેલી. એક સભ્યના નાતે હુ અમદાવાદ હોઉં ત્યારે તબિયત ગમે તેવી હોય, છતાં એ બેઠકમાં હાજર રહેવાનો લોભ ખાળી ન શકું એવુ આકર્ષણ દાદાસાહેબની કાર્યપદ્ધતિ, વિચારસરણી અને ખુલ્લા દિલથી સૌ સાથે વાત કરવાની ટેવે જન્માવ્યું હતુ

કાર્યસૂચિમાં લખાયેલ કામકાજને લગતી વિગતો એમણે પ્રથમથી જ સમજી લીધી હોય, એટલે ગમે તેટલાં કામો પણ ત્વરાથી પતાવે એ કામ-કાજ થયા પછી આપી શકાય તેટલો વધારે વખત આપીને પણ અનેક વાતો ઉપસ્થિત સભ્યો સમક્ષ એવી ખૂબીથી કરે કે સહેજે ઊઠવાનુ મન જ ન થાય એમની બધી વાતોનો સામાન્ય સૂર એક જ અને તે એ કે જે કામ અનેક જણે સાથે મળી કરવાનાં હોય તેમાં અરસપરસ પૂરો વિશ્વાસ કેળવવો જોઈએ કાંઈ ગૂઢ નહિ અને કાંઈ અન્યથા નહિ. મને તેમના આ સૂરમા ગાંધીજીનો જ સૂર સભળાતો.

સભાનુ કામ પતે ત્યારે દાદા કાર્યકર્તાઓને અને સભ્યોને એક વાત અકૃત્રિમ રીતે નમ્રપણે કહેતા, કે વિદ્યાના ક્ષેત્રમાં તમે જે જે કામ કરો છો તે બધા તે તે ક્ષેત્રમા નિષ્ણાત છો હુ એ ક્ષેત્રનો માનવી નથી એટલે તમારા ક્ષેત્ર પરત્વે ઊડાણમા ઊતરી વિશેષ સૂચના ન કરી શકુ, પણ બીજા ક્ષેત્રમા પડ્યો છુ છતાં વિદ્યા વિશેનો મારો રસ જરાય ઓછો નથી તેથી હુ મારી ફરજ એટલી જ સમજુ છુ કે વિદ્યાના ક્ષેત્રમા કામ કરનારા-ઓને બને તેટલી વધારેમા વધારે અનુકૂળતા કરી આપવી અને તેમને સાધન પૂરા પાડવાં મેં તેમના આ વિચારને જીવનમા સાકાર થતો સદા અનુભવ્યો છે.

દાદાની એક વિશેષતા તેમની સ્પષ્ટ દૃષ્ટિ ઉપરાંત તેમની ઉદારતામાં પણ જોયેલી ઉદારતા પણ અનેકમુખી સપ્રદાય કે પથનો સકુચિત ચેપ તો હોય જ શાનો ? પણ સામાન્ય રીતે ઘણી મોટી વ્યક્તિઓમા અનુભવાય છે તેવો સસ્થા પ્રત્યેનો સંકુચિત દૃષ્ટિકોણ પણ કદી મેં ન જોયો. આમ તો તેઓ સીધી રીતે ગુજરાત વિદ્યાસભા ને તેને આશ્રયે ચાલતી બીજી સસ્થાઓના જ મુખિયા હતા, પણ તેઓ અવારનવાર સાચી રીતે કહેતા કે ગુજરાત વિદ્યાસભા હોય કે ગુજરાત વિદ્યાપીઠ, ગુજરાત વિશ્વવિદ્યાલય હોય કે વલ્લભવિદ્યાનગર, વડોદરા યુનિવર્સિટી હોય કે લોકભારતી ગ્રામ-

વિદ્યાપીઠ (સણોસરા, સૌરાષ્ટ્ર)—એ બધી સંસ્થાઓ મારે મન એક જ કામને પોતપોતાની રીતે આગળ વધારનારી હોઈ તેમાં હુ મૂળગત એકતા જોઉં છુ અને તેથી સીધી રીતે જ્યાં જોડાયો ન હોઉં ત્યાંનુ હિત પણ મારા મનમા વસે છે.

પટાવાળાથી માંડી શિક્ષક, અધ્યાપક અને અધ્યક્ષ સુધીના બધા જ કાર્યકર્તાઓ પરસ્પર સદ્‌ભાવથી કેવી રીતે સંકળાઈ રહે અને સંસ્થા પ્રત્યે સૌ કેવી રીતે વધારે નિષ્ઠાવાન રહે એ ધ્યેય મનમાં રાખી અનેક નિર્ણયો એઓ કરતા એવા નિર્ણયો કરતી વખતે પાઈપાઈનો હિસાબ ચોકસાઈથી તપાસનાર દાદા બહુ જ મોટુ મન રાખી કામ કરતા. આને પરિણામે ભો. જે. વિદ્યાભવન અને બ્રહ્મચારીવાડીમા કામ કરનાર શિક્ષક–અધ્યાપકનો મોટો વર્ગ નિષ્ઠાના અને સદ્‌ભાવના સળંગસૂત્રમાં સંકળાઈ આજ લગી કામ કરતો રહ્યો છે ગાંધીજીની હયાતી વખતે તેમની દોરવણી પ્રમાણે કામ કરનારને જેમ ગાંધીજીમાં છેલ્લી હૂંફ અનુભવાતી તેમ ગુજરાત વિદ્યાસભાના આ વર્તુળમા કામ કરનાર વિશે પણ મેં જોયું કે સૌનાં દિલમાં દાદાનુ શું સ્થાન છે. આર્થિક અને બીજે કારણે જ્યારે ભો. જે. વિદ્યાભવનમાં કામ કરનાર મોટા અધ્યાપકવર્ગને સાથે રહી કામ કરવાનુ મુસ્કેલ બન્યું ત્યારે જે કાર્યકર્તાવર્ગ એકત્ર થયો છે તે છૂટો પડી જ્યાં ત્યાં વીખરાઈ ન જાય, એવી દીર્ઘદૃષ્ટિથી દાદાએ રામાનદ કૉલેજ શરૂ કરવાની સમતિ આપી અને એમા પોતે સક્રિય ભાગ લીધો.

એમની વિદ્યાકાર્યની મૂલવણી પણ અનોખી જોઈ છે. કોઈએ ઉત્તમ સંપાદન, સંશોધન કે ભાષાન્તર આદિનુ કાર્ય કર્યું હોય અને પુરસ્કાર આપવાની વાત નીકળે તો તેમણે કદી વૈશ્યવૃત્તિથી નિર્ણય કર્યો હોય એમ મેં નથી જોયું. એ તો કહે કે જો કામ ઉત્તમ હોય તો બદલો પૂરતો આપવો જ જોઈએ સારું કામ સમજનાર મળી રહેશે અને એ દામ પૈસા આપનાર પણ મળી રહેશે, ઇત્યાદિ

દાદા અમદાવાદમાં આવે ત્યારે હરિજન આશ્રમમાં જવાનુ ન ચૂકે એમના વૃદ્ધ માતુશ્રી હતા ત્યારે તેમને પણ ક્યારેક આશ્રમમાં લઈ જાય ત્યા પ્રાર્થના થાય અને આશ્રમવાસી બધાને હૂંફ મળે, જાણે કે ગાંધીજીની સજીવ છાયા જ આવી ન હોય!

જેમ ગાંધીજી પાસે અનેક કામોના ઢગલો અને કામ કરનારાઓનો

સંધ સદા જોવા મળતો, તેમ જ એક પછી એક કામ ઉકેલાતું પણ જોવા મળતું; એ જ રીતે દાદા પાસે પણ જોવા મળતું. ગાંધીસ્મારકને લગતાં કામો હોય, કસ્તૂરબા ટ્રસ્ટમાંથી ચાલતી અનેક સંસ્થાઓના કાર્યકર્તાઓ આવેલા હોય, શહેરના અને બીજા પ્રશ્નો હોય, કેટલાક જણ એમ ને એમ સલાહ લેવા આવ્યા હોય, પણ એ બધાનો ઉકેલ ધીરજ અને સમજણપૂર્વક કરે અને કોઈને અણગમતો નિર્ણય સંભળાવ્યો હોય તોય તેને હસતો કરી વિદાય કરે. આ તેમની સિદ્ધિ, એ ગાંધીજીની સિદ્ધિની જ યાદ આપતી.

–બુદ્ધિપ્રકાશ, માર્ચ ૧૯૫૬

પરિચય થોડો પણ છાપ ઘણી ઊંડી

[૧૫]

૧૯૨૨ની વર્ષાઋતુમાં હુ ભાવનગર પાસેના વાળુકડ ગામમાં હતો. જ્યાં ક્યારેક કલાપીએ વાસ કરેલો એ ઐતિહાસિક મકાનમાં હુ શેઠ પ્રેમચદભાઈના મિત્ર તરીકે રહેલો મારું મુખ્ય કામ તો તત્ત્વાર્થના લેખન અને તે અગેના ચિંતન–મનનનુ જ હતુ તે વખતે એ મકાનમાં કાંઈક સમારકામ પણ ચાલતુ હતુ ઘણી મજૂરણો કામે આવતી, એ બધી વચ્ચે વચ્ચે સાથે મળી લોકગીતો લલકારતી જતી એમા એક મુખ્ય બાઈ હતી નામે મોંઘી એને એટલાં બધાં લોકગીતો યાદ કે ખૂટચાં ખૂટે નહિ. નવુ નવું ગાતી જાય ને બીજી બહેનોને ગવડાવતી જાય એ પોતે પણ મુકડી એનાં લોકગીતો હુ તો જ્યારે સાવ નવરો પડુ ત્યારે જ ઇચ્છાપૂર્વક સાંભળુ, પણ મારી સાથે હતા ભાઈ છોટાલાલ મગનલાલ (ગુજરાતી સાહિત્ય મદિરના માલિક) તેઓ નવરા પડે કે એ લોકગીતો ઉતારી લે ક્યારેક ક્યારેક પ્રેમચંદભાઈ એ શ્રાવણની રાતોમા બહેનોને ગરબા લેવા બોલાવે મોંઘી સૌમા મોવડી રાત ખૂટતી જાય પણ એનાં ગીતો ન ખૂટે જેમ જેમ રાત ઠરે તેમ તેમ એનો કઠ રાતરાણીના ફૂલની પેઠે ખીલતો અને ઊઘડતો જાય. છોટાલાલે કેટલાય દિવસોમા કેટલીયે નોટો ભરી એક દિવસ મે કહ્યુ 'આટલી બધી નોટોનુ શુ કરશો? કોણ વાચશે? અને આ તો બધા ગીતો ગામડિયા છે' ને વખતે ભાઈ છોટાલાલે કહ્યુ કે 'ઝવેરચદ મેઘાણી પાસે લોકગીતોનો ભારે સગ્રહ છે ને એ એના ગવૈયા પણ છે એમની કદર પૂરેપૂરી નથી થતી તો મારી નોટોની કદર શી થવાની છે? જ્યા હશે તો કામ આવશે.'

ઝવેરચદ મેઘાણીનુ નામ આ વખતે પહેલવહેલુ જ મારે કાને પડ્યું. તે વખતે એમને વિષે વિશેષ જિજ્ઞાસા ન થઈ પણ એમની જિજ્ઞાસાનુ બીજ તો વવાયુ જ.

સાલ યાદ નથી, ને પ્રસગ પણ પૂરેપૂરો યાદ નથી આવતો, પરંતુ અમદાવાદમાં [illegible] જ [illegible] ગીતો [illegible] તે વખતે મન ઉપર [illegible] પછી કે મેઘાણી નામ [illegible]

એમનો કંઠ મેઘ જેવો ગંભીર અને આહ્લાદક છે શ્રોતાઓને પોતાની ગંભીર ગર્જનગિરાથી મોરોની પેઠે તેઓ નચાવતા અને રસોદ્દગારથી ટહુકારાવતા.

આ વખતે હું તેમને પ્રત્યક્ષ મળી શક્યો નહિ પણ મળવાની વૃત્તિ અંતરમાં જન્મી મેં અત્યાર લગી તેમનું કોઈ લખાણ વાંચ્યું ન હતું

એમની 'રસધાર'ની ચોપડીઓ ઘરમાં હતી છતાં સાંભળેલી નહિ. ક્યારેક મનમાં આવ્યું કે નિરાંત મળે તો એ જોવી જરૂર અનુકૂળતાએ બધી નહિ તો એમાંથી કેટલીકનો કેટલોક ભાગ સાંભળી ગયો અને બાલ્યાવસ્થામાં જે ગ્રામજીવન તેમ જ લોકગીતોના સંસ્કાર ઝીલ્યા હતા અને જે સંસ્કાર હવે ગત જન્મના સંસ્કાર જેવા થઈ ગયા હતા તે બધા એકેએક મનમાં ઊભરાવા લાગ્યા

શ્રીમતી દમયંતીબેનના અવસાન પછી ક્યારેક મુંબઈમાં અમે બન્ને મળ્યા જમવાનું સાથે હતું એટલે ખુલ્લે દિલે વાતચીતની તક મળી મેં આ પ્રથમ મુલાકાતે જ એમ અનુભવ્યું કે આ માણસ માત્ર કંઠની બક્ષિસવાળો સુગાયક જ નથી પણ એ તો ચિંતન અને સંવેદનથી પણ સ્વચ્છ હૃદયનો પુરુષ છે અમે પ્રથમ મળીએ છીએ ને કાંઈક વચ્ચે સંકોચનો પડદો છે એ ભાવ જ મારા મન ઉપર ન રહ્યો ને ફરી તેમની સાથે વધારે પરિચય કરવાની વૃત્તિ પ્રબળ થઈ અત્યાર લગીમાં એમનું સાહિત્ય અને એમના લખાણો ઘણાં પ્રસિદ્ધ થયેલા, મારે ત્યાં પણ એમની કેટલીક ચોપડીઓ હતી છતા એક અથવા બીજે કારણે મેં એમાંનું ભાગ્યે જ કાંઈ વાંચ્યું કે સાંભળ્યું હશે

ક્યારેક ક્યારેક 'ફૂલછાબ'ના અંકો બહુ જ જૂજ પ્રમાણમા સાંભળવા પામતો એમાં 'સાબેલાના સૂર' વાચવા હુ બહુ લલચાતો 'જન્મભૂમિ'માં 'કલમ અને કિતાબ'નું પાનું રહેતું, તે પણ જ્યારે મળે ત્યારે સાંભળી જવા બહુ લલચાતો સાબેલાના સૂર અને કલમ કિતાબના પાના જે કાંઈ બહુ થોડાં સાભળ્યા છે તે ઉપરથી તે જ વખતે મારું અનુમાન થયેલું કે હો ન હો પણ આનો લેખક મેઘાણી જ હોવો જોઈએ. એમા કાઠિયાવાડી ભાષાનો સૌમ્ય પણ ધોધમાર પ્રવાહ અને માહિતીપૂર્ણ, કલ્પનાપ્રધાન તેમ જ બહુશ્રુત વિચાર જોઈ એમ થતું કે બરોબર મેઘાણી પારદર્શી અને તટસ્થ વૃત્તિના છે 'પ્રજાબંધુ'ના 'મંથન' અને 'ચર્ચાપત્ર વાચનાર' એને કદી છોડી ન શકે તો 'સાબેલાના સૂર' અને 'કલમ કિતાબ' નો નેધીયે

કદાચ આગળ વધે એવી મારા મન ઉપર છાપ પડતી મેઘાણીનાં પુસ્તકો સાંભળવાની તૃષા તે વખતથી આજ લગી હજી નથી જ સંતોષાઈ, પણ મેઘાણીનો પરિચય થવાના પ્રસંગો મુંબઈમાં જ આવતા ગયા

૧૯૪૧ ના ઉનાળામાં મેઘાણી મુંબઈમાં એક મિત્રને ત્યા રાતે આવ્યા. હું પણ હતો. બધાએ એમને કાંઈક સંભળાવવા કહ્યું મે એમની લથડેલી તબિયત જાણી એટલે એમને પોતાને ગાવા ના પાડી અને શ્રોતાઓને પણ આગ્રહ કરવા ના પાડી. દરમ્યાન મારી સાથે એક બિહારના વનસ્પતિ શાસ્ત્રવિશારદ ડૉક્ટર હતા તેમણે એક હિન્દી ગીત લલકાર્યું એ તો સામાન્ય હતુ. આ ગીત પૂરુ થતા જ મેઘાણી આપમેળે ગાવા મંડી ગયા મે રોકયા પણ આ એક, તો પૂરું કરી લઉ એમ કહી તે આગળ ચાલ્યા એન એટલે કયું એક એની પછી સીમા બાંધવી અઘરી હતી. આ ખાનગી મિજલસ પછી તેમનાં મુંબઈ યુનિવર્સિટીનાં ભાષણો સાંભળવાની તક મળી

કલાકના કલાકો લગી અખંડપણે એટલા ઊચા સ્વરથી એટલી મોટી મેદની વચ્ચે ગાવુ અને અસાધારણ જણાતા અને વિદ્વાનો સમક્ષ વિવેચન પણ કરતા જવુ એ સિદ્ધિ તે જ વખતે જોઈ મને મનમાં થયુ કે પ્રસંગ મળે તો મેઘાણીને કહી દઉ કે 'આટલુ બધુ ન લબાવો અને લંબાવવું હોય તોપણ રાતે અને આખો દિવસ પૂરતો આરામ કરી લો' મેં તેમને એ વાત કહી પણ ખરી પરતુ તેમણે તો મને એવો ઉત્તર આપ્યો કે જેથી હુ અતિ વિસ્મયમાં પડી ગયો તેમણે કહ્યુ 'આરામની વાત કયા છે? સવારથી ઊઠી ભાષણ માટે આવુ છુ ત્યાં લગી ભાષણની બધી સંકલના કરું છુ, નોટ કે નોંધો એ મારી સ્મૃતિ જ છે રાતે પણ વખત મળે ત્યારે એ જ ગડભાજમા રહુ છુ' હું કાંઈ વિશેષ ન બોલ્યો પણ એટલુ કહ્યું કે 'આ રીત સારી નથી, જોખમી છે.' યુનિવર્સિટીના પાંચ ભાષણો પૂરાં થયા ત્યારબાદ ભારતીય વિદ્યાભવનમા એક મેળાવડો યોજાયો. શ્રીયુત મુનશીજી પ્રમુખ અને મેઘાણી લોકગીત લલકારનાર. પોણા બે કલાક એ મેઘગંભીર ગિરા ગાજતી રાખી ઉપસંહારમાં શ્રીયુત મુનશીએ ઠીક જ કહ્યું હતુ કે 'આ તો આમ છે.' મને એમ જ લાગ્યું કે આખે મહાભારતમા જે વિસ્તાર કર્યો છે અને જે વિવિધતા આણી છે તે જ તત્ત્વ મેઘાણીના ગાન અને ભાષણમાં છે. આ બધું જતાં મન એક વસ્તુ ઉપર ખાસ ચોંટતી જ હતી અને તે એ કે એમના શક્તિ અને ગજબનું

પ્રમાણ નથી સાચવતા, રસમાં તણાઈ જાય છે અને શ્રોતાઓ માત્ર પોતાની શ્રવણેન્દ્રિયની તૃપ્તિનો જ વિચાર કરે છે, વક્તાની શક્તિ અને સ્થિતિનો નહિ.

૧૯૪૪ના ડિસેમ્બરમાં અમદાવાદ મુકામે એક ઇતિહાસ પરિષદ ભરાયેલી. તેમાં અમુક વિષયને લક્ષી વિદ્વાનોની ચર્ચા ગોઠવેલી. શ્રીયુત મુનશીનુ ભાષણ વકીલાતથી ભરેલું હતું. એમાં બીજા પક્ષો પ્રત્યે જાગતી દૃષ્ટિ નહિ પણ સ્વપક્ષ પરત્વે સમર્થક જાગરિત દૃષ્ટિ હતી. અધ્યાપક રામનારાયણનુ ભાષણ એક અધ્યાપકને શોભે તેવુ ટૂંકુ અને સ્પષ્ટ હતું. ધૂમકેતુનુ પ્રવચન તત્ત્વસ્પર્શી હોય તે કરતાં વધારે વિનોદી હતુ પણ મેઘાણીનુ પ્રવચન તદ્દન જુદી ભાત પાડતું મને લાગેલુ એમના પ્રવચને પણ મારા મન ઉપર પડેલી તેમની સમભાવ વિષેની છાપને વધારે પુષ્ટ કરી હતી એવુ મારુ સ્મરણ છે.

છેલ્લે ૧૯૪૬ના એપ્રિલની ઘણુ કરી ૪થી તારીખે 'બ્લેવેટ્સ્કી હોલ'મા એક મેળાવડો યોજાયેલો. મેઘાણી ગાનાર ઠઠ ખૂબ જામી હતી. બીજે દિવસે હુ કલકત્તા જવા માટેની તૈયારી કરતો હતો છતા મેઘાણીને સાંભળવાનો લોભ દાબી ન શક્યો. મને બેઠેલો જોઈ મેઘાણી આપમેળે પાસે આવ્યા, ને જાણે તદ્દન અંગત હોઈએ એ રીતે વાતો ચાલી. મારા પ્રશ્નના ઉત્તરમાં કહે કે 'મહેન્દ્રને હમણાં અમેરિકા જતો રોક્યો છે, કામ સારું કરે છે તૈયારી કરશે ને પછી અમેરિકા જશે તો વધારે ફાયદો થશે' મેઘાણીએ પોતાનુ કામ શરૂ કર્યું. મેં ધારેલું કે કલાક દોઢ કલાકમા પૂરું થશે પણ લગભગ ત્રણ કલાક થવા આવ્યા ને પૂરુ ન થયુ એટલે હુ તો અતિ લંબાણની સમાલોચના ને ચિંતા કરતો ઘેર પાછો ફર્યો મારી સાથે એક મારા બેન પણ સાંભળવા આવેલાં અમે ઘેર પાછા ફરી થોડીક સમાલોચના કરી મે એ બેનને કહ્યુ કે 'જો મેઘાણી આ રીતે ગાતા રહેશે, લોકોને ટોળે વાળશે ને સમય-મર્યાદા નહિ બાંધે તો તે લાબું જીવન કદી માણી શકશે નહિ. શ્રોતાઓ 'આગળ ચલાવો—આગળ ચલાવો' એમ કહે જાય છે, સારા સારા લેખકો ને વિચારકો પણ એમને રોકવાને બદલે ગાણાં સભળાવવાની પ્રેરણા કર્યે જ જાય છે એ ભાગ્યમાં ભાગ્ય અનાન છે.'

'વીર્યપાતાદ્ વાક્પાતો બંલીયાન્' આ સૂત્રોનુ મર્મ કેળવાયેલા પણ ન જાણે તો સાધારણ શ્રોતાઓને ઠપકો કેમ આપી શકાય?'

લગભગ ૧૧ મહિના પછી જ્યારે કાશીમા મેઘાણીના દુ:ખદ અવસાનની વાત જાણી ત્યારે મને મારા દોરેલ પૂર્વ અનુમાનના કાર્યકારણભાવ વિષેની

ખાતરી થઈ. માણસ ગમે તેવો શક્તિશાળી ને કાર્યકર હોય છતાં શક્તિ અને કાર્યની સમતુલા જો રાખી ન શકાય તો એકંદર તે પોતે અને પાછળની પ્રજા નુકસાનીમાં જ રહે છે.

લોકસેવક ગોખલેના અવસાન પછી અમદાવાદમાં દિલગીરી દર્શાવવા માટે એક સભા મળેલી. પૂ. ગાંધીજીએ એક વાત કહેલી તે આજે પણ મારા મન ઉપર તેવી જ તાજી છે. તેમણે કહેલું કે, 'ગોખલેએ કામ બહુ ખેંચ્યું, જીવનકાળના નિયમોને પૂરી રીતે તેઓ ન અનુસર્યા, તેમણે કામ બહુ કીમતી કર્યું છે, પણ વધારે પડતું કામ ખેંચવાથી એકંદરે તેઓ પોતાની સેવાવૃત્તિમાં નુકસાનમાં જ રહ્યા છે અને આપણે પણ તેમની પાસેથી લાંબા વખત લગી જે સેવા મેળવી શકત તેથી વંચિત જ રહ્યા છીએ.' મને લાગે છે કે મેઘાણી વિશે પણ આમ જ બન્યું છે.

બીજા કોઈ સાધારણ માણસ કરતાં અસાધારણ વ્યક્તિનું જ જીવન લાંબું હોવું જોઈએ. તેથી એકંદરે તે પોતાના ક્ષેત્રમાં વધારે સેવા અર્પી શકે છે. અને પ્રજાને પણ એની કીમતી સેવાનો લાભ મળે છે. સેવા લેનાર અને દેનાર જો પ્રમાણમર્યાદા ન સાચવે તો સરવાળે બન્નેને નુકસાન જ થાય છે. યુરોપના આધુનિક લેખકોમાં એચ. જી. વેલ્સ કે બર્નાર્ડ શૉ જેવા ઘણાય છે, જેઓએ આખી જિંદગી પોતપોતાની ઢબે સાહિત્યસર્જનમાં જ આપી છે. તેમનું દીર્ઘ જીવન જોતાં જ એમ લાગે છે કે તેઓ શક્તિ અને કામની મર્યાદા આંકી સમતુલા સાચવતા હોવા જોઈએ. અને જીવવાની કળા વધારે સારી રીતે જાણતા હોવા જોઈએ. આપણા દેશમાં ઠક્કરબાપા કે ગાંધીજી જેવા જે દીર્ઘ જીવન દ્વારા લોકસેવા કરી રહ્યા છે તેનો આધાર આ સમતુલા જ છે એમ હું માનું છું.

મેઘાણીના પુસ્તકોમાંથી [illegible] મેં ત્રણ જ સાંભળ્યાં છે. "વેવિશાળ," "પ્રભુ પધાર્યા" અને "માણસાઈના દીવા" છે. તે [illegible] વખતનું પ્રવચન, [illegible] સાહિત્ય સભાના પ્રમુખ તરીકેનું ભાષણ ! [illegible] "સંસ્કૃતિ" નામનો "લોકકવિનો પારસમણિ" લેખ. આટલા અતિ અલ્પ વાચન [illegible] પરિચયે મારા મન ઉપર [illegible] ઊંડી છાપ [illegible] પાડી છે. અને તે [illegible] કે મેઘાણીનું જીવતું [illegible] અને તે [illegible] નહિ [illegible] સ્વભાવથી [illegible] છે, નિર્ભય [illegible] શક્તિ [illegible] નિષ્પન્ન [illegible] કે તે [illegible] કોઈ [illegible] સમર્થ વ્યક્તિ, [illegible] તેં [illegible] સાહિત્ય [illegible]

નહિ ફસાતાં તેથી પર હતા જેટલા પ્રમાણમાં તેઓ દોષ પકડી કાઢતા તેટલા જ પ્રમાણમાં તેઓ ગુણને પણ પકડી કાઢી તેનું નિરૂપણ કરતા. કવિ કે લેખક જ્યારે આવેશ કે '**अहमेवास्मि**'માં તણાઈ જાય છે ત્યારે સરવાળે પોતાને અને પોતાની પાછળની પેઢીને એક ચેપી રોગમાં જ સપડાવે છે મેઘાણી બિલકુલ એવા રોગથી પર હતા એવી મારા મન ઉપર અમીટ છાપ પડી છે. *

---

* શ્રી ઝવેરચંદ મેઘાણી સ્મૃતિગ્રંથ 'સૌનો લાડકવાયો'માંથી ઉદ્ધૃત

આવો ને આટલો આઘાત કેમ ?

[૧૬]

શ્રીયુત પરમાનંદભાઈના પત્રથી ડૉ. મેઘાણીના દુઃખદ અવસાનની જાણ થતાં જ મન ઉપર આઘાત થયો. ઠીક ઠીક વખત પસાર થયા છતાંય એ આઘાત મોળો ન પડ્યો. મન બીજા કામમાં પરોવ્યું તોય એની પાછળ વિષાદની ઊંડી રેખા એવી અંકિત થયેલી લાગી કે તે કેમેય કરી મોળી પડતી ન દેખાઈ. હું વિચારમાં પડ્યો કે ડૉ. મેઘાણી નથી અંગત સંબંધી કે નથી તેમની સાથે કોઈ નિકટનો સ્વાર્થ-સંબંધ અને છતાં આટલો વિષાદ અને આઘાત કેમ થાય છે?

સ્વાભાવિક રીતે જ ચિંતનશીલ મન કારણની શોધ તરફ વળ્યું. પહેલાં તો એમ થયું કે આવા આઘાતનું કારણ જે રીતે ડૉક્ટરનું મૃત્યુ થયું છે તે રીત છે. ગુંડાગીરીના કૃત્ય સિવાય માંદગી કે તેવા બીજા સહજ કારણથી મૃત્યુ જેમ સહુનું આવે છે તેમ આ મૃત્યુ પણ થયું હોત તો આવો આઘાત ન થાત. લોહીની નદીઓ વહેવા છતાં બીજા કેટલાક દેશો જ્યારે હજી સ્વતંત્રતાની પ્રાપ્તિથી ઘણે દૂર છે ત્યારે ગાંધીજીના અહિંસક પુરુષાર્થને પરિણામે આ દેશમાં ઊગી રહેલ સ્વાતંત્ર્યના પ્રભાતને ગુંડાગીરી અંધકારમાં ફેરવવા મથી રહી છે—એ જ ભાવના ગુંડાગીરી પ્રત્યેના અણગમામાં સમાયેલી હતી—એમ મેં જોયું, પણ તરત જ એ વિચાર આવ્યો કે, જો ગુંડાગીરી જ પ્રબળ વિષાદનું કારણ હોય તો અત્યાર લગીમાં મેઘાણીની જેમ કેટલાય સ્ત્રીપુરુષો ગુંડાગીરીના ભોગ બનેલા છે અને બનતા જાય છે તેના રોજ-બ-રોજના સામાન્ય સમાચારથી મન આજની જેવો ઊંડો આઘાત કેમ નથી અનુભવતું? મનમાં એ પણ પ્રશ્ન થયો કે, કલકત્તા, નોઆખલી, બિહાર અને ગઢમુક્તેશ્વરની ગુંડાગીરીનાં નગ્ન નૃત્યો નજરે જોઈ આવનાર વિશ્વાસી મિત્રોએ કરેલું વર્ણન જ્યારે સાંભળ્યું ત્યારે પણ અહિંસક પુરુષાર્થના પરિણામના વિઘાતક લેખે એ ગુંડાગીરી પ્રત્યે ગુસ્સો તો આવેલો અને ખેદ આજના આઘાતમાં, તે આઘાતમાં જેવી વ્યાપક તીવ્રતા કેમ છે? મન આ પ્રશ્નનો ઉત્તર શોધવા મથતું હતું. તેમાંથી

એને જે ઉત્તર મળી રહ્યો તે જ આ સ્થળે ડૉ. મેઘાણી પ્રત્યેની શ્રદ્ધાંજલી રૂપે લખી નાખું છું.

છેવટનો ઉત્તર મનમાંથી એ મળ્યો કે ડૉ. મેઘાણીના સદ્‌ગુણોનો જે થોડોઘણો પરિચય થયેલો તેનું તાજુ થયેલુ સ્મરણ આ વિષાદને તીવ્ર બનાવી રહ્યુ છે તેથી તેમની સાથેની મારી પરિચયકથા જ ટૂંકમાં અત્રે આપવી યોગ્ય ધારું છુ

૧૯૩૧ની કરાચીની કોંગ્રેસથી પાછો ફરી મુંબઈ આવ્યો ને અણધારી રીતે ડૉ મેઘાણીને ત્યાં જ રહેવાનુ બન્યું તે વખતે તેઓ જકરિયા મસ્જિદની આસપાસ રહેતા ઘેર તે પોતે ને તેમના નાનાભાઈ પ્રભુદાસ એ બે હતા તેમના ઘરનો એકાંતવાસ મને વાચન–ચિંતનમાં અનુકૂળ હતો તેથી જ હુ ત્યા રહેલો મે ત્યાં સૂવા–બેસવા ને ચા–પાણી પૂરતો જ વ્યવહાર રાખેલો ડૉક્ટર મેઘાણીએ મને પ્રથમ પરિચયે જ કહ્યુ હતુ કે જો કે અત્યારે ઘરવાળા કોઈ નથી, છતાં જે અમારા માટે ખાવાનુ બને છે તેમાં તમે ખુશીથી ભાગીદાર બની શકો છો ડૉક્ટરના દિવસનો મોટો ભાગ તેમની ફરજ તેમ જ તેમને ચાહનાર પરિચિત દર્દીઓનો ઈલાજ કરવા વગેરેમાં પસાર થતો દિવસમાં બહુ થોડો વખત અમે બન્ને ક્યારેક સાથે બેસવા પામતા, પણ રાતના જરૂર બેસતા હુ તેમને તેમના અનુભવોની વાત પૂછતો ને કદી નહિ સાભળેલ કે નહિ અનુભવેલ એવી દુ ખી દુનિયાની વાતો તેમને મોઢેથી સાભળતો આમ તો ડૉક્ટર સાવ ઓછાબોલા પણ હુ તેમને ચૂપ રહેવા દેતો નહિ શરૂઆતમા મે એટલું જ જાણ્યુ કે ડૉક્ટર મેઘાણીનો ગરીબ, દલિત ને દુ ખી માનવતાનો અનુભવ જેટલો સાચો છે તેટલો જ તે ઊડો પણ છે ધીરે ધીરે મને માલૂમ પડેલુ કે તેમણે તો ‘જાગૃતિ’ પત્ર દ્વારા આ વિષે ખૂબ લખેલું પણ છે થોડા જ વખતમા હું એ પણ જાણવા પામ્યો કે, ડૉક્ટરનો મનોવ્યાપાર માત્ર કચડાયેલ માનવતાના થરનો અનુભવ કરવામા કે તેને માત્ર લખી કાઢવામા વિરામ નથી પામતો, પણ તેઓ એ દુ ખ પ્રત્યે એટલી બધી સહાનુભૂતિ ધરાવે છે કે તેને ઓછુ કરવામા પોતાથી બનતું બધું કરી છૂટવા તેઓ મથે છે.

વેશ્યાના લત્તાઓમા કે અતિ ગરીબ મજૂરોની ઝૂપડીઓમા તેઓ પોતાની ફરજને અંગે જતા, પણ તે માત્ર નોકરી બજાવવાના દેખાવ પૂરતો જ ઉપરઉપરનો રસ ન લેતા તેમની સ્થિતિના ઊંડા કારણો તપાસતા

તેમણે મને વેશ્યાજીવનની આસપાસ વીંટળાયેલ અનેકવિધ ગુંગળામણો વિષે એવા અનુભવો સંભળાવેલા કે હું સાંભળીને ઠરી જતો કેટકેટલી નાની ઉંમરની છોકરીઓ એ જાળમાં ફસાય છે, કેવડા નાના અને ગંદા મકાનમાં તે જીવન ગાળે છે, પાઉંરોટી, બ્રેડ ને ચા ઉપર મોટે ભાગે તે કેવી રીતે નભે છે, કેટલી નિર્લજ્જતાથી અનિચ્છાએ પણ તેમને રહેવું પડે છે અને ત્યાર પછી આ ગંદકીમાંથી નીકળવા ઘણીખરી બહેનો કેટલી ઝંખના કરે છે અને છતાંય કોઈ રસ્તો મેળવી શકતી નથી અને તેમનો હાથ પકડનાર કોઈ વિશ્વાસી મળતું નથી—એ બધું જ્યારે ડૉક્ટર કહેતા ત્યારે એમની કરુણા આંસુ રૂપે ઊભરાતી

ડૉક્ટરને પોતાની ફરજને અંગે વ્યાપારીઓની દુકાને સીધા-સામાનમાં કાંઈ સેળભેળ છે કે નહિ તેની પરીક્ષા પણ કરવી પડતી તેમણે એક વાર એવી પરીક્ષાને પરિણામે જે સેળભેળનાં અનિષ્ટ તત્ત્વો જોયેલાં તે મને કહ્યાં ત્યારે હું નવાઈ પામ્યો કે આવી જીવલેણ મેળભેળ ચાલવા છતાં પ્રજા જીવે છે કેવી રીતે ? વ્યાપારીઓ સજા ને દંડના ભયથી લાંચ આપી છટકી જવા ઇચ્છે એ સમજી શકાય તેવું છે, પણ મેઘાણીને લાંચ કે બીજું કોઈ પ્રલોભન લલચાવી શકે તેમ ન હતું એ તો છેવટે પોતાના અધિકારનો ઉપયોગ વ્યાપારીની વૃત્તિને સુધારવામાં જ કરતા

સ્ત્રીઓના દુઃખ પ્રત્યેની ઊંડી સંવેદનાએ તેમને વિધવાઓના ઉદ્ધારની દિશામાં પ્રેર્યા હતા હું એમને ત્યાં હતો તે દરમ્યાન જ તેમણે બે ત્રણ અતિ સંકટમાં આવેલ બાળ-વિધવાઓને ઠેકાણે પાડી સન્માનભેર જીવન ગાળતી કરી હતી એ બાળવિધવાઓ જૈન હતી ને તેમની ધન તેમ જ શીલ-સંપત્તિ તેમના નિકટનાં સગાંઓએ જોખમમાં મૂકી તેમને રખડતી કરી હતી એ બાળવિધવાઓને માટે મરણ સિવાય બીજો કોઈ રસ્તો રહ્યો હોય તેમ લાગતું નહિ તે વખતે ડૉ. મેઘાણીએ તેમને ઠેકાણે પાડી આ વસ્તુ જાણી ત્યારે ડૉ. મેઘાણી પ્રત્યે હું વધારે આકર્ષાયો, ને તેમના કહેવાથી તે વખતે ભીંગબાગમાં થયેલ એક પુનર્લગ્નમાં હું [illegible] પણ ગયેલો

સુધારણા અંગેની બધી પ્રવૃત્તિઓમાં ડૉક્ટરની મનોવૃત્તિ [illegible] હતી ને તે ક્રિયાત્મક હતી ડૉ. મેઘાણી સ્થાનકવાસી જૈન પરંપરાના હતા, તેથી સ્થાનકવાસી જૈન કૉન્ફરન્સમાં પણ કાંઈક રસ લેતા તેમણે એકવાર કહ્યું કે, 'સ્થાનિકનો અર્થ [illegible] કે [illegible] નામ નો માત્ર સામાજિક

પત્રપ્રકાશન પૂરતુ જ છે અને તેમાં પણ મુખ્યપણે પંડિત દરબારીલાલજી લખે છે.' મેં તેમને કહ્યુ કે, 'આટલો બધો માસિક ખર્ચ રાખવા છતાં કાંઈ કામ થતુ ન હોય ને માત્ર સામયિક પત્ર જ અને તે પણ સામાન્ય કોટિનુ ચાલુ રાખવુ હોય તો બહેતર છે કે ઑફિસનો ખર્ચ બધ કરવો ને જ્યા ત્યાં કૉન્ફરસની સ્કૉલરશીપથી ભણી રહેલ યોગ્ય વિદ્યાર્થીઓ દ્વારા જ પત્રપ્રકાશન ચાલુ રાખવુ.' તેમને એ વાત ગમી એટલે મને કહે કે 'ચાલો, તમે અમારા કાર્યકર્તાઓને સમજાવો આ વખતે મે જોયુ કે ડૉકટર સામાજિક ધનનો ઉપયોગ જરા પણ નિરર્થક થાય એને સાખી શકતા નહિ આ પછી મુબઈમા પર્યુષણ વ્યાખ્યાનમાળાનો યુગ આવ્યો. હુ એ પ્રસગે આવતો ડૉકટર મેઘાણી વ્યાખ્યાનમાળા પ્રસગે પોતાની અનુભવકથા કહે એવી હુ માગણી કરતો, પણ તેઓ મને કહેતા કે, મારાથી એ વિષે બોલી શકાશે નહિ હુ મારુ કામ લખીને તેમ જ પ્રત્યક્ષ બનતું કરીને પતાવીશ ડૉકટરની નિર્ભયતા અને ક્રાન્તિકારી મનોવૃત્તિનો પરચો મને આગળ મળ્યો, ત્યારે હુ તેમના પ્રત્યે પ્રથમથી વધારે આકર્પાયો.

૧૯૩૩ ના ઉનાળામા અજમેર મુકામે સ્થા સાધુ સમેલન હતુ તે વખતે તેમણે ત્યા શિક્ષણસમેલન પણ યોજેલુ હુ પણ શિક્ષણસમેલન નિમિત્તે ગયેલો અજમેરમા સ્થાનકવાસી સાધુ–સાધ્વીઓ બસો ઉપરાંત મળ્યાં હશે. લાખ ઉપરાંત સ્થાનકવાસીઓની ઠઠ ત્યાં જામેલી સ્થાનકવાસી પરપરાના પ્રતિષ્ઠિત વયોવૃદ્ધ ને વિદ્વાન કેટલાક પૂજ્યો ને મુનિઓ હતા. સૌમાં પૂજ્ય જવાહરલાલજીનુ સ્થાન ઊચુ ગણાતુ. તેમના અનુયાયીઓ ઘણા અને સમૃદ્ધ, છતાં એ પૂજ્ય જવાહરલાલજી સામે ડૉ મેઘાણીને બળવો કરવાનો પ્રસગ પ્રાપ્ત થયો પૂજ્ય જવાહરલાલજીને મુનિ ચૌથમલજી બન્ને એક જ પરપરાના ને એમ છતાં બન્ને વચ્ચે હિદુ–મુસલમાન જેટલુ અતર ને કડવાશ આ અતર ન સધાય તો અન્નપાણી ન લેવા એવા સકલ્પથી મુનિ મિશ્રીલાલજીએ ઉપવાસ આદરેલા લોકોમાં ક્ષોભ જાગેલો પૂજ્ય જવાહરલાલજી કેમે કરી નમતુ આપે નહિ ઉપવાસ કરનાર મરે તો તે જાણે પણ તેઓ તો કોઈ પણ રીતે ચૌથમલજી સાથે માડવાળ કરવા તૈયાર ન હતા તેમના અનેક અનુયાયીઓએ તેમને સમજાવ્યા પણ બધુ હવામા આવા કોઈ આઘાતથી સ્વ દુર્લભજી ઝવેરી જવાહરલાલજીના ભક્ત છતા તેમની સન્મુખ મૂર્છિત થઈ ગયેલા ડૉ મેઘાણીનો મિજાજ કાબૂમા ન રહ્યો આખા સ્થા સમાજમા આગેવાન ને મોભાદાર ગણાતા એ પૂજ્યજી સામે ડૉકટર મેઘાણીએ જે ઉગ્ર વલણ લીધુ

તે જોઈ ત્યાં હાજર રહેનાર કોઈને પણ તેમના પ્રત્યે સન્માન થયા વગર રહે તેમ ન હતું સાધુ કે પૂજ્યપણાનો કોઈ પણ ભય મનમાં સેવ્યા સિવાય તેમણે પૂજ્ય જવાહરલાલજીને ચોખ્ખે ચોખ્ખું સંભળાવી દીધું કે 'તમે પોતાના તરફથી માંડવાળ કરવા માટે નમતું આપવા તૈયાર ન હો તો અમે શ્રાવકો તમને બધા સાધુઓને આ જ મકાનમાં પૂરીશું ને બારણાં બંધ કરીશું જ્યાં લગી તમે અંદરોઅંદર ફેંસલો નહિ કરો ત્યાં લગી અમે તમને બહાર આવવા દેવાના નથી.' ડૉ મેઘાણી અને તેમના જેવા બીજાની આ ધમકીએ તત્કાળ પૂરતું કાંઈક કામ કર્યું, પણ હું તો મેઘાણીની નિર્ભયતાની વાત કરું છું બહુ વિરલ ગૃહસ્થો કે શ્રાવકો એવા હોય છે કે, જેઓ અણીને પ્રસંગે કોઈ સાધુ કે પૂજ્યજીને સામેસામ આટલી નિર્ભયતાથી સંભળાવી શકે.

ડૉ મેઘાણીનાં લખાણો ખાસ કરીને વાર્તાઓ 'પ્રબુદ્ધ જૈન'માં પ્રસિદ્ધ થતી. તેમની વાર્તાલેખનની કળા કેટલી સિદ્ધહસ્ત હતી એ તો તેના વાંચનાર જાણે જ છે છેલ્લે ૧૯૪૬ના માર્ચના અંત સુધી અમે મુંબઈમાં મળ્યા અને જ્યારે મળીએ ત્યારે સામાજિક અનુભવો ને તેમના લખાણો વિષે જ ચર્ચા કરીએ

છેલ્લે તેમની એક અસાધારણ ઉદારતા અને નિખાલસતાની નોંધ લેવી યોગ્ય ધારું છું. એમણે 'પ્રબુદ્ધ જૈન' માટે એક લેખ લખેલો. પરમાનંદભાઈ તો રહ્યા કડક પરીક્ષક, એમણે એ લેખ પસંદ તો કર્યો, પણ એના પૂર્વભાગ વિષે કહ્યું કે, આ લખાણ સાચું હોય તોય એની પાછળ ઐતિહાસિક ભૂમિકા ન હોય તો એ ભાગ કાઢી નાખવો જોઈએ. ડૉક્ટરે મહેનતપૂર્વક લખેલું એટલે સ્વાભાવિક રીતે જ એ ભાગ લેખમાં રહે તે તેમને પસંદ પડે છેવટે એમ ઠર્યું કે મારી સમ્મતિ લેવી ડૉક્ટર પોતાના એક મિત્ર સાથે આવ્યા અને મને લેખ સંભળાવ્યો મેં કહ્યું કે 'એકંદર આખો લેખ સારો છે અને તેમાં વર્તમાનકાળ ને ભવિષ્ય વિશેના વિચારો ને વિધાનો સાચાં તેના ઉપરાંત [illegible] છે પણ અનૈતિહાસિક એવો પૂર્વભાગ એવો [illegible] નથી' પણ ડૉક્ટરે મારી પાસેથી [illegible] કે એ ભાગ પણ વસ્તુદૃષ્ટિએ તો સાચો જ છે એટલે તેમને મારું સમર્થન પ્રાપ્ત થયું, પણ પરમાનંદભાઈ એમ ડૉક્ટરને કે મને છોડે તેમ ન હતું છેવટે [illegible] [illegible], [illegible] પૂર્વભાગ રાખવો કે [illegible]

ગુંજે છે ડૉક્ટરનુ કથન એટલું જ હતું કે જો વસ્તુ સાચી હોય તો ઐતિહાસિક ભૂમિકા ન હોવા છતાં રાખવામાં શી અડચણ? પરમાનંદભાઈની દલીલ એ હતી કે, જે કાળ વિષે આપણે લખતા હોઈએ તેના પૂરતા પુરાવાઓનુ અધ્યયન કર્યા સિવાય લખીએ તો એ પ્રમાણિક ન ગણાય. પણ એમની વધારે સચોટ દલીલ તો એ હતી કે કોઈ પણ લખનારે લખ્યું હોય તેટલું છપાવી કાઢવાનો ને લોકોને પીરસવાનો મોહ શા માટે જોઈએ? આ દલીલ સાંભળતાં જ ડૉક્ટરે તરત અતિ નમ્રપણે કહ્યુ કે, 'ખુશીથી એ ભાગ કાઢી નાખો અલબત્ત, મે ઐતિહાસિક પુરાવાઓનુ અધ્યયન નથી જ કર્યું. સામાન્ય વાચન ને કલ્પનાના બળે લખ્યુ છે' ડૉક્ટરની આ નિખાલસતાની મારા મન ઉપર બહુ ઊંડી છાપ પડી તેઓ મને જ્યારે મળે ત્યારે કહેતા કે હુ લખુ છુ પણ શીખાઉ છુ પરમાનંદભાઈ જેવા મારા લેખના કઠણ પરીક્ષક ન હોય તો ક્યારેક કાચુ પણ કપાય આ છેલ્લા પ્રસંગે મે મારી જાતને તપાસી તો મને પણ લાગ્યુ કે હુ લેખના પ્રથમ વાચને તે વિષે ચોક્કસ ને કડક અભિપ્રાય ન આપી શક્યો એ મારી પણ નબળાઈ ખરી.

—પ્રબુદ્ધ જૈન, ૧૫ ફેબ્રુઆરી ૧૯૪૭.

સ્મૃતિપટ

[૧૭]

આદરણીય શ્રી મોતીચંદભાઈ વિષેનાં મારાં સ્મરણો એવાં નથી કે જે વાચકને તેમના જીવન વિષેનું મારુ કોઈ વિશિષ્ટ દૃષ્ટિબિંદુ જણાવી શકે. તેમ છતાં શ્રી જીવરાજભાઈના આદેશને અનુસરી મારાં જે આછાં કે પાંખાં સ્મરણો છે તે સંક્ષેપમાં રજૂ કરવા યોગ્ય ધારુ છું.

ઇસ્વીસન ૧૯૦૪માં કાશી જૈન પાઠશાળા માટે અંગ્રેજી કોઠીનું મકાન ખરીદવાનું હતું, તે અંગે કાંઈક દસ્તાવેજી કામ માટે શેઠ શ્રી વીરચંદ દીપચંદે મોતીભાઈને બનારસ મોકલ્યા, આ વખતે જ સર્વપ્રથમ તેમનું નામ મારી જાણમાં આવ્યું શ્રીયુત્ કુંવરજીભાઈનું નામ તો જાણતો જ, તેમના આ ભત્રીજા છે ને વકીલાતનો અભ્યાસ કરે છે એટલી જાણથી તેમના પ્રત્યે મન કાંઈક ઢળ્યું, પણ અમે મળ્યા ન હતા. પ્રથમ વિશ્વયુદ્ધ શરૂ થયા પહેલાં જ પ્રો યાકોબી ભારતની સાહિત્ય-યાત્રા સમાપ્ત કરી મુંબઈનો કિનારો છોડવાના હતા. તેમના વિદાયમાન વખતે શ્રી મોતીચંદભાઈનું અંગ્રેજીમાં ભાષણ સાંભળ્યું—જો કે હું તે વખતે અંગ્રેજી સમજતો નહી આ તેમનો પ્રથમ સ્વર-પરિચય. ડૉ બાલાભાઈ નાણાવટીના પ્રમુખપદે મળેલ મુંબઈ કૉન્ફરન્સ પછી તરત જ હું ભાવનગર ગયો હતો શ્રીયુત્ કુંવરજીભાઈ સાથે કર્મશાસ્ત્રીય તત્ત્વોની ચર્ચા-વાર્તા કરવાનો ઉદ્દેશ હતો દાદા સાહેબની બોર્ડિંગમા કેટલાક મિત્રોએ શ્રી મોતીભાઈને ચા-પાણી માટે આમંત્રેલા તે વખતે તેમનું ગુજરાતી ભાષણ પ્રથમ જ સાંભળ્યું રાત્રે શ્રી જૈનધર્મ પ્રસારક સભામાં નિયમિત રીતે હું શ્રી કુંવરજીભાઈ સાથે બેસતો ને મોડે સુધી જુદી જુદી શાસ્ત્રીય ચર્ચાઓ ચાલતી એક દિવસે 'વિશેષાવશ્યકભાષ્ય'ની અમુક ચર્ચા પ્રસંગે શ્રી મોતીભાઈને ઉદ્દેશી શ્રી કુંવરજીભાઈએ કહ્યું કે—સાંભળો, આ દાર્શનિક ચર્ચા. તેઓ જૈન કે બીજા વાચનમાં મગ્ન હતા એમ મને લાગ્યું, જ્યાં પોતાના શાસ્ત્ર પ્રત્યેના અનુમાનથી કે તત્ત્વચર્ચાના રસથી તેઓ [illegible] રીતે મારી સાથે [illegible] વાતચીતના [illegible], પણ મને [illegible] એમ જ લાગ્યું કે—આમ અમો જૈન [illegible] [illegible] [illegible]

લાલબાગના ઉપાશ્રયમાં શ્રી વિજયવલ્લભસૂરિની સમક્ષ શ્રી મોતીભાઈ એક સુપ્રસિદ્ધ આચાર્યને ઉદ્દેશી કાંઈક કહેતા હતા, તેમાં મે એક વાક્ય એ સાભળ્યુ કે 'તેઓની શૈલી ઉચ્છેદક છે.' જો કે તે આચાર્યશ્રી તેમના માનીતા હતા, કદાચ કુલગુરુ પણ કહેવાય, છતા ઉપરના તોળેલ શબ્દ ઉપરથી મને એટલો વિચાર થયો કે, મોતીભાઈનુ વલણ વિધાયક લાગે છે. મારા ઉપર પડેલી આ પ્રાથમિક છાપ ત્યારબાદના પાંત્રીસ વર્ષ જેટલા ગાળાના ઉત્તરોત્તર વધતા જતા પરિચયથી મને સાચી લાગી છે શ્રી મહાવીર જૈન વિદ્યાલયની સ્થાપના થયા પછી તેમની સાથેનો સીધો નહી તો પારસ્પરિક પરિચય પણ વધતો ચાલ્યો અલબત્ત, તે પહેલા તેમનાં કેટલાંક લખાણો મેં સાંભળેલાં, જેમાં શ્રી આનન્દઘનના પદોના વિવેચનનુ પ્રાસ્તાવિક, જૈન દૃષ્ટિએ યોગ, સિદ્ધર્ષિની પ્રસ્તાવના એ મુખ્ય ગણાય વિદ્યાલયમાં તત્ત્વજ્ઞાન અને ધર્મના અધ્યાપક તરીકે પ. વ્રજલાલજી નિયુક્ત થયા હતા, જે મારા ચિરસાથી અને અગત મિત્ર પણ હતા વિદ્યાલયના કાર્યકર્તાઓ, વિદ્યાર્થીઓ અને બીજા કેટલાક ઉપર પણ વ્રજલાલજીના અધ્યાપનનો બહુ જ સારો પ્રભાવ પડેલો ને વિદ્યાલયનુ તત્ત્વજ્ઞાન–ધર્મનુ શિક્ષણ રસપ્રદ પણ બનેલુ

વખત જતા એ રસ અને શ્રદ્ધામાં ઓટ આવી શ્રી મોહનલાલ દેસાઈ જ નહી પણ મોતીભાઈ સુદ્ધા મને મળે ત્યારે એક જ વાત કહે કે–હવે વ્રજલાલજી ઠીક કામ કરતા નથી તમે બીજો કોઈ અધ્યાપક બતાવો મારે માટે આ સ્થિતિ ધર્મસકટ જેવી હતી એક બાજુ ચિરકાલીન અંગત મિત્રની પ્રતિષ્ઠા અને સ્થિતિનો પ્રશ્ન, અને બીજી બાજુ વિદ્યાલયના સાર્વજનિક શૈક્ષણિક હિતાહિતનો પ્રશ્ન મારી મૂઝવણ દૂર થઇ નહી, અને અવારનવાર મોતીભાઈ આદિની માગણી પણ મટી નહી. આમ લગભગ ૬–૭ વર્ષ વીત્યાં હશે દરમ્યાન કેટલાક પ્રબળ કારણસર મે મારુ વલણ વિદ્યાલયને પક્ષે જ વાળ્યુ, અને સ્પષ્ટ નિર્ણય કરી મિત્ર વ્રજલાલજીને કહી દીધુ કે–હવે આ ગાડું આ રીતે લાબો વખત નહી ચાલે તમે કાં તો સૌને પ્રથમની જેમ સતોષ આપો, નહીં તો છૂટા થાઓ અન્યથા હું બીજો અધ્યાપક સૂચવીશ ઘણું કરી ૧૯૩૧ કે ત્યારબાદ થોડા સમયમાં જ પં દરબારીલાલને લઈ હુ મોતીભાઈની ઑફિસમા ગયો જરાપણ નનુનચ કર્યા સિવાય મોતીભાઈએ દરબારીલાલજી માટેની મારી માગણી કે શરતો મંજૂર કરીને કહ્યુ કે–તમે પગાર છૂટથી માગી શકો આ બાબતે મારું મન વિશેષ આકર્ષાયું. અમે તો કહી દીધુ કે, આવી બાબતે પૈસાની

અત્યારે જરૂર નથી. ખરી રીતે મોતીભાઈ પ્રત્યેના ઊંડા આદરનું આ પ્રથમ પગથિયું કહેવાય. પછી તો પં. દરબારીલાલજીના કામથી વિદ્યાલય, વિદ્યાર્થીગણ અને કાર્યકર્તાઓ એ બધા એટલા બધા પ્રસન્ન થયા કે તેથી મારો વિદ્યાલય સાથેનો સંબંધ અજ્ઞાત રીતે જ ગાઢ બની ગયો—ખાસ કરીને ધાર્મિક શિક્ષણના પ્રશ્ન પરત્વે.

મને યાદ છે કે, શ્રી મોતીભાઈ, શ્રી મોહનલાલ દેસાઈ અને શ્રી મોહનલાલ બી. ઝવેરી—એ બધા વિદ્યાલયમાં ચાલતા ધર્મવર્ગ પરત્વે જ્યારે પણ પ્રસંગ આવે ત્યારે મારી સાથે છૂટથી ચર્ચા કરતા અને મારી વાતો ધ્યાનથી સાંભળતા. એક અથવા બીજા કારણે ધાર્મિક અધ્યાપકને બદલવાનો કે રાખવાનો પ્રશ્ન આવે ત્યારે હું જ્યાં હોઉં ત્યાં તેઓ છેવટે પત્ર લખીને પણ પૂછે અને મારા વિચાર જાણવા માગે. મારી દૃષ્ટિ પણ વિદ્યાલયના આ અંગને વધારે પુષ્ટ કરવાની પ્રથમથી જ હતી. એટલે હું પણ એમાં રસ લેતો. દરબારીલાલજી પછી લગભગ એક પછી એક છ–સાત ધાર્મિક અધ્યાપકો બદલાયા અને નિમાયા. લગભગ એ બધાની નીમણૂક વખતે મારા અભિપ્રાયનું મૂલ્ય તેઓ વિશેષ આંકતા એવી છાપ મારા ઉપર હજી પણ છે, તેથી કરીને હું પણ એ વિષેની મારી જવાબદારી અંગે કદી બેપરવા રહ્યો નથી એમ મારો અંતરાત્મા કહે છે. આ મિલનતંતુ દ્વારા ધીરે ધીરે મોતીભાઈ સાથે હું વિશેષ પરિચયમાં આવતો ગયો—જોકે વધારે વખત સાથે બેસવાનો કે એવો બીજો કોઈ પ્રસંગ આવ્યો જ ન હતો.

મારી પ્રથમથી જ માન્યતા હતી, અને આજે પણ છે કે, મહાવીર જૈન વિદ્યાલય જેવી સંસ્થાએ માત્ર ધર્મતત્ત્વજ્ઞાનના શિક્ષણથી પોતાની ઇતિકર્તવ્યતા પૂરી થયેલી માનવી ન જોઈએ. હું એ બધા મિત્રોને ભારપૂર્વક કહેતો જ આવતો રહ્યો છું કે, વિદ્યાલયનું કાર્ય ત્રિવિધ હોય. કૉલેજના વિદ્યાર્થીઓને ધાર્મિક શિક્ષણ આપવાનું વાતાવરણ ઊભું કરવું અને તેને સમગ્ર બનાવવું એ માટે તે ત્રિવિધ કાર્યક્રમ આવશ્યક છે. પહેલું તો એ કે ઓછામાં ઓછું એક સમર્થ પ્રોફેસર અને એક સમર્થ પંડિત એ બેને વિદ્યાલય પોતાની ખાસ ગણતરી કર્યા વિના રોકે, જેથી મુંબઈ શહેરની કોઈ પણ કૉલેજના વિદ્યાર્થીને અગર ત્યાંના નિવાસી કોઈ પણ પ્રોફેસરને જૈન પરંપરા વિશે કાંઈ પણ જાણવું હોય તો વિદ્યાલય એક જ્ઞાનપ્રસારક બને અને વિદ્યાજગતમાં એવી માન્યતા બંધાય કે, જૈન પરંપરાને લગતા પ્રમાણિક અને વ્યાપક અભ્યાસ માટે મહાવીર જૈન વિદ્યાલય એ મુખ્ય ધામ છે. બીજું

કામ સાહિત્ય-સંપાદનનું જે પ્રોફેસર અને પંડિત નિયુક્ત થાય તે અનુકૂળતા પ્રમાણે જૈન સાહિત્યનું આધુનિક દૃષ્ટિએ સંપાદન કરે અને તે તે વિષય પરત્વે અંગ્રેજી, ગુજરાતી અને હિન્દીમાં યથાસંભવ પ્રસ્તાવના આદિ પણ લખે એ દૃષ્ટિએ કે કોઈ પણ યુનિવર્સિટી કે કોઈ પણ કૉલેજના પાઠ્યક્રમમાં તે સંપાદનો ઉપયોગી થઈ શકે જેવી રીતે જર્મન અને અન્ય પાશ્ચાત્ય વિદ્વાનોએ કરેલા ભારતીય સંપાદનો પ્રતિષ્ઠા પામ્યાં છે તેથી પણ વધારે સારી રીતે આ દિશામા વિદ્યાલય કામ કરવાની ગોઠવણ કરે ત્રીજું કામ મારી દૃષ્ટિએ એ છે કે, વિશિષ્ટ વિશિષ્ટ ગ્રંથોના પ્રમાણભૂત અને સંશોધનાત્મક ભાષાંતરો કરાવી વિદ્યાલય પ્રસિદ્ધ કરે

હું શ્રી મોતીભાઈને ઘણીવાર આવેશમા એમ પણ કહેતો કે-તમે તો કાંઈ કરતા નથી, માત્ર ધાર્મિક લોકોનાં મન રીઝવવા ને પૈસા મેળવવા ધર્મવર્ગ ચલાવો છો એટલું જ છતાં તેઓ કદી મારા પ્રત્યે તપ્યા નહિ, મીઠાશથી ઘટતો જવાબ વાળતા, અને હસતાં હસતા ક્યારેક એમ પણ કહેતા કે-તમે વિદ્યાલયમા આવો તો બધુ અમે કરીશું, ઈત્યાદિ

૧૯૪૩ના અંતમા મે તેમને લખેલુ યાદ છે કે હવે હુ કાશી છોડવાનો છુ, મુંબઈ તો આવવાનો છુ જ કોન્ફરન્સ કે વિદ્યાલય જેવી સંસ્થાઓ મારા વિષય પરત્વે મારો ઉપયોગ કરી શકે, ઈત્યાદિ પણ આવી મતલબનું લખ્યુ તે પહેલા એક પ્રસંગ અતિ મધુર બની ગયો ને આજે પણ તેની ખુમારી તાજી છે હુ કાશીથી મુંબઈ આવેલો મારી સાથે શ્રી નથમલજી ટાટિયા એમ એ-કે જે હમણા જૈન તત્ત્વજ્ઞાન લઈ ડી લીટ થયા છે તે-હતા અમે બન્ને વર્લી ઉપર આવેલ ભારતીય વિદ્યાભવનના મકાનમા ઊતરવાના હતા મે પ્રથમથી જ આની સૂચના શ્રી મોતીભાઈને આપેલી અમે વર્લીમા રાત્રે લગભગ દસેક વાગે સૂવાની તૈયારીમાં હતા ત્યા તો શ્રી મોતીભાઈ આવી ચડ્યા આટલે બધે દૂર, આટલું મોડે, અત્યારે કેમ? સવારે મળત,-એમ પૂછ્યુ, ત્યારે તેમણે કહ્યું કે-હુ અત્યારે જ તમને લેવા આવ્યો છુ નીકળેલો તો બે કલાક પહેલા, પણ વચ્ચે ક્યાંય ગાડી કે વાહનનો યોગ મળ્યો નહી એટલે રખડપટ્ટીમા મોડું થયું. અમે ઘણું કરી સવારે જવાની વાત કહીને તેમને વિદાય તો કર્યા. પણ મારા મન ઉપર ચિરસ્મરણીય છાપ એ રહી ગઈ કે શ્રી મોતીભાઈને જૈન સાહિત્ય, તત્ત્વજ્ઞાન અને ધર્મ વિષેની જે લગની છે તે ઉપર ઉપરની નથી. તેમના પ્રત્યે મારું વલણ વધારે આદરશીલ બન્યુ.

અમે જ્યારે તેમને ઘેર ગયા ત્યારે તેમણે જે સત્કાર કર્યો એ પણ સૌરાષ્ટ્રને અનુરૂપ જ હતો. તેમના ઘેર અને તેમની સાથે રહેવાનો મારે માટે એ પહેલો જ પ્રસંગ. શ્રી નથમલજીના વાચન અને દૃષ્ટિકોણથી તો તેઓ એટલા બધા મુગ્ધ થયા કે તેમને ગમે તે રીતે વિદ્યાલયમાં લાવવા તેઓ અભિમુખ બન્યા. અને જ્યારે નથમલજીએ આવવાની અશક્તિ દર્શાવી ત્યારે જ ન્યાયાચાર્ય પં. મહેન્દ્રકુમારને તેમણે નીમ્યા.

હું પણ નિવૃત્ત થઈ પ્રથમ મુંબઈ ભારતીય વિદ્યાભવનમાં આચાર્યશ્રી જિનવિજયજી સાથે રહેતો હતો. શ્રી મોતીભાઈએ ભારપૂર્વક મને કહ્યું કે વિદ્યાલય પ્રતિમાસ બારસો જેટલા રૂપિયા તો ખર્ચી જ શકશે. એટલે તમે તમારી ધારણા મુજબની એક યોજના તૈયાર કરો, જેને હું કમિટી સમક્ષ મૂકું. મેં એવી યોજના તૈયાર કરી ને તેમણે મારી હાજરીમાં જ કમિટી સમક્ષ મંજૂર કરાવી. ઘણુંખરું આ બધા પ્રસંગોએ હું શ્રીયુત પરમાનંદભાઈને મળતો, તેમની સલાહ લેતો. મારી પહેલેથી જ એ દૃઢ પ્રતીતિ ચાલી આવે છે કે—શ્રી પરમાનંદભાઈનું દૃષ્ટિબિંદુ જેટલું ચોખ્ખું અને વિશાળ છે તેટલું મુંબઈમાંના બીજા જૈનોનું ભાગ્યે જ હશે.

એ યોજના મંજૂર થઈ ત્યારે પણ શ્રી મોતીભાઈએ તો મને એ જ કહ્યું કે—હવે તમે વિદ્યાભવનમાં નહીં પણ વિદ્યાલયમાં રહો. મારો જવાબ હમેશનો એ જ રહ્યો છે કે—હું દૂર રહ્યો જે કરીશ તે ઠીક હશે. મને આવવા જેવું લાગશે ત્યારે વગરકહ્યે પણ હું વિદ્યાલયમાં બેસીશ. અસ્તુ. એ યોજના મંજૂર તો થઈ, પણ એક અથવા બીજે કારણે એને અમલમાં લાવવાનું કામ રહી જ ગયું છે. હું નથી જાણતો કે અત્યારે વિદ્યાલયમાં રસ ધરાવનાર અને શ્રી મોતીભાઈના દૃષ્ટિબિંદુને બરાબર સમજનાર તેમ જ તેને સ્થિર કરવા મથનાર કોઈ હવે એ યોજના અથવા એવી બીજી કોઈ યોજનાને સક્રિય કરવા વિચારતો હશે કે નહીં. પણ એટલું તો [illegible] કહી શકું છું કે—શ્રી મોતીભાઈની વિદ્યાલય પ્રત્યેની નિષ્ઠા, સ્વધર્મ-સાહિત્યની પ્રીતિને કાયમ કરવા તેમ જ જૈન સમાજનું ધાર્મિક દૃષ્ટિબિંદુ ઉન્નત કરવા માટે સ્થાપેલી સંસ્થા [illegible] જરૂરી છે.

[illegible]

તેમના પ્રત્યેના વિશિષ્ટ આદરની છાપ પડી છે આટલા બધા વ્યવસાયો અને વિવિધ પ્રવૃત્તિઓ વચ્ચે તેઓ કેટકેટલુ વાંચે અને લખે છે તે મને હમેશા હેરત પમાડતુ એમના મકાને ક્યારેક જતો તો જાણ થતી કે તેઓ કેટકેટલાં પુસ્તકો સઘરે અને વાચે છે સાંજે મરીનડ્રાઇવ ઉપર ફરવા જતો હોઉ ને કોટમાંથી પાછા ફરતાં મળે તો હસીને કાંઈ ને કાંઈ વાત કરે, અને કહે કે આટલુ ચાલીને આવુ છુ તેથી વ્યાયામ પણ મળી રહે છે ને વિચારો કરવાની તક પણ મળે છે તેમની ટીકા પણ મેં તેમની સામે કેટલીક વાર કરી હશે પણ મને યાદ છે કે મે તેમનો રોષ જોયો નથી એક વાર હું હોસ્પિટલમાં હતો ઓપરેશન થયેલુ મને વ્યથામા જોઈ એક દિવસે તેમણે કહ્યુ કે–અત્યારે જ સમાધિનો સમય છે જ્યારે તેઓ પક્ષાઘાતથી પીડાયેલા ને કાંઈક સ્વસ્થ થયા ત્યારે હુ તેમને મળવા ગયો મેં વળી મારી ઢબે એ જ સમાધિની અને સમાધિમરણની વાત કાઢી કે હવે તમારો પરીક્ષાસમય છે.

આજે જ્યારે તેમના વિષેના મારા આછા અને પાંખા સ્મરણો આલેખું છુ ત્યારે તેમની મધુર હાસ્યમૂર્તિ અને મારા પ્રત્યેનો નિખાલસ વ્યવહાર તેમ જ તેમની અનેક ક્ષેત્રોમાં કામ કરવાની હોશ અને તાલાવેલી એ બધુ માનસ પટ–ઉપર અકિત થાય છે

કોન્ફરન્સની ઓફિસમા કેટલાક કામસર જવુ પડતુ અને ત્યા મિટિગ હોય તો હાજર પણ રહેતો એમા જે કામનો સબધ શ્રી મોતીચદભાઈ સાથે આવતો તેમાથી એકકે કામને તેમણે ટાળ્યુ હોય કે બેદરકારી બતાવી હોય એમ મને યાદ નથી ઘણા વર્ષ અગાઉ તેમના વિષે જે મારો અભિપ્રાય બધાયેલો કે તેઓ વિધાયક પ્રકૃતિના છે તે જ તેમના જીવનમાંથી જોવા પામ્યો છું.

—શ્રી જૈન ધર્મ પ્રકાશ, વૈશાખ.

સૌમાં વૃદ્ધ પણ સૌથી જુવાન

[૧૮]

શરીર ઘરડું થવા લાગે ત્યારે પણ મન નબળું ન પડે, વિચારો, નિર્ણયો અને આદર્શમાં જરાય મોળાશ ન આવે એવા વૃદ્ધ યુવકો વિરલ હોય છે શ્રી મણિભાઈ એવા એક વિરલ વૃદ્ધયુવક હતા એની પ્રતીતિ તેમના દરેક પરિચિતને હશે એમ હું સમજુ છું. જુદાં જુદાં સ્થાનોના જૈન યુવકસંઘના સભ્યોને હું જાણું છું ત્યા લગી એમ નિઃશંક કહી શકું છું કે એ સભ્યોમાં શ્રી મણિભાઈ જેટલો વૃદ્ધ અને તેમના જેવો યુવક મે નથી જોયો યુવકસંઘના તરુણ સભ્યોમાં પણ કેટલાકને પ્રસંગે માનસિક ઘડપણ જોયુ છે, જ્યારે મણિભાઈમા તેથી ઊલટું અનુભવ્યું છે. જેમ મુશ્કેલી વધારે તેમ તેમની જુવાની વધારે દીપી નીકળે. અમદાવાદ અને બીજા સ્થાનોના જૈન યુવકસંઘો નામશેષ થયા અગર ઘરડા થયા ત્યારે પણ મુંબઈનો એ સંઘ જુવાની સેવે છે એમાં શ્રી મણિભાઈનો હાથ મુખ્ય છે એમ હું સમજુ છુ એમણે પોતાની કુનેહ, આદર્શની ઉચ્ચતા અને સહજ માયાળુતા વગેરે ગુણોથી અનેક તરુણોને યુવકસંઘ પ્રત્યે આકર્ષ્યા, કેટલાકને હમેશ માટે તેની સાથે સંકળાવા લલચાવ્યા એથી જ આપણે મુંબઈ જૈન યુવકસંઘને અને તેની વિવિધપ્રવૃત્તિઓને નિત્યનૂતન રૂપમાં જોઈએ છીએ

કાશી કે આગ્રાથી (બરાબર યાદ નથી) હું વઢવાણ કેમ્પ ગયેલો. કેટલાક મિત્રો મણિભાઈને ત્યા જમનાર હતા. મને પણ લઈ ગયા હું મણિભાઈને જાણતો જ નહિ પ્રથમ પરિચયે એટલી છાપ પડી કે આ મળવા જેવા છે. ત્યારબાદ તો દસ-પંદર વર્ષ ગયાં હશે જ્યારે ૧૯૩૨ની [illegible] વખતે પર્યુષણ વ્યાખ્યાનમાળાએ અમદાવાદમા [illegible] ત્યારે તેના [illegible] મુંબઈમા [illegible] અને બોલનાર જે બે વ્યક્તિઓ મુખ્ય હતી, તેમા શ્રી મણિભાઈ પ્રધાન અને બીજા [illegible]

મુંબઈની વ્યાખ્યાનમાળાની શરૂઆત થઈ અને ભાઈ [illegible] શ્રી મણિભાઈ સાથે [illegible] ચાલી [illegible] તો [illegible] તેઓ [illegible] વિદ્યાલય આદિ [illegible] મુંબઈ [illegible] વ્યાખ્યાનમાળાથી [illegible]

થાય છે. મે જોયું કે શ્રી મણિભાઈની ધગશ જૈન સમાજના સંકુચિત વાડાઓને ભેદી સંવાદી એકતા સ્થાપવાની છે એ પણ જોયું કે તેમને અયોગ્ય તેમ જ બાળદીક્ષા બહુ ખટકે છે ઊગતી પેઢીને સંસ્કારી, શિક્ષિત અને ઉદ્યોગી બનાવવાની પણ તેમની ધગશ જોઈ. સ્ત્રીવર્ગ, ખાસ કરી વિધવા અને ઇતર પરાશ્રિત વર્ગ પ્રત્યે એમની મમતા જોઈ, ચાલુ ફિરકાવાર જૈન સંસ્થાઓમાં ઉદાર તત્ત્વ દાખલ કરવાની ભાવના જોઈ, વગેરે વગેરે કેટલાંય ઉદાત્ત તત્ત્વોનો મને સાક્ષાત્કાર થયો, અને સાથે એ પણ જોયું કે તેઓ જે વિચાર બાંધે છે તેને અમલમાં મૂકવા માટે પણ તેઓ બધું જ કરી છૂટે છે ત્યારે તેમના પ્રત્યે અનન્ય આદર બંધાયો અને મનમાં થયુ કે 'સંયુક્ત જૈન વિદ્યાર્થીગૃહ'ની કલ્પના જેને કેટલાંય વર્ષો અગાઉ આવેલી, અને જેણે મૂર્ત પણ કરેલી તે શ્રી મણિભાઈ ખરેખર પહેલેથી જ ક્રાન્તિકારી તત્ત્વ ધરાવનાર છે

શ્રી મણિભાઈ દેખીતી રીતે કામ જૈન સમાજને લક્ષી કરતા, પણ રાષ્ટ્રીયતા અને માનવતા તેમના હાડમાં હતી તેથી કોઈ પણ શુભ પ્રવૃત્તિને બનતો ટેકો આપવો અને પોતાની જાતના શ્રીગણેશ કરવા એ તેમનો મૂળમંત્ર 'પ્રબુદ્ધ જૈન' ચલાવવુ હોય, વ્યાખ્યાનમાળા વિકસાવવી હોય, અયોગ્ય દીક્ષાવિરોધી હિલચાલ શરૂ કરવી હોય, વિદ્યાર્થીઓને કે વિદ્યાર્થિનીઓને ભણવામાં મદદ કરવી હોય, સંસ્થામાં તેમને ગોઠવવાં હોય, નવાસવા આવેલ ધંધાર્થીને ધંધે ચડાવવો હોય કે કોઈને ચાલતા ધંધામા ટેકો આપવો હોય, એમ અનેક ક્ષેત્રે શ્રી મણિભાઈને પહેલ કરતાં જોયા છે તેથી જ તેમના પ્રત્યે સુધારક કે રૂઢિચુસ્ત સહુનો એકસરખો આદર જોવામાં આવે છે 'સંયુક્ત જૈન વિદ્યાર્થીગૃહ'નો તેમનો છેલ્લો મનોરથ આટલી હદે સફળ થયો તેની પાછળ આ જ ભૂમિકા રહી છે.

શ્રી મણિભાઈ રૂઢિ અને સંકુચિતતા સામે ઊકળી ઊઠતા બોલે ત્યારે એમ લાગે કે રોષે ભરાયા છે પણ દિલમાં ડંખ મેં નથી જોયો. એક રીતે તેમનામાં ગુણદર્શન મુખ્ય હતુ. ખાસ દોષ દેખાય તો ત્યા તટસ્થ, પણ મનમા ડંખવૃત્તિ ન પોષે જેઓ તેમને જાણે છે તેમને તે કહેવાની જરૂર નથી કે તેઓ કેટલા નમ્ર હતા વચગાળામા તેમની આર્થિક સ્થિતિ નબળી પડેલી પણ વળી ઊજળા દિવસ આવ્યા અને તેઓએ જાતે જઈ પોતાના લેણદારોને જગાડી ચૂકતે લેણું આપી દીધું. ઘણા લેણદારના વારસો એવા હતા કે જેઓ આ લહેણા વિષે કાંઈ જાણતા જ નહીં. પણ મણિભાઈએ જૂના ચોપડા કઢાવી પાઈએ પાઈ ચૂકવી હું સમજું

છુ કે આ પૈસાની ઉચાપતના તેમ જ થાપણ ઓળવવાના જમાનામાં મણિભાઈનુ વર્તન શાસ્ત્રમા વર્ણિત સાચા જૈનને શોભે તેવુ જ છે.

મણિભાઈ ભણેલ બહુ નહિ ગુજરાતી અને હિંદી સારા લખ ખૂબ વાંચે પણ તેમાંથી સારભાગ એવો પકડે કે જે તેમનાં કામમાં : થાય. પોતે પાછળ રહી બીજા સુયોગ્ય કાર્યકર્તાને આગળ આણવો તેના ઉપર એવો વિશ્વાસ મૂકવો કે જેથી તેને કામ કરવામા કદી નિઃ ન વ્યાપે અને કામમાં આવી પડતી આર્થિક કે બીજી મુશ્કેલીઓનો પોતાને માથે વહોરવો એ મણિભાઈની ખાસ વિશેષતા તેથી જ આ જોઈએ છીએ કે મુંબઈ જૈન યુવક સંઘને શ્રી ચિમનલાલ ચકુભાઈ, પરમાનંદ કાપડિયા, શ્રી દીપચંદભાઈ, શ્રી તારાચંદ કોઠારી આદિ કે કર્તાઓ મળ્યા છે અને અત્યારે સૌનું ધ્યાન ખેંચે એવી વિવિધ પ્રવૃત્તિ સંઘ ચલાવે છે

મને તો જ્યારે મળે ત્યારે મણિભાઈ એક જ વાત કહે કે મારે લ કામ બતાવજો અને મે જોયુ છે કે તેમના એ ઉદ્‌ગારો કદી ઔપચા ન હતા. શરીર ખૂબ લથડ્યુ ત્યારે પણ કરેલ સકલ્પને સિદ્ધ કે 'સંયુક્ત જૈન વિદ્યાર્થીગૃહ' માટે તેમણે અકલ્પ્ય જહેમત ઉઠાવી છે.

મે એ પણ જોયુ છે કે તેમના ચિ ૨મણલાલ પિતા પ્રત્યે વફાદાર અને કેવા કહ્યાગરા આ એક વારસાગત ગુણ છે કે જે બાબુ એ કુટુંબોમા આજે દેખાય છે. શ્રી મણિભાઈને પોતાના જીવનમાં આ : પરમ સતોષ હતો એમ હુ સમજુ છુ

ત્રણ સ્મરણો

[૧૯]

કાન્તની કૃતિઓ ઉપરથી અને બીજા મિત્રોએ તેઓશ્રીના કરાવેલ પરિચય ઉપરથી મારા ઉપર જે છાપ પડી છે તે આ સ્થળે હુ નથી જણાવતો અહીં તો તેઓ સાથે થયેલ સાક્ષાત્ સમાગમો અને તેના પરિણામે તે વખતે તથા પાછળથી થયેલ મારા ઉપરની અસરો બહુ જ ટૂંકમાં જણાવવા ઇચ્છુ છુ.

હુ કાન્તના સમાગમમાં ત્રણ વાર આવ્યો છુ અને ત્રણે વાર ભાવનગરમાં એમાંના એક પણ સમાગમ માટે મેં કે કાન્તશ્રીએ પ્રયત્ન નહિ કરેલો એ સમાગમો માત્ર કેટલાક મધ્યવર્તી સહૃદય વિદ્યાવિલાસીઓના પરિણામે જ ગણાય લગભગ તેર વર્ષ પહેલાં ગ્રીષ્મ ઋતુમા હુ પહેલવહેલો ભાવનગર ગયો ત્યારે આત્માનદ જૈન સભામાં 'કાન્ત'ની મુલાકાત માટે એક નાનકડુ મિત્રમડળ એકઠુ થયેલું બીજી વાર અસહયોગના જમાના–ઈ સ ૧૯૨૧–૨૨ માં સાંજે ફરવા જતા રસ્તામાં મળવુ થયુ ત્રીજી વાર ઈ સ ૧૯૨૨–૨૩ માં ગાંધીજીના ૧૮ મી તારીખના જેલદિવસ નિમિત્તે ભરાયેલી સાર્વજનિક સભામાં અમે બન્ને મળ્યા

પહેલીવાર મળ્યા ત્યારે કાન્ત પરીક્ષક અથવા પ્રશ્નકર્તા તરીકે મારી સામે હતા કદાચ તે વખતે મિત્રોએ ઉપસ્થિત કરેલા એ સમાગમનો હેતુ જ હુ ન જાણુ તેવી રીતે કાન્ત મારફત મારી પરીક્ષા કરવાનો હોય એવી સાચી કે ખોટી છાપ મારા મન ઉપર પાછળથી પડેલી ગમે તેમ હો, પણ તે વખતના પરીક્ષક કાન્ત સામે હુ કાશીવાળી પડિતની જેમ પરીક્ષ્ય સ્થાન લઈ આદરપૂર્વક બેઠેલો હતો કાન્તે મળતા વેત જ મને 'પ્રામાણ્ય વિષે શાસ્ત્રીય પ્રશ્નો કર્યા, જેનુ કાંઈક વિસ્તૃત વર્ણન કાન્તમાલા નામના પુસ્તકમાં આપ્યુ છે

બીજી વાર અજાણપણે રસ્તે ચાલ્યા જતા કોઈ મિત્રે ધ્યાન ખેચવાથી કાન્તે મને ઊભો રાખ્યો અને કુશલપ્રશ્ન બાદ થોડા વાક્યોમા ફરી મળવાની ઇચ્છા જણાવી જુદા પડ્યા ત્રીજી વાર એક સાર્વજનિક સભામાં મને વ્યાખ્યાન આપવા બોલાવ્યો. બોલાવવામાં કાન્તનો જ હાથ હતો, કારણ

તેઓ તે પ્રવૃત્તિના મંત્રી હતા એમ મને પાછળથી માલૂમ પડ્યું

પ્રથમ સમાગમ વખતે કાન્તનો પરીક્ષક રૂપે કડક છતાં સ્નેહાળ સ્વભાવ હોય એવું મને ભાન થયું. પણ કદી નહિ સાંભળેલા અને નહિ વાંચેલા એ કાન્તના બહુશ્રુતપણા વિષે અને ઊંડા મનન વિષે મારા મનમા આદર ઊભરાયો. મને થયુ કે વ્યાપારપ્રધાન અને અંગ્રેજીપ્રધાન ગુજરાતમા પણ શાસ્ત્રની વિવિધ શાખાઓનુ ઊંડુ પરિશીલન કરનાર કોઈ કોઈ મસ્ત ક્યાંક ક્યાંક ખૂણેખાંચરે પડ્યા છે ખરા. કાન્તમા બહુશ્રુતપણુ અને ગભીર મનન ઉપરાંત જિજ્ઞાસા તેમ જ પરીક્ષક દૃષ્ટિ હતાં એ મને પ્રથમ સમાગમને પરિણામે ક્રમે ક્રમે વધારે સ્પષ્ટ થયું.

બીજા સમાગમને પરિણામે મને એમ ભાન થયુ કે આ કોઈ મનનશીલ અલખબાવો છે. વાત કરતાં અને બોલતાં પણ તેમનું ચિંતનશીલત્વ સામા ઉપર અસર પાડે છે એ મને વધારે સ્પષ્ટ થયુ ત્રીજી વાર મારે મુખ્ય વક્તારુપે ધર્મ અને વ્યવહારના સંબધ વિષે બોલવાનુ હતુ સભાપતિ એક સુદર સ્વભાવી વિદ્વાન મૌલવી હતા સભાના ઉપસહારમાં મત્રી તરીકે કાન્ત જ્યારે બોલવા ઊભા થયા ત્યારે તેઓના પૂરી પાંચ મિનિટ પણ નહિ એવા ટૂંકામા ટૂંકા ભાષણ વખતે હુ ખરેખર સમાધિનિમગ્ન થઈ ગયો એક પણ વાક્ય વધારે કે ઓછુ નહિ ભાષામા કે વિચારમાં જરા યે અસંબદ્ધતા નહિ. કથનનો એક પણ અશ અપ્રસ્તુત કે અરુચિકર નહિ ઉચ્ચાર કે ધ્વનિમા કૃત્રિમતા નહિ, જાતિ કે સપ્રદાયનો મિથ્યા મોહ નહિ સત્ય કથનમાં સંકોચ કે ભય નહિ આ તેઓની વિશેષતા મને તે વખતે અને પાછળના સ્મરણોથી ક્રમે ક્રમે વધારે સ્પષ્ટ થઈ મને એમ પણ લાગે છે કે મે જેટલા ગુજરાતી વક્તાઓને સાભળ્યા છે તેમા કાન્તનુ સ્થાન કાંઈક નિરાળુ જ છે

આ બધા ઉપરાંત છેલ્લા બે સમાગમોએ મારા ઉપર જે વધારે ઊંડી છાપ પાડી તે તેઓની ગાભીર્યતા વિષેની જો કે તેઓ હતા કવિ, લેખક, મનનશીલ સાહિત્યસેવી અને પ્રકૃતિ તથા પ્રકૃતિ પરના તત્ત્વના શોધક, છતાં તેઓમાં ગુણજ્ઞતા, સમભાવના અને નમ્રતા વિલક્ષણ રીતે એકત્ર મળેલાં હતા તેઓ ગાંધીજીની અહિંસાભાવના અને રાષ્ટ્રસેવામાં વિશ્વાસ- [illegible] એમ મને સ્પષ્ટ જણાયું. ખાદી તેઓને મન નિખાલસ, [illegible] [illegible], કે [illegible] પણ વધારે [illegible] તેમ જ [illegible] [illegible] જ વાત તેઓની સમભાવના સમજવા માટે બસ છે.

—પ્રસ્થાન [illegible] ૧૯૪૨

કેટલાંક સંસ્મરણો

[સદ્‌ગત સાહિત્યોપાસક શ્રી મોહનલાલ દલીચંદ દેસાઈ]

[૨૦]

*પ્રબુદ્ધ જૈન*ના ૧૫–૧૨–૪૫ના અંકમાં શ્રીયુત મોહનલાલ દલીચંદ દેસાઈના દુઃખદ અવસાનની નોંધ લેતો અને હાર્દિક સમવેદના દર્શાવતો એક લેખ પ્રસિદ્ધ થયો છે હુ તો માત્ર મોહનભાઈ વિષેના મારાં કેટલાંક સ્મરણો જે તેમના સ્વભાવની વિવિધ બાજુઓનાં અને તેમની કર્મદતાનાં નિર્દેશક છે તેને ગ્રથિત કરી તેમના પરલોકગત આત્માને શ્રદ્ધાંજલિ રૂપે અર્પિત કરુ છુ

પ્રથમ પરિચય

સને ૧૯૧૭ના ચોમાસામા મુબઈના વાલકેશ્વરના ઉપાશ્રયમાં હુ તેમને પહેલવહેલો મળ્યો મોહનભાઈ પોતાના શ્રધ્ધેય મિત્ર વાડીલાલ મોતીલાલ શાહ અને શ્રીયુત નાથુરામ પ્રેમીજી સાથે ત્યાં મુનિશ્રી જિનવિજયજી પાસે આવેલા આ પ્રાથમિક સ્વલ્પ પરિચયથી હુ તેમના પ્રત્યે આકર્ષાયો અને એ આકર્ષણ ઉત્તરોત્તર વધારે પરિચયથી અને તેમના કાર્યનિરીક્ષણથી વધતુ જ ગયુ.

વિવેકયુક્ત ગુણપક્ષપાત

તેમનામા સૌથી મોટો ગુણ ગુણપક્ષપાતનો હતો. જ્યાં જ્યા ગુણ નજરે પડે ત્યા ત્યાં આકર્ષાવું એ એમનો સહજ સ્વભાવ હતો આમ છતાં પણ આ ગુણપક્ષપાત વિવેકયુક્ત રહેતો પોતાના વિશિષ્ટ પક્ષપાતના પાત્રમા સમયાન્તરે અસાધારણ ત્રુટિઓ માલૂમ પડે તોપણ તેની ભક્તિ-ઉપાસના ચાલુ રાખવી એ તેમના માટે કદી શક્ય નહોતુ. તેમનામાં કોઈ વિષે કદી આધળી ભક્તિ નહોતી દાખલા તરીકે: મોહનભાઈ સદ્‌ગત વા. મો શાહનાં આકર્ષક લખાણો અને ઉત્તેજક વિચારોથી, તેમની પોતાની ભાષા વાપરીને કહુ તો શાહના અનન્ય ભક્ત થયેલા; પણ વખત જતાં તેઓ તેમના પ્રત્યે તટસ્થ થઈ ગયા તેથી ઊલટુ શ્રીયુત નાથુરામ પ્રેમીજી સાથેની તેમની મૈત્રી છેવટની ઘડી લગી કાયમ રહી હતી, એટલુ જ નહિ પણ

ઉત્તરોત્તર વધતી પણ ગઈ હતી. મોહનભાઈ હમેશાં કહેતા કે પ્રેમીજી જેટલા સરળ છે તેટલા જ અસાંપ્રદાયિક ઐતિહાસિક દૃષ્ટિવાળા પણ છે. પ્રેમીજીની નિખાલસવૃત્તિ અને સાહિત્યિક તેમ જ ઐતિહાસિક ઉપાસનાએ જ મોહનભાઈને આકર્ષેલા મુનિશ્રી જિનવિજયજી પૂનામા જ્યારે સાહિત્યનુ અને ઐતિહાસિક સંશોધનનુ કામ કરતા ને સાધુવેષમાં હતા ત્યારે મોહનભાઈ તેમના કામથી આકર્ષાઈ ત્યા જતા અને તેમની પાસેથી ઘણુ નવુ જાણી પ્રેરણા મેળવતા. સ ૧૯૨૦માં મુનિશ્રીએ સાધુવેષનો પરિત્યાગ કર્યો ત્યારે કેટલાયે તેમના પ્રથમ પરિચિત મિત્રો ચમક્યા અને કાંઈક ઉદાસીન જેવા પણ થઈ ગયા. છતા મોહનભાઈનો મુનિજી પ્રત્યેનો સદ્ભાવ અને સ્નેહ ઘટવાને બદલે ઉત્તરોત્તર વધતો જ ગયો જેમ જેમ તેઓ મુનિજીના સ્વભાવ અને સાહિત્યિક, ઐતિહાસિક કાર્યોથી વધારે ને વધારે પરિચિત થતા ગયા તેમ તેમ તેમનુ મુનિજી પ્રત્યેનુ આકર્ષણ વધતુ જ ગયુ તે એટલે સુધી કે તેઓ અમદાવાદ આવે તો મુનિજીના જ અતિથિ બને, અને મુબઈમા મુનિજી આવી ચડે કે ગમે ત્યાથી મોહનભાઈ તેમને મળવા પહોંચી જ જાય મોહનભાઈએ અનેક વાર કહેલુ કે "મુનિજી! તમે જ્યારે ક્યાય પણ પ્રવાસ કરો ત્યારે મને જરૂર સૂચવશો કોર્ટની રજા હશે તો હુ તેનો ઉપયોગ તમારી સાથે દિવસો ગાળવામાં જ કરીશ એથી મને મારા પ્રિય કાર્યોમા ઉપયોગી થાય એવી ઘણી વસ્તુઓ જાણવા મળશે અને હુ એકલો તો પ્રવાસ કરી પણ ન શકું." એ જ વૃત્તિથી પ્રેરાઈ સને ૧૯૨૪માં બેલગામ કોંગ્રેસ વખતે મોહનભાઈ પ્રવાસમાં સાથે જોડાયા અને વચ્ચે જ્યા જ્યા ઐતિહાસિક સ્થળો જોવા ઊતરવાનુ બનતુ ત્યા સાથે જ રહેતા ગુજરાત પુરાતત્ત્વ મંદિરની સાહસિક પ્રવૃત્તિ, સિંધી સિરીઝની પ્રવૃત્તિ અને છેલ્લે છેલ્લે ભારતીય વિદ્યાભવનની વિવિધ વિદ્યાપ્રવૃત્તિથી મોહનભાઈ કેટલો ઉલ્લાસ અનુભવતા અને કેટલો રસ લેતા તેનો હુ સાક્ષી છુ

મોહનભાઈએ ઉલ્લાસ અને રસના પ્રતીકરૂપે ભારતીય વિદ્યાભવન સિંધી સિરીઝમા એક ઐતિહાસિક મહત્ત્વનો ગ્રંથ ભાનુચન્દ્રગણિચરિત સંપાદિત કરી આપ્યો છે, અને તેની વિસ્તૃત માહિતીપૂર્ણ અંગ્રેજી પ્રસ્તાવના લખી તેમણે પોતાનુ નામ સ્મરણીય બનાવ્યું છે મોહનભાઈ સામાજિક લોકો સાથે રહી સમાજનાં કામો કરતા, કેટલીક સામાજિક રૂઢિઓને અનુસરતા, પણ તેમને તેનું [illegible] નહોતું. એમને [illegible] હતો ને [illegible] એક માત્ર [illegible] ઉપાસનાનું તેથી જ તેઓ ગાંધીજીને એક મહાન [illegible] લેખતા અને તેમનાં સત્ય-અહિંસાપ્રધાન [illegible] [illegible] વિના રહી શકતા નહિ.

વિનમ્ર કર્મઠતા

શ્રી મહાવીર જૈન વિદ્યાલયના રજતોત્સવ પ્રસંગે એક સભામાં વિદ્યાર્થીઓને સંબોધી મોહનભાઈએ કહેલું કે હું તદ્દન ગરીબાઈમાં મામાની મદદથી અભ્યાસ કરી આગળ વધ્યો છું મને ગરીબાઈ તથા સાધારણ સ્થિતિનુ ભાન છે એ ભાન જ મને નમ્ર બનાવે છે. મારી સતત કામ કરવાની વૃત્તિ પણ એ સ્થિતિને આભારી છે. એ સભામા તેમના મોઢેથી ઉપરની મતલબના ઉદ્ગારો મે સાંભળ્યા અને પરિચય દરમ્યાન જાણેલ તેમના સ્વભાવ અને કાર્યપ્રવીણતા સાથે તુલના કરી તો મને તે વખતે જ તેમનુ કથન તદ્દન સાચુ લાગેલુ મુબઈ, અમદાવાદ તેમ જ પ્રવાસ વખતે, બીજે ઘણે સ્થળે અમે સાથે રહ્યા છીએ તે વખતે મે જોયુ કે નાના–મોટાનું કશુ જ અતર રાખ્યા વિના પ્રસગ આવતા સાધારણમા સાધારણ ગણાય એવાં કામો પણ જાતે કરવામા તેમને વકીલની પ્રતિષ્ઠા કે આધુનિક સભ્યતા આડે ન આવતી સને ૧૯૨૭ મા અમે અંબાજી અને કુભારિયાજી તરફ ગયેલા કુંભારિયાજીના સુપ્રસિદ્ધ વિમલ મત્રીના મંદિરોની કારીગરી જોવાનો અને ઐતિહાસિક માહિતી મેળવવાનો ઉદ્દેશ હતો મુનિશ્રી જિનવિજયજી ત્યાના અસ્ત–વ્યસ્ત તેમ જ ધૂળકીચડથી દબાયેલા અને ઘવાયેલા શિલાલેખોની કોપી કરવા લાગ્યા કે તે જ વખતે મોહનભાઈએ શિલાલેખોને સાફ કરવાનુ કામ એક મજૂરની અદાથી હાથમા લીધુ ને હસતા હસતા અમને કહે કે—‘ તમે બાકીનાઓ ખાવાનુ તૈયાર રાખજો હું અને મુનિજી તૈયાર થાળી ઉપર બેસીશું ’ એમ કહી તેઓ દટાયેલા પથ્થરોને ખુલ્લા કરતા, ધૂળ–કચરો સાફ કરતા અને નવાં નવા લખાણો શોધી કાઢી મુનિજીને કોપી કરવામા જેમ સાથ આપતા તેમ તેમની પાસેથી એ લખાણો ત્વરિત વાચી સમજી લેવાની તાલીમ પણ લેતા આ વખતે મે જોયું કે મે કલ્પેલું તે કરતા પણ મોહનભાઈ વધારે મહેનતુ અને કર્મરસિક છે. ચાલવુ હોય ત્યારે માઈલોના માઈલ ચાલે અને સાથીઓથી પાછા ન રહેવામા ગૌરવ માને પ્રવાસમા જાતે કરવાના કામ આવી પડે ત્યારે તે ઉલ્લાસપૂર્વક કરે અને કોઈને એવુ ભાન થવા ન દે કે તેમનો સાથ બોજારૂપ છે.

વિદ્યાવૃત્તિ

મોહનભાઈનો વકીલાતનો રસ, માત્ર સ્વાધીન નિર્વાહ પૂરતો હતો તેમની મુખ્ય રસવૃત્તિ તો કાયદાના ક્ષેત્રની બહાર બીજા વિષયોમાં જ

રમમાણ રહેતી અને તૃપ્તિ અનુભવતી. સાહિત્ય, ઇતિહાસ, પુરાતત્ત્વ આદિ અનેક વિષયોમાં તેમને રસ હતો અને એ જ એમનું કાર્યક્ષેત્ર હતું ન છૂટકે સ્વતંત્ર જીવનવ્યવહાર માટે કરવી પડતી વકીલાત કરતા, પણ તેમનો બાકીનો બધો સમય અને બધી શક્તિ તો પોતાના પ્રિય વિષયોમાં જ તેઓ ખરચતા. મુંબઈ ઉપરાંત અમદાવાદ, પાટણ, ભાવનગર, પાલણપુર, બિકાનેર આદિ અનેક સ્થળોના ભંડારો તેમણે જાતે જોયેલા અનેક ભંડારોનાં લિસ્ટો મંગાવે, અનેક સ્થળેથી—દૂર દૂરથી લિખિત પોથીઓ મંગાવે અને જે જે પોતાને ઉપયોગી દેખાય તેની અને પોતાને ઉપયોગી ન હોય છતાંય અપૂર્વ કોઈ વસ્તુ મળી આવે તો તેની પણ તેઓ જાતે નકલો કર્યા જ કરે મિત્રો કે પરિચિતો આવે ત્યારે વચ્ચે વાતો પણ કરે, ગપ્પા પણ મારે, છતાં તેમનું મુખ્ય લક્ષ્ય તો કોપી કરવામાં, કાંઈક લખવામાં કે પ્રૂફ જોવામાં જ હોય દિવસે પ્રવૃત્તિને લીધે અગર બીજાઓની અવરજવરને લીધે જે વિક્ષેપ પડતો તેની પૂરવણી તેઓ રાતે જાગીને જ કરતા અને 'या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।' એ ગીતા વાક્યને સાહિત્યસેવાની દૃષ્ટિએ સાચું સાબિત કરતા એક વાર તેઓ અમદાવાદ આવ્યા અને શહેરમાં ભંડારો જોવા ગયા ત્યાં જોતાં જોતાં તેમને એક અપૂર્વ વસ્તુ મળી તેઓ એના આનંદમાં અને ભંડારો જોવાની મળેલી તકનો ઉપયોગ કરવામાં એટલા બધા નિમગ્ન થયા કે સાંજે જમવા પાછા ન ફર્યા. મોડે સુધી રાતે ઉજાગરો કરી ઘેર પાછા આવ્યા ત્યારે અમે તો બધા રાહ જોઈ સૂઈ ગયેલા તેમણે બારણું ખખડાવ્યું 'આટલું બધું મોડું કેમ થયું?' એમ જ્યારે અમારામાંના શ્રી મોતીબહેને પૂછ્યું ત્યારે તેમણે કહ્યું કે 'હું જાગીને જ આવ્યો છું. પણ કાંઈક એવી વસ્તુ લાવ્યો છું કે સુખલાલજી જાગે અને જાણે તો મને કદાચ ઇનામ આપે' મને જગાડવામાં આવ્યો મોહનભાઈ હસીને કહે—'મોડું થયું છે, પણ કાંઈક તમે [illegible] હતા એવી અલભ્ય વસ્તુ લઈ આવ્યો છું' મેં કહ્યું કે 'એવું તે શું લઈ આવ્યા છો?' 'સાંભળો ત્યારે' એમ [illegible] તેમણે [illegible] સંભારી. '[illegible]' માં ઉપાધ્યાય [illegible] [illegible] તેમના જ [illegible] આલેખેલું હોઈ તે ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ [illegible] સ્વની વસ્તુ હતી એનો એક [illegible] ભાગ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] '[illegible]' [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

તવાવાળા બીલ્ડિંગમાં રહેતા. એકવાર તેમને ત્યાં જ સૂવાનો પ્રસંગ આવતાં મેં તેમને કહ્યું-'તમારે ત્યાં ક્યાં જગા છે? વળી તમે તો મોડે સુધી જાગવાના, ધુમાડા કાઢવાના અને કાગળ કે ચોપડીઓનો ખખડાટ કરવાના, એટલે મારે પણ ઉજાગરો કરવો રહ્યો' તેમણે તરત જ નિખાલસ ભાવે કહ્યું-'અલબત્ત, મારી સાંકડી રૂમને પણ ચોપડીઓએ વધારે સાંકડી કરી છે; છતાં સૂવા જેટલી જગા તો કરીશ જ મને મોડે સુધી જાગી કામ કર્યા વિના ઊંઘ આવવાની નથી અને બીડીની ગરમી વિના મારું એંજિન ચાલે પણ નહીં. છતાં તમને વિઘ્ન ન નડે એ રીતે હુ રૂમ બહાર બેસીને કામ કરીશ.' હું અમદાવાદ કે કાશીથી જ્યારે જ્યારે મુંબઈ આવુ ત્યારે તેઓ મને મળે જ, અને સાહિત્ય, ઇતિહાસ, તેમ જ તત્ત્વજ્ઞાનના અનેક વિષયોની ચર્ચા કરે. એમની જિજ્ઞાસા અને ચર્ચાવૃત્તિ એટલી પ્રબળ હતી કે તે મને કહેતા કે 'તમે દાદર, ઘાટકોપર, મુલુંદ કે શાંતાક્રુઝ જ્યા ઊતરો ત્યા તમને અડચણ ન હોય તો અમે રોજ આવવા તૈયાર છીએ કોર્ટ હશે ત્યારે પણ હું અને મારા મિત્રો સાંજે તો આવી જ શકીએ છીએ' મેં જ્યારે જ્યારે હા પાડેલી ત્યારે કદી મોહનભાઈ ગમે તેટલે દૂર અને સાંજે ગમે તેટલુ મોડું થાય છતાય આવ્યા વિના ભાગ્યે જ રહે કોર્ટ બંધ હોય તો ઘણી વાર બબ્બે ત્રણ ત્રણ દિવસ શેઠ હરગોવિંદદાસ રામજીને ત્યા સાથે જ રહે મોહનભાઈ પોતાનુ કામ સાથે જ લઈને આવતા એટલે જ્યારે એકલા પડે ત્યારે પોતાનુ કામ કર્યા જ કરે તેમને જે જે વસ્તુ નવી મળી હોય તેનુ વર્ણન કરે, થયેલ અને થતા કામનો ખ્યાલ આપે અને અમે કાંઈ ટીકા કરીએ તો મૃદુ જવાબ આપીને અગર ખડખડ હસીને તેની અસર ભૂસી નાખે.

એ પ્રકારની વિદ્યાવૃત્તિ અને સાહિત્યનિષ્ઠાએ જ તેમની પાસે અનેક પ્રકારનુ સાહિત્ય તેમ જ ઇતિહાસને લગતુ કાર્ય સર્જાવ્યુ જૈન શ્વેતાંબર કૉન્ફરન્સના કાર્યને સ્થાયી કીર્તિકળશ ચડાવનાર કાંઈ હોય તો તે મોહનભાઈની અનેક કૃતિઓ જ છે એમની બધી કૃતિઓ એવી છે કે ભાષા, છંદ, સાહિત્ય, ભંડાર, રાજવંશ, જ્ઞાતિઓ, ગચ્છો અને પ્રાચીન નગર-નિગમો આદિ અનેક વિષયો ઉપર ઇતિહાસ લખનાર તે કૃતિઓ જોયા વિના કદી પોતાનુ કામ પૂરું કરી શકશે નહીં. એ કૃતિઓમાં કૉન્ફરન્સના પાક્ષિક અને માસિકમાના તેમના લેખો, જૈન સાહિત્યનો સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસ, જૈન ગૂર્જર કવિઓના ત્રણ ભાગોનો સમાવેશ થાય છે. તે ઉપરાંત બીજા ઘણા પ્રકાશકો અને સંપાદકોને

મોહનભાઈએ વિવિધ પ્રકારનું સાહિત્ય, પોતાનાં લખાણો, નોટો, ટિપ્પણીઓ આદિ પૂરાં પાડ્યાં છે. તેમની સંશોધન અને સંપાદનની ધગશ એટલી બધી ઉત્કટ હતી કે કોઈ એ વિષે તેમની પાસેથી મદદ માગે તો બીજો ગમે તેટલો બોજો હોવા છતાં આ વધારાનો બોજો લેવાનું તેઓ સ્વીકારે અને તેમને નિભાવે પણ. એ જ વૃત્તિને લીધે તેમણે આત્માનંદ જૈન શતાબ્દી સ્મારક ગ્રંથનું દળદાર પુસ્તક સંપાદિત કરી આપ્યું. મોહનભાઈ પાસેથી મદદ લેનારમાં એવા બહુ જ ઓછા છે કે જેમણે તેમની મદદની કૃતજ્ઞતાપૂર્વક નોંધ લીધી હોય. તેથી ઊલટું મોહનભાઈનો સ્વભાવ એવો હતો કે કોઈની પાસેથી તેમને કાંઈ પણ મદદ મળી હોય તો તેનો ઉલ્લેખ કર્યા વિના તેઓ ન રહે

કોઈ વિદ્વાન કે સદ્‌ગુણી વ્યક્તિને મળવાની અને તેમની પાસેથી કાંઈ ને કાંઈ જાણવાની તક મળતી હોય તો મોહનભાઈ ચૂકે નહી. એવી વ્યક્તિ પાસે જતા તેમને ઉંમર, જાતિ કે પંથનું અંતર નડતું નહિ વિદ્વાનોનો સત્કાર કરવામા ગૌરવ લેતા મે તેમને જોયા છે એમનો વિદ્યાયોગ અર્થાપેક્ષી નહોતો તેમણે પોતાની સાધારણ કમાણીનો પણ ઠીક ઠીક ભાગ સાહિત્યકૃતિઓ સરજવામાં અને સાહિત્યવૃત્તિ સંતોષવામા ખર્ચ્યો છે અને જ્યા બદલો મળે તેમ હતુ ત્યા પણ તેમણે બદલો લીધા વિના કેવળ સાહિત્યસેવાની દૃષ્ટિએ જ કામ કર્યું છે એટલું જ નહીં પણ હું એવા પ્રસંગો જાણું છું કે જેમા તેમણે વિદ્યા અને સાહિત્યને ઉત્તેજન આપવા આર્થિક મદદ પણ કરેલી એકવાર પરદેશ અભ્યાસ અર્થે જતા એક મિત્રને તેમણે સંગીન મદદ આપેલી

બીજો પ્રસંગ પં. દરબારીલાલ સત્યભક્તનો છે. મોહનભાઈ દરબારીલાલનાં લખાણો અને વિચારો પ્રત્યે બહુ આદર ધરાવતા એકવાર તેમને માલૂમ પડ્યું કે દરબારીલાલને સાહિત્ય પ્રગટ કરવામા આર્થિક મુશ્કેલી નડે છે ત્યારે તેમણે વગર માગ્યે જ મદદ મોકલાવી દીધી. અહીં એ ધ્યાનમાં રાખવા જેવું છે કે મોહનભાઈના શ્રદ્ધાપાત્ર વિદ્વાનો અને લેખકો નવા સુધારક અને ક્રાંતિકારી વિચાર ધરાવનાર હતા, તેથી એ નિઃશંક છે કે મોહનભાઈનો વિદ્યાયોગ સમજપૂર્વક અને નિષ્કામ હતો

સામાજિકતા અને રાષ્ટ્રીયતા

મોહનભાઈ જૈન શ્વેતાંબર કૉન્ફરન્સના મુખપત્ર જૈન હેરલ્ડના તંત્રી [illegible] [illegible] કૉન્ફરન્સની એવી [illegible] [illegible] કે [illegible]

તેમણે છેવટ લગી સાથ આપ્યો ન હોય કૉન્ફરન્સનુ વાર્ષિક અધિવેશન જ્યાં જ્યાં થાય ત્યાં ત્યાં સર્વત્ર તેમની હાજરી હોય જ આ ઉપરાંત શ્વેતાંબર સમાજને લગતી કે સમગ્ર જૈન સમાજને લગતી કોઈ પણ બાબત હોય તો તેમાં મોહનભાઈ ભાગ લીધા વિના ન રહે દેખીતી રીતે તેઓ સામાજિક વ્યક્તિ દેખાય, છતાં તેમના મન ઉપર રાષ્ટ્રીયતાની ઊંડી છાપ હતી મેં સને ૧૯૧૯ ની કડકડતી ટાઢમાં મારવાડના એક સ્ટેશનથી પંજાબ–અમૃતસર જતાં તેમને પૂછ્યું કે 'કોંગ્રેસમા તમને રસ પડે છે?' તેમણે કહ્યુ– 'અવશ્ય જો કોંગ્રેસના ધ્યેયમાં રસ ન હોત તો આટલી ટાઢમા પંજાબ ન જાત' તેમણે ઉમેર્યું કે, 'જ્યારથી ગાંધીજીએ કોંગ્રેસનાં સૂત્રો હાથમાં લીધા છે ત્યારથી તો કોંગ્રેસ જ તીર્થધામ બની છે સીધી રીતે કોંગ્રેસનુ કામ કરવાની મારી પરિસ્થિતિ નથી તો શું થયું? પણ એના અધિવેશનમાં જવાથી મને ઘણુ બળ મળે છે!' સને ૧૯૩૧ની કરાચી કોંગ્રેસ ઉપર જતી વખતે હુ તેમની સાથે સ્ટીમરમા હતો તે વખતે જોઈ શકેલો કે મોહનભાઈને રાષ્ટ્રીયતાનો કેટલો રગ છે

સુધારક વૃત્તિ

સમાજની ઘણી પ્રવૃત્તિઓમા તેઓ રૂઢિચુસ્ત અને મધ્યમસરના વિચાર ધરાવનાર સાથે બેસતા અને કામ કરતા તેથી એવો ભાસ થાય એ સ્વાભાવિક છે કે તેઓ રૂઢ પ્રથાના અનુગામી છે પરતુ જેઓ તેમને નજીકથી જાણતા હશે તેઓ કહી શકશે કે સામાજિક પ્રવૃત્તિને આગળ ધપાવવા જો કે તેઓ રૂઢિગામી મિત્રો સાથે કામ કરતા, પણ તેમનામા તેમના બીજા મિત્રો કરતાં સુધારકપણાની વૃત્તિ પ્રબળ હતી સને ૧૯૨૯ ના પજુસણમાં પજુસણ વ્યાખ્યાનમાળા પ્રસગે અચાનક તેમનુ આગમન અમદાવાદ થયેલુ. એકાદ દિવસ એ વ્યાખ્યાનમાળામા રજૂ કરવામા આવતા વિચારો સાભળવાની એમને તક મળી ત્યારે એમણે મને કહ્યું કે, 'આવી વ્યાખ્યાનમાળા મુબઈમાં પણ ચાલે એ જરૂરી છે.' તે ઉપરથી સને ૧૯૩૨મા મુબઈમા પણ વ્યાખ્યાનમાળા ચલાવવાનો વિચાર પોષાયો અને ત્યારથી આજસુધી મુબઈમા વ્યાખ્યાનમાળા ચાલુ છે. સને ૧૯૪૪ ના પજુસણમાં જ્યારે મોહનભાઈ છેક ન ખાઈ ગયેલા ત્યારે પણ તેઓ વ્યાખ્યાનમાળામાં આવેલા. મુબઈની વ્યાખ્યાનમાળામા દર વર્ષે તેમનુ એકાદ પ્રવચન તો હોય જ, અને બધા જ વ્યાખ્યાનોમા તેમની હાજરી પણ હોય ઉત્કટ સુધારકની પેઠે તેઓ દરેક નિરર્થક રૂઢિનો ખુલ્લેખુલ્લા વિરોધ ન કરતા, પણ તેમનું વલણ સુધા-

રક વૃત્તિનું જ હતુ. તેઓ ઘણીવાર કહેતા કે માત્ર વેષધારીને સાધુ માની પૂજવા અને નભાવ્યે જવા એ વિચારનું અપમાન છે ક્રાંતિકારી વિચારને કારણે પ. દરબારીલાલજીને શ્રી મહાવીર જૈન વિદ્યાલયે મુક્ત કર્યા તોપણ મોહનભાઈ ઠેઠ સુધી દરબારીલાલજીને ખૂબ સત્કારતા અને તેમના કાર્યમાં યથાશક્તિ મદદ પણ આપતા

વિનોદપ્રિયતા અને મિલનસારપણું

મોહનભાઈને જેમ મિત્રો અને પરિચિતોનો વિનોદ કરવો ગમતો તેમ તેમનો બીજો કોઈ ગમે તે રીતે વિનોદ કરે તે પણ એમને ગમતું. વિનોદ કરવા કે સાંભળવામાં તેમની પ્રકૃતિનું મુખ્ય તત્ત્વ ખડખડ હાસ્ય હતું. એમનો સ્વર જેટલો ઊંચો તેટલુ જ તેમનું હાસ્ય મુક્ત. વિનોદી અને આનંદી સ્વભાવનો એક દાખલો અત્રે બસ થશે. બેલગામના પ્રવાસ વખતે મોહનભાઈએ એક સ્થળે પોતાના પ્રિય મિત્ર શેઠ હરગોવિંદદાસ સાથે દોડવાની શરત મારી કે કોણ આગળ જાય છે એ કાઠિયાવાડી ફેંટો, પ્રૌઢ ઉમર અને સભળભભળ ધોતિયુ છતા હિંમતથી તેઓ દોડ્યા અને આગળ જવાના ઉત્સાહમાં ખ્યાલ ન રહેવાથી પડી પણ ગયા. કાંઈક વાગ્યું છતાં એટલી જ તાજગીથી પાછા પોતાના પક્ષનો બચાવ કરવા લાગ્યા.

એમના સ્વભાવનો એક ખાસ ગુણ મિલનસારપણુ હતો ગમે તેની સાથે એકરસ થઈ જતાં તેમને વાર ન લાગે વિચારો કે ચર્ચામા ઘણે પ્રસંગે બીજાથી જુદા પડે ત્યારે ઊંચે અવાજે પોતાનો વિરોધ પ્રગટ કરે પણ પાછા વિરોધી સાથે મળી જવામા તેમને કોઈ તત્ત્વ રોકે નહિ એટલી નિખાલસતા તેમનામાં જોવામા આવતી

અમે ઘણીવાર કહીએ કે, 'મોહનભાઈ ! તમે બહુ મોટાં પોથા પ્રગટ કરો છો અને ખૂબ લાંબુ લખો છો ' ત્યારે તદ્દન નિખાલસ ભાવે પણ ખડખડાટ હસીને નિશાળના છોકરાઓની પેઠે ચાવીને બોલતા હોય તેમ અમારી વાતને ઉડાવતા તેઓ કહે કે ' તમારા જેવા કાંઈ અમે મૌલિક લેખક નથી ' ઇત્યાદિ

મોહનભાઈને ભજન-કીર્તન ખૂબ ગમતું તેઓ કહે કે ' હું મિત્રો જેટલો મધુર ગાનાનંદ કરી શકતો નથી, પણ મને શોખ નથી,' એ વાત સાચી હતી તેમના પરિચિતો એટલી વાત જાણતા હતા કે ગમે તેવું સંગીત ભજન તેમને રુચતું. ભજન પછી પણ કાંઈક સારું આવે તો ના ન

પાડે. અને જુદે જુદે ખાસ નિમિત્તે ગમે તેટલી વાર પ્રસાદ લેવાનો પ્રસંગ આવે તો તેનો ઇન્કાર ન કરે. હુ ઘણીવાર પરિહાસમાં કહેતો કે, 'મોહનભાઈ! તમે પાચનાન્તરાય કર્મનો ક્ષયોપશમ ઉપાર્જિત કર્યો છે' ત્યારે તેઓ કહેતા કે, 'તમારે એવો ક્ષયોપશમ નથી એ દુઃખની વાત છે'

છેલ્લો પ્રસંગ

સન ૧૯૪૪ના જાન્યુઆરીમાં હુ કાશીથી મુબઈ આવ્યો ત્યાર બાદ એકવાર મોહનભાઈ મળવા આવ્યા તેમણે વાતચીતમા કહ્યુ કે, 'જૈન ગૂર્જર કવિઓ–ત્રીજો ભાગ' તદ્દન તૈયાર છે. મારે એની અતિવિસ્તૃત પ્રસ્તાવના લખવી છે' ઇત્યાદિ મે કહ્યુ, 'તમારી રુચિ, શક્તિ, અને પ્રવૃત્તિ જોતાં મને લાગે છે કે હવે તો તમારે નિવૃત્ત થઈ તમારા પ્રિય કામ પાછળ જ જીવન વ્યતીત કરવુ ઘટે.' તેમણે જવાબમાં કહ્યુ કે, 'મારી ઇચ્છા પણ એવી જ છે હુ એ જ દૃષ્ટિથી કેટલીક કૌટુબિક ગોઠવણ એવી કરવા વિચારુ છુ કે મુબઈનુ ખરચાળપણુ ઓછુ થાય કોઈ સંસ્થા પાસેથી કાંઈ લીધા સિવાય આજલગી કર્યુ છે તેમ કામ કરુ અને છેલ્લા જીવનનો શાન્ત ઉપયોગ કરી લઉ' આવી ભાવના સેવનાર એ કર્મયોગીની સ્થિતિ જ્યારે સન ૧૯૪૪ ના પજુસણ પ્રસગે અમે જોઈ ત્યારે અમને બધાને એમના જીવન વિષે ઊડી ચિંતા વ્યાપી.

ઉપસંહાર

શ્રીયુત મોહનભાઈની પ્રવૃત્તિ વિવિધ હતી છતા જૈન શ્વે. કોન્ફરન્સના અને મહાવીર જૈન વિદ્યાલય–એ બે સસ્થાઓ સાથે એમનું તાદાત્મ્ય સૌથી વધારે હતુ. એના વિકાસમા તે વધારે ને વધારે રસ લેતા કોન્ફરન્સના સંચાલકોએ મોહનભાઈની સેવાનું ઘટતુ સન્માન કરવા તેમની યાદગાર માટે એક ફંડ ઊભું કર્યુ છે, જેમા તત્કાલ જ કેટલીક રકમ એકઠી થઈ ગઈ છે. પણ એ સચાલકોએ અને મોહનભાઈના બીજા મિત્રોએ તેમ જ પરિચિતોએ એ ફંડ વધારવા વિશેષ વ્યવસ્થિતપણે ત્વરિત પ્રયત્ન કરવો ઘટે છે સારું સરખું ફંડ મેળવી મોહનભાઈના સ્મારક તરીકે કોન્ફરન્સ કોઈ પણ એક આવશ્યક અને ઉપયોગી એવી સાહિત્ય પ્રકાશન–સપાદનની પ્રવૃત્તિ શરૂ કરે તો તે બધી રીતે વ્યાજબી ગણાય આપણે ઇચ્છીએ કે કોન્ફરન્સના મંત્રીઓ અને બીજા સદ્ભાવશીલ ગૃહસ્થો આ વસ્તુ તરત ધ્યાનમાં લે.

–પ્રબુદ્ધ જૈન ૧૫, ફેબ્રુઆરી ૧૯૪૫.

રક વૃત્તિનું જ હતુ. તેઓ ઘણીવાર કહેતા કે માત્ર વેષધારીને સાધુ માની પૂજવા અને નભાવ્યે જવા એ વિચારનું અપમાન છે ક્રાંતિકારી વિચારને કારણે પં. દરબારીલાલજીને શ્રી મહાવીર જૈન વિદ્યાલયે મુક્ત કર્યો તોપણ મોહનભાઈ ઠેઠ સુધી દરબારીલાલજીને ખૂબ સત્કારતા અને તેમના કાર્યમા યથાશક્તિ મદદ પણ આપતા.

વિનોદપ્રિયતા અને મિલનસારપણું

મોહનભાઈને જેમ મિત્રો અને પરિચિતોનો વિનોદ કરવો ગમતો તેમ તેમનો બીજો કોઈ ગમે તે રીતે વિનોદ કરે તે પણ એમને ગમતું. વિનોદ કરવા કે સાંભળવામાં તેમની પ્રકૃતિનું મુખ્ય તત્ત્વ ખડખડ હાસ્ય હતું. એમનો સ્વર જેટલો ઊંચો તેટલું જ તેમનું હાસ્ય મુક્ત. વિનોદી અને આનંદી સ્વભાવનો એક દાખલો અત્રે બસ થશે બેલગામના પ્રવાસ વખતે મોહનભાઈએ એક સ્થળે પોતાના પ્રિય મિત્ર શેઠ હરગોવિંદદાસ સાથે દોડવાની શરત મારી કે કોણ આગળ જાય છે એ કાઠિયાવાડી ફેંટો, પ્રૌઢ ઉમર અને સભળભભળ ધોતિયું છતાં હિંમતથી તેઓ દોડ્યા અને આગળ જવાના ઉત્સાહમાં ખ્યાલ ન રહેવાથી પડી પણ ગયા કાંઈક વાગ્યુ છતાં એટલી જ તાજગીથી પાછા પોતાના પક્ષનો બચાવ કરવા લાગ્યા.

એમના સ્વભાવનો એક ખાસ ગુણ મિલનસારપણું હતો. ગમે તેની સાથે એકરસ થઈ જતાં તેમને વાર ન લાગે વિચારો કે ચર્ચામા ઘણે પ્રસંગે બીજાથી જુદા પડે ત્યારે ઊંચે અવાજે પોતાનો વિરોધ પ્રગટ કરે. પણ પાછા વિરોધી સાથે મળી જવામા તેમને કોઈ તત્ત્વ રોકે નહિ એટલી નિખાલસતા તેમનામાં જોવામાં આવતી

અમે ઘણીવાર કહીએ કે, 'મોહનભાઈ! તમે બહુ મોટાં પોથાં પ્રગટ કરો છો અને ખૂબ લાબુ લખો છો' ત્યારે તદ્દન નિખાલસ ભાવે પણ ખડખડાટ હસીને નિશાળના માસ્તરોની પેઠે ચાવીને બોલતા હોય તેમ સામાને ઉડાવતા તેઓ કહે કે 'તમારા જેવા કાંઈ અમે મૌલિક લેખક નથી' ઈત્યાદિ

મોહનભાઈને જમવુ—જમાડવું ખૂબ ગમતું. તેઓ કહે કે 'હું મિત્રો જેટલો સફળ સમારંભ કરી શકતો નથી, પણ મને લોભ નથી,' એ વાત સાચી હતી તેમની પાચનક્રિયા એટલી બધી સારી હતી કે ગમે તેવુ ગરિષ્ટ ભોજન તેમને પચી જતું. જમ્યા પછી પણ કાંઈક સારું આવે તો ના ન

પાડે. અને જુદે જુદે ખાસ નિમિત્તે ગમે તેટલી વાર પ્રસાદ લેવાનો પ્રસંગ આવે તો તેનો ઇન્કાર ન કરે. હુ ઘણીવાર પરિહાસમાં કહેતો કે, 'મોહનભાઈ! તમે પાચનાન્તરાય કર્મનો ક્ષયોપશમ ઉપાર્જિત કર્યો છે' ત્યારે તેઓ કહેતા કે, 'તમારે એવો ક્ષયોપશમ નથી એ દુખની વાત છે'

છેલ્લો પ્રસંગ

સન ૧૯૪૪ના જાન્યુઆરીમાં હુ કાશીથી મુબઈ આવ્યો ત્યાર બાદ એકવાર મોહનભાઈ મળવા આવ્યા. તેમણે વાતચીતમાં કહ્યું કે, 'જૈન ગૂર્જર કવિઓ–ત્રીજો ભાગ' તદ્દન તૈયાર છે. મારે એની અતિવિસ્તૃત પ્રસ્તાવના લખવી છે' ઇત્યાદિ મે કહ્યુ, 'તમારી રુચિ, શક્તિ, અને પ્રવૃત્તિ જોતાં મને લાગે છે કે હવે તો તમારે નિવૃત્ત થઈ તમારા પ્રિય કામ પાછળ જ જીવન વ્યતીત કરવુ ઘટે.' તેમણે જવાબમાં કહ્યુ કે, 'મારી ઇચ્છા પણ એવી જ છે હુ એ જ દૃષ્ટિથી કેટલીક કૌટુબિક ગોઠવણ એવી કરવા વિચારું છુ કે મુબઈનુ ખરચાળપણુ ઓછુ થાય કોઈ સંસ્થા પાસેથી કાંઈ લીધા સિવાય આજલગી કર્યું છે તેમ કામ કરુ અને છેલ્લા જીવનનો શાન્ત ઉપયોગ કરી લઉં.' આવી ભાવના સેવનાર એ કર્મયોગીની સ્થિતિ જ્યારે સન ૧૯૪૪ ના પજુસણ પ્રસગે અમે જોઈ ત્યારે અમને બધાને એમના જીવન વિષે ઊડી ચિતા વ્યાપી.

ઉપસંહાર

શ્રીયુત મોહનભાઈની પ્રવૃત્તિ વિવિધ હતી છતાં જૈન શ્વે કૉન્ફરન્સના અને મહાવીર જૈન વિદ્યાલય–એ બે સસ્થાઓ સાથે એમનું તાદાત્મ્ય સૌથી વધારે હતું એના વિકાસમાં તે વધારે ને વધારે રસ લેતા કૉન્ફરન્સના સંચાલકોએ મોહનભાઈની સેવાનુ ઘટતુ સન્માન કરવા તેમની યાદગાર માટે એક ફંડ ઊભું કર્યું છે, જેમા તત્કાલ જ કેટલીક રકમ એકઠી થઈ ગઈ છે પણ એ સચાલકોએ અને મોહનભાઈના બીજા મિત્રોએ તેમ જ પરિચિતોએ એ ફંડ વધારવા વિશેષ વ્યવસ્થિતપણે ત્વરિત પ્રયત્ન કરવો ઘટે છે. સારું સરખું ફંડ મેળવી મોહનભાઈના સ્મારક તરીકે કૉન્ફરન્સ કાંઈ પણ એક આવશ્યક અને ઉપયોગી એવી સાહિત્ય પ્રકાશન–સંપાદનની પ્રવૃત્તિ શરૂ કરે તો તે બધી રીતે વ્યાજબી ગણાય આપણે ઇચ્છીએ કે કૉન્ફરન્સના મંત્રીઓ અને બીજા સદ્‌ભાવશીલ ગૃહસ્થો આ વસ્તુ તરત ધ્યાનમા લે.

—પ્રબુદ્ધ જૈન ૧૫, ફેબ્રુઆરી ૧૯૪૬.

અંજલિ

[સદ્‌ગત શ્રી મોહનલાલ દ દેસાઈની સાહિત્યસેવા અને નિષ્ઠાને]

[૨૧]

સહૃદય મિત્રો,

આભારવિધિના ઔપચારિક ભારમાં દબાયા વિના જ આપણે મુખ્ય પ્રસગ ઉપર આવીએ શ્રી શ્વેતામ્બર મૂર્તિપૂજક કોન્ફરન્સે મને પોતાનો સમજીને જ બોલાવ્યો છે. હુ પણ એ ભાવથી જ આવ્યો છુ. સદ્‌ગત શ્રી મોહનલાલભાઈ દેસાઈનુ તૈલચિત્ર કોન્ફરન્સ તૈયાર કરાવે અને તેના અનાવરણ વિધિ માટે મને બોલાવે ત્યારે સહેજે વિચાર આવે છે કે કોન્ફરન્સ, મોહનભાઈ અને હુ એમ ત્રણેનો પરસ્પર શો સબધ હતો અને હજીયે છે. વળી, એ પણ જિજ્ઞાસા થયા વિના ન જ રહે કે હુ કોન્ફરન્સને કઈ દૃષ્ટિએ જોતો અને સમજતો રહ્યો છુ, તેમ જ મોહનભાઈનુ મારી દૃષ્ટિએ શુ સ્થાન હતુ?

હુ કોન્ફરન્સનો નખશિખ ઇતિહાસ નથી જાણતો એ ખરું, પણ એના મુખ્ય સ્વરૂપ અને મુખ્ય પ્રવૃત્તિ વિશે થોડીઘણી માહિતી તો છે જ હુ જાણુ છુ ત્યાં લગી શ્વેતામ્બર મૂર્તિપૂજક પરપરાની બીજી કોઈ પણ સંસ્થા કરતા કોન્ફરન્સનુ દૃષ્ટિબિદુ અને બધારણ ઉદાર તેમ જ વિશાળ રહ્યા છે. પરિસ્થિતિવશ તેનુ મુખ્ય કાર્યાલય મુબઈમા હોવા છતા તેની બેઠકો અને વાર્ષિક અધિવેશનો માત્ર મુબઈમાં જ પૂરાઈ રહ્યા નથી પૂર્વમાં કલકત્તા, ઉત્તરમાં પજાબ, પશ્ચિમમાં કાઠિયાવાડ, રાજસ્થાન અને ગુજરાત તેમ જ દક્ષિણમા પૂના લગી સમયે સમયે એનાં અધિવેશનો થતા રહ્યા છે અને તે તે પ્રાન્ત કે પ્રદેશના સદ્‌ગૃહસ્થો પ્રમુખપદ પણ શોભાવતા રહ્યા છે. આ સૂચવે છે કે પ્રથમથી જ કોન્ફરન્સનુ દૃષ્ટિબિદુ સમગ્ર મૂર્તિપૂજક સઘને પોતાની સાથે લેવાનુ રહ્યું છે અને એ પણ કબૂલ કરવુ જોઈએ કે આ દૃષ્ટિબિન્દુને સર્વે હૃદયથી આવકાર્યું પણ છે તેથી જ તેને દરેક પ્રાન્ત અને પ્રદેશમાથી હાર્દિક આવકાર મળ્યો અને ઉદ્દામ, મધ્યમ તેમ જ જૂનવાણી વિચારસરણી ધરાવનાર ભાઈ-બહેનો પણ કોન્ફરન્સને અપનાવતા રહ્યા છે

જૈન સંઘના બંધારણમાં ચતુર્વિધ સંઘનુ સ્થાન એકસરખું છે. ક્યારેક કોઈ વ્યક્તિ મુખ્ય ભાગ ભજવતી દેખાય યા સર્વોપરી મોવડી જેવી લાગે તોય તેના મૂળમા ગુણ અને કાર્યશક્તિ રહેલાં હોય છે, નહિ કે પેઢીઉતાર સત્તાનો વારસો આ જૈન સંઘનુ સ્વરૂપ આજકાલની ભાષામાં કહીએ તો લોકશાહી છે; અલબત્ત, તે એક ધર્મપરંપરા પૂરતી.

કોન્ફરન્સે પોતાનો કાર્યપ્રદેશ મુખ્યપણે ત્રણ બાબતોમા મર્યાદિત કરેલો એમ હુ સમજુ છુ (૧) ધાર્મિક, (૨) સાહિત્યિક, અને (૩) સામાજિક ધાર્મિક બાબતમા તીર્થના પ્રશ્ન ઉપરાત ધર્માચાર અને તાત્ત્વિક શિક્ષણ વગેરેનો સમાસ થાય છે. બને ત્યા લગી નવા જમાનાની માગણીને અનુકૂળ થાય એ રીતે કોન્ફરન્સે સાધન ને શક્તિના પ્રમાણમાં એ બાબત કાંઈક ને કાંઈક કર્યું જ છે, અને હજીયે એ કાઈક ને કાઈક કરે જ છે. સાહિત્યની બાબતમાં એનુ કામ વિશેષ ધ્યાન ખેચે એવુ છે, પ્રથમથી જ એણે પ્રાચીન સાહિત્યવારસાને પ્રકાશમા લાવવાની નેમ રાખી છે અને એ દિશામા યથાશક્તિ પણ નક્કર કામ કર્યું છે સામાજિક બાબતમાં કોન્ફરન્સે દેશમા વિકસતા જતા ઉદાર વિચારોને ઝીલ્યા અને યથાશક્તિ પ્રચાર્યા પણ છે.

કોન્ફરન્સની ઉપર સૂચવેલી ભૂમિકામા સદ્દગત મોહનભાઈનો શો સંબંધ હતો અને તેમણે શો શો ફાળો આપ્યો, મુખ્યપણે એ જાણવુ તે જ આજના પ્રસંગ સાથે વિશેષ સગત છે મુબઈમા સદ્દગત ડૉ. બાલાભાઈ નાણાવટીના પ્રમુખપણા નીચે અધિવેશન થયુ ત્યારે હુ પહેલવહેલો કોન્ફરન્સમાં આવેલો, એમ યાદ છે. ઘણુ કરી તે જ વખતે મોહનભાઈનો પ્રથમ પરિચય થયો અને તેમની રુચિ, પ્રવૃત્તિ તથા પ્રકૃતિ વિશે કાંઈક જાણવા પામ્યો. તે જ વખતે મારા મન ઉપર એમને વિશે જે સામાન્ય છાપ પડેલી તે જ છેવટ સુધી વધારે ને વધારે પ્રત્યક્ષ પરિચયથી સ્પષ્ટ થતી ગઈ.

મેં જોયેલું કે તેમની પ્રકૃતિ જેમ હસમુખી તેમ આશાવાદી હતી. મેં એ પણ જોયું કે તે કાઈક ને કાઈક સારુ કામ કરવાની ધગશવાળા અને જાતે જ કાઈક કરી છૂટવાની વૃત્તિવાળા હતા અને એ પણ જોયેલુ કે જ્યાંથી જે પ્રાપ્ત થાય અને શીખવાનુ મળે ત્યાથી મુક્તમને તે મેળવવુ અને તેનો યોગ્ય વિનિમય કરવો.

મુબઈના પ્રથમ મિલન પછી તો તેમના છેલ્લા દિવસો સુધીમાં હું અને તેઓ એટલી બધી વાર મળ્યા છીએ કે તેનો આંક સ્મૃતિના પણ

નથી. માત્ર મળ્યા જ છીએ એટલું જ નહિ, પણ સાથે કલાકો લગી
કેટલીક વાર તો દિવસો લગી રહ્યા છીએ સાથે પ્રવાસ પણ કર્યો છે
બધા પ્રસંગે મેં એ જોયુ કે તેઓ રાજકારણ, કોંગ્રેસ કે ગાંધીજી વ
કોઈપણ ચર્ચા ઉપરથી છેવટે કોન્ફરન્સની પ્રવૃત્તિને લગતી કોઈ ને
બાબત ઉપર આવે, જાણે કે એમના મનમા એક પ્રશ્ન ઘોળાતો ન હો
રીતે વાત કરે. મને લાગેલુ કે એમનો પ્રશ્ન એ છે કે કોન્ફરન્સ શિ
સાહિત્ય અને સામાજિક સુધારાની બાબતમાં શુ શુ કરી શકે અને તે
કેવી રીતે પાર પાડવુ?

એક તો જૈનસમાજ વ્યાપારપ્રધાન, આર્થિક દૃષ્ટિએ તદ્દન સ્વ
હોય એવા લોકો ગણ્યાગાંઠ્યા, મધ્યમવર્ગીય બધા જૈનોને કોન્ફર
સમ્મિલિત કરવાની દૃષ્ટિ, સાધુઓના અંદરોઅંદરના પક્ષભેદ અને
લીધે શ્રાવકવર્ગમાં પડતી ફૂટના કોન્ફરન્સ ઉપર પડતા પ્રત્યાઘાતો, આ
કોન્ફરન્સની દૃષ્ટિ, શક્તિ અને પ્રવૃત્તિને મર્યાદિત કરનારું પહેલેથી જ
અને હજીયે છે એક બાજુથી બધી દિશામા વિચારસ્વાતંત્ર્યનો પવન ફૂ
હોય, અનેક ઉપયોગી પ્રવૃત્તિઓ દેશમા વિકસતી જતી હોય અને '
બાજુથી કોન્ફરન્સ એ સાથે તાલ મેળવી ન શકતી હોય તો સાચા ધ
વાળા કાયકર્તાને મૂંઝવણ થાય એવી મૂંઝવણ મેં શ્રી મોહનભાઈમાં અ
વાર નિખાલસપણે પ્રગટ થતી જોઈ છે

અત્રે એક બાબત ધ્યાનમા રાખવી ઘટે કે મોહનભાઈ વકીલ હ
પણ તેમની વકીલાત એવી ન હતી કે તેમને તેમની ઇ
પ્રમાણે કામ કરવાનો અવકાશ આપે આવક બહુ મર્યા
કૌટુમ્બિક આદિ પ્રશ્નો ઘણા, છતાં એમનુ ખમીર આશાવ
પ્રવૃત્તિશીલ અને કર્મઠ હતુ વળી એમની તબિયત પણ એટલી જ સ
થાક તો જાણે લાગે જ નહી કોઈકવાર જમ્યા પછી પણ જમવાનો પ્ર
આવે તો તેઓ પાછા ન પડે અને એમની નિષ્ઠા પણ એટલી પાકી '
કામ લીધુ એટલે એ પૂરુ કર્યે જ છૂટકો એમાં પછી ઊંઘ કે આ
જોવાનો જ નહીં તેથી જ તેઓ કોન્ફરન્સની બધી પ્રવૃત્તિમા પ્રત્યક્ષ ભ
લેતા અને પોતે રુચિ તેમ જ શક્તિ પ્રમાણે અમુક કામ હાથમા લઈ
પૂરા ખંતથી અને મહેનતથી પાર પાડતા જો કોઈ બીજા કાર્યકર્તા તે
ભેટી જાય અને તેની પાસેથી કામ લેવાનુ શક્ય હોય તો તેઓ તેને કો
ન્ફરન્સ સાથે સાંકળી એક યા બીજી રીતે તેની પાસેથી પણ કામ લેવા

માર્ગ મોકળો કરે. સદ્‌ભાગ્યે એમને સાથીઓ અને મિત્રો પણ સારા મળેલા સદ્‌ગત મોતીચંદભાઈ, મકનજીભાઈ અને મોહનલાલ ઝવેરી વગેરે એમના સાથીઓ. જ્યાં એમની મંડળી મળી કે ત્યા કાંઈક સર્જક વિચાર થાય જ અને કોઈ એક બીજાને પાછો ન પાડના ઉત્સાહિત જ કરે. આ વસ્તુ મેં મહાવીર જૈન વિદ્યાલયની મિટિંગોમા તથા કોન્ફરન્સ ઑફિસમાના મિલન પ્રસંગે અનેકવાર જોઈ છે.

મોહનભાઈની અંગત પ્રવૃત્તિ મુખ્યપણે સાહિત્યિક હતી અંગ્રેજી, હિન્દી, ગુજરાતી, પ્રાકૃત, અપભ્રંશ અને સંસ્કૃત આદિ ભાષાઓમા જ્યા જ્યાં તેમને જૈન સાહિત્ય, તત્ત્વજ્ઞાન કે આચાર વિશે જાણવાનુ મળે તે બધાંમાંથી તેઓ એકલે હાથે સગ્રહ કરે વાંચનાર પોતે, ભાષાન્તર કરનાર પોતે, પ્રૂફ જોનાર પોતે એમ પોતાની બધી કૃતિઓમાં અને બધાં લખાણોમા જે કાંઈ કરવુ પડ્યું છે તે બધુ લગભગ તેમણે પોતાને હાથે જ કર્યું છે કોન્ફરન્સ હેરલ્ડ અને જૈનયુગ, જે તે વખતે કોન્ફરન્સનાં મુખપત્રો હતાં, તેની ફાઈલો જોશો તો જણાશે કે એમાં મુખ્ય આત્મા એમનો જ રમે છે તેઓ મને ઘણી વાર વાતવાતમાં કહેતા કે 'લોકો લખાણોને જૂના ચોપડા ઉખેળનાર અને ઉકેલનાર તરીકે ગણી ટીકા કરે છે કે તમે હેરલ્ડ અને જૈનયુગમા આ બધુ નકામુ શુ ભરી રહ્યા છો?' પણ હવે અત્યારે તો સૌને સમજાય તેવુ છે કે મોહનભાઈનું પ્રવૃત્તિક્ષેત્ર અને કામ વિદ્વાનોને કેટલું ઉપયોગી છે અને તેનુ મૂલ્ય કેટલું સ્થાયી છે।

પોતાના સાહિત્યિક કામને માટે શ્રી મોહનભાઈને અનેક પ્રાચીન હસ્તલિખિત પ્રતો મેળવવી અને તપાસવી પડતી અને એ માટે કોર્ટમાં રજાઓ પડે કે તરત જ તેઓ એ કામમાં લાગી જતા, અને જરૂર લાગતા અમદાવાદ કે પાટણના જ્ઞાનભંડારો જોવા માટે પ્રવાસ પણ ખેડતા રજાઓનો ઉપયોગ આરામ માટે કરવાનો તો વિચાર જ શાનો આવે? ત્યારે તો ઊલટુ બમણા ઉત્સાહથી બમણું કામ કરે અને એમા એમને કદી પણ થાક કે કટાળો આવે જ નહીં અને એ કામમાં કંઈક પણ ઉત્તમ કૃતિ મળી આવે તો જોઈ લો આનદ. અહીં આવો એક પ્રસગ મને યાદ આવે છે

હું અને આચાર્ય જિનવિજયજી અમદાવાદમાં રહેતા હતા ત્યારે એક વાર શ્રી મોહનભાઈ જ્ઞાનભંડારો શોધવા માટે અમદાવાદ આવેલા એક દિવસ તેઓ ડેલાના ઉપાશ્રયનો ભંડાર જોવા ગયા બપોરના ગયેલા તે રાતના અગિયાર સુધી પાછા ન આવ્યા. અમે માન્યુ કે હવે તેઓ પાછા નહી

આવે અને શહેરમાં જ ક્યાંક સૂઈ રહેશે. અમે તો બધા સૂઈ ગયા. ત્યાં તો લગભગ અડધી રાતે શ્રી મોહનભાઈએ બારણાં ખખડાવ્યાં, અને અમને જગાડ્યા. અમે જોયું કે આટલા પરિશ્રમ પછી પણ એમનામાં થાક કે કંટાળાનુ નામ નહોતું ઊલટું આજે તો એ એવા ખુશ હતા કે ન પૂછો વાત! ખિલખિલાટ હસીને એ કહે: 'પંડિતજી! આજે તો તમને પ્રિયમાં પ્રિય એક કૃતિ મળ્યાના સમાચાર આપું તો મને શું જમાડશો? શું ઇનામ આપશો? કહો તો ખરા કે આપને અતિપ્રિય એવી કઈ કૃતિ મળી હશે?' મેં કહ્યું: 'મોહનભાઈ! એના ઇનામમાં તમને તમારા જ નામનુ મિષ્ટાન્ન જમાડીશું!' તે દિવસે મોહનથાળ બનાવ્યો હતો. પછી હુ આ કૃતિ શું હોઈ શકે એના વિચારમાં પડ્યો. ચાર-પાંચ મિનિટ વિચાર કરીને પછી મેં પણ સટોડિયાની જેમ તુક્કો લગાવ્યો, અને કહ્યું કે 'એ કૃતિ તે મહોપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજીનુ જીવન જેમાં થોડુંઘણુ પણ સંગ્રહાયેલું છે તે 'સુજસવેલી ભાસ' હોવી જોઈએ ' આ કૃતિનો થોડોક ભાગ પાટણમાંથી મળેલો. બાકીનો ભાગ મેળવવા અમે ખૂબ ઉત્સુક હતા અને મોહનભાઈએ એ જ કૃતિ શોધી કાઢી હતી. અમારા આનંદનો પાર ન રહ્યો.

આવા તો બીજા પ્રસગો પણ આપી શકાય, પણ અહીં એને માટે એટલો વખત નથી.

લોયમેન, વેબર, યાકોબી આદિ જર્મન વિદ્વાનોએ જૈન પરંપરા ને તેના સાહિત્યને લગતો ઇતિહાસ લખવાની પહેલ કરી. ફ્રેંચ અને અંગ્રેજી ભાષામા પણ જૈન પરંપરાને લગતા અધ્યયનનો પ્રારંભ થયો, પણ ભારતીય ભાષાઓમાં આધુનિક દૃષ્ટિએ અને સશોધક વિદ્વાનોને ઉપયોગી થાય એ પ્રકારના સાહિત્યિક ઇતિહાસનો અતિ અલ્પ પણ મહત્ત્વનો પાયો શ્રી મોહનભાઈએ નાખ્યો હવે તો એ દિશામા માગણી અને જિજ્ઞાસાને અનુરૂપ એવા નવીન પ્રયત્નો શ્વેતાંબર અને દિગંબર બન્ને પરંપરામાં થઈ રહ્યા છે, પણ તેમાં ય મોહનભાઈના "જૈન સાહિત્યના ઇતિહાસ"નું સ્થાન છે જ.

એમની મહતી કૃતિ, અને મારી ધારણા સાચી હોય તો, તેમની તબિયત ઉપર જીવલેણ ફટકો મારનાર કૃતિ એ તો 'જૈન ગૂર્જર કવિઓ' છે. એમણે તે ભારત જેવુ કામ એકલે હાથે કેવી રીતે સપન્ન કર્યું એ નવાઈ જેવુ લાગે છે, પણ જેણે જેણે તેમને એ કામ કરતા જોયા છે તેઓ જાણે છે કે એ કામમા તેમણે કેટલી શક્તિ, કેટલો સમય અને કેટલો

અંગત ખર્ચ અર્પિત કર્યો છે. એક રાતે મેં જોયું કે હુ તો સૂઈ ગયો છુ અને તેઓ બાર વાગ્યા પછી મારી સાથેની ચર્ચા પૂરી કર્યા બાદ જાગતા બેઠા છે. તેમની બીડી અને કલમ બન્ને સમાનગતિએ કામ કરતાં હતાં. બે વાગે તેઓ સૂતા સવારે મને કહ્યુ કે 'મારો રોજિંદો કાર્યક્રમ આ જ છે. દિવસે વચ્ચે વિક્ષેપ આવે, પણ રાતે નિરાકુળતા' એક વાર તેમની સાથે કોર્ટમાં ગયો, ત્યાંય જોયુ કે પ્રૂફો સાથે હતા, અને વખત મળે કે જોતા. મેં દાદર, ઘાટકોપર અને મુલુંદ એ સ્થળોમાં તેમને અનેક વાર કામ કરતા જોયા છે રાત રહે તો કામ લેતા આવે મેં પૂછ્યું 'આ ભાર શો?' તો કહે 'પરિશિષ્ટોનુ કામ ચાલે છે. ન કરું તો કરે કોણ? અને રહી જાય.'

અહીં સિંધી જૈન સિરીઝમાં પ્રસિદ્ધ થયેલ એમનુ અંગ્રેજી પ્રસ્તાવના-વાળુ વિશિષ્ટ સંપાદન 'ભાનુચંદ્ર-સિદ્ધિચંદ્ર' કોઈ પણ સ્કોલરનુ ધ્યાન ખેંચ્યા વિના રહે તેમ નથી એ યાદ રાખવુ ઘટે.

શ્રી મોહનભાઈની પ્રકૃતિ સારા કામમા કંઈક ને કંઈક ભાગ લેવો જ એવી હતી એમ કરવામાં તેઓ પોતાની મુશ્કેલીનો વિચાર ભાગ્યે જ કરે. તેઓની આવક મર્યાદિત અને કૌટુંબિક જવાબદારીઓ વધારે હતી, એનો નિર્દેશ મે પહેલાં કર્યો જ છે એક વાર એક કામનો વિચાર ચાલતો હતો ત્યારે તેઓ આવીને મને કહે, 'પંડિતજી, આમા હુ પાંચસો રૂપિયા આપીશ' હુ તો સાંભળી જ રહ્યો મેં કહ્યુ. 'મોહનભાઈ, તમારા માટે તો આ બહુ કહેવાય.' તો કહે કે 'મને આ કામ પસંદ છે. એટલે મારે એમાં ભાગ લેવો જોઈએ.' આમ શ્રી મોહનભાઈનુ જીવન અર્પણનુ જીવન હતુ એ જોઈ શકાશે

ગુજરાત સાહિત્ય પરિષદના અધિવેશન પ્રસંગે તેઓ કાંઈ ને કાંઈ જરૂર લખી મોકલાવે આચાર્યશ્રી જિનવિજયજીએ જૈન સાહિત્ય સંશોધક શરૂ કર્યું તો મોહનભાઈનો એમા સક્રિય સાથ શ્રી વાડીલાલ મોતીલાલ તેમના પ્રાથમિક મિત્ર, પણ તેમનો વિશેષ અને સ્થાયી પરિચય તો ઐતિહાસિક અને તટસ્થ દૃષ્ટિવાળા શ્રી નાથુરામ પ્રેમીજી તથા આચાર્યશ્રી જિનવિજયજી સાથે મહાવીર જૈન વિદ્યાલયના તેઓ પ્રથમથી જ એક કાર્યકર્તા, પણ તેમનું મુખ્ય પ્રવૃત્તિક્ષેત્ર પ્રાચીન સાહિત્યનો વર્તમાન યુગની દૃષ્ટિએ ઉદ્ધાર અને પરિચય કરાવવો તે. કોન્ફરન્સના એક જાગરુક કાર્યકર્તા તરીકેનુ તેમની સાથે સંકળાયેલું મારું સ્મરણ એ જેમ મારા માટે મધુર છે તેમ એ વિશે બીજાઓએ જાણવું એ તેથી ય વધારે રોચક અને ઉપયોગી

પણ છે. તેથી એનો ઉલ્લેખ જરા વિગતે કરું છું. આની પાછળ દૃષ્ટિ એ છે કે કૉન્ફરન્સના અત્યારના નવીન કાર્યકર્તાઓ અને હવે પછી આવનાર પેઢીના કાર્યકર્તાઓ કૉન્ફરન્સની પ્રવૃત્તિના એક અને મારી દૃષ્ટિએ મહત્ત્વના અંગથી પરિચિત રહે અને તે દિશામાં પ્રાપ્ત થતાં કર્તવ્યોને બરાબર સમજે. વળી કૉન્ફરન્સની એ પ્રવૃત્તિનુ બીજ ગમે ત્યારે વવાયુ પણ અત્યારે એનાં જે પરિણામો આવ્યાં છે અને ઉત્તરોત્તર વિકસતાં દેખાય છે તેને બધા સમજદાર સમજી લે બનારસ હિન્દુ યુનિવર્સિટીમાં જૈનચૅર સ્થાપવાના વિચારનુ બીજ તો ૧૯૧૯ની કલકત્તા કોંગ્રેસની બેઠક વખતે રોપાયેલું, પણ ફણગો ફૂટવાનો સમય ૧૯૩૦ પછી આવ્યો શ્રી મોહનભાઈએ અમદાવાદમા એક વાર મને પૂછ્યુ, કે ‘ તમે આ બાબત તટસ્થ કેમ છો ? ’ મેં કહ્યુ. ‘ કૉન્ફરન્સના મંત્રીઓ અને કાર્યકર્તાઓ બહુ ભલા છે. પં માલવિયજી જેવાના પ્રભાવમાં તણાઈ અમુક વચન આપી દે છે, પણ કાશીની સ્થિતિ તેઓ નથી જાણતા ’ મોહનભાઈના આગ્રહથી મેં કહ્યું કે ભલે પૈસા મોકલાવી દો, પણ આ શરતો સાથે સૂચવો એમણે એ શરતો નોંધી અને મુબઈ જઈ બનારસ સાથે પત્રવ્યવહાર કર્યો શરતો લગભગ સ્વીકારાઈ. હવે જૈન અધ્યાપક નિયત કરવાનો પ્રશ્ન હતો. એક ભાઈને ત્યાં મોકલ્યા, પણ ચૅરનુ તંત્ર ડામાડોળ થઈ ગયું હુ પોતે ગુજરાત વિદ્યાપીઠ છોડી અથવા કહો કે ગુજરાત છોડી બહાર જવા પ્રથમથી જ તૈયાર ન હતો, પણ કટોકટી આવતા ૧૯૩૩ના જુલાઈમા હુ કાશી ગયો. કાશી જવા માટે હુ તૈયાર થયો તેની પાછળ બળ હતુ કૉન્ફરન્સનુ અને કૉન્ફરન્સ એટલે મારી દૃષ્ટિએ તે વખતે સજીવ કાર્યકર્તા બે મોહનભાઈ એક દેસાઈ અને બીજા ઝવેરી. એમણે મારા માટે બધી વધારાની સગવડ કરી આપવાનુ આપમેળે બીડું ઝડપ્યુ. કાશીનુ તંત્ર તો તરત ગોઠવાયુ, પણ તેનાં દૂરગામી સુપરિણામો જે આવ્યા છે તેનું યથાવત્ મૂલ્યાંકન કરનાર અહીં કોણ છે તે હું નથી જાણતો

આની લાંબી કથાનો અત્યારે સમય નથી, પણ સક્ષેપમા નોંધ લેવી અસ્થાને નથી. છેલ્લાં ૨૩ વર્ષમા કાશીમાં જે અધ્યયન–અધ્યાપન, લેખન, સશોધન અને પ્રકાશનની પ્રવૃત્તિ થઈ છે તે જૈન–ચૅરને આભારી છે. એને લીધે ભણનાર તો કેટલાક આવ્યા અને ગયા પણ તેમાથી કેટલાકની યોગ્યતા અને પદવી ગણનાપાત્ર છે કેટલાક જૈન દર્શનના આચાર્ય થયા તો કેટલાક સાથે સાથે એમ એ. અને પી એચ ડી. પણ એમાંથી પાચેક તો પ્રોફેસરના ઉચ્ચ પદ ઉપર પ્રતિષ્ઠિત છે કાશી જૈન–ચૅરની ભાવનાએ કેટલાક

અસામ્પ્રદાયિક માનસ ધરાવનાર પણ જૈન તત્ત્વજ્ઞાન અને સાહિત્યનો ઉત્કર્ષ ઇચ્છનાર પંજાબી ભાઈઓને પ્રેર્યા અને ૧૯૩૭થી શ્રી પાર્શ્વનાથ વિદ્યાશ્રમની સ્થાપના થઈ. આગળ જતાં જૈન કલ્ચરલ રિસર્ચ સોસાયટી સ્થપાઈ. આમ જૈન-ચેર અધ્યાપનનુ કામ પૂરું પાડે, પાર્શ્વનાથ વિદ્યાશ્રમ વિદ્યાર્થીઓને રહેવા-ખાવા-પીવા આદિની સગવડ પૂરી પાડે, વિશિષ્ટ પુસ્તકાલયની સગવડ આપે અને કલ્ચરલ રિસર્ચ સોસાયટી સુનિષ્ણાત વિદ્વાનોના ચિંતન-લેખનને મૂર્ત રૂપ આપે આ રીતે આ ત્રણેય અંગો એવી રીતે સંકલિત થયાં છે કે તે એકબીજાના પૂરક અને પોષક બની માત્ર જૈનપરંપરાની જ નહિ, પણ ભારતીય-અભારતીય વિદ્વાનોની નવયુગીન અપેક્ષાને અમુક અંશે સંતોષી રહ્યાં છે.

હું અત્યારે ત્યાની જે સંસ્કૃત, હિન્દી અને અંગ્રેજીમા પુસ્તકો અને પત્રિકાઓ પ્રસિદ્ધ થયાં છે અને જે ઉચ્ચ કક્ષાના વિદ્યાવર્તુલમા આદરપૂર્વક વંચાઈ રહ્યાં છે તેની યાદી આપવા નથી બેઠો. આટલુંય સ્મરણ આપવાનો મારો ઉદ્દેશ એટલો જ છે કે શ્રી મોહનલાલ દેસાઈની અને ઝવેરીની અનિવાર્ય પ્રેરણા ન હોત અને કૉન્ફરન્સે મારી અસાપ્રદાયિક વિદ્યાવૃત્તિનો ઉપયોગ કરવાની ઉદારતા પૂરી રીતે દાખવી ન હોત તેમ જ ચેરને અંગેની જરુરિયાતોની માગણીને સર્વાનુમતિએ વધાવી લીધી ન હોત તો હું કાશીમાં ગયો જ ન હોત, ગયો હોત તો સ્થિર થયો ન હોત અને ક્રમે ક્રમે ત્યા જે વિકાસ થયો છે તેની શકયતા પણ ભાગ્યે જ આવી હોત

આ ટૂકું પણ આવશ્યક સ્મરણ એ સૂચવે છે કે કોન્ફરન્સ સાથે અને તે દ્વારા શ્રી મોહનભાઈ સાથે મારો શો અને કેવો સબધ રહ્યો છે. જો આટલું પણ સ્પષ્ટ થયું હોય તો હવે એ કહેવાની જરૂર નથી રહેતી કે કૉન્ફરન્સ દ્વારા તૈયાર કરાવેલ સદ્‌ગત મોહનભાઈના તૈલચિત્રને ખુલ્લું મૂકવાના ઔપચારિક વિધિમાં મારું શું સ્થાન છે.

તૈલચિત્રના અનાવરણ પ્રસગે તૈલચિત્રમા સમાયેલ ગર્ભિત અર્થ જણાવવો અને એ દ્વારા કોન્ફરન્સની પ્રવૃત્તિનું દિશાસૂચન કરવુ એને હુ મારી આવશ્યક ફરજ સમજુ છુ એ ફરજમાંથી ચૂકુ તો મારો અહીં આવવાનો ખાસ અર્થ મારી દૃષ્ટિએ રહે જ નહિ. તૈલચિત્ર એ તો પ્રતીક છે. એ પ્રતીક વિદ્યોપાસના, સાહિત્યસેવા અને નિષ્ઠાનુ છે પ્રતીકની કોઈ સ્વતંત્ર અને નિરપેક્ષ પ્રતિષ્ઠા હોતી જ નથી. તેથી પ્રતીક દ્વારા આપણે મૂળ વસ્તુને સમજવા અને તે દિશામા ઘટતુ કરવા પ્રવૃત્ત થઈએ તો જ સમારંભ

એ માત્ર સમારંભ ન રહેતાં એક કાર્યસાધક પગલું બની રહે.

સામાજિક સુધારણા અને બીજા ફેરફારો કરાવવાની બાબતમાં કૉન્ફરન્સે કરવા જેવું હોય તો મુખ્યપણે અત્યારે એ છે કે વહેમી અને ખર્ચાળ પ્રથાઓના ભારથી કચડાતા મધ્યમ વર્ગને એ જાળમાંથી મુક્તિ અપાવે એવુ વાતાવરણ તૈયાર કરવુ. એ સિવાયના બીજા સુધારા ને ફેરફારની બાબતમા આજની સામાજિકતા જે રીતે ઘડાઈ રહી છે અને દેશ–વિદેશનાં બળો એને ઘડવામાં જે રીતે કામ કરી રહ્યા છે તે જોતાં એ નિશ્ચિત છે કે જૈનસમાજ પોતાનુ સામાજિક જીવન આપમેળે જ એ પરિવર્તન અને સુધારણાને અનુકૂળ કરી લેવાનો. એમ કર્યા વિના એની બીજી કોઈ ગતિ જ નથી. પરંતુ શિક્ષણ અને સાહિત્યનો એક એવો આગવો પ્રદેશ છે કે જે બાબતમાં કૉન્ફરન્સે ઘણુ કરવા જેવું છે હું ધાર્મિક અને તત્ત્વજ્ઞાનના ચાલુ શિક્ષણની કે તેવુ શિક્ષણ આપે તેવા શિક્ષકો તૈયાર કરવાની વાત નથી કહેતો. એ કામ ઉપાશ્રયો અને મહેસાણા જેવી પાઠશાળાઓ મારફત ચાલી રહ્યું છે અને એમા અનેક મુનિઓ તેમ જ ગૃહસ્થોનો સહયોગ પણ છે. હું જે શિક્ષણની વાત કહેવા ઇચ્છુ છુ તે ઉચ્ચ ભૂમિકાના સર્વગ્રાહી શિક્ષણની વાત છે. આજે શિક્ષણ વ્યાપક બનતુ જાય છે. એનુ ઊંડાણ પણ ઉચ્ચ ભૂમિકાએ વધતુ જાય છે મહાવિદ્યાલયો અને વિશ્વવિદ્યાલયોની સખ્યા વધતી જાય છે. ઉચ્ચ અને ઉચ્ચતર અધ્યયનની માગણી વધતી જાય છે, અને એ માગણીને સતોષે એવા વિદ્યાર્થીઓની સંખ્યા પણ ઠીક ઠીક વધતી જાય છે તેથી આ સમય આપણા માટે બહુ અનુકૂળ છે. જો કૉન્ફરન્સ ધર્મ અને તત્ત્વજ્ઞાનના ઉચ્ચ ભૂમિકાસ્પર્શી શિક્ષણની દૃષ્ટિએ કાંઈક કરે તો એમા એને જશ મળે તેમ છે.

આ કામના મુખ્ય બે ભાગ છે (૧) તૈયાર મળે એવા સુનિષ્ણાત કે નિષ્ણાત વિદ્વાનો દ્વારા વિષયવાર સાહિત્ય તૈયાર કરાવવુ અને સાથે સાથે મહાવિદ્યાલયો કે વિશ્વવિદ્યાલયોમાં પૂરી યોગ્યતાથી કામ કરી શકે એવા થોડા પણ નિષ્ણાતો તૈયાર કરવા–કરાવવામાં શક્તિ ખરચવી. (૨) અનેક વિષયનું પ્રાચીન સાહિત્ય આપણે ત્યા છે. તેમાથી પસંદગી કરી વિશિષ્ટ વિદ્વાનો મારફત તેનું આધુનિક દૃષ્ટિએ સંપાદન–પ્રકાશન કરવું એ કૉન્ફરન્સની પ્રવૃત્તિનુ એક અંગ હોવું જોઈએ પુસ્તકો અનેક પ્રસિદ્ધ થાય છે, પણ જ્ઞાનની નવી પેઢીને સંતોષે એવાં બહુ વિરલ પ્રસિદ્ધ થાય છે પ્રાચીન જૈન સાહિત્યનુ વિશ્વસાહિત્યમાં યોગ્ય મૂલ્યાંકન થાય ને માટે નવી દૃષ્ટિએ

યોગ્ય હાથે તેના સંપાદનને બહુ અવકાશ છે, અને કૉન્ફરન્સને એમાં જશ મળે તેમ પણ છે.

એક બાબત ધ્યાનમાં રહે કે દેશ-વિદેશના કોઈ પણ ઉચ્ચ કે ઉચ્ચતર વિદ્વાનોનો, ધર્મ અને નાત-જાતના ભેદભાવ વિના આપણે ભલે ઉપયોગ કરીએ પણ એ પાછળ દૃષ્ટિ એ રહેવી જોઈએ કે જૈન સમાજ પોતામાંથી જ એવા સુનિષ્ણાતોને તૈયાર કરે અને તૈયાર હોય તેને યથાસ્થાન ગોઠવી પૂરતુ કામ આપે, જેથી શિક્ષણ અને સાહિત્યની બાબતમાં બધાં જ સાર્વજનિક ક્ષેત્રે સમાજ પરાવલંબી યા શરણાગત જેવો ન રહે.

અત્યારે તો આવું કામ કરવા માટે પુષ્કળ સામગ્રી ઉપલબ્ધ છે જૂની વસ્તુઓનાં સર્વત્ર નવેસરથી મૂલ્યાંકનો થવા લાગ્યા છે એક અમેરિકન પ્રોફેસર પ્રાચીન ગુજરાતી ભાષાના શાલિભદ્રરાસનુ સંપાદન કરવા પ્રેરાય તે શું સૂચવે છે? હું તો જોઉ છુ કે આજે હેમચંદ્ર ફરી જીવતા થાય છે. આજે સારા સાહિત્યની અને સારા વિદ્વાનોની ખોટની ઘણી વાતો થાય છે, પણ આજે હવે આ ખોટ એટલી મોટી નથી જો જોવા ઇચ્છો તો સારું જૈન સાહિત્ય અને જૈન સાહિત્યના ઉચ્ચ કોટિના વિદ્વાનો પણ આપણે ત્યાં છે જ—પછી ભલે એ પ્રમાણમા કદાચ ઓછા હોય, પણ આ રીતે જોવા-જાણવાની કોને પડી છે?

સદ્‌ગત શ્રી મોતીચંદભાઈના સ્મારકનું ફંડ થયેલુ છે, એનો ઉપયોગ પ્રાચીન સાહિત્યના નવા ગ્રંથોના સંશોધન-સંપાદન પાછળ થવો હજુ બાકી છે ફંડ એકઠું કરવુ એક વાત છે, એનો ઉપયોગ કરવો એ બીજી વાત છે. એ માટે તો દૃષ્ટિ અને ઉદારતા બન્ને જોઈએ

ભારતના નાક સમા મુંબઈનો જ વિચાર કરો, કે અહીં જૈન સાહિત્યના કેન્દ્ર જેવુ કંઈ આપણે ઊભુ કર્યું છે? કોઈને જૈન તત્ત્વજ્ઞાન, સાહિત્ય કે કલાના વિષયમા મુંબઈમા જાણવુ હોય તો એ વિષયનો નિષ્ણાત—એક્સ્પર્ટ કહી શકાય એવો એક પણ વિદ્વાન અહીં છે ખરો?

વળી આજે માનવતા, રાષ્ટ્રીયતા અને કેળવણીનો વિકાસ જે રીતે થઈ રહ્યો છે તેનો પણ આપણે વિચાર કરવો જોઈએ આમા વિકાસ બે માર્ગે થઈ શકે એક તો સમાજને ઉચ્ચ સંસ્કારો આપવા; અને બીજે અનૈતિકતાનો ત્યાગ કરવો. અનૈતિક ધન લઈને પુસ્તક, મંદિર કે મૂર્તિ કરવાં એ ભારતીય સંસ્કૃતિને શોભે નહીં, જૈનોને તો એ મુદ્દલ શોભે નહી.

અનેકાંતનો વિકાસ કરવાની અને એના મર્મને જીવનમાં ઉતારીને સમભાવ, સહિષ્ણુતા અને ઉદારતા કેળવવાની જરૂર છે

સમાજમા આવા સસ્કારોનું સિંચન કરવામાં, ધર્મ અને તત્ત્વજ્ઞાનના ઉચ્ચ શિક્ષણનો પ્રચાર કરવામાં અને ઉચ્ચ કોટીનુ સાહિત્ય પ્રગટ કરવામાં કોન્ફરન્સ ઘણુ ઘણુ કરી શકે એમ છે સદ્દગત શ્રી મોહનલાલ દેસાઈએ આ બાબતમાં કોન્ફરન્સ દ્વારા પહેલ કરી છે, અને આપણે માટે કર્તવ્યની દિશા સૂચવી છે. હવે એ દિશાને વિકસાવવા અને સમૃદ્ધ કરવામાં જ એમનુ ખરું સ્મરણ રહેલું છે એમ સૌ કોઈ સ્વીકારશે

આટલા પ્રાસંગિક નિવેદનને અંતે સદ્દગત શ્રી મોહનભાઈની નિષ્ઠા અને સાહિત્યસેવાને અંજલિ આપી, મને શાંતિપૂર્વક સાંભળવા બદલ આપ સૌનો આભાર માની હુ મારું વક્તવ્ય પૂરું કરું છુ.

—જૈન, ૨૧ જુલાઈ ૧૯૫૬

---

* તા ૧૫-૭-૧૯૫૬ ને રવિવારના રોજ સદ્દગત શ્રી મોહનલાલ દ. દેસાઇના તૈલચિત્રની અનાવરણવિધિ પ્રસગે આપેલું વક્તવ્ય

એક બીજા મિસ્ત્રી

[૨૨]

ત્રીજા અંકમાં ડૉ. હરિપ્રસાદે મિસ્ત્રી સોમનાથ ભૂધર વિષે માહિતી આપી છે આજે તેવા જ એક બીજા મિસ્ત્રીની માહિતી પ્રસ્થાનના વાચકોને ભેટ કરવામાં આવે છે. આ ઉપરથી આપણા દેશ અને જાતિનો પ્રાચીન વારસો તેમ જ એક વિષયની સતત લગની અને ઊંડાણ જે દરેકના જીવનમાં આવશ્યક છે, તે જોવામા આવશે.

છેલ્લાં બે વર્ષ થયાં આ મિસ્ત્રીનો પરિચય મને થયો અને તે અનેકવાર. વિશેષતા એ હતી કે એ મિસ્ત્રી જ્યાં અત્યારે રહે છે, અને કામ કરે છે ત્યાં જ હુ રહેતો હતો. આખા દિવસમા ઘણીયે વાર સાથે બેસુ અને તેઓની કારીગરી તથા પ્રાચીન અનુભવો વિષે પૂછુ, પણ તે વખતે આ પરિચય લખવાની કલ્પના ન હતી તેથી કેટલીક બાબત રહી ગયેલી છે. હમણાં એક મિત્ર મારફત પુછાવી જાણી લીધી. તે ઉપરથી આ ટૂંક પરિચય લખું છુ

મિસ્ત્રીનુ નામ નારાયણદાસ તેમના બાપનુ નામ ઘેલાભાઈ. તે જાતે વાંઝા સુતાર અને અસલથી જામનગરના રહેવાસી છે. નારાયણદાસની ઉંમર હમણાં ૭૦ વર્ષની છે. પરિવારમા તેઓને ફક્ત એક પુત્રી છે. જે જૂનાગઢ તરફ રહે છે એટલે અત્યારે તો વૃદ્ધ મિસ્ત્રી એકલા જ છે તેઓને હૂંફ હોય તો ફક્ત પોતાની કારીગરીની જ મેં વાતચીતમાં ક્યારેય તેઓની બીજા પુત્રઘેલા લોકોની પેઠે છોકરો ન હોવાની ફરિયાદ સાંભળી નથી. જ્યારે બેસો ત્યારે તેઓ પાસેથી કારીગરીની પ્રસન્ન વાતો સાભળો.

આઠ વર્ષની ઉંમરે નારાયણદાસે પોતાના બાપ પાસે વાસલો, કરવત અને સારડીનો પાઠ શરૂ કરેલો ૧૩ વર્ષની ઉમર થતા તેઓએ એક બીજા મિસ્ત્રીને ગુરુ બનાવ્યા એ મિસ્ત્રી જાતે ગુજર સુતાર—અને નામે કેશવજી કાનજી, જામનગરના જ રહેવાસી. આ મિસ્ત્રી પાસે નારાયણદાસે નકશીનુ કામ શીખવા માડ્યુ. આ કામ તેઓ ૨૩ વર્ષની ઉમર સુધી શીખતા રહ્યા. અને પાચ વર્ષની પૂર્વ તૈયારી તેમ જ દશ વર્ષનો સતત યોગ, કુલ પંદર વર્ષના અભ્યાસને અતે તેઓ નકશીમા નિષ્ણાત થયા, અને જીવનક્ષેત્રમા પગ

મૂક્યો તેઓએ પોતાની પ્રથમ કૃતિ જામનગરમાં વ્રજનાથ મહારાજની હવેલીમાં બનાવી. એ કૃતિ તે રૂપાનો હિંડોળો, અને સોનાનું પારણું. આ કામ કરવામા તેઓને માસિક ૧૫ રૂપિયા પગાર મળતો. ત્યાર બાદ રાજકોટ દરબાર માટે ૬ રૂપાની ખુરશીઓ, ૧ રૂપાનો કોચ અને એક રૂપાનો છત્રપલગ માસિક રૂા ૩૨ના પગારે બનાવ્યા. ત્યાર બાદ જામનગરમા જ પુરુષોત્તમ જસરાજ લઠેટવાળાના મદિરમાં રૂપાનાં કમાડો, રૂપાનાં સિંહાસન અને ઠાકુરજીના બે લાકડાના ઘોડા અને બે હાથી બનાવ્યા. ત્યાર પછી જૂનાગઢ દરબારમાં, જસા જામના દરબારમા, કિસનગઢ દરબારમાં, સોના રૂપા અને લાકડાના નકશીવાળા અનેક નમૂના તેઓએ બનાવ્યા. હાથીદાંત ઉપર પણ તેઓએ ઘણુ કામ કર્યું છે કદાચ આજે આમાંના ઘણા નમૂનાઓ વિલાયતમા અમીરોના મહેલો શોભાવતા હશે મિસ્ત્રીના લાકડા ઉપરના નકશીકામના નમૂના તરીકે અમદાવાદ સ્વામીનારાયણના મંદિરમાં ગણપતિની મૂર્તિ છે. જૈનમદિરો પણ તેઓની કૃતિથી ભૂષિત છે.

આજે જિદગીના છેવટના ભાગમાં સમગ્ર અનુભવના પરિપાક રૂપે પોતાની કારીગરી એ—મિસ્ત્રી એક જૈન મદિરમાં દાખલ કરે છે આ મંદિર લાકડાનુ અને તેનુ ખોખુ રૂપાનુ છે. મંદિર કરાવનાર જામનગરના જાણીતા ગૃહસ્થ શેઠ કેશવજી માણેક છે એ શેઠ જેવા અર્થરક્ષક મે બહુ ઓછા જોયા છે, છતા તેઓ મને વારવાર કહેતા કે આવા વૃદ્ધ અનુભવી મિસ્ત્રીની કારીગરી ગમે તેમ કરીને પણ સાચવી જ લેવી અને એ જ દૃષ્ટિથી માગ સ્વીકારી શેઠે આ મંદિરનું કામ કરાવવા માડ્યું છે. માત્ર શેઠ પોતે જ એકલા ખતીલા નથી પણ તેઓનું આખું કુટુબ આ મદિરની રચના માટે મમત્વ ધરાવે છે. તે એટલે સુધી કે આખુ કુટુંબ આ મિસ્ત્રીને વૃદ્ધ પિતારૂપે અગર વૃદ્ધ ગુરુરૂપે માની તેઓની બધી પરિચર્યા ઉઠાવે છે.

મિસ્ત્રીને માસિક રૂા. ૧૨૫ મળે છે અને ખાનપાન વગેરેની બધી પૂરી સગવડ. પણ શેઠ જેવા કુશળ તેવા મિસ્ત્રી કૃતજ્ઞ. ગયા વર્ષમાં મિસ્ત્રીને ન્યૂમોનિયા થયો, શેઠે પોતાના પિતા જેટલી જ સેવા કરી. એમાં સ્વઉપકાર અને પરોપકાર બન્ને હતા મંદિરનું કામ હજી ચાલે જ છે શેઠના સમગ્ર કુટુંબની સેવાથી મિસ્ત્રી બચી ગયા. એકવાર મેં પૂછ્યું, 'દાદા ! પગાર શો લો છો ?' તેઓનો ઉત્તર એક ગંભીર તપસ્વી જેવો હતો 'માસિક રૂા. ૧૨૫ છે, પણ આ કુટુબે હમેશાં, અને ખાસ કરીને બીમારીમાં જે સેવા કરી છે તે જોતાં હું ઋણ જ ફેડી શકતો નથી.' ૧૯૫.

વાડાનાં પ્રસિદ્ધ મંદિરો બનાવનાર કારીગરોની 'અનુપમાદેવી'એ સવારે શીરો ખવડાવવાની અને તાપણી તપાવવાની સેવા ઇતિહાસમા વાંચેલી ઉક્ત શેઠને ત્યાં આ મિસ્ત્રીની એવી જ સેવા નજરે જોઈ છે

મિસ્ત્રીની આટલી વૃદ્ધ ઉંમરે જે કાર્યતત્પરતા છે તે અચબો પમાડે તેવી છે રાતના બાર બાર વાગ્યા સુધી અને ઘણી વાર તો જ્યારે ઊંઘ ઊડે ત્યારે નકશા જ ચીતરતા હોય આગળ કરવાના નમૂનાઓ વિચારી કાગળ ઉપર ગોઠવતા હોય સવારે શેઠને બતાવે અને મન મળ્યે કે વળી આખો દિવસ એ ભોંયરામાં પોતાના જીવનસાથી કીમતી ઓજારો સાથે કારીગરીનો યોગ સાધવા મડી જાય. મેં ઘણી વાર જોયુ કે એ કામની ઝંખનામાં મિસ્ત્રી દૂધ અને ભોજન સુદ્ધાંનો વખત ભૂલી જાય

તેઓનું મંદિર લગભગ પૂરું થવા આવ્યું છે. બધી કુશળતા એમાં જ રેડવાનો મિસ્ત્રીનો ઇરાદો મેં ઘણીવાર તેઓને મોઢેથી સાંભળ્યો છે, પણ એ વ્યવહારકુશળ શેઠ ઘણીવાર કહે છે કે બહુ જ ઊંડાણમા ઊતરવા જતાં રખે આ છેલ્લી કૃતિ જેવું મંદિર મિસ્ત્રીના વૃદ્ધત્વને લીધે અધૂરું રહી જાય. મિસ્ત્રી મને કહેતા કે કોઈ શીખતુ જ નથી, નહીં તો જે ઇચ્છે તેને શીખવાડું છુ. જે આવે છે તે થોડા દિવસમા જ ધીરજ છોડી ચાલતો થાય છે. ખરેખર આવી કારીગરી શીખવા ઇચ્છનારમાં સ્થિરતા અને સેવાપરાયણતા હોવાં જ જોઈએ, નહિ તો આ યોગ સાધી શકાય નહીં.

મિસ્ત્રીની કારીગરીના ફોટાઓ લેવા જોઈએ અને પ્રસ્થાનના પાઠકોને ભેટ ધરવા જોઈએ એ કામ હજી બાકી જ છે મિસ્ત્રીની અનેક નાની-મોટી કૃતિઓ જે જે મંદિરોમાં, રાજમહેલોમા અને ગૃહસ્થોને ત્યા રહી હશે તે જોવાલાયક છે. જે માણસ આ કલાનો ખરો શોખી હોય તે એકતરફી પોથાની માથાફોડમાંથી મુક્તિ મેળવી આવા મિસ્ત્રીની ઉપાસના કરે તો હજીયે ખરી પ્રાચીન વસ્તુ સાચવી શકાય તેમ છે અત્યારે જામસાહેબ અને અન્ય રાજાઓ બહુમૂલ્ય નમૂનાઓથી જ પોતાનાં ભવનો શણગારે છે. પોતાના દેશનો જૂનો, કીમતી અને સસ્તો વારસો આમ નષ્ટ થાય છે એ જાગૃત કલા-ભક્તોને માટે દુ:ખદ બીના છે.

—પ્રસ્થાન, ફાગણ ૧૯૮૨

સ્વ. લાડુબહેનની જીવનરેખા

[૨૩]

પાલણપુરવાસી જૈન તો એવો ભાગ્યે જ હશે કે જે લાડુબહેનને ન જાણતો હોય બીજા પણ ઘણાં શહેરોના અનેક જૈનો અને ખાસ કરી વિદ્યાપ્રેમી જૈનો લાડુબહેનને જાણે છે, એવો મારો અનુભવ છે થોડા દિવસ પહેલા એ સુશીલા બહેનનુ અવસાન અણધારી અને અનિષ્ટ રીતે થયુ એ બીના જેઓ તેમના પરિચયમા આવ્યા હોય તેઓને દુ:ખ આપે તેવી છે એ બહેન વિદ્યાપ્રિય, ચારિત્રશીલ અને સેવાપરાયણ હોવા છતાં તેઓએ નદીમા ડૂબી આત્મઘાત કરવાનો વિચાર કેમ કર્યો હશે એ પ્રશ્ન એક કોયડા જેવો લાગે છે, પણ છેલ્લા સવાવર્ષ થયાં જેઓ તેમના સહજ પણ પરિચયમા આવ્યા હતા તેઓને એ પ્રશ્નનો ઉકેલ તેટલો જ સહેલો છે સવાવર્ષ થયા તેઓને ચિત્તભ્રમ જેવું થયેલુ. શરીર અને મન દિવસે દિવસે ખૂબ જ નબળાં પડતા ગયા અને ખાસ કરી માનસિક સ્થિતિ ઉપર તેમનો કાબૂ બહુ જ ઓછો થઈ ગયો સંકલ્પબળ, નિશ્ચયશક્તિ, અને દૃઢતા જે એમનાં જીવનમા ખાસ તત્ત્વો હતા તે બહુ જ ઘટી ગયાં તેની અસર શરીર ઉપર ખૂબ થઈ તેમને ક્ષણે ક્ષણે એમ જ લાગતુ કે હુ હવે જગત માટે ઉપયોગી નથી, બલ્કે બોજારૂપ છુ આ આત્મગ્લાનિ દૂર કરવાના અનેક પ્રયત્નો તેમના પરિચિત ગુણાનુરાગીઓએ અને તેમના કુટુબીઓએ કર્યા, પણ નિષ્ફળ લગભગ છેલ્લા બે માસ થયા તેમની માનસિક સ્થિતિ સુધરે એવા હેતુથી શેઠ અમરચંદ તલકચંદના પુત્રવધૂ ગંગાસ્વ મણિબહેન મુબઈથી અમદાવાદ આવેલાં એક માસ થયા તો તેઓ સત્યાગ્રહ આશ્રમની નજીક, જ્યા શ્રી ગગાબહેન બાલાભાઈ મંછાચંદ રહેતા હતા ત્યાં જઈ રહેલા મણિબહેનની માફક ગંગાબહેન પણ લાડુબહેનનાં સહૃદય ધર્મબહેન અને વળી ત્યા જઈ રહેવામાં આશ્રમનુ પ્રસન્ન વાતાવરણ, મહાત્માજીનુ પ્રસન્ન વાતાવરણ, મહાત્માજીનુ પ્રવચન અને સેવાકાર્ય એ બધાનો લાભ મળે અને કદાચ લાડુબહેનની માનસિક સ્થિતિ સુધરે એવો ઉત્તમ હેતુ હતો પણ ધાર્યું કોનુ થાય છે? બીજી બધી બાબતમા સાવધાન અને શાણપણ વાપરનાર એ બહેનને પોતાના જીવન વિષે નિરાશાનો ઝંઝામા

ઊંડો ભ્રમ હતો તે છેવટે જીવ લઈને જ ગયો એ ભ્રમે પહેલાં પણ અનેકવાર તેમને આત્મઘાત કરવા પ્રેરેલાં, પણ ભેદ ખુલ્લો પડી જવાથી તે બધા પ્રયત્નો નિષ્ફળ ગયેલા જ્યારે કાળ આવે છે અને અવશ્ય ભાવિ હોય છે, ત્યારે સાવધાન પણ ભૂલી જાય છે. તેઓના જીવનની છેલ્લી રાતે પાસે રહેનાર અને સાવધાન થઈ સભાળ રાખનાર દરેકને ભૂલવ્યાં બીજાઓ ઊંઘતાં હતાં ત્યારે એ બહેને નદીનુ છેવટનુ શરણ લીધુ

નિરાશાના ભ્રમ સિવાયની એ બહેનની બધી મનોવૃત્તિઓ કેટલી શુદ્ધ અને સમભાવશીલ હતી તેની સાક્ષી તે બહેનનો મળી આવેલો છેલ્લો પત્ર જ છે. આ પત્ર જ્યારે બીજે દિવસે મહાત્માજીને આપ્યો ત્યારે તેઓએ વાંચીને કહ્યુ કે ‘પત્ર પૂરો સમભાવ અને ડહાપણથી ભરેલો છે આટલી જાગૃતિથી પત્ર લખનાર એ બાઈ કદાચ જીવતી પણ મળી આવે ’ પણ એ આશા વ્યર્થ હતી. છેવટ તેઓનુ મૃત શરીર નદીમાંથી મળી આવ્યુ* અને તેને અગ્નિસંસ્કાર કરવામાં આવ્યો. અવસાનને લગતી આટલી ટૂંક હકીકત આપ્યા પછી તેઓના જીવનનો થોડો પરિચય અસ્થાને નહિ ગણાય.

લાડુબહેનને બાલ્યાવસ્થામા જ વૈધવ્ય પ્રાપ્ત થયેલુ આજે તેઓની ઉમર ચાળીસ વર્ષથી ઓછી ન હતી તેઓના શ્વસુરપક્ષનુ પારેખ કુટુંબ જાણીતુ છે. તેઓનો પિતૃપક્ષ પણ તેટલો જ ખાનદાન છે શ્વસુર અને પિતૃ એ બંને પક્ષની લાડુબહેન પ્રત્યે ખૂબ મમતા હતી. એટલુ જ નહિ, પણ એ બહેનમા કેટલીક એવી અસાધારણ વિશેષતાઓ હતી કે જેને લીધે એકવાર તેણીના પરિચયમા આવનાર તેણીના ગુણથી મુગ્ધ જ બની જાય એ વિશેષતાઓમાં વિનય અને સ્વાર્પણવૃત્તિ મુખ્ય હતા લાડુબહેનના વિચારમાં, વ્યવહારમાં અને ભાષણમાં, ઉદ્ધતપણુ કદી પણ જોયુ હોય એવી એક પણ વ્યક્તિ મળવી દુર્લભ છે પોતાથી નાના હોય કે મોટા હોય, નોકર હોય કે મજૂર હોય, દરેક સાથે મૃદુતાથી અને હસતે ચહેરે જ

---

*લાડુબહેનનુ આ મૃત શરીર, તેમના મૃત્યુના બીજા દિવસે બપોરના વખતે ઉસમાનપુરાની નીચે નદીમા વહેતુ દૃષ્ટિગોચર થયુ હતુ અને તેને નદીના જબ્બર પ્રવાહમાથી કાંઠે આણવાનુ વીરતા અને સાહસભરેલું ભારે કામ, પુરાતત્ત્વ મંદિરના મંત્રી ભાઇશ્રી રસિકલાલ પરિખના લઘુબંધુ ભાઈશ્રી સવાઇલાલે બજાવ્યુ હતું એ ૧૭ વર્ષના શૂર બાળકે એ કાર્ય માટે જે પરાક્રમ બતાવ્યું હતુ તે ખરેખર આશ્ચર્ય અને અભિમાન ઉપજાવે તેવું હતું —જિનવિજય

હમેશાં બોલવાનુ. તેઓની સ્વાર્પણવૃત્તિ તો મેં મારી જિંદગીમાં અન્યત્ર ભાગ્યે જ જોઈ હશે. તેઓની ગમે તેવી કીમતી વસ્તુ પણ લેવા આવનાર માટે માત્ર વસ્તુ જ નહિ પણ કોઈ બીમાર કે બીજી રીતે દુ:ખી હોય તો તેની તન–મન–ધનથી સેવા કરી છૂટવું એ જ એ બાઈનો જીવનમંત્ર. ચાલુ વર્ષના મે માસમાં ખરે બપોરે એક નાનુ ગધેડું તદ્દન અશક્ત સ્થિતિમાં ખેતરમા પડેલુ. ત્યારે એ બહેને એક વિદ્યાર્થીને સાથે લઈ તેને ઉપાડી છાંયડામાં મૂકી તેને ખોરાક–પાણીથી ખૂબ જ સતોષવા પ્રયત્ન કરેલો, એ આ લેખકની જાણમા છે. એકવાર પાસેના ગામ માદલપુરમાં એક બાઈ બીમાર હોવાની અને ન ઊઠી શકવાની વાત સાંભળતાં જ રાત્રિએ ત્યાં દવા લઈ જવા અને આખી રાત તેની સેવામાં રહેવા તત્પર થયેલા કોઈ વિદ્યાર્થી કે અન્ય બીમાર પડે ત્યારે લાડુબહેનને ઊંઘ હોય જ નહિ કાં તો એ બીમારનુ માથું દબાવતા હોય કે પગ. આ સેવાવૃત્તિ પણ તેઓની કાંઈ કળીયુગી નહોતી કળીયુગમાં સ્વજનો સાથે અણબનાવ અને પરજનો સાથે સ્નેહ હોવાનો જે નિયમ કહેવાય છે તે આ બાઈમાં કદીયે કોઈએ અનુભવ્યો હશે એમ હું નથી માનતો. એ બાઈ તો સસરાનુ કામ હોય કે સાસુનુ, જેઠાણીનુ હોય કે જેઠનુ, ભાઈઓ, ભોજાઈઓ કે બીજાં ગમે તેતું ગમે તેવુ કામ હોય, માત્ર કર્તવ્યબુદ્ધિથી તેને કરી જ છૂટે ખરેખર એ બાઈએ વિનય, મૈત્રી અને અર્પણવૃત્તિની પારમિતા સાધેલી પણ એ બાઈના જીવનમા બીજો એક અસાધારણ ગુણ એવો હતો જે બહુ જ ઓછાં સ્ત્રી–પુરુષોમાં હોય છે. તે ગુણ જીજ્ઞાસાનો–વિદ્યા મેળવવાનો

અઢાર વર્ષ પહેલાના મારા પ્રથમ પરિચય વખતે મેં એ બહેનને સંસ્કૃતનો અભ્યાસ કરતા પાલણપુરમા જોયેલા આજકાલના અભ્યાસનો, શારીરિક કામકાજ છોડી આરામવૃત્તિ શોધવાનો દોષ એ બાઈમા અંશ પણ ન હતો. ઘેરે ઘરના કામમા અને બીજા વખતે સતત અભ્યાસ કરતાં મે જોયેલા. તેઓની આ જીજ્ઞાસાવૃત્તિ પાલણપુરની કોડીબંધ બહેનોમાં અને લઘુ કન્યાઓમા દાખલ થયેલી. બધી બહેનોને એ બહેન ભણાવે, ભણવા પ્રેરે અને દુ:ખી વિધવાઓને સાચો દિલાસો પણ આપે પાલણપુરની કન્યાશાળા એ તે વખતની બધી જૈન કન્યાશાળાઓમાની આકર્ષક અને આદર્શ શાળા. અનેક કન્યાઓ સંસ્કૃત ભણે, શુદ્ધ બોલે, અને લખે. આ બધું વાતાવરણ એ લાડુબહેનના અનુકરણનુ પરિણામ હતું. લાડુબહેન તો કાવ્ય, ન્યાય, કર્મગ્રંથાદિ પ્રકરણો, હિંદી અને છેવટે થોડું અંગ્રેજી સુદ્ધા

શીખેલાં. તેઓ મુંબઈમાં જાય કે કલકત્તા, પૂના હોય કે અમદાવાદ, કોઈ સસ્થામાં ગયાં હોય કે કુટુંબીને ત્યા તેઓનો સ્વાધ્યાય છૂટે જ નહિ કામ કરવુ અને અભ્યાસ કરવો એ બે તેઓની ડાબી જમણી આંખ હતી. છેલ્લા વર્ષની ચિત્તભ્રમની સ્થિતિમા પણ એ બે ગુણો સતત જાગતા આ લેખકે અનુભવ્યા છે. અનેકવાર મનાઈ કર્યા છતા ઊંઘ ન આવે ત્યારે લગભગ આખી રાત બેસી કાઈને કાઈ વાચતા તેઓને જોયા છે ચિત્ત-ભ્રમ વખતે પણ સ્મૃતિ તો અદ્‌ભુત હતી ઇંગ્લિશ અને સંસ્કૃત વાચન મારા માટે કરતા હોય ત્યારે ઘણીવાર અર્થકલ્પના તેઓની જ કામ આપે. પણ આ ઉપરાંત તેઓએ ઉપરનુ સાહિત્ય વાંચવાની તક પણ જતી કરી ન હતી. છેલ્લા માસમાં, આશ્રમમાં ચાલતા હિદી કલાસમાં તે જતા હિદી લેખન, વાચન અને અર્થજ્ઞાન જોઈ શિક્ષક સુરેન્દ્રજીને કહેવુ પડેલુ કે લાડુ-બહેન તો સ્વયં શિક્ષિકા–પદને યોગ્ય છે. સત્યાગ્રહ આશ્રમનો એક પણ સ્ત્રી, પુરુષ કે બાળક એવો ભાગ્યે જ હશે જે લાડુબહેનને ન જાણતો હોય.

આટલી બધી શક્તિઓની જાગૃતિ છતા દુર્દૈવે તેઓના મનમા એક જ ભ્રમ થઈ આવ્યો અને તે એ કે મારું જીવન નિરર્થક છે આ ભ્રમ એ તેઓનો કાળ હતો એમ કહેવુ જોઈએ તેઓના ગુણથી મુગ્ધ થયેલા તેઓનાં માત્ર કુટુમ્બીઓ જ નહિ પણ તેઓના ગુણાનુરાગી તટસ્થ સ્નેહીઓએ પણ તેઓની સ્મૃતિ કાયમ રાખવા કાંઈક વિચાર કર્યો છે એ ખુશીની વાત છે, સ્ત્રીજાતિનુ સ્થાન અને તેને લીધે સામાજિક ગૌરવ નહિ સમજનાર કેટલાક પુરુષો અને કેટલીક અણસમજુ બહેનો આવા પ્રસંગનો લાભ લઈ એમ ધારે અગર કહે કે સ્ત્રીઓના ભણવાથી શુ? ભણીને શુ ઉકાળ્યુ? જુઓને ભણ્યા પછી પણ આત્મઘાતનો પ્રસંગ! તો પછી ન ભણવુ એ શુ ખોટુ છે? આ કથન અજ્ઞાન અને અધીરજમાથી ઉદ્‌ભવે છે તેથી શુ પુરુષ જાતિમાં કાઈ ત્રુટી કે દોષ દેખાતા જ નથી? જો ખૂબ ભણતર છતા પુરુષો-મા કલહ, કંકાસ, મારામારી, લોભ, લાલચ અને અવિચારિતા દેખાય છે તો એ દોષથી સ્ત્રીજાતિ બચી જ જવી જોઈએ એવી આશા રાખવી તે શુ વધારે પડતુ નથી? વળી એકાદ કોઈ કિસ્સામા સહેજ અનિષ્ટ અંશ આવે તો તેને આગળ કરી કે મોટુ રૂપ આપી બીજા ઈષ્ટ અંશોની કિંમત ન આંકવી એ શુ ન્યાયબુદ્ધિ કહેવાય?

એક ઝવેરીની દુકાનમા કોઈ કારણસર ખોટ આવી એટલે ઝવેરાતના ધંધાનો દોષ? ડાક્તરી કે દેશી ઈલાજ કર્યા છતા કોઈ એક રોગી ન બચે

તેથી શું એ ઇલાજો પૃથ્વી ઉપરથી નિર્મૂળ કરી નાખવા? આ ઉપરથી આપણે એટલું જ કહી શકીએ કે જ્ઞાનનું ફળ મળે જ છે. પણ સાથે પૂર્વાર્જિત કર્મ જો બળવાન હોય તો તે કર્મ પણ ભોગવ્યા વિના છૂટતા નથી. અસ્તુ આ તો એક પ્રાસંગિક વાત થઈ લાડુબહેનના જીવનના પરિણામે પાલણપુરની સ્ત્રી અને કન્યાવર્ગમા કાંઈક જિજ્ઞાસા ઉદ્ભવી છે નિરાલબન વિધવા બહેનોમાં જ્ઞાનાલબન લઈ તે માર્ગે જીવન પ્રશસ્ત બનાવવાની વૃત્તિ પેદા થઈ છે પોતાની તદ્દન દીન અવસ્થાનુ ભાન પ્રકટ્યુ છે, અને અલ્પાશે પણ સ્વાશ્રયી વૃત્તિ જાગી છે. સૈકાઓ થયાં અટકી ગયેલુ બુદ્ધિનુ વહેણ ચાલુ થયેલુ છે. જો એટલા અશો એ બાઈના જીવનને પરિણામે થોડા થોડા પ્રમાણમા પણ પ્રગટ્યા હોય તો એમ કોણ કહી શકે કે સ્ત્રીની કેળવણી નિષ્ફળ છે?

લાડુબહેનના સબધમા ઘણુ જ લખવા જેવુ છે પણ આ સ્થળે આટલુ લખવુ પણ વધારે જ કહેવાય આશા છે, કે આ સંક્ષિપ્ત પરિચય વાંચનાર પણ એ બાઈના પરલોકગત આત્માની શાન્તિપ્રાર્થનામાં પોતાનો માનસિક ફાળો આપશે

['પાલણપુર' પત્રિકાના શ્રાવણ માસના અકમા પ શ્રી સુખલાલજીએ આલેખેલ]

તેજોમૂર્તિ ભગિની

[૨૪]

पश्यत्यचक्षु स शृणोत्यकर्ण (श्वेता०)
अवागपि सा वक्ति ।

વીસથી વધારે વર્ષ થયાં હશે, મેં પ્રસિદ્ધ હિંદી પત્રિકા 'સરસ્વતી'માં શ્રીમતી હેલનનું સંક્ષિપ્ત પણ અદ્‌ભુત પુરુષાર્થ અને પ્રતિભાનું સૂચક જીવનચિત્ર વાંચેલું ત્યારે જ એ બહેન તરફ મારું આકર્ષણ સહજભાવે થયું. એને વિષે વધારે વિગતવાળી સ્પષ્ટ માહિતીની મારી જિજ્ઞાસા અદ્યાપિ જાગરિત જ હતી પણ મારા મર્યાદિત જીવન અને કાર્યક્ષેત્રમાં એને સંતોષવાની તક મને મળી ન હતી તેટલામાં ગત મે માસમાં શ્રીયુત ગોપાલદાસભાઈએ મને એક દિવસ કહ્યું કે, વર્ધાથી મગનભાઈ પુછાવે છે કે, તેમણે શ્રીમતી હેલનની જીવનકથાનો ગુજરાતી અનુવાદ કર્યો છે તે તમને અર્પણ કરવા ઇચ્છે છે, ને જો તે સ્વીકારો તો તેના પ્રારંભમાં તમે સ્વીકાર-રૂપે કાંઈક લખી આપો એમ પણ ઇચ્છે છે મેં તરત જ કહ્યું, 'હું એ વાંચી પછી હા ના કહું જો એના વાચન પછી જરા પણ મને લખવાનો મારો અધિકાર જણાશે તો અવશ્ય કાંઈક લખીશ' મને તરત જ અનુવાદના ફરમા મળ્યા મારું ઘણાં વર્ષ પહેલાંનું શ્રીમતી હેલન પ્રત્યેનું આકર્ષણ અને તેના જીવન વિષેની જિજ્ઞાસા એ બંને એટલાં બધાં તીવ્રપણે સજીવ થઈ ગયાં કે, તે વખતના ચાલુ લેખન અને સતત મનનકાર્યના પ્રવાહો મારા મનને બીજી દિશામાં જતાં રોકી શક્યા નહીં કાંઈક અંગે સમશીલ જીવનકથા સાંભળતાં જ અનેક વિચારો ઊભરાયા પણ અહીં તો મર્યાદાનુસાર ટૂંકમાં જ પતાવવું યોગ્ય છે અનુકૂળતા રહી તો ક્યારેક મારા પોતાના વિદ્યાવ્યવસાય વિષેની જીવનસ્મૃતિ લખવાની ઇચ્છા મૂર્ત થશે

મેં શ્રીમતી હેલનને 'તેજોમૂર્તિ' અને 'ભગિની' એવાં બે વિશેષણો આપ્યાં છે, તે સાભિપ્રાય છે એની જીવનકથામાં પદે પદે પુરુષાર્થ અને પ્રતિભાના તેજ સિવાય બીજું કાંઈ જ દૃષ્ટિગોચર નથી થતું. એના પુરુષાર્થ અને પ્રતિભારૂપ તેજના અંબારમાં એની શરીરમૂર્તિ અન્તર્હિત થઈ જાય છે.

અનેક રીતે જુદાઈ હોવા છતાં ઉમર અને સમાનશીલતાની દૃષ્ટિએ મેં એને આપેલુ 'ભગિની' એ વિશેષણ એની સાથેનો મારો સાદૃશ્ય-સંબંધ ઠીક ઠીક વ્યક્ત કરી શકે.

હેલનને દર્શન, શ્રવણ અને વાચનની ત્રણે શક્તિઓ એક જ સાથે અને તે પણ છેક જ શૈશવકાળથી ગઈ, જ્યારે મારી તો માત્ર દર્શનશક્તિ ગયેલી અને તે પણ ગ્રામ્યશાળાસુલભ માતૃભાષાના પૂરા અભ્યાસ તેમ જ આજુબાજુના બધા દૃશ્ય પદાર્થોના પ્રત્યક્ષ અવલોકન તેમ જ તત્સંબંધી ભાષા અને લેખનવ્યવહાર સિદ્ધ થયા પછી—લગભગ પંદરેક વર્ષની ઉમરે. ઇન્દ્રિયવૈકલ્ય અને તે પ્રાપ્ત થવાની ઉમરની દૃષ્ટિએ હેલન મારા કરતાં અનેક ગણી વધારે લાચાર, વધારે બંધનવાળી ખરી પણ દેશ, કુટુંબ અને બીજા સંયોગોની દૃષ્ટિએ તેનું સ્થાન મારા કરતાં અનેક ગણું વધારે સાધનસંપન્ન અને વધારે સ્વતંત્ર. ક્યા અમેરિકા કે જ્યાં જન્મથી રાષ્ટ્ર, સમાજ, અર્થ અને ધર્મનાં બંધનોને સ્પર્શ જ નહી, અને ક્યા હિંદુસ્તાન કે જ્યાં તેવાં બંધનો વિના બીજો સહજ અનુભવ જ નહી? ક્યા હેલનના કૌટુંબિક સંયોગો અને ક્યાં મારા? એનાં માતાપિતા એને વાસ્તે દરેક જાતનો માર્ગ તૈયાર કરવા બુદ્ધિપૂર્વક બધું સર્વસ્વ હોમે છે, જ્યારે મારા પ્રત્યે પૂર્ણ સદિચ્છાવાળા પણ મારા વડીલો સ્વયં વિદ્યાહીન હોઈ મારા વિકાસમાર્ગની કોઈ પણ દિશા સ્વયં જાણવા તેમ જ કોઈ જણાવે તો તે સમજવા છેક જ અસમર્થ. ક્યા ઇન્દ્રિયવિકલ માનવબંધુઓને વિવિધ રીતે શિક્ષિત અને સંસ્કારી બનાવવા કામ કરતા અખૂટ ધીરજવાળા તપસ્વી શિક્ષકોથી શોભતી તપોભૂમિ જેવી અમેરિકાની અપંગ શિક્ષણસંસ્થાઓ, અને ક્યાં અપંગને અનુપયોગી સમજી તેના દુઃખ પ્રત્યેની સાચી સહાનુભૂતિથી એ નિસાસા નાખી, બહુ તો તેને કાંઈક દાન આપી સંતોષ માનનાર, પણ એ અપંગની ઉપયોગિતા અને તેના વિકાસમાર્ગની શક્યતાના વિચારથી છેક જ અજાણ અને અશ્રદ્ધાળુ, એવા પૌરુષહીન પુરુષોની જનની કહેવાતી કર્મભૂમિ આર્યાવર્ત? એક દેશમાં જાતિથી અબળા ગણાતી અને ત્રણ ત્રણ ઇન્દ્રિયોથી વિકલ એવી અપંગ વ્યક્તિને પોતાનું સુષુપ્ત બધું બળ પ્રગટાવવાની પૂરી તક મળે છે ને તે એ દ્વારા પોતાની જાતને આખા વિશ્વમાં માન્ય બનાવે છે; ત્યારે બીજા દેશમાં અપંગની તેમ જ અબળાઓની વાત જ શું, પૌરુષવાન ગણાતા પૂર્ણાંગ પુરુષો સુદ્ધાંને, પરતંત્રતામાંથી મુક્ત થવાની અને માનવતા પ્રગટાવવાની ઓછી અને નજીવી તક છે. આન્તરિક

દૃષ્ટિએ નહી પણ દેશ અને સંયોગોની દૃષ્ટિએ અમેરિકા અને હિન્દુસ્તાન વચ્ચે જે અંતર છે, તે હેલન અને મારા જીવનની અનેક શક્તિઓના આવિર્ભાવમાં વ્યક્ત થાય છે એટલી નાની ઉમરે ત્રણ ત્રણ ઇન્દ્રિયોથી વિકલ એ બાલિકા ૨૧ વર્ષની ઉમરે પોતાનું અભ્યાસવિષયક જે જીવનચિત્ર ખેંચે છે તેની તો મને તેથી બમણાં વર્ષે પણ બહુ ઓછી કલ્પના આવી છે

વિશ્વના અને તેને ગ્રહનાર ઇન્દ્રિયના પણ ત્રણ વિભાગ કલ્પી શકાય દૃશ્ય સ્થૂળ વિશ્વ, કે જેને ભૌતિક યા વ્યક્ત વિશ્વ કહી શકાય, તેને નેત્ર આદિ પાંચ બહિરિન્દ્રિયો જાણી શકે છે, દૃશ્ય સૂક્ષ્મ વિશ્વ, કે જેને અવ્યક્ત ભૌતિક વિશ્વ કહી શકાય, તેને અંતરિન્દ્રિય યા મન કલ્પી જાણી શકે છે, બધાથી પર એવા અદૃશ્ય ચૈતન્ય વિશ્વને તો માત્ર પ્રજ્ઞા–ઇન્દ્રિય અધ્યાત્મેન્દ્રિય જ સ્પર્શી શકે. પ્રત્યેક મનુષ્યમાં તરતમભાવે પણ ત્રિવિધ ઇન્દ્રિયસામર્થ્ય હોય છે પૂર્ણપણે બહિરિન્દ્રિય સંપન્ન હોય તે બહિરિન્દ્રિયો દ્વારા ખોરાક મેળવી, પછી તેમાં અંતરિન્દ્રિય દ્વારા પ્રવેશ કરી, વિવિધ ભાવોનું અનુસંધાન અને આકલન કરે છે મોટે ભાગે બહિરિન્દ્રિયો સ્થૂળ વિષયોમાં જ માણસને બાંધી રાખતી હોઈ, તેની અંતરિન્દ્રિયશક્તિ પ્રમાણમાં ઓછી ખીલે છે. અલબત્ત, એમાં સાધક અને વિશેષ સાધકના અપવાદો તો છે જ આથી બહિરિન્દ્રિયોની પૂરી સંપત્તિ ધરાવનાર મોટા ભાગને બાહ્ય વિશ્વના બધા વ્યવહાર પૂરતી યથેષ્ટ સગવડ પ્રાપ્ત હોવા છતાં, તેની અંતરિન્દ્રિયશક્તિનું જાગરણ પ્રમાણમાં ઓછું રહે છે તેથી ઊલટું, એક કે તેથી વધારે બહિરિન્દ્રિયોની વિકલતાવાળા માનવને, બાહ્ય વિશ્વગ્રહણ અને તેના આવશ્યક વ્યવહાર પૂરતી પૂરેપૂરી અગવડ હોવા છતાં, જો તે તીવ્ર પ્રયત્ન સેવે તો તેની અંતરિન્દ્રિયશક્તિનું જાગરણ પ્રમાણમાં વધારે થાય છે કારણ, આવી વ્યક્તિને બાહ્ય વિશ્વ સાથેનો બધો જ વ્યવહાર સાધવાની બહિરિન્દ્રિયસંપત્તિ અધૂરી હોવાથી તેને તેની ખોટ, અંતરિન્દ્રિયનો વધારે ઉપયોગ કરી પ્રાપ્ત બહિરિન્દ્રિયનો વિશેષ વિકાસ સાધવા દ્વારા, પૂરવી પડે છે. આ પ્રયત્નનાં બે પરિણામ આવે છે એક તો, ખૂટતી ઇન્દ્રિયનું બધું કાર્ય કરવાનું સામર્થ્ય પ્રાપ્ત ઇન્દ્રિય કે ઇન્દ્રિયોમાં પ્રકટે છે, અને બીજું, અંતરિન્દ્રિયનું સામર્થ્ય પણ કાંઈક જુદી જ પણ વધારે આકર્ષક રીતે આવિર્ભાવ પામે છે બીજનની હેલનની વિકાસકથા ઉક્ત સિદ્ધાન્તનો પુરાવો છે. બાલ્યજીવનમાં પ્રવેશદ્વારના એનાં અગત્યનાં ત્રણ ઇન્દ્રિયદ્વારો બંધ, અને જ્યાં એમાં એને પ્રવેશવાનો પ્રબળ ઉત્સાહ તેમ જ પુરુષાર્થ, તેથી એણે એ બધું કામ અંતરિન્દ્રિય દ્વારા

ભાર મૂકી સાધ્યુ પરિણામે, પ્રાપ્ત ઘ્રાણ અને સ્પર્શન ઇન્દ્રિય દ્વારા જ એણે ભૌતિક વિશ્વમાં પ્રવેશવાનાં એનાં ત્રણે બંધનોને વટાવી માર્ગ કર્યો. એની ઘ્રાણ-અને સ્પર્શન શક્તિમાં એવુ જાદુઈ બળ પ્રગટ્યુ કે, તે એ બે ઇન્દ્રિયો દ્વારા જ પાંચે ઇન્દ્રિયોનુ કામ લેવા લાગી બીજી બાજુ, તેને આ બધુ કાર્ય અંતરિન્દ્રિય ઉપર ભાર આપીને જ કરવાનુ હોવાથી, તેની એ શક્તિ એટલી બધી તીવ્ર ખીલેલી દેખાય છે કે, જ્યારે તે કોઈ દશ્ય, શ્રવ્ય કે સ્પૃશ્ય પદાર્થનુ વર્ણન કરે છે અગર તેના ભાવોનુ વર્ણન કરે છે, ત્યારે તે વાંચતાં એ 'ઇન્દ્રિયવિકલ છે એ ભાન ભૂલી જવાય છે આ ઉપરાંત તેની પ્રજ્ઞાઇન્દ્રિયનો એટલો બધો વિકાસ થયો છે કે, તે દેશકાલાતીત સદાસ્થાયી ભાવોનુ જ્યારે ચિત્રણ કરે છે ત્યારે તે જાણે તેનાં ઉપમા અને રૂપક આદિ અલંકારો દ્વારા કવિવર ટાગોરનુ અનુગમન કરતી હોય એમ લાગે છે પુરુષાર્થની મૂર્તિ હેલને છેવટે એ વિકાસ દ્વારા વાણીનું બંધન તો તોડ્યુ જ

ઇંદ્રિયો પરસ્પર એકબીજાની શોક જેવી છે જે જાગતી અને બળવતી તે બાકીની ઇંદ્રિયોનુ સામર્થ્ય પૂર્ણપણે ખીલવામાં આડી આવે નેત્ર સૌમાં બળવાન. એનો સંચરણ–અને કાર્ય–પ્રદેશ અતિ વિશાળ, તેથી માણસ નેત્ર હોય તો તેનાથી જ કામ લે, અને સંભવ હોય ત્યાં પણ સ્પર્શન અને ઘ્રાણથી કામ લેવાની માથાફોડમા ન પડે પણ દૈવયોગે નેત્રનુ સામર્થ્ય જાય ત્યારે બધો બોજો સ્પર્શન ઘ્રાણ ઉપર પડતાં જ તેની ગુપ્ત શક્તિઓ બહાર આવી તે ઇંદ્રિયો જ નેત્રનુ પ્રધાનત્વ મેળવી લે છે, અને નેત્રવાનની કલ્પનામા પણ આવી ન શકે એવા ચમત્કારી કાર્યો સ્પર્શન ઇંદ્રિય પણ બતાવી દે છે હેલનની સ્પર્શન ઇંદ્રિય આ વાતનો પુરાવો છે એ કેવળ ઢસાસો હાથમાંના ગણ્યાગાંઠ્યા સંકેતો ઓળખે એટલું જ હસ્તલેખનથી નથી જાણતી, પણ હસ્તલેખન દ્વારા એ બધું શ્રવણકાર્ય સાધે છે અને એની ત્વચા બીજા કોઈના હાથની કે મોઢાની રેખાઓ પારખી શકે છે એ સાંભળતા તો ભાગ્યે ભારે વિચારક પણ થોડી વાર મૂંઝાય ખરો. બોલતા બીજા માણસોના હોઠો ઉપર આંગળી રાખી તેના શબ્દોને ઉકેલવાના તેના ત્વચાસામર્થ્યનો વિચાર કરતા તો હું આશ્ચર્યમુગ્ધ બની જાઉં છું માત્ર સ્વરના ભેદવાળા પણ વ્યંજનની સમાનતાવાળા 'પળ, પાળી, બળ, ચાળી, લાથી, લાથ' જેવા શબ્દો ઉચ્ચારતા મારા પોતાના જ હોઠ ઉપર ભેદ પારખવા આંગળી મૂકી પ્રયત્નો કર્યા અને એ દિશામાં [illegible] જ અનુભવી, ત્યારે તો હેલન એક દિવ્ય તેજરૂપે જ સામે આવી [illegible],

તેજની આ મૂર્તિના સમગ્ર આશ્ચર્યકારી વિકાસનો મૂળ આધાર—ઉપાદાન માત્ર તેનો આત્મા જ નથી તેનો આત્મા ગમે તેવો સામર્થ્યશાળી હોત અને છતાં તેને અમેરિકાસુલભ જડચેતન સગવડ મળી ન હોત, તો એ તારો ઊગતાં જ આથમી જાત

ઇંદ્રિયખોડની નિબિડતર અને નિબિડતમ બેડીઓ છતા જ્યારે અભ્યાસમાર્ગમાં આગળ ધપવાની હેલનને તાલાવેલી લાગે છે, તેમ જ ખોડ વિનાના સહચારીઓ સાથે રહેવાની અને તેમનાથી પણ આગળ વધવાની ધૂન લાગે છે, ત્યારે જે મુશ્કેલીઓ અને જે નિરાશાઓ અનુભવાય છે, તે ઘણે સ્થળે મારી અને હેલનની એક જેવી છે. એ બધાની સરખામણીને તો આ સ્થળે અવકાશ નથી. છતાં થોડીક સરખામણીઓ આપવી યોગ્ય થશે હેલને કૉલેજ વાસ્તેની તૈયારી કરવાનો વિચાર કર્યો, તેની લાચાર સ્થિતિમાં જે મુશ્કેલીઓ સભવે તેના વિચારથી હેલનના હિતૈષીઓએ એ બાબત ભારે વિરોધ કર્યો પણ ક્યાં એ હિતૈષીનો તીવ્ર વિરોધ અને ક્યા એનો દુર્દમ તીવ્રતર કાર્યોત્સાહ? અતે હેલન છૂટી મારામા અણધારી ક્યારેક કાશી જવાની ભાવના પ્રગટી બધા જ હિતૈષીઓનો પ્રબળતર વિરોધ, પણ અતે એ ભાવનાના તીવ્રતમ વેગે મને કાશીમા જ જઈ પટક્યો પરીક્ષાનો પ્રસગ તો અમારા બનેનો લગભગ એક જેવો છે. હેલન પરીક્ષામાં પ્રથમ બેઠી ત્યારે એને પ્રશ્નપત્ર સમજાવનાર કુશળ, ઉત્તર લખવાનો સમય પૂરતો, અને લખ્યા પછી બચત સમયમાં ભૂલ સુધારવાની નિરીક્ષકે કરી આપેલી તક, આ બધી પૂરી સગવડ પણ પછી જ્યારે તે આગલી પરીક્ષામા બેઠી ત્યારે સગવડનુ તત્ર અગવડમા પરિણમ્યું અને હેલનને પરીક્ષાની ભયકરતાનો સાક્ષાત્કાર થયો. મારી પણ એ જ દશા કાશી ક્વીન્સ કૉલેજમા પહેલી વાર પરીક્ષા આપવા બેઠો ત્યારે લેખકની ખામીનુ ફળ ભોગવવાનો પ્રસગ આવતા જ એક ભલા નિરીક્ષક બંગાળી ભટ્ટાચાર્ય એ પામી ગયા અને નવેમ્બર સગવડ થતા હુ ઉત્તમ ધોરણે જ પસાર થયો પણ આગલા વર્ષોમા વ્યવસ્થાપક અને પરીક્ષકની બેપરવાઈ તથા અનાવડત જોઈ મને પણ પરીક્ષાનુ મૂલ્ય સમજાયુ અને પરીક્ષામા બેઠો ત્યારે લાગ્યા પછી પરીક્ષકના એ જ કમરાના સંકલ્પ કર્યો કે, આજ પછી પરીક્ષા નિમિત્તે આ અવિચારી ખાનાના કે કતલખાનામા દાખલ થવાનો ન થવું મને યાદ છે કે, એ નિર્ણય પછી લગભગ ચાલીસ વર્ષે હુ ફરીથી ક્વીન્સ કૉલેજમા અભ્યાસક્રમ ઉપર વિચાર કરવાના [illegible]

આમંત્રણને સ્વીકારી હિંદુ યુનિવર્સિટીના એક અધ્યાપક તરીકે જ ગયો, પણ પરીક્ષ્ય વિદ્યાર્થી તરીકે નહી.

હેલન સ્કૂલ અને કૉલેજના વિદ્યામય વાતાવરણમાંથી જ્યારે જ્ઞાનતૃષા શમાવે છે, ત્યારે એ પોતાની અપંગતાનું ભાન ભૂલી ચિત્ત–શક્તિના અલૌકિક આનંદનો અનુભવ કરે છે ને એમાંથી જીવનકથા જેવાં મધુર ફળો પીરસે છે. મારી પણ લગભગ એ જ દશા રહી છે બાહ્ય અને આંતરિક વિક્ષેપોના મૃત્યુને તટે લાવી મૂકે એવા સંભાર વચ્ચે મને વિવિધ શાસ્ત્રોના અભ્યાસે, ચિંતને અને લેખને જ બચાવી સ્વસંવેદ્ય અલૌકિક આનંદભૂમિકા ઉપર મૂક્યો છે હેલન કૉલેજમાં યાંત્રિક રીતે શીખવતા અધ્યાપકોની શુષ્ક દોડની પોતાની પરિસ્થિતિને કારણે ટીકા કરે છે ત્યારે પણ તેને સમુદ્રમા મીઠી વીરડી જેવા વિરલ અધ્યાપકો મળે છે, જેઓ હેલનને રસમય શિક્ષણથી તરબોળ કરી દે છે. સાંકડી અભ્યાસ–કોડમાં સતત પુરાયેલ શાસ્ત્રગાયોના અર્થહીન શબ્દસ્તનોમાથી દૂધને બદલે રક્ત ખેંચી તેને દૂધ માની–મનાવી પિવરાવનાર પંડિત–ગોપો વચ્ચે મને પણ સતત શુદ્ધ દુગ્ધવર્ષી કામદુઘા જેવા વિરલ અધ્યાપક બહુ મોડે મોડે પણ મળેલા અને હજીયે છે જેમ હેલનનુ માનસ વિવિધ વિષયસંચારી શિક્ષણમા રસ લે છે તેમ મારું માનસ પણ અભ્યાસ્ય ભાષાઓ જુદી જુદી અનેક એ તત્ત્વ પણ અમારા બંનેનુ સમાન પ્રમાણ અને સાધનનો ભેદ બાદ કરતાં વનવિહાર, જલવિહાર, પર્વતપર્યટન, સમુદ્રયાત્રા, પશુપક્ષીપરિચય આદિનો રસ બન્નેનો સમાન જ. અલબત્ત, એનો સાઈકલ–સવારીનો તરંગ મને કદી જ આવ્યો નથી, પણ હુ ધારુ છુ મારો અશ્વારોહી તરંગ એને ભાગ્યે જ થયો હશે સમૂહમા અને એકલા શેતરંજ રમવાની શોધેલી એની નવી રીતે આજે પણ મારું મન લોભાયુ પુસ્તકો અને શિક્ષકો એનાં અને મારા સમાન મિત્રો હેલન અંતમાં લખે છે એમ, 'મારી જીવનકથા મારા મિત્રોએ ઘડી છે' એ સૂત્ર મારા જીવન વિષે પણ પૂર્ણપણે સત્ય છે મારા પણ મિત્રોની યાદી ભારે વિશાળ અને તે પણ અનેક આકર્ષક તેજસ્વી નામ અને ગુણના રંગોથી રંજિત છે શ્રુત, પરિશીલિત અને અભ્યસ્ત વિવિધ વિષયોના પુસ્તકોની યાદી મારી મત પણ બનાવે અને કોઈક એકાંગી જડતા પણ હેલનને પરિચિત ધર્મગુરુઓમા કોઈ સંકીર્ણ મનના દેખાતો નથી તેને જે જે બિશપ વગેરે મળ્યા છે તે બધાએ તેને અસાંપ્રદાયિક સત્યને જ માર્ગે દોરવા યત્ન કર્યો છે સદ્ભાગ્યે કે દુર્ભાગ્યે મારી બાબતમાં તેમ નથી બન્યું કેમકે બચપણથી તે આજ મોડે મોડે ગુરુ

આપણા દેશની જડ જનતાને સુલભ એવા જ અતિ સાંકડા મનના અને અંધારામાં પ્રકાશ તેમ જ કૂવામાં સમુદ્ર માની બેઠેલા અનેક ધર્મગુરુઓ એક પછી એક મને મળતા જ રહેલા છતાં તેમનાં ચરણોમાં બેસી ઝીલેલ ધર્મબોધ ઉપર ફરી વિચાર કરવાની ફરજ પડે અને આખું માનસ બદલી નાખે એવું વ્યાપક ધર્મભાન કરાવનાર ધર્મપ્રાણ પુરુષોનુ પણ મારા જીવનમા સ્થાન છે અને તેમાંના ઘણા તો અત્યારે મોજૂદ જ છે

આમ અમારા બન્નેનુ કેટલુક સામ્ય છતાં એકવીસ વર્ષ જેટલી નાની ઉમરે હેલનના — 'એવી ક્ષણ હોય છે જ્યારે મને એમ લાગે છે કે, શાયલોક તથા જ્યૂડા જેવા લોક અને સેતાન પણ વિશ્વમાં પ્રવર્તમાન સાધુતાના મહાચક્રના ભાંગી ગયેલા આરા છે અને તેઓ યોગ્ય સમયે પાછા સમારી લેવાશે' — આ વાક્યમાં જે મહાવીર, બુદ્ધ, ક્રાઇસ્ટ અને ગાંધીજીની સહજ શ્રદ્ધા અને પ્રજ્ઞાઇંદ્રિયના સ્ફુરણનુ ભાન થાય છે, તે આટલી પ્રૌઢ ઉમરે પણ સ્વાભાવિક રીતે મારા જીવનક્રમમા મને દેખાતું નથી અલબત્ત, આર્યાવર્તના વિવિધ દર્શનોના અનેક વિષયસ્પર્શી, કામના અને નકામા, જટિલ, કંટકિલ અને શ્લથિલ વાદવિવાદ વચ્ચે પણ મે તેની પારના પ્રજ્ઞામય, શાંત અને સર્વવ્યાપક ભાવનુ વિસ્મરણ કદી કર્યું નથી પણ એ દિશામાં પ્રજ્ઞાઇંદ્રિયનુ જાગરણ કરવાનુ તો હજી મનોગત જ છે.

પ્રસ્તુત પુસ્તક વિષે શ્રીમાન કાકાસાહેબ કાંઈક લખવાના છે એ જો મે સાભળ્યુ ન હોત તો હુ આટલા ટૂંકામા કદાચ ન પણ પતાવત છતા શ્રીયુત મગનભાઈના અનુવાદવાચનથી મારા મન ઉપર પડેલ અનેક છાપોમાની અગત્યની બેએક લખી દેવી યોગ્ય છે. અનુવાદ સ્વતંત્ર લખાણ જેવો ગાઢો છે અર્થ સમજવામા શબ્દની, વાક્યની કે તેવી બીજી આંટીઘૂંટી આડે આવતી નથી અનુવાદક મૂળગત ભાવો સ્પષ્ટ કરવા અને પોતાની નવશબ્દરચના સમજાવવા જે ટૂંકા પણ મહત્ત્વના ટિપ્પણો કર્યાં છે તે ન હોત તો અનુવાદનો આત્મા આટલો અર્થપૂર્ણ ન બનત અનુવાદકમા જે ભાવપૂર્ણ નવશબ્દસર્જનનુ અનુકરણીય સામર્થ્ય દેખાય છે તે ગુજરાતી ભાષાના સમૃદ્ધ અભ્યુદયના અનેક લક્ષણોમાનુ એક મહત્ત્વનુ લક્ષણ છે એકંદર આખો અનુવાદ અંગ્રેજીને ઉચ્ચ શિક્ષણમા માધ્યમ રાખવાની બલવત્ તરફેણ કરનારને માતૃભાષાના માધ્યમનુ સામર્થ્ય સમજાવનાર અનિર્વચનીય જેવો છે. હુ શ્રીયુત મગનભાઈ પાસે એટલી માગણી અવશ્ય કરું છું કે, તેઓ શ્રીમતી હેલનના પછીની વયના ઉત્તરોત્તર પ્રૌઢ અને પરિપક્વ વિચાર તેમ જ

અનુભવવાળાં બાકીના પુસ્તકો અનુવાદિત કરે વાચકો આ અનુવાદમાંથી જીવનરસદાયી ઘણું મેળવી શકશે તેમ છતાં બહેનોને તો આમાંથી ઘણું શીખવાનું મળશે તેઓ આ અનુવાદ વાચી એટલું તો વિચારતા થશે જ કે, જ્યારે ત્રણ ત્રણ બંધનોના કિલ્લા પાછળ પુરાયેલ એક લઘુ બાળા તે બધનો તોડી બહાર આવવા દૃઢ નિશ્ચય કરે છે અને તેના જ 'મારી એક ક્ષણ પણ જડ સ્થિરતામાં ન ગઈ' શબ્દોમા કહુ તો, તે અનવરત પુરુષાર્થમા ભાન ભૂલી છેવટે અપગપણાના સહજ બધનની પેલી પાર રહેલા પોતાના આત્માને પ્રગટાવે છે, ત્યારે એવા એકે બધન વિનાની તે બહેનો નિશ્ચય અને પુરુષાર્થ દ્વારા શુ શુ સાધી ન શકે? શિક્ષણની ઘણી માધ્યમિક સસ્થાઓમા પાઠ્ય તરીકે નહી તો છેવટે આ પુસ્તક વાચવાની ખાસ ભલામણ કરવા જેવુ છે

—પં. સુખલાલજી

બાબુ દયાલચંદજીનાં કેટલાંક સંસ્મરણો

[૨૫]

તા. ૨૪–૧–૫૬ ને રોજ થયેલ આગરાનિવાસી બાબુ દયાલચંદજી ઝવેરીના સ્વર્ગવાસની નોંધ સહૃદય શ્રી રતિલાલ દીપચંદ દેસાઈએ 'જૈન'ના ગયા અંકમાં લીધી છે તેમણે બહુ જ ટૂંકમાં બાબુજીની વિશિષ્ટતાનો સંકેત કર્યો છે શ્રી. રતિભાઈ આગરામાં રહેલા તે દરમિયાન બાબુજી સાથે તેમનો પરિચય સધાયેલો એટલે તેમનું કથન ટૂંકું છતાં અનુભવમૂલક છે. હું મારા તેમની સાથેના લાંબા પરિચયની પણ એ જ વાત કહી શકું, પણ અત્રે બાબુજીનાં કેટલાંક સંસ્મરણો જરા વિગતથી નોંધું છું તે બે દૃષ્ટિએ: એક તો તે સંસ્મરણો મધુર અને બોધક છે અને બીજું ચડતી–ઊતરતી જીવનકળામાં પુરુષાર્થી વ્યક્તિ પોતાનું કાર્યસાતત્ય કેવી રીતે જાળવી રાખે છે તે

બાબુજીનો પરિચય લગભગ પચાસ વર્ષ ચાલ્યો એની શરૂઆત અણધારી રીતે થઈ. સં ૧૯૬૪ના બળબળતા ઉનાળામાં હું અને મારા મિત્ર વ્રજલાલજી કાશીથી આગરા આવી ચડ્યા ફતેપુરસીક્રીને રસ્તે આગરા શહેરથી બે–એક માઈલ દૂર ઓસવાલોનો બગીચો છે કહેવાય છે કે શ્રી હીરવિજયસૂરિ અકબરને મળવા ગયા ત્યારે એ જગ્યા ભેટમાં અપાયેલી એ બગીચામાં મંદિર છે અને બીજાં મકાનો છે સ્વર્ગવાસી સન્મિત્ર કર્પૂરવિજયજી મહારાજ ત્યાં બિરાજતા અમે બન્ને મિત્રો મહારાજજીને મળવા ગયા અને ત્યાં જ બાબુજીનો ભેટો થયો તેમણે પોતે હાથે રાંધેલ ખીચડીથી અમારું આતિથ્ય કર્યું અને અમારા વગર કહ્યે પણ કાંઈક અમારી મૂંઝવણ સમજી લઈ આપમેળે અમને પૂછ્યું કે તમે [illegible] છો અને ક્યાં જવા ધારો છો ઇત્યાદિ આ પ્રસંગમાંથી અમારો તેમની સાથે સંબંધ બંધાયો અને અમે ચિરમિત્ર તથા ચિરસાથી બની ગયા એ મિત્રતા કયા પાયા ઉપર બંધાઈ અને કયા કામમાં કે હેતુઓમાં અમે સાથી બન્યા એ બહુ ટૂંકમાં જણાવું તેમાં જ બાબુજીનાં સંસ્મરણો આવી જાય છે, અને તે તેમના વ્યક્તિત્વને ઓળખાવવા પૂરતાં થઈ પડશે

મિત્રતાનો પાયો હતો. વિદ્યાધ્યયન અમારે આગળ વધારવું અને તેમણે પોતાના મિત્રો સાથે મળી આર્થિક અને બીજી જવાબદારી લેવી તે. આ પાયા ઉપર અમે બે મિત્રો અને ચારેક બીજા વિદ્યાર્થીઓ એમ છ જણે કાશી ગંગાકિનારે અસ્સી-ભદૈની ઘાટ ઉપર અધ્યયનસત્ર શરૂ કર્યું. બાબુજી ઝવેરાત ઉપરાંત બીજા અનેક વ્યવસાયો કરતા. તેમની મુખ્ય પેઢી તો આગરામાં, પણ તેઓ અવારનવાર કાશી આવે. આમ છએક વર્ષ ચાલ્યું. દરમિયાન બાબુજી સાથે અમારો પરિચય ગાઢ બનતો ગયો. પરસ્પર વિશ્વાસ બંધાયો અને સાથે મળી વિચારો અને યોજનાઓ પણ કરતા રહ્યા કે અધ્યયન સમાપ્ત કરી શું શું કામો કરવાં? ક્યાં કરવાં? અને કેવી કેવી રીતે કરવાં? ઇત્યાદિ.

એ જમાનો બંગભંગની ચળવળમાંથી જન્મેલ રાષ્ટ્રીય સ્વાતંત્ર્યનો હતો, અને સાથે જ મદનમોહન માલવિયાજીના હિંદુ વિશ્વવિદ્યાલયની સ્થાપનાના પ્રચંડ આંદોલનનો હતો. અમે વિચાર્યું કે વિદ્યા વિષયક જે જે કામ કરવાં તેનું કેન્દ્ર કાશી રાખવું અને જૈન સમાજને મધ્યવર્તી રાખી વિદ્યાને લગતાં બધાં કામો ગોઠવવાં. આર્થિક પ્રશ્ન અને બીજા વહીવટી પ્રશ્નો એ બાબુજી પોતે પોતાના મિત્રો સાથે મળીને ઉકેલે. આ વિચાર પ્રમાણે ઈ. સ. ૧૯૧૩-૧૪માં કામ કરવાનો સમય પાક્યો.

અમે વિચાર્યું કે શરૂઆત આગરામાં કરે. પછી યોગ્ય કાર્યકર્તાઓ મળે અને કામની દિશા તેમ જ પદ્ધતિ નક્કી થાય ત્યારે કાશીમાં બધું તંત્ર લઈ જવું. આ રીતે ૧૯૧૪માં હું સર્વપ્રથમ આગરા જઈ વસ્યો અને ત્યાં બેસી શું શું કરવું, કોના સહચારથી કરવું, કેવી રીતે કરવું વગેરે વિચારી લીધું. પણ આ બધા વિચારમાં બાબુજી સાથે જ હોય અને આર્થિક પ્રશ્ન પરત્વે કે બીજા વ્યવહારુ પ્રશ્ન પરત્વે અમે બધું તેમના ઉપર જ છોડી દઈએ. તેઓ દૃઢ સંકલ્પ અને જુસ્સાથી હમેશાં મને એક જ વાત કહે કે 'તમે ફાવે તે યોજના કરો, કામ કરો પણ કદી મૂંઝાશો નહિ.' તેમના આવા ઉત્સાહથી હું પણ તે વચનની સમજણ અને પરિસ્થિતિ પ્રમાણે કામ વિચારતો, માણસો મેળવતો અને વિદ્યાર્થીઓને રાખતો.

બાબુજી તદ્દન નમણા હતા ને પત્ની ગુજરી ગઈ. સંતતિ ન હતી. પિતા, માતા અને ભાઈઓએ બીજું સગપણ વિચાર્યું, પણ બાબુજી મરણ-પથારીએ પડેલ પત્નીને આપેલ કેવા વચનને અનુસરી ફરી લગ્નમાં પડ્યા

જ નહિ. આ કાળે એમનો ધંધો એટલો બધો ધીખતો ચાલતો કે આજે તો એની કલ્પના પણ ભાગ્યે જ થઈ શકે યુરોપ, અમેરિકાના પ્રવાસીઓ, અનેક રાજાઓ અને અમલદારો એમની સુપ્રસિદ્ધ દુકાને જ્યારે દેખો ત્યારે હોય જ બાબુજી મને કહેતા કે આપણે આગરાથી કાશી જઈએ, ત્યાં કામ શરૂ કરીએ, સંસ્થા ઊભી કરીએ ત્યારે હુ પણ ધંધો છોડી ત્યા જ આવી બેસવાનો તેઓ હું રહેતો ત્યા જ સાથે રહે સવારે વહેલા ઊઠી મારી પાસે કંઈક વાંચે અને ઘડિયાળના કાટાની પેઠે નિયમિત રીતે પાછા પોતાને કામે ચાલ્યા જાય તેમણે ધર્મશાળાની યોજના કરી, સંઘ દ્વારા તે બંધાવી, મંદિર, ઉપાશ્રય આદિનો વહીવટ તપાસે એક હિંદી પાઠશાળા અને ધાર્મિક શિક્ષણ આપતી પ્રવૃત્તિ પણ શરૂ થઈ ગઈ આ બધા કામો તેઓ આગરા સંઘને આગળ કરીને જ શરૂ કરે અને સૌને સાથે લેવાનો પ્રયત્ન કરે

ત્યાંના અનેક યુવકો અને આધેડોની સાથે અખાડો ચાલે તેમા તેઓ પોતે પણ કુસ્તી કરે શરીર સાચવવા અને સબળ રહેવાનો જુસ્સો એ ત્યાના અખાડાનુ મુખ્ય લક્ષણ હતુ. બાંધાની મજબૂતી અને કુસ્તી-કસરતની ટેવે તેમનામા એક અનેરો જુસ્સો પેદા કરેલો. એની પ્રતીતિ માટે અહીં એક દાખલો ટાકુ તો તે પૂરતો થઈ પડશે

પહેલી લડાઈના દિવસો હતા બ્રિટિશ અમલદારો પૈસાદાર વ્યક્તિ કે કોમો પાસેથી પૈસા ઓકાવવાની અનેક રીતો અજમાવતા એક રીત એ હતી કે જે પૈસાદારો ફાળો ન આપે તેના રક્ષણ પ્રત્યે અમલદારો બેપરવા રહે ઓસવાલ જૈનોએ ખાસ ફાળો નહિ આપેલ, એટલે તેઓ હેરાન થાય તો સરકાર સાભળે નહિ પ્લેગના દિવસોમા ઓસવાલ કુટુંબો ઉનાળામાં પેલા હીરવિજયસૂરિવાળા બાગમા રહેવા ગયેલા. એક રાતે લગ-ભગ વીસેક ધાડપાડુઓ આવ્યા અને કમાડ તોડી સ્ત્રીઓ પાસેથી દાગીના આદિ લેવા મથ્યા બાબુજી એક દૂર જગ્યાએ સૂતેલ. ઘોંઘાટ સાંભળી નીકળ્યા હાથમા કાંઈ હતુ નહિ, રસ્તામા એક-બે-ધાડપાડુઓએ તેમને ઘેર્યા. લાકડીઓ મારી બાબુજીએ એક લાકડી એવી રીતે પકડી કે પેલા [illegible] કેમે કરી છોડાવી ન શકે આ રસાકસીમાં પાછળથી બીજા કેટલાએ આવી બાબુજીને એટલા બધા ઘાયલ કર્યા કે છેવટે બેભાન થઈ પડ્યા [illegible] હાડકા તૂટી ગયા. અનેક મહિનાઓ પછી સાજા થયા [illegible] એમનો જુસ્સો કદીયે નરમ પડતો ન જોયો ખાટલે હતા ત્યારે [illegible]

વાનોને સંગઠનપૂર્વક બગીચામાં જ રહી ચોરો કે ધાડપાડુઓ સામે ટકવાની યોજના ઘડી અને તે પ્રમાણે બધા ભાઈઓએ સંયુક્તપણે આત્મરક્ષણ સાધ્યું કરીથી ચોરો આવતા, પણ વ્યવસ્થિત ચોકી–પહેરા અને બહાદુરી જોઈ છેવટે ભાગી જતા

આગરામાં રહ્યાં રહ્યાં કરવાનાં પ્રાથમિક કામો નીચે પ્રમાણે હતાં

(૧) હિંદીમાં જૈન ગ્રંથોના રૂપાન્તરો કરવાં, સ્વતંત્ર પુસ્તકો પણ લખવા અને મહત્ત્વનાં પુસ્તકોનુ સમ્પાદન પણ કરવુ

(૨) યોગ્ય વિદ્યાર્થીઓને રાખી તેમને ધર્મ, તત્ત્વજ્ઞાન, સંસ્કૃત–પ્રાકૃત આદિનુ શિક્ષણ આપવુ અને સાથે જ યોગ્ય હોય તેને સ્કૂલ કે કૉલેજમાં મોકલવા

(૩) એક સમૃદ્ધ પુસ્તકાલય એવું ઊભું કરવું કે અધ્યયન, સંપાદન અને સંશોધન આદિ કાર્યોમાં અમને સ્વતંત્રતા રહે

(૪) શહેરના છોકરાં કે છોકરીઓ જિજ્ઞાસાથી આવે તો એમને ધર્મ અને તત્ત્વજ્ઞાનના ઉદાર તેમ જ અસામ્પ્રદાયિક સંસ્કારો આપવા

(૫) સમાજમા જે જે કુપ્રથાઓ અને ખોટા ખર્ચાઓ હોય તેને નિવારવા પ્રયત્નો કરવા

(૬) આ બધા કામોને પહોંચી વળવા યોગ્ય સાથીઓને મેળવવા અને તેમને અનુકૂળ કરી સ્થિર કરવા.

(૭) ગચ્છ કે પંથનો ભેદ રાખ્યા વિના જે સાધુ કે સાધ્વી આગરા આવી અધ્યયન કરવા ઇચ્છે તેમને શીખવવુ વગેરે વગેરે

આ કામોને હું એકલો પહોંચી શકું તેમ હતું જ નહિ. કાશીવાળા મારા સહચારી મિત્રો જુદા પડી ગયા હતા બાબુજીના અદમ્ય ઉત્સાહ ને વ્યવહાર કુશળતાને લીધે હું પણ કદી નિરાશ ન થતો. આ જ અરસામાં મેં આગરા રોશન મહોલ્લામાં એક નાનકડું મંડળ ઊભું કર્યું એમાં ચારેક વિદ્યાર્થીઓ અને બે–ત્રણ કન્યાઓ ઉપરાંત એક પ્રૌઢ બહેન પણ હતાં. સેવાગ્રામમાં રહેતા શ્રી ચિમનભાઈ, જે ગાંધીજીના ખૂબ વિશ્વાસપાત્ર છે તે, આ જ અરસામાં અમારી સાથે મંડળમાં આવી જોડાયા. આ જ અરસામાં અમદાવાદ સત્યાગ્રહ આશ્રમમાં રહેતા શ્રી રમણિકલાલ મોદી તેમનાં પત્ની

સાથે આવી મંડળમાં જોડાયા. સદ્‌ગત પં. ભગવાનદાસ અને પં. બેચરદાસ પણ આવી ગયેલા. એક ઉત્સાહી ક્ષમામુનિ નામના સાધુ પણ (કે જે પાછળથી સ્વર્ગવાસી થયા) મંડળમાં જોડાયા. એમ અનેક રીતે મંડળ વિકસ્યું.

અમે ભાષાન્તર અને સ્વતંત્ર લખાણોનું કામ કરતા અને ઉપર સૂચવેલી બધી પ્રવૃત્તિઓ ચલાવ્યે જતા. પણ આ બધાં જવાબદારીવાળાં અને બુદ્ધિની ઠીક ઠીક કસોટી કરે એવાં કામોની પાછળ રોશન મહોલ્લા જેવા ગંદા મહોલ્લામાં કોઈ ઉત્સાહપ્રેરક અને તાજગી બક્ષનાર બળ હોય તો તે દયાળચંદજીનું અડીખમ વ્યક્તિત્વ હતું. એ જ વ્યક્તિત્વને લીધે ૧૯૨૧ સુધીમાં અમારા મંડળની અનેક પ્રવૃત્તિઓ વિકસી અને મૂર્ત પણ બની.

૧૯૨૧માં ગાંધીજીની હાકલ પડી. સ્વરાજ્ય મેળવવાનો જુસ્સો દેશમાં એટલે સુધી વધેલો કે હવે માત્ર શાસ્ત્રીય પ્રવૃત્તિમાં મન ચોંટતું નહિ, પણ જે કામો પ્રારંભ્યાં તેનું શું? આ નૈતિક પ્રશ્ન હતો. બાબુજી સાથે મેં વિચાર કર્યો. તેમના મનમાં પણ સ્વરાજ્યની ઝંખના ઓછી ન હતી. છેવટે અમે બન્નેએ નક્કી કર્યું કે જે જે લખાણો તૈયાર છે તે બધાં જ છપાવી દેવાં અને મારે આગરા તેમ જ કાશીનો મોહ છોડી અમદાવાદ આવી રહેવું અને આગરામાં શરૂ કરેલ સાહિત્યિક પ્રવૃત્તિઓ અમદાવાદમાં બેસીને જ ચલાવવી. જરૂર હોય એવા સાથીઓ રાખવા, ખર્ચની ચિંતા બાબુજી સેવે અને કામની ચિંતા હું સેવું. બાબુજીના આવા વલણથી હું એમની સાથે અંતરથી હંમેશા જોડાઈ રહ્યો, અને અમદાવાદ રહેવા જતાં તેમના સંબંધ વધારે ને વધારે ગાઢ થતો ગયો. એટલે સુધી કે ગુજરાત વિદ્યાપીઠમાં જોડાઈ હું કામ કરતો ત્યારે પણ તેઓ અવારનવાર અમદાવાદ આવી જાય અને બનતું કરવા ન ચૂકે.

બાબુજી ૧૯૧૯ આસપાસથી કલકત્તામાં રહેવા ગયેલા, [illegible] રાષ્ટ્રીય કોંગ્રેસની બેઠક થઈ ત્યારે તેમણે [illegible] પણ વિચાર્યું. કલકત્તાવાસી અને મુર્શિદાબાદ-[illegible] અને શિક્ષિતો બાબુજી પ્રત્યે [illegible] મતો[illegible] [illegible] દયાળચંદ, તમે કામ [illegible]

કરતા જાઉં અને જોઉં તો જણાય કે અહીં દયાળચંદજી પ્રત્યે ઘણો સદ્ભાવ છે. કલકત્તાના જૈન શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક કૉન્ફરન્સના અધિવેશન પ્રસંગે જ બાબુ દયાળચંદજીની હિલચાલને લીધે હિંદુ વિશ્વવિદ્યાલયમાં જૈન ચેર અર્થે એક સારુંસરખું ફંડ થયું અને એ જ ફંડને આધારે આગળ જતાં કાશીમાં જૈન ચેર સ્થપાઈ અને ઉત્તરોત્તર એનું કામ વિકસતું ગયું બાબુ દયાળચંદજીએ મથુરા, શૌરીપુર આદિ તીર્થોના વહીવટમાં અને પુનરુદ્ધારમાં પણ કાંઈ ને કાંઈ ભાગ લીધો છે એમણે લગ્ન અને બીજા વરાઓ પ્રસંગે થતા અપવ્યયને બંધ કરવામાં ઘરથી જ શરૂઆત કરેલી સામાજિક સુધારાનું કામ હોય, રાષ્ટ્રીયતાનું કામ હોય કે ધાર્મિક કામ હોય, જ્યાં જરૂર હોય ત્યાં તેઓ આવીને ઊભા જ રહે પોતાની પાસેથી નાણાં ખર્ચવાની સ્થિતિ બદલાઈ ગઈ હતી ત્યારે પણ તેમણે પોતાના મિત્રો કે ઓળખીતાઓની મદદથી સારા કામો ઠેઠ સુધી ચલાવ્યે રાખ્યા હતા

રોશન મહોલ્લામા જે જૈન ધર્મશાળા છે ત્યાં યાત્રીઓ માટે એટલી સારી સગવડ છે કે ઊતરવા મન લલચાઈ જાય બાબુજી ઠેઠ સુધી ત્યાં રહેતા અને જે જૈન કે જૈનેતર યાત્રી આવે તેને જોઈતી સગવડ મળી જતી. છેલ્લા દિવસોમા અનેક દૃષ્ટિએ તેઓ એકલવાયા જેવા થઈ ગયેલા, પણ મે કદી એમનામા નિરાશા ન જોઈ અને તેમને મળનાર કોઈએ તેમનામાં કૃપણતા નથી અનુભવી આતિથ્ય માટે તૈયાર અને ભીડ જતા મન મોટું.

તેઓ અવારનવાર કાશી આવે, યુનિવર્સિટીમાં સાથે રહે બધી પ્રવૃત્તિઓમા રસ લે બધા જ કામો હાથે કરવાનો શોખ, રસોઈ ભરમ કરી જાણે એ તો ઠીક, પણ મકાન કે પાયખાનું સુદ્ધા ચોખ્ખું રાખવાની એટલી બધી કાળજી કે જો કોઈ બીજો માણસ ન હોય તો તે જાતે કરે, અને સૌની સાથે ભળી જાય તેઓ ભણેલ તો હતા કૉલેજના પહેલા વર્ષ લગી, પણ રોજિંદા યુરોપિયન સાથેના વ્યાપારી વ્યવહારથી અંગ્રેજી ઠીક ઠીક જાણતા વાચવાનો બહુ શોખ ગુજરાત, રાજસ્થાન, પંજાબ, યુ. પી. બિહાર, બંગાળ આદિ દરેક પ્રાન્તના મોટાં શહેરમા વસતા પ્રસિદ્ધ પ્રસિદ્ધ જૈનો સાથે તેમનો બહુ પરિચય અને આગરામા તો અનેક પ્રવાસીઓ તેમ જ યાત્રીઓ આવે. એટલે એમનું પરિચયવર્તુલ બહુ જ મોટું હતું આ રીતે તેમણે સમાજ, રાષ્ટ્ર, ધર્મ, સાહિત્ય આદિ અનેક ક્ષેત્રે પોતાથી બનતું બધું જ કર્યું છે. હું અનેક વર્ષો લગી એમની સાથે રહેલ [illegible] અને સાથી તરીકે રહ્યો પણ છું અને ત્યારે દૂર રહ્યો ત્યારે પણ તેમની

પ્રવૃત્તિ અને વિચારોનો સાક્ષી રહ્યો છું.

બાબુ દયાળચંદજી એક જીવતી જાગતી ઉત્સાહમૂર્તિ હતા, ઊગતી પેઢીને ઉદાર અને શક્તિસંપન્ન બનાવવા માટે તેઓ પ્રયત્નશીલ હતા, પંથો અને ગચ્છોના ઝઘડા મિટાવવાના પક્ષપાતી તેમ જ દરેક રાષ્ટ્રીય કાર્યને વેગ આપવાના વલણવાળા હતા. આવી વિરલ વ્યક્તિ ૭૫ વર્ષ જેટલી પાકટ ઉંમરે વિદાય લે ત્યારે પણ તેનો વિયોગ સાલ્યા વિના રહી ન શકે આગરા આવી વ્યક્તિની ખોટ ક્યારે પૂરશે એ અત્યારે કહેવું કઠણ છે, પણ આશા છે કે બાબુજીએ વાવેલ બીજ ક્યારેક તો ઊગી જ નીકળશે.

"જૈન" તા. ૧૧–૨–૧૯૫૬

તેજસ્વી તારક આચાર્યશ્રી નરેન્દ્રદેવજી

[૨૬]

'*જૈન*' પત્રના જે વાચક કેળવણી, રાષ્ટ્રીયતા અને વિદ્યોપાસનાના વિશાળ ક્ષેત્રથી સાવ દૂર હશે તેઓ જ આચાર્યશ્રી નરેન્દ્રદેવજીનું નામ અને કામ જાણતા ન હોય એમ કહીએ તો તે યોગ્ય જ ગણાશે આચાર્યશ્રીનો સ્વર્ગવાસ તેમના વતનથી બહુ દૂર દક્ષિણ ભારતમાં થયો. એના સમાચાર વીજળી વેગે ક્ષણમાત્રમાં સર્વત્ર પહોંચી ગયા. જેણે જેણે એ સમાચાર સાંભળ્યા અને જે તેમને થોડે ઘણે અંશે જાણતા અને ખાસ કરીને જે તેમના કાર્ય અને વ્યક્તિત્વથી પ્રત્યક્ષ પરિચિત હતા તે બધાએ એ સમાચારથી એવો ઊંડો આંચકો અનુભવ્યો છે કે જે નિકટના સ્વજનના વિયોગથી પણ ભાગ્યે જ અનુભવાય

હું મારી વાત કહું તો કહી શકું કે એમના મૃત્યુસમાચારથી હું ક્ષણભર અવાક અને આભો બની ગયો આજે દેશભરનાં તમામ છાપાઓમા અને સાર્વજનિક સ્થળોમા તેમને ભાવભીની શ્રદ્ધાંજલિ અર્પાઈ રહી છે રાષ્ટ્રપતિ, શ્રી નહેરુ વગેરે તમામ રાષ્ટ્રપુરુષો અને વિદ્વાનો ઊંડો આઘાત અનુભવી રહ્યા છે જે જન્મે છે તે મરે છે આચાર્યશ્રીનું મૃત્યુ એ જ નિયમને આધીન છે, તો એ સૌમાં આવો આઘાત પેદા કેમ કરે છે?—એ સવાલ છે એનો ઉત્તર તેમની વિશાળ માનવતા અને કારકિર્દીમાંથી મળી રહે છે આ સ્થળે એમના સીધા પરિચયમાંથી કેટલાંક સ્મરણો નોંધુ તો એમના વ્યક્તિત્વનો કાંઈક ખ્યાલ વાંચકોને આવી શકશે

આચાર્યશ્રી વકીલાત કરતા. ગાંધીજીની હાકલે જેમ બીજા અનેક વિશિષ્ટ પુરુષોને સ્વાતંત્ર્યના જંગમા આકર્ષ્યા તેમ આચાર્યશ્રીને પણ ખેંચ્યા એમણે પણ જ ખાનગી વ્યવસાય તજી દેશ અને કેળવણી માટે ભેખ લીધો. કાશી વિદ્યાપીઠ, જે રાષ્ટ્રીય સ્વાતંત્ર્યયુદ્ધનું એક ફળ છે તેમાં એ જોડાયા તેઓ જેના સંસ્થાપક હતા તેમ [illegible] અને લેખક પણ [illegible] [illegible] એમના હિન્દી 'સંઘર્ષ' સાપ્તાહિકના અને બીજા પત્રોના પ્રસિદ્ધ [illegible] [illegible] પરિચિત થયા તેઓ તત્ત્વજ્ઞાન વિષે, ખાસ કરીને બૌદ્ધ [illegible] [illegible] [illegible] તેઓ [illegible] [illegible] [illegible]

વિદ્યાયાત્રામાં બધી રીતે પ્રોત્સાહન આપતા, પણ તેઓ શુષ્ક તત્ત્વજ્ઞ ન હતા. તેઓ અર્થશાસ્ત્રના અભ્યાસી હતા એમ યાદ આવે છે કે આર્થિક કોઈ સમસ્યા પરત્વે એમનો હિંદી લેખ મેં સાંભળેલો ને હું વિશેષ મુગ્ધ બની ગયેલો દરમિયાન ગૂજરાત વિદ્યાપીઠમાં એક સમેલનમા તેઓ પધાર્યા હતા કાકાસાહેબે તેમનું ઓળખાણ આપતાં એ કહ્યાનુ યાદ છે કે આચાર્યજીની ઓળખાણ માટે એમની 'સ્વાર્થ' માસિકમા લખેલી આર્થિક સમસ્યા ઉપરની નોંધ જ પૂરતી છે. આ વખતે હુ ગૂજરાત પુરાતત્ત્વ મદિરમા અને વિદ્યાપીઠમાં જ હતો એમની સાથે પ્રત્યક્ષ સપર્ક સધાયો તેઓ ગુજરાતી ત્રૈમાસિક 'પુરાતત્ત્વ'માં છપાતા મારા લેખો વાચતા હશે એ તો મારી કલ્પનામાંય ન હતુ, પણ જ્યારે એ જાણ્યું ત્યારે તેમની સશોધક બુદ્ધિ પ્રત્યે વિશેષ આદર ઉપજ્યો આ આદરને લીધે વધારે પ્રત્યક્ષ સસર્ગમાં આવવાની દૃષ્ટિએ હુ કલકત્તાથી પાછા ફરતા પહેલી જ વાર કાશી વિદ્યાપીઠમાં તેમનો મહેમાન થયો, જ્યારે સાથે જમવા બેઠા ત્યારે ત્યાનુ અધ્યાપકમડળ, વિદ્યાર્થીમંડળ અને ભોજનની સાદગી ઇત્યાદિ વાતાવરણ જોઈ મને એક ઋષિ–આશ્રમનો અનુભવ થયો રહ્યો ત્યા લગી માત્ર વિદ્યા અને સશોધનની જ ચર્ચા. એમણે એ પણ કહ્યુ કે અમે ત્રૈમાસિક ગુજરાતી 'પુરાતત્ત્વ'ની જેમ એક સશોધનપત્ર પણ કાઢવા વિચારીએ છીએ. ઇત્યાદિ અધ્યાપક ધર્માનન્દ કૌશાંબીજી આચાર્યજીની ઉદારતા અને નિખાલસતાને લીધે એટલા બધા આકર્ષાયેલા કે જ્યારે અમદાવાદ અને મુબઈ છોડ્યુ ત્યારે એમણે કાશી વિદ્યાપીઠમા રહેવાનુ પસંદ કર્યું

૧૯૩૪ના લગભગ સપ્ટેમ્બર માસમા એક પ્રસગ આવતા મેં કાશી વિદ્યાપીઠમા આચાર્યજીને ત્યા રાતવાસો રહેવાનુ નક્કી કર્યું. તેમને જાણ કરી જ્યારે તેમના મકાને હુ ગયો ત્યારે સાંજની [illegible], [illegible] આદિની વ્યવસ્થા તો કરી જ, પણ ચર્ચા–વિચારણામા [illegible] આપ્યો કે હુ તેમના સહજ વિદ્યાપ્રેમ અને [illegible] [illegible] વાર પર્યૂસણનો પ્રસગ આવ્યો હિન્દુ યુનિવર્સિટીના જૈન વિદ્યાર્થીઓએ આપમેળે અમદાવાદ–મુબઈની પેઠે વ્યાખ્યાનમાળા [illegible]. [illegible] કોને આમત્રવા એ પ્રશ્ન મારી સામે હતો [illegible] અત્યારના ગવર્નરોને [illegible] તેમ આચાર્યજીને [illegible] [illegible] [illegible]

વિષયની એટલી બધી છણાવટપૂર્વક સ્પષ્ટ ચર્ચા કરી કે શ્રોતાઓ ધન્યતા અનુભવવા લાગ્યા. એ વખતે ડૉ. આનન્દશંકર ધ્રુવજી પણ કાશીમાં જ હતા. આમ એમનો પરિચય વધારે ઊંડો થતો ચાલ્યો.

આચાર્યજી જ્યારે પ્રસંગ આવતો ત્યારે જેલનાં મહેમાન થતા. ‘ભારત છોડો’ ની ગર્જના થઈ અને જેલો ભરાવા લાગી આચાર્યજી કાંઈ પાછા થોડા જ રહે? પણ જેલમાં તેઓ જતા ત્યારે એક ઉગ્ર તપ કરતા એમનુ તપ એટલે નવુ નવું અધ્યયન અને લેખન. એક વાર મુબઈ ભારતીય વિદ્યાભવનમાં હું બેઠેલ. શ્રી એન. સી. મહેતા હતા, ત્યાં તો આચાર્યજી અચાનક આવી પહોંચ્યા. હું એમના દમના વ્યાધિ વિશે અને જેલમા કેમ રહ્યું એ વિશે પૂછું તે પહેલાં તો એમણે જેલમાં પોતે કરેલ સાધનાની વાત કાઢી. મને કહે કે વસુબન્ધુના ‘અભિધર્મકોશ’ નું મારે ભાષાન્તર કરવુ હતુ. પહેલાં તો હું જેલમાં ફ્રેન્ચ શીખ્યો. ફ્રેન્ચ ઉપરથી અંગ્રેજી અને હિંદી તરજૂમો કર્યો. ઘણુ કરી સાથે લાવેલ એ હિંદી તરજૂમાની મોટી મોટી દળદાર કોપીઓ મને બતાવી. એમની આ સાધના સાંભળી હું તો છક થઈ ગયો જ્યારે આચાર્યજી આવી દાર્શનિક અને બીજી વિદ્યાઓની ઉપાસના કરતા ત્યારે પણ એમનું વ્યવહારુ રાજકારણ ચાલતું જ હોય. પણ એમની વિશેષતા એ હતી કે તેઓ રાજકારણી જૂથાણાથી અલિપ્ત હતા.

આચાર્યજી લખનૌ યુનિવર્સિટીમાં ઉપકુળપતિ હતા ત્યા ઓરિએન્ટલ કૉન્ફરન્સ ભરાઈ. લખનૌ વિશ્વવિદ્યાલયના પ્રાંગણમાં જ અમારો ઉતારો. અનેક જવાબદારીઓ અને નાદુરસ્ત તબિયત, છતાં મારા જેવા સાધારણ માણસને આમ કાંઈક જતા–આવતાં જોઈ લે તો પકડી પાડે. એક વાર તેઓ પોતાના મકાને લઈ ગયા અને અનેક હિંદુ–મુસલમાન સાક્ષર–ગૃહસ્થો સાથે પરિચય પણ કરાવ્યો. વિદાય થતી વખતે અમને કહે કે હું તમારી બધાની ખબર લઈ શક્યો નથી. ત્યાં મહેમાનો માટે વ્યવસ્થા તો એટલી બધી સારી હતી કે અમે એની ધારણા પણ નહિ રાખેલી. પણ હવે પરિચયનો છેલ્લો અધ્યાય આવે છે.

હું વૈશાલીથી પાછો ફરી કાશીમાં આવી રહ્યો સખત ઉનાળો હતો. આચાર્યજી તે વખતે હિંદુ યુનિવર્સિટીમાં ઉપકુળપતિ આમ તો બધા જ ઉપકુળપતિઓ દુર્દર્શન અને દુઃસમાગમ હોય છે, પણ આચાર્યજી વિશે હું એમ જ માનતો કે એમને નડતું એ તો મગની વાત છે. એ હતા

અજાતશત્રુ અને ફકીરી વૃત્તિના વિદ્યા–તપસ્વી. એમને જાણ થઈ કે હું અમુક જગ્યાએ છુ. હજી તો હું એમને ત્યાં જવાનો, ખાસ કરી પ્રથમથી સૂચના આપી જવાનો, વિચાર જ કરતો હતો ત્યાં તો તેઓશ્રી પં. શ્રી દલસુખ માલવણિયાના મકાને આવી પહોંચ્યા. મે ખરા હૃદયથી કહ્યુ કે હુ આવવાનો જ હતો, પણ એ તો વિનય અને વિદ્યામૂર્તિ. હું રહ્યો એટલા દિવસમાં કેટલીયવાર આવી ગયા. તેમની સાથે બીજા પંડિતો અને પ્રોફેસરો હોય જ આ બધી વખતે ચર્ચા શાસ્ત્ર અને વિદ્યાની જ થાય એમણે શું શું લખ્યુ છે, શું લખવા અને છપાવવા ધારે છે ઇત્યાદિ તો કહે જ, પણ આપણે કાંઈ નવી અને જ્ઞાતવ્ય વાત કહીએ તો ધ્યાન દઈ સાભળે. એમને બૌદ્ધ વિષય ઉપર કાંઈક છપાવવાનુ હતુ પોથી જૂની અને લિપિ દુષ્પઠ જ્યારે મે કહ્યું કે આ બધી બાબતમા તમારી પાસે જ રત્ન પડ્યું છે, ત્યારે આચાર્યજીએ જાણ્યુ કે હુ શ્રી માલવણિયાજી વિશે સંકેત કરી રહ્યો હતો ત્યારબાદ એમણે પં. શ્રી દલસુખભાઈ ઉપર અનન્ય વિશ્વાસ મૂક્યો અને તેમને અનુભવ થયો કે તેમનો વિશ્વાસ કેટલો સાચો ઠર્યો છે આચાર્યજીએ જ અધ્યાપક પદ્મનાભ જૈનને અમદાવાદથી કાશીમા આકર્ષ્યા હતા અને પોતાનાં છપાનાં બૌદ્ધ લખાણોની પૂર્તિ અને શુદ્ધિ કરવાનુ કામ તેમને જ ભળાવ્યુ હતું, એમ મારુ સ્મરણ છે.

આચાર્યજીએ ત્યાગનુ જે ઉદાહરણ બતાવ્યુ છે તે તો બોર રોમાંચક છે એમને મળતા માસિક વેતનમાંથી કુટુબ માટે બહુ થોડો ભાગ બચતો, એમ તેમના સમીપ રહેતા એક વિશ્વાસી મિત્રે મને તે વખતે જ કહેલુ.

આવો એક મહામના વિદ્યાવૃદ્ધ અજાતશત્રુ પુરુષ સ્થૂળ જીવનને સંકેલી લે ત્યારે એની ખોટ એ રાષ્ટ્રીય ખોટ છે ગાંધીજીએ પોતાના આધ્યાત્મિક તેજથી જે ગ્રહો અને ઉપગ્રહોમાં તેજ પાથર્યું હતુ એવા એક વિશિષ્ટ તેજસ્વી તારકનો અસ્ત થાય ત્યારે દેશ આવાન અનુભવે એ સ્વતઃજ છે. આપણે આચાર્યજીના ગુણોનું અને એમની નિસ્વાર્થ પ્રવૃત્તિનું અનુસરણ કરીને જ તેમનુ ખરું સ્મરણ કરી શકીએ.

'જૈન' તા. ૨૫-૨-૧૯૫૬

શાસ્ત્રોદ્ધારક સ્વ. મુનિશ્રી ચતુરવિજયજી

[૨૭]

ડિસેમ્બરની ચોથી તારીખે અણધાર્યા જ પરમાનંદભાઈ મારી કોટડીમાં આવી ઊભા રહ્યા. હું મિત્રો સાથે કાંઈક વિદ્યાગોષ્ઠિમાં જ પડેલો હતો. પ્રસંગ નીકળતાં મેં મુનિશ્રી ચતુરવિજયના સ્વર્ગવાસ વિષે આવેલ તારની તેમને વાત કહી, અને તેમણે તુરત માગણી કરી કે તમે 'પ્રબુદ્ધ જૈન' વાસ્તે તેમને વિષે કંઈક લખી આપો.

હું ઉક્ત મુનિશ્રીના સ્થૂળ અને સૂક્ષ્મ જીવનથી પૂર્ણ તો પરિચિત નથી જ પણ હું અમુક લાંબા વખત લગી તેમના થોડા પરિચયમાં આવ્યો છું. ખાસ કરી મારી અને તેમની વચ્ચે સાહિત્યિક અને શાસ્ત્રીય સંબંધ વધારે હતો તેથી મારા ઉપર તેમના જીવનના જે સંસ્કારો પડેલા મને યાદ છે તેનું ટૂંકમાં પ્રદર્શન કરાવીને જ ભાઈ પરમાનંદભાઈની ઇચ્છાને મૂર્તરૂપ આપી શકું.

પ્રવર્તક અને સર્વાધિક વયોવૃદ્ધ તરીકે પ્રસિદ્ધ પૂજ્ય મં શ્રી કાન્તિવિજયજીના એ શિષ્ય હતા સમભાવમાં અને જૈન સાહિત્યના ઉદ્ધારમાં પ્રસિદ્ધ મુનિ શ્રી પુણ્યવિજયજીના એ ગુરુ થાય કાળધર્મ સમયે એમની ઉંમર કેટલી હતી તે ચોક્કસ નથી જાણતો પણ આશરે સિત્તેરેક વર્ષની તો હશે. તેમની કૌટુંબિક તેમ જ શિષ્યપરિવારને લગતી હકીકત તો કોઈ તજ્જ્ઞ જ લખશે. હું કાશીમાંથી વિદ્યાભ્યાસ કર્યા બાદ જ્યારે ગુજરાતમાં સર્વપ્રથમ કામની દૃષ્ટિએ ગયો ત્યારે મને થયેલ અનુભવ ઉપરથી મેં નક્કી કર્યું છે કે મારે સાધુ વર્ગને ભણાવવા ક્યાંઈ તેમની પાસે ન જવું અને ન રહેવું. ખાસ કરી અમુક બંધન સ્વીકારીને તો કોઈ સાધુઓને ન જ ભણાવવા. જો તેઓ જિજ્ઞાસા દૃષ્ટિથી મારી પાસે આવે તો તેમને પૂર્ણ કાળજી અને આદરથી શીખવવું આ વિચારને પરિણામે મેં મારું કાર્યક્ષેત્ર બદલવાનો જ નિર્ણય કર્યો દરમિયાન અમુક પ્રામાણિક વ્યક્તિઓ તરફથી મને કહેવામાં આવ્યું કે મારા એ નિર્ણયને અમલમાં મૂકવા પહેલાં મારે એક વાર પ્રવર્તકજીનો પરિચય કરવો મેં એ સલાહ સ્વીકારી અને પ્રવર્તકજીના

પત્રને લીધે હું પાટણ ગયો. ત્યાં જ તેમના શિષ્ય સ્વર્ગવાસી મુનિ ચતુરવિજયજીનો પ્રથમ પરિચય થયો

તેમની નમ્રતા, જિજ્ઞાસા અને નિખાલસતાએ મને બાંધી લીધો ત્યાં તે વખતે મારું કામ તેમના લઘુમત શિષ્ય મુનિશ્રી પુણ્યવિજયજીને શીખવવાનું હતુ, પણ મે જોયું કે અહી તો જિજ્ઞાસા અને કાર્યપદ્ધતિની વિશેષતાનું રાજ્ય છે. તિલકમંજરી શીખવતો હોઉં કે કાવ્યાનુશાસન, પણ તે વખતે શિખનારાઓનુ એક મંડળ જામે, તેમાં સાધુઓ સાથે અધિકારી શ્રાવકો પણ રહેતા એટલુ જ નહિ પણ સાથે સાથે શીખવાતા ગ્રંથનુ સંશોધન પણ થતુ તાડપત્ર અને કાગળની જૂની તેમ જ સારી સારી પ્રતિઓ જુદા જુદા મુનિઓ સામે રાખે અને સંશોધન સાથે પાઠ ચાલે મારે વાસ્તે આ રીતે પુસ્તક સંશોધનનો માર્ગ પ્રથમ જ હતો, પણ મને એમા વધારે રસ પડ્યો અને ભણવા-ભણાવવાનુ સ્થિર ફળ વધારે જણાવા લાગ્યુ તે વખતે પણ મુનિશ્રી પુણ્યવિજયજી છેક નાના જોકે પાઠમા કેન્દ્રસ્થાને એ જ હતા, છતાં સંશોધન-કાર્યમાં કેન્દ્રસ્થાન ઉક્ત સ્વર્ગવાસી મુનિનુ હતું. તેમના સહવાસમા હુ આવ્યો તે અગાઉ તો તેમણે કેટલાય સંસ્કૃત-પ્રાકૃત પુસ્તકો પ્રસિદ્ધ કર્યા હતાં, અને અનેક ભંડારોની ધરમૂળથી સુધારણા અને વ્યવસ્થા કરી હતી હુ જોતો કે તેઓ જેમ એક બાજુ એકસાથે અનેક પુસ્તકો શોધતા અને છપાવતા જાય છે તેમ બીજી બાજુ સૈકાઓ થયા સડતા અને અવ્યવસ્થાથી નાશ પામતાં કીમતી લિખિત પુસ્તકોનું નવુ લેખન કાર્ય પણ સતત કર્યે જાય છે

તે જમાનામા એટલે ઈ. સ ૧૯૧૪-૧૫ની આસપાસ સુધીમાં પુસ્તક-પ્રકાશનમા બે પ્રથાઓ ખાસ રૂઢ હતી એક તો પુસ્તક ગમે તે વિષયનુ હોય છતાં જૈન પરંપરા એને પત્રાકારે જ પ્રસિદ્ધ કરતી અને બીજી પ્રથા એ હતી કે જો પ્રસ્તાવના જેવુ કાંઈ લખવું હોય, તો તે સંસ્કૃતમાં જ લખવામા મહત્તા મનાતી એકવાર સ્વ મુનિશ્રીએ પોતાની લખેલ સંસ્કૃત પ્રસ્તાવના મને જોઈ જવા કહ્યું. મેં તે જોઈ તો લીધી, પણ સાથે જ તેમને કહ્યુ કે પ્રસ્તાવના આદિ સંસ્કૃતમાં લખો છો, તેનો શો હેતુ? તેમણે જવાબમા બીજા અનેક પ્રસિદ્ધ મુનિઓના ઉદાહરણ આપી એ પ્રથાની પુષ્ટિ કરી મેં કહ્યુ: જુઓને અમુક અમુક પ્રસિદ્ધ વિદ્વાનોની સંસ્કૃત પ્રસ્તાવના એમાં શબ્દાડંબર સિવાય શુ હોય છે? વળી અમુક પ્રસ્તાવનાઓ જુઓ! એના મોઢે [illegible] આશ્રિત પંડિત [illegible] [illegible]

પ્રશંસા કરતો દેખાય છે. પછી ભલે તે છેક જ જૂઠાણાથી ભરેલી હોય! લચ્છેદાર વિશેષણ સિવાય તેમાં બીજું શું હોય છે? જો એ જ સંસ્કૃતના લેખકોને એમ કહેવામાં આવે છે કે મહેરબાની કરી તમે એનો અનુભવ સભળાવો તો કાં તો એમાંથી સાંભળનાર શૂન્ય જ મેળવવાનો અને સભળાવનાર પોતે શરમાવાનો. વળી મેં વધારે સખત ટીકા કરતાં એ પણ કહ્યુ કે સસ્કૃતમા લખવુ એનો અર્થ આશ્રયદાતાઓ અને અભણ દુનિયાની દૃષ્ટિમાં મહત્ત્વ સાચવવુ અને સાથે સાથે પોતાનુ અજ્ઞાન પોષ્યે જવુ, એ જ છે. જો લેખકને કાંઈ સાચુ અને નક્કર કહેવાનુ જ હોય તેમ જ અનેક વાંચનાર સમક્ષ કાંઈ મૂકવા જેવુ સાચે જ હોય તો તેઓ ચાલુ લોકભાષામા લખતાં શાને સકોચાય છે? અલબત્ત, પાંડિત્ય પ્રકટ કરવુ જ હોય તો તેઓ સાથે સાથે ભલે સસ્કૃતમાં પણ લખે. પરતુ જેઓ માત્ર સસ્કૃતમા પ્રસ્તાવના વગેરે લખે છે, તેઓ મોટેભાગે વાચકોને અંધારામાં રાખવા સાથે પોતાના અજ્ઞાનને છુપાવે છે. મારી આ ટીકા સાચી હતી કે નહિ તે કહેવાનુ આ સ્થાન નથી. પણ અહીં તો એટલું જ કહેવાનું છે કે મારા કથનનો જરા પણ અવિચારી સામનો કર્યા સિવાય સ્વ. મુનિશ્રીએ ત્યારબાદ મોટે ભાગે પ્રસ્તાવના સસ્કૃતમાં લખવાનો શિરસ્તો બદલી નાખ્યો અને પરિણામે તેમનાં પ્રકાશનોમાં તથા તેમના શિષ્યના પ્રકાશનોમાં આજે અનેક મહત્ત્વની ઐતિહાસિક વસ્તુઓ ગુજરાતી ભાષા દ્વારા જાણવી સુગમ બની છે. આ એમની સત્યગ્રાહી પ્રકૃતિએ મને વિશેષ વશ કર્યો

પત્રાકારે પુસ્તક છપાવવુ એમાં જેટલી સગવડ સાધુઓની હતી તેટલી જ અગવડ વિદ્યાર્થીઓ, પ્રોફેસરો અને લાયબ્રેરીના સચાલકોની હતી. પણ પત્રાકારે છપાવવુ એ જાણે ધર્મનું વાસ્તવિક અગ જ હોય તેમ ત્યારે કડક રીતે મનાતું જ્યારે મે અને બીજા સમયજ્ઞ મિત્રોએ સ્વ મુનિનું ધ્યાન આ બાબત તરફ ખેચ્યું ત્યારે તેઓ તરત સમજી ગયા અને પછી એમણે એવો માર્ગ સ્વીકાર્યો કે સાધુઓની પત્રાકારની રુચિ પણ સચવાય અને દેશ-વિદેશના વિદ્વાનોની પુસ્તકાકાર પુસ્તકની માગણી પણ સતોષાય એક રીતે જોતાં તો આ બાબત નજીવી લાગે છે. પણ વિદ્વાનો અને પુસ્તકાલય-સંચાલકોની દૃષ્ટિએ આ બાબત કેટલી ઉપયોગી છે, તે સહેજે સમજાશે આજે પણ સનાતન પ્રકૃતિના સંખ્યાબધ સાધુઓ અને આચાર્યો છે, જેઓ ગમે તેવી ઉપયોગિતા છતાં પુસ્તકાકાર પ્રકાશનને ઘૃણા નહિ તો ઉપેક્ષાની દૃષ્ટિથી અવશ્ય જુએ છે. પરિણામ એ આવ્યું છે કે પત્રાકાર ગ્રથ મોજૂદ છતાં એની પુસ્તકાકાર આવૃત્તિ પ્રસિદ્ધ કરવામા કેટલીક સંસ્થાઓ અને વિદ્વાનોને

શ્રમ અને ખર્ચ બન્ને કરવાં પડે છે.

સ્વ. મુનિશ્રીની ખાસ ધ્યાન ખેંચે એવી એક વિશેષતા એ હતી કે તેઓ જ્યા જતા ત્યા પ્રથમ ત્યાના ભંડારનું કામ હાથમાં લેતા. જો સૂચિ ઠીક ન હોય તો તે બનાવતા, પોથીઓને નવાં મજબૂત બંધનોથી બાધતા, ક્રમવાર ડાબડામાં ગોઠવતા; એટલું જ નહિ પણ જ્યા ગ્રન્થો રાખવો માટે કબાટ કે એવી બીજી સારી સગવડ ન હોય ત્યા તે તૈયાર કરાવતા એ રીતે ત્યાંના ભડારને વ્યવસ્થિત અને ટકાઉ બનાવતા. પુસ્તકસૂચિ પ્રસિદ્ધ કરતા આની સાથે સાથે તેઓશ્રીએ નવા કે જૂના ભડારમાંથી મળી આવતા નાના મોટા બધા જ ગ્રથોની નવી લિખિત નકલો કરાવી તેનો એક પૂર્ણ અને ઉપયોગી સંગ્રહ કર્યો છે જે આજે વડોદરામા વિદ્યમાન છે. અને ગમે તે વિદ્વાનનું મસ્તક નમાવવા માટે બસ છે

પુસ્તકો છપાવવા અને જૂના ઉપરથી નવા લખાવવાં તેમ જ પોતે હોય ત્યાના ભડારોને સુસસ્કૃત કરવા એ કામ જેવુ તેવુ અગર ગમે તે કરી શકે તેવું સરળ નથી વળી આ જ કામના અગ તરીકે જે બીજા કેટલાંક કામ છે, તેમા પણ સ્વ મુનિશ્રી સતત રોકાયલા રહેતા કાગળ અને તાડ-પત્રની જૂનામા જૂની લિપિઓ અને ગમે તેવી જટિલ, ઘસાયેલી કે છેક જ ભૂસાયેલી હોય તેને વાંચવી એ કામ સાહિત્યોદ્ધારનુ પ્રથમ અગ છે અને કોઈપણ ખરો ઐતિહાસિક એન જાણે તો એનું કામ લગડુ જ રહે એ જ રીતે નકલો કરવાનું અને સુદરતમ અક્ષરોમા યોગ્ય રીતે પ્રેસકોપી કરવાનું કામ પણ વિદ્વાન માટે તેટલુ જ આવશ્યક છે સ્વ મુનિશ્રીએ એ બન્ને કળાઓ અસાધારણ રીતે સાધેલી ઈ. સ ૧૯૨૧ થી ૧૯૩૫ સુધીમાં મને અનેક ગ્રથોના સશોધન પ્રસગે, તેમની આ બન્ને કળાઓની કિંમત આંકવાની તક મળી તેઓ જિજ્ઞાસુ અને યથાર્થી શિષ્યાદિને પાત્ર આ વસ્તુ શીખવતા તેમના હાથે પ્રતિવાચન અને મુદ્રણ લેખનનુ કામ શિખેલા કેટલાયે સાધુ અને ગૃહસ્થોને હું જાણું છુ કે જેઓ આજે કાં તો સાહિત્ય-સેવાના ક્ષેત્રમા રોકાયેલા છે અથવા તો નિર્વાહ અર્થે એ કળાનો ઘણો એક સરસ ઉપયોગ કરી રહ્યા છે મે બે-ચાર યોગ્ય વિદ્યાર્થીઓને તેમની પાસે પ્રતિવાચન અને પ્રતિલેખનની કળા શીખવા મોકલેલ અને તેમણે પ્રેમ ધૈર્યપૂર્વક એ આગંતુકોને એ વસ્તુ શિખવાડેલી

સ્વ મુનિશ્રી, પ્રવર્તક કાન્તિવિજયજીની [illegible] -ની ભાવનાને મૂર્તરૂપ આપનાર [illegible] [illegible] સ્થાનને યોગ્ય પાત્રમા તેઓ [illegible]

પુણ્યવિજયજીને જાણે છે અને જેઓને તેમનાં જીવિતકાર્યોનો પરિચય છે તેમને કહેવાની ભાગ્યે જ જરૂર જણાય.

સ્વ મુનિશ્રીમાં એક વિદ્વાનને છાજે અને ઐતિહાસિકને શોભે એવી અનેક બાબતો પરત્વે જીવતી જાગતી માહિતી તેમ જ ચોકસાઈ હતી. અમુક ગ્રંથકારની કૃતિઓ આજે કેટલી અને કઈ કઈ ઉપલબ્ધ છે અને તે ક્યાં ક્યાં છે, અમુક ગ્રંથકારનો સમય શો અને એક જ નામના અનેક ગ્રંથકારો હોય ત્યાં તેમની વિશેષતા શી, અગર ઓળખાણ શી, કોઈ સ્ત્રી અગર સાધ્વી જૈન પરંપરામાં ગ્રંથકાર કે ગ્રંથ-લેખિકા થઈ છે કે નહિ, અમુક રાજ્યકર્તાના સમયમાં જૈન સાધુ કે શ્રાવકની સ્થિતિ શી હતી, જૂના વખતમાં તાડપત્રો ક્યાંથી આવતાં, કેમ સુધારાતાં, કેમ લખાતાં, લખનારાઓની સ્થિતિ શી હતી વગેરે અનેક પ્રશ્નો વિષે ઉક્ત સ્વ મુનિશ્રી એક પ્રમાણભૂત ગ્રંથ જેવા હતા

એમનો સ્વર્ગવાસ ગુજરાતની અને જૈન સાહિત્યની રાજધાની પાટણ કે જ્યાં એમનું દીર્ઘકાળ જીવન-કાર્ય ચાલી રહ્યું હતું ત્યાં ડિસેમ્બરની પહેલી તારીખે રાત્રિના થયો પાટણના સખ્યાબંધ ભંડારો, પ્રાચીન મંદિરો ત્યાંનું વિવિધ શિલ્પ, પાટણની ચડતી-પડતીના પ્રસંગો, એ બધા વિષે એમનું જે વિપુલ જ્ઞાન હતું તે તેમનાથી પરિચિત એવા કોઈથી ભાગ્યે જ અજાણ્યું છે તેઓશ્રી એક રીતે પોતાનું જીવનકાર્ય ઠેઠ પાકી ઉમર સુધી કરી ગયા છે અને બીજી રીતે તે પોતાની આવડતને વ્યાજ સાથે યોગ્ય પાત્રમાં મૂકી પણ ગયા છે. ઉમરની દૃષ્ટિએ તેમનો સ્વર્ગવાસ એટલો અકાળ ન ગણાય, પરંતુ તેમના અતિ વયોવૃદ્ધ ગુરુશ્રી પ્રવર્તકજીના વૃદ્ધતમ જીવનની દૃષ્ટિએ જોતાં એમ જરૂર મનમાં થઈ આવે કે સ્વર્ગવાસી મુનિનું સ્થૂળ જીવન થોડુંક વધારે ચાલ્યું હોત તો સારું. તેઓશ્રીના શિષ્યો સંખ્યામાં બહુ નથી, પણ જે છે તે ગુણદૃષ્ટિએ ખૂબ ઊંચું સ્થાન ધરાવે છે.

હું ધારું છું આટલાં પણ મધુર સ્મરણો તેમના પ્રત્યે આદર ઉત્પન્ન કરવા માટે અને તેમનું જીવનકાર્ય જાણવા માટે બસ છે પુસ્તકનું સંશોધન અને સંપાદનકાર્ય કરવામાં મને જે અનેક પ્રેરક બળો પ્રાપ્ત થયાં છે, તેમાં સ્વર્ગવાસી મુનિશ્રીનું સ્થાન મહત્ત્વ ભોગવે છે, એ દૃષ્ટિએ હું હમેશ તેમનો કૃતજ્ઞ રહ્યો છું

—'પ્રબુદ્ધ જૈન' તા ૩૧-૧૨-૧૯૩૯

મંગળયાત્રા

[૧]

જીવન પોતે જ યાત્રામય છે માણસ કે બીજું પ્રાણી જીવે છે તે સાથે એની જીવનયાત્રા સંકળાયેલી જ છે. એ એક અથવા બીજી રીતે પ્રગતિ, અને અપ્રગતિના ચક્રમા ફેરા ફર્યા જ કરે છે. એવા ફેરાઓને આપણે જાણતા પણ હોઈએ છીએ ઘણીવાર જાણવા છતાં જાણે અજાણ્યા હોઈએ તે રીતે પણ વર્તીએ છીએ. એવા અજ્ઞાનથી ઉગરવા અને કાંઈક જાણતા હોઈએ તો તેથી વધારે ઊંડું, વધારે સ્પષ્ટ અને વધારે યથાર્થ જાણવાની દૃષ્ટિએ ધર્મજીવી પુરુષોએ મંગળયાત્રા વિષેનો પોતાનો અનુભવ આપણી સમક્ષ રજૂ કર્યો છે. તે યાત્રા કઈ અને કેવી એ જાણીએ તો પજુસણના દિવસો કાંઈક સાર્થક બને

મંગળયાત્રાનું પહેલુ લક્ષણ એ છે કે જે પરિમિતમાથી અપરિમિત ભણી લઈ જાય, જે લઘુતામાથી મહત્તા સર્જે, જે અલ્પને ભૂમા (મોટા) બનાવે. બીજું લક્ષણ એ છે કે તે યોગ્ય રીતે જ ઉપર ઉપરના પગથિયે ચડાવે, જેથી એના યાત્રિકને પડવા વારો કે પીછેહઠ કરવા વારો ન આવે. ત્રીજું અને મહત્ત્વનું ખાસ લક્ષણ એ છે કે એ તેના યાત્રિકમાં કદી પણ વિષાદ, કંટાળો કે થાક આવવા ન દે.

મનુષ્યમા કાંઈ પણ સૌની નજરે તરે તેવું ઉચિત તત્ત્વ હોય તો તે તેની જિજ્ઞાસાવૃત્તિ છે જાણવુ, કાંઈક જાણવું, નવું નવું જાણવું, ગમે તે રીતે પણ જાણવુ ને જાણવું જ, એ માણસની સહજ વૃત્તિ છે. એ વૃત્તિ તેની મંગળયાત્રાનો મૂળ પાયો છે. જિજ્ઞાસાને લઈને જ માણસ જુદી જુદી ઇંદ્રિયોથી જ્ઞાન મેળવે છે. જ્યા ઇંદ્રિયોની ગતિ ન હોય એવા વિષયોને કે એવી બાબતોને તે વિશ્વાસપાત્ર મનાતાં શાસ્ત્રોમાથી [illegible] જ્ઞાન મેળવે છે. આ ભૂમિકા મંગળયાત્રાની પહેલી મજલ છે આ [illegible] છે. તેમાં માણસ નક્ષત્રના, [illegible], ગામના, [illegible], [illegible] અનેક વિષયોનું જ્ઞાનભંડોળ સંચિત કરતો જાય છે. [illegible] આત્મા પ્રફુલ્લ થાય છે, [illegible] માણસ [illegible] જિજ્ઞાસા

તત્ત્વ એને એ મજલની કોઈક ક્ષણે ધક્કો મારે છે અને કહે છે કે તું નવુ જાણ પણ માત્ર નવુ જ નહિ પણ તે નવુ સત્ય હોવું જોઈએ. તે પ્રેય નહિ પણ શ્રેય હોવુ જોઈએ જિજ્ઞાસાના આ અંતર્મુખ ધક્કાથી માણસ હવે પોતાની દિશા બદલે છે. પહેલાં તે નવુ જાણવાની ધૂનમાં યાત્રા કર્યે જતો, હવે એને નવુ જાણવાની સાથે સત્ય અને શ્રેય શુ છે એ જાણવાની ધૂન પ્રગટે છે અને અહીથી જ એની પહેલી મજલ પૂરી થઈ બીજી મજલ શરૂ થાય છે

બીજી મજલમાં માણસ મુખ્યપણે ઇંદ્રિયોના બાહ્ય વ્યાપારો દ્વારા જ્ઞાન મેળવવાને બદલે આંતરિક ઇંદ્રિય મન દ્વારા પ્રથમ મેળવેલ જ્ઞાનનુ અને નવા મેળવાતા જ્ઞાનનુ સશોધન શરૂ કરે છે. પહેલી મજલમાં સચિત થયેલ જ્ઞાનભડોળ કે તેના સસ્કારોનુ અતર્નિરીક્ષણ દ્વારા પૃથક્કરણ કરી તેમાં સાર શું છે, અસાર શું છે તેનો વિવેક કરે છે. મગળયાત્રાની આ બીજી મજલ છે પહેલી મજલ એટલી બધી શ્રમસાધ્ય નથી જેટલી બીજી છે એટલે સ્વાભાવિક રીતે જ બીજી મજલમા પ્રવેશ કરનાર અને તેમાં આગળ વધનાર ઓછા જ માણસો મળી આવે. પણ જેઓ બીજી મજલમાં દાખલ થયા નથી હોતા તેને પણ વહેલા કે મોડા ઇચ્છાએ કે અનિચ્છાએ એ ભણી ધકેલાવુ જ પડે છે. તે વિના કોઈને સતોષ થતો જ નથી

બીજી મજલ માણસને ઓછુ કે વત્તું સત્ય તારવી આપે છે એ સત્યનુ ભાન જ પછી તેને તેની મગળયાત્રામા મુખ્ય પાથેય બને છે એ પાથેયને બળે હવે તે આગળ ને આગળ કૂચ કરવા ઉજમાળ બને છે એનામા વીર્યોલ્લાસનુ એક–ખાળી ન શકાય–એવુ મોજુ પ્રગટે છે, જે તેને મગળયાત્રાની છેલ્લી મજલમા પ્રવેશ કરાવે છે. આ છેલ્લી મજલ એટલે જે સત્ય અને શ્રેય જણાયુ તેને જીવનમા વણી નાખવું એવી રીતે કે જીવન અને સત્ય એ બે હવે જુદા ન રહે જીવન છે તો તે સત્ય જ હોવું જોઈએ નિર્દોષ અને નિષ્કલક જ હોવું જોઈએ સત્ય છે તો તે જીવન-બાહ્ય રહી જ ન શકે એ બેનુ દ્વૈત વિરમે ત્યા જ મગળયાત્રાની છેલ્લી મજલનું છેલ્લું વિશ્રામસ્થાન

જીવનસાધનાના વિકાસક્રમને જ મંગળયાત્રા કહેવામા આવી છે એની ઉપર સૂચવેલ ત્રણ મજલોને અનુક્રમે શ્રુતમયી, ચિતામયી અને પ્રજ્ઞામયી ભાવના તરીકે બૌદ્ધ વિદ્વાનોએ ઓળખાવેલ છે, જ્યારે ઉપનિષદના ઋષિઓએ

શ્રવણ, મનન અને નિદિધ્યાસન–સાક્ષાત્કાર શબ્દથી સૂચવી છે. જૈન ચિંતકોએ પણ ઇચ્છાયોગ, શાસ્ત્રયોગ અને સામર્થ્યયોગ જેવા સંકેતોથી એનું સૂચન કર્યું છે ખ્રિસ્તી ધર્મ, ઇસ્લામ અને પારસી વગેરે ધર્મોમાં પણ જુદા જુદા નામથી મંગળયાત્રાનું વર્ણન છે જ

ધર્મના દિવસો માત્ર શ્રવણ માટે કે શ્રુતમયભાવના માટે નથી. એ સ્થિતિ તો રોજ-બ-રોજના જીવનમાં પણ ઓછે વત્તે અંશે ચાલુ રહે જ છે પણ એ દિવસો આપણને મંગળયાત્રાની, બીજી મંજલ ભણી વાળવા માટે નિર્માયા છે આપણે સાંભળેલું વિચારીએ, સત્યાસત્યનો વિવેક કરીએ એ જ વ્યક્તિગત અને સામૂહિક ધર્મપર્વનો મુખ્ય હેતુ છે. સત્ય થોડા પણ અંશે બરાબર સમજાય તો અસત્ય સામે થવાની હિંમત પ્રગટ્યા વિના રહેતી જ નથી સત્ય સેવવા માટે ગમે તેવા જોખમો ખેડવાનો ઉત્સાહ એમાંથી જ પ્રગટે છે આ રીતે વ્યક્તિગત અને સામૂહિક જીવન શુદ્ધિ ભણી વળે છે

મંગળયાત્રા પૂર્ણ કરી હોય એવા અનેક નરપુંગવો દુનિયાના જુદા જુદા ભાગમાં થઈ ગયા છે મંગળયાત્રા અસાધ્ય નથી એ વસ્તુ પણ આપણી વચ્ચે જ થઈ ગયેલા પુરુષોએ દર્શાવી આપી છે. ગાંધીજીએ પોતાની ઢબે એ જ મંગળયાત્રા સાધી છે, જેમને આપણામાંના ઘણાએ નજરોનજર જોયા છે શ્રી અરવિંદને નહિ જોનાર પણ તેમના લખાણોથી અને મર્મ-નથી તેમની મંગળયાત્રાની પ્રતીતિ કરી શકે છે. મંગળયાત્રાની સાધ્યતા વિષે સંદેહ હોય તેને દૂર કરવા જ જાણે વિનોબા ભાવેએ પ્રસ્થાન આદર્યું ન હોય એમ એમનું સમગ્ર જીવન, વચન અને વર્તન દર્શાવી આપે છે

મંગળયાત્રાની પહેલી મંજલમાં દેશ, જાતિ, પંથ, વેશ, [illegible] આદિનો અભિનિવેશ રહે છે, જે માણસને એક કે બીજી રીતે [illegible] છે બીજી મંજલ શરૂ થતાં જ એ અભિનિવેશ ઢીલા થવા લાગે છે અને બીજી મંજલમાં જેમ જેમ આગળ વધાય તેમ તેમ અભિનિવેશો [illegible] ચારે ગળતા જાય છે [illegible] જ એ મંજલમાં [illegible] સમજાય છે માનસિક વિકારો અને દુરાગ્રહો [illegible] છે ત્રીજી મંજલમાં [illegible] અંત છે કે તેને જીવનના [illegible]

તત્ત્વ એને એ મજલની કોઈક ક્ષણે ધક્કો મારે છે અને કહે છે કે તું નવું જાણ પણ માત્ર નવું જ નહિ પણ તે નવું સત્ય હોવું જોઈએ. તે પ્રેય નહિ પણ શ્રેય હોવું જોઈએ જિજ્ઞાસાના આ અંતર્મુખ ધક્કાથી માણસ હવે પોતાની દિશા બદલે છે પહેલાં તે નવું જાણવાની ધૂનમાં યાત્રા કર્યે જતો, હવે એને નવું જાણવાની સાથે સત્ય અને શ્રેય શું છે એ જાણવાની ધૂન પ્રગટે છે. અને અહીંથી જ એની પહેલી મજલ પૂરી થઈ બીજી મજલ શરૂ થાય છે

બીજી મજલમાં માણસ મુખ્યપણે ઇંદ્રિયોના બાહ્ય વ્યાપારો દ્વારા જ્ઞાન મેળવવાને બદલે આંતરિક ઇંદ્રિય મન દ્વારા પ્રથમ મેળવેલ જ્ઞાનનું અને નવા મેળવાતા જ્ઞાનનું સંશોધન શરૂ કરે છે પહેલી મજલમાં સંચિત થયેલ જ્ઞાનભંડોળ કે તેના સંસ્કારોનું અંતર્નિરીક્ષણ દ્વારા પૃથક્કરણ કરી તેમાં સાર શું છે, અસાર શું છે તેનો વિવેક કરે છે. મંગળયાત્રાની આ બીજી મજલ છે. પહેલી મજલ એટલી બધી શ્રમસાધ્ય નથી જેટલી બીજી છે. એટલે સ્વાભાવિક રીતે જ બીજી મજલમાં પ્રવેશ કરનાર અને તેમાં આગળ વધનાર ઓછા જ માણસો મળી આવે. પણ જેઓ બીજી મજલમાં દાખલ થયા નથી હોતા તેને પણ વહેલા કે મોડા ઇચ્છાએ કે અનિચ્છાએ એ ભણી ધકેલાવું જ પડે છે. તે વિના કોઈને સંતોષ થતો જ નથી

બીજી મજલ માણસને ઓછું કે વત્તું સત્ય તારવી આપે છે એ સત્યનું ભાન જ પછી તેને તેની મંગળયાત્રામાં મુખ્ય પાથેય બને છે એ પાથેયને બળે હવે તે આગળ ને આગળ કૂચ કરવા ઉજમાળ બને છે એનામાં વીર્યોલ્લાસનું એક—ખાળી ન શકાય—એવું મોજું પ્રગટે છે, જે તેને મંગળયાત્રાની છેલ્લી મજલમાં પ્રવેશ કરાવે છે આ છેલ્લી મજલ એટલે જે સત્ય અને શ્રેય જણાયું તેને જીવનમાં વણી નાખવું એવી રીતે કે જીવન અને સત્ય એ બે હવે જુદાં ન રહે જીવન છે તો તે સત્ય જ હોવું જોઈએ નિર્દોષ અને નિષ્કલંક જ હોવું જોઈએ સત્ય છે તો તે જીવન-બાહ્ય રહી જ ન શકે એ બેનું દ્વૈત વિરમે ત્યાં જ મંગળયાત્રાની છેલ્લી મજલનું છેલ્લું વિશ્રામસ્થાન

જીવનસાધનાના વિકાસક્રમને જ મંગળયાત્રા કહેવામાં આવી છે એની ઉપર સૂચવેલ ત્રણ મજલોને અનુક્રમે શ્રુતમયી, ચિંતામયી અને પ્રજ્ઞામયી ભાવના તરીકે બૌદ્ધ વિદ્વાનોએ ઓળખાવેલ છે, જ્યારે ઉપનિષદના ઋષિઓએ

શ્રવણ, મનન અને નિદિધ્યાસન–સાક્ષાત્કાર શબ્દથી સૂચવી છે જૈન ચિંતકોએ પણ ઇચ્છાયોગ, શાસ્ત્રયોગ અને સામર્થ્યયોગ જેવા સંકેતોથી એનું સૂચન કર્યું છે ખ્રિસ્તી ધર્મ, ઇસ્લામ અને પારસી વગેરે ધર્મોમા પણ જુદા જુદા નામથી મંગળયાત્રાનુ વર્ણન છે જ

ધર્મના દિવસો માત્ર શ્રવણ માટે કે શ્રુતમયભાવના માટે નથી એ સ્થિતિ તો રોજ-બ-રોજના જીવનમા પણ ઓછે વત્તે અંશે ચાલુ રહે જ છે. પણ એ દિવસો આપણને મંગળયાત્રાની, બીજી મજલ ભણી વાળવા માટે નિર્માયા છે આપણે સાભળેલુ વિચારીએ, સત્યાસત્યનો વિવેક કરીએ એ જ વ્યક્તિગત અને સામૂહિક ધર્મપર્વનો મુખ્ય હેતુ છે સત્ય થોડા પણ અંશે બરાબર સમજાય તો અસત્ય સામે થવાની હિંમત પ્રગટ્યા વિના રહેતી જ નથી સત્ય મેળવવા માટે ગમે તેવા જોખમો ખેડવાનો ઉત્સાહ એમાથી જ પ્રગટે છે આ રીતે વ્યક્તિગત અને સામૂહિક જીવન શુદ્ધિ ભણી વળે છે

મંગળયાત્રા પૂર્ણ કરી હોય એવા અનેક નરપુંગવો દુનિયાના જુદા જુદા ભાગમા થઈ ગયા છે મંગળયાત્રા અસાધ્ય નથી એ વસ્તુ પણ આપણી વચ્ચે જ થઈ ગયેલા પુરુષોએ દર્શાવી આપી છે ગાધીજીએ પોતાની ઢબે એ જ મંગળયાત્રા સાધી છે, જેમને આપણામાંના ઘણાએ નજરોનજર જોયા છે શ્રી અરવિંદને નહિ જોનાર પણ તેમનાં લખાણોથી અને સર્જનથી તેમની મંગળયાત્રાની પ્રતીતિ કરી શકે છે મંગળયાત્રાની સાધ્યતા વિષે સંદેહ હોય તેને દૂર કરવા જ જાણે વિનોબા ભાવેએ પ્રસ્થાન આદર્યું ન હોય એમ એમનુ સમગ્ર જીવન, વચન અને વર્તન દર્શાવી આપે છે

મંગળયાત્રાની પહેલી મજલમા દેશ, જાતિ, પંથ, વેશ, ક્રિયાકાડ આદિનો અભિનિવેશ રહે છે, જે માણસને એક કે બીજી રીતે બાધી રાખે છે બીજી મજલ શરૂ થતા જ એ અભિનિવેશ ઢીલો થવા લાગે છે અને બીજી મજલમા જેમ જેમ આગળ વધાય તેમ તેમ અભિનિવેશ કે મિથ્યા આગ્રહો વધારે ગળતા જાય છે એટલે જ એ મજલમા સત્ય અને શ્રેય વધારે સ્પષ્ટ સમજાય છે માનસિક ગ્રંથિઓ અને દુરાગ્રહો એ જ સત્યદર્શનના આવરણો છે, ત્રીજી મજલમા તો સત્યદર્શનનો આલોક એટલો બધો તીવ્ર અને સ્થિર બને છે કે તેને જીવનના મૌલિક પ્રશ્ન વિષે સંદેહ જ નથી ઊઠતો એના

વિચાર અને વર્તન એ ધર્મમેઘ * બની જાય છે એનું જીવન જોતાં જ, એનાં વચનો સાભળતાં જ. એની કર્તવ્યદિશા નિહાળતાં જ માણસનુ ચિત્ત ભક્તિથી દ્રવવા લાગે છે

મંગળયાત્રા જીવનમા શરૂ થઈ તો પછી તેનો યાત્રિક ગમે તે ક્ષેત્રમા ને ગમે તે વિષયમાં વિચારતો કે કામ કરતો હશે તો તેમાં એને મનની ગૂંચો કંઈ બાધા નાખી નહિ શકે, એટલું જ નહિ પણ તે આખા વિશ્વને આત્મવત જ લેખશે.

—"પ્રબુદ્ધજીવન" તા ૧૫-૯-૧૯૫૩

---

* 'ધર્મમેઘ' એક પ્રકારની સમાધિ છે. તે અવસ્થા સમાધિમાં બહુ ઊચી ગણાય છે. જ્યારે ચિત્તમાથી કલ્યાણની જ વર્ષા થાય, અને શુદ્ધ અને શુભ વિચાર તેમ જ પ્રવૃત્તિનો ઝરો ફૂટે યોગશાસ્ત્રમાં આ ખાસ શબ્દ છે.

શાંતિનિકેતન

[૨]

લાંબા વખતની શાંતિનિકેતન જવાની તીવ્ર ઇચ્છા અને પ્રત્યક્ષ પરિચિત શ્રી ક્ષિતિમોહનસેન અને પત્ર દ્વારા અને સાહિત્યકૃતિ દ્વારા પરિચિત શ્રી વિધુશેખર ભટ્ટાચાર્યનો આગ્રહપૂર્ણ પત્ર, એ બે બળો ભેગાં થયાં એટલે મારે શાંતિનિકેતન જવાનુ થયુ

હૌરાથી બરાબર ૯૯ માઇલિને અતરે **બોલપુર** સ્ટેશન છે જે **ગયી** અને કલકત્તા વચ્ચે છે. ઈ આઈ પી રેલવેનુ એક સ્ટેશન છે ત્યાથી લગભગ બે અઢી માઇલિને અતરે શાંતિનિકેતન (રવીન્દ્રનાથ ઠાકુરનુ પ્રસિદ્ધ સર્જન-સ્થાન) છે રવીન્દ્રના પિતાશ્રી દેવેન્દ્રનાથે સાધના કરેલી તેથી જ તે સ્થાન કવિશ્રીએ પસદ કરેલુ કવિશ્રીની સસ્થાનુ નામ વિશ્વભારતી છે તેના મુખ્ય બે અંશો છે એક શાતિનિકેતન, બીજુ શ્રીનિકેતન શાતિનિકેતનમાં સાહિત્ય, કલા અને શાસ્ત્રનો અભ્યાસ થાય છે એટલે તેમા બૌદ્ધિક શિક્ષણ મુખ્ય હોય અને તે દ્વારા શાંતિ મેળવવાનો સભવ હોવાથી એ ભાગનુ નામ શાતિનિકેતન રાખવામાં આવેલુ છે બીજા ભાગમા ઉદ્યોગ ધધાની ગોઠવણ છે તેનો હેતુ આર્થિક હોઈ તેનુ શ્રીનિકેતન નામ આપવામા આવ્યુ છે. મને તો કલ્પના થઈ કે શાતિનિકેતન કરતા બુદ્ધિનિકેતન અથવા ધીનિકેતન નામ હોત તો ધીનિકેતન અને શ્રીનિકેતન એવો પ્રાચીન ક્રમ વધારે સચવાત અસ્તુ.

શ્રીનિકેતન સસ્થા, શાતિનિકેતનથી એએક માઇલિને અતરે છે હું ત્યા બહુ જ થોડું રહ્યો છુ અને તેમાં મારો વધારે વખત ત્યાના વિદ્યોપાસક **ગુરુ-વર્ગશિષ્યવર્ગમાં** ગયો તેથી હુ જે લખુ છુ તે દોડની ટ્રેનમાં બેઠેલા મુસાફરે લીધેલા કોઈ ફોટા કરતા પણ તદ્દન અપૂર્ણ હોવાનુ, છતાં માત્ર બગાળમાંની જ નહિ પણ હિંદુસ્તાનની પ્રસિદ્ધ સસ્થાઓમાંની એ એક જ સસ્થાને અધૂરી પણ આલેખું તો તેની પૂર્તિ આગળ કોઈ કરી લે એવી આશા રાખું છુ.

શાંતિનિકેતન સ્ટેશનથી ઉત્તર દિશામાં આવેલું છે તેના દ્વારમા દાખલ

થતાં જ એક અતિથિગૃહ છે, જે મહર્ષિનું મૂળ શાંતિનિકેતન હતું. અતિથિગૃહવાસે પૂર્વાભિમુખ થઈ ઊભા રહીએ તો છેક ઉત્તરને છેડે અને છેક દક્ષિણને છેડે બે મકાનો આવેલાં છે. તેમાં પહેલું કવિશ્રીનું છે અને બીજું બડાદાદાનું દિશા પ્રમાણે એ બન્ને મકાનો અનુક્રમે ઉત્તરાયણ અને દક્ષિણાયનના નામથી ત્યા પ્રસિદ્ધ છે માત્ર એ બે મકાનોના નામમાં જ નહિ પણ ત્યાંનાં બીજા નાનાં મોટાં મકાનોનાં નામોમાં, ત્યાંની વૃક્ષાવલીની સજ્ઞાઓમાં અને બીજી અનેક બાબતોમાં કવિતાની પ્રતિભા દેખા દે છે. પાંથશાલા, **ગુરુપલ્લી**, નારી–ભવન, શિશુભવન, કલાભવન, પુસ્તકાગાર, **શાલવીથી**, આમ્રરાજિ, **આમલકિકાનન**, છાતિમતલ (સપ્તપર્ણા તલ) એ બધા સસ્કારી નામો ખાસ કવિશ્રીની પ્રતિભાનાં નિદર્શક છે આશ્રમનાં મકાનો સામાન્ય રીતે સાદાં છે ફુસવાળાં મકાનો એ પ્રાચીન સપત્તિ છે હવે પાકા મકાનો થતા જાય છે પાણીની પૂરી તગાશ છતાં વિવિધ વૃક્ષઘટાઓ શહેરમાથી કટાળેલાને લલચાવે તેવી છે

અભ્યાસનો સમય અને વિદ્યાવિભાગ સરકારી હાઈસ્કૂલ અને કૉલેજમાં ચલાવતા બધા બૌદ્ધિક વિષયો શાતિનિકેતનમાં શીખવવામા આવે છે. દરેક વિષયના એક ખાસ અને સાધારણ અભ્યાસી શિક્ષક તેમ જ અધ્યાપક ત્યા છે. મેટ્રિક અને એમ એ. સુધીની ખાસ શાંતિનિકેતનની ઉપાધિ (ડિગ્રી) રાખી પરીક્ષા લેવામા આવે છે અને જે સરકારી ડિગ્રીઓ ઇચ્છે તે સરકારી સસ્થાઓમા જઈને પણ પરીક્ષા આપી શકે છે. એટલે શાતિનિકેતનનુ શિક્ષણ સરકારી પરીક્ષાને અનુલક્ષીને, તેમ જ સ્વપરીક્ષાને અનુલક્ષીને વિદ્યાર્થીઓની ઇચ્છા પ્રમાણે આપવામા આવે છે પાઠ્યક્રમ પણ તદનુસાર જુદો જુદો પડી જાય તે સ્વાભાવિક છે સામાન્ય રીતે બારે મહિના શિક્ષણનો સમય સવારે સાતથી દશ અને બપોરે બેથી ચાર વાગ્યા સુધીનો હોય છે. પ્રાતકાલે શિક્ષણનો આરભ થયા પહેલાં બધાં નિયત સ્થાને એકત્ર થાય છે, અને પ્રાર્થના શરૂ કરવામા આવે છે ગમે ત્યાં અને ગમે ત્યારે પ્રાર્થના કે ગીતોમા, અભિનયમા કે અન્ય પ્રસગે જે કાંઈ ગાવામાં કે ભજવવામા આવે છે તે માત્ર કવિશ્રીની કૃતિ જ જ્યા ત્યાં લખવામા આવેલા વાક્યો પણ કવિશ્રીની પ્રતિભાનાં જ આકર્ષક અપત્યો છે. વર્ગો બધા ઝાડો નીચે જ ચાલે છે. વરસાદમાં જ્યારે બેસવુ શક્ય ન હોય ત્યારે વર્ગ બધ રહે છે અગર કોઈ મકાનના (શક્ય હોય તો) દાલાનમા ચલાવવામાં આવે છે વર્ગ ચાલતો હોય ત્યારે નાના વિદ્યાર્થીઓનું મન ન લાગે તો ગુરુનો જરા

પણ ભય રાખ્યા સિવાય નિઃશંકપણે રમ્યા કરે છે હાઈસ્કૂલ સુધીનુ શિક્ષણ-વાહન માત્ર બંગાળી ભાષા જ છે, કૉલેજના વિષયો અંગ્રેજી મારફત ચલાવવામાં આવે છે. આ સિવાય ત્યાંની આકર્ષક સસ્થા કલાભવન અને વિદ્યાભવન છે. એ બે ભવનો એક જ મકાનમાં છે ઉપર કલાભવન અને નીચે વિદ્યાભવન છે. કલાભવનમાં પ્રસિદ્ધ ચિત્રકાર નદલાલબસુની પીંછી વિવિધ રૂપે દર્શન દે છે પાસેના મ્યૂઝિયમમાં વિદ્યાર્થી અને વિદ્યાર્થિનીઓ જુદા જુદા કમરામાં સમાહિત મને ચિત્રની તાલીમ લીધા જ કરે છે નીચલા ભાગમાં હસન્મુખ અને વિદ્યાનિષ્ઠ ભટ્ટાચાર્ય વિધુશેખરશ્રી સતત પોથીઓ ઉથલાવતા અને વિદ્યાર્થીઓને ભણાવતા બેઠેલા રહે છે એમાં મોટો પુસ્તકસગ્રહ છે. એમાં (મારુ સ્મરણ સાચુ હોય તો) છપાયેલાં પુસ્તકો લગભગ પાંત્રીસ હજાર છે, અને હસ્તલિખિત ચાર હજાર વિશેષતા એ છે કે દુનિયાની પ્રસિદ્ધ પ્રસિદ્ધ બધી ભાષાઓમા જે મહત્ત્વપૂર્ણ પુસ્તકો છપાયાં છે તે બધા એ સગ્રહમાં છે અને મોટે ભાગે દરેક દેશની સરકાર તરફથી એ કિંમતી પુસ્તકો કવિશ્રીને ભેટમાં મળેલાં છે એટલે એ પુસ્તક-સંગ્રહને તેમ જ મ્યૂઝિયમને કવિશ્રીનો ભેટસગ્રહ કહી શકાય મહાત્માજીને આજ સુધીમા મળેલા ગમે તેવાં માનપત્રો એકઠા કરવામા આવે તો તેનો પણ એક આવો વિશાળ સગ્રહ બને. હસ્તલિખિત પોથીઓમા મોટો ભાગ તિબેટન ગ્રથોનો છે એ ગ્રથો મૂળ સસ્કૃત કે પાલિમા અને તેના અનુવાદો તિબેટન ભાષામાં છે કલાભવનનો પ્રાણ નદલાલબાબુ અને વિદ્યાભવનનો પ્રાણ ભટ્ટાચાર્યજી છે ભટ્ટાચાર્યજી એ એક-દેશીય અભ્યાસી નથી. તેઓ વૈદિક સાહિત્ય ઉપરાંત જૈન અને બૌદ્ધ સાહિત્યના પણ અભ્યાસી છે. બૌદ્ધ ગ્રથો ઉપરની તેમની કૃતિઓ પ્રસિદ્ધ છે (પાલિપ્રકાશ, પાટિમોખસુત્ત) તેઓ માત્ર સસ્કૃત, પ્રાકૃત, પાલિભાષાના જ શિક્ષક નથી, પણ આજકાલ તેઓ તિબેટન ભાષા ખૂબ પરિશ્રમ અને એકાગ્રતાપૂર્વક શીખવે છે જે સસ્કૃત ગ્રંથ મૂળ સ્વરૂપમા દુર્લભ છે અને જે મહત્ત્વના છે તેના તિબેટન અનુવાદો સુલભ હોવાથી તે ગ્રથો મારફત વિદ્યાર્થીઓને શીખવે છે, અને તિબેટન અનુવાદ ઉપરથી પાછુ મૂળ સસ્કૃત બનાવી નષ્ટ ગ્રથને પુનર્જન્મ આપે છે જૈનાચાર્ય હરિભદ્રની ટીકાવાળા બૌદ્ધાચાર્ય પ્રણીત 'ન્યાય પ્રવેશ' મૂળ ગ્રથનું સપાદન આચાર્ય ધ્રુવ (ગાયકવાડ ઓરિએન્ટલ સસ્કૃત સિરિઝ તરફથી) કરે છે જે હજી પૂરું થયું નથી. પરંતુ એ જ ગ્રંથનો તિબેટન અનુવાદ સંસ્કૃત છાયા સાથે ભટ્ટાચાર્યજીએ કરી દીધો છે. વાતચીત, સહવાસ, અને પ્રવૃત્તિ દ્વારા મારા મન ઉપર છાપ પડી કે

ભટ્ટાચાર્યજી એટલે હસમુખી, સરળ સ્વભાવ સરસ્વતી દેવી તેઓને અધ્યાપન, લેખન અને સંશોધન એટલું બધું પ્રિય છે કે તેઓ આશ્રમ બહાર ભાગ્યે જ ક્યાંયે જાય છે તેઓએ સંપાદન કરવા ધારેલા વિપાક અને **જ્ઞાતાસુત** નામના બે જૈન આગમોની લિખિત પ્રતિઓ મેળવવા અને જૈન ભંડારો જોવાને ગુજરાત આવવાનું આમંત્રણ કર્યું. ઉત્તરમાં તેઓએ કહ્યું કે 'હું જડ છું' મેં તરત જ કહ્યું,—'ત્યારે તો બહુ સારું અમે ઉઠાવી લઈ જઈએ તો વિરોધ નહિ કરી શકો! પછી તો એ વિદ્યાભવન થોડીવાર હાસ્યભવન બની ગયું. એ બધા પ્રસંગો જતા કરી હું માત્ર ત્રણ જણના પરિચયનું થોડું ચિત્ર આપું.

(૧) આજકાલ બૌદ્ધ ગ્રંથો ઉપરાંત ભટ્ટાચાર્યજી જૈન ગ્રંથો ખાસ કરી આગમો શીખવે છે અને સાથે જ ત્યાંનું સંશોધન કરતા જાય છે, અને માર્મિક વિવેચનની દૃષ્ટિએ તુલના પણ કરતા જાય છે એમને શિષ્ય પણ અનુરૂપ મળ્યા છે અમૂલ્યચરણસેન એક નવજુવાન બંગાળી છે એ એમ એ એલએલ બી નો અને જૈન દર્શનનો અભ્યાસ કરી રહ્યા છે ભટ્ટાચાર્યજી પાસે તિબેટન લામા છે, જે તિબેટન અસ્પષ્ટ છાપવાળી પોથીઓ ઉપરથી ફરી સુંદર અક્ષરમાં નકલો ઉતારી લે છે

(૨) ક્ષિતિબાબુ એ ગુજરાતને જાણીતા હસન્મુખ અને ટુચકાકાર માર્મિક વિદ્વાન છે ગમે તે પ્રસંગ હોય, વાત ગમે તે હોય તેમા એમની વિવિધ અનુભવપોથી વિવિધ રીતે ખૂલવાની જ એ પોતે અત્યારે માંદા છે પણ એમની બુદ્ધિ અને કલ્પના જરાયે મંદ નથી જેમ માંદા છતાં એમનું શરીર પુષ્ટ છે, તેમ એમની કલ્પના અને અનુભવ વાતો પણ પુષ્ટ જ છે

(૩) કવિશ્રી આવ્યા તેથી જ ક્ષિતિબાબુએ મને રોકી લીધો. એમનું પ્રેમમિલન એમને અનુરૂપ જ હતુ પાસે બેસાડી એક બાળકને જેમ પિતા વિશ્વસ્ત ચિત્તે વાતો કરે તેમ તેઓની પાસે બેઠા પછી મને લાગ્યુ તેઓના

અભ્યાસીઓના મુખ્ય બે ભાગ પડે છે. સ્ત્રી વિભાગ, અને પુરુષ વિભાગ. એમાં બાળક, કુમાર અને તરુણ એ ત્રણે ઉમરના અભ્યાસીઓ છે. નારીભવનમાં કન્યાઓ અને સ્ત્રીઓ રહે છે તેનુ સચાલન એક શિક્ષિત પાળક કરે છે. શિશુભવનમા નાનાં બાળકો રહે છે અને તેના શિક્ષણસવર્ધન વગેરેનો ભાર તજ્જ્ઞ પુરુષ અને અમુક સ્ત્રીઓ ઉપર છે જે વિદ્યાર્થીઓ હાઈસ્કૂલમા શીખે છે તેનો વિભાગ જુદો છે અને મોટી ઉમરના કોલેજિયન વિદ્યાર્થીઓ જુદા છે આજે બસો વિદ્યાર્થીઓ પૂરા નથી, તેમાં ગુજરાતી પણ છે. એકવાર તો જ્યારે (શ્રી નરસિહભાઈ પટેલ હતા ત્યારે) ગુજરાતી વિદ્યાર્થીઓની સખ્યા ૭૫ સુધી ગયેલી સાંભળેલી, પણ આજે તો સાત જેટલી છે એમાં ગુજરાતી બેન પણ હતાં, જે અમદાવાદના જૈન કુટુબનાં છે અને હમણાં ચિત્રવિદ્યાનો ઉચ્ચ અભ્યાસ કરવા જર્મની ગયાં છે. શાંતિનિકેતનમાં અવારનવાર બહારના મોટા મોટા વિદ્વાનોને બોલાવવામા અને અમુક વખત સુધી રોકવામાં આવે છે હમણા ભાષાશાસ્ત્રી પ્રસિદ્ધ વિદ્વાન લેસ્ની ત્યા છે રજાના દિવસોમાં કલકત્તા વગેરે સ્થળોથી ખાસ પ્રોફેસરો આવે તો તેઓની પાસે તે તે વિષય ઉપર ખાસ પ્રવચન કરાવે છે હુ હતો તે દરમ્યાન કલકત્તા યુનિવર્સિટીના ગુજરાતી ભાષાના અધ્યાપક શ્રી તારાપોરવાળાના વ્યાખ્યાનો ચાલતા હતા, જેમા કવિશ્રી પોતે પણ હતા

ખાનપાનની સગવડ ગુજરાતથી જનાર સુખ-શીલીઓને કંઈક ફીકી લાગે, પણ જે ગુજરાતી વિદ્યાર્થીઓ ત્યાં રહે છે તેઓ બહુ સાદાઈથી અને સહનશીલતાથી વિદ્યાના લોભ ખાતર નભાવી લે છે ત્યાનો ફીનો બોજો એ સૌથી વધારે બોજો છે, માસિક અઢાર રૂપિયાની ફી એ ભોજન કરતા પણ વધારે ખર્ચાળ છે

શ્રીનિકેતન એ શાંતિનિકેતનથી દક્ષિણ પશ્ચિમમા છે, ત્યા વિદ્યાર્થીઓ તો બહુ નથી, તેમા પણ બે વિદ્યાર્થીઓ ગુજરાતી છે અને તે ગાયકવાડ સરકાર તરફથી શીખવા ગયેલા છે. એમાંથી એક ભાઈએ મને બહુ જ સ્નેહપૂર્વક ફરીફરીને બતાવ્યુ અને વર્ણન કરી સભળાવ્યુ ત્યાનુ ખેતીવાડી ખાતુ મોટુ છે, પણ પાણી વિના સૂકુ અને તેથી જ મારે મન તો નકામુ પણ છે એના ખર્ચનો બદલો તેમ જ ત્યા રોકાયેલા મોટા મોટા ઉપાધિધારી અધ્યાપકોના શ્રમનો બદલો માત્ર પાણીના અભાવે ક્યારેયે મળી શકે તેમ લાગતુ નથી. ઝાડો-રોપાઓના નમૂના ઘણા છે, પણ તે બધા સુકાય છે. મુરગી ઉછેરનો ધધો ત્યા શીખવવામાં આવે છે. એ પશ્ચિમની પ્રકૃતિમાથી

અને બંગાળની વૃત્તિમાંથી દાખલ થયો હોય તેમ લાગે છે એક કુકડો એવો હતો કે જેણે હમણાં જ પોતાની સુંદરતા અને વ્યક્તિત્વને લીધે સો ઉપરાંત ઇનામ મેળવેલું, એની કિંમત પણ ગાય–ભેંસ કરતાં વધારે હતી. કુકડીઓ ઈંડાં સેવવામાં રોકાય તો તે વર્ષના ત્રણ મહિના જનનક્રિયા કરતી, તેથી એના ઈંડાં સેવવાના કામનો બોજો ઉતારવા અને તેથી પ્રસૂતિ વડે અંડભક્ષકોને સંતોષવા તેમ જ વંશવૃદ્ધિ ચાલુ રાખવા પશ્ચિમીય શોધક દયાળુઓએ અનેક જાતનાં મશીનો બનાવ્યાં છે એ મશીનોમાં ઈંડાં મૂકવાથી તે પોષાય છે, સેવાય છે ખરેખર કુકડીઓ એ રાજ્યમહિષી અથવા શેઠાણીઓ છે કે જેઓને જન્મ આપ્યા પછી સંતતિ ઉછેરની લેશ પણ ચિંતા રહેતી નથી અને એ અમેરિકન અથવા જાપાન મશીનો જડ છતાં ધાવ માતાનું પૂરેપૂરું કામ આપે છે મનુષ્યઅપત્યો માટે જો આવા મશીનો નીકળશે તો તે કામ ઉપર નભતી ધાવમાતાઓનું શું થશે? એવો ભય મને એ મશીનો તપાસતા લાગ્યો મુરગીની બાબતમાં એક વાત બહુ જ અદ્ભુત છે અને તે એ કે તેને ઇંડા મૂકવામા પણ મુરગાના સંયોગની અપેક્ષા જ નથી. એટલું ખરું કે પુંસંયોગથી ઈંડુ થયેલુ હોય તો તેમાથી બચ્ચાં થાય અને પુંસંયોગ વિના ઈંડાં આપે તો તે ભક્ષ્ય જ હોઈ શકે, તેમાથી બચ્ચાં ન નીકળે બીજી વાત એ કે જે ઈંડાં પુંજન્ય છે તેની કિંમત તેઓને દર ઈંડે બે રૂપિયા આવી શકે, જ્યારે પુંજન્ય સિવાયના ઈંડાની કિંમત દર ઈંડે બે આના આવે આ રીતે એક મુરગીની સતત જનનક્રિયાશક્તિ જ્યાં તેના ઈંડાની કિંમત અને વંશવૃદ્ધિમાં પુરુપયોગનો કેટલો ફાળો છે એ તત્ત્વ મુરગાની જાતિ સિવાય બીજી કઈ કઈ જાતિમાં છે તે અવશ્ય જિજ્ઞાસાનો વિષય છે.

શ્રીનિકેતનમા રેશમનો ઉદ્યોગ પણ છે, તે માટે ત્યા કીડાઓ પણ પાળવામા આવે છે અને રેશમ કેવી રીતે તૈયાર થઈ છેવટે કપડુ બને છે તે બધું શીખવવામા આવે છે કીડાઓનો ખોરાક, તેઓની કોશેટો બાંધવાની ક્રિયા તેઓનુ, સંવર્ધન એ બધુ જાણવા જેવુ નો ખરુ જ કોશેટો તૈયાર થયા પછી જો કીડો તેને ભેદી નીકળી જાય તો એ કોશેટો રેશમ બનાવવામા અને કપડામા ઉપયોગી નથાય, કારણ કે તે એવુ કાણુ પાડી દે છે કે જેથી તાતણાઓ તૂટી જાય છે, માટે કોશેટો તૈયાર થયે કીડો તેને ભેદી ન દે એ કાળજી ખાસ રાખવી પડે છે કીડાએ ભેદ્યા પહેલાં તેને ગરમ પાણીમા નાખી દે એટલે કીડો મરી જાય અને કોકડુ અખંડ નીકળે.

આ ક્રિયા જોયા પછી મને જૈન તરીકે એમ લાગ્યું કે આ ઉદ્યોગ જૈનોને અસ્પૃશ્ય છે, પણ સાથે જ એમ પણ લાગ્યું, કે કોઈપણ રીતે રેશમનો ઉપયોગ ન જ કરી શકે, અને તે જ સાથે જૈનાચાર્ય હરિભદ્રના એક ગ્રંથનું વાક્ય ધ્યાનમાં આવ્યું કે રેશમ અને બીજાં જંતુજન્ય વસ્ત્રો એ અપવિત્ર હોઈ ત્યાજ્ય છે આજે જ્યાં અપવિત્રતા હોય ત્યાં પવિત્રતા દાખલ કરવાની જ જાણે ન હોય! ઘણા લોકો એવી ભ્રાંતિથી રેશમી કપડું રાખે છે અને તેને પહેરી પ્રત્યેક ધાર્મિક કૃત્યમાં જોડાતાં પોતાને વધાર પવિત્ર સમજે છે.

ત્યાં સૂતરનું કામ પણ થાય છે એ સૂતર મિલનું હોય છે અને વણવા સુધીની બધી ક્રિયા શીખવવામાં આવે છે જેમ અમદાવાદ આશ્રમમા છે તેમ શ્રીનિકેતનના સચાલકો શુદ્ધ સૂતર ઉપરથી કામ લે તો વણવાનો ઉદ્યોગ શીખનારને સૂતર કાંતવાની ક્રિયા પણ આવડે, અને તે રીતે સ્વાશ્રય વધે.

ત્યાં ડેરી અને ટેનેરી છે, પણ મારી સાથે ચાલનાર ગુજરાતી ભાઈએ કહ્યુ કે એનુ મિથ્યા વર્ણન કરી કલ્પિત મહત્તાથી તમારુ આકર્ષણ કરવા હુ નથી ઇચ્છતો. મે પણ સલામ કરી માર્ગ લીધો શ્રીનિકેતનને અગે એક વાતની ખાસ નોંધ લઉ ત્યાં ગ્રામસુધારણાનુ કામ શીખવવામાં આવે છે સ્વચ્છતા કેમ રાખવી, જલાશયો સ્વચ્છ કેમ રાખવા, રસ્તાઓ કેવા હોવા જોઈએ, મકાનોની આજુબાજુ કેવુ હોવુ જોઈએ, ખેતી, તેનાં ઓજારો તથા ઢોરો વગેરેની બાબતમાં માહિતી આપવી તેમ જ બીમારોને દવા આપવી એ બધુ કામ ગ્રામસુધારણાને અગે છે અને તેમા આપણા ગુજરાતી વિદ્યાર્થીઓ શીખે પણ છે

વિશ્વભારતીનો એકદર વાર્ષિક ખર્ચ લાખ જેટલો છે, તેમાથી કાયમી આવક ૮૦ હજાર જેટલી છે, જેમાં ફી, કાયમી દાન, વ્યાજ વગેરેનો સમાવેશ થાય છે ખૂટતી રકમ મેળવી લેવામાં આવે છે

વિદ્યાવિલાસી અધ્યાપકોને મળવાથી આનદ થયો તે કરતાં તો વધારે આનદ મને ગુજરાતી વિદ્યાર્થીઓના સમાગમથી થયો તેમાયે અમદાવાદ ગુજરાત મહાવિદ્યાલયમા રહી ગયેલા વિદ્યાર્થીઓનો પરિચય થયો ત્યારે તો તજ્જન્ય હર્ષ સંયમથી જ રોકવો પડ્યો ગુજરાતનુ આતિથ્ય ગુજરાતની સરહદ સુધી જ નહિ પણ ગુજરાતીપણાની સરહદ સુધી વિસ્તરેલુ છે એ ભાગ્યે જ કહેવાની જરૂર હોય એથી પણ વધારે સતોષ મને બે કારણોથી થયો. (૧) શુક્લ કરીને વઢવાણના બ્રાહ્મણ વિદ્યાર્થી છે, જે ગ્રેજ્યુએટ થયા

છે અને હવે જૈન ધર્મનો અભ્યાસ મુખ્યપણે શરૂ કર્યો છે. ક્યાં એ અર્થ-પ્રધાન અને નોકરીપ્રધાન **ઝાલાવાડનું** બ્રાહ્મણ કુટુંબ અને ક્યાં જૈન સાહિત્ય અને તત્ત્વજ્ઞાનનો મુખ્ય અભ્યાસ. એ સ્થિતિ જૈનોને માટે જેમ આનંદ આપનારી છે તેમ શરમાવનારી પણ છે. આજે ગ્રેજ્યુએટ કે સ્નાતક થયેલા જૈન, જૈન ધર્મના અભ્યાસ પાછળ ખાસ મંડ્યા હોય એમ હું નથી જાણતો (૨) ભાઈ પ્રભુદાસ **નવસારીના** પટેલ જ્ઞાતિના છે અત્યારે તિબેટન શીખે છે. જર્મન ફ્રેન્ચ એ ભણે છે અને વધારે શીખવા તત્પર છે. ચાઈનીઝ શીખશે જ, એ જ્યારે શીખી લે ત્યારે ગુજરાત પુરાતત્ત્વ મંદિરમાં આવે એ માગણી કરી છે ગુજરાતમાં આવો તલસ્પર્શી અભ્યાસ થાય તો જ સાહિત્ય અને તત્ત્વજ્ઞાનનું છીછરાપણું મટી ઊંડાણ આવે.

કાકા કાલેલકર અને આચાર્ય કૃપાલાનીને રહેવાના સ્થાનનો અંતિમ સાનંદ ભેટો કરી કાશી જવા ઊપડ્યો

પ્રસ્થાન, પુ ૫, અંક ૬ (વૈશાખ, ૧૯૮૪)

મારો પંજાબનો પ્રવાસ

[૩]

ઉનાળાની આ રજા પંજાબમાં ગાળવાનો પ્રસંગ આવ્યો તેથી મા
ઉત્સુકતા અને આનંદવૃત્તિ ખૂબ વધ્યાં પંજાબનો આ પ્રવાસ ચોથી વખતન
હતો. પહેલાં ત્રણ વાર હું ત્યા ગયેલો પણ તે વખતે તેટલો દૃષ્ટિઉન્મે
ન હતો. આ વખતના પ્રવાસમાં મારાં ખાસ ત્રણ દૃષ્ટિબિંદુઓ હતાં (૧
પ્રાતિક વિશેષતા નિહાળવાનુ, (૨) આર્ય લોકોની પ્રથમ આવી વસવા
કરવાની ભૂમિ તરીકે તેની વિશેષતા જોવાનુ. અને (૩) અસહયોગ પહેલાન
અને ત્યાર પછીની તે ભૂમિની સ્થિતિ અવલોકવાનુ

મારી ઇચ્છા આખા પંજાબમાં ફરવાની ન હતી, પણ ગુજરાનવાલ
અમૃતસર વગેરે જેવાં ખાસ સ્થળો જ નિહાળવાની હતી પંજાબના હત્યા
કાંડ વખતે ત્યાંની ખરી હકીકત મેળવવા નિમાયેલી તપાસસમિતિ તરફથ
જે રિપોર્ટ બહાર પડ્યો છે તેના વાચકોને ગુજરાનવાલા સ્મરણોમા હોવુ જ
જોઈએ. અમૃતસર તો જગજાણીતુ છે પહેલા હુ ગુજરાનવાલાની વા
કહી દઉ

ગુજરાનવાલા

અમદાવાદથી તા ૪ એપ્રિલે બપોરે ફાસ્ટમા નીકળી દિલ્હી અ
લાહોર થઈ તા ૬ એ ગુજરાનવાલા પહોચ્યો આ શહેરની વસ્તી લગભ
સાઠ હજારની હશે પંજાબ પોતાના સુંદર હવાપાણી માટે પ્રસિદ્ધ છે, અ
તેની સરસ આબોહવા માટે જે કેટલાક ખાસ સ્થળો પ્રસિદ્ધ છે તેમા ગુજરાનવાલ
પણ એક ગણાય છે.

જેમ ત્યાનુ પાણી પોષક અને પાચક છે તેમ ત્યા પાણીની છૂટ પ
ખૂબ જ છે લગભગ દરેક ઘરે અને દરેક સ્થળે જમીનમાથી સીધા પં
મૂકેલા હોય છે ત્યાં જમીનમા પાણી દોઢ બે હાથ ભાગ્યે જ ઊંડુ હશે
આથી ગમે ત્યાં બેસી પંપ ચલાવીએ કે ધોધમાર પાણી આવ્યે જ જાય
આખા શહેરમાં આ પંપની પદ્ધતિને લીધે નળની વ્યવસ્થા દાખલ થ
નથી જ્યારે પીવાનુ કે નાહવાનુ મન થાય ત્યારે સીધું જમીનમાંથી પાણ

કાઢી લેવાતુ, એટલે એ જેટલું તાજું તેટલું જ ઠંડું. સ્નાન કરનારને ખાસ કરીને ગુજરાતીને—પહેલાં તો પાણી હિમ જેવુ ઠંડું લાગે ને ગભરાવી–થથરાવી મૂકે, પણ એકવાર તે થોડી ડોલ પોતાના શરીર પર જીવ મોટો કરી રેડી દે કે પછી ૫૫ નીચેથી ઊઠવાનુ મન જ ન થાય, એટલી આ પાણીની બલપ્રદતા અને તાજાપણાની શક્તિ

કેટલાંક વર્ષ અગાઉ જમીનમાં પાણી આટલુ ઉપર ન હતુ, પણ જ્યારથી ત્યાં નહેર આવી ત્યારથી પાણી વધ્યુ એ નહેર સતલજ નદીમાંથી લેવામાં આવી છે ત્યાની નહેર ગુજરાતની એક મોટી નદી સાથે સરખાવી શકાય તે નહેરનો પુલ લગભગ ૧૧૦ કદમ જેટલો લાંબો છે. અને તેટલા પહોળા પટમા ખૂબ ઊંડુ પાણી વહ્યા કરે છે એ નહેરથી ત્યા લાભ થયો છે તેમ જ હાનિ પણ થઈ છે ઘણેખરે સ્થળે પાકમાં વધારો થયો છે, પણ પાણીના અતિ વહેણને લીધે આજુબાજુના કેટલાંક ગામોના ખેતરોની ફળદ્રુપતા ઓછી થઈ છે અને ક્વચિત ક્વચિત નાશ પણ પામી છે જમીનનો ક્ષાર ભાગ ઉપર આવી જવાથી જ્યાં પાણી પડ્યું હોય ત્યાં તે જલદી સૂકાતુ નથી, તેથી ખેતી કરવામાં પણ ઘણી અડચણ આવે છે જમીનમાં પાણી બહુ ઉપર આવી જવાથી મકાનોની સ્થિરતાને ધક્કો લાગ્યો છે અને ખુદ ગુજરાનવાલામા ઘણાં પાકાં અને મજબૂત મકાનો એ જ કારણથી કાં તો જમીનદોસ્ત થયા છે કે કાં તો ફાટી ગયાં છે નવી ઇમારતો બધાવવા ઇચ્છનાર કેટલાક દીર્ઘદર્શીઓ આ કારણથી હાલ તો વિચારમા પડી ગયા છે

ત્યાંની ખાસ નીપજ ઘઉ, ચણા, અડદ અને ચોખાની છે ઘાસ પણ પુષ્કળ થાય છે પહેલી ત્રણ ચીજો તો ત્યાંના લોકો ખાસ વાપરે છે. ચોખા ખાવાનો રિવાજ ત્યા નામ માત્રનો છે સારા શ્રીમત ગૃહસ્થને ત્યાં ચોખા વારતહેવારે જ રધાય આ ચોખા બહુ સારા અને કિંમતી હોય છે. આપણા અમદાવાદની બજારમા મળતા બાસમતી અને વાસીના ચોખા તે જ આ ચોખા સારામા સારા ચોખાની કિંમત ત્યાં જ આપણા મણના દશ રૂપિયા પડે છે ત્યાના લોકોને પૂછીએ કે ‘તમે ભાત કેમ ખાતા નથી ?’ ત્યારે જવાબમા હસીને કહે ! ‘એ તમને ભાતખાઉ પોચા ગુજરાતીઓને સોપ્યુ અમારા આ હુડ એથી કાંઈ થોડાં જ ભરાય ?’

ત્યાના લોકોનો મુખ્ય ખોરાક ઘઉ અને અડદ છે ત્યા અડદનો એટલો

બધો વપરાશ છે કે તુવરને લોકો ઓળખતા જ નથી એમ કહું તો ખોટું નથી. આ વાત એક રસિક હકીકતથી સ્પષ્ટ કરી દઉં

હું જ્યારે અમદાવાદથી નીકળવાનો હતો ત્યારે ગુજરાનવાલામાં વસતા મારા એક ગુજરાતી મિત્રે બે ચીજ સાથે લાવવા તાર કર્યો આ મિત્ર ગુજરાતી હોઈ તુવરની દાળ અને કોકમને અભાવે તેમ જ અડદની દાળના હમેશના વપરાશથી ખૂબ કંટાળ્યા હતા તેમનાં શિક્ષિત પત્ની તો તુવરની દાળને સ્વપ્નમાં પણ ઝંખતા એટલે તેઓએ મારા ઉપર તાર મુકાવ્યો 'તુવર અને કોકમ લેતા આવશો' પણ તારમાસ્તર પંજાબી હોવાથી તુવર અને કોકમ એ શું તે તે જાણતો ન હતો તેથી તેણે તારમાં લખ્યું 'સુવર અને કોકેન લેતા આવશો' આ તાર વાંચી હું તો સમજી ગયો કે તારમાસ્તરની ભૂલ છે—ભૂલ શાની, સમજફેર છે—કારણ, હું જાણતો હતો કે તાર કરનાર વ્યક્તિ ગુજરાતી હોઈ જરૂર અડદથી કંટાળ્યા હશે એટલે તુવર નામ ભલેને તારમાસ્તરથી અજાણ્યું હોય પણ સુવરથી તો તે જરાએ અપરિચિત ન જ હોય ત્યાં તો ગાળ જ 'સાલે સુવર'ની હોય છે, અને સુવરોની સંખ્યા પણ ત્યાં સારી છે હિંદુ માંસભક્ષી હોય તો સુવરનું માંસ તેણે ચાખેલું પણ હોય વળી પંજાબમાં ખટાશ આમચૂરની વપરાય છે, એટલે કોકમ એવું તો નામ જ નથી માસ્તર કોકેનને તો જાણે, કારણ કે એક કેફી ચીજ તરીકે પોતાના અભ્યાસમાં તે આવ્યું જ હોય. આ કારણથી તુવર અને કોકમને બદલે સુવર અને કોકેનનો તાર થયેલો. અસ્તુ

આપણે ત્યાં અડદ જેટલા ભારે ગણાય છે તેટલા જ તે પંજાબમાં હલકા ગણાય છે આ ત્યાંના પાણીનો પ્રભાવ ત્યાં ચણા એટલા બધા પાકે છે કે તેના યથેષ્ટ ખોરાકને લીધે ત્યાંના ઘોડા ખૂબ જ મજબૂત રહે છે હું ત્યાં હતો ત્યારે ચણાના છોડવા પાકેલ દાણાના ઘાસની માફક વેચાતા અને તે જ ખરીદી લોકો ઘોડાને નીરતા

પશુઓ પ્રમાણમાં ઘણા છે અને પુષ્ટ પણ છે ગાયોની સંખ્યા ઓછી છે એટલે તેનો અવેજ વાળવો હોય તેમ ભેંસોની સંખ્યા ખૂબ જ છે. મારી મુસાફરી દરમ્યાન એવી એક પણ ભેંસ કે બીજું ઢોર માલૂમ ન પડ્યું કે જેના હાડકા અહીંની માફક દેખાતા હોય દૂધ પણ તેટલું જ ઘટ્ટ અને સ્વાદિષ્ટ. જો કે અહીંની જેમ મોંઘું તો છે જ છતાં ત્યાં ગમે

ત્યાં બજારને મંડી કહે છે અને તેમાં અનાજની મંડીઓ ખૂબ મોટી છે. ગુજરાત અને કાઠિયાવાડના અનેક માણસો એ મંડીઓમાં દેખાય છે તેઓ લાખોનો ધંધો કરે છે. લીંબડીના એક વેપારી જૈન ગૃહસ્થને મે પૂછ્યુ કે પંજાબમાં તમને કેવુ માફક આવે છે. તેઓએ કહ્યુ કે આ દેશમાં અમારે ખાસ રહેવાનું કે ખાવાપીવાનુ ઠેકાણું–ઘર જેવુ નથી. જંગલ જેવા સ્થાનમાં બારે માસ વા–વંટોળિયા ચાલતા હોય ત્યાં ઝૂપડાં બાંધી ઘણી વાર તો બબ્બે ચારચાર દિવસ માત્ર ચણા ખાઈ રહીએ છીએ, છતાં આરોગ્ય ઘણુ સારુ રહે છે પંજાબમાં આવ્યા પછી કાઠિયાવાડનુ એકવડિયું શરીર બદલાઈ ગયુ છે અને પેદાશ પણ સારી છે.

હુ હતો તે દરમિયાન જૈન સમાજમાં બે ત્રણ મરણ થયેલા તે બાબત પૂછતાં જણાયુ કે ત્યાં મરણ થયા પછી અમુક જાતનો ઉત્સવ મનાવવાની રીત છે જો વૃદ્ધનુ મરણ હોય તો મરનારના કુટુબની સ્ત્રીઓ ખાસ કપડાં પહેરે છે અને ગુલાલ ઉડાડે છે રોવા–પીટવાની ત્યાં રીત નથી

પજાબમાં વર્ણભેદ નહિ જેવો છે બ્રાહ્મણ, ક્ષત્રિય અને વૈશ્ય વચ્ચે તો ખાવાપીવાના વ્યવહારમાં ભેદ નથી જ એમ કહીએ તો ચાલે રસોયો બ્રાહ્મણ હોય અને પીરસનાર બીજા વર્ણનો હોય તો કોઈને વાધો ગણાતો નથી ચોખ્ખાઈ ત્યા નથી એમ કહેવુ જોઈએ સયુક્ત પ્રાત, બિહાર, બગાળ, અને દક્ષિણ કરતા ગુજરાતમાં અસ્વચ્છતા હોવાની ફરિયાદ સભળાય છે પણ પજાબ તો સૌને આંટે એવુ છે જ્યા બેસે ત્યા જ થૂકે, ગમે તેવી જમીન ઉપર ખાવાનુ મૂકીને ખાય અને હેઠે પડી ગયેલુ લઈને ખાવામા બિલકુલ સંકોચ નહિ જે ધનવાનોને ત્યા ચાદીનાં વાસણો હતા તેને ત્યાં પણ અસ્વચ્છતા પૂરી જોવામાં આવી ભીંતો ઉપર દીવેલના લપેડા અને રેલા, વાસણો જમીને મૂકી દેવાના, ઊટકનાર ગમે તેવાં ઊટકે બિહાર, સંયુક્ત પ્રાંત વગેરેમાં મચ્છીમાર જેવી હલકી વર્ણ પોતાનાં વાસણો ડાઘા વિનાનાં રાખે છે ડાઘાવાળા ઠામને એઠુ સમજી ત્યાં તેઓ ખાવાનું નહિ લે પણ અહી તો એ સંબંધી કશી સૂગ જ નથી.

છાશ–દહીંની વાપર બહુ છે હમેશા નાહતી વખતે એટલુ બધુ અને એવું સારું દહી આવે કે મારા જેવાની તો તેને સ્નાનમા વાપરવાની હિમત જ ન ચાલે છાશ કચ્ચા જેવી જાડી, મોળી અને તાજી મળે છે ભોજન પછી છાશ પીવાનો ત્યા બહુ જ રિવાજ છે છાશને તેઓ લસી કહે છે.

રસોઈ પકવવા વગેરેનું કામ ચૂલા ઉપર થાય છે. અહીંની પેઠે ત્યાં સ્ટવનો ઉપયોગ થતો નથી. ત્યાંના દૂધમાં, ત્યાંની રસોઈમાં કાંઈક ઓર જ મીઠાશ આવે છે.

અમૃતસર

ગુજરાનવાલામાં ૧૧ દિવસ રહીને અમે અમૃતસર આવ્યા અમૃતસરની બજારો ને શેરીઓ ગુજરાનવાલા કરતાં બહુ જ ચોખ્ખી હતી. અહીંનું પ્રથમ જોવા જેવું સ્થાન શીખોનું સુવર્ણમંદિર હતું એ મંદિરની ભવ્યતા જાણીતી છે મંદિર વિશાળ, સોનાથી જડેલું અને તળાવની વચ્ચે શહેરના મધ્યભાગમાં છે આ તળાવનું પાણી અમુક દિવસ પછી કાઢી નાખી બીજું તાજું પાણી ભરવામાં આવે છે મંદિરમાં શીખોનો ગ્રંથસાહેબ એ જ પ્રધાન પૂજ્ય વસ્તુ છે ગ્રંથસાહેબની ચોમેર ભક્ત સ્ત્રી–પુરુષોનું એક મોટું મંડળ સતત વીંટળાયેલું હોય જ અને ખૂબ જ ગાનવાદન ચાલતું હોય હારમોનિયમે તો ત્યાં પણ જૈન મંદિરોની પેઠે એટલો બધો પગપેસારો કર્યો છે કે આપણા પ્રાચીન સુંદર અને ઉસ્તાદી વાદ્યોને સ્થાન રહ્યું નથી. નવાં વાદ્યોની પેઠે ગાનો પણ એવાં ક્ષુદ્ર થઈ ગયાં છે કે પંજાબની એ પ્રાચીન કડકળા અને હૃદય–બળ આજે વિરલ જ છે મંદિરના ચોકમાં હલવા (શીરા) ની પ્રસાદી ચાખી બહાર નીકળ્યા થોડા દિવસ પહેલા શીખો અને વૈષ્ણવો વચ્ચે ધાર્મિક ખેંચતાણ થયેલી કેટલાક વૈષ્ણવોને શીખ મંદિરમા જતા સાભળી તેઓને વૈષ્ણવ ધર્માચાર્યોએ ઉશ્કેર્યા પરિણામે એ સુવર્ણમંદિર જેવું બીજું વૈષ્ણવ સુવર્ણમંદિર બંધાયું આ મંદિર 'દૂરગ્યાના' સ્થાન ઉપર શહેરના બહારના ભાગમા આવેલું છે એ મંદિર સ્પર્ધાજનિત હોઈ તેમાં સોનું વાપરવામાં આવ્યું છે મંદિરની રચના, તેનું પ્રમાણ એ બધું શીખમંદિર જેવું જ છે. તળાવ પણ તેવું જ, બલ્કે વધારે વિશાળ છે એક તરફના ભાગની લંબાઈ ૨૫૦ કદમથી વધારે છે શીખમંદિર કરતા આ મંદિરની વિશેષતા મને એ જણાઈ કે અહીં લંગરશ્રી છે લંગરશ્રી એટલે ભોજનગૃહ તેમા વિદ્યાર્થીઓ, પંડિતો કે સાધુ–સંતોને ખાવાપીવાની સગવડ છે. સાથે એક સંસ્કૃત પાઠશાળા પણ છે આ મંદિરનું ઉત્થાપન મારા ગયા પહેલાં થોડા દિવસ અગાઉ જ પંડિત માલવિયાજીએ કરેલું જો કે અમૃતસરમા જનારને એકને બદલે બે મંદિર જોવાના થયા એ આનંદની વાત છે, પણ આ મંદિરસૃષ્ટિ ધાર્મિક ઝનૂનમાથી ઉત્પન્ન થયેલી હોવાને લીધે તેટલી જ દુઃખકારક છે. અમૃતસરમા મારે એક પંડિતની

મુલાકાત કરવાની હતી અલબત્ત, એ પંડિત બહુ સારા વિદ્વાન છે પણ તે વામમાર્ગી અને પોતાના સિદ્ધાન્ત વિશે તેટલા જ પાકા અને નિશ્ચિત છે. તેઓ સ્પષ્ટ કહે છે કે માંસ અને મદ્ય વેદમા ન હોવાનુ કહેવુ એ વેદ અને સનાતન ધર્મનું તદ્દન અજ્ઞાન સૂચવે છે અલબત્ત, અમૃતસરમાં સંસ્કૃત વિદ્યાનો કંઈક સારો પ્રચાર કહેવાય. જો કે આજકાલના શિક્ષણમાં જીવનોપયોગી તત્ત્વ અને ઉપયોગીતાવાદને સ્થાન નથી શિક્ષણ માત્ર મૌખિક અને મુખ્ય ભાગે વિવાદની દિશામાં પ્રેરનારુ હોય છે, છતા વિદ્યાર્થીઓ અને પંડિતોની સખ્યા સારી છે

શીખોની વસ્તી અહી ખૂબ હોય એ સ્વાભાવિક છે, કારણ કે એ શીખોનુ મુખ્ય ધામ છે ગમે તેવો શીખ અહી સરદાર જ કહેવાય છે. અને 'સરદાર' સબોધન રસ્તામા ઘણીવાર સભળાય છે અહી પણ કદાવર અને બળવાન શરીર જોવા મળે છે

•

મારા ઉતારાની નજીકમા એક સાધુમાર્ગીઓનો ઉપાશ્રમ હતો તેને ચોથે માળે સાધુઓ રહેતા ત્યા લગભગ પોણોસો વરસના એક વૃદ્ધ તપસ્વી સાધુ હતા મે તેઓને કેટલાક પ્રશ્નો કર્યા તેઓના ઉત્તરમા સત્ય કરતાં સાપ્રદાયિકતા અને સમભાવ કરતા ઝનૂન વિશેષ હતા એ પંજાબી પ્રકૃતિનુ પ્રતિબિંબ મને ત્યા પણ જણાયું

બિનોલી અને બડોદ

અમૃતસરથી સહરાનપુર થઈ મેરઠ જિલ્લાના એક બિનોલી ગામમાં જવાનુ હતું. ત્યા જતા ખાસ વિશેષતા ફળોની અને સ્થળોની અનુભવાઈ. ફળમા ખાસ કરીને લુકાટ હતા આ ફળ મોટા બોર જેવુ હોય છે અને ગરમીમાં થાય છે તે ખટુમધુરુ, સ્વાદિષ્ટ તથા પુષ્ટિકારક હોય છે એ ફળો ત્યા એટલાં બધા પાકે છે કે આ તરફ જેમ નાગપુરી સતરાં પ્રસિદ્ધ છે તેમ ત્યા સહરાનપુરી લુકાટ પ્રસિદ્ધ છે. શેરડી પણ તેટલી જ થાય છે. ઘણાં વર્ષ પહેલા એકવાર મારા મિત્રે મને કહેલું કે સહરાનપુરનુ બજાર કાળા રંગનું છે કારણ, ત્યા શેરડીને લીધે ચોમેર માખીઓ છવાયેલી હોય છે. આ ઉપરાત આબાનો પાક પણ પુષ્કળ છે. આ પ્રદેશ ગગાયમુનાની મધ્યનો છે ત્યા જ્યા જુઓ ત્યાં નહેર માલૂમ પડે છે નહેરો હોવાને લીધે વરસાદની ખાસ જરૂર રહેતી નથી. અનેક જાતની પેદાશ છતા ત્યાના લોકોમા કંગાલિયત તેટલી જ છે. અંદરોઅંદર લડવાનુ, કોર્ટે ચડવાનું,

અને દારૂ વગેરે કેફી ચીજો પીવાનું પરિણામ શિક્ષણ સાથે જ વધ્યું છે અને વધતુ જાય છે. ત્યાં જાટની પુષ્કળ વસ્તી છે, પણ તેઓ કાઠિયાવાડના ગિરાસદારોની પેઠે વ્યસનમાં અને કોર્ટમાં ખુવાર થઈ ગયા છે

અમે બડોદ સ્ટેશને ઊતર્યા બડોદ એ એક કસબો છે ત્યા પ્રમાણમાં જૈનોની વસ્તી સારી છે ત્યાંના કંદોઈ પણ જૈનો જ છે. તેમાંયે દિગંબર સંપ્રદાય મોટો છે એ લોકોની એક હાઈસ્કૂલ ચાલે છે. બડોદની ભાગોળમાં થઈ બિનોલી જવા નીકળ્યા ત્યારે એક બાજુ એ હાઈસ્કૂલના મેદાનમાં વિદ્યાર્થીઓનુ સંગીત દૂરથી સંભળાયુ એ સંગીતની ઢબ ઉપરથી જ એ દિગંબરની કોઈ સંસ્થા હોવાનુ મે કલ્પેલું જે પાછળથી સાચુ પડ્યુ એ વખતે ત્યા કોઈ ઉત્સવ ઊજવાતો હતો એ હાઈસ્કૂલ ત્યાના એક જમીનદાર દિગંબર ગૃહસ્થ ચલાવે છે થોડીક સરકારી ગ્રાન્ટ બાદ કરતા બાકીનો બધો ખર્ચ તેજ પૂરો પાડે છે એને જ અંગે એક બોર્ડિંગ પણ છે, જેમાં માત્ર જૈન વિદ્યાર્થીઓ જ રહે છે

વિલાસ માટે વાનપ્રસ્થ

એક તરફ વિદ્યાપ્રેમી ગૃહસ્થોની સન્માર્ગે ઉદારતા અને બીજી તરફ વિલાસજીવી જમીનદારોનો દુર્વ્યસનોની પાછળ સર્વસ્વ ત્યાગ એ બન્ને મને એક જ સાથે આ પ્રવાસમાં અનુભવાયા એક મોટી આવકવાળો દિગંબર જમીનદાર જેને બાળબચ્ચા નથી અને ધારે તો બે ત્રણ હાઈસ્કૂલો સ્વતંત્ર ચલાવી શકે તેને પણ તે તરફ જ જોયો એનુ કામ નવી નવી તરુણીઓ શોધવાનું અને તેને અંગે આવશ્યક વ્યસનો કે ખટપટો સેવવાનુ સાંભળ્યું ત્યારે જાતિ અને ધર્મમા દાખલ થયેલ વિષનુ ખરું ભાન થયુ લગભગ વીસ વર્ષ પહેલા આરા શહેર (બિહાર) ગયેલો ત્યારે એક સંસ્કૃત વિદ્યાના અભ્યાસી દિગંબર વિદ્યાર્થીનો મિત્રભાવે પરિચય થયેલો એ વ્યક્તિ એક મોટા જમીનદારનો પુત્ર છે તેણે કોઈ વાર પોતાના વતનમા આવવા મને કહેલું. અચાનક મેરઠ જિલ્લા તરફ આવવાનું બનવાથી, એવી ધનાઢ્ય સ્થિતિમાં પણ ખાસ કરીને તેના સંસ્કૃત વિદ્યાના રસને લીધે મળવાનુ મન થયું. પણ પૂછપરછ કરતાં તેની વિષમ સ્થિતિ કાને પડી આજે તો એણે સંસ્કૃત વિદ્યાના પોથા ફેંકી દીધા છે, બીજા પણ સામાજિક કે ધાર્મિક કામોથી વાનપ્રસ્થ મેળવ્યુ છે, અને હવે તો તેમણે વિલાસ માટે જ સંન્યાસ લીધો હોઈ બધી સંપત્તિ બરબાદ કરવા માંડી છે આ વ્યક્તિ

સાહસપુરનો એક જમીનદાર છે. આ બધી સ્થિતિ સાભળતાં અને જોતાં દેશની દશા ઉપર અનેક વિચારો આવ્યા દેશની ગરીબી તો એવી કે ઘણાકને બે વાર ખાવા પણ ન મળે. એટલુ જ નહિ, પણ એક વાર પૂરુ પેટ ન ભરી શકનાર કરોડો છે. બીજી બાજુ નોટોને પાન અને બીડીની પેઠે ફૂકી દેનાર વર્ગ ઊભો છે. એ વર્ગ પૈસા, લાગવગ અને સત્તાને લઈ પ્રતિષ્ઠિત ગણાય છે. રાજક્ષેત્રમાં, સમાજમાં, ધાર્મિક ક્ષેત્રોમાં એની જ હાક વાગે છે જેટલુ શિક્ષણ અત્યારે મળે છે તે બધુ તેને પોતાને અને તેના આશ્રિતોને માટે ઝેર રૂપે પરિણમે છે આ રાજસત્તાના અનેક મજબૂત સ્તભોમા આવો આત્મભાન વિનાનો, પદવીઘેલો ધનિક વર્ગ એ એક મજબૂત સ્તભ છે.

આડત આડત આડત

બડોદમાં અનેક વસ્તુઓની ખાસ મડીઓ છે. સાકર આજુબાજુથી તૈયાર થઈ પુષ્કળ આવે છે ને પરદેશ ચડે છે પાછળથી ઓળખાણમાં આવેલા એક મારવાડી શિરોહી સ્ટેટ તરફના વતની જૈન ગૃહસ્થે મને કહ્યું કે અહી મારી આડતની દુકાન છે ને હુ બાર મહિને લાખો રૂપિયાનુ સાકર, ગોળ ને અનાજ પરદેશ રવાના કરુ છુ. સાકર અમે ખાધી ખૂબ મીઠી. આપણા દેશમા શેરડી, ગોળ અને સાકરની પેદાશનાં પૂરાં સાધનો છતાં આજે પરદેશથી લાખો રૂપિયાની તેની આયાત થઈ રહી છે તેનાં કારણો ઉપર નથી વ્યાપારીઓ વિચાર કરતા કે નથી દેશી રાજાઓનુ ધ્યાન ખરી રીતે આવા અનેક ઉદ્યોગો તુરત પગભર થઈ શકે તેવી સ્થિતિ આપણા દેશના ઘણા ભાગની છે, પણ પરદેશીઓ સાથે હરીફાઈમા ટકવા માટે જે સંગીન વ્યવસ્થા, શિક્ષણ, ધન અને રાજરક્ષણ જોઈએ તે નથી. આ દેશમા વ્યાપારીઓ નવીન પરિસ્થિતિમા ટકી શકે એવુ શિક્ષણ નથી અને પૈસાપાત્ર લોકોને પૈસાનો ઉપયોગ ક્યાં અને કેમ કરવો એનુ જ્ઞાન, સાહસ, વિશ્વાસ કે ત્યાગ નથી, તેથી જ જ્યાં દેખો ત્યા માત્ર આડત, આડત ને આડત જ નજરે પડે છે ક્યાયે મૂળ ઉત્પાદક ધધો નથી જણાતો.

પ્રવાસના વર્ણનમા આ કથન અપ્રાસગિક જેવુ ગણવાની કોઈ ભૂલ ન કરે. મારી દૃષ્ટિ તો જેટલુ જાણી શકાય તેટલું જાણવાની જ હતી. એટલે આ પ્રસગે એ ન જણાવું તો ઊલટો સંકુચિતપણાનો દોષ જ વહોરું. અસ્તુ.

એ પ્રદેશમાં ફળોની પેદાશ વિષે એટલું જ કહેવું બસ છે કે ખાસ મોસમોમાં દાડમ, સંતરાં વગેરે મોંઘાં ગણાતાં ફળો ત્યાં તદ્દન સસ્તાં થઈ જાય છે અને એક મારા બનારસના પરિચિત, હમણા દિગબર જૈન હાઈસ્કૂલમાં ધાર્મિક શિક્ષકનુ કામ કરતા પંડિતે મને કહ્યુ, કે હુ મારો દેશ બુંદેલખંડ છોડી અહી રહ્યો છુ તેનાં ખાસ કારણોમાં ફળની સુલભતા પણ એક છે, તેથી જ હું પુષ્ટ રહું છુ.

જીવનમાં યોગવાસિષ્ઠ

બડોદથી ચાલી નવ માઈલ ઉપર બિનોલી જવાનુ હતું સામાન ત્યાં જ વિશ્વસ્ત સ્થળે રાખી ચાલ્યા તડકો, ભૂખ અને ચાલવાનો શ્રમ એ બધાં એકત્ર મળ્યાં અને અમને પાણી માટે પ્રેર્યા લગભગ ત્રણ માઈલ ચાલ્યા હઈશું ત્યાં એક વિસામો આવ્યો એક કૂવો, ઉપર દોરડીવાળી ડોલ, પાસે બગીચો, આંબાનાં ઝાડો અને એક કુટિરમાં બાવાજી. પાણી પીધા પહેલા સુગંધથી લલચાઈ ગભરામણ દૂર કરવા ગુલાબના ફૂલ તરફ ધ્યાન ગયુ માગુ–ન માગું એ વિકલ્પમાંથી પસાર થઈ છેવટે બાવાજી પાસે એક માત્ર ફૂલ માગ્યું. કાં તો ધમકી કે ચીપિયો ઉગામવાનો ભય અને કાં તો એ બાવાની સહજ પ્રસન્નતા ! એમણે કહ્યું: ‘ આખો બગીચો તમારો જ છે ને ? પ્રભુએ આ સૃષ્ટિ સૌના સુખ માટે સરજી છે. ફૂલ શું, જે જોઈએ તે લો. ખરેખર, બાવાજીના આ હાર્દિક ઉદ્ગારથી જે થાક દૂર થયો તે ગુલાબના ફૂલોથી કે બીજી વસ્તુઓથી કદી જ દૂર ન થાત. અરબસ્તાનનુ આતિથ્ય વખણાય છે, પણ અનુભવ્યું નથી કાઠિયાવાડના અને બીજા ભાગોના આતિથ્યનો અનુભવ છે, પણ બાવાના એ ઔદાર્યે તો અમને જૂના ભારતના આતિથ્ય અને સહજ સરલપણાની યાદ આપી બાવાજીની પાસે યોગવાસિષ્ઠનુ પુસ્તક પડ્યું હતુ પ્રેસના ભૂતને પ્રતાપે એવા ધર્મપુસ્તકોની પહોંચ તો આજે ઘરેઘરે છે એ પુસ્તકો ઉપર આજીવિકા કરતા હજારો બાવા, બ્રાહ્મણ અને બીજા ધર્મ–ગુરુઓને જોયા છે, પણ જીવનમા જ યોગવાસિષ્ઠ ઊતર્યું હોય એવા બાવાઓ તો બહુ વિરલ જ જોયા છે. તેમાંના આ બાવા આ બાવાને જોઈ કાકા કાલેલકરના હિમાલયના પ્રવાસમાંના પ્રવૃત્તિમાર્ગે કર્મયોગી ખખડધજ બાવાનું સ્મરણ થઈ આવ્યું અમારે હજી છ માઈલ ચાલવાનુ હતુ ઊઠવા માંડ્યું પણ બાવાજીએ કહ્યુ: ‘ રાત પડશે, અહીં રહી જાઓ. દૂધ વગેરે અહીં પ્રસાદી મળશે ’ અમે તો કૃતજ્ઞતાપૂર્વક નમસ્કાર કરી બિનોલી તરફ આગળ વધ્યા.

રાત્રે ત્યાં પહોંચ્યા બિનોલી એ એક તદ્દન નાનુ ગામડુ છે, જેમાં મુખ્યભાગ જૈનોનો અને તેમાય સ્થાનકવાસી જૈનોનો છે એ ગામની થોડે દૂર બે નદીઓ ખૂબ વહે છે કૂવાઓ પુષ્કળ છે આંબાના મોટા મોટા બગીચાઓ છે ઘઉ, શેરડી, વગેરે પુષ્કળ પ્રમાણમા પાકે છે

વયોવૃદ્ધ કીર્તિપ્રસાદજી

મારો ઉતારો એક મોટા જમીનદારને ત્યાં હતો એ ચાર ભાઈઓમાં બે વકીલ અને તેમાયે એકે તો અસહયોગ વખતે વકીલાત છોડી છે. વકીલાત છોડ્યા પછી તેઓનુ જીવન તદ્દન બદલાઈ ગયુ છે આજે એ વયોવૃદ્ધ કીર્તિપ્રસાદજી ગુજરાનવાલા જૈન ગુરુકુળના અવૈતનિક અધિષ્ઠાતા છે. તેઓ અર્ધો કલાક તો રેંટિયો ફેરવે જ. તેમણે શરૂઆતમા ડિસ્ટ્રીક્ટ બોર્ડ મારફત અનેક નિશાળોમા રેંટિયા અને શાળો દાખલ કરાવેલા એ બાબુજી તો હજી પણ મહાત્માજીના સિદ્ધાન્તોમા તેટલા જ પાકા છે પાંચ અને દશ વર્ષ પહેલાંના તેમના પરિચય વખતે મારી સામાન્ય એવી કલ્પના થયેલી કે પંજાબ અને યુ પી ના લોકોમા બંગાળ, દક્ષિણ કે ગુજરાત જેવુ બુદ્ધિસૂક્ષ્મત્વ નથી હોતું આ કલ્પના કદાચ ખોટી કે એકદેશીય હશે ગમે તેમ હો પણ આ વખતના એ બાબુજીના પરિચયે મારા ઉપર જુદી જ છાપ પાડી તેમના પરિચયથી હુ એમ માનતો થયો કે શિક્ષણ અગર અભ્યાસનું પ્રમાણ જરાયે ન વધ્યુ હોય, પ્રથમ જેટલુ જ હોય અને છતાં જો મનુષ્યના ચારિત્રમાં વિકાસ થાય તો એ શિક્ષણ અને અભ્યાસ બહુ દીપી ઊઠે છે, એટલુ જ નહિ પણ તેમા ઊંડાણ માલૂમ પડે છે. ખરી રીતે ચારિત્ર એ શિક્ષણની સુવાસ છે

જૈનાચાર્ય વિજયવલ્લભસૂરિ

બિનોલીમા મારે મુખ્ય જેને મળવુ હતુ તે હતા જૈનાચાર્ય વિજય વલ્લભસૂરિ. એઓશ્રી જન્મે ગુજરાત અને વડોદરાના છે પ્રસિદ્ધ જૈનાચાર્ય આત્મારામજીના એઓ શિષ્ય છે તેઓનુ મુખ્ય જીવન પંજાબમા વ્યતીત થયું છે તેઓના વિચારમા સંકીર્ણ સાધુ સમાજની છાપ બહુ જ ઓછી છે. આજે જૈનોને શું જોઈએ છે એ, તેઓ પ્રમાણમા બીજાઓ કરતા ઠીક સમજે છે, તેથી જ સ્થળે સ્થળે વિદ્યા, કોઈ પણ જાતની વિદ્યાના પ્રચાર માટે જ તેઓ મહેનત કરે છે. મુંબાઈનું મહાવીર જૈન વિદ્યાલય અને ગુજરાનવાલાનું ગુરુકુળ એ તેઓની વિદ્યાપ્રિયતાના નમૂનાઓ છે. આ

અરસામાં ત્યાં ચૈત્ર સુદ ૧૩ આવી એટલે મહાવીર જયંતીનો દિવસ જૈનાચાર્ય વિરાજમાન અને જૈન સંપ્રદાયના પ્રધાન પુરુષ ભગવાન મહાવીરની જયંતી એટલે સામાન્ય રીતે જ તે વખતે મારે કાંઈક બોલવું એવી માગણી થઈ. તેમના અતિ આગ્રહને વશ થઈ તે પ્રસંગે જે થોડુંક હું બોલ્યો હતો તેનો ટૂંક સાર પ્રસ્થાનના વ્યવસ્થાપકનો તેટલો જ આગ્રહ હોવાથી વિષય બહાર હોવા છતાં અત્રે આપું છું.

મહાવીરજયંતી પ્રવચન

'હિંદુસ્તાનમાં માત્ર દેવપૂજા નથી, તેમાં પુરુષપૂજા પણ છે, અને અત્યારે તે મુખ્ય છે જે પુરુષોની પૂજા અસાધારણપણે ચાલે છે તે ચારે ક્ષત્રિય છે રામ, કૃષ્ણ, બુદ્ધ અને મહાવીર એ ચારે ક્ષત્રિય પુરુષો આર્ય જાતિના વિશિષ્ટ આદર્શોના આત્મા છે રામે કુટુંબમર્યાદા અને પ્રજાનીતિનો આદર્શ પૂરો પાડી મર્યાદાપુરુષોત્તમ તરીકેની ખ્યાતિ મેળવી છે. કૃષ્ણે વિપત્તિમાં માર્ગ કાઢવાની કુશાગ્ર બુદ્ધિ દાખવી જગત સમક્ષ કર્મયોગ મૂક્યો છે બુધ્ધે વૈયક્તિક જીવનની શાન્તિ માટે ધ્યાન અને સમષ્ટિ જીવનની શાન્તિ માટે દયાનો માર્ગ દાખવ્યો છે, ત્યારે મહાવીરે સૂક્ષ્માતિસૂક્ષ્મ પ્રાણીને પણ પોતાના તરફથી જરાએ ત્રાસ ન થાય એવી રીતે કઠોરતમ સંયમ અને તપોમાર્ગ જીવનમાં ઉતારી, હજારો અગવડોનું હસતે ચહેરે પાન કરી અહિંસાનો પાઠ શીખવ્યો છે આ વારસો માત્ર આર્યજાતિનો નથી પણ તે દ્વારા સમસ્ત વિશ્વનો છે.

'રામની જન્મતિથિ રામનવમીને જૈનો પણ જાણે જ, કૃષ્ણની જન્માષ્ટમીને ન જાણનાર બાળક પણ અહીં નહિ હોય, પરંતુ બુદ્ધની જન્મતિથિ જાણનાર વિદ્વાનો પણ આ દેશમાં કેટલા છે એ પ્રશ્નનો ઉત્તર મેળવવા જનાર સહૃદયને તો આંસુ સારવા પડે મહાવીરની જન્મતિથિ જાણનાર જૈનો કહેશે કે બુદ્ધને અને અમારે લેવાદેવા શા છે? પણ જો તેઓ આ રીતે એક મહાન પુરુષ વિષે ઉદાસીન રહેવા માગતા હોય તો પછી પોતાના માન્ય મહાવીરને સાભળવા બીજાઓ આવે એવી આશા રાખવી ખરેખર વધારે પડતી જ ગણાય આપણા લોકોની જ્ઞાનસંકીર્ણતા અને સંપ્રદાયાંધતા એ બે તત્ત્વોએ જ આપણને સામાજિક, ધાર્મિક, કે રાજકીય ક્ષેત્રમાં ગુલામ બનાવી રાખ્યા છે. રામનો ભક્ત કૃષ્ણ, બુદ્ધ કે મહાવીર વિષે કાંઈ ન જાણે.—અથવા માત્ર વિરોધની દૃષ્ટિએ જાણે, તેવી જ રીતે કૃષ્ણ, બુદ્ધ

રેલવેના અનુભવ

પ્રવાસ વખતે બદલવી પડતી જુદી જુદી ટ્રેનોમાં મને જેવો અનુભવ થયો તેવો અનુભવ 'પ્રસ્થાન'ના વાચકોને ભાગ્યે જ ન થયો હોય, છતાં તે અનુભવ અહીં ટૂંકમાં આપું છું તે એવા હેતુથી કે પરિચિત વસ્તુના વર્ણનમાંથી માણસ ધારે તો ઘણી વાર વધારે અને સ્પષ્ટ બોધ મેળવી શકે.

રેલવેની મુસાફરીમાં સૌથી પહેલું દર્શન સ્ટેશનનું. સ્ટેશન એટલે વિવિધરંગી મેદની અથવા પોલીસ, મજૂર અને સ્ટેશનમાસ્તરોની સ્વતંત્ર રાજધાની. તેથી પણ સ્પષ્ટ વ્યાખ્યા કરવી હોય તો એમ કહી શકાય કે સ્ટેશન એટલે સ્વતંત્રતા અને પરતંત્રતાનું મિશ્રિત સ્થાન. જેને લાગવગ, પૈસા અને જ્ઞાન હોય તે ત્યાં તેટલે અંશે સ્વતંત્ર અને જેને તેમાંનું કાંઈ હોય તે ત્યાં કાં તો પરતંત્ર, કાં તો પશુ.

અમદાવાદથી ગુજરાનવાલા સુધીની સળંગ ટિકિટ સ્ટેશનમાસ્તરે જાણે મોટી મહેરબાની કરી હોય તે રીતે આપી તો ખરી પણ નોટમાંથી ટિકિટના પૈસા કાપતાં વધારાના પૈસા પાછા આપતાં એક રૂપિયો ઓછો આપ્યો. મારા સહચારી શિક્ષિત હતા, તેથી પૈસા ગણી જોતાં જ્યારે એક રૂપિયો ઓછો થયો ત્યારે તરત જ એ ગિરદીમાં રૂપિયો પાછો મેળવવા દોડ્યા. તેમણે પૂછ્યું : 'માસ્તર સાહેબ, એક રૂપિયો ઓછો કેમ આપ્યો?' જવાબમાં તેઓએ કહ્યું : 'આવડી લાંબી ટિકિટ અહીંથી મળી ગઈ છે તે શું ભૂલી ગયા?' સાથીએ કહ્યું : 'તેમાં શું? તે તો તમારી ફરજ છે.' માસ્તર સમજી ગયા કે આ કોઈ ભોટ નથી એટલે બહારથી પ્રસન્ન પણ અંદરથી ઉદાસીન ચહેરે રૂપિયો પાછો કર્યો. સ્ટેશનમાસ્તરો ઘણા ટિકિટ લેનારાઓને ધોખો આપે છે, એ વાત જાણીતી છે. પેસેંજર અજાણ હોય અગર ગાડીનો ટાઇમ ભરાઈ ગયો હોય અગર નિર્ભય ન હોય ત્યાં સ્ટેશનમાસ્તરોને ઘીકેળાં. ઘણી વાર વધારે પૈસા લઈ લીધા બદલ વૃદ્ધ કે તરુણ સ્ત્રી–પુરુષો રેલવેમાં માસ્તરોને ઉગ્ર આશીર્વાદ આપતા કોની નજરે નહિ પડ્યા હોય?

ખંધા પેસેંજરો

પેસેંજરોમાં પણ એક વર્ગ એવો હોય છે જે ટિકિટ લેવાની પણ નથી રાખતો. આ વર્ગમાં હિંદુ બાવા–બાવીઓ કે મુસલમાન ફકીરોનો જ માત્ર સમાવેશ નથી થતો. પણ તેમાં કેટલાક ખંધાઓ પણ આવે છે. તે ખંધાઓ

ગમે તે રીતે ટ્રેનમાં દાખલ થઈ જાય છે અને ટિકિટ–કલેક્ટર આવવાની જ્યાં જ્યાં સંભાવના હોય ત્યાં ત્યાં તેઓ ચકોર દૃષ્ટિથી તરત જ સીટ ઉપરથી ઊઠી જાય છે પણ આવે વખતે દુનિયામાં જે ત્યાજ્ય સ્થાન તે જ તેઓનું શરણધામ બને છે ! ડબામાં છુપાવાનું સ્થળ પાયખાનું. જેટલીવાર ગાડી ઊભી રહે તેટલી વાર પાયખાનું બંધ કરી તેમાં ભરાઈ રહેવું એ તેવાઓની યુક્તિ આ સ્થિતિ ગાડીમાં પહેલી જ વાર અનુભવાઈ

એક બલૂચી સ્ત્રી અને પુરુષ બન્ને વગર ટિકિટે બેઠેલા. ભયનો વખત આવે કે પેલી બાઈ પાયખાનામાં ઘૂસે પણ આ પાપ ક્યાં સુધી છાનું રહે ? કારણ, બાઈ પાયખાનામાં જાય ત્યારે ભાઈ બહાર રહી જાય, અને ભાઈ છુપાય ત્યારે બાઈ છૂટી પડી જાય એક ને એક તો પકડાઈ જ જાય. આજીજી કે ટિકિટ–કલેક્ટરની હિંદુ જાતિસુલભ દયાથી કદાચ મોક્ષ મેળવે તો પેસેંજરોની કિંદિયારીનું બંધન તેઓને શિરે ઊભું જ હોય પાયખાનામાં છુપાયેલ માણસ ત્યાં વધારે વખત લે તેને નભાવી લેવાની ક્ષમા કાંઈ બધા પેસેંજરોમાં થોડી હોય ? કોઈ કહે 'આટલી બધી વાર કેમ ?' કોઈ કહે · 'આ તો બીમાર રહે છે રખે પાયખાનામાં મૂર્છા આવી હોય' કોઈ કહે 'ના, ના એ તો ટિકિટ વિના જ બેઠેલ છે' કેટલાક કુતૂહલીઓ વિલંબ સહન ન કરી શકવાથી પાયખાનાને ધક્કા મારે, અને જો તેમાં પેલી બાઈ હોય તો કેટલાક મશ્કરીઆઓ બહારથી બૈરાઓને કહે કે જાઓ તમે ઊઠાડાવો આ રીતે ટિકિટ બતાવવાના ભયમાંથી મુક્તિ મેળવવા ઇચ્છનાર પેલી બલૂચી બાઈ કે ભાઈને ઊલટા કેટલા બનાવતા, અને કેટલી ગાળીઓ ખાતા એ દૃષ્ય જોવામાં અને મનુષ્યપ્રકૃતિની વિવિધતાનું અંતર વિચારવામાં રેલવેનો ઘણોયે માર્ગ કપાઈ ગયો વધારે આકર્ષક તો એ હતું કે જ્યારે પેલા બન્ને બહાર હોય અને અચાનક ચાલતી ગાડીએ ટિકિટ–કલેક્ટર આવે ત્યારે કોઈ કોઈ ભાષા જ ન સમજે ! ટિકિટ–કલેક્ટર બોલે હિંદી કે અંગ્રેજીમાં ત્યારે તે બોલે બલૂચી ભાષામાં. કોણ કોને શું કહે છે એ જોવાના તમાશામાં જ પેસેંજરોના–ખાસ કરીને મારા–પૈસા વસૂલ થઈ જતા, અને સિનેમા નહિ જોવાનો ખેદ આમ શમી જતો જો કોઈ ટિકિટ–કલેક્ટર પાકો ભેજાનો આવતો તો જ આવા છૂપા ચોરોને ઉતારતો. નહિ તો એક બે ધમકી આપી ફરી આવું ન કરવાની મિથ્યા ચેતવણી આપી, ફરી આવું કરવાની જ કૃતિથી તાલીમ આપી જતો શું બલૂચીઓ કે શું પઠાણો, જરા જબરા અને બધા તે રેલવેમાં સ્વતંત્ર

આવા મફતિયા વર્ગમાં જે બાવા–ફકીરોનો વર્ગ હોય છે, તેઓ તો પરમેશ્વરના ધામમાં જ જવા રેલવેનાં બધાં કષ્ટો સહન કરતા હોય છે. એટલે એ સહિષ્ણુતા એ જ તેઓનો ટિકિટમાર્ગ. દેશનો એવો કોઈ ખૂણો છે કે જ્યાં તીર્થસ્થાન નહિ હોય? અને કોઈ એવું તીર્થસ્થાન છે કે જ્યાં જવા રેલવે ન હોય? એટલે ગમે તે રેલવેમાં બેસો તો ત્યાં આવા તીર્થસ્પર્શી યાત્રીઓ મળવાના જ. અને તેમને નભાવી લેવા જેટલી સાધુભક્તિ હજી આટલા વધી ગયેલ નાસ્તિક શિક્ષણના વાતાવરણમાં પણ સ્ટેશન માસ્તરોમાં રહી ગયેલી બહુધા નજરે પડે છે.

ઉગ્ર ચંડીઓ અને રુદ્રો

રેલવેનો અદ્ભુત અને કીમતી તમાશો મનુષ્યત્વના ઉગ્ર અને પ્રચંડ સ્વરૂપનો છે. મનુષ્યના હૃદયમાં રુદ્ર અને ચંડી ન વસતાં હોત તો તેઓએ દેવકોટિમાં કદી સ્થાન ન મેળવ્યું હોત ગાડીમાં ખાસ કરી સ્ટેશને સ્ટેશને અનેક જંગમ ચંડીઓ અને જંગમ રુદ્રોનો પરિચય થાય છે એ નવા પેસેંજરો આવવાના હોય કે અંદરના મુસાફરો ‘જગા નથી,’ ‘ક્યાં બેસશો,’ ‘આગળ જાઓ,’ ‘શું એક જ જગા છે’ વગેરે વગેરેથી તેઓનું આતિથ્ય કરે છે આવનાર પેસેંજરો જો નબળા હોય તો ‘ભાઈ, આવવા દો ઊભા રહીશું,’ ‘તમને અડચણ નહિ આવે,’ ‘વખત થઈ ગયો છે’ વગેરે વગેરે દયાજનક શબ્દોથી અંદરના પેસેંજરોના હૃદય પિગળાવવા પ્રયત્ન કરે છે પણ જો નવા આગંતુક પેસેંજરો ઉગ્ર હોય તો પછી દૃશ્ય જોવા જેવું બને છે કોઈ બારણાને બહાર તરફ ને કોઈ અંદર તરફ ખેંચે છે. વિલંબ થવા લાગે છે અને ‘તેં પૈસા આપ્યા છે તો શું મેં નથી આપ્યા?’ એ સમાનતાનો ઉપદેશ પૂરા વેગથી શરૂ થાય છે લાચારીથી કે બળજોરીથી અંદર દાખલ થયા પછી પેસેંજરો પેસેંજરો વચ્ચે વળી બેઠક માટે હુંસાતુંસી, ગાળાગાળી કે મારામારીનો કલીયુગ શરૂ થાય છે. દાખલ થવા ને થવા પછીના આ કલીયુગમાં હિંદુધર્મનું વૈરાગ્યશાસ્ત્ર એ એક જ ત્યાં માત્ર આશ્વાસન રૂપે દેખા દે છે કોઈ બહેન કહે ‘ઓ ભાઈ, શા માટે લડો છો? કેટલો વખત રહેવું છે? પંખીઓનો મેળો છે, હમણાં છૂટા પડી જઈશું’ આવો તાત્ત્વિક ઉપદેશ પછી ઘણા મોટેથી સાંભળવામાં આવે છે, પણ તેટલામાં તો એ ઉપદેશને ન ગણકારે તેવા મદિપાસુર કાં તો બેઠક માટે કાં તો એક બીજાને હળી જવા માટે, કાં તો આઘોપાછો સામાન મૂકવા માટે લડવા ઊભા થાય છે. ગુજરાતના ભાગમાંથી રેલવે પસાર થતી

હોય ત્યારે આવી લડાઈમાં બહુધા ગાળોનું જ નૈવેદ્ય હોય છે, પણ પંજાબ જેવા ભાગમાં તો મારામારીની મીઠાઈ જ નજરે પડે છે એક વિદ્વાન મિત્રે રેલ્વેની આ સ્થિતિનુ એક સુંદર ઉપમા દ્વારા સ્પષ્ટીકરણ કરેલું. તેઓએ કહેલું કે પેસેંજરો અને શ્વાનોની વૃત્તિ એક જેવી છે નવો કૂતરો આવે તો જૂનાઓ તેને પોતાની હદમાં આવવા ન જ દે આવનાર કૂતરો નિર્બળ હોય તો જમીન ઉપર આળોટી જાય અને જૂનાઓની મહેર મેળવે. બળવાન હોય તો લડી-ઝઘડીને હદમા દાખલ થાય એટલે પછી જૂના નવા બધા એક જ. વળી આ બધા કૂતરા પોતાની હદમાં પાછા બીજા નવા આવનાર કૂતરા સામે તેજ રીતે થવાના અને તેઓ વચ્ચે પાછી સમાધાની થવાની નવા ચડનાર અને ચડી બેઠેલા પેસેંજરો વચ્ચે શ્વાનવૃત્તિ અનુભવાય છે અને એ જ મનુષ્યહૃદયની વાસ્તવિક સ્થિતિનુ ચિત્ર છે જે જ્ઞાની હોય છે, જે રોજ પૂજાપાઠ કરનારો હોય છે, જે ઈશ્વરની બંદગીને ચાલુ ઢબે કરવા ભૂલતો નથી, રેલ્વેમા પણ નમાજ પઢવા ચૂકતો નથી, જે સમગ્ર જીવસૃષ્ટિને એક જ બ્રહ્મના અંશો માને છે, જે અહિંસા અને દયામા પોતાના ધર્મને સર્વશ્રેષ્ઠ માને છે, તે બધાનુ ધાર્મિક હૃદય મોટે ભાગે રેલ્વેમા યથાર્થ રૂપમા જોવા મળે છે કોઈ ઈશ્વરની કેટલી નજીક છે અને કોણ કેટલે દૂર છે એનુ ભાન આપણને ત્યા જ થાય છે હુ તો એમ પણ કહુ કે શાંત અને ક્ષમામૂર્તિ ગણાતા સર્વ સંપ્રદાયના ધર્મગુરુઓને જો આવા પ્રસંગમાથી પસાર થવુ પડે તો જ તેઓની શાંતતા અને ક્ષમાશીલતા યથાર્થરૂપે કસોટીએ ચડે અસ્તુ

ખાનપાન

રેલ્વેમા બીજી બાબત ખાનપાનની છે કેટલાકો તો મુસાફરી દરમિયાન ખાતા નથી, એટલુ જ નહિ પણ ચાલતી ગાડીએ પાણી પણ પીતા નથી. વધારે વખત ખોટી થાય એવે સ્ટેશને તેઓ નીચે ઊતરી પાણી પીએ છે. એટલે નળનુ પાણી ન પીનાર સમ્પ્રદાયનો તદ્દન નાશ કરવામા હજી રેલ્વે સફળ ન થઈ, પણ આવા કટ્ટર માબાપોની જ સંતતિ તો તેટલી ઉદાર થઈ જ ગઈ છે ગમે ત્યા, ગમે તે પળે, પૈસા હોય અને નવું આવ્યું એટલે ખરીદવુ નથી સ્વચ્છતાનો વિચાર, નથી આરોગ્યની દૃષ્ટિ કે નથી પેટની પરવા તેઓ એમ કહે છે કે, રેલ્વેમા બધુ પચી જાય ખુલ્લા હવાપાણીમા કાંઈ બંધન રાખવુ એ બેવકૂફી છે કદાચ આ જ ખાનપાનની ઉદારતા અને સમભાવશીલતાને લીધે વેચનારવર્ગ પણ ઉદાર અને સમ-

ભાવશીલ થઈ ગયો હશે ખારી પૂરીઓને ગરમાગરમ કહે, તેલની ચીજને ઘીની કરી કહે, કાચાપાકા વચ્ચે ભેદ નહિ, દૂધ અને પાણીની મિત્રતાનો ભંગ વેચનારાઓ કેમ જ કરાવે ? ખાનારના દાંત અને પેટની પરીક્ષા માટે કાંકરા અને ધૂળ કાઢવાનુ તેઓ યોગ્ય જ ન લેખે, અને સૌથી વધારે તો એ કે ભાવ દરેક ચીજના જોઈએ તે કરતાં દોઢા અને બમણા. આ રીતે પૈસાની પુષ્કળ બરબાદી છતાં રેલવેમા ખાવાનુ કાંઈ જ સુખ નહિ એ દુ ખદ સ્થિતિની જવાબદારી આપણી અજ્ઞાનતા ઉપર જેટલે અ શે છે તે કરતાં વધારે અ શે રેલવે ડિપાર્ટમેન્ટ ઉપર છે. તેના કર્મચારીઓને જોઈતુ મળે એટલે ગમે તે વેચનારા ગમે તેવુ, ગમે તે ભાવે વેચી શકે એક મીઠાઈવાળો આવ્યો. તેના ખૂમચામાથી સ્ટેશનમાસ્તરે મીઠાઈ લઈ અગ્નિદેવને તર્પણ કર્યું અને ખુમચાવાળે 'સાહબ, સાહબ, યહ લીજિયે, યહ કલાકંદ તાજા હૈ' એમ કહી જાણે ભક્તિપૂર્વક તે જ પ્રસાદી ધરવા મ ડી ગયો જે ખાતામાં લગભગ આવી સ્થિતિ હોય તે ખાતાના અમલદારોની બધી સુખ-સગવડ અને આરામતલબી એ પેસેન્જરોની અગવડતાને જ આભારી છે

દવા વેચનારા

પણ રેલવેમા જેમ બીમારીનાં સાધન ઘણાં છે તેમ આરોગ્યના ઉપાયો પણ ઓછા નથી ખુલ્લાં અને વિવિધ હવા–પાણી, વટવાડ અને કસરત ઉપરાંત જો અજીર્ણ રહ્યુ હોય તો દવાઓ તૈયાર છે નોટિસો વહેંચાય છે. એક દવામાથી તેના ફાયદાઓનુ મોટુ લિસ્ટ સાંભળવા મળે છે. સ્વર્ગનુ કલ્પવૃક્ષ દવાની શક્તિઓમાં નજરે પડે છે કોઈ કોઈ નોટિસબાજો એવા હોશિયાર અને વાચાળ હોય છે કે તે જ વક્તાનુ કામ કરતા હોય તો લોકોને ખૂબ આકર્ષી શકે એક ખાસ દવા વેચનારની વાત કહુ આ માણસ દિલ્લી અને બડોદ વચ્ચેની રેલમા આવ્યો તેણે ઉર્દૂમા ભાષણ શરૂ કર્યું તેની પદ્ધતિ, તેની ભાષા, તેની દલીલબાજી, તેની સ્ફૂર્તિ જોઈ મને ખરેખર એમ થયુ કે આ માણસ ધારાસભામા જાય તો અજબ પ્રભાવ પાડે એક જાટે તેને કહ્યુ 'તેં જે દવા મને આપી હતી તેથી આખ ઊલટી બગડી, માટે શરત પ્રમાણે મારા પૈસા પાછા આપો.' આણે હાજરજવાબીથી કહ્યું 'તે હુ નહિ, તમે બીજા કોઈ પાસેથી જ દવા લીધી હશે હું બાર વર્ષ થયાં દવા જાતે બનાવુ અને વેચુ છું એક પણ કેસ બગડ્યો નથી તમને નુકસાન થાય જ કેમ ? આ બધા પેસેન્જરોને પૂછો કે કોઈને મારી દવાથી નુકસાન થયું છે ? વધારે ખાતરી માટે આજ મારી દવા

ખરીદો મારા જેવાં કપડાં પહેરી બીજા ઘણા આવે છે.' આ વેચનારની શિષ્ટ ઉર્દૂ ભાષા અને નમ્રતામાં પેલો વાંધો લેનાર જાટ તો પીગળી જ ગયો.

જમનો સાક્ષાત્કાર

'ચોરના ભાઈ ઘંટીચોર' એ કહેવત પ્રમાણે સ્ટેશન માસ્તરોના ખરા સાથીઓ ત્યાંના મજૂરો છે. જમને ન મળ્યાની તૃષ્ણા જેઓને હોય તેઓ દિલ્હી જેવા સ્ટેશનના મજૂરોથી એ તૃષ્ણા શમાવી શકે. ડબ્બામાંથી ઊતર્યા ન ઊતર્યા કે પહેલા જ સામાન ઉપર મજૂરોનો હાથ પડે મજૂરો છ–આઠ ગણાથી ઓછી મજૂરી ન કહે, અને 'અબ ટાઇમ નહિ હૈ,' 'રેલવે સીટી દે રહી હૈ,' 'દેર હોગી તો રહ જાઇયેગા,' 'પુલ ઊતરના પડેગા' 'ગરદી બહુત હૈ' વગેરે વગેરે છેવટના ભયોથી પેસેંજરોને ગભરાવી મૂકે સામાન વગેરે હોય કે મુસાફરીની માહિતી ન હોય અગર સ્ત્રી કે બાળબચ્ચા સાથે હોય તો મજૂરોની આશા પૂરી ફળવતી મારે દિલ્હી સ્ટેશને એક મજૂરનો પ્રસગ પડ્યો તે ખૂબ આકર્ષક છે મજૂરે કહ્યું 'દેઢ રૂપિયા મજૂરી હોગી' મેં કહ્યું 'તુમ જાઓ હમ ખુદ ઉઠા લેંગે,' તે મજૂર ન જાય અને ન બીજાને આવવા દે. મે અને મારા સાથીએ નક્કી કર્યું કે હાથે જ સામાન ઉપાડવો ક્યા એ ત્રણ આનાની મજૂરી અને ક્યા દોઢ રૂપિયો અમે ઓછું પણ કેટલુ કહીએ, એટલે મૌન રહી સામાન ઉઠાવવાનો યત્ન કર્યો. એક એક નગ ઉપાડી આંખે દેખી શકાય એટલે દૂર મૂકી, બીજાં નગ લઈ જવા અને વળી ત્યાંથી વધારે આઘે એ જ રીતે નગો પહોચાડવા યત્ન કર્યો આ રીતે દિલ્હીના લાંબા પ્લેટફોર્મ ઉપર પોણા કલાકથી વધારે વખત અમારા ઘણા અને વજનદાર નગોએ લીધો આટલી વખતમાં કેટલાયે મજૂરો આવ્યા અને ગયા, પણ એ બધાનુ સગઠન અદ્ભુત હતુ પ્રથમ મજૂરે દોઢ રૂપિયાથી ઊતરી બાર આના કહેલા તે બીજા બધા મજૂરોની જાણમા, એટલે તે બધા આવી એમ જ કહે: 'બારહ આને જાદા નહિ હૈ, કોઈ ઇસસે કમમે નહિ આયેગા અચ્છા, આપ કમ ક્યા દેંગે? કુછ તો બોલિયે, ક્યા જબાન નહિ હૈ?' એમ એ બધા વખત દરમિયાન અમારી સાથે મજૂરોએ રકઝક કરી 'પ્લેટફોર્મ પરથી બહાર નીકળવાનો દરવાજે પાસે આવ્યો ત્યારે શરૂઆતથી અત્યાર સુધી હાજર રહેલો પહેલો મજૂર આવી બોલ્યો. 'અચ્છા મુઝે એક કોડી ભી હરામ હૈ, કુછ ભી નહીં ચાહિયે યોંહી સામાન રખ દેતા હું' એમ ગુસ્સા સાથે કહી અમારો સામાન હાથમાંથી ખેંચવાનો પ્રયત્ન કર્યો પણ અમે કહ્યું, 'ભાઈ,

હમ તો અબ દરવાજે તક આ ગયે. અબ તક તુને મજૂરી કયોં નહીં ઘટાઈ. હમ તો અધિક ખર્ચ કર નહી સકતે, તું ચલે જા હમારી કસરત ભી હો ગઈ ઔર પૈસે ભી બચ ગયે.' તેણે કહ્યું 'સબ પઢે લિખે બાઇમાન હોતે હૈં ગાધી ટોપી ઔર ખાદી પહનકર તુમ સબ લોગોને મજૂરોકા પૈસા માર દિયા,' એમ કહી અનેક ગાળોની અમૃતવર્ષા વરસાવતો તે નિરાશ થઈ ચાલ્યો ગયો

સંતોષી ગ્રામમજૂર

પણ આથી ઊલટી સ્થિતિ તદ્દન નાના સ્ટેશનોના મજૂરોની હોય છે. ત્યાં ગ્રામસુલભ સરલતા અને સતોષ દેખાય છે. તેનુ એક અજબ ઉદાહરણ હું ક્યારેય નહિ ભૂલુ. બડોદ સ્ટેશનથી ગામ લગભગ માઈલેક દૂર હશે બધો સામાન સાત પૈસામા સતોષી મજૂરે ઉઠાવ્યો. રસ્તામા વાત ચાલી. તે છોકરો જુલાહો હતો. તેના કુટુંબનુ કામ કપડા વણવાનુ છે મેં તેને પૂછ્યુ 'ગાડી ઉપર ન આવે અગર મજૂરી ન મળે ત્યારે શું કરે છે?' તેણે કહ્યું 'માબાપ સાથે વણવાનું અને ક્યારેક બીજું કામ.' છોકરાના કદ કરતા સામાન વધારે હતો. રસ્તો લાંબો. તે પોતાની અશક્તિ કે અણગમો જરાયે પ્રગટ ન કરે. જ્યારે ખૂબ થાકે ત્યારે કહે 'બાબુજી થોડી દેર સામાન નીચે ઉતારીએ' અમે જોયું આ છોકરો કેટલો પ્રમાણિક અને કેટલો પુરુષાર્થી છે. બીજા અનેક પ્રતિસ્પર્ધી મજૂરના છોકરાઓએ આ છોકરાને થોડા પૈસામા અમારો સામાન લઈ જવા બદલ ગાળો દેવા માંડેલી, મારવાનો ભય પણ બતાવ્યો, પણ આ છોકરો એકનિષ્ઠાથી ચાલી રહ્યો હતો. મારું મન સાધુસત પ્રત્યે આકર્ષાય તેથીયે વધારે આકર્ષાયું. પેલા પ્રતિસ્પર્ધી છોકરાઓને ખૂબ ધમકાવી દૂર કર્યા અને મે તથા મારા સાથીએ તેની પાસેથી કેટલોક સામાન ઉપાડી લઈ તેનો બોજો તદ્દન નહિવત્ કર્યો, પણ અમારી આ વૃત્તિ તે છોકરાથી સહન જ ન થઈ. તે કહે: 'બાબુજી, આપ કયો ઉઠાતે હૈ? મૈં ધીરે ધીરે સબ સામાન અકેલા હી પહુચા દૂંગા.' ખરેખર, આ છોકરાના ઉદ્દગારે તે વખતે હૃદયને હચમચાવ્યા છેવટે ગામમા પહોચ્યા અને જ્યારે ત્યા પણ ઘણુ કામ લીધા પછી અમે એ જ પૈસા વધારે આપ્યા ત્યારે તેના સતોષનો પાર ન રહ્યો ક્યા દિલ્હીનો જમ જેવો મજૂર અને ક્યા બડોદનો સરલ–સતોષી મજૂર! એ સ્થિતિ મજૂરોમા છે તે જ બધા વર્ગના માણસોમા ઓછેવત્તે અંશે જોઈ શકાય છે

—પ્રસ્થાન' પુસ્તક ૩. કાર્તિક ૧૯૮૩ અંક ૧

ઉપસંહાર

વર્ણનનો ઉપસંહાર કરતાં મુસાફરી વખતે રાખેલાં ત્રણ દૃષ્ટિબિંદુઓથી પંજાબના અનુભવનું ટૂંકમાં પૃથક્કરણ કરી લેવું એ યોગ્ય ગણાશે.

૧: પ્રાંતિક વિશેષતા

(૧) શરીરનું કદાવરપણું—આ બાબત સર્વવિદિત છે કોઈ પણ પ્રાંતનો અને કોઈ પણ જાતિનો ઊંચામાં ઊંચો અને મજબૂત માણસ જોતાં જ લોકો તેને પંજાબી કહી ઓળખે છે (૨) સરલતા પ્રમાણમાં બીજા બધા પ્રાંતો કરતાં પંજાબીની પ્રકૃતિમાં સરલતાનો વિશેષ ગુણ મને જણાયો છે. આનું કારણ કદાચ બુદ્ધિસ્થૂળતા હોય બંગાળી, દક્ષિણ, ગુજરાત કે સંયુક્ત પ્રાંતના પ્રમાણમાં પંજાબીઓની સામાન્ય બુદ્ધિ કાંઈક સ્થૂળ હોય છે. તેને નવી વસ્તુ લેતાં કે છોડતાં બહુ વાર નથી લાગતી. (૩) સંપત્તિ· પંજાબમાં ખાવાપીવાનું ખાસ દુઃખ હોય એવી ગરીબી નથી, પણ તાલેવાન વર્ગ બીજા પ્રાંત જેટલો મોટો નથી (૪) વ્યાપાર–ધંધો ત્યાંની મુખ્ય પેદાશ અનાજની ખાસ કરીને ઘઉં, અને નિકાશ પણ તેની જ છે (૫) આચાર-વિચાર ત્યાંનો આચારવિચાર સંયુક્તપ્રાંત કે બિહાર જેવો સાંકડો અને ચોકાબદ્ધ નથી મારવાડ કે ગુજરાતની પેઠે ઉચ્છિષ્ઠ ભોજન પણ નથી. છતાં ખાનપાન, રસોઈની સ્વચ્છતા, પહેરવેશ આદિમાં મુસલમાન લોકોનું સ્પષ્ટ પ્રતિબિંબ હોઈ જાતિબંધનની તેટલી કટ્ટરતા નથી. (૬) સ્ત્રી સ્ત્રીઓની પરાધીનતા હોવા છતાં સંયુક્ત પ્રાંત જેવું પડદાનું સખત બંધન નથી સુંદરતા અને કીમતી પહેરવેશમાં પંજાબીઓ ચઢે ખરા. આર્યસમાજને બાદ કરીએ તો કેળવણીમાં પંજાબ ગુજરાત કરતાં ચડે નહિ.

૨: આર્ય લોકોની પ્રથમ વસવાટ કરવાની યોગ્યતા

આરબ, ઇરાની અને યૂરોપિયનો હિંદુસ્તાનમાં જળમાર્ગે આવ્યા. તે સિવાયની બધી જાતિઓ શક, હૂણ, પઠાણ, મુગલ વગેરે વાયવ્ય કોણને ખૂણેથી જ આ દેશમાં આવેલી આર્ય લોકો મધ્ય એશિયા કે બીજા કોઈ ભાગમાંથી આ દેશમાં આવ્યાના મતો સ્વીકારી લઈએ તો તેઓને વાયવ્ય કોણમાંથી જ આવેલા માનવા પડે છે જે જે વાયવ્ય કોણમાંથી ખૈબરઘાટમાં થઈ હિંદુસ્તાનની ભૂમિમાં ઊતર્યા તે બધાની નજરે પહેલું મેદાન પંજાબનું પડ્યું જેમ આ મેદાન પહેલું તેમ તે ઘણી બાબતોમાં શ્રેષ્ઠ પણ તેવું જ આબોહવા જુઓ તો પંજાબથી વધારે સારી ક્યાંયની

નથી જળની પ્રચૂરતા, સ્થળની વિશાળતા અને વનસ્પતિની વિપુલતા આ પ્રાકૃતિક રમણીયતા બહારની આગતુક જાતિઓને ત્યા રાખવાને લલચાવવા બસ હતી. ત્યાની ફળદ્રુપતા પણ કાયમના વસવાટનુ મુખ્ય પ્રલોભન થઈ પડ્યુ. પજાબની પાચ મોટી નદીઓ અને તેની પ્રાચીન કાળમા ચાલતી નહેરો જાણીતી છે. દૂર દૂરના અતર ઉપર નહિ આવેલી આ વિશાળ નદીઓ ઉપર નભતી ખેતીને લીધે પજાબ દેશને નદીમાત્રિક દેશ તરીકે કિરાતકાવ્યમા યુધિષ્ઠિરના દૂત વનચરે (ભીલે) ઓળખાવ્યો છે. પજાબ એ મારવાડ, કાઠિયાવાડ કે કચ્છ વાગડ જેવો દેવમાત્રિક (વરસાદ ઉપર નભનાર) દેશ નથી તે તો સતત વહેતી નદીઓ ઉપર નભે છે એટલે જ્યારે દુષ્કાળ પડે ત્યારે પણ પજાબીઓ કદી વાગડ, મારવાડ કે ઝાલાવાડના લોકોની પેઠે પોતાના ઘરબાર છોડી દેશાવરમા ભટકતા નથી જણાતા આ બધી પ્રાકૃતિક વિભૂતિ પજાબને એટલા બધા પ્રમાણમાં મળી છે કે ત્યા વસવા માટે કોઈ પણ લલચાઈ જાય એટલે માત્ર આર્ય જાતિ જ નહિ, પણ ઐતિહાસિક યુગની બહારથી આવેલી બધી જાતિઓએ પજાબમા રહેવુ પસદ કર્યું અને ત્યાં રહી તેઓએ શારીરિક વિકાસ પણ સાધ્યો બહારથી આવનારી જાતિઓના જુદા જુદા રગો કે કદો પજાબની પોષક ભૂમિમા એકરગી અને એકસરખા બની ગયા આજે પજાબમા વસ્તી અને ક્યારેક દૂર દૂરના ભાગમાથી આવેલી જાતિઓ લગભગ બધી પચહથ્થી કાઠુ જ ધરાવે છે. જો ખૈબરઘાટના વિકટ માર્ગમાંથી પસાર થઈ અને પરસેવે રેબઝેબ થયેલી જાતિઓને પજાબનુ પ્રાકૃતિક આશ્વાસન ન મળ્યુ હોત અને મારવાડના વેરાનો સાંપડ્યા હોત તો કદાચ હિદુસ્તાનમાં આટલી વિદેશી જાતિઓનુ મિશ્રણ જ ન થયુ હોત

૩ અસહકાર પહેલાંની અને પછીની સ્થિતિ

અસહકાર પહેલા પજાબમાં જે કટ્ટરતા, ધર્માન્ધતા હતી તે આજે કાઈક ઓસરી છે પાચ વર્ષ પહેલા પજાબમા દાખલ થનાર કોઈને કહે કે 'હુ પંડિત છુ' તો એવુ સાભળનાર એમ જરૂર પૂછતો કે, 'તમે ક્યા સંપ્રદાયના છો અને ક્યા શાસ્ત્રાર્થ માટે જાઓ છો?' આજે એ સ્થિતિ મોળી પડી છે. હજુ એટલું અવશ્ય અને કદાચ વધારે પ્રમાણમા છે કે જો હિંદુ પડિત હોય તો તેને એમ પૂછે કે તમે હિદુ સગઠનમા માનો છો કે નહિ? પાચ વર્ષ પહેલા આર્યસમાજ, સનાતન, જૈન, શીખ, મુસલમાન

અને ખ્રિસ્તી પંથના લોક પૂરતા જ વિદ્યા અને ધર્મના અખાડાઓ હતા. આજે એમાં દૃષ્ટિકોણ બદલાયો છે અમુકવર્ગ સાંપ્રદાયિક કે ધાર્મિક કલહમાં જરા પણ નથી માનતો ઊલટું એમ માને છે કે રાષ્ટ્રકાર્ય સામે સંપ્રદાય, ધર્મ અને જાતિભેદોને અભરાઈ પર મૂકવા જોઈએ. આર્યસમાજની પહેલાં જેવી ઉગ્રતા નથી રહી. મુસલમાનો સાથે તેઓનુ વૈમનસ્ય વધ્યુ છે, પણ સનાતનીઓ સાથે ઘટયુ છે પહેલાં જે શિક્ષિત તરુણોનુ અને ઘણે સ્થળે તો કોલેજિયન યુવકોનુ ધ્યાન સાંપ્રદાયિક ભાવ તરફ હતુ તે આજે માત્ર રાષ્ટ્રીય ભાવ તરફ વળ્યુ છે સાદાઈ અને ખાદીનુ તત્ત્વ પ્રમાણમાં થોડુ છતાં મજબૂત રીતે પંજાબમા પણ દાખલ થયુ છે કેટલાક શિક્ષિત યુવક થોડામાં થોડો પગાર લઈ ખાદી-ઉત્પત્તિ અને ખાદી-પ્રચારનુ કામ કરી રહેલા જોવામા આવે છે ધાર્મિક કલહો પંજાબની પ્રકૃતિમાંથી સહેજે ભૂલાવા કઠણ છે, છતાં તેની પ્રતિષ્ઠા તો બહુ જ ઓછી થઈ ગઈ છે

હવે સમાપ્તિમાં એ સ્પષ્ટ કહી દેવુ જોઈએ કે ટૂક વખતમાં સ્થૂળ અવલોકન કે નિરીક્ષણ ઉપરથી બાંધેલા અભિપ્રાયો કાંઈ છેવટના જ હોય એમ ન કહી શકાય વધારે અનુભવ અને વધારે માહિતી મળતા ઘણું ઊલટું પણ દેખાય, છતાં મારો સ્વલ્પ અનુભવ આગળ કોઈને આ દિશામાં પ્રેરવા સહાયક થશે તો આ કથન માત્ર પ્રતીકનુ સ્થાન નહિ રહે

—પ્રસ્થાન, પુ૦ ૨, અ ૪, ૫, પુ૦ ૩, અ૦ ૧, ૨.

પ્રવાસના કેટલાક અનુભવો

[૪]

ચિરપરિચિત કાશીનુ સ્મરણ તાજુ કરવાની લાંબા વખતની તીવ્ર ઇચ્છા અને મારા પૂજ્ય વિદ્યાગુરુને મળવાની લાલચ એ બે ન હોત તો મિત્રોનો ઘણો આગ્રહ અને મારી પોતાની વૃત્તિ છતાં આ વખતે કલકત્તા જવાનો વિચાર અમલમાં મૂકી શક્યો ન હોત માર્ચની સોળમી તારીખે કલકત્તા જવા નીકળ્યો રેલવેનુ વર્ણન હવે પુનરુક્તિ જેવુ લાગે છે છતાં એ ત્રણ દિવસનો અનુભવ તદ્દન ફેંકી દેવા જેવો તો નથી જ ચાલતી ગાડીએ બીજા પાસે પુસ્તકો વચાવી સાંભળવાં એ સહેલુ નથી અને કાંઈ પણ માનસિક ખોરાક મેળવ્યા સિવાય વખત બરબાદ કરવો એ ઓછુ કષ્ટદાયક નથી, તેથી એ વખતનો ઉપયોગ કરી લેવાની વૃત્તિ સ્વાભાવિક રીતે જ મને હતી બીજા પ્રસગો જતા કરી આપણા જર્જર સમાજનો ખ્યાલ આપે એવા એકાદ વાસ્તવિક સામાજિક પ્રસગનુ જ વર્ણન આપી દઉ એટલે પુનરુક્તિ વિના રેલવેના ત્રણ દિવસોનુ સ્વરૂપ વર્ણન આવી જાય

મારા એક સ્નેહી અને હિંદી પત્રપત્રિકાઓના જાણીતા લેખક કન્નુમલ્લજી એમ એ એ થોડા દિવસ પહેલાં લગ્ન કર્યું એ વાત મે છાપાં દ્વારા જાણી હતી મને થયુ કે આવા શિક્ષિત અને ધવલપુરના ન્યાયાધીશ તેમ જ શિક્ષણ વિભાગના એક વડા અધિકારીએ પચાસ વર્ષે (પાછળથી માલૂમ પડ્યુ કે તેમની ઉમર ૫૭ વર્ષની હતી) લગ્ન કર્યું એ હિંદુ સમાજનુ કેવુ દુર્ભાગ્ય ! (દુર્ભાગ્ય એટલા માટે જ કે કન્યા ભાગ્યે જ પંદર વર્ષની હોય અને વળી પુનર્લગ્નનો સખત પ્રતિબધ, ઉપરાંત પડદાની પ્રથા) પરતુ ખુશીની વાત એટલી જ કે એ શિક્ષિત મહાશયે લગ્ન કર્યાં બાદ જ્યારે કેટલાક મિત્રોએ તેમને પૂછ્યું ત્યારે તેમણે જરા પણ બચાવ કર્યા વિના પોતાની નબળાઈ સ્વીકારી અને માત્ર વાસના ખાતર એક કન્યાને આજન્મ કારાગૃહમા નાખવાની પોતાની ભૂલ શરમપૂર્વક કબૂલ કરી. પણ મેં જે એક કિસ્સો રેલવેમા અનુભવ્યો તે આથી તદ્દન જુદો છે એક સિધ્ધપુરના ઔદિચ્ય બ્રાહ્મણ ઘણા વર્ષો થયા કલકત્તામા રહે છે અને વ્યાપાર કરે છે. પૈસેટકે સુખી છે, પહેલી સ્ત્રી હયાત છે, બીજી વરસેક

અગાઉ મરી ગયેલી આજે એ ભાઈની ઉમર તેમના કહ્યા મુજબ ૫૪ વર્ષની ખરી (જો કે મને તો તેથી વધારે જ લાગેલી) એ ભાઈ ત્રીજી સ્ત્રી પરણી તુરતમા કલકત્તા પાછા ફરેલા અને દિલ્હી પછી રેલવેમાં ભેટો થયો. નીચેની હકીકત એ ભાઈ અને ગુજરાતના એક બ્રાહ્મણ વૃદ્ધ બહેન જે કલકત્તા જતા હતાં તેઓ વચ્ચે થયેલી વાતચીતના અતિ ટૂંક સાર રૂપે આપુ છુ તે ઉપરથી હિંદુ સમાજની ઉચ્ચ મનાતી અગર પોતાને ઉચ્ચ માનતી જ્ઞાતિઓનો અને તેમના સામાજિક વ્યવહારોનો ખ્યાલ આવશે –

મને તો ખબર જ ન હતી પણ અચાનક તાર આવવાથી સિદ્ધપુર પહોચ્યો અને જોઉ છુ તો મારે માટે એક કન્યા સ્નેહીઓએ તૈયાર રાખી છે કન્યાની પસદગી મારે કરવાની હતી ચારે બાજુથી કાણીના ને આધળીના ભુમાટ છતાં મે પરીક્ષા કરી અને મને તેટલુ બધુ ન લાગ્યુ છેવટે કન્યાના વડીલો સાથે મસલત કરી દસ્તાવેજ કરાવી લીધો કે જો કન્યા આંધળી નીકળે તો હુ તેનુ ભરણપોષણ કરવા બધાતો નથી બીજે જ દિવસે લગ્ન કર્યું એકીએકીની રમતમા કન્યા પૈસા અને રૂપિયાનો ભેદ જોઈને પારખી ગઇ, અને બીજી રીતે પણ તે જોઈ શકે છે એ મારી ખાતરી લગ્નક્રિયામાં જ થઈ ઘણુ ખર્ચ કરી મે લોકોને સતોષ્યા અને ચીડિયા સ્વભાવની હમેશા લડાઈમાં મુકાદમનુ કામ કરનારી, એ પહેલી સ્ત્રીને પણ પૈસાની ખાનપાનની ભેટ ધરી સતોષી અને લગ્ન કરી તરત જ કલકત્તા પાછો જાઉ છું

નવવધૂ એના વડીલ સાથે તુરત જ આવનાર છે આવશે ત્યારે જરૂર તમો સ્નેહીઓને ત્યા લાવીશુ આટલી ઉમરે લગ્ન ન કરત પણ મરી ગયેલ બીજી સ્ત્રીની એક નાની બાળકીને ઉછેરવાનો સવાલ છે. વશની પણ ચિતા છે. મેળવેલા પૈસાનો પણ કાંઈક ઉપયોગ થવો જોઈએ ઘડપણમા અગત સિવાય ખરી સેવા કોઈ ન કરે. આંખે થોડી ઘણી હરકત હશે તો એમા કાંઈ ખોટુ નથી; કારણ કે એવી સ્ત્રી કુળનિંદા નહિ કરાવે અને કૂતરા નહિ ભસાવે ઈત્યાદિ

આ બધી વાત એ ભાઈ એટલા ઉત્સાહ, બળ અને વિશ્વાસપૂર્વક કરી રહ્યા હતા કે તે બધું જોઈ મને બ્રાહ્મણોનુ લાડુભોજન અને લાડુમા પણ ઘૃતનુ રાજ્ય અને તેથી વધતુ બુદ્ધિબળ એ બધુ સ્મરણમા તાજુ થતું હતુ, છતાં મેં ચોવીસ કલાકથી વધારે સયમ ગખી એક તટસ્થ

પેસેન્જર રૂપે એ વાત સાંભળ્યા જ કરી, પણ બર્દવાન સ્ટેશન જે કલકત્તાની નજીક છે ત્યાં પહોંચતા અચાનક મૌન તૂટ્યું અને એ ભાઈ મારી પાસે આવ્યા. વળી વાત શરૂ થઈ તેમણે કહ્યુ 'જો ગાંધીજીએ એક ભૂલ ન કરી હોત તો જરૂર સ્વરાજ્ય મળ્યું હોત. અને તે એ કે, બારડોલીનો ઠરાવ. અમે બધા ગાંધીજીને ખૂબ માનીએ છીએ, ખાદી માટે તેમણે બહુ કર્યું છે, વગેરે ' મેં કહ્યું કે 'ગાંધીજી વૃદ્ધ–લગ્ન વિરુદ્ધ બહુ લખે છે અને તેને પરિણામે હમણા કેટલાંક વૃદ્ધ–લગ્નો થતાં પણ અટક્યાં છે ત્યારે તમે આટલી ઉંમરે ગાંધીજીને સમજવા છતા શા માટે પરણ્યા ?' મારા આ પ્રશ્ને તેમની બુદ્ધિ શક્તિને ખૂબ વેગ આપ્યો જેમ કોઈ દલીલબાજ વકીલ એક પછી એક દલીલ દીધે જ જાય છે તેમ તે ભાઈએ પોતાની દલીલ-બાણાવલિથી મને વીંધ્યા જેવો કરી નાખ્યો તેમણે કહ્યુ 'આ લગ્નમાં મારો મુખ્ય હેતુ એક બ્રાહ્મણકન્યાના ઉદ્ધારનો છે એનો કન્યાકાળ વીતી ગયો એથી એનાં મા–બાપ, લાગતા વળગતાં તેમ જ એ કન્યા એટલા બધાં દુ ખી થતા અને લોકનિંદાથી ધવાયેલા તે ગમે ત્યા એ કન્યાને આપી દેવા તરફડી રહ્યા હતાં એ બધાનુ દુ ખ મે દૂર કર્યું, અને તેથીયે વધારે ઉપકાર તો એ કન્યા ઉપર મે કર્યો છે એ આંખમાં ફૂલાંવાળી કન્યાનો કોઈ હાથ નહોતુ પકડતુ ત્યારે મેં કોઈની પરવા કર્યા સિવાય એને બચાવી લીધી છે. ખરી રીતે મે આ લગ્ન કરીને એક બ્રાહ્મણકન્યાને અભયદાન આપ્યું છે બાકી અત્યારે મને લગ્ન કરવાની તૃષ્ણા ન હતી' મેં પૂછ્યુ, 'ઉમર કેટલી ?' ઉત્તર મળ્યો, 'ચોપન થયાં હશે ' 'શુ તમે ન પરણ્યા હોત તો એ કન્યા રિબાત ?' મે પૂછ્યુ 'અવશ્ય, તેનુ જીવન એળે જાત. નાત નાની, કન્યાકાળ ગયેલો, આંખે ફૂલુ, પછી લે કોણ ? આપણે તો છીએ ઘરડા, એટલે એમ માની લઈએ કે જુગતુ જ થયું છે જો રૂપાળી અને સર્વાંગસુદર કન્યા મળી હોત તો તે અભિમાની હોવા ઉપરાત પાછળથી સાચવવી પણ મુશ્કેલ પડત, આ તો ઠીક છે, નહિ ફાવે ત્યારે ખાવા જેટનુ આપવાથી ગમે ત્યાં ઘરને ખૂણે પડી રહેશે' વગેરે

કન્તુમલ્લજી અને આ સિદ્ધપુરવાળા ઠાકોર બન્નેએ વૃદ્ધ–લગ્ન કર્યાં; પણ પહેલાએ ચોખ્ખી નગળાઈ સ્વીકારી, બીજાએ બહુ જ કુશળતાથી બળ-પૂર્વક બચાવ કર્યો, એટલુ જ નહિ પણ પોતાની પરોપકાર–વૃત્તિ બતાવી. આમાં તથ્ય શુ છે અને કેટલુ છે એ બતાવવુ એ આ ઘટના આલેખવાનો ઉદ્દેશ નથી, પણ આ ઉપરથી સ્પષ્ટ થતો એક આર્યસિદ્ધાન્ત અહીં મચવી

દેવાનો હેતુ છે અને તે એ કે कर्मानुसारिणि बुद्धि:। કર્મ એટલે સંસ્કાર, અગર વાસના. સંસ્કાર જે કરવા પ્રેરે તે તરફ માણસ ઢળે, અને જો તેને બુદ્ધિ હોય તો તે વૃત્તિનું સમર્થન કરે ને તેના ઉપર ઓપ ચડાવે સંસ્કાર શુભ અગર શુદ્ધ હોય તો બુદ્ધિ તેની વકીલાત કરી પ્રતિષ્ઠા મેળવે સંસ્કાર નબળો હોય તો બુદ્ધિ તેનો પક્ષ લઈ કદાચ વિજય મેળવે પણ પ્રતિષ્ઠા ન મેળવે એવા પ્રકારના માણસો ચાલાક કહેવાય છે અને તેવા ચાલાકમાં પેલા ઠાકોરભાઈની ગણતરી કરવી જોઈએ અલબત્ત કોઈવાર બુદ્ધ્યનુસારી પણ કર્મ હોય છે. બુદ્ધિ બતાવે તેવે રસ્તે માણસ ચાલે એવા માણસો પુરુષાર્થી હોય છે કોઈ વાર બુદ્ધિ પરિમાર્જિત ન હોય તો એનો પુરુષાર્થ સત્પરિણામ ન લાવે, પણ જો બુદ્ધિ શુદ્ધ હોય અને તે પ્રમાણે પુરુષાર્થ કરવામા આવે તો તેથી તે મહાન બને આપણે આ કોટિમાં મહાત્માજીને મૂકી શકીએ અસ્તુ.

શાતિનિકેતનથી પાછા ફરતાં કાશી આવવા બહુશ્રુત અને વિદ્યાવયોવૃદ્ધ પૂ ધ્રુવ સાહેબનો જ્યારે કલકત્તાથી ઉત્તર આવ્યો કે હુ કાશીમા છુ—રહેવાનો છુ, તમારા વિદ્યાગુરુ મિશ્રજી કાશીમા જ છે, અને તમે મારે ત્યા જ ઊતરજો ત્યારથી જ હુ કાશી જવા માટે તલપાપડ થઈ રહેલો કેન્ટોનમેન્ટ સ્ટેશનથી ધ્રુવ સાહેબને બગલે જતા કૃપાલાનીજીનો આશ્રમ જોઈ લેવાની ઝખના થઈ એ તરુણ જોગીને મળવાની લાલસા પ્રબળ હતી પણ રસ્તામાં જ કોઈએ કહ્યુ કે તેઓ અહી નથી એટલે આગળ ચાલ્યો એક વારનુ જગલ અગર મેદાન અને અત્યારનુ વિશ્વકર્મા નગર હિન્દુ યુનિવર્સિટીનો વિભાગ જ્યા ધ્રુવ સાહેબનો બગલો છે ત્યા પહોચ્યો ધ્રુવ સાહેબ તુરતમાં જ મદ્રાસથી આવેલા હોવાથી તબિયત સારી ન હતી, પણ તેમનો પ્રેમ અને આતિથ્યપ્રબધ જોઈ હુ તૃપ્ત થઈ ગયો વિદ્યાર્થીઓ અને પડિતો હોસ્ટેલમાં હતા જ પરિચિતોને લાબે કાળે મળવાની ઝખના જેને એકવાર થઈ છે તે મારી ઉત્સુકતાને કલ્પી શકે તેમાએ વિદ્યાગુરુને (ખાસ કરી નિખાલસ સ્વભાવના અને પ્રખર વિદ્યાસપન્ન ગુરુને) મળવાનુ હોય ત્યારે હર્ષ અને ઉત્સુકતાની હદ નથી રહેતી તેઓ પાસે હજી પહોચ્યો નહોતો ત્યાં તો દૂરથી 'आइए सुखलालजी आइए, क्या सोलह सोलह वर्ष के बाद इतने पत्र और इतने संकेत होनेके बाद भी आज ही।' એ ગુરુ મુખના નિખાલસ અને સપ્રેમ વાક્યોએ મને શરમાવી દીધો. પણ પછી વિદ્યાવાર્તા, નવીન અભ્યાસના પરિણામો, ચાલુ કાર્યો વગેરેના વિષયોમા ઉતર્યા અને એક બીજાના અનુભવો ઠાલવ્યા

અહી વાચકોને જણાવી દેવુ ઉચિત ધારું છુ કે જે મારા વિદ્યાગુરુ હિંદુ યુનિવર્સિટીમાં સસ્કૃત વિભાગમાં છે તે મુખ્ય નૈયાયિક છે, પણ ખરી રીતે તે વૈદિક બધાં દર્શનોના નિષ્ણાત પડિત છે મે જેટલા પડિતો જોયા છે તેમાં આમનુ વિદ્યાદૃષ્ટિએ મુખ્ય સ્થાન છે અને એ ત્યાંના પ્રધાન પડિત છે ધ્રુવ સાહેબ પોતે તેમનાથી ખૂબ જ સતુષ્ટ છે અને તે પડિતજીના હોવાથી હિદુ યુનિવર્સિટી ગૌરવ માને છે એ પડિતજીની થોડી ચર્ચા કરુ શરીરમાં માત્ર અસ્થિ શેષ છે ઉમર મોટી નથી અભ્યાસ કરાવવામાં અને તેના પરિણામો લખવામા ખાસ કરી પ્રાત કાળમાં ઉત્પન્ન થયેલ વિચારો નોધવામાં એવા નિમગ્ન રહે છે કે ફરવા સુદ્ધા જતા નથી એ મોટો દોષ છે, છતાં વિદ્યાની ઉપાસના કેટલી તીવ્ર છે એ જણાવવા ખાતર આ વાત આપુ છું પ્રાત કાળમાં ચાર કલાક અને બપોરે બેથી રાતના નવ વાગ્યા સુધી સાત કલાક એ અગિયાર કલાકના માત્ર બૌદ્ધિક કાર્ય નહિ પણ અધ્યાપન કાર્યના સતત અનુશીલનથી તેમની પ્રત્યેક દર્શન-વિદ્યા કેટલી જાગ્રત હશે એની કલ્પના દૂર બેઠાં અનભિજ્ઞને ન આવી શકે મે તો શિષ્ય ભાવે તેમને હવે આટલું અધ્યાપન ન કરવા કહ્યુ તેમણે સ્વીકાર્યું પણ અસ્તુ એ અને એમના જેવા પડિતો કાશીમા છે એ જ મારે મન કાશીની વિશેષતા છે પડિતશૂન્ય કાશીમાં ગગા ઉત્તરવાહિની હોત અને બુદ્ધનાં પૂર્વસ્મરણો કરાવતાં હોત, અને બીજી કેટલીક કળા કારીગરીની વિશેષતાઓ આજે છે તે હોત તોપણ હુ કાશીને તીર્થનામ કદી પણ ન આપત કાશીનુ તીર્થ એ ભારતીયશાસ્ત્ર વિદ્યાના સરક્ષણમા સમાયેલુ છે જો એ ન હોય તો બાકીની બધી કાશીની વિશેષતાઓ અન્યત્ર પણ લભ્ય છે

મને જૈન જાણી એક જૈન વિદ્યાર્થીઓનુ નાનુ મંડળ પણ એકઠુ થઈ ગયુ, જે કોલેજમાં જુદા જુદા વિષયો લઈ શીખે છે, અને જુદા જુદા પ્રાતમાથી એકઠુ થયેલુ છે ચાલુ અભ્યાસની રાષ્ટ્રીયતાની, જૈન સમાજની વર્તમાન સ્થિતિની, તેના ફિરકાઓના બહુ કીમતી ઝઘડાઓની થોડી ઘણી ચર્ચા થઈ અહી નોધવા જેવી બાબત એ છે કે તેમાંના અમુક વિદ્યાર્થીઓને બીરલા સ્કોલરશીપ મળે છે જૈનો, શીખો, કાયસ્થો વગેરે બધાએ એનો લાભ લે છે મારા સાભળવા પ્રમાણે એવી સેકડો સ્કોલરશીપો તેઓ કાશીમા આપે છે માત્ર શુદ્ધ વિદ્યાદૃષ્ટિથી આવી રીતે ધનનો ઉપયોગ કરનાર હિન્દુસ્થાનમા કેટલા હશે?

બીજે દિવસે સવારે નાગરી પ્રચારિણી સભામાં ગયો. રામનવમી હોવાથી કાર્યાલય બંધ હતું. ઊંડી અને લાંબી ગલીઓમાં મંત્રીને ત્યાં જવા નીકળ્યો. જે ગલીમાં જતાં અને ઊભા રહેતાં સૂગ ચઢતી તે ગલીમાં આટલાં વર્ષ બાદ ગયા પછી કેવળ પૂર્વ પરિચયને કારણે, ભૂતકાળના સ્મરણથી ઉત્પન્ન થતા આનંદને કારણે એ સૂગે સ્પર્શ પણ ન કર્યો જે એકાએક મને ગુજરાતમા આવ્યા પછી ટીકા કરવાની વસ્તુ જેવા લાગતા તે એક્કામાં બેસી કાશીમાં જતાં પૂર્વકાલીન સ્મરણને લીધે એક જાતનો આનંદ અનુભવાતો મને તે વખત લાગ્યુ કે જે વસ્તુ અનુભવકાળમા દુઃખદ હોય છે કે ખટકે છે તે જ સ્મરણકાળમાં સુખદ બની જાય છે ધ્રુવ સાહેબના (એકવાર સાથે તો જમીએ એવા) પ્રેમાળ આગ્રહથી બીજે દિવસે રોકાયો પણ જે ગંગાકાંઠે વર્ષો વ્યતીત કરેલા અને જ્યાં અનેક પોથીઓ ઉથામેલી ત્યાં ગયા સિવાય કાશી છોડવાનુ મન થાય ખરું ? તેથી એ અભ્યાસ-સ્થાનમાં ગંગાના કિનારે જૈન મંદિરમાં માત્ર બે મિનિટ જઈ આવ્યો અને સુખ તથા દુઃખની તીવ્ર મિશ્રિત લાગણી અનુભવતાં અનુભવતાં આગ્રા તરફ આવવા નીકળ્યો ફરી અહી અવાશે ? આવીશ તો રહીશ ? રહેવુ ઘટિત છે કે નહિ ? કાયમ રહેવુ કે નહિ ? પાછુ ફરી આવવું છે અને બાળક બની, વિદ્યાર્થી બની આપની આટલી પરિણત વિદ્યાનુ નવી દૃષ્ટિએ પાન કરવું છે એવુ વિદ્યાગુરુને વાતચીતમા આપેલુ વચન પાળવાનો અવસર પાછો આવશે કે નહિ ? એ અવસર આણવા શુ શુ કરવુ પડશે અને શુ શુ છોડવુ પડશે વગેરે અનેક પ્રશ્નમાળાઓને હૃદયમાં લઈ ગાડી ઉપર સવાર થયો અને આગ્રા પહોંચ્યો

આગ્રા એ ચાર વર્ષના પૂર્વનિવાસનુ સ્થાન હતુ ત્યાં મિત્રો ઘણા કેટલાક શ્રીપુત્રો તો કેટલાક ધીપુત્રો મહાવીર જયંતી આવવાની તેથી ત્રણે ફિરકાઓનો સંયુક્ત પ્રયત્ન એ ઉત્સવ માટે હતો, અને અચાનક જવાનું થયુ એટલે એઓ નીકળવા દે ? બધુ ઠેલવુ શક્ય છે પણ મિત્ર–આગ્રહ ઠેલવો શક્ય નથી આર્ય સમાજના, મુસલમાનોના અને સનાતનીઓના ઉત્સવો તાજેતરમાં થયા હતા અને થનાર હતા જૈનો પાછા પડે તો ધર્મની અધોગતિ ગણાય, એટલે તેઓને પણ શૂરાતન ચડેલુ જૈન યુવકો સ્વયંસેવક દળ તૈયાર કરવા અને જૈન સમાજનુ સંગઠન કરવા ઉત્સુક દેખાતા ભગવાન મહાવીરના જીવન પરત્વે, અને સ્વયંસેવા પરત્વે અને સંગઠન પરત્વે, મારે કાંઈક કહેવુ એવી એમની માગણી હતી મેં કહ્યુ કે,

'હું જન્મે સ્થાનકવાસી છું. મૂર્તિપૂજક ફિરકામાં જીવન વ્યતીત કરું છુ, અને દિગંબર પંથના નિકટ પરિચયમા ખૂબ આવ્યો છુ, છતાં એ ત્રણે ફિરકાઓમાંના ઘણા મને પોતાના ફિરકા બહારનો અથવા પોતાના ફિરકાનો અનુયાયી માને છે. સ્થાનકવાસી મને મૂર્તિપૂજક સમજે છે કેટલાક 'શ્વેતાંબરો' દિગંબરમાં પક્ષપાત જુએ છે, અને દિગંબરો તો મને શ્વેતાંબર જ માને છે ખરી રીતે હુ સમાન રૂપે ત્રણે ફિરકાનો છું અને અસમાન રૂપે એકેનો નથી. એવી સ્થિતિમાં તમારા સંયુક્ત ઉત્સવમાં હુ તમને સંભળાવીશ તે ભારે તો નહિ પડે?' સામેથી ઉત્તર આવ્યો કે અમે યુવકો એ માટે તૈયાર છીએ આ પ્રયત્ન યુવકોનો જ છે જ્યારે આવી ખાતરી મળી ત્યારે મે કાંઈક બોલવા સ્વીકાર્યું, અને વિષય નક્કી કર્યો. 'जैन धर्मका हृदय क्या है'। જૈન ધર્મનું હૃદય શુ છે? એ વિષય ઉપર નીકળવાને દિવસે દોઢેક કલાક ચર્ચા થઈ, જે આ વર્ણનમાં ટૂંકામાં પણ આપી ન શકાય વળી પ્રસંગ મળશે તો એ વિચારો વ્યવસ્થિત કરી ઉપસ્થિત કરીશ

જેમ આ મુસાફરી ત્વરાની હતી તેમ તેનુ આ વર્ણન પણ તેથીયે વધારે ત્વરાપૂર્વક કરી આપ્યુ છે તેમા ઘણી બાબતો છોડી છે, ઘણી ટૂંકાવી છે, અને ઘણી ઉત્ક્રમે પણ મૂકી છે આશા છે કે એ ત્રુટિ ક્ષંતવ્ય ગણાશે

—પ્રસ્થાન, પુ૦ ૫, અં૦ ૬

અમારો પ્રવાસ

[૫]

નાતાલની રજામાં વિશ્રાન્તિ લેવી અને પ્રવાસ કરવો એવી ઇચ્છા પહેલેથી જ ઉદ્ભવેલી પ્રવાસની મુદત ટૂકી હોવાને કારણે પંજાબ (ગુજરાનવાલા) તરફ કે દ્વારકા તરફ જવાની વૃત્તિ રોકવી પડી અને પૂ આ શ્રીમાન્ જિનવિજયજીના વિચાર પ્રમાણે કુભારિયા જવાનુ નક્કી થયુ આ નિશ્ચયમાં રા. રા મોહનલાલ દલીચદ દેશાઈ સહભાગી થયા અને તા ૨૭–૧૨–૨૭ ના રોજ અમદાવાદથી રવાના થયા. અમે નાનામોટા સાત જણ હતા

પ્રથમ પાલનપુર ઊતર્યા ત્યાંના બે દિવસના નિવાસ દરમ્યાન પ્રવાસના અગે નોંધવા જેવી બે બાબતો ખાસ છે એક પ્રાકૃતિક દૃશ્યની અને બીજી ભડારની પાલનપુરથી લગભગ નવ માઈલ દૂર બાલારામની ટેકરીઓ છે જે અરવલ્લીનો જ એક ભાગ અને આબુની નજીકમા છે એ ટેકરીઓ છે તો નાની પણ ત્યાનુ દૃશ્ય આકર્ષક છે વૃક્ષો પુષ્કળ અને જમીનમાથી વહેતા ઝરણાં–સ્રોતો એ ત્યાની વિશેષતા છે સ્રોતોની નજીકમા પાલનપુર નવાબનો એક બગલો છે આ સ્થાનને ત્યાંના લોકો કાશ્મીરમાંની ગરીબીમાં કાશ્મીરનો લહાવો લે છે જ્યાં પ્રાકૃતિક જલપ્રવાહો વહેતા હોય અને બીજી ભવ્યતા હોય ત્યા મહાદેવ કે અન્ય કોઈ હિદુ દેવ ન વસે એમ બનવુ હિદુસ્થાન માટે અસભવિત નથી મહાદેવની નાનકડી શી દેરી અને ધર્મશાળાના સામાન્ય છાપરાને મોટા રૂપમાં ફેરવી એ કુદરતી જલપ્રવાહોની બને બાજુએ બાંધકામ કરી લેવાની અને નહેર સુદ્ધા કાઢવાની યોજના થઈ ગઈ છે આ દૃશ્ય જોવાનો આનદ પ્રથમ દિવસે અમે બધાએ લીધો અને બે વર્ષ પહેલાના ત્યાના જલવિહાર તેમ જ વનભ્રમણના સ્મરણો તાજા કર્યા

સાજે શહેરમા આવી ડાયરાના ભડારમાથી મુનિશ્રી ધીરવિજયજીની કૃપાથી ગુજરાતી ભાષાની કૃતિઓના બે દાભડાઓ મેળવ્યા અને સાહિત્યપ્રેમી રા મોહનલાલભાઈએ જ્ઞાનોપાસના ગને શરૂ કરી લગભગ બે વાગ્યા સુધી અને સવારે પણ ઊઠીને અગિયાર વાગ્યા સુધીમા તેઓએ લગભગ બસો પુસ્તકોની પ્રશસ્તિ વગેરે લખી લીધુ અને તેમાના બધા

પુસ્તકો જોઈ તો કાઢ્યાં જ એમની એ જાગૃક જ્ઞાનપૂજા જોઈ મને ઈર્ષા થતી. એ બધી ઉતારેલ પ્રશસ્તિઓનો ઉપભોગ તો વાચકો તેઓશ્રી તરફથી પ્રસિદ્ધ થનાર પુસ્તકમાં કરશે જ એટલે આગળ ચાલવુ ઠીક છે જ

અંબાજી–પાલનપુરથી ખરેડી પહોંચ્યા અને ત્યાંથી બીજે દિવસે કુભારિયાની દિશા લીધી કુભારિયા જનારે અબાજી જવુ જ જોઈએ. એ અબાજીથી લગભગ એક માઈલ દૂર છે અબાજી ગુજરાતનુ જાણીતુ હિદુ તીર્થ છે, પણ ત્યા કઈ જૈનો ઓછા નથી આવતા ? અબિકા ૨૨મા તીર્થકર શ્રી નેમનાથની અધિષ્ઠાયિકા દેવી છે એ પોરવાડોની કુલદેવી છે. અત્યારે અબિકાનુ મદિર, ત્યાંનો વહીવટ, ત્યાંની પૂજા આદિ બધી પ્રક્રિયા દાંતા સ્ટેટના અધિકારમાં અને બ્રાહ્મણોના કબજામાં છે અબાજી ખરેડીથી ૧૨ માઈલ દૂર છે અને દાંતા સ્ટેટની પહાડી હદમાં આવેલુ છે ત્યાં જતાં શરૂઆતમાં શિરોહી સ્ટેટની હદ આવે છે અને પછી દાતાની રસ્તો વિષમ નથી ગાડાનુ સાધન છતા અમે બધા લગભગ પાદવિહારનો જ આનદ લેતા ત્યાં પહોચ્યા અબિકા કે કુભારિયા જનારને રસ્તાની કે વાહનની મુશ્કેલી નથી, પણ ખરુ, અને ભયકર ત્રાસ સ્ટેટના દાપા (મૂડકાવેરા) નો જ છે તીર્થોની તીવ્ર શ્રદ્ધા હોય, શીલ્પના અજબ નમૂનાઓ જોવાની ઉત્કટ ઇચ્છા હોય, ખિસ્સુ ઠાલુ ન હોય અને મનુષ્ય જાતિને પડતા ત્રાસ સહી લેવાની જેટલી ઉદારતા કેળવી હોય કે તે ત્રાસને ત્રાસ ન ગણવા જેટલુ અજ્ઞાન હોય તે જ એ તીર્થોમાં જઈ યાત્રા સુખરૂપ માણી શકે આ જ હાડમારીને કારણે અતિસુદર તેમ જ દેલવાડા જેવા કલામય ભવ્ય જૈન મદિરો હોવા છતાં કુભારિયામા જનાર જૈનયાત્રીઓ બહુ જ ઓછા હોય છે ખાસ કુભારિયાની યાત્રાએ નીકળનાર તો વીરલ જ હોય છે કેટલાક અબાજીની બાધા રાખનાર જૈનો અબાજી આવે છે તે કુભારિયા પણ જાય છે જ્યા સુધી ' આરોગ્ય, સતતિ અને વૈભવની પ્રાપ્તિનો આધાર અબાજી છે ' એવી શ્રદ્ધા ધરાવનાર સ્થાનકવાસી કે મૂર્તિપૂજક જૈનો રહેશે ત્યા સુધી સ્ટેટની છે તે કરતા પણ વધારે હાડમારી થયા છતા એ કુભારિયા તીર્થમા જનાર થોડા પણ જૈનો નીકળવાના જ

દાંતારાજ્યની વ્યવસ્થા –ભાડા કરતાં પણ વધારે વાહન ઉપરનો લાગો, આખુ કરતાં પણ વધારે મૂડકાવેરો અને જગોએ જગોએ ચોકી-વેરાનો ત્રાસ એ બધું દુ ખ ત્યા જનાર દરેક યાત્રી સહે છે, પણ તે સામે હજી સુધી કોઈએ લખ્યુ હોય કે માનુ ઉચ્ચાર્યું હોય એમ હુ નથી જાણતો.

ત્રાસ ખમનાર દરેક યાત્રી માત્ર મનથી જ નહિ પણ મોઢા સુદ્ધાંથી દાંતા સ્ટેટની વ્યવસ્થાને શ્રાપ આપે છે અને પાછો તીર્થની શ્રદ્ધામા કે હિંદુસ્થાનના સર્વસામાન્ય ગંભીર અજ્ઞાનમાં કે આપણે શુ કરી શકીએ ? એવી વારસાગત નિર્બળતામાં અને છેવટે સમષ્ટિહિતની પરંપરાગત બેપરવાઈમાં એવા ત્રાસને ભૂલી જાય છે અને ખમી જાય છે એ ત્રાસના અનુભવનાર અનેક યાત્રીઓના મુખથી નીકળતી શ્રાપપરંપરા સાભળી મને વિચાર આવ્યો કે વિરમગામની **લાઈનદોરી** સામે જે હિલચાલ લોકોએ ઉપાડી છે તે કરતાં પણ વધારે સખત હિલચાલ ગુજરાતના હિંદુ વર્ગે દાંતા સ્ટેટ સામે ઉપાડવી જોઈએ અને અંબાભક્તોના માર્ગને સરળ બનાવવો જોઈએ. હિલચાલમાં જૈનોએ પણ ઉત્સાહભેર ભાગ લેવો જોઈએ ગુજરાતના શિક્ષિત ધનાઢ્ય અને સ્વમાનપ્રિય વર્ગે આ હિલચાલ ગમે ત્યારે ઉઠાવવી જ પડશે એમાં એક બાજુ ભૂતદયા છે, મનુષ્યત્વનો પ્રેમ છે અને બીજી બાજુ અંધશ્રદ્ધાને શુદ્ધ કરવાનો વિચારી પ્રયાસ છે જૈનો પાલિતાણાના મૂડકાવેરાની બાબતમાં સ્ટેટ સામે કેમ લડી રહ્યા છે એનુ રહસ્યદર્શન મને એ યાત્રામાં થયુ એક વાર મૂડકાવેરામાં નમતુ આપવાથી અને લોકોની તીર્થશ્રદ્ધા રૂપ કામધેનુ ગાયને મરજી પ્રમાણે દોહી તે દૂધ ઉપર (કહો કે લોકોના લોહીબિંદુ ઉપર) એશઆરામની ઇમારતો ઊભી કરનાર રાજાઓના અધિકાર કબૂલ રાખવાથી યાત્રી તેમ જ સત્તાધારીની કેવી નૈતિક પડતી થાય છે તેનું સ્પષ્ટ દર્શન આ યાત્રામાં થયુ કોઈ રાજદ્વારી પુરુષે કરવા જોઈતા આ ત્રાસના વર્ણનને વધારે લંબાવવુ મારે માટે અત્યારે અનધિકાર ચર્ચા છે.

અંબાજીનાં બીજાં દૃશ્યો—અંબાજીના રસ્તામા વચ્ચે વચ્ચે અનેકવાર એક જ નદી કે વહેળો આવે છે અને બીજા પણ ઝરણા ચાલતાં દેખાય છે પાણી થોડુ અને વૃક્ષો પણ બહુ ન કહેવાય, છતા આગળ વધતાં આનંદપ્રદ વૃક્ષઘટાઓ અને ટેકરીઓના સુંદર દૃશ્યો આવે છે અંબાજી એ નાનકડુ ગામ છે તેમાં વસ્તી મુખ્યપણે બ્રાહ્મણોની છે અંબાજીના પૂજારીઓ બ્રાહ્મણ અને તેના ઉપર નભતા પણ બ્રાહ્મણો, એટલે બ્રાહ્મણોની જ સંખ્યા અન્ય હિંદુતીર્થોની પેઠે અહીં પણ વધારે હોય તે સ્વાભાવિક છે અંબાજીનુ મૂળ સ્થાન અને મંદિર જૈનોનુ હોવાનાં અનેક ચિહ્નો અત્યારે પણ મોજૂદ છે અંબાજીમા વસતા બ્રાહ્મણોને લાડુ વિનાના દિવસો ભાગ્યે જ જાય છે માનતા નિમિત્તે જમાડનાર મળી જ આવે કોઈ અમારા જેવો નાસ્તિક જાય તોપણ ત્યાના લાડુપ્રિય બ્રાહ્મણો

ધર્મગુરુઓની પેઠે એ નાસ્તિકતાને નસાડવા જરાપણ આળસ કરે તેવા નથી. ગયા, કાશી, મથુરાના પંડાઓ કરતાં અંબાજીના બ્રાહ્મણોની એક વિશેષતા છે અને તે પ્રાતિક. ગુજરાતના મનુષ્યોમાં યુ. પી મનુષ્ય જેટલી કઠોરતા નથી હોતી પ્રમાણમાં નરમાશ વધારે હોય છે એ વસ્તુનુ દર્શન અંબાજીના પૂજારીઓ અને ત્યાંના બીજા બ્રાહ્મણોમા થયુ. માગે, ના પાડો તોયે માગે, વારવાર દાતાને સચેત કરે, પણ કાશી આદિના પડાની પેઠે હુજ્જત ન કરે અંબાજીમા કોઈ એકલી સ્ત્રી પણ જઈ શકે અને નિર્ભય રહે એમ બનવુ કાશી આદિમાં અસભવ નહિ તો મુશ્કેલ તો ખરુ જ અંબાજીમાં ધર્મ-શાળાઓ અનેક છે અને ખાનપાનાદિની બીજી પણ સગવડો છે

અમારો મુખ્ય ધ્યેય કુંભારિયાજી રહેવાનો હતો, પણ ચોકિયાતના ત્રાસને કારણે જ અંબાજીમા રહ્યા. દહેરુ જોયુ. સવાર–સાજ અને ભિન્ન ભિન્ન દિવસે અંબાજીનાં જુદાં જુદાં રૂપો દેખાય છે શ્રદ્ધાળુ યાત્રીઓ રૂપ-વિવિધતાને દેવીનો ચમત્કાર માને છે પણ ચમત્કાર માત્રનુ ચામડુ ઊખેડી કે કનાર પશ્ચિમ કેળવણીના ઉપાસકો એવી શ્રદ્ધા નથી ધરાવતા અને નાસ્તિક કહેવડાવવાનો શોખ ઉત્પન્ન કરી એ ચમત્કાર વિષે પૂજારીને પૂછ–પરછ કરે છે રા રા મોહનલાલભાઈ વકીલ અને સત્યજિજ્ઞાસુ તેથી એમને પણ ચમત્કારનુ મૂળ જાણવાનો શોખ પ્રગટ્યો અને પૂજારીને પૂછ્યુ કે ‘અંબામાતાની મૂર્તિનાં ભિન્ન ભિન્ન રૂપો અને વાહનોની ભિન્નતા માટે ખુલાસો કરો’ પણ પૂજારીઓ આજના શિક્ષિત તર્કવાદી જમાનાને પ્રથમથી જ જાણી ગયા હોય અને તે માટે એક સૂત્રાત્મક ઉત્તર ઘડી રાખ્યો હોય તેમ લાગ્યુ પૂજારીઓએ કહ્યુ, ‘માતા જગદંબા છે, તે જ સૃષ્ટિની કર્તાહર્તા છે, તેની અકળગતિ કોણ જાણી શકે? બ્રહ્મા વગેરે દેવો પણ એનો પાર નથી પામ્યા’ પ્રશ્નકર્તાએ ખૂબ જિજ્ઞાસા બતાવી પણ પૂજારીઓનો ઉત્તર છેવટે એ જ હતો એમાં બુદ્ધિ ન ચાલે ‘જે છે તે જોઈ લો’ અમે એ બાબત કશુ જ કહેવા માગતા નથી ઈત્યાદિ કાશી, ગયા, વૃંદાવન આદિ તીર્થોનાં અજબ માહાત્મ્ય તે તે તીર્થવાસી પાસેથી સાભળેલા અને પુરાણોમા વાચેનાં તેથી અંબાજીના પૂજારીઓના ઉત્તરથી મને જરાયે વિસ્મય ન થયુ

દાંતા રાજ્યની બીજી હકીકત—કુંભારિયાજીના મુખ્ય વર્ણન ઉપર આવુ તે પહેલા દાંતા સ્ટેટ વિષે થોડુ કહી લઉં એ એક નાનકડું સ્ટેટ છે તેની આવક અંબાજીનો લાગો બાદ કરીએ તો બહુ જ થોડી છે. માત્ર અંબાતીર્થની જ આવક બે લાખ રૂપિયા વધારે સાભળી છે એ

આવકનો ઉપયોગ કાંઈ તીર્થમાટે કે પ્રજાકલ્યાણ માટે નથી થતો માત્ર રાજા જ તેને પોતાના ઉપયોગમાં લે છે યાત્રીઓ ઉપરના મૂંડકાવેરા ઉપરાંત ત્યાંની વસ્તી ઉપર અનેક બાબતોમાં એવા હેરત પમાડે તેવા કર નખાયેલા છે કે જેને સાંભળતાં જ કંપારી છૂટે. કપડાં, સાકર, ગોળ આદિ કોઈ પણ વસ્તુ હોય તેના ઉપર દર રૂપિયે લગભગ બે આના જેટલો સામાન્ય કર હોય જ. બહારથી આયાત થતી વસ્તુઓ ઉપર વધારે કર નાખી સંરક્ષણનીતિ સ્વીકારી છે એમ કોઈ ન સમજે પોતાને ત્યાં ઉત્પન્ન થતી અને પોતાને ત્યાં વેચાતી ઘી વગેરે ચીજો પર પણ તેટલો જ અને તેવો જ અસહ્ય કર નાખ્યો છે જે જે ચીજોની બહાર નિકાસ થવાથી પ્રજાને વધારે લાભ થાય રાજ્યનો વેપાર ખીલે, એવી ચીજો ઉપર પણ દાણની સખત લોહબેડી નાખેલી છે મધ જેવી વસ્તુ જે ત્યાં બહુ થાય છે તેની નિકાસ ઉપર મણે ૧૧ રૂપિયા ઉપરાંત દાણ છે, જ્યારે શિરોહી સ્ટેટમા છ આના દાણ લે છે પણ આ દાણના સકંજા ઉપરાંત દુકાનદારો ઉપર દુકાનનો કર વળી જુદો જ છે કોઈના ઉપર વરસે પાંચસો તો કોઈના ઉપર અઢીસોના કરનો બોજો છે ચાહની હોટેલવાળા જેઓ અબાજી જતાં રસ્તામાં આવે છે તેઓને પણ વરસે દોઢસો કરના ભરવા પડે છે આ અપ્રાસગિક જણાતુ વર્ણન એટલા માટે આપુ છુ કે પ્રજાની અજ્ઞાનતા અને ગુલામી કેવી ગભીર છે અને વિષમય ફળો જ્યા ત્યા કેટલા અને કેવાં દેખા દે છે તે જોઈ શકાય

ભયનીતિ—બીજા પણ એક વિષફળનો ઉલ્લેખ કરી દઉ કારણ, ઓછાવત્તા પ્રમાણમાં એ રોગ હિંદુસ્થાનમાં સર્વવ્યાપી છે ભય, મહાભય—મારનો ભય ત્યાં ભારે જોયો ગાડાવાળો કહે 'જો આ હદથી આગળ આવીશ તો મને મારશે ગમે તેટલી ધીરજ આપ્યા છતા અને મારનુ જોખમ માથે લીધા છતા તે બિચારો મારના ભયથી કાપતો કાપતો એમ જ કહેતો કે તમને નહિ મને જ મારશે' બીજા એક દાણછાપરીવાળા માણસે કહ્યુ કે 'અમારાથી કશુ ન બોલાય અહી રહેવુ છે બોલીએ તો માર ખાઈએ અને હેરાન થઈએ.' અસ્તુ

બ્રિટિશ હિંદમા ભયનુ ધુમ્મસ ઓસરી રહ્યુ છે તેની અસર વહેલી મોડી આવા દેશી રાજસ્થાનમાં પણ થવાની

તીર્થ સંબંધી—દાતાના રાજા સુધી એને પહોંચવાનો સંભવ નથી. કર્મઠ ગુજરાતીઓ પણ એને સ્પર્શ કરશે એવી આશા બહુ ઓછી છે,

છતાં અંબાજીના ધામમાં આવેલ વિચાર લખી દેવામાં કશું જ નુકસાન જોતો નથી તેથી એ પણ લખી દઉં, કે તીર્થ એ તરણનો ઉપાય છે પારલૌકિક કલ્યાણ શું અને ક્યારે થશે તે અજ્ઞાત છે થવાનું જ હશે તો ભાવના પ્રમાણે થશે જ, પણ તેનાથી ઐહિક કલ્યાણ જેટલું વધારે અને જેટલું સત્વર સાધી શકાય તેટલી જ સાચી તીર્થતા તીર્થો એ માત્ર અમુક સમુદાયની શ્રદ્ધાનું મૂર્ત-રૂપ છે અન્યત્ર કંજુસાઈ કરનાર પણ શ્રદ્ધાળુઓ તીર્થમાં કાંઈ જ ફાળો આપે જ છે તીર્થનું મહત્ત્વ શ્રદ્ધાળુઓની ભક્તિ અને દાનવૃત્તિને આભારી છે શ્રદ્ધાળુઓ ખર્ચ કરે છે તે કાંઈક બદલાની આશાથી, નહિ કે માત્ર નિષ્કામ બુદ્ધિથી તીર્થસ્થાન એટલે શ્રદ્ધાની મૂર્તિમંત કામધેનુ તે દર ક્ષણે અને દર પળે આપોઆપ અનેક રીતે દુઝયા જ કરે છે તેનો બુદ્ધિપૂર્વક સાર્વજનિક કલ્યાણ અર્થે ઉપયોગ કરવામાં આવે તો શ્રદ્ધા સાથે વિવેકનો સમન્વય થવાથી તીર્થ એ માત્ર નામનાં જ તીર્થ ન રહેતાં ખરાં તરણોપાય બને તે દ્વારા શારીરિક, માનસિક અને નૈતિક આરોગ્ય ઘણું પોષી શકાય. તીર્થસ્થાનો બહુધા સુંદર આબોહવાવાળાં સ્થાનમાં આવેલાં હોવાથી ત્યાંની આબોહવા પ્રમાણે આરોગ્યભવનો ઊભાં કરી શકાય અને અનેક બીમારોના આશીર્વાદ મેળવી શકાય વ્યવસ્થિત શિક્ષણ સંસ્થાઓ, તીર્થની જ આવકમાંથી ચલાવી તે દ્વારા અજ્ઞાનનો રોગ ફેડી શકાય ઉચ્ચ નૈતિક જીવનવાળા સેવકો અને શિક્ષકોનો સંગ્રહ કરી તે વાતાવરણદ્વારા નૈતિક જીવન વિકસાવી શકાય આ રીતે તીર્થ-સ્થાનને આધુનિક જરૂરિયાતવાળી સંસ્કૃતિગંગાનું ઉદ્‌ગમસ્થાન બનાવી શકાય આ માટે જોઈતાં સઘળાં નાણાં શ્રદ્ધાળુઓની શ્રદ્ધાની દિશા બદલીને મેળવી શકાય એ કામ માત્ર કઠણ નથી, પણ તેમાં મુશ્કેલીઓ અપાર છે આજ સુધી માત્ર તીર્થો ઉપર નભતો અમુક વર્ગ અને તે ઉપર તાગડધિન્ના કરનાર રાજ્ય સુદ્ધાંનો પ્રકોપ વહોરવો પડે, પણ અંગત સ્વાર્થ ખાતર જ્યાં પ્રકોપ વહોરવાનો ન હોય અને કેવળ સામાને મુશ્કેલીમાં મૂકવાનો ઉદ્દેશ ન હોય તેવાં સાર્વજનિક કાર્ય કરવામાં ગમે તેની અને ગમે તેટલી ખફગીની પરવા રાખ્યા સિવાય જ કામ કરવું એમાં ધર્મદૃષ્ટિ અને તીર્થસેવા આવી જાય છે એને પરિણામે એક નાનકડા વર્ગની પરોપજીવિતા અને આલસ્ય વૃત્તિ દૂર થવા સાથે પ્રજાનું વાસ્તવિક હિત સધાતાં એ નાનકડાવર્ગનું પણ હિત સધાઈ જાય છે. અંબાજી જેવા તીર્થસ્થાનમાં શારીરિક અને માનસિક જ નહિ, પણ ઔદ્યોગિક શિક્ષણ અમુક અંગે આપવાના સફળ પ્રયોગો કરી શકાય તેમ છે અને બરબાદ જતી ખનીજ અને જંગલી

વસ્તુઓનો વધારે લાભપ્રદ ઉપયોગ કરી શકાય તેમ છે પણ આ માટે તો ભગીરથો જ જોઈએ જો કે બે વર્ષ થયાં પાડા આદિનો પ્રથમથી થતો વધ હવે ત્યાં અટક્યો પણ સૂક્ષ્મ દૃષ્ટિથી જોનારને હજુયે લાગશે કે દેવીના તીર્થોમાં પ્રજાની શક્તિ અને બુદ્ધિરૂપ ગાયનો સતત હાનિકારક રીતે વધ જ થઈ રહ્યો છે સ્થૂળ દૃષ્ટિ પ્રાણનાશમાં વધ જુએ છે ખરી પણ સૂક્ષ્મ દૃષ્ટિ શક્તિ માત્રના અનુપયોગ અને દુરુપયોગને વધ જ ગણે છે અસ્તુ. આપણે એટલુ જ ઇચ્છીએ કે આપણા દેશના દરેક તીર્થ આપણા ઐહિક કલ્યાણમાં પણ બુદ્ધિગમ્ય ફાળો આપો

કુભારિયાની યાત્રા—હવે અમારા મુખ્ય ગતવ્ય અને દૃષ્ટવ્ય સ્થાન કુભારિયા તરફ વળીશુ પડાવ અબાજીમા રાખી ચારે દિવસ સવારથી જ કુભારિયાજી જવાનું અને સાજ સુધી રહેવાનુ રાખેલુ કુભારિયાજીના જૂના પાચ અખડ દેરાસરો તેની કારીગરી અને બાધણીની ઉત્કૃષ્ટતા, ત્યાંના આરસપહાણની ખાણો, આરસપહાણનુ કામ, તેનો ઇતિહાસ અને તે સબધમાં ચાલતી કિવદન્તીઓ એ બધા માટે અહી સ્થાન ન રોકતાં વાચકોને પ્રાચીન લેખ સગ્રહ ભાગ ૨ (જિનવિજય સપાદિત) જોઈ લેવા સાગ્રહ સૂચવુ છુ અને તે સબધમાં હવે પછી તેઓશ્રી તરફથી પ્રસિદ્ધ થનાર ઐતિહાસિક માહિતીવાળા ત્યાંના લેખસગ્રહની થોડો વખત ધીરજપૂર્વક રાહ જોતા રહેવા વીનવુ છુ પ્રસ્તુત વર્ણનમાં મુખ્યત્વે ત્યા થયેલ કામકાજની જ નોધ આપવી યોગ્ય ધારું છુ અને પ્રસગે પ્રસગે એ સ્થાનમા આવેલા વૈયક્તિક વિચારો રજૂ કરવાની ઇચ્છા રાખુ છુ

દેવકુલીકાઓનુ પુન સમારકામ ચાલતુ હોવાથી પબાસનો છૂટા હતા અને તેથી તે ઉપરના બધા લેખો ખુલ્લા હોવાને કારણે વાચવા શક્ય હતા આ અનુકૂળતા જોઈ રા મોહનલાલનુ મન ઉતારી શકાય તેટલા શીલાલેખો ઉતારી લેવાનુ થયુ. આચાર્ય શ્રીમાન્ જિનવિજયજીના અનુકૂળ વિચારે એમના મતને પ્રોત્સાહન આપ્યુ તુરત જ કામ શરૂ થયુ એક બાજુ લેખો સાફ કરવાનુ કામ ચાલ્યુ અને બીજી બાજુ તે વાચવાનુ અને લખી લેવાનું આચાર્ય શ્રી જિનવિજયજીની સત્વર વાચનપટુતા અને શક્તિ તેમ જ રા મોહનલાલની ઝડપી લેખનશકિત અને ગ્રહણપટુતા એ બનેના યોગે થોડા જ વખતમા ધાર્યા કરતા વધારે લેખોની નકલો થઈ ગઈ અને સાજે પાછા ફર્યા અને થોડા વખતમાં વધારે થયેલ કામના સતોષજન્ય લોભે એક જ દિવસ રહેવાના નિશ્ચયને વેગળો મૂકાવ્યો અને બીજે દિવસ રહેવા રોકાયા

અને બીજા દિવસના કાર્યસંતોષે ત્રીજો દિવસ પણ રોકાયા. એકંદર પાંચ મંદિરોમાં હતા તેટલા લગભગ બધાએ લેખ એ બંને કાર્યશીલ મહાનુભાવોએ મળી આવેલા પથ્થરો ઉપરના શક્ય લેખો ઉતારી લીધા આ બધા લેખો બહુ મહત્ત્વના છે તેમાના થોડા લેખો અને તે પણ બહુધા અપૂર્ણપણે પ્રાચીન જૈન લેખ સંગ્રહ બીજા ભાગમાં છપાયેલા છે આ વખતે ઉતારી લીધેલા લેખોની સંખ્યા જેમ મોટી છે તેમ તેની પૂર્ણ નકલ એ પણ ખાસ મહત્ત્વની બાબત છે. એ બધા શીલાલેખો યોગ્ય રીતે ત્રૈમાસિકમાં અગર સ્વતંત્ર પુસ્તક રૂપે તેના મર્મજ્ઞ શ્રી જીનવિજયજી તરફથી પ્રસિદ્ધ થવાના હોવાથી તે સંબંધમાં અહી સ્થાન રોકવુ વૃથા છે, છતાં એટલુ તો સૂચવી દઉ કે એ લેખોમાં ઘણી નવી અને મહત્ત્વની બીના જાણવાની મળશે અને ઐતિહાસિકો માટે એક રસ–પ્રદ પ્રકરણ ઉપસ્થિત થશે.

મારે સાચી જ રીતે કબૂલ કરવુ જોઈએ કે લેખોની નકલો લેવા આદિ જે કુશળ કર્મનુ ઉપર ટૂક વર્ણન કર્યું છે, તેમા મારો નામનો પણ હિસ્સો નથી હુ માત્ર તટસ્થ પ્રેક્ષક અને એ કુશળકર્મથી આનંદિત થનારો અને જિજ્ઞાસા શમાવનારો અને બહુ તો આ વર્ણન લખી સંતોષ પકડનારો છુ જ્યારે આ શ્રી જીવનવિજયજી અને રા મોહનલાલ સમાહિત મને લેખોની નકલ કરવાનુ કામ કરી રહ્યા હતા ત્યારના દૃશ્યની છાપ મારા મન ઉપરથી ભૂસાય તેવી નથી પણ એ વાત જવા દઈ તે વખતે આવેલા વિચારોમાંથી કેટલાક લખી દઉ

શ્રી આણંદજી કલ્યાણજીની પેઢીની કર્તવ્ય દશા—જે તીર્થ-સ્થાનો અને મંદિરો જૂનાં તેમ જ બાંધકામ, કારીગરી અને ઇતિહાસની દૃષ્ટિએ અતિ મહત્ત્વનાં છે (૧) તેનું સંપૂર્ણ સર્વસ્વ કાયમ રાખવા અને તેને યોગ્ય રૂપમા પ્રસિદ્ધિમા આણવા માટે જરૂરનુ છે કે આખા દેશમાં મહત્ત્વનુ સ્થાન ભોગવતી આણંદજી કલ્યાણજીની સંસ્થા તે માટે ખાસ પ્રબંધ કરે (૨) જો તે પોતાને ખાસ ઉપયોગી થાય તેવા પ્રાચીન તેમ જ અર્વાચીન સ્થાપત્ય અને શીલ્પ–કળા અભ્યાસીઓનો એક વર્ગ તૈયાર ન કરી શકે તો ખાસ ખાસ તીર્થસ્થાનોમાં એક એક એવા માણસની નિમણૂક કરે તે જે પ્રાચીન ભારતીય સ્થાપત્ય અને શીલ્પકળામા નિષ્ણાત હોય અને ઇતિહાસરસિક તેમ જ કલાજ્ઞ હોય (૩) ત્યા એવા ખાસ માણસની નિમણૂક શક્ય ન હોય ત્યા વહીવટી માણસ જ એવો ગોઠવો જોઈએ કે જેમા ઓછામા ઓછી જૈન ઇતિહાસ જાણવા અને સાચવવા

પૂરતી લાયકાત હોય. જે પ્રાચીન કારીગરીવાળા એકાદ પથ્થરના ટુકડાનું અગર ઘસાયેલ–ભૂંસાયેલ એક બે અક્ષરવાળા લેખનુ પણ મહત્ત્વ સમજતો હોય, લેખોની નકલો કરતાં જાણતો હોય, ફોટો લેતાં શીખ્યો હોય અને તીર્થોના ઇતિહાસનો સાચો અભ્યાસી હોય આજે સરકારી સસ્થાઓમાથી આવું શિક્ષણ પામેલ માણસો મેળવવા એ મુશ્કેલ નથી, માત્ર કાર્યકર્તાની દૃષ્ટિ ખૂલવી જોઈએ એથી મદિરોની પ્રાચીનતા અને તેનો ઇતિહાસ સચવાવા ઉપરાંત કેળવાયેલ દેશી–વિદેશી વિદ્વાનોનું આકર્ષણ વધવાથી તીર્થ ઉપર આવતા પ્રત્યવાયોને દૂર કરવાનું કામ બહુ સરળ થશે.

સાધુગણને વિનંતી—કાર્યની દિશા અનિશ્ચિત અને જીવનનું વ્યાવહારિક ધ્યેય અસ્પષ્ટ હોવાથી આટલો મોટો સાધુસમુદાય છતા સામાજિક હિતના કામ માટે સેવકોની માગણી હમેશા ચાલુ જ રહે છે અને સેવકોના અભાવની ફરિયાદ મટતી જ નથી ઉપરાંત વિક્ષેપકારી સાધુઓને લીધે આખી સાધુસંસ્થાને અનાવશ્યકતાની ચર્ચા વધતી જાય છે. એક બાજુ પરોપકારી ગણાતો મોટો વર્ગ હોય અને બીજી બાજુ કાર્યકર્તાને અભાવે અનેક ઉપયોગી કાર્યો ન થતાં હોય કે નાશ પામતા હોય તેવે વખતે દૂરદર્શી સાધુપુરુષોનુ કર્તવ્ય છે કે સગઠન કરી તૈયાર થઈ અને કામની યોગ્ય વહેંચણી કરી લે સાધુ સમક્ષ નીચેના કામો ઓછામાં ઓછા છે જ.

(क) પુસ્તકભડારોની યોગ્ય વ્યવસ્થા અને વ્યવસ્થિત સૂચિઓ, તેમ જ તેનો ઇતિહાસ તૈયાર કરવાનુ કામ

(ख) તદ્દન છેલ્લી અને નવી ઉપયોગી પદ્ધતિએ મૂળ પુસ્તકો છપાવવાનું કામ

(ग) પસંદ કરેલ ખાસ પુસ્તકોમા લોકભાષામા પ્રમાણિક અનુવાદ કરવાનું કામ.

(घ) પ્રાચીન અને અર્વાચીન સાહિત્યના ઊડા અભ્યાસથી મહત્ત્વપૂર્ણ નવું સાહિત્ય રચવાનુ કામ.

(ङ) દરેક તીર્થ અને મંદિરને લગતો સર્વાગિણી ઇતિહાસ લખવાનુ કામ.

(ચ) સર્વસાધારણમાં સામાન્ય શિક્ષણ પ્રચારવાનું અને ઘટે ત્યાં ઉચ્ચ શિક્ષણને વિસ્તારવાનું અને તે માટે જાતે તૈયાર થવાનું કામ

આ અને આના જેવાં કેટલાંયે દેશકાલે માગી લીધેલાં નિર્દોષ કામો પડ્યાં છે એમાંથી એક એકની રુચિ પ્રમાણે પસંદગી કરી તેને જીવન-ધ્યેય બનાવી સમગ્ર શક્તિ તેમાં રોકવામાં આવે તો નવરા પડેલ મનને ક્લેશ અને વિખવાદનો પ્રસંગ નહિ આવે અને જેમ જુદા જુદા નયોના સમન્વયથી આખો સ્યાદ્વાદ ઘડાય છે તેમ જુદી જુદી શક્તિ ધરાવનાર સાધુગણના સૌહાર્દપૂર્ણ સમન્વયથી જૈનસંઘ બળવાન બનશે

સાચી પ્રભાવના—પધરામણી, ઉપધાન, ઉજમણા આદિ અનેક ઉત્સવ પ્રસંગે જે ધૂમધામ અને લખલૂટ ખર્ચ થાય છે તેના તેજમાં અંજાઈ ગૃહસ્થ અને સાધુઓનો મોટો વર્ગ શાસનની પ્રભાવના માની લે છે, પણ જો એ પ્રભાવના સાચી જ હોય તો જૈન સમાજમાં બળ આવવું જ જોઈએ. દર વર્ષે અને પ્રાય દરેક પ્રસિદ્ધ સ્થળે આવી અનેક પ્રભાવનાઓ થયાના સમાચાર જૈન પત્ર વાચનારથી અજ્ઞાત નથી અને છતાંય જોઈએ છીએ કે સંઘમાં બળની દિવસે દિવસે ઊણપ જ વધતી જાય છે નથી જ્ઞાનનું બળ વધતું દેખાતું કે નથી ચારિત્ર્યનું બળ વધતું દેખાતું જે જે બળો પૂર્વે હતાં તે કરતાં પણ આજે ઓછાં છે એ વાત સાચી હોય તો તે આપણે શું કબૂલ કરતાં શરમાવું જોઈએ? આપણી ધર્મપ્રભાવનાઓની ચાલુ પદ્ધતિ ખામીવાળી છે અને દેશકાળને અનુરૂપ નથી

શું ઉપર સૂચવેલ કામોમાં સાધુઓ ગીરફતાર થઈ જાય તો જ્ઞાનની આરાધના અને ચારિત્ર્યની આરાધના નહિ થવાની કે સંઘબળ વધી શાસન-પ્રભાવના નહિ થવાની? આ તો કુંભારિયાના એ મંદિરોમાં આવેલ વિચારોની વાનગી થઈ અસ્થાન ચર્ચાનો દોષ લાગતો હોય તો તે બદલ વાચકો ક્ષમા આપશે

કોટેશ્વરનું રમણીય સ્થાન—કુંભારિયાજીથી ત્રણ માઈલ દૂર કોટેશ્વર મહાદેવનું સ્થાન છે તે ઊંચાણમાં છે અને સરસ્વતિ નદીનું મૂળ હોઈ તેમ જ જળપ્રવાહોને બ્રાહ્મણબુદ્ધિએ વધારે પવિત્રતાનું રૂપ આપેલું હોઈ ત્યાં પુષ્કળ યાત્રીઓ જાય છે અમે પણ ગયા હતા સ્નાનાગાં એક સુંદર દૃશ્યનો ફોટો શ્રી જિનવિજયજીએ લીધો તે વખતે તેમના સૌંદર્ય અને કલાલોલુપ દૃષ્ટિ વિષે આવેલા વિચારો કાંઈ જુદા જ હતા પણ તેનું આ સ્થાન નથી

અન્ય ઉપયોગી બે વાત—ગબ્બર, જરીવાવ, આરસપહાણની જૂની ખાણ વગેરે જોવાનો અને ફરવાનાં સ્થળોને સમયને અભાવે પડતાં મૂકી પાછા ફર્યા પાછા ફરવાનો અને આ વર્ણનનો ઉપસંહાર ન લબાવતા ફક્ત અગત્યની લાગતી બે વાતો અહીં વાચકો સમક્ષ મૂકી દઉં એક તો એ કે ખરેડીમાં શ્રીમાન્ શાન્તિવિજયજીનો સમાગમ, અને બીજી પાલનપુરમાંના એક ભડારની કેટલીક તાડપત્રની પ્રતિઓનુ અવલોકન (૧) શ્રી શાન્તિ-વિજયજી વિશે ગયે વર્ષે કઈક સાંભળેલુ. તેઓ આબુના ઊચા અને વિવિધ શિખરો ઉપર કે ગુફાઓમાં બહુધા એકાંત જીવન ગાળે છે જાતે રબારી છે તેઓના જ શબ્દોમા કહુ તો 'રબારી હતો ત્યારે એ જગલમા રહેતો અને અત્યારે પણ જગલી જ છુ' તેઓ એકાંતવાસી યોગી તરીકે ભક્તોમા જાણીતા છે અને આબુની આસપાસના પ્રદેશમા જ જીવન તથા સયમયાત્રા નિર્વહે છે તેઓની પ્રતિષ્ઠા વિદ્યાને અગે નથી, પણ સરળ જીવનને અગે છે તેઓ ભોળા છે અને તદ્દન સાદા છે. નિસ્પૃહતા વિશેષ હોય એવી છાપ પડે છે અનેક લોકો તેઓના દર્શન માટે આવે છે પણ હુ સમજી શક્યો ત્યાં સુધી દર્શનાર્થીઓમાં કલ્યાણાર્થી ભાગ્યે જ હોય છે સપત્તિ, સતતિ અને અન્ય અભિલાષાઓ લોકસમૂહને ધર્મછાયામાં ધકેલે છે એક જણ તપ કરે, યોગ સાધે, શ્રમ કરે અને તેનુ ફળ મેળવવા હજારો અપુરુષાર્થી જણ દોડે એવી પરિસ્થિતિનુ ભાન મને થયુ. એ મહારાજશ્રી પાસે રાજાઓ, રાજકુમારો અને યુરોપિયન સુદ્ધા આવે છે. એ ગુણા-કર્ષણ જોઈ-સાંભળી જાતિ કરતાં ગુણનુ ચડિયાતાપણુ કેટલુ અને કેવુ છે તેની પ્રતીતિ થઈ અને વિદ્યા કરતાં સયમનુ, ખાસ કરી સરળતા અને નિસ્પૃહતાનુ તેજ કેટલુ વધારે છે એની પણ ખાતરી થઈ

(૨) પાલનપુર—કમાલપરામાં લહુપોષાળ ગચ્છના યતિનો ઉપાશ્રય અને નાનકડો ભડાર છે એમાં તાડપત્રનાં છએક પુસ્તકો છે. એ પુસ્તકો જોયાં એની આવશ્યક પ્રશસ્તિઓ લખી લીધી. એમાનું એક પુસ્તક ૧૩મા સૈકાના આરભમા લખાયેલુ છે કે જે ઉપદેશમાલા ઉપરનું સિદ્ધર્ષિની વૃત્તિ છે બાકીના બધા પુસ્તકો સોમસુંદર સુરીના ઉપદેશથી ડુગરપુરમા એકજ બાઈની મદદથી વિ ૧૪૮૭ થી ૧૪૯૨ સુધીમા લેખાયેલાં છે એ પુસ્તકોમા તત્ત્વાર્થ ભાષ્ય ઉપરની સિદ્ધસેન ગણીની વૃત્તિનો પાચમા અધ્યાયથી અંત સુધીનો ભાગ છે મૂળ તત્ત્વાર્થસૂત્રનુ એક પુસ્તક છે. એક તાડપત્ર ઉપર દિગબરીય ન્યાયગ્રથ (પ્રમેય કમલમાર્તડ) આખો છે. ત્રણ પુસ્તકો

બ્રાહ્મણ ન્યાયનાં છે, જેમાં એક ઉદ્યોતકરનું ન્યાયવાર્તિક, બીજું તેના ઉપરથી વાચસ્પતિ મિશ્રની તાત્પર્યટીકા અને ત્રીજું તાત્પર્યટીકા ઉપરની ઉદયન્ત કૃત તાત્પર્ય પરિશુદ્ધિ છે આ પુસ્તકોની વિશેષ માહિતી અન્ય પ્રસંગે આપવી યોગ્ય થશે. આ સ્થળે એટલું જ કહી દઉં કે આ વખતની ટૂંકી મુદતની પણ અમારી યાત્રા અનેક રીતે વ્યક્તિગત અને સમષ્ટિગત દષ્ટિબિન્દુથી સફળ નીવડી છે તેનું મૂર્ત પરિણામ શ્રીમાન્ જીનવિજયજી અને રા. રા મોહનલાલ દેસાઈ તરફથી પ્રગટ થનાર કૃતિઓમાં વાચકોની નજરે પડશે.

આ પ્રવાસનું વર્ણન કદાચ કેટલાકને કંટાળો આપશે છતાં તેમાં કેટલાક વિચારો જાણી જોઈને જ લખ્યા છે કે જે બીજા કેટલાકને કર્તવ્યના ભાનમાં સાધક થશે એવી આશાથી.

આણંદજી કલ્યાણજી તરફથી ચાલતી કુંભારિયા તીર્થની વ્યવસ્થા અને તેમના તરફથી ત્યાંના કીમતી મંદિરોની સાચવણી માટે નિયુક્ત સોમપુરિયા પ્રભાશંકર સ્થપતિની વિદ્યાપ્રિયતા વિશે તંત્રીશ્રી પોતે જ લખશે એમ ધારી તે બાબત ઇરાદાપૂર્વક છોડી દઉં છું.

—જૈનયુગ, પુ૦ ૩, અં૦ ૫

આત્મનિવેદન

મારું મન ઢળ્યું એક તરફ એવાં ભજનોની શાબ્દિક યાદી અને બીજી તરફ તેના અર્થનું ચિંતન એ બંનેમાં મન ગરક થયું, અને તેથી પ્રાથમિક ભૂખ કાંઈક ભાંગવા લાગી રસ્તાનું ગામ એટલે જૈન સાધુ તેમ જ સાધ્વીઓ અવારનવાર આવ્યા જ કરે ઠાકરદ્વાર ઘર પાસે એટલે કોઈ કોઈ વાર ચારણો, ભાટો અને બાવાઓ પણ મળે જ. ગામ બહારની ધર્મશાળામાં સદાવ્રતને લોભે હમેશાં જુદા જુદા પંથના બાવાઓ આવે જ ગામની ભાગોળે સ્વામીનારાયણના મંદિરમા, પાળાઓ અને બ્રહ્મચારીઓ પણ આવે જ. થોડાક શેષ રહેલ બ્રાહ્મણગૃહોમાં જે બેત્રણ ઘરડા અને જુવાન સનાતની બ્રાહ્મણો રહ્યા હતા તે પણ મળે જ. મનને જાણવાની ભૂખ હતી એટલે એ બધી સામગ્રી તેને કામ આવી બધા પાસે જવું, કાંઈક પૂછવું, કયારેક અભિમાનથી તો કયારેક તદ્દન નમ્ર જિજ્ઞાસાથી વાદવિવાદ કરવા, અને નવું દેખાય તો ગમે તે રીતે શીખી લેવું, એ તે વખતનો મારો ધંધો જ થઈ પડ્યો હતો પુસ્તકાલયમા જે ગણ્યાંગાઠ્યાં પાંચદશ જૈન જૂનાં પુસ્તકો તે જ તેમ છતાં એ ગામડાના ચોમેર પથરાયેલા ઉકરડાઓમાથી જિજ્ઞાસુ મને અને થોડાઘણા પુરુષાર્થે કાંઈક મેળવી જ લીધું. તે વખતની મારી અભ્યાસસામગ્રીમાં મુખ્યપણે ત્રણ વસ્તુઓ આવે છે પહેલી, ભાષામા જૈન ભજનોનો અપાર સંગ્રહ. બીજી, ભાષામાં રચાયેલાં જૈન તત્ત્વજ્ઞાનના પ્રાચીન ઢબનાં પુસ્તકોનો મોટો જથ્થો. અને ત્રીજી વસ્તુ, પ્રાકૃત ભાષામા રચાયેલા જૂના કેટલાક જૈન આગમો તથા છૂટાંછવાયાં સંસ્કૃત પદ્યો

આ ત્રણ પ્રકારની જ્ઞાનસામગ્રી અસ્તવ્યસ્તપણે મેળવી પણ તેમાંથી એ સૂઝ્યું કે પ્રાકૃત અને સસ્કૃત ભાષાનો અભ્યાસ કરવો જ જોઈએ. સસ્કૃત વિના પ્રાકૃત ભાષા પૂર્ણ ન આવડે એ માહિતી પણ મળી અને સસ્કૃત ભાષાની રમણીયતાએ દિલ જીતી લીધુ એટલે કોઈ પણ રીતે સસ્કૃત શીખવુ એ એક જ નાદ લાગ્યો પણ એની સગવડ કયા? મારા ગામમાં મોટે ભાગે સ્થાનકવાસી જૈન સાધુઓ આવે તેઓમાંના સસ્કૃત કોઈ ભાગ્યે જ જાણે. કોઈ તેનો જાણનાર આવે તો ટકનાર ન હોય એટલે વધેલી અને વધતી જતી જિજ્ઞાસા પૂર્ણ થવામા જેટજેટલો વિલંબ થતો તેટતેટલી વ્યાકુળતા વધે જ જતી આને લીધે કયાંકથી છૂટુંછવાયુ સંસ્કૃતનુ એકાદ વાકય કાને પડ્યુ કે એકાદ પદ્ય સાભળવામા આવ્યુ તો તે જીવ સાટે જ

ભોજન મને ઉચ્છિષ્ટ નહોતુ લાગ્યું, અને હજીયે નથી લાગતું. કારણ, ભૂખ્યાને એઠું શુ ? પણ વ્યવસ્થિત અભ્યાસ માટે માર્ગ ન હતો કેટલાક સંસ્કારી સાધુઓ આવે અને સંસ્કૃત શીખવાનુ કહે. કોઈ સ્નેહી બ્રાહ્મણ સંસ્કૃતની અતિ ઉત્સાહથી પ્રશસા કરે અને શીખવાનુ કહે. કોઈ કાશીના પંડિતોની મહત્તા વર્ણવે, અને કોઈ કોઈ વાર એકાદ સુકંઠ સાધુ સંસ્કૃત પદ્યો ગાય. આ બધું ઉત્તરોત્તર મારા મનને ઘર છોડાવવાની અને બહાર ધકેલવાની તૈયારી જ કરાવતું એ જિજ્ઞાસાના ઉત્કટ ઉન્માદમાં ઘણી વાર આકાશે ઊડ્યાનાં સ્વપ્નો આવેલાં આજે પણ સ્પષ્ટ યાદ આવે છે સાધન ન હતું, પણ જે મળ્યુ તેને જિજ્ઞાસાએ સાધન બનાવ્યુ.

એક વાર એક સાધુ રઘુવશ લાવેલા તેમણે જતી વખતે મને સાત દિવસ તે રાખવા કહ્યું. હુ સસ્કૃતમાં પુસ્તકો કયા છે અને કેમ ભણવુ જોઈએ એ જાણતો જ ન હતો જાણતો હતો એટલુ કે જે સામે આવે તે ખાઈ જવુ એટલે એ મળેલા સાત દિવસોમાં રઘુવંશના દશ સર્ગો યાદ કરી દીધા. વાંચનાર જે હતા તે અક્ષરે સસ્કૃત ન જાણતા હુ પણ નહોતો જ જાણતો પરતુ એ વખતની સ્મૃતિ અને ઉત્સાહે એટલી તૈયારી કરાવી આ બધી ગડમથલમાં એક વૃદ્ધ સાધુ મળ્યા તેમને મે પ્રથમ જ સસ્કૃતના વિદ્યાગુરુ બનાવ્યા તેઓ સ્થાનકવાસી હતા આખે ન દેખતા, સંસ્કૃતના તો બહુ જ સાધારણ અભ્યાસી હતા, પણ જૈન આગમો જૂની ઢબે બહુ જ સારી રીતે જાણતા. મારે મન તેઓ તે વખતે વિશિષ્ટ વિદ્વાન હતા. તેમની પાસેથી સારસ્વત વ્યાકરણની પંચસધિ અને ષટ્લિગ હુ શીખ્યો, ત્યારે એ ગામડામાં મારા બધા ઓળખીતાઓ મને મુનિ અને મનીષિ કહેવા લાગ્યા. ગામના બ્રાહ્મણો પણ મને એક વિદ્વાન સમજતા. જતા–આવતા નવાસવા સાધુસત કે વિદ્વાન કોઈ ગામમા આવે ત્યારે મારા સ્નેહીઓ તેમની પાસે મને એક સારા વિદ્વાનરૂપે ઓળખાવતા એનુ તો સ્મરણ જ આજે મને આપણી અજ્ઞાનતા ઉપર આસુ વરસાવવા પ્રેરે છે

એ વૃદ્ધ સાધુ લાબો વખત ગામમાં ન રહ્યા, અને વળી મારી ભૂખ વધી બીજાં ગામોમા કયા કયાં સંસ્કૃત પાઠશાળા છે ? ત્યાં મારે શી રીતે જવું ? જાઉ તો સાથી કોણ? વાચવાનુ કામ કરે કોણ ? બીજી બધી શારીરિક સંભાળ કોણ રાખે ? અને મમતાથી મને પરાધીન સ્થિતિમા ટેકો કોણ આપે ? અથવા ટૂંકમાં, મારી બધી મૂંઝવણનો નિકાલ લાવવા સહાનુભૂતિ કોણ દર્શાવે ? એ બધા પ્રશ્નો થતા જ હતા માર્ગ જાતે જ કાઢવાનો.

મારું મન ઢળ્યું એક તરફ એવાં ભજનોની શાબ્દિક યાદી અને બીજી તરફ તેના અર્થનું ચિંતન એ બંનેમાં મન ગરક થયું, અને તેથી પ્રાથમિક ભૂખ કાંઈક ભાંગવા લાગી. રસ્તાનું ગામ એટલે જૈન સાધુ તેમ જ સાધ્વીઓ અવારનવાર આવ્યા જ કરે. ઠાકરદ્વાર ઘર પાસે એટલે કોઈ કોઈ વાર ચારણો, ભાટો અને બાવાઓ પણ મળે જ. ગામ બહારની ધર્મશાળામાં સદાવ્રતને લોભે હમેશાં જુદા જુદા પંથના બાવાઓ આવે જ. ગામની ભાગોળે સ્વામીનારાયણના મંદિરમાં, પાળાઓ અને બ્રહ્મચારીઓ પણ આવે જ. થોડાક શેષ રહેલ બ્રાહ્મણગૃહોમાં જે બેત્રણ ઘરડા અને જુવાન સનાતની બ્રાહ્મણો રહ્યા હતા તે પણ મળે જ. મનને જાણવાની ભૂખ હતી એટલે એ બધી સામગ્રી તેને કામ આવી. બધાં પાસે જવું, કાંઈક પૂછવું, ક્યારેક અભિમાનથી તો ક્યારેક તદ્દન નમ્ર જિજ્ઞાસાથી વાદવિવાદ કરવા, અને નવું દેખાય તો ગમે તે રીતે શીખી લેવું, એ તે વખતનો મારો ધંધો જ થઈ પડ્યો હતો. પુસ્તકાલયમાં જે ગણ્યાંગાંઠ્યાં પાંચદશ જૈન જૂનાં પુસ્તકો તે જ. તેમ છતાં એ ગામડાના ચોમેર પથરાયેલા ઉકરડાઓમાંથી જિજ્ઞાસુ મને અને થોડાઘણા પુરુષાર્થે કાંઈક મેળવી જ લીધું. તે વખતની મારી અભ્યાસસામગ્રીમાં મુખ્યપણે ત્રણ વસ્તુઓ આવે છે: પહેલી, ભાષામાં જૈન ભજનોનો અપાર સંગ્રહ; બીજી, ભાષામાં રચાયેલાં જૈન તત્ત્વજ્ઞાનના પ્રાચીન ઢબનાં પુસ્તકોનો મોટો જથ્થો; અને ત્રીજી વસ્તુ, પ્રાકૃત ભાષામાં રચાયેલા જૂના કેટલાંક જૈન આગમો તથા છૂટાંછવાયાં સંસ્કૃત પદ્યો.

આ ત્રણ પ્રકારની જ્ઞાનસામગ્રી અસ્તવ્યસ્તપણે મેળવી. પણ તેમાંથી એ સૂઝયું કે પ્રાકૃત અને સંસ્કૃત ભાષાનો અભ્યાસ કરવો જ જોઈએ. સંસ્કૃત વિના પ્રાકૃત ભાષા પૂર્ણ ન આવડે એ માહિતી પણ મળી. અને સંસ્કૃત ભાષાની રમણીયતાએ દિલ જીતી લીધું. એટલે કોઈ પણ રીતે સંસ્કૃત શીખવું એ એક જ નાદ લાગ્યો. પણ એની સગવડ ક્યાં? મારા ગામમાં મોટે ભાગે સ્થાનકવાસી જૈન સાધુઓ આવે. તેઓમાંના સંસ્કૃત કોઈ ભાગ્યે જ જાણે. કોઈ તેનો જાણનાર આવે તો ટકનાર ન હોય. એટલે વધેલી અને વધતી જતી જિજ્ઞાસા પૂર્ણ થવામાં જેટજેટલો વિલંબ થતો તેટતેટલી વ્યાકુળતા વધે જ જતી. આને લીધે ક્યાંકથી છૂટુંછવાયું સંસ્કૃતનું એકાદ વાક્ય કાને પડ્યું કે એકાદ પદ્ય સાંભળવામાં આવ્યું તો તે છેક સાટે જ થઈ જતું. ગામમાં બ્રાહ્મણો ચોરાશીમાં જમે અને લાડુ પેટમાં નાખવા સાથે સામસામા પદ્યો પેટમાંથી કાઢી લાડુ માટે જગા ખાલી કરતા જાય, ત્યારે એ કે કેટલાં પદ્યો દૂર બેસી અતિ ઉત્સાહથી હું જ જમી જતો. સંસ્કૃતનું એ

ભોજન મને ઉચ્છિષ્ટ નહોતુ લાગ્યું, અને હજીયે નથી લાગતું. કારણ, ભૂખ્યાને એઠું શુ ? પણ વ્યવસ્થિત અભ્યાસ માટે માર્ગ ન હતો. કેટલાક સંસ્કારી સાધુઓ આવે અને સંસ્કૃત શીખવાનુ કહે. કોઈ સ્નેહી બ્રાહ્મણ સંસ્કૃતની અતિ ઉત્સાહથી પ્રશસા કરે અને શીખવાનુ કહે. કોઈ કાશીના પંડિતોની મહત્તા વર્ણવે, અને કોઈ કોઈ વાર એકાદ સુકંઠ સાધુ સંસ્કૃત પદ્યો ગાય આ બધુ ઉત્તરોત્તર મારા મનને ઘર છોડાવવાની અને બહાર ધકેલવાની તૈયારી જ કરાવતું. એ જિજ્ઞાસાના ઉત્કટ ઉન્માદમાં ઘણી વાર આકાશે ઊડ્યાના સ્વપ્નો આવેલાં આજે પણ સ્પષ્ટ યાદ આવે છે. સાધન ન હતું, પણ જે મળ્યુ તેને જિજ્ઞાસાએ સાધન બનાવ્યુ.

એક વાર એક સાધુ રઘુવશ લાવેલા તેમણે જતી વખતે મને સાત દિવસ તે રાખવા કહ્યું. હુ સંસ્કૃતમાં પુસ્તકો કયા છે અને કેમ ભણવુ જોઈએ એ જાણતો જ ન હતો. જાણતો હતો એટલુ કે જે સામે આવે તે ખાઈ જવુ એટલે એ મળેલા સાત દિવસોમાં રઘુવશના દશ સર્ગો યાદ કરી દીધા વાચનાર જે હતા તે અક્ષરે સંસ્કૃત ન જાણતા હુ પણ નહોતો જ જાણતો પરતુ એ વખતની સ્મૃતિ અને ઉત્સાહે એટલી તૈયારી કરાવી આ બધી ગડમથલમાં એક વૃદ્ધ સાધુ મળ્યા. તેમને મેં પ્રથમ જ સસ્કૃતના વિદ્યાગુરુ બનાવ્યા તેઓ સ્થાનકવાસી હતા. આંખે ન દેખતા, સસ્કૃતના તો બહુ જ સાધારણ અભ્યાસી હતા, પણ જૈન આગમો જૂની ઢબે બહુ જ સારી રીતે જાણતા. મારે મન તેઓ તે વખતે વિશિષ્ટ વિદ્વાન હતા તેમની પાસેથી સારસ્વત વ્યાકરણની પંચસધિ અને ષટ્‌લિંગ હુ શીખ્યો, ત્યારે એ ગામડામા મારા બધા ઓળખીતાઓ મને મુનિ અને મનીષિ કહેવા લાગ્યા. ગામના બ્રાહ્મણો પણ મને એક વિદ્વાન સમજતા જતા–આવતા નવાસવા સાધુસંત કે વિદ્વાન કોઈ ગામમા આવે ત્યારે મારા સ્નેહીઓ તેમની પાસે મને એક સારા વિદ્વાનરૂપે ઓળખાવતા. એનુ તો સ્મરણ જ આજે મને આપણી અજ્ઞાનતા ઉપર આસુ વરસાવવા પ્રેરે છે

એ વૃદ્ધ સાધુ લાંબો વખત ગામમા ન રહ્યા, અને વળી મારી ભૂખ વધી બીજાં ગામોમા કયા કયા સંસ્કૃત પાઠશાળા છે ? ત્યા મારે શી રીતે જવુ ? જાઉં તો સાથી કોણ ? વાંચવાનુ કામ કરે કોણ ? બીજી બધી શારીરિક સંભાળ કોણ રાખે ? અને મમતાથી મને પરાધીન સ્થિતિમા ટેકો કોણ આપે ? અથવા ટૂંકમા, મારી બધી મૂંઝવણનો નિકાલ લાવવા સહાનુભૂતિ કોણ દર્શાવે ? એ બધા પ્રશ્નો થતા જ હતા. માર્ગ જાતે જ કાઢવાનો.

કુટુંબ મોટું માયાળુ પણ ખૂબ, પણ જેટલી માયામમતા તેટલી જ અજ્ઞાનતા એટલે કુટુંબીઓને હું ઘરે રહું એ સિવાય બીજું ન જ ગમે ઘરે બેઠાં એટલું બધું તું શીખ્યો છે કે સાધુઓ પણ તારી પાસે ફિક્કા છે એમ કુટુંબીઓ કહેતા સાહસવૃત્તિ અને નિર્ભયતા જેમ આખા હિંદુ સંસારમાં તેમ મારામાં પણ હણાયાં જ હતાં એટલે જ ઢીલ થતી પણ પેલી જિજ્ઞાસા વળી ધકેલતી. એણે એક બીજા જૈન સાધુનો ભેટો કરાવ્યો. તેમની પાસે સારસ્વત પૂર્ણ કર્યું. મારે કહેવું જોઈએ કે વ્યાકરણનું આ શિક્ષણ જ્યારે મને અત્યારે યાદ આવે છે ત્યારે એમ લાગે છે કે આપણા લોકોની શિક્ષણપ્રણાલિ કેટલી અપાર શક્તિનો નાશ કરી રહી છે.

જેમ જેમ થોડુંક સંસ્કૃત જાણતો ગયો, તેમ તેમ લાગ્યું કે આ તો બધું અપૂર્ણ છે ઉચ્ચાર પણ શુદ્ધ નથી, અર્થજ્ઞાન પણ ભ્રાંત છે અને માહિતીઓ બહુ જ અપૂર્ણ છે હજી તો મોટા મોટા અપાર ગ્રંથો શીખવાના પડ્યા છે તે કેમ અને ક્યારે શિખાય ? એ નાદે વળી શોધ કરવા પ્રેર્યો, અને અચાનક માહિતી મળી કે એક જૈન સાધુ કાશીમા સંસ્કૃત ભણાવવા વિદ્યાર્થીઓને લઈ જાય છે મારું મન ત્યા ચોટ્યું પ્રથમ સાંભળેલી કાશીની પ્રશંસા તાજી થઈ બીજી પાસ સૂરતમાં ઊઘડેલ સસ્કૃત પાઠશાળા તરફ મન ગયુ. આ માટે એક મિત્ર મારફત જ કોઈ કુટુંબી ન જાણે તેવી રીતે પત્રવ્યવહાર શરૂ કર્યો. અને ૧૯૬૦મા છૂટ પરિણામ આવ્યુ. કાશીથી પત્ર આવ્યો કે તમે આવો હવે પિતા અને ભાઈઓ પાસે રજા લેવાની હતી નક્કી કરીને જ કે 'જવુ તો છે જ ' પિતાજીને પૂછ્યુ અને સાથે જ કહી દીધુ કે ' જો ના પાડશો તો અમંગળ થશે, જવાનો તો છુ જ '

છેવટે તૈયાર થઈ નીકળ્યો કાશી જૈન પાઠશાળાની ઑફિસ વિરમગામમા હતી. ત્યાથી બીજા એક જનાર ભાઈ સાથી થયા; પણ તે વખતના એ પાઠશાળાના સેક્રેટરી જેઓ અત્યારે વકીલ છે, અને મને ખાસ મિત્રભાવે જુએ છે તેઓએ તે વખતે વિચાર્યું કે આ સુખલાલ આવી પરતંત્ર સ્થિતિમા કાશી જેટલે દૂર કેમ જશે ? કેમ રહેશે ? અને કેવી રીતે ભણશે ? આ વિચારથી તેઓ મને કાશી મોકલતા અટક્યા અને મારે પાછું વિઘ્ન આવ્યુ પણ એ તો આઠ જ દિવસમા ટળી ગયુ અમે બે જણ કાશી જવા નીકળ્યા

તે વખતની અમારી વ્યાવહારિક અજ્ઞાનતા કેટલી હતી એના અનેક

દાખલાઓ આજે યાદ આવે છે. રેલમાં તે વખતે હાજત દૂર કરવાની સગવડ બહુ ઓછી હતી. મહેસાણાથી પેશાબની હાજત થઈ. રેલ ઊભી રહે, પણ મનમાં થયા કરે કે ઊતરશુ અને ચાલશે તો? આ શકાએ જ્યાં જ્યાં વીસ અને ત્રીસ મિનિટ રેલવે ઊભી રહેતી ત્યાં પણ નીચે ઊતરવા ન દીધા. અને અદર બીજા ડબ્બામાં સગવડ શોધવા પણ જવા ન દીધા. મારા સાથી મારે જ ભાગ્યે કાશી માટે નીકળેલા તેઓ હતા તો ટ્રેઈન્ડ, પણ કશુ જ ન જાણે છેવટે મારવાડના નાના સ્ટેશને મેં કહ્યુ કે હવે તો છેવટે ઊતરી જ જવુ, પણ આમ મરી નહિ જવાય ત્યા ઊતર્યા, પણ દબાણને લીધે પેશાબની હાજત જ રોકાઈ ગઈ, અને વધારામાં દરદ ઊઠ્યું. ગાડી ચાલી ગઈ ગુજરાતના એક વૈષ્ણવ વૃદ્ધ સ્ટેશન માસ્તરે જાણ્યુ કે અમે કાશી જઈએ છીએ અને તે પણ સસ્કૃત ભણવા, ત્યારે તો તેઓએ પ્રેમ વર્ષાવ્યો અને બીજી ગાડી સગવડવાળી શોધી આપી. અમે રેલવેમા તે વખતે મુખ્ય ત્રણ કામ કરતા ખૂબ ખાતા, સ્ટેશનો ગણતા અને બાકી વખત બચે ત્યારે ઊઘતા

પહેલાં સાંભળેલુ કે આગ્રા, કાશી, એ ધૂર્તનાં સ્થાનો છે એટલે આગ્રા સ્ટેશન આવ્યુ ત્યારે સાવધ થઈ ગયા અનુભવ પણ ધૂર્તતાનો જ થયો. જેમ તેમ કાશી પહોંચ્યા ત્યાંની સાંકડી ગલીઓમા પગ મૂકતાં જ વિવિધ અનુભવો થવા લાગ્યા. એક બાજુથી ભયકર દુર્ગંધ આવે, બીજી બાજુ બચો, હઠો, કહાં જાઇયેગા વગેરે અશ્રુતપૂર્વ ભાષા કાનમાં પડવા લાગી. અને ધીરે ધીરે જોયુ કે અહીંની તો બધી જ રહેણીકરણી જુદા પ્રકારની છે મકાન તદ્દન પથ્થરનાં, લાકડું ફક્ત કમાડમાં દેખાય પાયખાના એવાં સાંકડા અને ગંદાં કે એમા મનોનિગ્રહનો અભ્યાસ જ કરવો પડે. અધૂરામા પૂરું જે પાઠશાળામાં રહેવાનુ હતુ ત્યાં જૈન સાધુઓનું સામ્રાજ્ય હોવાથી સ્વચ્છતાનો આદર્શ જ લગભગ લોપાઈ ગયો હતો આ બધી કંટાળાવાળી સ્થિતિ હતી પણ આશા એક જ હતી અને તે બહુ જ મોટી હતી કે કાશીમા મરીને પણ સસ્કૃત શીખવુ જોઈએ

કાશી એટલે માત્ર વિશ્વનાથ અને ગંગાને લીધે જ તીર્થ નથી, પણ એ અનેક જૂની વિદ્યાઓનુ રક્ષણધામ હોઈ તીર્થ છે કાશીમાં જેમ લુચ્ચાઈ ને ગુંડાશાહીનુ રાજ્ય છે, તેમ વિવિધ ભારતીય વિદ્યાઓનુ પણ રાજ્ય છે. ત્યાં સંગીત, નૃત્ય, કુસ્તી, કારીગરી આદિની સાથે જ શાસ્ત્રીય બધી વિદ્યાઓ હજી જીવે છે. પ્રત્યેક વિદ્યામા વિશાળતા ઓછી છે, પણ ગહનતા ઘણી છે.

હમણાં હમણાં પરીક્ષાઓનું વર્ચસ વધવાને લીધે વિશાળતા વધવા લાગી છે, પણ તેટલા જ પ્રમાણમાં ઊંડાણ ઘટતુ જાય છે. ત્યાં જે વિષયનો જે પંડિત હોય તે તે વિષયનો ખાં હોય. વૈયાકરણી ઘણી વાર કાવ્ય અને સાધારણ દર્શનની વાતો ન જાણે કેટલાક પ્રામાણિક વિદ્વાનો તો તેવો ડોળ પણ ન કરે, છતાં પોતાના વિષયને તે પૂરા વફાદાર હોય. પંડિતો આ વીસમી સદીમાં પણ એટલે સુધી શાસ્ત્રને વળગી રહેનારા હોય છે કે તેમની આજુબાજુ શુ થઈ રહ્યું છે તેની તેમને ભાગ્યે જ ખબર હોય છે વિશિષ્ટ પંડિતો વિદ્યાના એટલા બધા ઉપાસક હોય છે કે તેમને પૈસાનો લોભ કાશી બહાર લઈ જઈ શકતો નથી. થોડું કે ઘણુ જે મળે તે ઉપર ચલાવી લે છે. પણ ભણવા અને ભણાવવાની સગવડ હોવાથી તેમા તેઓ મસ્ત રહે છે

મારા વખતમાં પંદરથી ત્રીસ રૂપિયા સુધી માસિક પગારમાં સારામાં સારા દરેક વિષયના પંડિતો મળી જતા. આ ધોરણ જોકે ક્વિન્સ કૉલેજ અને હમણાં હમણા હિંદુ યુનિવર્સિટીને લીધે બદલાયું છે, છતાં હજી પ્રમાણમા કાશીમાં પંડિત માટે વધારે પગાર ખરચવો નથી પડતો જેવી રીતે પંડિતો પોતપોતાના વ્યાકરણ, અલંકાર કે દર્શન આદિ વિષયોમાં ડૂબેલા હોય છે તેવી રીતે જો તેઓમા આધુનિક દૃષ્ટિ અને ખાસ કરી રાષ્ટ્રીય દૃષ્ટિ આવે તો તેઓ વડે ઘણુ કામ સધાય પણ કાશીનો પંડિતવર્ગ એટલે સંકુચિતતમ અને સખત રૂઢિચુસ્ત એક વર્ગ. એ વર્ગમાં બળ શાસ્ત્રનુ ખરુ, પણ દૃષ્ટિસંકોચને લીધે એમના શાસ્ત્રે રાષ્ટ્રનુ હિત સાધ્યું નથી, એમ મને અત્યારે સ્પષ્ટ લાગે છે

હુ જે જૈન પાઠશાળામા રહેતો ત્યા વિશિષ્ટ બે પંડિતો તો હતા જ. જેમની પાસે હુ ભણતો તે મહાન વૈયાકરણી હજીયે વિદ્યમાન છે અને ક્વિન્સ કૉલેજમાં ભણાવે છે તેમનુ પાણ્ડિત્ય તે વખતે મને જેટલુ પૂજ્ય લાગતુ તેટલુ આજે નથી લાગતુ તેનુ કારણ એટલું જ કે તેઓ પોતાના વિષયને પોષે એવી આજુબાજુની સુલભ જ્ઞાનસામગ્રીથી પણ તદ્દન બેપરવા રહે છે. જૂના પંડિતો એટલે સંસ્કૃત સિવાય બીજી બધી ભાષાને અને પોતાના સનાતન સિવાય બીજા બધા સંપ્રદાયને અવગણનારા,' એટલી જ તેમની વ્યાખ્યા છે. પંડિત હોય અને સામયિક પત્રો જુએ એ નવાઈની વાત તે વખતે હતી મને યાદ છે કે એક વાર ગોખલે કૉંગ્રેસના સભાપતિ થઈ કાશીમા આવ્યા ત્યારે મારા સર્વશ્રેષ્ઠ અધ્યાપકે કહેલું કે આ ગોખલે કોણ છે ? એટલુ બધુ એમનામા શુ છે કે લોકો ટોપલે ને ટોપલે ફૂલથી વધાવે

છે? પાણિનીય વ્યાકરણનો અભ્યાસી કાશીનો જૂનો પંડિત કદી બીજાં વ્યાકરણોને ન જ અડે, અને અડે તો ન છૂટકે જ. ન અડવામાં ગૌરવ માને. સનાતન પંડિત જૈન અને બૌદ્ધ શાસ્ત્રો ભણાવે તે આજીવિકાની પર-વશતાને લીધે જ જિજ્ઞાસાદૃષ્ટિ કે ઉદારતાથી તેઓ કદી અડે જ નહિ. ઊલટું, જો કોઈ ભણાવતા હોય તો તેઓને નિંદે અને કહે કે અમુક અમુક પંડિત જૈનો વગેરેને ભણાવે છે. આનું પરિણામ એ આવતું કે તેઓ જ્ઞાનના સંકુચિત ક્ષેત્રમાં જ ફસાઈ રહેતા, અને સનાતની ન હોય એવા અભ્યાસી-ઓને ભણવાની બહુ જ હાડમારી પડતી જૈનો, આર્યસમાજીઓ અને ઉદાસીનો વગેરેએ ક્વિન્સ કૉલેજમાં પોતાને પંડિતો ભણાવે એ માટે ખૂબ હિલચાલ કરેલી, પણ છેવટે કૉલેજના અધિષ્ઠાતાઓને એ જ ફેંસલો આપવો પડેલો કે પંડિતો ભણાવે તો સરકારને ના નથી જે પંડિતો કૉલેજમાં નિંદાના ભયથી સનાતની સિવાયનાને ભણાવતા ન હતા તે જ પંડિતો ખાનગી રૂપિયા લઈ પાછા ખાનગી શાળાઓમાં સનાતની ન હોય તેવાઓને પણ ભણાવતા

પંડિતોમાં ધર્મ અને લોભ બંનેનાં પ્રબળ તત્ત્વો સાથે જ કામ કરતા. તેથી એક બાજુ સનાતનને જૂને ચીલે ચાલ્યા કરતા, અને બીજી બાજુ પૈસા મળ્યા એટલે ગમે તેવી વાતને શાસ્ત્રીય ઠરાવવા પોતાના હસ્તાક્ષર આપી દેતા સ્વામીનારાયણો પોતાને વૈદિક સિદ્ધ કરવા કાશીમાં કોથળીઓ ઠાલવે, કાયસ્થો પોતાને ઊંચી વર્ણના સાબિત કરવા કાશીના પંડિતોને નૈવેદ ધરે, જૈન સાધુઓ કાશીમાં આવીને અભ્યાસ કર્યા વિના પણ પદવી મેળવવાનો લોભ રાખે અને આ બધાએ કાશીના પંડિતોના લોભદેવતાને લીધે સફળ પણ થાય હું જૈન પાઠશાળામાં ભણતો એટલે ત્યાં તો પંડિતો રાખેલા એટલે ભણાવે જ. પણ શહેરમાં ઉચ્ચતમ પંડિતોને ત્યાં ભણવા જતાં તેમનો ધર્મ મને આડે આવતો જે પંડિતો મને ચાહવાની વાતો કરતા તે જ જ્યારે તેમને ત્યાં ભણવા જવાનું કહું ત્યારે વાત ટાળી દેતા મેં પહેલેથી જનોઈ પહેરી હોત અને બ્રાહ્મણ જ પ્રસિદ્ધ થયો હોત તો આમ તેઓ ન કરત. અલબત્ત, મારે એ કહેવું જોઈએ કે આવી સંકુચિત દૃષ્ટિના કેટલાક અપ-વાદો પણ હતા. અને હવે તો એ અપવાદો થોડા વધ્યા પણ છે.

કાશીની જૂની પાઠશાળાઓમાં શિક્ષણ-પ્રણાલિ બહુ જ દૂષિત ચાલે છે તેનો પ્રભાવ અમારી જૈન પાઠશાળામાં પણ પૂર્ણ હતો ગોખવું અને શબ્દશ: રટી જવું એ ભણતરનું પહેલું અંગ લખવા અને લોકભાષા કેળ-

-વવા તરફ ધ્યાન અપાય જ નહિ ભાવિ જીવન અને સામાજિક સ્થિતિનો વિચાર કર્યા સિવાય, ઉપયોગિતાનો ખ્યાલ રાખ્યા સિવાય, વિદ્યાર્થીને કોઈ પણ પુસ્તક પકડાવી દેવામાં આવે. વિદ્યાર્થી પોતે જિજ્ઞાસુ હોય અને શ્રમ કરે તો ઠીક નહિ તો શું ભણે છે? શી ભૂલો થાય છે? સમય કેમ કાઢે છે? એ જોનાર કોઈ જ નહિ આવી અવ્યવસ્થાને લીધે દેશના આત્મા જેવા તરુણ વિદ્યાર્થીઓની મોટામાં મોટી શક્તિસંપત્તિનો દુર્વ્યય થતો મે જોયો છે અને તેનો ભોગ થોડેઘણે અંશે હું પણ બન્યો છું કાશીમાં સંસ્કૃત ભણનાર દસ હજારથી વધારે વિદ્યાર્થીઓ હશે એવી મારી કલ્પના છે બધાનો નિર્વાહ સુખેથી થાય છે અન્નસત્રો સેંકડોની સંખ્યામા છે મોટા મોટા દાતાઓ, પંડિતો અને વિદ્યાર્થીઓને નભાવે છે. પણ આ બધાની પાછળ કોઈ એક તંત્ર ન હોવાથી તેનું પરિણામ ઓછામાં ઓછું આવે છે સત્રના ઘણાખરા સંચાલકો પોતાની લાગવગના નકામા વિદ્યાર્થીઓને દાખલ કરે અને મળતા દાનનો પોતાના સ્વાર્થમા ઉપયોગ કરે આની વિરુદ્ધ કોઈ હિલચાલ ન કરે તેમ જ કોઈ ઊંચુ માથુ ન કરે. કારણ એ કે, એવો વિરોધ કરનાર ડગલે ને પગલે ડરે જ્યારે માલવિયજીએ હિંદુ યુનિવર્સિટી સ્થાપવા માટે પહેલવહેલા વિચાર પ્રગટ કર્યા અને કાંઈક પ્રયત્ન શરૂ કર્યો ત્યારે કેટલાક વિશિષ્ટ પંડિતો પાસેથી અમે સાભળેલુ કે માલવિયજી પૈસા એકઠા કરી ઉડાવી જવાના છે, અથવા પોતાના જ કબજામા રાખવાના છે કાશીના અતિસંકુચિત અને ગુંડાશાહી વાતાવરણના ભયની અસર માલવિયજી-ના કોમળ હૃદય ઉપર થોડી ઘણી તો છે જ, એવી મારી કલ્પના છે

સંવત ૧૯૬૦થી ૧૯૬૩ સુધીના ત્રણ વર્ષો મે જે પાઠશાળામા કાઢ્યા તે અમારે માટે ખાસું જનાનખાનુ હતુ ગંગા બહુ જ નજીકમા હતી, પણ એટલા વખતમા અમે ત્યા એક વાર નાહ્યા હતા પાસે જ ફરવાના બાગો છે, અને બીજી જોવા જેવી સંસ્થાઓ છે પણ અમે તેથી લગભગ અસ્પૃશ્ય રહ્યા હતા કાશીનુ પ્રસિદ્ધ કરવત મુકાવવાનુ સ્થાન અમારી તદ્દન નજીક હતુ, પણ એ મે ત્યા સુધી નહિ જોયેલુ બીજી ઐતિહાસિક મહ-ત્ત્વની અને જ્ઞાન મેળવવાની દૃષ્ટિએ મહત્ત્વની ઘણી જ જગ્યાઓ અને સંસ્થાઓ ત્યા છે, જેને જોવા દૂર દૂરથી માણસો આવે છે, પણ મે એમાંનુ કશું લગભગ જોયુ ન હતુ. કસરત કરવી શા માટે? એમા તે વખત શા માટે કાઢવો? શરીર તો ક્ષણિક છે જ; ને માટે બહુ મમત્વ શા માટે? આ ઉપદેશ અમારે કાને પડ્યા કરતો આ બધુ સંસ્થાના સંચાલકોની, સંચાલક દૃષ્ટિએ, યોગ્યતા ન હોવાનું ખાસ પરિણામ હતુ, એમ મારે સ્પષ્ટ

કહેવું જોઈએ. જે દોષ અમારી સંસ્થામાં હતો તે જ દોષ ઓછેવત્તે અંશે ત્યાંની બધી જૂની સંસ્થાઓમાં હતો જ. થિયોસોફિસ્ટના પ્રયત્નો અને આર્યસમાજીઓના સતત પ્રયાસોથી થોડું રૂઢ વાતાવરણ ભેદાતું જતું હતું. હું પણ ધીરે ધીરે બંધનોમાંથી છૂટતો જતો હતો. મને એક મિત્ર મળેલા એટલે અમે બંને આવી જૂની રૂઢિ સામે બંડ કરતા સંસ્થાના સંચાલક સાધુ સામે થયા અને છેવટે જુદા પડ્યા. ૧૯૬૩થી માંડી સાત વર્ષો અમારાં સ્વતંત્ર ગયાં. તે વખતે મેં શું ભણવું? કેમ ભણવું? શા માટે ભણવું? કોની પાસે ભણવું? અને ક્યાં રહી ભણવું? એ બધું મારા મિત્ર સાથે તે વખતની સંકુચિત દૃષ્ટિ પ્રમાણે પણ સ્વાધીનપણે નક્કી કર્યું. અને એ નક્કી ક્રમ પ્રમાણે અમે બંનેએ અભ્યાસ શરૂ કર્યો. સંસ્થાથી છૂટા પડ્યા ત્યારે પાસે એક રૂપિયો હતો. તેમાંથી છ આના સંસ્થાના સેક્રેટરીને તાર કરવામાં ખર્ચાયા, એટલે દશ આના બાકી રહ્યા. પણ મને બરાબર યાદ છે કે એ વૈશાખ શુક્લ ત્રયોદશીની રાતે જ્યાં બુદ્ધ ભગવાને પ્રથમ ઉપદેશ કરેલો છે તે સારનાથની પાસેના જૈન મંદિરમાં અમે ગયા. અમે અકિંચન છીએ એ ભાન જ ન હતું. સંસ્થાથી છૂટા થવાનો અને કોઈ સ્વતંત્ર વાતાવરણમાં સુખપૂર્વક વિચરવાનો આનંદ અમારામાં સમાતો જ ન હતો. એ આનંદમાં અમે અમારી શક્તિનું ભાન ભૂલી ગયેલા અને એમ વિચારતા હતા કે સમાજના કેટલાક જવાબદારોને પૂછી જોવું. જો તેઓ મદદ ન આપે તો બલા ટળે. અમેરિકા જઈશું અને ત્યાં ભણીશું. તે વખતે સત્યદેવના અમેરિકાથી 'સરસ્વતી'માં પત્રો છપાતા. રૉકફેલર જેવા ધનાઢ્યોનાં જીવન 'વેંકટેશ્વર'માં વાંચેલાં, એટલે અમે બંને મિત્રો વિચારતા કે ત્યાં જઈશું અને ગમે તે રીતે મદદ મળશે જ. પણ અમને તો સમાજના કેટલાક વિદ્યાપ્રિય સ્નેહીઓએ મદદ આપી, અને અમારો નવો સ્વતંત્ર યુગ કાશીમાં જ શરૂ થયો.

આ યુગમાં બધું જાતે કરવાનું હતું. અનાજ આદિ ખરીદવું, મકાન મેળવવું, રસોઈનો પ્રબંધ કરવો, પંડિતો શોધવા, તેમની પાસે ભણવું, અભ્યાસ ઉપરાંત બીજાં પુસ્તકો વાંચવાં અને ગમે તેટલી દૂર હોય છતાં ઉચ્ચતમ વક્તાવાળી જાહેર સભામાં પહોંચવું. આ સ્વતંત્ર યુગમાં પણ ખરી રીતે અમારો કોઈ સાચો માર્ગદર્શક ન હતો, છતાં દૃષ્ટિ કાંઈક સારું ભણવાની–ઊંડાણથી ભણવાની અને સત્યશોધની હતી, એટલે એ ભૂલોમાંથી જ થોડામાં થોડું પણ કાંઈક મળી આવ્યું. પહેલાં પરીક્ષાની દૃષ્ટિ ન હતી, પણ પછી સ્નેહીઓની પ્રેરણાએ એ તરફ પણ ઘસડાયા. અનુભવ એવો થયો કે ત્યાં પણ પંડિતોનું સંકુચિત રાજ્ય છે. જો પ્રિન્સિપાલ અંગ્રેજ ન

હોત તો એક વાર પહેલે નંબર આવેલ તે આવી શકત કે નહિ એનો શક જ હતો એ વર્ષ બાદ જેમ જેમ પંડિતોની સંકુચિત દૃષ્ટિનો વિશેષ અનુભવ થયો, તેમ તેમ પરીક્ષાનો મોહ ઓછો થતો ગયો. અને છેલ્લા વર્ષમાં પરીક્ષકો પાસેથી પરીક્ષા આપી ઊઠતાં જ પ્રતિજ્ઞા કરી કે હવે પછી અહી પરીક્ષા નિમિત્તે પગ ન મૂકવો. અને તે જ પ્રતિજ્ઞા છેવટ સુધી ચાલી.

સ્વામી દયાનંદનો કાશીની શિક્ષણપ્રણાલી તરફ સખત કટાક્ષ હતો. તેનાં બીજા કારણોમાં નીચેના ત્રણ કારણો હતાં, એમ મને તે વખતે લાગેલુ અને હજી પણ લાગે છે.

૧ પંડિતો અને વિદ્યાર્થીઓની પ્રચલિત લોકભાષા—ખાસ કરીને હિંદી ભાષા શીખવા, બોલવા અને લખવા તરફ બેદરકારી

૨ રાષ્ટ્ર અને દેશ તરફ તેઓની તદ્દન ઉદાસીનતા, અને ધર્મ-વિષયક અસહિષ્ણુતા.

૩. ઉચ્ચારણવિષયક બેદરકારી અહી ત્રીજા કારણ વિષે જરા ઇશારો કરવો આવશ્યક છે. કોઈ પંડિતને પૂછો કે વ્યાકરણમા ઉચ્ચારણના દોષો કેટલા છે ? તો તે વગરવિલબે ગણાવી જાય, પણ જે દોષો તે ગણાવે, તે જેમ મોઢે ગણાવ્યે જાય, તેમ પોતાના ઉચ્ચારણમાં સક્રિય તે બતાવતા પણ જાય દક્ષિણાત્ય અને બીજા કેટલાક ખાસ પંડિતો અને વિદ્યાર્થીઓને બાદ કરીએ તો ઉચ્ચારણ દોષ ત્યા એટલો બધો છે કે તેને લીધે તેમના ઉપર મને તો દયા જ છૂટતી સંસ્કૃતના ધુરંધર વિદ્યાર્થીઓ જ નહિ પણ પંડિતો સુદ્ધાં જો હિંદી વાચે તો તેમનુ હિદી વાચન સાંભળનાર જો ગીતા કે ધમ્મ-પદમાથી પૂર્ણ ગાંભીર્ય શીખી ન આવ્યો હોય તો ગમે તેટલો પ્રતિબંધ છતા હસી જ પડે બીજા બધા કરતા ઉચ્ચારણદોષ મને વધારે ખટકવાનુ કારણ કદાચ મારી સાભળીને શીખવાની પરિસ્થિતિ હશે પણ એ દોષ વિષે હુ જરા યે અત્યુક્તિ નથી કરતો આજકાલ ઘણાયે અગ્રેજી ભણેલાને હુ ગુજરાતી વાચવા આપુ છુ ત્યારે તેમનુ ગુજરાતી વાચન પણ એ પંડિતોના હિન્દી વાચનની કક્ષામાં જ જાય તેવુ જોઉં છુ વાચવાનો અર્થ સામાન્ય રીતે બધા એટલો જ સમજે છે કે લખેલુ કે છાપેલુ હોય તે આંખે જોઈ ગડગડાવી જવું. આ ખાનગી ઘણાખરા શિક્ષકોમાં પણ છે, તેથી એ દોષનો વારસો વધે જ જાય છે. છાપવાની કળાથી દબાઈ ગયેલું અક્ષરનુ સૌષ્ઠવ

ક્ષંતવ્ય ગણાય, પણ હજી ઉચ્ચારણનુ સ્થાન કોઈ ફોનોગ્રાફમાંથી ઉદ્‌ભવતી વિદ્યા ન લે ત્યાં સુધી ઉચ્ચારણનો દોષ કદી જ ક્ષંતવ્ય નહિ ગણાય.

જૈન પાઠશાળાની પડદા જેવી દશા ગઈ ત્યાર બાદ સ્વાશ્રય અને અભ્યાસની વ્યવસ્થા આવ્યા હતાં. તેને લીધે કાંઈક કાઈક ગુણદોષ–વિવેચક દૃષ્ટિ પણ જાગી હતી. એટલે કોઈ ગુરુ કે કોઈ પંડિત કહે તેટલામાત્રથી તે સ્વીકારી લેવાનો નહિ આને પરિણામે ઘણી વાર પડિતો સાથે અને ખાસ કરી વિદ્યાગુરુઓ સાથે વિરોધ કરવાનો પણ પ્રસગ આવતો વિદ્યાર્થીથી કાંઈ પડિત સામે કે ગુરુ સામે સાચુ પણ તેમનાથી વિરુદ્ધ કહેવાય ? આ તો મોટો ગુનો ગણાય અને એ ગુનાની સજા એટલી જ કે તેઓ ભણાવે નહિ પણ ઘણી નમ્રતા રાખ્યા છતા જ્યારે દિવસને જ રાત કહેવડાવવાનો તેઓનો આગ્રહ દેખાતો ત્યારે પછી છેવટે તેઓને છોડવાનો જ માર્ગ બાકી રહેતો. એમ કેટલાયે પડિતોને છોડ્યા, પણ હજીયે મને લાગે છે કે એમાં મેં મેળવ્યુ જ છે, ગુમાવ્યુ નથી. કાશી એટલે સનાતનીઓનુ કેન્દ્ર ત્યાં બીજા ધર્મો અને પથો પોતપોતાના પ્રચારનો ભગીરથ પ્રયત્ન કરે છે, પણ સનાતન પથના ખીલા ભારે મજબૂત હોવાથી તેઓ બહુ જ ઓછું ફાવે છે. આર્યસમાજના ઉત્સવો અવારનવાર ચાલે તેમા ઘણીવાર શ્રોતાઓ કરતાં વક્તાઓ વધે, સાભળનારાઓની ગમે તેટલી ધીરજને પણ ખુટાડી દે એવા ૧૪–૧૪ કલાકના લાંબા કાર્યક્રમો હોય, અને ભયંકર ખંડનમંડન ચાલતાં હોય ત્યાં જવુ અને ધીરજ રાખી ખૂબ સાભળવુ, એ ટેવ પણ કાશીમા કેળવાઈ

કાશીમા શાસ્ત્રાર્થની એક વિશેષતા છે અને તે એ કે, દલીલો સાથે ક્યારેક ક્યારેક ઈંટો અને પથ્થરો ચાલે. આવા પ્રસગો ખાસ કરી આર્ય-સમાજના જાહેર ખંડનવાળા મેળાવડાઓમા જ આવતા કાશીના પડિતોની શાસ્ત્રચર્ચા વળી બીજા જ પ્રકારની હોય છે. કોઈ દાની આવે, પંડિતો મળે અને દક્ષિણા વહેચાયા પહેલા શાસ્ત્રાર્થ કરે ઘણી વાર મહાન પંડિતો પણ અંદરોઅદર અસભ્યતાથી હોસાતુસી કરે, અને તદ્દન ખાટા મન કરી ઘેર જાય જે પંડિતોને મોટામોટા રાજા, મહારાજા અને દેશનાયકો દ્વારા માન પામતા જોયા છે તે જ પડિતો અને તેમના શિષ્યો વાદગોષ્ટીમા ભાગ્યે જ સભ્યતા રાખે આ વસ્તુથી સિદ્ધસેનનુ પદ્ય યાદ આવે છે કે 'એક માંસના ટુકડા માટે લડતા બે કૂતરાઓ ક્યારેક એકઠા થઈ શકે, પણ બે વાદી ભાઈઓનું સખ્ય કદી જ સંભવતુ નથી ' ઘણી વાર એમ થતુ કે જો સાચા

દિલથી ધર્મસ્તંભ ગણાતા કાશીના પંડિતો એકત્ર થાય તો બચી રહેલી વિદ્યાઓનો સત્વર સુંદર ઉદ્ધાર થાય. એક વૃદ્ધ પાદરી ઘણી વાર મળતા. તેઓ બહુ જ સ્પષ્ટ અને શુદ્ધ સંસ્કૃત બોલતા અને સંસ્કૃતમા જ બીજા ધર્મોનુ ખંડન કરતા. એમનુ કામ જ્યાં જ્યાં પાઠશાળાઓ હોય, જ્યાં જ્યાં પંડિતો હોય, ત્યા પહોચવાનુ અને ખૂબ સભળાવી પાછા ફરવાનુ હતુ એમનુ સસ્કૃત પહેલવહેલા સાંભળ્યુ ત્યારથી મનમા નિશ્ચય કરેલો કે વિશિષ્ટ સસ્કૃત બોલતા શીખી જ લેવુ એ નિશ્ચયે કેટલાક દિવસ સંસ્કૃત બોલવાની પ્રતિજ્ઞા લેવડાવેલી શ્રાવણ માસમાં નાગપંચમી આવે છે, ત્યારે એક નિયત સ્થાને વિદ્યાર્થીઓ અને પડિતોનું મોટુ દળ એકઠું થાય છે, અને સૌ છૂટથી અરસપરસ ચર્ચા અને ખંડનમડન કરે છે આ બધુ સંસ્કૃતમા જ થાય છે ક્યારેક એ પ્રથા બહુ જ વ્યવસ્થિત હશે કાશીનું બીજુ નામ શિવપુરી છે તેથી તેમા શિવના મંદિરો જ્યાં ત્યાં ખડકાયા છે. જ્યા મહાદેવ ત્યા નદી અને ભાંગ હોય. કાશીમાં જ્યાં જાઓ ત્યા મસ્ત સાઢ હોય અને ઘણી વાર તેમની મસ્તી મુશ્કેલીમાં પણ મૂકે. ભાંગ એ ત્યાં અહીંની પેઠે ચાનું કામ આપે છે વિદ્યાર્થી હોય કે પડિત, બાબુ હોય કે કહાર, ભાગ પીવામાં કોઈને સકોચ નહિ ક્યારેક કોઈ પડિત એમ પણ કહે કે ‘ જબ ભાગ પીકર ગ્રથ દેખતે હે તબ સામને સરસ્વતી આતી હૈ ’ કેટલાક પડિતો શાક્ત પણ જોયેલા, જેઓ ધુરધર વિદ્વાન છતા ઉપાસના વખતે મદ્યપાન અવશ્ય કરતા

કાશીમા પચવર્ણી વસ્તી મુબઈ જેવી જ છે બંગાળી પડિતોને ત્યાં જઈએ ત્યારે હોકો ગુડગુડ ન કરતો હોય તો છેવટે માછલીની ગધ આવે જ મૈથિલ પડિતોને ત્યા અભક્ષનો સભવ ખરો જ, પણ હુકાની વાત નહિ. દક્ષિણી પડિતો એ બધા વ્યસનોથી મુક્ત અને વિશેષમાં એમની ઘર અને કપડાની ચોખ્ખાઈ બીજા બધાને મહાત કરે યુક્ત પ્રાતના પડિતોમા કોઈ દુર્વ્યસન ખાસ ન હોય, પણ દક્ષિણીઓ જેવી ચોખ્ખાઈ તો નહિ જ. ગુજરાત અને મારવાડના પડિતો ત્યા નથી એમ કહીએ તો ચાલે. જે છે તેમણે ખાસ નામ નથી કાઢ્યુ જેમ દેશનાયકોમાં ગુજરાતીનું નામ ન હતું અને આવ્યુ ત્યારે સૌથી મોખરે આવ્યું, તેમ કાશીમા ધ્રુવ સાહેબને લીધે આજે ગુજરાતીઓ મોખરે ગણાવાનું અભિમાન લઈ શકે છે વિદ્યાઓ પણ પ્રાતવાર વહેચાયેલા જેવી છે બગાળી મોટે ભાગે તાર્કિક હોય, મૈથિલ પણ નૈયાયિક હોય, દાક્ષિણાત્ય વેદાતી હોય અને બીજાઓ વૈયાકરણી હોય આ સામાન્ય નિયમના અપવાદો છે જ. પંજાબી વિદ્વાનો હમણા હમણા

વધવા લાગ્યા છે નાનકપંથના ઉદાસી એમા આગળ આવતા જાય છે. તેમના મઠો છે અને પાઠશાળાઓ પણ છે મારવાડીઓ અનેક સત્રોને, અનેક પાઠશાળાઓને અને અનેક સાધુસતના મઠોને પોષે છે, પણ મારવાડી ત્યા ભાગ્યે જ વિદ્વાન મળે કાશીના વિદ્યાચુબકે જૈનો અને બૌદ્ધોને ખેચ્યા છે બરમી અને સિહલી ઘણા બૌદ્ધો ત્યા આવતા થયા છે વિદ્યાના રમ્યત્વ ઉપરાત પ્રાકૃતિક રમ્યત્વ પણ ઓછુ નથી ખરી રીતે ગગાતટ, વૃક્ષરાજી અને ફળદ્રુપ ભુમિને લીધે જ ત્યાનુ વાતાવરણ જામેલુ છે ઘણી વાર હુ મિત્રો સાથે વિદ્યાના સ્રોતની જેમ ગગાના સ્રોતમા પડતો મને યાદ છે કે એથી વધારે વાર હું એમાં એવો તણાયેલો કે તત્કાળ મિત્રો ન આવ્યા હોત તો મહાસમુદ્રમાં જ પહોંચત. મારુ તરવાનુ બળ ગગાના વેગ સામે કુંઠિત થઈ જતુ પછી તો ચેતી જ ગયેલો

મને ભણવા કરતાં ભણાવવાનો શોખ પહેલેથી જ વધારે હતો જૈન વિદ્યાર્થીઓ તો ભણે જ કેટલાક બ્રાહ્મણ વિદ્યાર્થીઓ ભણે, પણ જૈન પાસે ભણવામા કોઈ નિદે માટે તેઓ બહુ જ સાવધાનીથી છુપાઈને ભણવા આવતા હુ પણ અંદરઅદર કેવળ વિદ્યાવૃદ્ધિ ખાતર ઘણી વાર તેઓને માત્ર સરખે જ નહિ પણ ઊંચે આસને બેસાડી શિખવાડતો જૈન સાધુઓને ભણાવનાર જો નીચે આસને બેસવુ પસદ કરે તો તેઓને ભાગ્યે જ ખોટું લાગે એ ગુરુપદમાથી જન્મેલી અભિમાન-વૃત્તિ મેં ત્યાંના બ્રાહ્મણવર્ગમા અનેક રીતે જોઈ છે ગાંધીયુગ આવ્યા પછી જોયેલ કાશીના વાતાવરણને પહેલાના વાતાવરણ સાથે મે સરખાવ્યુ ત્યારે કેટલો યુગપલટો થયો છે તે સ્પષ્ટ જણાયુ હમણાં તો કેટલાયે સનાતની બ્રાહ્મણો અસ્પૃશ્યને અડતા સકોચાતા નથી, અને ઇતર ઉચ્ચ ગણાતા વર્ણના લોકો સાથે તો તેમનો ચોકો લગભગ એક જ થઈ ગયો છે છતાં એમ લાગે છે કે હજી કાશી ટાગોરનુ અચલાયતન છે

બદામ એ બુદ્ધિવર્ધક છે માટે ખવાય તેટલી ખાવી, એ અજ્ઞાનને લીધે માંદગીમાં પડવાના દિવસો તો જૈન પાઠશાળા છોડી ત્યારથી ગયા જ હતા. પણ બીજુ આરોગ્યવિષયક અજ્ઞાન ઘણુ જ બાકી હતુ તે ડગલે અને પગલે નડતુ. ઓપરેશન કરાવ્યુ હોય છતાં સવાર-સાજ ત્રણ ત્રણ માઇલ દૂર ચાલીને ભણવા જવુ અને વળી વિશેષ બીમારીમા સપડાવુ એ ક્રમ ચાલુ જ હતો. એને લીધે અને વિશેષ ન્યાયનો અભ્યાસ કરવાની વૃત્તિને લીધે કાશી સ્થળ છોડવાનુ મન થયું. મિથિલા પસંદ કરી ત્યા સખનદીમા

પહોંચ્યો. ત્યાંનુ ગામડું એટલે થોડાંક ફુસ અને ઘાસના ઘરો ખાવામા ભાત, અને બિસ્ત્રામાં ડાગરનુ કૂંવળ મિથિલાનો મોટો ઉપકાર એ થયો કે હુ ભક્ત-ભાત-ભોજી થઈ ગયો. વ્યાકરણમાં "कुक्कुट सपात्या ग्रामा" એ ઉદાહરણ આવેલુ તેનો અર્થ મિથિલામાં સમજાયો એક ગામનો કૂકડો બીજા ગામમાં પહોચે એથી વધારે ભાગ્યે જ અંતર હોય લગભગ દરેક ઘર પાસે પોખરા (નાના જલાશયો) હોય જ. સામાન્ય રીતે ત્યાના લોકો કોઈની યાદગીરી પોખરાથી અગર બાગથી રાખે છે ત્યાના વિદ્વાનો કહેતા કે ગ્રંથ, આરામ અને અપત્ય એ સ્થાયી યાદગીરીનો ક્રમ છે તેથી જ ઘણા વિદ્વાનો મિથિલામાં એવા થઈ ગયા છે કે જેઓએ પરિણીત છતાં ગૃહસ્થાશ્રમ ભોગવ્યો જ ન હતો અને "યાવચ્ચંદ્રદિવાકરૌ" કીર્તિ રાખે એવા ગ્રંથોને જ જન્મ આપ્યો છે

આંબા, જાંબુડા, બડહર, કટહર અને કેળાં એ ત્યાની સમૃદ્ધિ આપણા દેશના મહારાજાઓએ અને નવાબોએ જ માત્ર જૂની, જથાબધ સ્ત્રીઓ પરણવાની પ્રથા સાચવી નથી રાખી. એ પ્રથા હજી મિથિલાના દરિદ્ર બ્રાહ્મણો પણ સાચવીને રહ્યા છે હુ જેમને ત્યા રહેતો તે બ્રાહ્મણને અગિયાર સ્ત્રીઓ હતી એ ઘેર, અને બાકીની પોતપોતાના પિતાને ત્યા પતિનુ કામ મોસમમા નવરા પડે ત્યારે દરેક સાસરાને ત્યા થોડા થોડા દિવસ ફરવાનુ અને દક્ષિણા લઈ પાછા ફરવાનુ. મિથિલા એટલે જૂના કેટલાક મહર્ષિઓનો જનપદ અને અત્યારે મોટી બ્રાહ્મણસખ્યાનો દેશ ત્યાંની કટ્ટરતા કાશીને પણ લજવાવે. ડગલે અને પગલે પ્રાયશ્ચિત્ત હમણા હમણા દાખલ થયેલ વૈષ્ણવ ધર્મને અનુસરનારા ગણ્યાગાંઠ્યા બાદ કરીએ તો મોટેભાગે બધા શૈવ અને તાન્ત્રિક જ એટલે તેમને જેમ ઈશ્વરમા અદ્વૈત તેમ અભક્ષ અને ભક્ષમા પણ અદ્વૈત જ ગરીબાઈ એટલી બધી કે બે રૂપિયા આપી તેના વ્યાજમા અમારા પડિત મજૂરો પાસે કામ લેતા. પણ કટ્ટરતા એવી કે બીજો કોઈ અન્યધર્મી આવે તો તો અસ્પૃશ્ય જ હુ જ્યારે જૈન તરીકે જાણમા આવ્યો ત્યારે પ્રથમથી મહિને ચાર આનામા કામ કરનારો માણસ પાછળથી ચાર રૂપિયા આપવાના કહ્યા છતા આવતો અટકી જ ગયો. જો કે એ માછલી ખાતો અને તાડી પીતો

મને લોકો મોટો ધનાઢ્ય સમજતા, એટલે પડિતો ભારે આશા રાખે. હુ પણ વિદ્યાના લાભથી બધામા કસર કરી બની શકે તેટલુ પડિતને ઉતવામા જ ખરચી નાખતો, પણ પરિણામ ઊલટુ આવતું પડિતો એમ ધારતા

કે આ માણસ હજી ઘણું આપી શકે તેવો છે. આને લીધે મારે ત્યાં પણ જુદાં જુદાં સ્થાનો બદલવાં પડ્યાં છેવટે એક પંડિત મને એવા મળ્યા કે જેને હજી હું મારા સાચા વિદ્યાગુરુ તરીકે લેખું છું, અને તેમના ચરણમાં માથું નમાવું છું ગયે વર્ષે જ્યારે હિંદુ યુનિવર્સિટીમા કાશીમાં એમને મળ્યો ત્યારે તેમનું પહેલું વાક્ય એ હતું કે 'ક્યા સતરહ વર્ષ તક વિદ્યા કો ભૂલ ગયે?' એમનામા વિદ્યા, ખાસ કરી દાર્શનિક વિદ્યા અપાર છે, અને પ્રેમ તથા સૌમ્યતા તેથી અપાર છે. એમણે કદી જ મારી પાસેથી લેવાની વૃત્તિ રાખી જ ન હતી એમને હું જૈન હોવાનો અને મને ભણાવવાનો ભય જ નહોતો એમના એ આકર્ષણે મને દરભંગા શહેરમા ખેચ્યો ત્યા ચારે બાજુ કુત્તા અને જીવજંતુથી ખદબદતા એક ભાંગેલા મકાનમાં કેટલાક દિવસ એ ગુરુને લીધે જ વિતાવ્યા મિથિલામાં શાસ્ત્રીય શિક્ષણ પહેલાથી ઘણું છે. પણ વ્યાવહારિક શિક્ષણ છે જ નહિ એમ કહીએ તો ચાલે જે સિહવાળા ગામમા નદીકિનારે આંબાના વનમાં તૂટેલ મકાનમાં રહેલો ત્યા જ નિશાળ હતી પૂછતા માસ્તરે કહ્યું, કે 'મને ત્રણ રૂપિયા મળે છે' તે જ મુખ્ય માસ્તર હતો આ અશિક્ષણને લીધે પોલીસ અને બીજો નોકરિયાત વર્ગ લોકોને ખૂબ હેરાન કરે પોસ્ટમૅન મનીઑર્ડર આપે તો માલિકને પૂછ્યા વિના જ ચાર–આઠ આના કાપીને રૂપિયા આપે. મેં કહ્યું, હું તો પૈસા કાપી ન જ આપું પોસ્ટમૅન મહારાજ નારાજ થયા. વળી હતા મુસલમાન એટલે પોસ્ટ-ઑફિસે લેવા આવજો એમ કહી ચાલતા થયા જરાએ બીધા વિના બીજે દિવસે પોસ્ટમાસ્તર પાસે હું પહોચ્યો અને એ પોસ્ટમૅને મૂકેલી બધી અડચણો વટાવી કાંઈ પણ આપ્યા સિવાય પૈસા લઈ આવ્યો આ વાત જાણી મારા વિદ્યાગુરુએ કહ્યું · 'તુમ તો બડે બહાદૂર હો' મને મારી એ બહાદૂરી અને ગુરુજીની આપેલી શાબાશી બને ઉપર ખૂબ જ વિચાર આવ્યા, અને કેમે કરી હાસ્ય રોકી શક્યો નહિ.

મિથિલાના ધુરંધર પંડિતો હિંદુસ્તાનના જુદા જુદા ભાગમાં વિદ્યાગુરુ બનીને જાય છે, પણ એ દીપક જેવા છે એટલે તેમના ઘરમા ઘોર અંધારું હોય છે છેલ્લા વર્ષોમા અંગ્રેજી શિક્ષણને પરિણામે નીકળેલ છાપાઓ બાદ કરીએ તો ત્યા સાર્વજનિક હિલચાલ અને લોકશિક્ષણ જેવું કશું જ નથી એમ તે વખતે મને લાગેલું લખેલા કાગળનાં અને ભોજપત્ર ઉપરના કીમતી પુસ્તકો હજીયે ત્યા પલળી પલળી સડી જાય છે અને એને કોઈ જોતુ નથી બંગાળ એ ન્યાયવિદ્યામા મિથિલાનો શિષ્ય છે. પણ મૈથિલો કહે છે કે હમણા તો બંગાળ જ ગુરુ છે. આ વાત નવદ્વીપ, શાંતિપુર અને કલકત્તાને

લીધે સાચી છે. દરભંગાના સસ્કૃત વિદ્યાલયમાં ભિન્ન ભિન્ન વિષયના ધુરંધર પંડિતો જોતો અને બીજી બાજુ તેમની કંગાલિયત જોતો ત્યારે એમ જરૂર થતુ કે શુ સંસ્કૃતવિદ્યા સાથે દરિદ્રતાને, ભીરુતાને અને રૂઢિચુસ્તતાને નિકટનુ સગપણ છે? પણ જેમ જેમ વિચારતો ગયો તેમ તેમ સ્પષ્ટ લાગ્યું કે એ લોકોના માનસને વિશાળ બનાવવા માટે જે શિક્ષણપ્રણાલિ જોઈએ તે જ નથી, એટલે તેઓ ખૂબ ભણી ભણીને પણ પોતાના અને બીજાના ઉપયોગના બહુ જ ઓછા રહે છે પરિણામે નિર્વાહ માટે સકુચિત ક્ષેત્રમાં પરાધીનતા ભોગવે છે અને એ પરાધીનતાથી જ એમની વિદ્યા ઉપર આવતી નથી આર્યસમાજી પંડિતોએ જે કામ કર્યું છે તે થયુ ન હોત તો સનાતની સમાજના સખ્યાબધ પ્રખર વિદ્વાનો છતા આજે એક પણ દાર્શનિક ગ્રથનો ભાષામાં અનુવાદ જોવામાં ન જ આવત આવી વ્યવહારશૂન્યતા જ એમને વિદ્યાની અને વિચારશક્તિની પૂજી છતા દરિદ્ર રાખી રહી છે. આ ભાન મને જ્યારથી પ્રગટયુ ત્યારથી મે પણ એ પડિતોની દિશામા જવાનુ પગલુ ફેરવી નાખ્યુ, અને શીખેલ વિદ્યાને વ્યવહારમા મૂકવાના માર્ગો તરફ મન લગાડયુ આ વૃત્તિએ મિથિલા છોડાવી, અને એક કેન્દ્રમા કાર્ય કરવા પ્રેર્યો

—"સાબરમતી" દ્વિમાસિક

[પુ ૭, અ ક ૫–૬, વસંત-ગ્રીષ્મ, વિ. સં ૧૯૮૫]

મારા જીવનમાં 'પ્રકાશ'નું સ્થાન*

[૨]

જન્મસ્થાન અને પાલકપોષક માતપિતા ભિન્ન હોવા છતાં પ્રકાશ પત્ર અને હુ ઉમરની દૃષ્ટિએ નાના–મોટા ભાંડરુ જેવા છીએ, છતાં એની સાથે મારો પ્રાથમિક પરિચય તો મોટી ઉંમરે જ થયો. વિશેષાંકમાં લખવા ઘણા વિષયો સ્ફુર્યા છતાં મે અત્યારે પ્રસ્તુત વિષય જ સહેતુક પસદ કર્યો છે વર્ષો થયાં શ્રી જૈન ધર્મ પ્રકાશ મે વાચ્યુ નથી આજે એનો જૂનો કે નવો એકે અ ક મારી પાસે નથી જ્યારે વાચેલુ ત્યારે પણ સતત એમ તો નહિ જ અચાનક આવી ગયુ અને બીજુ કામ તે વખતે ન હોય તો એ જોઈ જવાતુ, પરતુ સૌથી પહેલા એ પત્ર સાભળવાનો જ્યારે પ્રસગ આવ્યો તે વખતની મારી સ્થિતિ અજબ હતી ચક્ષુના સ્થૂલ પ્રકાશયુગમાં તો મેં છાપા જેવી વસ્તુ જાણેલી જ નહી એ યુગ છોડી સ્થૂલ અધકારયુગમાં દુ ખપૂર્વક દાખલ થયા પછી બેએક વર્ષે પ્રકાશનુ નામ કાને પડ્યુ પ્રકાશ એટલે મૂર્તિપૂજક અને તેમા યે તપાગચ્છનુ મુખ્ય પત્ર એનો પ્રવેશ સ્થાનકવાસી ગામમા તો સભવિત જ ન હતો, પણ જાણે મારા ભાગ્યબળે જ (અન્યના ભાગ્યની તો ખબર નથી) એ નાનકડાશા વિદ્યા-સસ્કારવિહીન ગામડામા એક મૂર્તિપૂજક ભાઈ વસતા હતા એને લીધે અને ખાસ કરીને વિહારના માર્ગનુ સ્થાન હોવાને લીધે અવારનવાર સવેગી સાધુ આવતા. કોઈ એક સવેગી સાધુએ એ ભાઈને ગળે પ્રકાશપત્ર વળગાડ્યું અને કેટલાક પ્રસારક સભાના ભાષાતર તેમ જ કથાપુસ્તકો પરાણે ખરીદાવ્યા. એ ગ્રાહક થનાર મારા મિત્ર મને પ્રકાશમાંથી અવારનવાર લેખો સભળાવતા. હુ અતિ રસ અને એકાગ્રતાપૂર્વક એ સાભળતો

માતાપિતા, કુટુબ અને સમાજના વારસાગત ધર્મસસ્કારો સ્થાનકવાસી હતા રાત–દિવસના સતત સ્થાનકવાસી સાધુ–સાધ્વીના શ્રદ્ધાપૂર્ણ પરિચયે એ સસ્કારોમા જિજ્ઞાસાના બીજનુ આરોપણ કર્યું હતુ, પણ સાથે સાથે

---

* આ લેખમા પડિતજીએ "પ્રકાશ" એટલે ભાવનગરથી પ્રગટતા "જૈન ધર્મ પ્રકાશ" અગે લખ્યુ હોવા છતા એમાં એમની પોતાની પણ અમુક હકીકત આવતી હોવાથી એને આ વિભાગમાં સ્થાન આપ્યું છે —સં૦

અજાણપણે પણ એ સંસ્કારો માત્ર એકતરફી પોષાઈ ગ્રંથિરૂપ બની ગયા હતા. મને યાદ છે ત્યાં સુધી હુ કહી શકું કે કોઈ પણ સ્થાનકવાસી સાધુ–સાધ્વી આવે ત્યારે હુ તેમને વિષે એમ જ ધારતો કે આ ખરેખર મહાવીરના સાક્ષાત શિષ્યો જેવા છે. વાસ્તવિક ત્રૂટિઓ તેમનામાં જોઉ છતાં એક યોગીની પેઠે મૂઢ ભાવે, તેમનામા ગુણદર્શન જ કરતો અને માનતો કે તેમના આચાર–વિચાર, ભાષા, વ્યવહાર એ બધુ સાક્ષાત મહાવીરમાથી જ આવેલુ હોઈ નિ શંક શ્રદ્ધેય છે એક બાજુ આ સબીજ ગ્રથિની સ્થિતિ અને બીજી બાજુ પ્રકાશ પત્રનુ તદ્દન વિરોધી વાચન એમાં મૂર્તિપૂજાની, તીર્થોની, અષ્ટપ્રકારી અને અન્યાન્ય પ્રકારી પૂજાની, ધૂપ, ફૂલ વગેરેની ચર્ચા આવે બત્રીશને બદલે ક્યારેક પિસ્તાલીશ આગમનો અને ટબાને બદલે પચાંગીનો ઉલ્લેખ આવે. પ્રાકૃતને બદલે ઘણીવાર સંસ્કૃત શ્લોકો સાભળવા મળે મુહપતિ બાંધવા વિરુદ્ધની ચર્ચા અને પીળા કપડાના સમર્થન પણ એમા આવે મારે મન આ બધુ તે વખતે એક ધતીગ હતુ વારસાગત અને પછીથી પોષાયેલ સંસ્કારો પ્રકાશ પત્રમાં આવતી ઘણીખરી બાબતોને મિથ્યા માનવા પ્રેરે, પણ પેલા મિત્રનું અનુસરણ અને કાઈક અસ્પષ્ટ જિજ્ઞાસાભાવ એ વિરુદ્ધ બોલવા ના પાડે આમ કુળગત સસ્કારો ઉપર પ્રકાશપત્રના વાચનદ્વારા તદ્દન વિરોધી બીજા સસ્કારનો થર મનમા બંધાયો

જાણે આ થરોનો ભાર ઊંચકવો કઠણ હોય અને તેમાથી કાંઈક માર્ગ શોધવા મથતુ હોય તેમ તે વખતનુ મારુ મન તર્કવિતર્ક કરવા લાગ્યું છપ્પનના દુષ્કાળથી અઠ્ઠાવનની સાલ સુધીના ગાળામાં મન ક્રાંતિની દિશામા હતુ. પ્રકાશ પત્રમાંના અને પ્રચારક સભાનાં કેટલાંક પુસ્તકોમાથી સેંકડો સસ્કૃત શ્લોકો યાદ થઈ ગયેલા, અને હજાગે કદસ્થ પ્રાકૃત પદ્યોની મનમા પ્રતિષ્ઠા છતા સસ્કૃત તરફ આકર્ષણ પૂરવેગથી વધવા માડ્યુ એ આકર્ષણે કુળગત સંસ્કારોને શિથિલ કર્યા, છતા કુટુબ અને કુળગુરુઓનો માનસિક ભય તેમ જ જડતાનુ ગાઢ આવરણ એટલુ બધુ કે શકાઓ વ્યક્ત કરવા સાહસ જ ન થાય. છતાં પ્રકાશના તે વખતના એક માત્ર સ્થૂલ વાચનથી પણ મન જુદી જ રીતે ઘડાવા મડ્યું ક્યારેક કૌતુકબુદ્ધિએ મંદિરમાં જવાનુ મન થાય, ક્યારેક ટીકાદૃષ્ટિએ અને ગવેષકદૃષ્ટિએ સવેગી સાધુઓ પાસે જવા મન લલચાય. આ બધુ થાય પણ કુળસંસ્કારોની ગ્રથિ મનને છૂટથી વિચારવા જ ન દે વળી પ્રકાશ પત્રના નવનવ અકના વાચનથી મનમા એમ થઈ આવે કે આ પિસ્તાલીશ આગમો, આ સંસ્કૃત સાહિત્ય, આ વ્યાકરણ, આ ન્યાય વગેરે બધુ જાણવુ તો જોઈએ. કદાચ તે મિથ્યા

હશે તો ભલે તેમ હો, પણ માત્ર બત્રીશ આગમ ને થોકડાઓમાં તો રચ્યાપચ્યા રહી ન શકાય આ રીતે અઠ્ઠાવનની સાલ સુધીમાં મને એક પ્રબળ બળવો કર્યો.

ચોક્કસ સમય યાદ નથી પણ લગભગ એ જ ગાળામાં પ્રકાશ પત્રમા વીર અને પુરુષાર્થી શ્રીમાન્ ધર્મવિજયજી મહારાજના કાશીમાં સંસ્કૃત અભ્યાસ માટે થનાર પ્રયાણના સમાચાર વાંચ્યા પ્રકાશ પત્રના આ સમાચારે મારા બુભૂક્ષિત મનને વધારે ઉશ્કેર્યું અને સાથે સાથે એ અંધારયુગી જીવનક્રમમા એક આશાનુ કિરણ મારી સામે ફેંક્યું તે પછી ખાનગી વિવિધ પ્રયત્નને પરિણામે છેવટે હુ ૧૯૬૦મા નવજીવનપ્રવેશક અને પોષક શ્રીમાન ધર્મવિજય મહારાજનાં ચરણોમા કાશી સ્થળે આવ્યો. આ વખતની અને ત્યારપછીના અત્યાર લગીના લગભગ એકત્રીશ વર્ષની આત્મકથા કહેવાનુ આ સ્થાન નથી તેમ જ એટલો સમય પણ અત્યારે નથી હુ જાણુ છુ કે એ આત્મકથામાં શાસ્ત્રમથન, શાસ્ત્રવિચારણા, ધર્મચિંતન, ધર્મમથન, સમાજપરિચય, સામાજિક પ્રશ્નોનો ઉહાપોહ, ફિરકાના સ્થાનમા સમાજ-દૃષ્ટિનુ અને સમાજના સ્થાનમા રાષ્ટ્ર તેમ જ વિશ્વદૃષ્ટિનુ સ્થાન ઇત્યાદિ જે વિષયો અનુભવગત છે તે જો મોકળા મને પૂરો વખત લઈ ચર્ચું તો ઘણા જણ એ વાચી પોતાના અનુભવોને એની સાથે સરખાવી સામ્ય અનુભવી શકે અને તેના પતન–ઉત્પતનમાથી તેઓ પોતાના વિષે પણ કાઈક વિચારી શકે, પરતુ અહી મારો ઉદ્દેશ પરિમિત છે અને તે એટલો જ કે પ્રકાશ પત્રનુ મારા જીવનમા શુ સ્થાન છે એ દર્શાવવુ

શ્રીયુત પરમાનદ કાપડિયાના પ્રકાશ પત્ર સાથેના સબધ પછી જે કાઈ તેમા વિશાળતા અને ઉદારતાની દિશામા થોડા ફેરફાર થયો છે તેને અને બીજા અતિ થોડા ફેરફારને બાદ કરીએ તો એ પત્ર વિષે આ ક્ષણે મારા મન ઉપર યોગ્ય પત્રત્વની સારી છાપ નથી મારા મન ઉપર એવી છાપ પડી છે કે એ પત્ર તાત્ત્વિક રીતે અભ્યાસપૂર્ણ અને તદ્દન નિષ્પક્ષપણે સામાન્ય ધર્મનો પણ વિચાર નથી કરતુ તો પછી જૈનધર્મનો વિચાર કરવાની અને તે ઉપર પ્રકાશ ફેંકવાની વાત તો બાજુએ જ રહી. પરતુ જો મારી આ ધારણા આંશિક પણ સાચી હોય તો તે અત્યારની માનસિક ભૂમિકાની છે. મારું મન ઘણા નાના–મોટા વાડા વટાવી આગળના અસીમિત મેદાનમા કૂદકા–ભૂસકા મારતુ હોય અને જુદી જુદી દિશાઓ સ્પર્શવા ભટકતુ હોય તો એ એના ગુણ કે દોષથી પ્રકાશ પત્રને વિષે એમ કલ્પે એ

સહજ છે, છતાં જ્યારે હું મારા અંધકારયુગીન ભૂતજીવનની જટિલ ગ્રંથિઓ વિષે વિચાર કરું છું ત્યારે મને લાગે છે કે એ પત્રે એક નાના ભાઈની પેઠે મને મૂંઝવણના અંધકારમાં પ્રકાશ અને દડરૂપે મદદ આપી છે એક વાર તદ્દન નગણ્ય લાગતી વસ્તુ પણ ક્યારેક કેટલી જીવનપ્રદ અને પોષક બને છે એનો આ પ્રકાશ મારા જીવનમા એક સચોટ દાખલો છે

વ્યાકરણ, કાવ્ય, અલંકાર, તર્ક, ભિન્નભિન્ન દર્શન, આગમ, પિટક, વેદ, ઉપનિષદ, પુરાણ, ધર્મશાસ્ત્ર આદિના હજારો પોથા ફેદી નાખનાર અસ્થિર અને લગભગ એક જ સ્થાને એક જ દિશામા વિચાર કરનારા સ્થિર મન વચ્ચે ધીરે ધીરે કરતાં કાળક્રમે મોટું અંતર પડી જાય તો એ સ્વાભાવિક છે, પણ તેમ છતાં એ પ્રકાશના અતિ અલ્પ વાચનમાના કેટલાક લેખો તો અત્યારે પણ મારી નજર સામે તાદશ ખડા થાય છે શ્રીયુત અનુપચંદભાઈએ ક્યારેક બ્રહ્મચર્ય વિષે અને કદાચ તેવા બીજા એક જીવનસ્પર્શી વિષય વિષે પ્રકાશમાં લેખો લખેલા તેનો પ્રભાવ આજ પણ મારા જીવનમાં બળ પ્રેરી રહ્યો છે મને ઘણી વાર એમ તો લાગ્યું જ છે કે એ પત્ર ભલે પંથ અને ગચ્છ તેમ જ ગુરુવિશેષની ભાવનામાથી જન્મ્યુ હોય છતાં જો એનો વિકાસ વર્તમાન સંયોગો અને સાધનો પ્રમાણે પૂરેપૂરો થયો હોત અથવા હજી પણ થાય તો એ પત્ર અર્ધી વયે પહોચીને ઘડપણમાં પ્રવેશ કરવાને બદલે ઊલટુ નવજીવનમા પ્રવેશ કરે જો કોઈ વ્યક્તિ જીવનની કળા જાણતી થાય તો એ જેમ જેમ ઉંમરે વધે તેમ તેમ ઘડપણને બદલે વધારે નવજીવન જ મહાત્માજીની પેઠે અનુભવે, તેમ પત્રની બાબતમા પણ છે એની ઉંમર જેમ જેમ વધે તેમ તેમ જીવન વધારે સબળ અને તાજું થવુ જોઈએ. અનુભવો, કાર્યદિશાઓ અને ભાવનાઓ વધવા અને બદલાવાના યુગની સાથે જ કોઈ પણ પત્રે યોગ્ય રીતે પરિવર્તન સ્વીકારવુ જ જોઈએ. અને તો જ તે વિકસિત ભૂમિકાગા સ્થાન–માન પામી શકે અને ઉપયોગી થઈ શકે વસંતમા જૂના પર્ણો જાય છે તે નવીનને માટે જ માણસ, સંસ્થા અને ધર્મ એ બધાએ વાસંતિક જીવન જીવવુ જોઈએ પત્ર એ તો ઉક્ત વસ્તુઓનુ પ્રતિનિધિ છે તેથી અને ખરી રીતે એ બધાનુ દોરનાર છે તેથી એણે તો વિચાર, અભ્યાસ અને નિર્ભયતાપૂર્વક વાસંતિક જીવન સર્વપ્રથમ ધારણ કરવુ જોઈએ.

માગ વાચવામા આવતું નથી એટલે અત્યારની પ્રકાશ પત્રની સ્થિતિ વિષે હું અજ્ઞાત છું. સભવ છે કે એનો જન્મગત વાડો પણ ગયો

હોય, છતાં એના વ્યાપક વિકાસને અત્યારે પણ પુષ્કળ અવકાશ છે, એ બાબત તો દીવા જેવી છે. જો એમાં શુષ્ક ક્રિયાકાંડો, વાતો અને એકતરફી ધર્મવિધાનોની ચર્ચા આજે પણ અલ્પાંશે થતી હશે તો આ યુગમાં હવે એણે શ્રી જૈન ધર્મ પ્રકાશ એ નામ બદલી અન્ય જ સાર્થક નામ ધારણ કરવુ યોગ્ય છે એમ કોઈ પણ તટસ્થ વિચારક કહી શકશે હવે એમાં કોઈ કોઈ વિચારપ્રધાન અને ઉદાત્ત લેખની જે માળા વિષે મે સાંભળ્યુ છે તેને બદલે તે આખુ પત્ર જ તથાવિધ થઈ જવાની આશા હુ સેવુ છુ કારણ એ એના સચાલકો અને સહાયકો પણ ન જાણે એવી રીતે મારા સકુચિત જીવનમાં અને અધકારમય ભાવનાઓમા એક કીમતી કિરણ ફેંકી સાચે જ પ્રકાશક સિદ્ધ થયુ છે અને તેથી જેમ કોઈ પોતાના જૂના સાથી વિષે ઉન્નત ભાવનાઓ સેવે તેમ હુ એ પત્રના વિકાસ વિષે અને સાથે સાથે એ પત્રની પોષક તથા એ પત્રમાથી જન્મતી બધી પ્રવૃત્તિઓ વિષે ઉન્નત આશા સેવુ છુ

હુ સમજુ છુ ત્યા સુધી પ્રકાશ એ સભાનુ મુખપત્ર છે મૂળ, અનુવાદ અને સારાત્મક ઢગલાબધ પુસ્તકો પ્રગટ કરી એ સભાએ સાહિત્ય પ્રચારમાં વિશિષ્ટ ફાળો આપ્યો છે, છતાં હવે યુગ બદલાયો છે એવી જાતના સાહિત્ય-પ્રચારની સાથે સાથે એણે ગભીર, વિશાળ અને તદ્દન નિષ્પક્ષ એવુ જૈન સાહિત્ય સશોધનનુ કામ પણ હાથ ધરવુ જોઈએ પૈસાની ગણતરી અને બાહ્ય વૈભવના આકર્ષણથી મુક્ત રહી એણે શુદ્ધ સાહિત્યોપાસના શરૂ કરવી જોઈએ જો સભા એ પ્રવૃત્તિ સ્વીકારે તો એણે વિશિષ્ટ વિદ્વાનોનો યથાશક્તિ સગ્રહ કરવો જ પડશે એણે પુસ્તકાલયની વ્યાપકતા વધારવી પડશે સામાન્ય વર્ગ ઉપરાત વિશિષ્ટ વિદ્વાનોલાયક પ્રવૃત્તિ શરૂ થતા એ એવુ ધામ બનશે કે દેશ-પરદેશના વિશિષ્ટ વિદ્વાનો આવી રહેવા લલચાશે ભાવનગર બીજી રીતે પણ બહુ અનુકૂળ સ્થાન છે આ વિદ્યાભ્યાસગમાથી ઊડા ચિંતનો અને સઘર્ષણો જન્મતા આપોઆપ પ્રકાશની કાયા પલટાશે ને તે સાપ્રદાયિક છતા સર્વગ્રાહ્ય કે માન્ય થવાની દિશામા પ્રસ્થાન કરશે

—શ્રી જૈનધર્મ પ્રકાશ સુવર્ણ મહોત્સવ અંક
[વર્ષ ૫૧. અક ૧લો ચૈત્ર. વિ સ ૧૯૯૧]

મને કયા આદર્શે કાશીમાં બાંધ્યો?

[૩]

જાહેર પત્રોમા પોતાના આદર્શ અને પ્રવૃત્તિ વિષે મેં આજ સુધી કશુ લખ્યુ નથી, છતાં જ્યારે આજે લખવા પ્રેરાઉ છુ ત્યારે એનુ સામાન્ય કારણ જાણવા વાચક ઇચ્છે તે સ્વાભાવિક છે 'જૈન' પત્રના પુ ૪૧, અક ૪૮ અને ૪૯મા અકમા સેવાભાવી વીરચંદ પાનાચંદ શાહનો અને તત્રી-સ્થાનેથી એમ અનુક્રમે બે લેખો પ્રસિદ્ધ થયા છે. તેથી કાશીની જૈન પ્રવૃત્તિ વિષે કેટલાક વાચકોને જરૂર જિજ્ઞાસા પ્રકટી હોવી જોઈએ, ખાસ કરી જેઓ વિદ્યા અને સસ્કૃતિના સામાન્ય રસિક હોય તેમ જ જેઓ જૈન સાહિત્ય અને તત્ત્વજ્ઞાનની ખુમારીમા માનતા હોય, તેઓની એ જિજ્ઞાસા તો કાઈક સતેજ જ હોવાની એને અલ્પાશે સતોષવી એ એક કારણ અને બીજુ એ કે ભલે હુ આજ લગી ચૂપ રહ્યો હોઉ છતા જીવનને કાંઠે બેગી જ્યારે કાશી ને ગગાનો કાઠો છોડવાની વિચારણા સેવતો હોઉ ત્યારે તો સેવેલ આદર્શ અને કરેલ પ્રવૃત્તિ વિષે કાંઈક લખી દઉ તો એ પ્રેરક જ નિવડવાનો.

અમદાવાદ અને શાતિનિકેતનની પૂર્ણ સામગ્રી જ્યારે મારી બધ કરેલ સાહિત્યપ્રવૃત્તિને ન ઉત્તેજી શકી ત્યારે ખાસ ઊભા થયેલ સંજોગોએ એ જ પ્રવૃત્તિ વાસ્તે મને કાશીમા ધકેલ્યો હુ આવ્યો તો હતો મર્યાદિત વખત માટે પણ આવ્યા પછી બધાઈ ગયો બાધનાર તત્ત્વ અનેક હતા અને છે પણ અહી તો તેમાથી એક જ તત્ત્વનો મુખ્યપણે નિર્દેશ કરીશ સ્વર્ગવાસી ભવ્યાત્મા વિજયધર્મસૂરીશ્વરના દીર્ઘદર્શી આહ્વાનથી વિ મ. ૧૯૬૦ મા કાશીમા આવેલો અને તેમની જ છાયામા અધ્યયન પ્રારંભેલું કાશીમા દશકો વીત્યો અને પછી તો લગભગ વીશ વર્ષ જ્યા ત્યાં રહ્યા પછી પાછો કાશીમા જ પટકાયો આ વખતે નહોતુ અગ્રેજી કોઠીનુ તેજ, ન હતું યશોવિજય પાઠશાળાનુ નામ, પરંતુ એ જ સ્વર્ગવાસીની સાહસિકવૃત્તિના ફળરૂપ ઉક્ત પાઠશાળાને જોઈ જે દિગબર વિદ્યાલયની સ્થાપના મારી સામે જ થયેલી તેને આ વખતે સ્થિરપદે ચાલતા અને ઉત્તરોત્તર વિકાસ કરતા મે જોઈ એમાથી દરસાલ નીકળતા અનેક વિવિધ વિષયના આચાર્યો અને એન્ટ્રન્સ્યુએટોને જોયા. બીજી બાજુ શ્રી વિજયધર્મસૂરીશ્વરની મોજુદગીમા જ

જે કાશી વિશ્વવિદ્યાલયનાં સ્વપ્ન સેવાઈ રહ્યાં હતાં તે વિશ્વવિદ્યાલયને એના વિશાળ મૂર્ત આકારમાં અહીં આવી મે માત્ર જોયું જ નહિ પણ તેમાં જ રહી કામ કરવાનુ સુદ્ધાં મારે ભાગે આવ્યુ ગમે તેવો પ્રતિકૂળ પ્રસંગ પણ આખરે મને અનુકૂળ ફળદાયક જ નિવડચો છે અથવા મેં એવા પ્રસંગને અનુકૂળ તક જ માની એમાંથી કાંઈક માર્ગ શોધવાનો જે જિંદગીમાં અનુભવ કર્યો છે તેમાંની આ એક ઘટના હતી લગભગ દશવર્ષ પહેલાં જ્યારે અહી આવ્યો ત્યારે ન હતા જૈન વિદ્યાર્થી કે ન હતા ઇષ્ટ સાથીઓ, પણ કાઈક ધગશ હતી. એ ધગશે અચાનક છેક જ એક નાના ઝૂંપડામાં પ્રેરણા કરી અને સ્વર્ગવાસી ઉક્ત ભવ્યાત્માના આદર્શને મન સામે તાદૃશ ઉપસ્થિત કર્યો. મેં એ આદર્શને મારી ઢબે અને મારી શક્તિ પ્રમાણે વિચાર્યો અને તેને કાશીમા જ કાંઈક મૂર્તરૂપ આપવાનો દૃઢ નિર્ધાર કર્યો. સાધન અને સામગ્રી પહેલા કરતા બહુ વધી ગયા હતા, પણ હુ માત્ર એકાકી હતો છતા મને એ આદર્શ એટલો બધો ઉપયોગી અને આકર્ષક લાગ્યો કે તેને જ લીધે નિવૃત્તિ ગાળવા ધારેલ વર્ષો પણ મને રસપ્રદ પ્રવૃત્તિ-વાળાં સિદ્ધ થયાં. આ સ્થળે હુ એ પ્રવૃત્તિ અને એનાં પરિણામ વિષે લખવા નથી ઇચ્છતો. કદાચ એ વિષે આગળ લખું, અત્યારે તો હુ એ આદર્શ વિષે જ કાંઈક લખવા ધારુ છુ અને તે માત્ર સામાજિક તેમ જ માનવીય સસ્કૃતિના પોષાક એક અંગ તરીકે જ

વિજયધર્મસૂરિજીનો આદર્શ હતો કે જેમ ત્યાગી વર્ગ શાસ્ત્રીય વિદ્યા ભણે છે તેમ ગૃહસ્થવર્ગે પણ એ વિદ્યાઓનુ ગભીર અને વિશાળ અધ્યયન કરવુ એ જૈનસમાજની વધતી જતી આવશ્યકતા અને વર્તમાન સમયની સબળ માગણીની દૃષ્ટિએ અનિવાર્ય રીતે જરૂરી છે. આજે જ્યા ત્યા નવા ઉદ્ભવતા કાર્યક્ષેત્રો અને સસ્થાનોની વાસ્તવિક માગણીને યથાર્થ રૂપમાં પોતાના પ્રબળ વિદ્વાનો સિવાય સતોષી શકાય જ નહિ, તેમ જ બોર્ડિંગો, સ્કૂલો, કોલેજો અને યુનિવર્સિટીઓમા જે સસ્કૃતિ, સાહિત્ય અને ઇતિહાસના અધ્યયનના માર્ગો દિવસે દિવસે વધારે વધારે ખુલ્લા મુકાતા જાય છે તેને એવા ગહસ્થ વિદ્વાન સિવાય પહોચી વળી શકાય પણ નહિ બૌદ્ધ ભિક્ષુક વિદ્વાનોની જેમ જૈન ભિક્ષુક વિદ્વાનો સાર્વજનિક સંસ્થામા જવાબદારીપૂર્વક કામ લેવાતું સેવાકૃત્ય ન સમજે ત્યાં લગી તો આ કામની પુરવણી એક માત્ર ગૃહસ્થ વિદ્વાન વર્ગદ્વારા જ સંભવી શકે અને બીજી રીતે નહિ એક વાર જૈન ત્યાગી વર્ગ એવી જાહેર જવાબદારી ઇચ્છાપૂર્વક લેવાની ઉચ્ચ ભૂમિકાએ પહોચે ત્યારે પણ તે વર્ગને પોતાના અંગત સાથી અને સહાયક

તરીકે અસાધારણ એવા ગૃહસ્થ વિદ્વાન વર્ગની ઊલટી વધારે જરૂરિયાત રહેવાની. હુ ધારુ છુ કે આવા જ કોઈ સ્ફુટ કે અસ્ફુટ વિચારે વિજયધર્મસૂરીશ્વરને કાશી ભણી ધકેલેલા તેઓ ઘણીવાર આ વસ્તુ પોતાની ઢબે કહેતા તેમણે ગૃહસ્થ વિદ્યાર્થી વર્ગ એકત્ર કરવા માડ્યો અને કાંઈક કામ પણ ચાલ્યુ. એમણે સાથે જ સાથે યશોવિજય ગ્રથમાળા પણ શરૂ કરાવી અને તે વખતની નવી જ ઢબે સાહિત્યપ્રવૃત્તિ પણ શરૂ કરી, જેના સુપરિણામો કોઈ ન જાણે તોય સમાજમાં પચી ગયાં છે. હુ દશ વર્ષ પહેલા અહીં આવ્યો અને એ જૂની સ્મૃતિઓ તાજી થઈ. એક રીતે વખતના વહેવા સાથે એ આદર્શ અને સ્મૃતિઓ પણ વધારે સ્પષ્ટ તેમ પાકાં હતા મને પહેલા જ લાગ્યુ કે દિગબર સમાજમા સકડો વિદ્વાનો હોઈ તેઓ જ્યાં ત્યાં કાર્યક્ષેત્રમાં પહોચી શકે છે, જ્યારે શ્વેતામ્બર અને સ્થાનકવાસી સમાજમાં તો એનો દુષ્કાળ છે અને છતા ય માગણી ઉચ્ચ પાયા ઉપર વધતી જાય છે. એ સાથે જ્યારે જૈન સમાજનુ ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ નિરીક્ષણ કર્યુ ત્યારે તો મને ઉપરનો આદર્શ વિશેષ મૂલ્યવાન, ઉપયોગી અને જરૂરી લાગ્યો. જ્યાં સુધી હુ જાણુ છુ અને પુરાવાઓ મળે છે ત્યા સુધી એમ માનવાને કારણ છે કે જૈન સમાજમા વિદ્યાની અને સૂક્ષ્મ વિચારની જે સદાકાળ માટે ઊણપ રહી છે તેનુ એક માત્ર કારણ ગૃહસ્થ વર્ગની પ્રાથમિક ભૂમિકાની પૂરી તૈયારીનો અભાવ એ જ છે આપણે નથી જાણતા કે કવીશ્વર ધનપાળ પહેલા જૈન સમાજમા કોઈ ગૃહસ્થ પાકટ જૈન વિદ્વાન હતો કે નહિ? ધનપાળ પછી એટલે અગિયારમા સૈકા પછી જ્યારે જૈન ગૃહસ્થ વર્ગમા વ્યવસ્થિત અભ્યાસ કરવાની રુચિ પ્રકટી અને પોષાવા લાગી ત્યારે પણ એવા કોઈ પ્રબળ જૈન દાર્શનિક કે તત્ત્વચિતક થયા નથી કે જેણે કાઈ વિશેષ કામ કર્યું હોય કે સાહિત્યનિર્માણ કર્યુ હોય. જે કોઈ થયા છે તે બહુ તો વ્યાકરણ, કાવ્ય, સાહિત્ય કે અલકાર જેવા પ્રાથમિક વિષય પૂરતા જ નિષ્ણાત હતા, પણ જમાનો આગળ વધી ચૂક્યો હતો જરૂરિયાતો વ્યાપક બની હતી એવે ટાણે સમગ્ર વિષયોમા પારગામી ગૃહસ્થ વિદ્વાનો તૈયાર કરવાની પ્રબળ વૃત્તિ સૌથી પહેલાં એક માત્ર વિજયધર્મસૂરીશ્વરમાં જન્મી અને તે એટલે સુધી કે તેમણે પોતે જ એ તંત્રમાં પરોવાવાનુ પસંદ કર્યું બેશક બીજા પણ કેટલાક વિશેષ મુનિઓએ આ દિશામા અસાધારણ પુરુષાર્થ કર્યો છે અને અદ્યાપિ કરે છે જેના વિવિધ દર્શનોના અને સાથે જ જૈન દર્શનના ગંભીર ગૃહસ્થ અભ્યાસીને તૈયાર કરવાની પ્રથમ પ્રેરણા, એ તો હુ જાણું છુ ત્યા લગી વિજયધર્મસૂરીશ્વરમા જ

પ્રકટેલી આ તેમનો આદર્શ મને કાશીમાં પ્રેરક બન્યો અને તે જ આદર્શને પોતાની ઢબે વશ થઈ મે બહુ જ નાના પાયા ઉપર મારી પ્રવૃત્તિનાં મંડાણ માંડ્યા મારે ઉમેરવુ જોઈએ કે શ્વેતાંબર કોન્ફરન્સ અને કેટલાક અંગત મિત્રો હુ ધારુ તે કરતાં પણ મારા કાર્યપક્ષે વધારે અનુકૂળ હતા અને છે, તેમ છતા મેં વિશાળ આદર્શ સામે રાખીને પણ નાના પાયે પ્રવૃત્તિ કેમ શરૂ કરી, એનો જવાબ મારી મર્યાદાઓમાં છે. અત્યારે તો હુ આ લેખ-દ્વારા પ્રથમના બે લેખની પુરવણીરૂપે એટલું જ સૂચવવા માગું છુ કે જો મારા કાશીના વસવાટનુ કે અલ્પ–સ્વલ્પ પ્રવૃત્તિનુ મૂળ કારણ હોય તો તે ઉપર સૂચવેલ આદર્શ જ છે.

—જૈન, ૧૦ જાન્યુઆરી, ૧૯૩૩

સુવર્ણચન્દ્રક સમારંભ પ્રસંગે

[૪]

આ ચંદ્રક-અર્પણનો વિધિ વૈયક્તિક છે એમ હુ નથી સમજતો. અમુક વ્યક્તિ બીજી કોઈ ખાસ વ્યક્તિને જ્યારે આવું કાંઈ અર્પણ કરે ત્યારે તે વિધિ વૈયક્તિક બને છે, પણ હુ તો આવા વિધિને માત્ર શાસ્ત્રીય જ્ઞાન તેમ જ સત્યશોધક વૃત્તિની મૂલવણીની વિધિ સમજુ છુ, તેથી આવા વિધિ પ્રસગે મારે કોઈનો આભાર માનવાપણુ રહેતુ જ નથી આવી અર્પણવિધિમા એક અથવા બીજી રીતે ભાગ લેનાર બધા જ શાસ્ત્ર, જ્ઞાન તેમ જ સત્યસંશોધક વૃત્તિના એકસરખા પૂજારી છે જ્યા પૂજા એક જ હોય અને તે એક જ ગુણની ત્યા એમાં ભાગ લેનાર ગમે તેટલા હોય છતાં કોણ કોનો આભાર માને ?

કુળમાર્ગથી જુદા પડવાનું કારણ

સ્વાભાવિક રીતે જ અહી ઉપસ્થિત હોય એવા બધાને કુતૂહલ થયા વિના ન રહે, કે મારા જેવો લાચાર સ્થિતિમા પડેલ માણસ છેવટે સત્યસશોધનને માર્ગે કેવી રીતે વળ્યો ? તેથી હુ માગ જીવનને લગતા એટલા જ ભાગની ટૂંકમાં કથા કહુ તો તે કેટલેક અશે ઘણાખરાને પોતાની જીવનકથા સાથે મળતી દેખાશે અને એમાથી અચરજ કે અદ્ભુતતાનુ તત્ત્વ આપોઆપ ઓછુ થઈ જશે, જેથી જીવનની સહજ સપાટીનો વિચાર પણ કરી શકાય.

જે કુળ કે વશમાં શાસ્ત્રીય જ્ઞાનનો ભાગ્યે જ વારસો ચાલ્યો આવતો હોય તેવા માત્ર વ્યાપારજીવી કુળમા જન્મવા અને ઉછેર પામવા છતાં હું કુલમાર્ગથી જુદે રસ્તે ગયો તેનુ મુખ્યત્વે એકમાત્ર કારણ જિજીવિષા છે

જીવનની ઇચ્છા બળવતી હોય ત્યારે તે પોતાની સિદ્ધિ માટે કોઈ ને કોઈ રસ્તે ફાફા મારે છે. એમાથી ક્યારેક સામાન્ય રીતે કલ્પ્યુ ન હોય તેવું પરિણામ પણ આવે છે. સોળેક વર્ષની ઉમરે મારુ નેત્રાદ્વૈતનું વિશ્વ અલોપ થયુ અને અંધકારાદ્વૈતનુ વિશ્વ આવિર્ભાવ પામ્યુ. શ્રવણેન્દ્રિય કુંઠિત થાય ત્યારે અગર નાસિકેન્દ્રિય કામ કરતી બંધ પડે ત્યારે મુશ્કેલી અવશ્ય અનુભવાય છે છતા બીજી કોઈપણ ઇન્દ્રિયના વધ કરતાં નેત્રનો વધ વધારે

મુશ્કેલી ઊભી કરે છે. એ વખતે જીવન વધારેમાં વધારે ગૂંગળામણ અનુભવે છે. મૃત્યુને કિનારે લઈ જાય એવી જીવનગૂગળામણ અને બળવતી જિજીવિષા એ બન્ને વચ્ચે અકથ્ય દ્વન્દ્વ ઊભું થાય છે મારે માટે આ દ્વન્દ્વ એક કાળે મહા જલભ્રમરમાં સપડાયેલ પણ ક્ષેમપૂર્વક નીકળવા મથતી નૌકાના દ્વન્દ્વ જેવુ હતુ એમ લાગે છે કે, ગૂંગળામણના બળ કરતા જિજીવિષાનું બળ વધારે હોવુ જોઈએ, તેથી જ એણે પોતાની સિદ્ધિ અર્થે અનેકવિધ ફાફાં મારવા શરૂ કર્યા. એમાથી એને એક ત્રાણ–માર્ગ લાધ્યો, જે વસ્તુ સામાન્ય અને સહજ હતી તેમ જ જે ઘરઆંગણે હતી તે અત્યાર લગી નકામી ભાસતી, પણ હવે તે ઉપયોગી સિદ્ધ થઈ આ વસ્તુ એટલે કુળપરંપરાગત ધર્મસસ્થાનો આશ્રય અત્યારે હુ આવી ધર્મસંસ્થામાં સામાન્ય રીતે ત્રણ બાબતનો સમાવેશ કરું છુ ગુરુવર્ગ, શાસ્ત્રજ્ઞાન અને સાંપ્રદાયિક આચાર. કુળધર્મ સ્થાનકવાસી હોવાથી મને સહેજે આ ત્રણ બાબતો પ્રાપ્ત હતી. જિજીવિષાએ જિજ્ઞાસાને સતેજ કરી, અને તેણે સંકલ્પ તેમ જ પ્રયત્નબળ અર્પ્યું. મારી જિજ્ઞાસા કુળધર્મના ઉપર સૂચવેલ ત્રણ અગોની આસપાસ સતોષાતી. એ ત્રણ અગોનુ વર્તુલ જેટલું સાંકડું તેથીય પણ વધુ સાંકડું મારી સમજણનુ વર્તુલ, એટલે સ્વાભાવિક રીતે જ હુ જે કોઈ ગુરુને મળતો કે તેની પાસેથી જે કાંઈ શ્રવણ કરતો, અગર જે કાંઈ કુળાચાર આચરતો તે જ મારે માટે તે વખતે અંતિમ સત્ય હતુ અલબત્ત, ઉત્તરોત્તર આગળ વધવાની અને ઊડા ઊતરવાની ઇચ્છા જાગ્રત રહેતી. પણ એને પૂર્ણપણે સંતોષવાના કોઈપણ સાધનો સામે ન હોવાથી તેને વેગ મળતો નહીં આને લીધે મારા મન ઉપર છાપ એક જ પડેલી કે ધર્મ સાચો હોય તો તે જૈન ધર્મ મારી જૈન ધર્મની તે વખતની પરિભાષા ઉપર સૂચવેલ સ્થાનકવાસી પરમ્પરાનાં ત્રણ અગોમાં જ સીમિત હતી. આ બહારનો બીજો કોઈ ધર્મ અગર જૈન ધર્મનો બીજો કોઈ ફાટો એ મારે મન મિથ્યાધર્મ જેવો હતો.

પણ આ સ્થિતિ કાયમ બને તે પહેલાં જિજ્ઞાસાએ પલટો ખાધો. જે કાંઈ સાધનહીન ગામડામાં સાધુસાધ્વીના મુખથી કે તેમના સંસર્ગથી શીખેલો તે સાવ અપૂર્ણ જણાવા લાગ્યુ. અહીથી પહેલી સીમા પૂરી થઈ અને નવી સીમા શરૂ થઈ. સંસ્કૃત જ્ઞાન વિના જૈન શાસ્ત્રનું જ્ઞાન સાવ અધૂરું અને પાગળું જ હોઈ શકે એવી પ્રતીતિ થતાં સંસ્કૃત શીખવાની ઉત્કટ તમન્ના જાગી જે બે–ચાર સચ્ચરિત્ર સ્થાનકવાસી સંસ્કૃતજ્ઞ સાધુઓ

પરિચયમા આવ્યા તેમની પરિચર્યા અને સહાનુભૂતિથી હું સંસ્કૃત શીખવાના પંથે તો પડ્યો પણ મને એ પંથ પૂરતો ન લાગ્યો. વધારે શુદ્ધ અને વધારે સમર્થ એવા સંસ્કૃત જ્ઞાનની ભૂખે મને વ્યાકુળ કરી મૂક્યો. એણે ઊંઘ ઉડાડી, સ્વપ્નો સર્જાવ્યાં, સ્વપ્નો એવાં કે જાણે હુ અવારનવાર આકાશમાં ઊડતો હોઉં મને એમ લાગેલુ કે આકાશમાં ઊડવાનાં આ સ્વપ્નો માત્ર માનસિક અસ્વસ્થતામાથી પેદા થયેલ વાતવ્યાધિનું પરિણામ હોવા જોઈએ. છેવટે મને સસ્કૃતજ્ઞાન મેળવવાની સમર્થ ભૂમિકા મળી ગઈ

આવી સમર્થ ભૂમિકા પૂરી પાડનાર સ્વર્ગવાસી શાસ્ત્રવિશારદ વિજયધર્મસૂરીશ્વર અહીં અત્યારે જે હાજર છે તે શ્રીયુત છોટાલાલભાઈ વકીલ તે વખતે કાશી યશોવિજય પાઠશાળાના બે પૈકી એક મત્રી બીજા મંત્રી તેમના જ શિક્ષક શ્રીયુત રત્નચંદ માસ્તર હતા. શ્રીયુત છોટાલાલભાઈ તો તે વખતે હજી વકીલાતનો અભ્યાસ જ કરતા. તેમને પ્રમાણિકપણે એમ લાગેલું કે સુખલાલ કાશી જશે તો તેને વધારે મુસ્કેલી પડશે તેથી તે બન્ને મંત્રાઓ શરૂઆતમાં મને કાશી મોકલતા ખચકાયા પણ જ્યારે વિજયધર્મસૂરીશ્વરનો તેમના ઉપર મને તત્કાળ રવાના કરવાનો તાર આવ્યો ત્યારે તેઓ મને મોકલવામા સમત થયા અને મને પણ નિરાંત વળી એ કહેવાની ભાગ્યે જ જરૂર હોય કે હજી લગી હુ પત્રવ્યવહાર, ઉપરાંત વિજયધર્મસૂરીને કોઈ પણ રીતે જાણતો નહી મે મારી અંધકારાદ્વૈત વિશ્વની સ્થિતિ તો તેમને જણાવેલી જ ક્યા ઝાલાવાડ અને ક્યા સ્વતત્રતાસાધ્ય સસ્કૃતનુ શિક્ષણ, તેમ છતા વિજયધર્મસૂરીશ્વરને મને કાશી બોલાવવા માટે નિર્ણય કરવામા એક પણ ક્ષણની વાર ન લાગી. એને દૈવયોગ કહો કે ઉત્કટ જિજ્ઞાસાનુ પરિણામ કહો પણ મારે માટે અહીથી અભ્યાસની નવી સીમાનો પ્રારંભ થયો

અભ્યાસ તો કરવો હતો સસ્કૃત ભાષા અને તેમા લખાયેલ વિવિધ શાસ્ત્રોનો, જેનુ મને કાંઈ વિશેષ ભાન ન હતુ. પણ આ ભાષા અને એમા લખાયેલ શાસ્ત્રો એ બધુ સપ્રદાયાધીન હોવાથી એનું શિક્ષણ લેવા અને આપવામા અનેક ભયસ્થાનો રહેલા છે, તેમ જ અનેક વિરોધી બળો મનને મૂઝવી પણ નાખે છે આ સ્થિતિનુ ભાન હવે સવિશેષપણે થવા લાગ્યુ, ને ઇષ્ટ શિક્ષણ લેવા છતા અનેક જાતના હૃદયને હચમચાવી નાખે એવાં મંથનો પણ શરૂ થયાં.

મારા પ્રાથમિક શિક્ષણની વેળા જે સ્થાનકવાસી પંથની વાતને અન-

લાંબી થોડીક વિસ્તરેલી, તેણે ધાર્મિક માન્યતા વિષયક કેટલાક સચોટ સંસ્કારો મન ઉપર નાખેલા, જેમાંથી ત્રણેકનો નિર્દેશ કરવો અનિવાર્ય બને છે. મૂર્તિની માન્યતા બિલકુલ ધર્મવિરુદ્ધ છે અને તે જીવનને પાડનાર છે એ એક સસ્કાર, મોઢે મુહપત્તિ બાંધ્યા વિના ધર્મની પૂર્ણાહુતિ નથી થતી એ બીજો સસ્કાર, અને બત્રીશ આગમ બહાર બીજુ કાંઈ શાસ્ત્રીય જ્ઞાન રહેતુ જ નથી ભગવાન મહાવીર આદિ સર્વજ્ઞ પુરુષોએ જે કાંઈ કહ્યું છે તે બધું બત્રીસ આગમમાં જ આવી જાય છે અને તે આગમોનો અક્ષરે અક્ષર તેમણે જ ઉચ્ચારેલો છે એ ત્રીજો સસ્કાર કાશીમાં સસ્કૃત શિક્ષણ તો યથાસાધન ચાલતુ જ હતું, પણ હવે આ નવશિક્ષણની વેલીને બીજા પંથની વાડને અવલબી વિસ્તરવા અને વિકસવાનુ હતું. એ બીજો પથ એટલે શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક પરંપરા આ પરંપરાની ધાર્મિક માન્યતાઓ ઉપરના ત્રણે સંસ્કારોથી સાવ જુદી અને વિરુદ્ધ, તેથી કાશીના વાતાવરણમા મારા મને ભારે મંથન અનુભવ્યુ અને તે એટલે સુધી કે પહેલાંના જન્મ-સિદ્ધ બળવાન સસ્કારો અને આ નવ સંસ્કારો વચ્ચે શું સત્ય છે અને શુ અસત્ય છે એનો નિર્ણય ન થવાથી હુ તદ્દન અસ્વસ્થ થઈ જતો અને મારી વેદના કોઈની સમક્ષ કહેતો પણ નહીં. બહારથી હુ પણ પૂર્ણપણે કાશી યશોવિજય પાઠશાળાના શ્વેતાબર મૂર્તિપૂજક વાતાવરણને અનુસરતો, છતાં મનમા એ વિષે પૂરી બુદ્ધિપુરઃસર ખાતરી થઈ ન હતી પણ મન તો સત્યશોધનની દિશામા જ ગતિ કરતું તે માટે વાચવું જોઈએ તે વાચતો, વિચારવુ જોઈએ તે વિચારતો અને ક્યારેક ક્યારેક વિશ્વસ્ત મિત્રો સાથે ભીરુ મનથી, અપ્રકટ ચર્ચા પણ કરતો, પરતુ પરસ્પર વિરોધી એવા ઉપર સૂચિત ત્રણે સસ્કારોમાથી સત્ય તારવવા જેટલો શાસ્ત્રીય જ્ઞાનનો પરિપાક પણ નહીં થયેલો અને સ્વતત્રપણે નિર્ણય બાધવા જેટલો માનસિક વિકાસ પણ નહી થયેલો, કદાચ એમ પણ કહી શકાય કે એવો માનસિક વિકાસ થયેલ, પણ જન્મથી પડેલ અને બીજા દ્વારા સચોટપણે પોષાયેલ 'પરપ્ર-ત્યયનેય બુદ્ધિ'ના સસ્કારો જ એ વિકાસને યોગ્ય દિશામાં જતા રોકતા ગમે તેમ હો પણ આવો મથનકાળ બે–ત્રણ વર્ષથી વધારે ન ચાલ્યો મને એટલી તો પ્રતીતિ થઈ ગઈ કે જે ત્રણ સસ્કારો જન્મથી પડેલા છે તે બધુ ભ્રાન્ત છે, નિરાધાર છે અને એક અથવા બીજી ભૂલમાંથી જ પોષણ પામતા જાય છે મને ધીરે ધીરે કોઈની બાહ્ય પ્રેરણા વિના સ્વકીય ચિંતન અને શાસ્ત્રીય વાચનથી સાધારણપણે એમ સમજાતુ ગયુ કે મૂર્તિની માન્યતાને જીવનના ઉત્ક્રાન્તિક્રમમા અમુક સ્થાન છે જ અને એ પણ સમજાયુ કે

મોઢે મુહપત્તિના બંધનની માન્યતા એ માત્ર ઐકાન્તિક અને હઠધર્મ છે. એ પણ દીવા જેવું ભાસ્યું કે જૈન શાસ્ત્ર માત્ર બત્રીશ આગમમાં જ સમાઈ જાય છે તે વસ્તુ તદ્દન અજ્ઞાન અને ભ્રમનું પરિણામ છે.

એકવાર ક્યારેક મંદિરમાં નવપદની પૂજા ભણાવાતી શરૂઆતમાં તો હું પણ દેખાદેખીથી–ગતાનુગતિકતાને અનુસરીને ત્યાં બેઠેલો, પણ એ ભણાવાતી પૂજાનાં અર્થચિંતન અને તેમાં થયેલ ચિત્તનિમજ્જનને પરિણામે મારા મન ઉપર એક નવો ચમકારો થયો અને મારું કઠિન હૃદય પણ ભક્તિજન્ય અશ્રુપ્રવાહને ખાળી ન શક્યું આ વખતે મને ઉપાસ્ય સ્થૂલ આલંબનની અમુક ભૂમિકામાં સાર્થકતા અનુભવસિદ્ધ થઈ થોડા ઘણાં શાસ્ત્રો તો સાંભળ્યાં અને વાંચ્યાં જ, પણ અચાનક બનેલી બીજી એક ઘટનાએ ઉપાધ્યાય યશોવિજયજીના પ્રતિમાશતક નામના ગ્રંથને અવલોકવા મને પ્રેર્યો એનાં શાસ્ત્રીય સચોટ પૂરાવાઓને બાજુએ મૂકું તોય તેમાંની એક પ્રબળ યુક્તિએ મૂર્તિમાન્યતા વિરુદ્ધના મારા જન્મસિદ્ધ પુષ્ટ સંસ્કારનો ભાંગી ભૂકો કરી નાખ્યો, પણ મારી સંસ્કારપરિવર્તન પ્રક્રિયા હજી ચાલુ જ હતી

એક ઘટના એવી બની કે મને દિગંબર સંસ્થા નજીક રહેવાનો અવસર પ્રાપ્ત થયો દિગંબર સસ્થાના ત્યાગીવર્ગ પંડિતગણ અને વિશિષ્ટ શાસ્ત્રરાશિનો સવિશેષ પરિચય સાધવાની એ તક મેં આદરપૂર્વક વધાવી લીધી એને લીધે મારા અમુક સંસ્કારોમાં કાંઈક પરિવર્તન થયુ અને વિચારવા યોગ્ય એક નવક્ષેત્ર પણ મળ્યું. ત્યારબાદ અનેક પ્રસગે તેરાપંથ અને બીજા એવા જૈન ફાંટાઓ વિષે પણ વિચારવાનું પ્રાપ્ત થયુ. છેવટે હમણાં હમણા કાનજી મુનિના વલણ વિષે વિચારવાનો પ્રસંગ આવ્યો જૈન પરંપરાના જૂના અને નવા વિવિધ નાના મોટા ફાંટાઓ વિષે પણ તાત્ત્વિક દૃષ્ટિએ, ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ, સાહિત્ય કે શાસ્ત્રીય દૃષ્ટિએ મુક્ત મને નિબર્ધપણે લગભગ ૫૦ વર્ષ જેટલો ભાગ આજ લગીમાં વીત્યો છે દરમ્યાન બીજા અનેક દાર્શનિક પ્રવાહો અને ધર્મપંથો વિષે પણ જાણવાનું પ્રાપ્ત થયુ છે.

હું કાશીમા તો મુખ્યપણે ન્યાય, વૈશેષિક, સાખ્યયોગ અને પૂર્વ ઉત્તરમીમાસાના પ્રામાણિક અને પ્રાચીન શાસ્ત્રો જ ગુરુમુખથી પરંપરાગત રીતે શીખેલો. પણ એ અધ્યયન દરમ્યાન મારું જન્મપ્રાપ્ત અને જૈન સંસ્કાર ધરાવતું માનસ જૈન તત્ત્વજ્ઞાન અને ધર્મ વિષે પણ કાંઈ ને કાંઈ જાણવા, વિશેષ ઊહાપોહ કરવા ચૂકતુ નહિ. પણ હજી લગી ભારતીય સંપ્રદાયોમાના

એક પ્રમુખ સંપ્રદાય–બૌદ્ધધર્મ વિષે કાંઈ વિશેષ જાણેલું નહિ, જેનો અવસર આગળ જતાં આવ્યો અને તે વખતે મેં બૌદ્ધ પરંપરાની સ્થવિરમાર્ગ અને મહાયાન બન્ને શાખાઓના શાસ્ત્રોને સમજવા અને તેના મર્મને પકડવા ઠીક ઠીક મહેનત કરી. મારી ઇતિહાસ અને તુલનાની દૃષ્ટિ અમુક અંશે વિકસતી જતી હતી, પણ તેને વધારે વેગ તો ત્યારે જ મળ્યો કે, જ્યારે હું માત્ર અધ્યાપન અને વાચનના મારા પ્રિય કામ સાથે સાથે લેખનનું કામ કરવા લાગ્યો લખવું તો પ્રમાણભૂત જ લખવું અને બને ત્યાં લગી પ્રાચીન વારસામાં કાંઈક નવો ફાળો આપવો એવી ઉગ્ર વૃત્તિમાથી ઇતિહાસ અને તુલનાદૃષ્ટિને વધારે વેગ મળ્યો એ વેગમાથી વધારે ને વધારે નિર્ભયતા અને તટસ્થતા પણ આવતી ગઈ. હવે જૈન પરંપરા અને તેની શાસ્ત્રીય કે વ્યાવહારિક દરેક બાજુ વિષે હું યથાશક્તિ નવેસર વિચારતો થયો અને દરેક ફાંટા વિષેના મારા પહેલાના સસ્કારો નવુ રૂપાનર પામવા લાગ્યા, તેમ જ વધારે સચોટ અને સ્પષ્ટ પણ થતા ગયા. આવાં રૂપાતરની પ્રક્રિયામા માનસિક મર્યાદાઓ ઉપરાંત સામાજિક અને સાંપ્રદાયિક ઘણી મર્યાદાઓ આડે આવતી જે વસ્તુ આગળ જતા સાવ સહેલી લાગી, તે જ સામાજિક અને સાંપ્રદાયિક દબાણો કે ભયસ્થાનોને લીધે શરૂઆતમાં બહુ અઘરી લાગેલી. મને છેવટે અનુભવ થયો કે મૃતક જેવો ફેંકી દેવાને લાયક સંસ્કાર પણ છૂટતાં કેટલી શક્તિનો ભોગ લે છે ? હું ઘણીવાર પાછો પડ્યો છુ, પણ વિચાર કરતા છેવટે જે સત્ય દેખાય તેને સ્વીકારવામાં ખુલ્લો એકરાર કરવામાં કદી હાર્યો હોઉં એમ યાદ નથી. એનુ કારણ વિચારતા મને એમ લાગે છે કે અણીને પ્રસગે ગમે તેવી લાગવગ, ગમે તેવી પ્રતિષ્ઠા કે ગમે તેવો લાભ જતો કરવાનુ જે માનસિક સાહસ પ્રગટ્યું તેણે જ ભારે મદદ કરી મેં કેટલાય પહેલાના શિષ્યો અને મિત્રો ગુમાવ્યા છે, કેટલાય ધનિકોની સહાનુભૂતિ ગુમાવી છે, એટલુ જ નહિ પણ કેટલાયની ખફામરજી અને કેટલાયનો વિરોધ પણ વહોર્યો છે, પણ તે હમને મોઢે–મને એમાં લેશ પણ દુઃખ થયું નથી. આવે વખતે મારો પોતાનો જ એ અનુભવ મદદગાર થયો કે માણસ નવા નવા પ્રકાશમા ન વિચરે અને નવી નવી પ્રાપ્ત સામગ્રીને આધારે નિર્ભયપણે વિચાર ન કરે તો એનું માનસ કેવુ જડ થઈ જાય છે, કેવુ દુરાગ્રહી થઈ જાય છે અને તે સત્યની વાત કરવા છતા સત્યથી કેવુ પરાગમુખ બની ગતિ કરે છે ! લાડી ગમના ધગ-વનાર કેટલાય સાધુઓ, સાધ્વીઓ અને આચાર્યો સુદ્ધાંની હૂંફ મે એ જ કારણે જતી કરી છે પણ એમા મેં કશું ગુમાવ્યું હોય એમ આજે પણ

નથી લાગતુ, ઊલટું ધન્યતા અનુભવુ છુ એમ ધારીને કે હુ જાણી જોઇને લોભ, લાલચ, દબાણ કે અનુસરણને વશ થઈ અવિદ્યા કે અસત્યને રસ્તે ન ગયો એ કાંઈ નાનો સૂનો લાભ છે ?

મારી જીવનદષ્ટિ ઘડવામાં અને સત્યશોધનની રુચિ તીવ્ર બનાવવામાં શાસ્ત્રીય વ્યાસંગ ઉપરાંત બીજાં પણ કેટલાંક બળોએ કામ કર્યું છે એ બળો એટલે સંતમહાત્માનો સીધો સમાગમ. જ્યારથી ગાંધીજી હિન્દુસ્તાનમાં આવી સ્થિર થયા ત્યારથી જ તેમને મળવામાં, તેમની સાથે ચર્ચા કરવામાં અને બને ત્યારે થોડો પણ તેમનો સહવાસ કરવામાં મને પૂરો રસ હતો. તેને લીધે ઘણા પૂર્વગ્રહો બદલાયા અને ઘણા પૂર્વગ્રહો વધારે સંશોધિત થયા શ્રદ્ધેય મશરૂવાલાના જાતસમાગમ અને પ્રત્યક્ષ ચર્ચા તેમ જ તેમના લખાણોના વાચને પણ વિચારનુ નવુ પ્રસ્થાન પૂરું પાડ્યુ પૂજ્ય નાથજી જેવા સમર્થ યોગાભ્યાસી સાથેની પ્રત્યક્ષ વાતચીતો અને ચર્ચાઓએ પણ ભ્રમના ઘણાં જાળાં તોડ્યાં આ રીતે શાસ્ત્રીય વાચન, ચિંતન, સત્ય-જિજ્ઞાસાની નિષ્ઠામા પરિણમ્યુ. અલબત્ત, મારે કબૂલ કરવુ જોઈએ કે મારી આ નિષ્ઠા હજી અનુભવમા ઊતરી નથી માત્ર વિચાર અને નિર્ણય પૂરતી જ છે અને તેથી તે પરોક્ષ છે એમ જ કહી શકાય પણ જ્યારે હુ જોઉ છુ કે સત્યસંશોધનની પરોક્ષ નિષ્ઠા પણ માણસના મનને કેટલું અજવાળે છે અને તેને કેટલુ બળ અર્પે છે, ત્યારે અંધકારદૂતનુ મારું વિશ્વ જુદુ રૂપ ધારણ કરે છે

ઘણાં વર્ષો પહેલેથી મારા નિકટના ગંભીર વિદ્વાનો મને હમેશા એમ જ કહેતા આવ્યા છે કે તમે જૈન શાસ્ત્રના અનુવાદ, વિવેચન અને સંપાદનો પાછળ શા માટે પડયા છો ? છેવટે તો જૈન સમાજ ખાબોચિયા જેટલો, તેમાય સમજનાર અને કદરદાન કેટલો ? વળી તેઓ એમ પણ કહેતા આવ્યા છે કે જો તમે વૈદિક પરંપરાના વિવિધ દર્શનોનો અને બૌદ્ધ દર્શનનો જિજ્ઞાસુભાવે પ્રામાણિક અભ્યાસ કર્યો છે તો એ દર્શનો વિષે મુખ્યપણે કામ કેમ નથી કરતા ? એક તો એનુ ક્ષેત્ર વિશાળ અને બીજુ તમારો શ્રમ પણ વધારે સાર્થક બને મિત્રોની એ વાત તદ્દન સાચી છે એમ હું પહેલેથી જ જાણું છું વૈદિક દર્શનો અને બૌદ્ધ દર્શન વિષે હુ શાસ્ત્રીયકામ કરુ તો કાર્યપ્રદેશ વિસ્તારવા ઉપરાંત યશકીર્તિ અને અર્થલાભ પણ વધવાનો એ વિષે મને કદી સંદેહ ન હતો અને હજી પણ નથી, છતા મને હમેશા એમ જ થયા કર્યું છે કે હું જે પરંપરામા જન્મ્યો છુ તેમા કામ કરવાની મારી

શક્તિ હોય અને તેવો અવકાશ પણ હોય તો મારે બીજા દેખીતા લાભોને ભોગે પણ એ જ પરંપરાનું કામ મુખ્યપણે કરવું જોઈએ. છેવટે માનવ-સમાજ તો એક જ છે જૈન સમાજ એ મોટા સમાજનું નાનું પણ અગત્યનું અંગ છે તેની સાહિત્ય અને સંસ્કાર સમૃદ્ધિ પ્રાચીન હોવા ઉપરાંત ઉપયોગી અને મૂલ્યવતી પણ છે, તો પછી એનું સંશોધન કાં ન કરવું? છેવટે તો જો સંશોધન સાચું અને વ્યાપક હશે તો બીજી દાર્શનિક પરંપરાઓના સંશોધનમાં પણ ઉપયોગી થશે આવી શ્રદ્ધાથી હું છેલ્લાં ત્રીશ વર્ષ થયા અવિચ્છિન્નપણે જૈનપરંપરાના શાસ્ત્રીય અને વ્યાવહારિક ક્ષેત્રને અલ્પાંશે પણ ખેડી રહ્યો છું એ ખેડાણની અસર જૈન સમાજના રૂઢ વર્ગમાં ગમે તેટલી ઊલટી થઈ હોય છતાં વાસ્તવિક રીતે એણે જૈન પરંપરાના વિચાર-પ્રદેશને પણ ઉન્નત કરવામાં કે પરિમાર્જિત કરવામાં અલ્પાંશે પણ ફાળો આપ્યો છે એમ હું અનુભવથી કહું તો કોઈ અત્યુક્તિ કે ગર્વોક્તિ ન સમજે, કેમકે છેવટે તો મારી પામરતા અને અલ્પતાનું મને જેટલું ભાન છે તેટલું બીજાને ભાગ્યે જ હશે આટલું કથન પણ એટલા માટે કરું છું કે તટસ્થ અને નિર્ભય વૃત્તિનું પરિણામ એકંદર કેવું ઇષ્ટ આવે છે તે સમજી શકાય

મેં સામાજિક અને રાષ્ટ્રીય દૃષ્ટિએ જે વિચારો કર્યાં છે તે કરતાં ધર્મ અને તત્ત્વજ્ઞાનની વ્યાપક દૃષ્ટિએ કાંઈક વધારે વિચારો કર્યાં છે. અથવા એમ કહો કે એવા વિચારો મારે કરવા પડ્યા છે એને લીધે મેં જૈન-જૈનેતર સમાજમાં ચાલતી અનેક સંસ્થાઓમાં અપાતા ધર્મ તત્ત્વજ્ઞાન વિષયક શિક્ષણ અને તેના પાઠ્યક્રમનું થોડું પરિશીલન પણ કર્યું છે. મને અનુભવે લાગ્યું છે કે આપણે ત્યાં અપાતું ધર્મ અને તત્ત્વજ્ઞાનનું શિક્ષણ બહુ જ સંકુચિત દૃષ્ટિથી તેમ જ અયોગ્ય હાથે-અયોગ્ય રીતે અપાય છે પરિણામે એવું શિક્ષણ લેનાર, આગળ જતાં જો તેજસ્વી હોય તો ધર્મ અને તત્ત્વજ્ઞાનના શિક્ષણ પ્રત્યે અશ્રદ્ધાળુ બની જાય છે અને જો તે મધ્યમ શક્તિનો અગર પ્રથમાધિકારી હોય તો સાવ જડ બની જાય છે તે પોતાનું સત્ય બીજાને બુદ્ધિપૂર્વક સમજાવી નથી શકતો અને બીજાનું ગમે તેટલું સારું તેમ જ સચોટ વક્તવ્ય હોય તોપણ તેને કાં તો સમજી જ નથી શકતો અગર તે સમજવાની પરવા નથી કરતો તેથી જ્યાં દેખો ત્યાં ધર્મ અને તત્ત્વજ્ઞાનનાં શિક્ષણને પરિણામે નિસ્તેજ માસ્તરોનું જ જૂથ નજરે પડે છે. અધ્યયન, વિચાર અને વિવેકની વધારેમાં વધારે સામગ્રીના આ જમાનામાં પણ જૈન સમાજના ધર્મ કે તત્ત્વજ્ઞાનના શિક્ષકો સાવ તેજોહીન જ દેખાય છે, અને

પૈસાદાર કે સત્તાધારી કે મદારીવૃત્તિના ગુરુવર્ગનાં રમકડાં માત્ર બની જાય છે. તેમનુ ધર્મ અને તત્ત્વજ્ઞાનનું શિક્ષણ તેમને જ કેદમા પૂરે છે. અને સમાજ તો જ્યાં હતો ત્યાં જ રહે છે જૂની ઢબની જે પાઠશાળાઓ ધર્મ-શિક્ષકને તૈયાર કરે છે અગર જે પાઠશાળાઓ એવા ધર્મશિક્ષકોને આશ્રય આપે છે, તેમ જ જે નવી ઢબનાં ગુરુકુળો, બ્રહ્મચર્યાશ્રમો અને છાત્રાલયો કે કૉલેજો આ દિશામાં કામ કરે છે તે બધાંની એકંદર ઓછેવધત્તે અંશે આ જ સ્થિતિ છે તેમાં શીખનાર વિદ્યાર્થી હોય કે શીખવનાર પંડિત. માસ્તર કે અધ્યાપક હોય, તે બધા જાણે પરવશપણે અને અરુચિથી જ એ શીખે-શિખવે છે એમ ગમે તે જોનાર જોઈ શકશે.

એક તરફ ધર્મ અને તત્ત્વજ્ઞાનના શિક્ષણ પ્રત્યેનો અનુરાગ આપણને હાડોહાડ વ્યાપેલ છે, અને બીજી બાજુ તેવુ શિક્ષણ લેનાર કે દેનાર પ્રત્યે આપણી જોઈએ તેવી બહુમાનવૃત્તિ નથી એટલુ જ નહીં પણ મોટે ભાગે તો આવું શિક્ષણ લેનાર કે દેનારને આપણે તુચ્છ દૃષ્ટિથી જોઈએ છીએ. આનો પડઘો ધર્મ અને તત્ત્વજ્ઞાનનુ શિક્ષણ લેનાર વિદ્યાર્થી અને દેનાર શિક્ષકો ઉપર પડે છે. તેઓ એક અથવા બીજી લાચારીને લીધે તેમા પડેલ હોય છે પણ તેઓ પોતાના મનને ચોવીસે કલાક કહ્યા કરે છે કે તુ આ ચક્રમાથી મુક્ત થા ! ધર્મ તત્ત્વજ્ઞાનના શિક્ષણમા જેમણે અનેક વર્ષો ગાળ્યાં હોય એવા અનેક તેજસ્વીઓને મેં જોયા છે કે જે હમેશને માટે તે ક્ષેત્ર છોડી દે છે. એટલું જ નહી પણ પોતાની સતતિ કે પોતાના લાગતા-વળગતા કોઈને એ રસ્તે જતા તદ્દન રોકે છે આનુ મૂળ, ધર્મ અને તત્ત્વજ્ઞાનનું શિક્ષણ લેનાર-દેનાર પ્રત્યેની આપણી તુચ્છદૃષ્ટિમા રહેલુ છે.

મે એકવાર એક સમર્થ સસ્થા ચલાવનાર બહેનને કહેલુ કે તમે ધર્મ-શિક્ષણનો જેટલો આગ્રહ રાખો છો, ઓછામાં ઓછુ તેટલુ બહુમાન તો ધર્મશિક્ષક પ્રત્યે રાખવુ જ ઘટે જો તમે ધર્મશિક્ષકને હાર્દિક આદરથી નહી જોતા હો અગર ન જોઈ શકો તો ખરી રીતે એમાં ધર્મશિક્ષણની જ હત્યા છે. જૂની પ્રણાલીમા દોષ જોનાર નવા શિક્ષિત ગણાતા વર્ગે પોતાને આશ્રયે ચાલતાં વિદ્યાલયો કે છાત્રાલયોમા પણ ધર્મ કે તત્ત્વજ્ઞાનના શિક્ષણ વિષે કોઈ ધ્યાન ખેંચે એવો સુધારો કર્યો નથી એ એક દુર્દૈવ છે ઘણીવાર એમ જ લાગે છે કે નવશિક્ષણ પામેલ વકીલ, સોલિસિટર, બૅરિસ્ટર ડૉક્ટર કે વ્યાપારી-એ બધા નવી સંસ્થાઓમાં ધર્મ અને તત્ત્વજ્ઞાનનું શિક્ષણ આપે-અપાવે છે તે માત્ર તીર્થપુરોહિતની વૃત્તિ જેવું છે. એવા પુરોહિતો

જે તીર્થમાં રહે તેની પવિત્રતા અને મહત્તાનાં ગુણગાન કરે છે તે ફક્ત યાત્રાળુઓની શ્રદ્ધા સતેજ કરી તે દ્વારા ધર્મ મેળવવા; કેમકે પુરોહિતો પોતે જ એ તીર્થોની પવિત્રતા ભાગ્યે જ સાચવતા હોય છે. એ જ રીતે ઘણીવાર કહેવાતી નવી સંસ્થાના સૂત્રધારો પણ, ભલે ધર્મ અને તત્ત્વજ્ઞાનનાં શિક્ષણના નામે ધર્મ પ્રત્યે શ્રદ્ધા ધરાવનાર ધનવાનોની શ્રદ્ધાને સંસ્થાના હિતમા હોવાની સદ્‌વૃત્તિથી પ્રેરાયા હોય, છતાંય તેઓ છેવટે ધર્મ અને તત્ત્વજ્ઞાનના શિક્ષણમા મહત્ત્વના કોઈ ફેરફાર કરી શકતા નથી, અને જૂની પાઠશાળાઓની નવી આવૃત્તિ ઊભી કરતા જ દેખાય છે વિશેષતા એ હોય છે કે જૂની પાઠશાળાના ગામડિયા કે ફૂલી વિદ્યાર્થીઓ બંડખોર નથી હોતા જ્યારે કોલેજ અને યુનિવર્સિટીના છાત્રો પૂરા બડખોર હોવાથી વિદ્યાલયો કે છાત્રાલયોના સચાલકોની પૂરેપૂરી ઠેકડી કરે છે, અને એ રીતે ધર્મ તેમ જ તત્ત્વજ્ઞાનની વગોવણી થાય છે તેથી આ પ્રશ્ન નવેસરથી તત્કાળ વિચારણા માગે છે

પ્રાચીન પુસ્તકોના પ્રકાશન અને સમ્પાદનનો નાદ લાગ્યો છે તે એક રીતે સારી જ વસ્તુ છે પણ દુર્દૈવે એમ બન્યુ છે કે આ ક્ષેત્રમા કામ કરનાર મોટો ગુરુવર્ગ કે પંડિતવર્ગ એ દ્વારા સમાજ કે જ્ઞાનની કોઈ ઉન્નત ભૂમિકા સાધવાને બદલે પોતપોતાની નામના, પોતપોતાની જુદી પેઢી અને પોતપોતાના જુદા ચોકાને પોષવા ખાતર જ કચરાપટ્ટી જેવા પ્રકાશન કે સમ્પાદનકાર્યમા સમાજની અને પોતાની સમગ્ર શક્તિનો અપવ્યય કરે છે. જ્ઞાનમાં કે વિચારમા નવો ફાળો આપવાની વાત તો બાજુએ રહી, પણ ઘણીવાર એવાં ભાષાન્તરો અને નવી ટીકાઓ રચાતા–છપાતા દેખાય છે કે જ્યાં મૂળને સમજવા માટે એક ગુરુની જરૂર હોય ત્યા તેની સસ્કૃત ટીકા સમજવા અનેક ગુરુની જરૂર પડે જુદા જુદા ચોકાની સ્પર્ધા પણ એવી છે કે એક સાધુ અણસમજુ શ્રદ્ધાળુ શ્રાવકને અમુક ગ્રથનુ મહત્ત્વ ઠસાવી તેની મદદ લે તો બીજો તેથી ય ઊતરતા ગ્રથનુ તેથી ય વધારે મહત્ત્વ પોતાના અણસમજુ શ્રાવકને સમજાવી તેની પાસેથી વધારે મદદ લે. આમ જ્યા દેખો ત્યાં, પ્રકાશન સંસ્થાની અવિવેકી હરીફાઈને લીધે નથી યોગ્ય સાહિત્યનુ યોગ્ય રીતે સમ્પાદન થતુ, નથી જરૂરી નવુ તત્ત્વ દાખલ થતુ કે નથી પિષ્ટપેષણ અટકતુ

ભારતીય દર્શન સાહિત્યની એક વિશેષતા જૈન સાહિત્યમાં પણ આવી છે; પરંતુ તે વિશેષતા ગુણરૂપે પરિણમવા કરતાં દોષરૂપે જ વધારે પરિણમી

છે. એ વિશેષતા એટલે નાના કે મોટા ગમે તે મુદ્દા પરત્વે મતભેદ હોય ત્યાં બીજાનું ખંડન અને પોતાનું મંડન કરવાની શૈલી આ શૈલી માત્ર વાદરૂપ ન રહેતાં વિવાદમાં પરિણામ પામી છે. એક તો જૈન સમાજ નાનો, તેમાં ત્યાગી કે પંડિતવર્ગ તેથીયે નાનો, તેમાં અનેક ફિરકા અને ગચ્છભેદો વચ્ચે અરસપરસ નજીવા મતભેદમાંથી મોટી તકરારો અને વિવાદો ઊભા થાય એટલે એવે પ્રસંગે શિક્ષણ વખતે વારસામાં મળેલ ખંડનમંડનની શૈલી ઉગ્ર વિવાદરૂપે અને ઘણીવાર મૂર્ખાની સૂચક ચર્ચારૂપે બહાર આવે છે જૈન પંડિતો અને જૈન ત્યાગીઓને બહુધા અંદરોઅંદર જ વાદવિવાદમાં ઊતરવું પડે છે બીજા બળવાન સમ્પ્રદાય કે દર્શનોના વિદ્વાનો સમક્ષ તેઓ ભલે ચૂપકીદી પકડે, છતાં ઘણીવાર તેઓ અંદરોઅંદર આખડે છે એવે વખતે વારસામાં મળેલ અનેકાન્તનો પ્રાણભૂત સમન્વય સિદ્ધાંત બાજુએ રહી જાય છે અને સામસામી છાવણીઓ રચાય છે સ્થાનકવાસી અને મૂર્તિપૂજક, દિગંબર અને શ્વેતાંબર, તેરાપંથી અને સ્થાનકવાસી એ જ પક્ષો અંદરોઅંદર આખડતા હોય તોય બહુ ન હતું, પણ હવે તો આ રોગ એટલે સુધી વધ્યો છે કે એક જ ફિરકાના અને એક જ ગચ્છના બે જુદા જુદા ગુરુ ધરાવનાર પક્ષો પણ તિથિભેદ જેવી નજીવી બાબતમાં મહાયુદ્ધના મોરચા માંડે છે, અને સમાજમાં અલ્પાંશે જીવતું રહેલ સૌમનસ્ય અને ઐક્ય ધર્મરક્ષાને બહાને વેડફી નાખે છે માત્ર પંડિતો કે માત્ર સાધુઓ અંદરોઅંદર લડી મરતા હોત તો બહુ કહેવાપણું પણ ન રહેત અહીં બન્ને પક્ષકારો શ્રાવકગણને પણ સડોવે છે શ્રાવકો પણ એટલા બધા શાણા અને ઉદાર છે કે પોતાનું સમગ્ર શાણપણ અને ઔદાર્ય હિટલર તેમ જ સ્ટેલિનને ચરણે ધરી દે છે મને તો એ જ નથી સમજાતું કે જેઓ મહાવ્રતી અને મહાશાસ્ત્રધાર કે મહાવક્તા હોય તેઓને તેમનો અહિંસા અને સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાંત આવા વિષમ પ્રસંગે સૂઝતો કેમ નહિ હોય? અગર તેમને સહાયક થતો કેમ નહિ હોય? જો ભગવાનના અહિંસા અને અનેકાન્તના સિદ્ધાંતનું સામાજિક જીવનમાં આવું દેવાળું જ કાઢવાનું હોય તો આપણે બીજા સમક્ષ કયે મોઢે તેનું મહત્ત્વ બતાવી શકીશું? એ જરા વિચારો અને જો આપણે આ રીતે વૈમનસ્ય અને તકરારનું વિષપાન કરતા રહ્યા તેમ જ એવી તકરારના મોવડીઓને માન આપતા રહ્યા તો શું આપણે એવી આશા રાખી શકીએ કે ક્યારેક પણ જૈન સમાજના જુદા જુદા ફિરકાઓ સર્વમાન્ય સામાન્ય સિદ્ધાંત ઉપર અગર વિષયો એક નકશા ઉપર એકત્ર થવાના? આજ સુધી ગમે તેમ ચાલ્યું અને નભ્યું હોય, પણ હવે આ સ્થિતિ એક

ક્ષણ નભાવી લેવા જેવી નથી મને આવા ક્ષુદ્ર મતભેદની મહા તકરારોનું મૂળ કારણ વિચારતાં એ લાગ્યું છે કે ધર્મક્ષેત્રને કુરુક્ષેત્ર બનાવનાર પડિતો અને ત્યાગીઓની સામે કોઈ મહાન રચનાત્મક આદર્શ નથી, એટલે તેમની ફાજલ પડેલી શક્તિઓ વારસામાં મળેલ ખંડનશૈલીનો આશ્રય લઈ બીજા સામે બાથ ભીડવાની અશક્તિને લીધે અદરોઅદર અફળાય છે અને સમાજને છિન્નભિન્ન કરી નાખે છે આના નિવારણનો ઉપાય એ જ છે કે તેવા વિદ્વાન ગણાતા પડિતો અને ત્યાગીઓ સાહિત્ય, સમાજ કે રાષ્ટ્રના કોઈ પણ નવપ્રદેશમાં પોતાનો રચનાત્મક ફાળો આપે જ્યારે તેઓ કાંઈ પણ નવસર્જન કરવા પ્રેરાયા હશે ત્યારે તેમને નકામા બોલવા, લખવા કે તકરાર કરવા જેટલી ફુરસદ જ નહિ રહે જો સમયસર કોઈ નહિ ચેતે તો થોડા જ વખતમા તેવા વર્ગનો અને તે વર્ગના આશ્રયભૂત શાસ્ત્રનો કોઈ સમજદાર ભાવ પણ નહિ પૂછે

ઉપરની ચર્ચા સાભળનાર એક પ્રશ્ન જરૂર કરી શકે કે સમાજને નવ-સર્જનને યોગ્ય નવો ફાળો આપ્યાની સર્વમાન્ય કસોટી શી ?

મારો ઉત્તર એ છે કે શાસ્ત્ર, શિક્ષણ, સમાજ કે રાષ્ટ્ર વગેરે કોઈ પણ ક્ષેત્રમા કરાયેલ સર્જકપ્રયત્નનુ મૂલ્ય જો જૈનેતર સમાજમા અંકાય અને જૈનેતર લોકો માટે પણ અનુકરણીય બને તો જરૂર સમજવુ કે જૈનોનું એ નવસર્જન સમાજને યુગાનુરૂપ ફાળો છે

મે પ્રારંભમાં જ કહ્યુ છે કે આ ચદ્રક-અર્પણ વૈયક્તિક નથી જો એનો પ્રેરકહેતુ શાસ્ત્ર ઉપાસના અને સત્યસશોધનવૃત્તિ હોય તો તે ચદ્રક પણ છેવટે તેને જ ફાળે જવો જોઈએ હુ અત્યારે વ્યક્તિગત રીતે સ્વીકારું તોય તે પચે તો એવા પ્રેરક હેતુને જ, તેથી આ ચદ્રક હુ જૈન સસ્કૃતિ-સંશોધક મડળને ભેટ આપુ છુ, કેમકે એ મડળ પહેલેથી જ તેવા સત્ય-સશોધન વૃત્તિના આધાર ઉપર રચાયુ છે અને તે જ દિશામા નિષ્કામપણે કામ કરી રહ્યું છે, જેનો હુ સાક્ષી છુ એ મડળ કરતા વધારે નિર્ભયપણે અને વધારે નિષ્ઠા સાથે કોઈ બીજી સસ્થા જૈન સમાજમા ક્યાય કામ કરી રહી હોય તો તે હુ નથી જાણતો વળી ઉક્ત મંડળનો હુ એક વિનમ્ર સભ્ય છુ અને તેનો સક્રિય કાર્યકર્તા પણ છુ, તેથી જે નિષ્ઠાને લીધે આ ચંદ્રક અર્પવામા આવે છે તે જ નિષ્ઠા સેવનાર જૈન મંડળને આ ચંદ્રક એની ઈચ્છા પ્રમાણે ઉપયોગ કરવા માટે સોપી દઉ તો હુ ધારું છુ કે તમે બધા પ્રસન્ન થશો જ.

હું છેવટે જેઓ જૈન સંસ્કૃતિ મંડળ વિષે અને તેની અત્યારલગીની પ્રવૃત્તિ વિષે ન જાણતા હોય તેમનું ધ્યાન એ તરફ ખેંચું છું અને માગી લઉં છું કે જેઓ જૈન સંસ્કૃતિના પુનઃ સંશોધનમાં થોડો પણ રસ ધરાવતા હોય તેઓ એ મંડળના સભ્ય બને અને તેના સાહિત્યને વાંચે-વિચારે તેમ જ તેનું ધોરણ સાચવી તેમા પોતાનો ફાળો આપે

અહીં જે ભાઈ-બહેનો ઉપસ્થિત છે તેમને મારી એક વિનતિ છે, તે એ કે જેઓની શક્તિ અને રુચિ હોય તેઓ મારાં ગુજરાતી કે હિંદી લખાણો વાંચે. હું એ નથી ઇચ્છતો કે કોઈ તેને અંધ અનુગામી બનીને જ વાંચે. મારી આકાંક્ષા તો હમેશા એ રહી છે કે વાચનાર વાંચે તે સમાલોચક દૃષ્ટિએ વાંચે. એવા વાચનમાંથી જ વાચક અને લેખકની ભૂમિકા ઉન્નત થાય છે અને સમાજનું ધોરણ પણ ઊંચું આવે છે. અલબત્ત, સમાલોચનામાં પણ વિવેક અને સમત્વની તો જરૂર હોય જ છે છતાં સમાલોચનાનો મુખ્ય સૂર સાંભળેલ-વાંચેલમાંથી અસંગત કે ખોટી વસ્તુઓને તારવી દૂર કરવા-કરાવવાનો હોય છે. મારા લખાણનો મોટો ભાગ જૈન પરંપરાને જ સ્પર્શ કરે છે, તેથી જૈનો માટે એ જેટલે અંશે અનુકૂળ આવે તેટલે અંશે જૈનેતરોને કદાચ અનુકૂળ ન આવે, અગર સમજવામા સરળ ન પડે; છતા હું પોતે એમ માનનારો છું કે જ્ઞાન અને વિચારની ભૂમિકામાં આ કે તે પંથનો ચોકો ન જ રહેવો જોઈએ જૈનો જો એમ માનીને વર્તે કે જૈનેતર સાહિત્ય કે શાસ્ત્ર વાંચવા-ચિંતવવાથી શો ફાયદો, તો તેઓ પોતે પોતાની જૈનપરંપરાને પણ કદી પૂરો ન્યાય આપી નહીં શકે. એ જ રીતે જૈનેતરો પણ પોતાની આસપાસની જૈન પરંપરા વિષે વાસ્તવિકપણે ન જાણે તો તેઓની જ્ઞાનસીમા પણ એકદેશીય અને ભ્રાન્ત રહેવાની. વળી જેમ વ્યવહારના દરેક ક્ષેત્રમા જૈન કે જૈનેતર એ ભેદ નથી ચાલતો તેમ તત્ત્વજ્ઞાન અને ધર્મના વિચાર-ક્ષેત્રમાં પણ એવો ભેદ અસ્થાને છે. મેં પોતે તો આખા અભ્યાસકાળ દરમ્યાન વૈદિક, જરથુસ્ત, ઇસ્લામ અને ખ્રિસ્તી આદિ પરંપરાઓના અભ્યાસ પ્રત્યે એટલા જ હાર્દિક આદરથી ધ્યાન આપ્યું છે, જેટલા આદરથી જૈન પરંપરાના અભ્યાસ પ્રત્યે. પરિણામે મને બધામા પરિભાષાભેદ અને બીજા એવા સ્થૂળભેદ સિવાય વાસ્તવિક જીવનસ્પર્શી ભેદ જેવું કાંઈ દેખાયું નથી. એથી તો અભ્યાસમા રસ પોષાયો છે ને જ્ઞાનની પિપાસા સતેજ બની છે. હું ધારું છું કે આ ન્યાય સૌને લાગુ પડી શકે છે. મેં માત્ર જૈનપરંપરાને લઈ લખ્યું છે તે તો એ દૃષ્ટિથી કે તેનું સાહિત્ય અને તેની વિચારપ્રણાલિકા એકદેશીય મટી ગુણાનુરૂપ વ્યાપક બને એટલે

એમાંથી જૈનેતરોને પણ બહુ નહીં તો થોડુંક પણ વિચારવા જેવુ મળશે જ. મેં જ્યારે જ્યારે સમાજની બાબતમાં લખ્યુ છે ત્યારે મુખ્યપણે જૈન સમાજને જ લક્ષમાં રાખ્યો છે, તેનુ કારણ એ નથી કે બીજા સમાજ કરતાં જૈન સમાજને હુ ચડિયાતો માનુ છુ પણ તેનુ કારણ માત્ર એટલુ જ છે, કે હુ મારું વક્તવ્ય જૈન સમાજને સમજાવી શકુ ને કેટલીક ત્રુટીઓ તરફ તેનું ધ્યાન ખેંચી શકું તો તે દ્વારા મારી અલ્પશક્તિનો ઉપયોગ બીજા સમાજો માટે પણ સુકર બને આ જ કારણથી હુ જૈન–જૈનેતર બધાને સમાનભાવે વાંચવા–વિચારવા વિનવુ છુ *

—સમયધર્મ, વર્ષ ૧૬, અંક ૨૦–૨૧–૨૨ (વિ. સં. ૨૦૦૩)

---

* શ્રી વિજયધર્મસૂરિ જૈન સાહિત્ય સુવર્ણચંદ્રકના સ્વીકાર નિમિત્તે, શ્રી વિજયધર્મસૂરિજીના સ્વર્ગવાસની પચીસમી જયંતી પ્રસંગે, ભાવનગરમા તા. ૨૯–૯–૪૭ના રોજ આપેલ ભાષણ

હું એટલુ તો જાણુ છુ કે બીજા ગમે તેટલા પ્રમાદો અને શિથિલતા હોય, પણ જિજ્ઞાસા પોષવા અને યથાશક્તિ વિવિધ વિદ્યાઓનુ પરિશીલન કરવામાં પ્રમાદનો ભાગ ઓછામાં ઓછો છે. તેથી કહી શકાય કે, જીવનનો પ્રેરક હેતુ જિજ્ઞાસાપૂર્તિ અને વિદ્યાસંપાદન રહ્યો છે. તેણે જ બધુ કરાવ્યુ છે. એને જ લીધે ધર્મ, સમાજ અને માનવતાનાં મૂલ્યાંકનમાં ફેર પડતો ગયો છે, અને જે પ્રથમ ઉપાદેય લાગતુ તે સકુચિત અને હેય પણ જણાતું ગયુ છે તેથી જ સપ્રદાય, પથ, જાતિ, શાસ્ત્ર આદિ અનેક વિષયો પરત્વે સ્વતંત્ર વિચાર કરવા પ્રેરાયો છુ, અને કેટલીક ધારણાઓ પણ સ્થિર અને વિશદ થઈ છે. આ જ એક અલ્પાશે પણ સતોષનો વિષય છે.

ટૂંકમાં, જો લખવાની વૃત્તિ ટાળી શકાય તેમ ન હોય તો, આ જ સૂત્રને ધ્યાનમાં રાખી, ઉપયોગી હકીકતો લઈ શકાય મેં તો ઘણુ કરી ૧૯૨૦ આસપાસ સુધી જ કાંઈક ચિતરામણ કર્યું છે, પછીનુ તો છે જ નહીં.

કાકાએ* મને ઘણા વર્ષોથી કઈક લખવા આગ્રહ કર્યો છે. હમણાં તેઓ આવેલ. ફરી માગણી કરી કહે કે 'હુ બહુ હકીકતો નહીં પણ તમે તત્ત્વચિંતક હોવાથી જીવનનુ તારણ લખો એમ ઇચ્છુ છુ.' એમણે 'ધર્માનુભવની જીવનયાત્રા' 'સસ્કૃતિ'મા લખી છે. તે એમનો નમૂનો, પણ મેં તેમની સાથે ફરી એ વિશે ચર્ચા કરી દૃષ્ટિબિંદુ સ્પષ્ટ જાણી લેવા કહેલુ. એ તો વખત આવે ત્યારે ખરો, એટલે સળંગ જીવનવાર્તા એ તો મુલતવી જ રહે છે. તમે પણ સંક્ષેપમાં પતાવવાનુ સૂચવો છો એટલે મેં મારી હૃદ્ગત મુખ્ય વાત કહી કે, છેવટે અત્યુક્તિ કે આડંબર ન આવે

---

* કાકાસાહેબ કાલેલકર.

મારું વિદ્યાધ્યયન

[૭]

નેત્રહીન વ્યક્તિને કોઈ પંડિત કહી સંબોધે યા તેને ભણેલ તરીકે ઓળખાવે ત્યારે અજાણ્યા કેટલાયને કુતૂહલ થવાનું કે આ માણસ આંખ વિના કેમ ભણ્યા હશે? આવું જ કુતૂહલ મારી સમક્ષ ઘણા ભાઈ–બહેનોએ વ્યક્ત કર્યું છે કેટલાકની એ જિજ્ઞાસા મેં અમુક અંશે સ્વાનુભવકથન દ્વારા સંતોષી છે, પણ ભાઈશ્રી પરમાનંદભાઈની ઊંડી અને તીવ્ર જિજ્ઞાસા માત્ર એટલાથી સંતોષાય તો તે પરમાનંદભાઈ શાના? વાતચીતમાં તેમણે ટૂંકમાં એટલું જ કહી પતાવ્યું કે આ વિગત હું જાણતો ન હતો મનમાં સંઘરી રાખેલ જિજ્ઞાસા શમાવવા તેમણે મને કાંઈક વિગતે લખી આપવા કહ્યું. આ તકનો લાભ લઈ એ વિષે કાંઈ લખાય તો લખી કાઢવું એ વૃત્તિથી હું પ્રેરાયો છું અલબત્ત, પત્રની મર્યાદા જોતાં પૂરી વિગતથી એ લખી નહિ શકું, તેમ છતાં કાંઈક લંબાણ થવું અનિવાર્ય છે તે વિના વાચક સામે અખંડ ચિત્ર ભાગ્યે જ આવી શકે

મારા જીવનના મુખ્ય બે ભાગ કલ્પી શકાય એક દર્શનનો અને બીજો અદર્શનનો લગભગ ચૌદ કે પંદર વર્ષની ઉમર સુધીનો સમય તે દર્શનનો અને ત્યાર પછી અત્યાર લગીનો લગભગ ૬૦ વર્ષનો સમય તે અદર્શનનો જેમ બીજા ભણનાર ભણે છે તેમ નેત્રની હયાતી વખતે હું પણ સાત ગુજરાતી ચોપડીઓ એક નાના ગામડાની નિશાળમાં ભણેલો. તે વખતે ગામડામાં સંભવે તેવા શિક્ષકો, સરકારી શાળામાં ચાલતા વિષયો અને દર વર્ષે નિયમિત આવતા પરીક્ષકો અને લેવાતી પરીક્ષાઓ–આ બધું દેખનાર માટે એટલું બધું જાણીતું અને સાધારણ છે કે તે વિષેની મારી અંગત વિશેષતાનું અત્રે કોઈ મહત્ત્વ નથી કહેવું પડે તો એટલું જ કહી શકું કે, સુલેખન, ગણિત અને શાળામાં ચાલતી ચોપડીઓને જેની તે તેની નવી રાખવાની કાળજી ઇત્યાદિમાં હું અગ્ર રહેવા પ્રયત્ન કરતો. નિશાળ બહારની પ્રવૃત્તિ, ભણતર યા કેળવણીના અંગ-રૂપ, અત્યારની જેમ, તે વખતે તો ન લેખાતી પણ હવે જ્યારે એ ય તાલીમનો એક ભાગ લેખાય છે ત્યારે એ વિષે મારી પ્રકૃતિ અને સ્વભાવનો નિર્દેશ ન કરું તો આગળના જીવનની ભૂમિકા જ ન સમજાય માત્ર સ્વ-

ભાવમાં જેટલો ભણતરનો રસ અને ઉમંગ હતો તેટલો જ રમત-ગમત અને જાતમહેનતનો હતો. તલાવ ને કૂવામાં તરવુ, ઘોડાઓ અને વાછડા દોડાવવા, તત્કાલીન ગામડાની બધી રમતો રમવી અને વડીલોએ કે ગમે તેણે ચીંધેલુ કામ જરાપણ આનાકાની વિના, મોઢું કટાણુ કર્યા વિના તરત જ કરી આપવુ એ સહજ હતું. એની અસર શરીરના બંધારણ ઉપર કાંઈક સારી થઈ અને મનના ઘડતરમાં પણ એણે કાંઈક સારો ફાળો આપ્યો એમ આગળ ઉપર વિચાર કરતાં મને જણાયુ છે

જૈન સાધુઓ પાસે અધ્યયન

વિ. સં. ૧૯૫૩ (ઇ. સ ૧૮૯૭)ના ઉનાળામાં માતાને લીધે નેત્રો ગયાં અને યુગ પલટાયો. જે જગત નેત્રને લીધે સ્વતંત્ર પ્રવૃત્તિનુ ધામ હતું તે હવે પરતંત્ર પ્રવૃત્તિનુ સ્થાન બન્યું જે રૂપલોક દૂર છતાં સમીપ હતો તે હવે સમીપ છતાં દૂર બન્યો અને અરૂપલોક સમીપ આવ્યો. ફાવે તેમ વન-વિહાર કરતો હાથી કે ઉડ્ડયન કરતુ પંખી પાંજરામાં પુરાય અને જે અકળામણ અનુભવે તે આવી પડી લગભગ બે-એક વર્ષના માનસિક ઉત્પાત પછી સમાધાનનુ એક દ્વાર અણધારી રીતે ઊઘડ્યુ તે દ્વાર અરૂપ-લોકમાં વિચરવાનુ-કાંઈક ને કાંઈક નવુ શીખવાનુ અંગ્રેજી ભણવાની સહજ વૃત્તિ કેટલાક કારણસર સફળ થઈ ન હતી, ત્યારે નવી આવી પડેલ પરિ-સ્થિતિએ એ જિજ્ઞાસાવૃત્તિને ઉપસ્થિત સંજોગો પ્રમાણે બીજી દિશામાં વાળી. હજારથી પણ ઓછી વસ્તીવાળું ગામ, શિક્ષણના કોઈ સાધનો નહિ છતાં ખારા સમુદ્રમાં મીઠી વીરડીની જેમ પછાત ગામડામાં ય જૈન સાધુઓનુ આવાગમન આશીર્વાદરૂપ નીવડ્યું આગળ જતા વિ સ. ૧૯૬૦ના ઉનાળામાં કાશી જવાની જે તક સાંપડી તેની આ પૂર્વભૂમિકા લેખાય, તેથી તે વખતે ગામડામા ઘરબેઠા કોની કોની પાસે શુ શુ શીખ્યો અને તે કઈ કઈ રીતે એ જાણવુ જરૂરી છે.

જૈન સાધુ-સાધ્વી આવતાં પણ તે મુખ્યપણે સ્થાનકવાસી પરંપરાના. એમ તો એ સાત વર્ષમાં સેંકડો સાધુ અને સાધ્વીઓ આવ્યાં અને ગયાં મે તેમનો પરિચય પણ સાધ્યો, પરંતુ મારા અધ્યયન સાથે જેમનો ખાસ સંબંધ છે તેમના નામ આ રહ્યા લીંબડી સંઘાડાના પૂજ્ય લાધાજી સ્વામી, જે તે વખતે વૃદ્ધ અને અંધ હતા. તેમના સુવિદ્વાન શિષ્ય ઉત્તમચંદજી સ્વામી અને એકલવિહારી પૂ દીપચંદજી સ્વામી જે સાધ્વીઓનો અધ્યયન અંગે પરિચય થયો તેમાંથી એક અતિવૃદ્ધ જડાવબાઈ અદ્યાપિ જીવિત છે

અને તે હાલ અમદાવાદમાં છે. તે વખતે મારા શીખવાના વિષયો માત્ર જૈનપરંપરાને લગતા જ હતા ને તે ત્રણ ભાષામાં ગ્રથિત ગુજરાતી, પ્રાકૃત અને સંસ્કૃત ભાષા દ્વારા એ વિષયમાં થોડો પ્રવેશ કર્યો. જીવ, કર્મ, લોક, દ્વીપસમૂહ, ધ્યાન જેવા એક એક મુદ્દા ઉપર જૈનદૃષ્ટિએ લખાયેલ ગુજરાતીમાં જે નાનાં નાનાં સખ્યાબંધ પ્રકરણો છે તે થોકડાને નામે પરંપરામાં જાણીતાં છે થોકડા એટલે કોઈ એક મુદ્દા ઉપર શાસ્ત્રમાં મળી આવતા વિચારોનો એકત્ર કરેલ થોક, જથ્થો કે સંચય, જેને તે તે વિષયનાં પ્રકરણ કહી શકાય. આવા સખ્યાબધ થોકડાઓ તે તે સાધુ કે સાધ્વી પાસેથી સાંભળીને જ યાદ કરી લીધા એનુ પ્રમાણ નાનુંસૂનું ન હતુ છન્દ, સ્તવન અને સઝાય નામે જાણીતુ ગુજરાતીમાં વિશાળ જૈન–સાહિત્ય છે સઝાયમાળા નામે તે વખતે પ્રસિદ્ધ એવા બે ભાગોમાં છપાયેલ. લગભગ બધુ જ આવુ સાહિત્ય પણ એક અથવા બીજાની પાસેથી સાંભળી સાંભળી યાદ કરી લીધુ ગુજરાતીમા ચર્ચાયેલ વિષયો સમજવામાં મુશ્કેલી પડતી જ નહિ, એટલે સહેજે અનેક જૈન વિષયોનો પરિચય તો થયો પણ એટલા માત્રથી જિજ્ઞાસા શમતી ન હતી. મનમાં થયુ કે આ બધુ જે મૂળ ગ્રથોમા છે તે યાદ કેમ ન કરવુ? આ જિજ્ઞાસાએ આગમો ભણી ધકેલ્યો આગમો યાદ કરવાં ને શીખવામાં મુખ્ય ફાળો હોય તો તે એકલવિહારી પૂ દીપચદજી સ્વામીનો અલબત્ત, એમાં લાધાજી સ્વામીજીનો હિસ્સો તો છે જ દશવૈકાલિક, ઉત્તરાધ્યયન અને સૂત્રકૃતાંગ પ્રથમ સ્કંધ એ મૂળ મૂળ સૂત્રો તો આખેઆખા યાદ થઈ ગયા, પણ તે ઉપરાત અનેક વિષયો ઉપર પ્રાકૃતમાં નિબદ્ધ પ્રકરણો પણ સાભળીને જ યાદ કરી લીધા. એ બધાંની યાદી બહુ લાબી થાય અહીં કહી દેવુ ઘટે કે તે તે આગમો અને પ્રાકૃત પ્રકરણોનો અર્થ કા તો ટબા દ્વારા અને કાં તો સાધુઓનાં મોઢેથી ગ્રહણ કર્યો

સંસ્કૃત ભાષાનું આકર્ષણ

આગળ જતા મને જણાયુ કે એ અર્થગ્રહણ માટે વધારે સાધનની અને તૈયારીની જરૂર છે. ક્યારેક કોઈ સાધુ છૂટાછવાયા સંસ્કૃત શ્લોકો બોલે અથવા નાતમાં જમતી વખતે બ્રાહ્મણો સંસ્કૃત શ્લોકો લલકારે, એ સાભળી સંસ્કૃતની મધુરતાએ અને ભાષાવિષયક તીવ્ર જિજ્ઞાસાએ મને સંસ્કૃત તરફ વાળ્યો તે વખતે એ પણ માલૂમ પડ્યું કે પ્રાકૃત આગમો ઉપર સંસ્કૃત ભાષામા વિશાળ પ્રમાણભૂત વ્યાખ્યાઓ છે. એ પણ માલૂમ પડ્યુ કે લૌકિક બ્રાહ્મણ–સાહિત્ય તો મુખ્યપણે સંસ્કૃત ભાષામા જ છે. આ જાણી સંસ્કૃત

ભાવમાં જેટલો ભણતરનો રસ અને ઉમંગ હતો તેટલો જ રમત-ગમત અને જાતમહેનતનો હતો તલાવ ને કૂવામાં તરવુ, ઘોડાઓ અને વાછડા દોડાવવા, તત્કાલીન ગામડાની બધી રમતો રમવી અને વડીલોએ કે ગમે તેણે ચીંધેલું કામ જરાપણ આનાકાની વિના, મોઢું કટાણુ કર્યા વિના તરત જ કરી આપવુ એ સહજ હતુ એની અસર શરીરના બંધારણ ઉપર કાંઈક સારી થઈ અને મનના ઘડતરમા પણ એણે કાઈક સારો ફાળો આપ્યો એમ આગળ ઉપર વિચાર કરતાં મને જણાયું છે.

જૈન સાધુઓ પાસે અધ્યયન

વિ સં. ૧૯૫૩ (ઇ. સ ૧૮૯૭)ના ઉનાળામાં માતાને લીધે નેત્રો ગયાં અને યુગ પલટાયો. જે જગત નેત્રને લીધે સ્વતંત્ર પ્રવૃત્તિનુ ધામ હતું તે હવે પરતંત્ર પ્રવૃત્તિનુ સ્થાન બન્યુ જે રૂપલોક દૂર છતાં સમીપ હતો તે હવે સમીપ છતા દૂર બન્યો અને અરૂપલોક સમીપ આવ્યો. ફાવે તેમ વન-વિહાર કરતો હાથી કે ઉડ્ડયન કરતુ પંખી પાંજરામા પુરાય અને જે અકળામણ અનુભવે તે આવી પડી લગભગ બે-એક વર્ષના માનસિક ઉત્પાત પછી સમાધાનનુ એક દ્વાર અણધારી રીતે ઊઘડ્યુ તે દ્વાર અરૂપ-લોકમા વિચરવાનુ-કાંઈક ને કાંઈક નવુ શીખવાનુ અંગ્રેજી ભણવાની સહજ વૃત્તિ કેટલાક કારણસર સફળ થઈ ન હતી, ત્યારે નવી આવી પડેલ પરિ-સ્થિતિએ એ જિજ્ઞાસાવૃત્તિને ઉપસ્થિત સંજોગો પ્રમાણે બીજી દિશામાં વાળી હજારથી પણ ઓછી વસ્તીવાળું ગામ, શિક્ષણના કોઈ સાધનો નહિ છતાં ખારા સમુદ્રમા મીઠી વીરડીની જેમ પછાત ગામડામા ય જૈન સાધુઓનુ આવાગમન આશીર્વાદરૂપ નીવડ્યું. આગળ જતા વિ સ ૧૯૬૦ના ઉનાળામા કાશી જવાની જે તક સાપડી તેની આ પૂર્વભૂમિકા લેખાય, તેથી તે વખતે ગામડામા ઘરબેઠાં કોની કોની પાસે શુ શુ શીખ્યો અને તે કઈ કઈ રીતે એ જાણવુ જરૂરી છે

જૈન સાધુ-સાધ્વી આવતાં પણ તે મુખ્યપણે સ્થાનકવાસી પરંપરાના એમ તો એ સાત વર્ષમા સેંકડો સાધુ અને સાધ્વીઓ આવ્યા અને ગયાં મેં તેમનો પરિચય પણ સાધ્યો, પરંતુ મારા અધ્યયન સાથે જેમનો ખાસ સંબંધ છે તેમના નામ આ રહ્યા: લીંબડી સંઘાડાના પૂજ્ય લાધાજી સ્વામી, જે તે વખતે વૃદ્ધ અને અંધ હતા તેમના સુવિદ્વાન શિષ્ય ઉત્તમચંદજી સ્વામી અને એકલવિહારી પ્ર દીપચંદજી સ્વામી જે સાધ્વીઓનો અધ્યયન અંગે પરિચય થયો તેમાંથી એક અતિવૃદ્ધ જડાવબાઈ અદ્યાપિ જીવિત છે

અને તે હાલ અમદાવાદમાં છે. તે વખતે મારા શીખવાના વિષયો માત્ર જૈનપરંપરાને લગતા જ હતા ને તે ત્રણ ભાષામાં ગ્રથિત. ગુજરાતી, પ્રાકૃત અને સંસ્કૃત ભાષા દ્વારા એ વિષયમાં થોડો પ્રવેશ કર્યો. જીવ, કર્મ, લોક, દ્વીપસમૂહ, ધ્યાન જેવા એક એક મુદ્દા ઉપર જૈનદષ્ટિએ લખાયેલ ગુજરાતીમાં જે નાનાં નાનાં સંખ્યાબંધ પ્રકરણો છે તે થોકડાને નામે પરંપરામાં જાણીતાં છે થોકડા એટલે કોઈ એક મુદ્દા ઉપર શાસ્ત્રમાં મળી આવતા વિચારોનો એકત્ર કરેલ થોક, જથ્થો કે સંચય, જેને તે તે વિષયનાં પ્રકરણ કહી શકાય. આવા સખ્યાબંધ થોકડાઓ તે તે સાધુ કે સાધ્વી પાસેથી સાંભળીને જ યાદ કરી લીધા એનુ પ્રમાણ નાનુંસૂનું ન હતુ છન્દ, સ્તવન અને સઝઝાય નામે જાણીતુ ગુજરાતીમાં વિશાળ જૈન–સાહિત્ય છે સઝઝાયમાળા નામે તે વખતે પ્રસિદ્ધ એવા બે ભાગોમાં છપાયેલ. લગભગ બધુ જ આવુ સાહિત્ય પણ એક અથવા બીજાની પાસેથી સાંભળી સાંભળી યાદ કરી લીધુ ગુજ-રાતીમા ચર્ચાયેલ વિષયો સમજવામાં મુસ્કેલી પડતી જ નહિ, એટલે સહેજે અનેક જૈન વિષયોનો પરિચય તો થયો પણ એટલા માત્રથી જિજ્ઞાસા શમતી ન હતી. મનમાં થયુ કે આ બધુ જે મૂળ ગ્રથોમાં છે તે યાદ કેમ ન કરવુ? આ જિજ્ઞાસાએ આગમો ભણી ધકેલ્યો આગમો યાદ કરવાં ને શીખવામાં મુખ્ય ફાળો હોય તો તે એકલવિહારી પૂ. દીપચંદજી સ્વામીનો. અલબત્ત, એમાં લાધાજી સ્વામીજીનો હિસ્સો તો છે જ. દશવૈકાલિક, ઉત્તરાધ્યયન અને સૂત્રકૃતાગ પ્રથમ સ્કંધ એ મૂળ મૂળ સૂત્રો તો આખેઆખાં યાદ થઈ ગયાં, પણ તે ઉપરાંત અનેક વિષયો ઉપર પ્રાકૃતમાં નિબદ્ધ પ્રકરણો પણ સાભળીને જ યાદ કરી લીધાં એ બધાંની યાદી બહુ લાંબી થાય અહીં કહી દેવુ ઘટે કે તે તે આગમો અને પ્રાકૃત પ્રકરણોનો અર્થ કા તો ટબા દ્વારા અને કા તો સાધુઓનાં મોઢેથી ગ્રહણ કર્યો

સંસ્કૃત ભાષાનું આકર્ષણ

આગળ જતા મને જણાયુ કે એ અર્થગ્રહણ માટે વધારે સાધનની અને તૈયારીની જરૂર છે કયારેક કોઈ સાધુ છૂટાછવાયા સસ્કૃત શ્લોકો બોલે અથવા નાતમાં જમતી વખતે બ્રાહ્મણો સંસ્કૃત શ્લોકો લલકારે, એ સાભળી સસ્કૃતની મધુરતાએ અને ભાષાવિષયક તીવ્ર જિજ્ઞાસાએ મને સંસ્કૃત તરફ વાળ્યો. તે વખતે એ પણ માલૂમ પડ્યું કે પ્રાકૃત આગમો ઉપર સસ્કૃત ભાષામા વિશાળ પ્રમાણભૂત વ્યાખ્યાઓ છે. એ પણ માલૂમ પડ્યુ કે વૈદિક બ્રાહ્મણ–સાહિત્ય તો મુખ્યપણે સંસ્કૃત ભાષામાં જ છે આ જાણથી સંસ્કૃત

શીખવાની અદમ્ય ઇચ્છા ઉદ્‌ભવી પણ વિદ્યાના એ મરુદેશસમાં ગામડામાં ન તો સંસ્કૃત ભાષા શીખવાનું કોઈ સાધન હતું કે ન પ્રાકૃત આદિ અન્ય ભાષાઓ શીખવાનું. માનસિક અકળામણ કાંઈક ઓછી થાય એવો પ્રસંગ અચાનક આવ્યો અને લાધાજી સ્વામી તથા ઉત્તમચંદજી સ્વામીનો સમાગમ કાંઈક વિશેષ લાધ્યો પહેલા પાસે શરૂઆત કરી અને બીજા પાસે સારસ્વત-વ્યાકરણ પૂર્ણ કર્યું એ બને ગુરુ-શિષ્ય પ્રત્યેની કૃતજ્ઞતા સાચવીને પણ મારે એટલું તો નિખાલસપણે કહી જ દેવું જોઈએ કે સંસ્કૃતમાં પ્રવેશ તો થયો પણ તે ન હતું સંગીન કે ન હતું પૂર્ણ અધ્યયન. તે વખતે પણ મને એટલું તો સમજાઈ ગયું કે સંસ્કૃત ભાષાના પરિપૂર્ણ અને શુદ્ધ જ્ઞાન વિના પ્રાકૃત ભાષામાંથી ખરો અર્થ તારવવો એ માત્ર ફાંફાં છે અને એ બને ભાષાના યથાવત્ બોધ વિના ગુજરાતી કે હિંદીમાં લખાયેલ જૈન પ્રકરણોના ભાવને ઠીક ઠીક સ્પર્શવાનું કામ પણ એટલું જ અધરું છે, તેથી હવે મારું મન સસ્કૃત ભાષાના વધારે અભ્યાસ તરફ વળ્યું પણ એ જિજ્ઞાસા-તૃપ્તિનું કોઈ સાધન સામે ન હતું અને જ્યારે કાંઈક સૂઝ્યું ત્યારે પ્રથમ તો એ અધૂરું લાગ્યું, એટલું જ નહિ, એ અધૂરા સાધનથી સસ્કૃત શીખવાનું કામ સરળ પણ ન હતું આ રીતે ચોવીસે કલાક ગડમથલ ચાલતી તો બીજી બાજુ નિષ્ક્રિય રહેવાનું મારે માટે શક્ય જ ન હતું, એટલે જે જે સુલભ થયું તે બધું યાદ કર્યે ગયો એ બધી વસ્તુ સંભળાવી યાદ કરવામાં મદદગાર કેટલાય થયા છે, પણ અત્રે ત્રણ વ્યક્તિઓનો નિર્દેશ અનિવાર્ય છે. બે સહોદર ભાઈ પોપટલાલ અને ગુલાબચંદ, જે મારા નિકટ મિત્ર પણ બન્યા હતા અને મારો એક લઘુભ્રાતા આ ત્રણમાં પ્રથમના બે મને સભળાવે ને પોતે પણ વાંચતાં વાંચતા કાંઈક સમજતા તેમાય પોપટલા-લની બુદ્ધિ તો અસાધારણ હતી એને લીધે મે જૈનપરંપરાના એક જટિલ ગણાતા કર્મસાહિત્યમાં પ્રવેશ કર્યો અનેક કર્મગ્રંથો અને બીજાં પ્રકરણો માત્ર ટબા દ્વારા જાણી લીધા આ રીતે કાશી ગયા પહેલા મારી પૂર્વભૂમિકા તૈયાર થઈ

પણ જે જે યાદ કર્યું કે યાદ થયું તે વિષે એક ઇશારો આવશ્યક છે નવું વાંચી સભળાવનાર કોઈ હાજર ન હોય કે તેને સમય ન હોય તે વખતે શીખેલ સમગ્ર વસ્તુઓને હું પુનરાવર્તન દ્વારા યાદ કરી જતો, કેમકે તે બધું તે કાળે કંઠસ્થ હતું એ પણ કહી દેવું જોઈએ કે જેટલા પ્રમાણમાં શબ્દોનો સ્પર્શ હતો તેટલા પ્રમાણમાં તેના અર્થજ્ઞાનનું ઊંડાણ તે વખતે ન હતું. સમજવાની શક્તિ ઓછી હતી એમ નથી કહી શકતો, જિજ્ઞાસા

મંદ હતી એમ પણ ન હતું, પરંતુ જે કાંઈ શીખતો અને જેની જેની પાસે શીખતો તે બાબત તેમની તેમની પાસે એકદેશીય ફિરકાની દૃષ્ટિ ઉપરાંત વ્યાપક દૃષ્ટિવાળું કોઈ ધોરણ જ ન હતુ આ વસ્તુ જૂની ઘરેડના બધા જ ફિરકાઓમાં ઓછેવત્તે અંશે છે જ, એટલે હુ વધારેની આશા રાખુ તે અસ્થાને હતુ. ઊલટું એમ કહી શકાય કે, તે વખતે મારે માટે આ બધુ આશીર્વાદરૂપ નીવડ્યું.

કાશીમાં વિદ્યાભ્યાસ

સંસ્કૃત ભાષા શીખવા માટે કાશી જ એક પ્રધાનકેન્દ્ર છે અને કાશીના પંડિતો એટલે સંસ્કૃતના ખા એવી એવી વાતો જે તે પાસેથી સાંભળતો કાશી જઈ અધ્યયન કરું તો કેવુ સારું એવો મનોરથ પણ થયા કરતો. પરતુ આવી પરાધીન દશામા અને તે પણ હજારથી વધારે માઈલિ દૂર કેવી રીતે, કોની પાસે અને કોની મદદને ભરોસે જવુ એ પ્રશ્ન મનમાં આવતો કે પેલો મનોરથ શમી જતો. મનની વાત મનમાં રહેતી અને ક્યારેક પેલા બે મિત્રો સમક્ષ પ્રગટ પણ થતી અચાનક જાણવા પામ્યો કે કાશીમાં જૈન પાઠશાળા સ્થપાવાની છે તે સ્થપાઈ પણ તેના સ્થાપક હતા શાસ્ત્રવિશારદ વિજયધર્મસૂરિ. એમના દીર્ઘદૃષ્ટિવાળા સાહસે કાશીમાં જૈન પરંપરા માટે તદ્દન નવુ જ પ્રકરણ શરૂ કર્યું હતું કુટુંબ અને વડીલોથી તદ્દન ખાનગી પત્રવ્યવહારને પરિણામે જ્યારે વિજયધર્મસૂરીશ્વરે મને કાશી આવવા લખ્યુ ત્યારે મને ખરેખર આ ભૂતલ ઉપર સ્વર્ગ ઊતરતું દેખાયુ. છેવટે હુ કાશી પહોચ્યો અહીથી જ મારા જીવનમાં પણ એક નવુ જ પર્વ શરૂ થયુ. વિ સ. ૧૯૬૦ (ઇ સ ૧૯૦૪)નો ગ્રીષ્મકાળ હતો અને કાશીના ધગધગતા મકાનોમા પ્રવેશ કર્યો, અધ્યયન શરૂ થયુ

શુ ભણવુ ? કોની પાસે ભણવુ ? કઈ રીતે ભણવુ ? વગેરે કાઈ પણ વિચાર્યું જ ન હતું વિચાર્યું હતું તે એટલુ જ કે સસ્કૃત ભાષા પૂર્ણપણે શીખવી કાશીમાં પાણિનિનુ વ્યાકરણ ભણવાની જ પ્રતિષ્ઠા ત્યા એની સામગ્રી જેવી તેવી નહિ મારે કાને એ જ મહાવ્યાકરણનુ નામ પડેલુ પરંતુ તરતમા જ શરૂ થયેલ જૈન પાઠશાળામા રંગ બીજો હતો. ત્યા મને માલૂમ પડ્યું અને કહેવામાં આવ્યુ કે ગુજરાતના પાણિનિ જેવા હેમચદ્રે રચેલું મહદ્વ્યાકરણ સિદ્ધહેમ—શબ્દાનુશાસન છે, તે શીખવા જેવુ છે જો કે આ વ્યાકરણનુ નામ મારે કાને પ્રથમ જ પડેલુ, છતા પાઠશાળામા એનુ જ વાતાવરણ જોઈ મેં એનુ અધ્યયન શરૂ કર્યું. આ માગ કાશીના વિદ્યાભ્યા-

સતુ પહેલુ પગથિયું અધ્યાપક તો ખરેખર વ્યાકરણમૂર્તિ તેમ જ સંસ્કૃત ભાષાના ક્ષેત્રમાં વિશ્રુત. પરંતુ મારી મુશ્કેલી જુદી હતી એક તો યોગ્ય રીતે, મને અનુકૂળ આવે તેવી રીતે અને તેટલો વખત વાંચી સંભળાવે કોણ ? બીજુ, શીખવા ધારેલ ગ્રંથ તે વખતે છપાયેલ નહિ, માત્ર હસ્તલિખિત હતો ત્રીજુ એ કે એ શબ્દાનુશાસન કદ અને વિસ્તારમાં બહુ મોટુ, તેમ જ તેનાં અંગો પણ ઘણાં. અને ચોથું એ કે પાઠશાળામાં એ બૃહદ્વ્યાકરણ શીખનાર કોઈ પણ સાથી ન હતો આ મુશ્કેલીઓ આજે લાગે છે તેવી તે વખતે હળવી ન હતી. પણ દૈવનો સંકેત કોઈ અકળ જ હોય છે! ત્યા તે વખતે વિદ્યમાન એવા બે-ચાર સાધુઓએ મને એટલો બધો ઉત્સાહ આપ્યો અને મારી ત્યાર સુધીની વિદ્યા-ભૂમિકા તેમ જ જિજ્ઞાસા જોઈ તેમણે તે માટે મને એટલો બધો યોગ્ય માન્યો કે છેવટે મારી મૂઝવણ હળવી થતી ગઈ અત્યારના વિજયેન્દ્રસૂરિ અને તે વખતના મુનિ ઇન્દ્રવિજયજીએ એ લિખિત પોથી વાચી સંભળાવવાનુ માથે લીધુ અધ્યાપક તો અસાધારણ હતા જ આમ ગાડું આગળ ચાલ્યુ.

અધ્યયન અને પરિશીલન

હુ જે કાઈ શીખતો તે બધુ મોઢે યાદ જ કરતો શીખવાનો અને મોઢે યાદ કરવાનો સમય બહુ પરિમિત એટલે બચત બધો જ સમય શીખેલ ભાગનો પુન. પુન વિચાર કરવામાં જતો જો કે શક્તિ, જિજ્ઞાસા અને સ્મૃતિને અનુસરીને, હુ તે વખતે બહુ ત્વરાથી પ્રગતિ કરી શકત, પણ પ્રમાણની દૃષ્ટિએ તેટલી પ્રગતિ ન થતી, છતા અર્થવિચાર અને મનનના લાભે એ ખોટ કાંઈક અંશે પૂરી પાડી એમ મને લાગે છે પાઠશાળામા બીજા અધ્યાપક હતા જે નૈયાયિક તેમ જ દાર્શનિક હતા સસ્કૃત ભાષામા બોલવાના અભ્યાસ અને કાઈક વધારે સમજણ જોઈ તેઓ મારા પ્રત્યે મમતા સેવતા થયા અને આગ્રહ કર્યો કે તમે તો ન્યાય શીખો હુ પણ એ ભણી વળ્યો આ રીતે વ્યાકરણના અધ્યયન સાથે જ ન્યાય-વૈશેષિક દર્શનનુ અધ્યયન ચાલ્યુ. ન્યાય શીખતી વખતે ઘણીવાર મનમાં અજ્ઞાત એમ થઈ આવતું કે જાણે આ વસ્તુ શીખેલી ન હોય અને એમાં સમજાતુ જેટલો જ રસ પણ પડતો. દેશમાં એટલે કે કાઠિયાવાડમા હતો ત્યારે જે સંસ્કૃત પુસ્તકમાં યોગ લાધે તે અર્થ સમજ્યા વિના પણ કંઠસ્થ કર્યાં ન ચૂકતો તેથી દેશમાં જ કાલિદાસકૃત 'રઘુવંશ' કાવ્યના નવ સર્ગો, નૈષધ ત્રિસર્ગ પ્રભૃતિ કોઈનું પુસ્તક મળવાથી, શબ્દમાત્ર કંઠસ્થ કર્યા. પેલા દાર્શનિક અધ્યાપક

પાસે એ કંઠસ્થ કાવ્યનું આર્થિક અધ્યયન પણ શરૂ કર્યું. આમ વ્યાકરણ, ન્યાય અને કાવ્ય એ ત્રણેય ઓછાવત્તા પ્રમાણમાં સાથે ચાલ્યાં, જો કે મુખ્ય તો વ્યાકરણ જ હતું ત્રણ વર્ષની લાંબી અને કઠોર તપસ્યા પછી એ વ્યાકરણ, એનાં બધાં જ અંગો, જેવાં કે લિંગાનુશાસન, ધાતુપાઠ, ઉણાદિ, ક્રિયારત્નસમુચ્ચય, ન્યાયમંજૂષા અને ન્યાસ આદિ, સાથે પૂરું થયુ સાથે જ જિજ્ઞાસાએ વહેણ બદલ્યુ.

પ્રથમથી જ સંકલ્પ હતો કે કાશીમાં જઈને શીખવુ હોય તો જૈનેતર શાસ્ત્રો જ શીખવાં જોઈએ. તે વખતે મારી સમજણમા જૈનેતર એટલે વૈદિક દર્શનો એટલુ જ હતું બૌદ્ધ, જરથુસ્ત, ક્રિશ્ચિયન, ઇસ્લામ આદિ પરંપરાઓની કશી કલ્પના જ ન હતી અધ્યાપકો પોતપોતાના વિષયમાં પારગામી અને અસાધારણ, પણ તેમનુ વિચાર-વાચન વર્તુળ પોતાની માનીતી વિદ્યા કે પરંપરા બહાર જરાય નહિ અને પાઠશાળાનુ વાતાવરણ પણ સાંપ્રદાયિક જ એટલે સર્વશાખાસ્પર્શી અધ્યયનને લગતી પ્રેરણા પામવાની તક નહિવત્ હતી. છતાં જૈન પાઠશાળાના લગભગ ૩–૪ વર્ષ જેટલા નિવાસ દરમિયાન વ્યાકરણ, કાવ્ય, અલકાર, ન્યાયવૈશેષિક દર્શન આદિનુ પરિશીલન ઠીક ઠીક થવા પામ્યું અને આગળ નવી વિદ્યાશાખાઓ ખેડવાની તેમ જ ખેડેલ શાખાઓમાં ઊંડે ઊતરવાની ભૂમિકા તો રચાઈ જ અહી એ સૂચવી દેવુ જોઈએ કે આ શરૂઆતનાં વર્ષોમાં મળેલ અને ત્યારબાદ આગળ મળેલ અનેક અધ્યાપકોની વિશેષતા એવી હતી કે જે ખાસ જાણવા જેવી અને તેમના પ્રત્યે માન ઉપજાવે તેવી છે પણ એ વિશેષતાનો સ્પષ્ટ ખ્યાલ આ ટૂંકા લેખમાં આપવો શક્ય નથી એ બાબત તો એમના રેખાચિત્રોની એક જુદી લેખમાળા જ માગી લે છે

૩–૪ વર્ષ પછી પાઠશાળા બહાર રહેવાનુ બન્યુ ત્યારે મિત્ર અને સાથી તરીકે વ્રજલાલ નામના એક બ્રાહ્મણ વિદ્યાર્થી હતા, જે આગળ જતા પંડિત વ્રજલાલ તરીકે જૈનપરંપરામા જાણીતા થયા અને જેમણે મુંબઈ મહાવીર જૈન વિદ્યાલયમા ઘણાં વર્ષો લગી ધાર્મિક શિક્ષણ આપેલુ અમે બન્ને મિત્રોએ અધ્યયનના કેટલાક વિષયો વહેંચી લીધા અને કેટલાક સાથે મળી શીખવા એમ નક્કી કર્યું. જે જે વિષયો વહેંચ્યા તે માત્ર અધ્યાપક પાસે જઈ શીખવાની દૃષ્ટિએ તેઓ અમુક અધ્યાપક પાસે એક વિષય શીખી આવે તો હુ બીજા અધ્યાપક પાસે બીજો વિષય શીખુ. પણ છેવટે તો બન્ને ઘેર બેસી પરસ્પર આપસે કરી લઈએ. તેમ જુના અમુક

વિષયો તો બન્ને સાથે જ શીખતા. આ અમારી અધ્યયનની યોજના હતી. પણ પાઠશાળાથી જુદા રહ્યા પછી જેમ અધ્યયનની સ્વતંત્રતા અને એની વિશાળતાનો અમને લાભ મળવાની તક પ્રાપ્ત થઈ હતી, તેમ સાથે જ અમારે સ્થાન, ભોજન, અધ્યાપક આદિને લગતી આર્થિક મુશ્કેલી પણ હતી જ. છતાં અમે કદી નિરાશ થયા હોઈએ એવું યાદ નથી અમે બન્ને મિત્રોએ એક વાત નક્કી કરી અને તે એ કે કાશીમા રહીને જ ભણવુ. આ નિશ્ચયને અમે એટલા બધા વફાદાર રહ્યા કે તે વખતના જૈન પરંપરાના સૌથી મોવડી લેખાતા મનસુખભાઈ ભગુભાઈની ઇચ્છાને પણ અમે અવગણી. તેઓની ઇચ્છા હતી કે અમે તેમને બંગલે અમદાવાદમાં રહીએ અને તેઓ અધ્યયન માટે સારો દાર્શનિક અધ્યાપક રોકે

આર્થિક મુશ્કેલીઓ

કાશીમાં જ ભણવાના સંકલ્પને એક અપવાદ હતો અમે વિચાર્યું કે આપણને ઠીક ઠીક જાણનાર આગેવાન બે–ત્રણ જૈન ગૃહસ્થ જો કાશીમાં ભણવા જેટલી આર્થિક જોગવાઈ કરી ન શકે તો આપણે બન્નેએ અમેરિકા જવુ અને જોન રોકફેલર પાસેથી મદદ મેળવવી અમે રોકફેલરનુ જીવન હિદી પત્રમા વાચી એના તરફ લલચાયેલા અને સ્વામી સત્યદેવના પત્રો વાચી અમેરિકાના સ્વપ્ન આવેલા, તેથી આવો તરગી અપવાદ રાખેલો. પણ છેવટે અણધારી દિશામાથી જોગવાઈ સાપડી કાશીમા રહી અધ્યયન કરવાના સંકલ્પે કેટલીક મુશ્કેલીઓ અનુભવાવી, જેનો ટૂંક ચિતાર આપવો અસ્થાને નહિ લેખાય પાઠશાળામા હતા ત્યાં લગી ન હતી રહેવાના મકાનની ચિતા કે ન હતી ખાનપાન કે કપડાની ફિકર અધ્યાપકની અગવડ પણ ન જ હતી આ લીલાલહેર અને પાઠશાળાના અધિષ્ઠાતાની મીઠી મહેર અમુક હેતુસર અમે છોડી તો ખરી, પણ આગળ દિશા શૂન્ય અમે બે મિત્ર અને વિદ્યાર્થીઓ એમ કુલ પાંચ જણ પહેલી મુશ્કેલી ક્યાં રહેવું એ હતી બીજી હતી ખાલી હાથને ખર્ચખૂટણની અને વચગાળામા હવે પછી અર્થસાધ્ય અધ્યાપકો મેળવવાની અભ્યાસ છૂટી ગયાની ઊંડી વેદના અનુભવતા દિલ સાથે, પણ હોંશથી ત્રણ ચાર મહિના મથુરા, વૃન્દાવન, ગ્વાલિયર આદિ સ્થાને રખડપટ્ટીમા અને પરિચિતોને મળવામાં ગયા છેવટે અણધારી દિશામાથી સાધારણ સગવડ સાંપડી અગાઉ સંવત્સરીને દિવસે જ શહેરથી લગભગ બે માઈલ દૂર ગંગાતટે આવેલ જૈનઘાટ ઉપરના એક ખાલી મકાનમાં આશ્રય મળ્યો આ સમયનુ દૃશ્ય અદ્ભુત હતુ ક્યાં અમારો [illegible]માં

આવેલા આલિશાન, પણ ચોમેરથી બંધિયાર મકાનમાં જનાનખાના જેવો વાસ અને ક્યાં નાનકડા પણ દશ દરવાજાવાળા ખુલ્લા મકાનમાં કરેલ પડાવ અને માઈલો લગી પહોળા પથરાયેલ ગંગાના પટ ઉપર વર્ષાના પાણીથી ઊભરાતું તેમ જ એ મકાન સાથે અફળાતું પાણીનું પૂર! દેખીતી રીતે સ્થાનની ચિંતા ટળી, પણ અંદરથી તે ઘોંચપરોણાને લીધે થોડીઘણી હમેશાં રહી.

કાશીમાં કપરા અનુભવો

માસિક લગભગ સો રૂપિયામાંથી ઘણું નભાવવાનું હતું. છએક જણ જમનાર. મહેમાન અને મિત્રો હોય જ. અધ્યાપકના અને મારા વાચકોના પગારનો બોજો પણ ખાસ હતો. એ પેટે લગભગ પચાસ રૂપિયા દર માસે ખરચાતા, અને બાકીમાં બધું નભાવવાનું. આ સમય તિલકને દેશનિકાલ થયાનો, અને બંગભંગની ગરમાગરમ હિલચાલનો, તેમ જ વિપ્લવવાદીઓના ત્રાસનો હતો. તેથી છાપાનો લોભ જતો કરવો શક્ય ન હતો. સાપ્તાહિક, માસિક અને દૈનિક એવાં જે જે ગરમાગરમ હિંદી અને મરાઠી છાપાં હોય તેનો બન્ને મિત્રોને નાદ, એટલે એ ખર્ચ પણ ખરો, છતાં બીજી બધી રીતે સાદગી અને જાતમહેનતથી વરતવાનું એટલે ગાડું ચાલે.

હું તો જૈન તરીકે જાણીતો થયેલ. બ્રાહ્મણ મિત્ર પણ મારી સાથે રહે અને તે પણ જૈનતીર્થના મકાનમાં. એટલે સારા કોઈ પણ અધ્યાપક, જે હમેશાં વગર પૈસે બધાને ભણાવે તે તો અમે તેમને ઘેર જઈએ છતાં સમય ન આપે, અને સુયોગ્ય અધ્યાપક મેળવ્યા વિના સંતોષ પણ ન થાય. એવો કોઈ અધ્યાપક મળે ત્યારે જૈન હોવાને કારણે બીજી બધી બાબતોમાં અગવડ વેઠીને પણ પૂરતું મૂલ્ય ચૂકવવું પડે. આ એક વિટંબના હતી, પણ સાથે જ મુક્ત મને અધ્યયનના વિષયો અને ગ્રંથો પસંદ કરવાની છૂટ હોવાથી પાઠશાળાના સગવડિયા પણ એકાંગી અધ્યયનથી મુક્તિ મળવાને લીધે એક રીતે અસાંપ્રદાયિક સંસ્કારનો પાયો નંખાયો. અધ્યાપક ક્યારેક રિસાય, પણ તે તો એટલા માટે કે આ જૈનો હોઈ છેવટે કાંઈક વધારે ધરશે જ. અમે પણ કાંઈક વધારે નૈવેદ્યથી એમને રીઝવીએ અને વધારે તાણ ભોગવીએ. અનુભવે નવો રસ્તો સુઝાડ્યો, પણ તે સહેલો ન હતો. શહેરમાં કોઈ દ્રવ્યાર્થી સુયોગ્ય અધ્યાપકોને શોધી બન્ને જણે જુદા જુદા જવું ને ઘેર અધ્યાપકને બોલાવવા માટે ચૂકવવું પડતું મૂલ્ય કાંઈક હળવું કરવું અને સાથે જ એકાધિક અધ્યાપકનો લાભ લેવો. આ યોજના પ્રમાણે

રોજ પાંચેક માઈલ ચાલવાનું તો રહે જ અને જો બે વાર જવાનું ગોઠવાય તો સાત–આઠ માઈલ પણ થાય. એથી ચાર આનામાં જવરઅવર થઈ શકે એવા સસ્તા ભાડાના યુગમાં એ વખતે અમારા માટે એ ખરચ પોષાય તેમ હતો જ નહિ. અવરજવરમાં વખત પુષ્કળ વીતે, પણ સાથે પૂરી કસરત થાય. ઘરે ભણવા જવામાં બીજી પણ એક મુશ્કેલી અને તે વધારે દુઃખદ. ઘણીવાર કડકડતી ટાઢમાં, ગ્રીષ્મના ખરા બપોરે અને વરસતે વરસાદે ચાલીને ઘરે ગયા પછી પણ જ્યારે અધ્યાપક કાંઈક બહાના નીચે પૂરો વખત ન આપે અથવા 'આજે પાઠ નહિ ચાલે' એમ કહે ત્યારે ચાલવાનું દુઃખ જેટલું ન સાલે તેટલું અભ્યાસ પડ્યાનું સાલતું. સારનાથ શહેરથી પાંચેક માઈલ દૂર. કૉલેરા અને પ્લેગના એ જમાનામાં મોટે ભાગે ફાગણથી ત્રણ મહિના ત્યાં રહેવા જઈએ. ટ્રેનની ટિકિટના માત્ર બબ્બે પૈસા બચાવવા ત્યાંથી ઘણીવાર બન્ને મિત્ર પગે ચાલી ખરે બપોરે પંડિતને ત્યાં પહોંચીએ અને તે ઠરાવ પ્રમાણે પગાર તો લે જ, પણ વખત આપતી વખતે ઠરાવ ભૂલી જાય અને કોઈકવાર તો રજા જ પાડે. અધ્યાપકો અનેક બદલ્યા પણ કોઈ સાથે અપ્રીતિ સેવ્યાનું યાદ નથી.

થોડા અનુભવ પછી વિચાર આવ્યો કે આપણે કોઈ વૃદ્ધ અને વિદ્વાનને શિરછત્ર તરીકે શોધીએ ને અવારનવાર તેની સલાહ લઈએ તો સારું. સદ્‌ભાગ્યે ભાવનગર કૉલેજના નિવૃત્ત અધ્યાપક કે પ્રિન્સિપાલ શ્રી ઊનવાલા અમને મળી ગયા. તે પારસી એટલે સહજ વિનોદી, થિયોસૉફિસ્ટ એટલે ઉદારચિત્ત. અઠવાડિયે, બે અઠવાડિયે તેમને બંગલે જવું અને તેમની રમૂજ માણી આવવી, તેમ જ કાંઈ કહે તો શ્રદ્ધાથી સ્વીકારવું એ એક નવો લહાવો સાંપડ્યો. તેમણે અને તે જમાનામાં ચાલતા આર્યસમાજ અને કટ્ટર સનાતનીઓના સાંપ્રદાયિક ગરમાગરમ શાસ્ત્રાર્થોના રંગે અમને કેટલુંક શીખવાનું પૂરું પાડ્યું. એ ઊછળતી જુવાની અને અધ્યયનની ખુમારીએ શિયાળામાં ગંગાકિનારાની સખત ટાઢ અને ગરમીમાં પથ્થરના ઘાટનો અસહ્ય તાપ તેમ જ વરસાદના ઊભરાતા પૂર એ બધું સહ્ય બનાવ્યું.

જુદા રહી કાશીમાં જ અધ્યયન કરવાનાં એ છ વર્ષોમાં સાંખ્યયોગ, ન્યાય–વૈશેષિક, પૂર્વ–ઉત્તર મીમાંસા, કાવ્ય અને અલંકાર, પ્રાકૃતવ્યાકરણ અને પ્રાકૃતસાહિત્ય જેવા ખાસખાસ વિષયોનું રસપૂર્વક એકાગ્રતાથી અધ્યયન થવા પામ્યું અને સાથે સાથે સનાતન, આર્યસમાજ, ક્રિશ્ચિયન, થિયોસૉફિ જેવી પરંપરાઓની વ્યાવહારિક બાજુ જાણવાની પણ ચોટીક તક મળી.

અધ્યયન સાથે અધ્યાપન

તે વખતે મારામાં એક સંસ્કાર પ્રબળપણે કામ કરતો. તે એ કે જે શીખવા આવે તેને શીખેલું તો શીખવવું પણ કાંઈક નવું હોય તે પણ તૈયાર કરી શીખવવુ, જેથી અધ્યયન સાથે એક પ્રકારનો સબળ અધ્યાપન-યોગ પણ ચાલતો. જૈન શાસ્ત્રો અને જૈનદર્શન તો ઘરનાં જ છે. ગમે ત્યાં બેસી ગમે ત્યારે એનું ઊંડાણ કેળવાશે, પણ કાશીમાં રહ્યાનુ પૂરુ સાર્થક્ય તો ગભીર અને ગંભીરતર, એવાં જૈનેતર બધાં જ વૈદિકદર્શનોને ગુરુમુખે પણ ઊડાણથી શીખી લેવામાં જ છે જો કે કોઈ અધ્યાપક પાસે જૈન-દર્શન શીખવાની મુખ્ય વૃત્તિ ન હતી. તેમ છતાં જૈનદર્શન શીખવા આવનાર ગમે તેટલા અને ગમે તે કક્ષાના વિદ્યાર્થીઓને હુ તેને લગતા પ્રાકૃત કે સંસ્કૃત ગ્રંથો બહુ ઉત્સાહ અને રસથી શીખવતો એટલે એક રીતે મારુ જૈનશાસ્ત્રનુ અધ્યયન પણ કાશીમાં આપોઆપ વધતુ અને કાઈક વિકસતું. એના વિદ્યાર્થીઓ પણ, દિગબર જૈન પાઠશાળા પાસે હોવાથી, અને મારી મમતા હોવાથી, સહેજે મળતા.

જો કે કાશીની નજીક જ સારનાથ છે કે જ્યાં તથાગત બુદ્ધે પ્રથમ ધર્મોપદેશ આપેલો પણ તે વખતે, ખાસ કરી પડિત વર્તુલમા, બૌદ્ધશાસ્ત્ર અને બૌદ્ધદર્શનની કોઈ વિશેષ ચર્ચા ન હતી એટલે એક રીતે તે વખતે હુ બૌદ્ધદર્શનના મૌલિક અભ્યાસથી વચિત જ રહ્યો. તે ખોટ આગળ જતાં અધ્યાપક શ્રી ધર્માનદ કોસાબી પાસે પાલી પિટકના અધ્યયન દ્વારા તેમ જ ઘણુ ઘણુ આપમેળે સાંભળી, સમજવા દ્વારા પૂરી થઈ, પરંતુ મનમા એક સકલ્પ હતો કે ન્યાય, વૈશેષિક દર્શનમા પ્રાચીન તેમ જ નવીન ગ્રંથોનું એટલા ઊડાણથી અધ્યયન કરવું કે જેને બળે કોઈ પણ ભારતીય દર્શન વાચતાં અને સમજતા જરાય મુશ્કેલી ન પડે આ દૃષ્ટિથી પ્રાચીન અને નવ્યન્યાયના વિશાળ અને કઠિનતર પટમા મે ભૂસકો માર્યો એ પ્રયત્નને સફળ કરવા માટે કાશીમાં બીજા અનેક નૈયાયિક અધ્યાપકોની કૃપા મેળવવા મથ્યો પણ જ્યારે એમ લાગ્યું, કે હવે તો કાશી બહાર પણ જવું પડશે ત્યારે એની પણ તૈયારી કરી

કાશી બહાર એટલે મિથિલા જવાનો સંકલ્પ હતો ત્યા વિશિષ્ટ નૈયા-યિકો હતા અને વધારે લાભ થવાની આશા પણ હતી જો કે ત્યાં જઈ મારા જેવા પરતંત્ર માણસને અધ્યયન કરવા માટે જે સામાન્ય સગવડ જોઈએ તે પૂરી ન હતી, છતાં જે કાઈ સગવડ મળી તેને જરાય ઓછી

માન્યા વિના મિથિલા ભણી પ્રવાસ કર્યો. પિલખવાડ, સિંહવાડા અને દરભંગા એમ ત્રણ સ્થળોએ જુદે જુદે વખતે કેટલોક સમય ખર્ચ્યો. ત્યાંનો પ્રવાસ નિષ્ફળ ગયો એમ તો ન કહી શકાય, પણ સાધનોની અપૂર્ણતા અને જાતની પરતંત્રતાને લીધે ઇચ્છા અને જિજ્ઞાસાના પ્રમાણમાં લાભ ઓછો મળ્યો એમ કહી શકાય અલબત્ત, એ ઓછા લાભનો બદલો બીજી ઘણી રીતે મને નિઃશંકપણે મળી ગયો ત્યાંનો કટ્ટર બ્રાહ્મણસમાજ, ત્યાંની કાળજૂની ગંભીર સનાતન વિદ્યાપરંપરા, ત્યાના સનાતન માનસવાળા પણ અત્યંત સહૃદય ઉચ્ચતમ વિદ્વાનો અને ત્યાની વ્યાપક વિદ્યાવૃત્તિ અને વિદ્યાભક્તિ–એ બધાનો સીધો પરિચય થયો, જેણે મારા આગળના જીવનમાં બહુ સારી અસર ઉપજાવી છે

મિથિલાનાં સંસ્મરણો

મિથિલામાં દેશસ્થિતિ અને દેશાચાર જાણવા પામ્યો તેને હુ વિદ્યાધ્યયનનો એક ભાગ ન લેખું તો ખરેખર જડ જ ગણાઉં માઈલો લગી આંબા, જાંબૂડા, લીચી અન કટહર (ફણસ)ના ઝાડ નીચે પડેલ ફળો અનાયાસે મેળવવા, કદી ન સૂકાતી નદીઓને કાંઠે ફરવુ, ચોમાસાના ચડતા પૂરમા શરદીના ડર વિના ઝંપલાવવુ, ચારેક આનામાં કેળાની આખી લુમ મેળવવી, કૃષ્ણભોગ જેવા સુગંધી ભાત ખાવાના અભ્યાસથી ઘઉં ખાવાનો જન્મસિદ્ધ અભ્યાસ છૂટવો, ઘર–આંગણાના પોખરાના ગંદા પાણીને પણ ગંગાજળ માની કડકડની ટાઢમાં નહાવુ, રાતની કડકડની ટાઢમાં બીજા સાધનને અભાવે ડાંગરનુ પરાળ પાથરી પાથરવાની એક માત્ર જાજમ ઓઢી ભોંય પર સૂવું, ઉચ્ચ ગણાતા બ્રાહ્મણને થતો વધારેમા વધારે સ્ત્રીઓનો લાભ, એટલે સુધી કે પરિણીત અગિયાર સ્ત્રીઓમાથી અન્તઃપુરમા બે અને બાકીની પિયરમા–એની સીધી જાણ થવી, અને બીજે ક્યાય નહિ આસ્વાદેલ દહીંનુ જમણ ઇત્યાદિ ન્યાયશાસ્ત્રના શુષ્ક ગણાતા અભ્યાસમા રસ સીંચતુ.

પરીક્ષાના અનુભવો

અધ્યયન કરતી વખતે તો પરીક્ષા આપવાની કલ્પના ન હતી, પણ મનમાં એ ભૂત ભરાયુ. એમ થયુ કે બધુ તૈયાર જ છે તો પરીક્ષા કેમ ન આપવી? ભારત અને ભારત બહાર પ્રસિદ્ધ અને અંગ્રેજ અમલ દરમિયાન સ્થપાયેલ કેન્દ્રોમા સૌથી જૂની ક્વીન્સ કૉલેજમા ન્યાયની ચારેય વર્ષોની એક-સામટી લેવાની પરીક્ષા આપી. પ્રિન્સિપાલ [illegible] સંસ્કૃતજ્ઞ અંગ્રેજ વેનિસ સાહેબ પરીક્ષક હતા તો લેખિત પણ લેખકની ભૂલ જાણતા તે

ફરી મૌખિક લેવાઈ વેનિસ પોતે પણ પ્રશ્ન કરતા. પંડિતો તો હતા જ. એમા મળેલી વિશિષ્ટ સફળતાથી પરીક્ષા આપવાની લાલચ વધી. આગળની આચાર્યપરીક્ષા એ છેવટની તેના વર્ષો ૭, પણ તૈયારી છતા એક સાથે ન બેસવાના નિયમથી એ ક્રમે ક્રમે આપવાની હતી. બધા વિષયોના બધા જ ગ્રથોની સહજ તૈયારી હોવાથી અધ્યયન તો અન્ય પ્રકારનુ ચાલતુ ને પરીક્ષાને ટાણે પરીક્ષા આપી દેવાતી ઘણુ કરી ત્રીજે વર્ષે મે પરીક્ષક પડિતોમા સમતુલા ન જોઈ તે વખતે વેનિસ ન હતા અને જે અંગ્રેજ પ્રિન્સિપાલ હતા તે એવા સસ્કૃતજ્ઞ નહિ મે પરીક્ષાના કમરામા બેઠા જ નિશ્ચય કરી લીધો કે ફરી આ કમરામા પરીક્ષા આપવા ન આવવુ. પાછા ફરતા એના ઉબરામાં કરેલ સંકલ્પ ઠેઠ લગી કાયમ રહ્યો, પણ ત્યાર બાદ પચીસેક વર્ષે પ્રિન્સિપાલ ડૉ ગોપીનાથ કવિરાજ અને રજિસ્ટ્રાર ડૉ મંગલદેવ શાસ્ત્રીનો પત્ર આવવાથી ફરી એ જ કમરામા જૈનદર્શનનો અભ્યાસ-ક્રમ તૈયાર કરવા અર્થે જવાનુ બન્યુ આ પણ વિદ્યાધ્યયનની એક વિચિત્ર લીલા જ કહેવાય!

અન્યના સહૃદય યોગનું ફળ

વિદ્યાધ્યયનની વાત કરવી હોય ત્યારે વિદ્યાદાતા અધ્યાપકોને ભૂલી ન શકાય અધ્યયનમા જેનો પૂરો સાથ હોય એવા વાચકોને વીસરી જ કેમ શકાય? જે વિદ્યાર્થી-મિત્રોદ્વારા વિદ્યાધ્યયન વિકસ્યુ હોય તે પણ અવિસ્મ-રણીય જ ગણાય અને મારા જેવા પરતત્રને ડગલે ને પગલે આર્થિક રીતે, પરિચર્યાથી અને બીજી અનેકવિધ સગવડોથી ઉત્તેજન આપનાર ભાઈ-બહેનોનો વર્ગ પણ એ વિદ્યાધ્યયનનુ એક મુખ્ય અંગ જ છે પણ અતકરણથી ઇચ્છવા છતા પ્રસ્તુત લેખની મર્યાદામા એ બધાનો નામમાત્ર નિર્દેશ પણ શકય નથી, તો એ બધાનો સામાન્ય પરિચય અત્રે આપી જ કેમ શકાય? તેમ છતાં મારે નિખાલસપણે અને કૃતજ્ઞબુદ્ધિથી કહેવુ જોઈએ કે મારી વિદ્યોપાસના એ ખરી રીતે એ બધાના સહૃદય સહયોગનુ જ ફળ છે

પ્રથમ કરેલ સંકલ્પ પ્રમાણે મે જાતે જ અભ્યાસનુ ઊડાણ માપવા એક કસોટી અજમાવી, જેથી અધ્યયન ચાલે છે તેમ ચાલુ રાખવુ કે નહિ તેની કાઈક ખબર પડે કસોટી એટલી જ કે ઉત્તમ અને વિનોદ કઠણ ગણાતા બે—એક ગ્રથોને વાચી જોઈ લેવુ કે તે આપમેળે બરાબર સમજાય છે કે નહિ? એ ગ્રથ પૈકી એક હતો સુપ્રસિદ્ધ શ્રીહર્ષ કવિનો વેદાન્ત વિષયક खण्डनखण्डखाद्य અને બીજો હતો ન્યાયદર્શનમા મૂર્ધન્ય મનાતો ઉદયના-

ચાર્યનો ગ્રંથ ન્યાયકુસુમાંજલિ. આ કસોટીમાં કાંઈક આત્મસંતોષ થયો ને ચાલતુ અધ્યયન સમાપ્ત કર્યું

વૃદ્ધત્વમાં પણ યૌવન

મેં અહીં સુધી વિદ્યાધ્યયનને લગતી જે થોડી નીરસ કે સરસ હકીકત આપી છે તે ઈ. સ. ૧૯૧૪ સુધીની છે. ત્યાર બાદનાં ચાલીસ વર્ષોમાં આ લખાવુ છુ ત્યા સુધી પણ મારું કાઈક ને કાંઈક જૂનું-નવુ અધ્યયન એ જ જિજ્ઞાસાથી અસ્ખલિત ચાલુ છે પરંતુ ૧૯૧૪ થી મારા વિદ્યાધ્યયને નવુ જ સ્વરૂપ ધારણ કરેલું તેથી આ લેખમાં એ નવા સ્વરૂપની ટૂંક ચર્ચા પણ નથી કરતો વાચક માટે એટલો સંતોષ બસ થશે કે, ૧૯૧૪થી આજ લગીની મારી પ્રવૃત્તિ અધ્યયન, સંશોધન, લેખન, સંપાદન, સામાજિક અને ધાર્મિક પ્રશ્નોની છણાવટ આદિ અનેક દિશાઓમાં વહેચાયેલી રહી છે. અલબત્ત, એ દીર્ઘકાલીન શાસ્ત્રીય અને વ્યવહારુ કાર્યના યજ્ઞમાં કેન્દ્રસ્થાને તો ઉત્કટ જિજ્ઞાસા અને સત્યશોધનવૃત્તિ જ રહેલ છે એણે જ મને અનેક સત્પુરુષોની ભેટ કરાવી, એણે જ મને પંથ કે ફિરકાના સાંકડા વર્તુલમાથી બહાર કાઢ્યો, એણે જ મને અનેકવિધ પુસ્તકોના ગજમા પૂર્યો, એણે જ મને અનેકવિધ ભાષાઓના પરિચય ભણી પ્રેર્યો, એણે જ મને અગવડનુ ભાન કદી થવા ન દીધુ, એણે જ મને અનેક સહૃદય, ઉદાર અને વિદ્વાન મિત્રો મેળવી આપ્યા, એણે જ મને નાનામોટા વિદ્યાકેન્દ્રોની યાત્રા કરાવી. વિશેષ તો શુ, એણે જ મને વૃદ્ધત્વમા પણ યૌવન અર્પ્યું છે અને અદ્યાપિ જીવિત રાખ્યો છે.

—પ્રબુદ્ધજીવન, ૧ નવેંબર ૧૯૫૪

શબ્દસૂચી

[બે પ્રેસમાં થયેલ મુદ્રણને કારણે 'અર્ઘ્ય'થી શરૂ થતા વિભાગોનાં પાનાં (૧ થી ૩૦૨ સુધી) બેવડાયાં છે, તેથી આ સૂચીમાં એ પાનાંનો નિર્દેશ (અ) પછી કરવામાં આવ્યો છે]